॥ अर्हम् ॥

श्रीशांतिनाथाय नमः ॥

बृहत्पर्युषणा निर्णयः

पूर्वार्द्ध. प्रथम-दूसरा खंड.

कर्त्ता

श्रीमान् परमपूज्य उपाध्यायजी श्री १००८ श्री सुमति-
सागरजी महाराजके लघु शिष्य मुनि-
श्रीमणिसागरजी महाराज.

प्रसिद्ध कर्त्ता

कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, बीकानेर, जयपुर, जेसलमेर,
मुंबई, धूलिया, चालीसगांव वगैरह शहरोंके
जैनसंघकी द्रव्य साह्यतासे

श्रीमत् अभयदेवसूरि ग्रंथमालाके कार्यवाहक कलकत्ता. तथा
श्रीजिनदत्तसूरि ज्ञानभंडारके कार्यवाहक, शा.पानाचंद भगुभाई,सुरत.

मूलग्रंथ बी. एल. प्रेस, कलकत्तामें छपा.

भूमिकादि, धि आत्माराम प्रिंटिंग ॲन्ड पब्लिशिंग कंपनी, श्री. वि.
ग. जावडेकर द्वारा आत्माराम छापखाना धूलियामें छपा.

श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४४७. विक्रम संवत् १९७८.

वैशाख शुदी ३ मंगल वार.

प्रथम बार ३१५० कॉपी.] भेट [मूल्य सत्य ग्रहण.

॥ श्रीचंद्रप्रभस्वामिने नमः ॥

याद रखने योग्य उपयोगी सूचना.

१-आत्मार्थी हे! भव्यजीवों खरतरगच्छ, तपगच्छ, कमलागच्छ, अंचलगच्छ, पायचंदगच्छादिकके आग्रहकीबातें करनेमें आत्मकल्याण मुक्तिनहींहै, किंतु जिनाज्ञानुसारभावसे शुद्धधर्मक्रियाकरनेमें मुक्तिहै.इसलिये अपने २ गच्छकी परंपरा रूढीको छोडकर जिनाज्ञानुसार सत्यबातकी परीक्षाकरके उसमुजबधर्मकार्यकरो उससे श्रेयहो.

२-श्रीसर्वज्ञ भगवान्‌के कहे हुए अतीवगहनाशयवाले, अपेक्षा सहित, अनंतार्थयुक्त जैनशास्त्र अविसंवादीहैं, मगर "कत्थइ देसग्गहणं, कत्थइ घिप्पंति निरवसेसाइं । उक्कमकम जुत्ताइं,कारण वसओ निरुत्ताइं ॥ १ ॥" श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रकी वृत्तिके इस महावाक्य मुजब-सामान्य, विशेष, ओपमा, वर्णनक, उत्सर्ग, अपवाद, विधि, भय, निश्चय, व्यवहारादिक संबंधी शब्दार्थ, भावार्थ, लक्ष्यार्थ, वाच्यार्थ, संबंधार्थादि भेदोंवाले गंभीरार्थके भावार्थ संबंधी शास्त्रवाक्योंको समझे बिनाही अभी अविसंवादी सर्वज्ञशासनमें कितने गच्छोंके भेदोंका आग्रह बढगयाहै. देखो-"गच्छना भेद बहु नयण निहालतां, तत्त्वनीवातकरतां न लाजे । उदरभरणादि निजकाज करतांथकां, मोहनडिया कलिकालराजे ॥ १ ॥ देवगुरुधर्मनी शुद्धि कहो किमरहे, किमरहे शुद्ध श्रद्धान आणो । शुद्धश्रद्धाविना सर्वकरियाकरी, छारपर लिपणो तेह जाणो ॥ २ ॥ पापनही कोई उत्सूत्रभाषण जिस्युं, धर्मनहीं कोई जगसूत्र सरिखो । सूत्र अनुसारें जे भविक किरिया करें, तेहनो शुद्ध चारित्र परिखो ॥ ३ ॥ इत्यादि बातोंको विचार कर आत्मार्थियोंको अपना असत्य आग्रहको छोडकर अपनी आत्माको हितकारी, सुखकारी होवे, वैसा सत्य ग्रहण करना चाहिये.

३- कितनेक मुनिमहाशय वर्षोवर्ष पर्युषणापर्वके व्याख्यानमें अधिकमहीनेके व श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंके निषेध संबंधी चर्चा उठाते हैं, उससे भोले लोगोंको अनेक तरहकी शंकायें उत्पन्न होती हैं, और कितनेही महाशयतो इन बातोंमें तत्त्वदृष्टिसे सत्य असत्यका निर्णय किये बिनाही अपने पक्षको सत्य मान्य करके दूसरोंको झूठे ठहरानेका एकांत आग्रह करते हैं । शास्त्रोंमें एकांत आग्रहको और

शंकारूपी शल्यको एकप्रकारसे मिथ्यात्वही कहाहै, उसका निवारण करनेकेलिये और शास्त्रानुसार सत्य बातोंका निर्णय बतलानेकेलिये वर्तमानिक सर्व शंकाओंका समाधान सहित मैंने यह ग्रंथ बनायाहै, मगर मेरी तरफसे किसी तरहका नवीन विवाद शुरूकरनेकेलिये नहीं बनाया. इसलिये इस ग्रंथके बनानेमें सुबोधिका, किरणावली वांचनेवाले कितनेक विद्वान् मुनि महाशयही कारणभूत हैं, पाठक गण इसमें मेरेको किसी तरहका दोषी न समझें, मैंने तो उन्होंकी शंकाओंका समाधान लिखा है.

४– शुद्धश्रद्धाविना द्रव्यसे व्यवहारमें चाहे जितनेधर्मकार्य करें, तो भी आतम कल्याण करने वाले नही होते, और आग्रही लोगोंकी अभी अलग २ प्ररूपणा होनेसे भोले जीवोंको जिनाज्ञानुसार सत्य बातकी प्राप्ति होना बहुत मुश्किल होरहा है. और अविसंवादी रूप आगम-पंचांगी-प्रकरण-चरित्रादि सर्वशास्त्रोंको मानने वालोंमें पर्युषणा–छ कल्याणक–सामायिकादि विषयों संबंधी शास्त्रकारमहाराजोंके अभिप्रायको न समझनेसे व्यर्थही विसंवाद होरहाहै, उसकानिर्णय करनेके लिये और भव्यजीवोंको शुद्धश्रद्धारूप सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्तिके उपकारकेलिये मैंने यह ग्रंथ बनायाहै। मगर किसी गच्छके साधु–श्रावकोंको किसी अन्य गच्छमें ले जानेके लिये नहीं बनाया. किसी गच्छमें रहो, परंतु आपसमें राग द्वेष निंदा ईर्षा अंगतविरोधादिक बखेडे छोडकर शुद्ध श्रद्धापूर्वक आत्मिक कल्याण करनेके लियेही इस ग्रंथकी रचना करनेमें आयी है, इसलिये पक्षपात छोडकर इस ग्रंथको वारंवार पूरेपूरा वांच, विचार, मननकर सत्य समझकरके शांति पूर्वक शुद्ध श्रद्धासहित अपना आत्मसाधन करके आत्मार्थी पाठकगण मेरे परिश्रमको सफल करेंगे.

५–जिनाज्ञानुसार शुद्धश्रद्धापूर्वकभावसे धर्मकार्य करनेका योग महान्पुण्योदयहोवे तब प्राप्तहोताहै, इसलिये उसमें लोकपूजा बहुत समुदायवैगरकी प्रवृत्तिमुजब करना योग्यनहीहै. इसकालमें आत्मार्थीअल्पही होते हैं. कदाचित् गच्छ-गुरुपरंपरा–बहुत समुदाय वगैरह बाह्यकारणोंसे आज्ञामुजब क्रियाकरनेका योग न बनसके तोभी शुद्धश्रद्धा–प्ररूपणा तो आज्ञामुजब सत्यबातोंकीही करना योग्यहै, उससे भवांतरमें सुलभबोधिकी प्राप्ति हो सकेगी. मगर गुरु–गच्छ–लोकसमुदायके आग्रहसे जिनाज्ञा बाहिर क्रिया करतेहुए आज्ञामुजब सत्यबातोंका निषेध करनेसे भवांतरमें दुर्लभबोधिकी प्राप्ति होतीहै,

इसलिये भवाभिरुयोंको गुरु गच्छ व लोक समुदायादिकका पक्षरखने-के बदले जमालिके शिष्योंकी तरह जिनाज्ञाका पक्ष रखनाही योग्यहै, अर्थात्-जैसे-अपने गुरु जमालिके उत्सूत्रप्ररूपणाके पक्षकोछोडकर बहुत भव्यजीव भगवान्‌की आज्ञामुजब माननेलगेथे,तैसेही-अभीभी आत्मार्थियोंको करना योग्य है. यही सम्यक्त्वका मुख्य लक्षण है.

६-मैरे बनाये इस एक ग्रंथके सामने अनेकग्रंथ लिखेजानेकी मैरेको कोई परवाह नहींहै, देखो-जैसे एकवीतराग सर्वज्ञभगवान्‌के परोपकारी जैन आगमोंके विरुद्ध हजारों मतवादी अनेक तरहसे अपना २ कथन करते हैं. मगर तत्त्व दृष्टिसे आत्महितकारी सत्य बात क्या है, यही देखा जाता है. तैसेही-मैंरे बनाये इस ग्रंथपरभी १-२ नहीं; परंतु १०-२० लेखकभी अपना २ विचार सुखसे लिखें. मगर जिनाज्ञानुसार सत्य बात क्या है. यही देखना है. झूठे मतवादियोंका यही स्वभाव है, कि- हजारों सत्य बातें छोड देते हैं, और अतिशयोक्तिमें या क्रोधमें आकर क्लेश बढानेलगजातेहैं, मगर अपनी बात को छोडते नहीं. वैसे इस ग्रंथपर न होना चाहिये यही प्रार्थनाहै.

७-इस ग्रंथमें पर्युषणा संबंधी अधिक महीनेके ३० दिनोंकी गिनतीसहित आषाढचौमासीसे ५० वें दिन दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्वका आराधन करनेका तथा श्रावण भाद्रपद आसोज अधिक महीने होंवे तब पर्युषणाके पीछे कार्तिकतक१०० दिन ठहरनेका खरतर गच्छ, तपगच्छ, अंचलगच्छ,पायचंदगच्छादि सर्व गच्छोंके पूर्वाचार्योंके वचनानुसार और निशीथचूर्णि, बृहत्कल्पचूर्णि,पर्युषणाकल्पचूर्णि, स्थानांग सूत्रवृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रपाठानुसार अच्छी तरहसे साबित करके बतलाया है। जैसे अधिक महीना होंवे तोभी ५० दिने पर्युषणापर्व करनेकी सर्व शास्त्रोंकी आज्ञा है, वैसेही-अधिकमहीना होवे तोभी पीछे हमेश ७०दिन रहनेकी आज्ञा किसीभी शास्त्रमें नहीं है, समवायांगसूत्रका पाठ तो सामान्य रीतिसे अधिक महीना न होंवे तब ४ महीनोंके वर्षाकाल संबंधी है, उसका भावार्थ समझे बिना अधिकमहीना होवे तब अभी पांच महीनोंके वर्षाकालमेंभी उसी सामान्य पाठको आगे करना और १०० दिन पीछे रहनेसंबंधी अनेक शास्त्रोंके विशेष पाठोंकी बातको छोड देना यह सर्वथा अनुचित है।

८-लौकिकटिप्पणामें दो श्रावणादिमहीने होंवे,तब पांचमहीनोंका वर्षाकाल मान्य करना यह बात अनुभवसिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाणानुसार

है,तोभी उनको ४ महीनोंका वर्षाकाल कहनेसे मिथ्या भाषण करने-कादोषआताहै। यदि अभी वर्तमानमें अधिकमहीनेश्रावणादि होनेपर भी जैनशास्त्रानुसार ४ महीनोंका वर्षाकालमानोगे, तो,पौष-आषाढ अधिक होनेवाला ८८ ग्रहसहित जैनपंचांगभी अभी मानना पडेगा. मगर वो जैनपंचांग तो अभी विच्छेदहै, इसलिये लौकिकपंचांग मुज-ब व्यवहार करनेमेंआताहै। अब यहांपर विवेकबुद्धिसे न्यायपूर्वक विचारकरना चाहिये, कि-अभी पौष-आषाढमहीनेकी वृद्धिवाला८८ ग्रह सहित जैनपंचांग विच्छेदभी मानना. व लौकिक पंचांग मुजब व्यवहारभी करना. और लौकिक पंचांग मुजब अधिकमहीने दो श्रा-वण,या दो भाद्रपद,वा दो आसोजभी मानने. फिर ४महीनोंकावर्षा-कालभी कहना, यह तो 'बालचेष्टा' की तरह पूर्वापर विरोधी वि-संवादी कथनकरना विवेकी विद्वानोंको सर्वथाही योग्य नहींहै। अ-धिकश्रावणादिमहीने नहींमानने होंवे तो अभी अधिकपौषादि वाला जैनपंचांग बतावो अथवा लौकिक पंचांग मुजब अधिक श्रावणादि मानो तो अधिकपौषादिका वहाना बतलाकर ४ महीनोंकावर्षाकाल कहनेका आग्रहछोडो। अधिकश्रावणादिभी मानोंगे और ४ महीनों-का वर्षाकालभी कहोंगे, यह कभी नहीं बन सकेगा. विच्छेद जैनपं-चांगकी बातका आश्रय लेना और प्रत्यक्ष विद्यमान बातका निषेध करना, यह न्याय विरुद्धहै। पहिले पौष आषाढ बढतेथे तबभी फा-ल्गुन और आषाढचौमासा पांच२ महीनोंसे होताथा और अभी श्रा-वणादिबढतेहैं तब कार्त्तिक चौमासाभी पांचमहीनोंका होताहै.अभी जैनपंचांग विच्छेद होनेसे लौकिक पंचांग मुजब अधिक श्रावणादि मान्यकरके उसमुजब व्यवहार करना युक्तियुक्त व पूर्वाचार्योंकी आज्ञानुसारहै, जिसपरभी अधिक श्रावणादि होंवे,तब पांच महीनों के वर्षाकालमें ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युष-णापर्व आराधन करनेका उल्लंघन करना और पीछे १०० दिन रहने की जगह ७० दिन रहनेका आग्रह करना सर्वथा अनुचित है. देखो-

यद्यपि जैन पंचांगमें ४ महीनोंका वर्षाकाल कहाहै, परंतु जैन पंचांगके अभावसे अभी लौकिक पंचांग मुजब श्रावणादि बढतेहैं, तब पांच महीनोंका वर्षाकालभी मानना पडता है, इसलिये इसका निषेधकरना सर्वथा अनुचितहै.बस ! पौष-आषाढमहिनेकी वृद्धिस-हित ४ महीनोंके वर्षाकाल वाला जैन पंचांग शुरू बतावो या लौ-किक पंचांग मुजब श्रावणादि बढे तब पांच महीनोंका वर्षाकाल

मान्य करो और जब पांच महीनोका वर्षाकाल मान्य हुआ तो फिर अधिकमहीना निषेध करनेकी व पर्युषणाके पीछे ७० दिन हमेश रखने वगैरहकी सर्व बातें आपही आप निष्फल हो जाती हैं

इसतरहसे अधिकमहीनेकेनिषेधसंबंधी धर्मसागरजीने 'कल्प किरणावली'में, जयविजयजीने 'कल्प दीपिका'में, विनयविजयजीने 'सुबोधिका'में,कांतिविजयजी-अमरविजयजीने'जैन सिद्धांत समाचारी' में,शांतिविजयजीने'मानवधर्मसंहिता'में,वल्लभविजयजीने जैनपत्रमें, विद्याविजयजीने 'पर्युषणा विचार'में,कुलमंडनसूरिजीने 'विचारामृत संग्रह'में, हर्षभूषणजीने 'पर्युषणास्थिति'में, और वर्तमानिक चर्चाके हेंडबिलें, किताबें वगैरहमें जो जो शंकायें कीहैं. उन सर्व शंकाओंका खुलासा पूर्वक समाधान इस ग्रंथकी भूमिकामें व पीठिकामें और इस ग्रंथमें अच्छी तरहसे लिखनेमें आयाहै, इसलिये जिनाज्ञानुसार धर्मकार्य करनेकी इच्छावाले,सत्यतत्त्वाभिलाषी,आत्महितैषी पाठक गण इसग्रंथको पूर्णतया वांचकर सत्यसार ग्रहण करें।

९-तीर्थंकर भगवान्के च्यवन-जन्म-दीक्षादिकोंको कल्याणक मानेनेका आगमानुसार अनादि सिद्ध है,इसलिये श्री महावीरस्वामिभी देवलोकसे देवानंदामाताके गर्भमें आषाढ शुदी ६ को आये; उनको प्रथम च्यवन कल्याणक, और आसोजवदी १३ को देवानंदामाताकेगर्भसे त्रिशलामाताके गर्भमें आये; सो गर्भापहाररूप (गर्भसंक्रमणरूप)दूसराच्यवन कल्याणक माननेका स्थानांग-आचारांग-दशाश्रुतस्कंधादिक आगम पंचांगी प्रकरण चरित्रादि अनेक शास्त्रानुसार और वडगच्छ, चंद्रगच्छ, उपकेशगच्छ (कमलागच्छ) खरतरगच्छ,तपगच्छ, अंचलगच्छ, पायचंदगच्छादि अनेक गच्छोंके पूर्वाचार्योंके ग्रंथानुसार अच्छी तरहसे सिद्ध करके बतलायाहै. च्यवन-जन्म-दीक्षादिकोंको चाहे वस्तु कहो, चाहे स्थानकहो, चाहे कल्याणक कहो. इन तीनोंबातोंमें प्रसंगोपात संबंधानुसार पर्याय वाचक एकार्थवाले शब्द अलग २ हैं, मगर सबका भावार्थ एकही है, उस बातकाभेद समझे विनाही च्यवन-जन्म-दीक्षादिकोको वस्तु-स्थान कहकर कल्याणक पनेका निषेध करके आगमार्थरूप पंचांगीको उत्थापनकरनेके दोषी बनना किसीकोभी योग्य नहीं है।

१०- श्रीवीरप्रभुके आषाढ शुदी ६ को प्रथम च्यवनकल्याणक मान्यकरके;आसोजवदी १३ को दूसरेच्यवनको कल्याणकपनेका निषेध करनेवालोंको न्यायबुद्धिसे विचार करना चाहिये, कि-तीर्थंकर

भगवान्केच्यवनकल्याणकसमय उनकी माता१४महास्वप्न आकाशसे उत्तरतेहुएदेखतीहैं, उसीसमय तीनजगतमें उद्द्योत होता है व सर्व संसारीप्राणीमात्रको सुखकीप्राप्तीहोती है, और इन्द्रमहाराजका आसन चलायमान होनेसे अवधिज्ञानसे भगवान्को देखकर विधिपूर्वक पूर्णभक्तिसहित नमुत्थुणंरूप नमस्कारकरके तत्काल माताके पास आकर१४ महास्वप्न देखनेसे स्वप्नोंके अनुसार तीनजगतकेपूज्यनीक तीर्थंकर पुत्र होनेका कहकर इन्द्रमहाराज अपने स्थानपरजाते हैं. और प्रभातसमय फजरमें राजा स्वप्न पाठकोंसे १४ महास्वप्नोंकाफल पूछताहै,तब तीर्थंकर पुत्र होनेका सुनकर हर्ष सहित महोत्सव करता है, और इन्द्र महाराज देवताओं द्वारा उस रोजसे भगवान्के माता-पिताके घरमें धन धान्यादिकसे राज्य ऋद्धिकीवृद्धि करवातेहैं इत्यादि तीर्थंकरभगवान्के च्यवनकल्याणकके कार्यहोतेहैं, यही सर्व कार्य आषाढशुदी ६के रोज भगवान् देवानंदामाताके गर्भमें आये;तब नहीं हुए,किंतु आसोज वदी १३के रोज त्रिशलामाताके गर्भमें आये; तब उससमय हुएहैं, क्योंकि देखो-आषाढ सुदी ६ को तो प्राचीन कर्मके उदयसे भगवान् ब्राह्मणीदेवानंदामाताके गर्भमें आये. और ८२दिनतकवहां ठहरनापडा,उनको कल्पसूत्रादिक शास्त्रोंमें अच्छेरा कहाहै, इसलिये ८२ दिन तकतो इन्द्रादिक किसीकोभी तीर्थंकरभगवान्के उत्पन्न होनेकी मालूम न पडी,मगर संपूर्ण८२ दिन गयेबाद इन्द्रमहाराजको अवधिज्ञानसे मालूमपडी उसीसमय पूर्णहर्षसहित नमुत्थुणंकिया और हरिणेगमेषिदेवको आज्ञाकरके क्षत्रियाणीत्रिशला माताके गर्भमें पधराये, तब त्रिशलामाताने(देवानंदाके १४महास्वप्न हरणकरनेका१स्वप्न नहीं देखा-किंतु)तीर्थंकर भगवान्के च्यवन कल्याणककी सूचनाकरने वाले १४ महास्वप्न आकाशसे उत्तरते हुए और अपने मुखमें प्रवेश करते हुए देखे हैं. इसलिये खास कल्पसूत्रके मूल पाठमेंभी "एए चउद्दस सुमिणा, सव्वा पासेई तित्थयर माया। जं रयणिं वक्कमई, कुंच्छिसि महायसो अरिहा" अर्थात्-जिस समय तीर्थंकर भगवान् माताके गर्भमें आकर उत्पन्न होतेहैं,उस समय यह १४ महास्वप्न सर्व तीर्थंकरमहाराजोंकी मातायें देखतीहैं, वैसेही-त्रिशलामातानेभी १४ महास्वप्न देखेहैं, इसलिये त्रिशलामाताके गर्भमें आनेकोही शास्त्रकार महाराजोंने च्यवन कल्याणक मान्य कियाहै, इसीकारणसे समवायांगसूत्रवृत्तिमें देवानंदामाताके गर्भसे त्रिशला माताके गर्भमें आनेको अलग भव गिनकर तीर्थंकर

पनेमें प्रकट होनेकालिखाहै. और 'महापुरुष चरित्र' में तथा 'त्रिषष्ठि-शलाका पुरुष चरित्र' आदिक प्राचीन शास्त्रोंमेंभी ८२ दिन गये बाद इन्द्रका आसन चलायमान होनेसे अवधिज्ञानसे भगवान्‌को देखकर नमुत्थुणं किया और त्रिशलामाताके गर्भमेंपधराये, जब त्रिशलामाता-ने १४महास्वप्न देखे,तब खास इन्द्रने त्रिशलामाताके पासमें आकर तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा है, और फजरमें स्वप्न पाठकोंसेभी तीर्थं-कर पुत्र होनेका सुनकर सबको तीर्थंकर भगवान्‌के उत्पन्न होने-की मालूम होगई. इसलिये कल्पसूत्रमें जो नमुत्थुणंका पाठ है, सो-भी आसोज वदी १३ के दिन संबंधी है, किंतु आषाढ शुदि६ के दि-न संबंधी नहींहै, क्योंकि देखो- 'नमुत्थुणं करके त्रिशलामाताके ग-र्भमें पधराये' ऐसा कल्पसूत्रादिमें खुलासालिखाहै, मगर आषाढ शु-दी६को आसनप्रकंपनसे नमुत्थुणं किया और फिर उसके बादमें ८२ दिन गये पीछे त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये. या ८२दिन तो इन्द्रको विचारकरते चलेगये. वा पूरे ८२ दिन गयेबाद आसोज वदी १३ को फिर आसन प्रकंपनसे त्रिशलामाताके गर्भमेंपधराये. अथवा ८२दिन ठहरकर पीछे त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये. ऐसे पाठ किसीभी शा-स्त्रमें नहींहै. मगर ८२दिन तक तो मालूमभी नहींपडी, परंतु ८२दिन जाने बाद आसन प्रकंपनहोनेसे मालूम पडी, तब नमुत्थुणं किया और उसी रोज पधराये, ऐसे पाठ तो "महापुरुष चरित्र" में तथा "त्रि-षष्ठिशलाका पुरुष चरित्र" आदि अनेक प्राचीन शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक प्रत्यक्ष मिलतेहैं, इसलिये आसोज वदी १३ कोही 'नमुत्थुणं' वगैरह च्यवन कल्याणकके तमाम कार्य होनेसे आगम पंचांगीकी श्रद्धावालोंको व श्रीवीरप्रभुकी भक्तिवालोंको यह दूसरा च्यवनरूप कल्याणक मान्य करनाही उचित है, बस ! आसोज वदी १३ कोही नमुत्थुणं करने वगैरह च्यवन कल्याणकके तमाम कार्य होनेका मा-न्यकरो या आषाढ शुदी ६ को नमुत्थुणं करने वगैरह च्यवन कल्या-णकके तमाम कार्य होनेका खुलासा पूर्वक शास्त्रपाठ बतलावो,व्यर्थ विवाद करनेमें कोई सार नहीं है.

११- श्रीआदीश्वर भगवान्‌के राज्याभिषेकमें तो कोईभी क-ल्याणकके लक्षण नहीं हैं, मगर गर्भापहारसे गर्भ संक्रमणरूप दूस-रे च्यवनमें तो च्यवन कल्याणकके सर्व लक्षण प्रत्यक्ष मौजूदहैं, इ-सलिये उसका भावार्थ समझे बिनाही राज्याभिषेककी तरह गर्भाप-हारकोभी कल्याणकपनेका निषेध करना यहभी बे समझ है।

१२- श्री आदीश्वरभगवान् १०८ मुनियोंके साथ 'अष्टापद' पर मोक्ष पधारे सो अच्छेरा कहतेहैं, तोभी उनको मोक्ष कल्याणक मानने में कोईभी बाधा नहीं आसकती. तैसेही-श्रीवीरप्रभुकेभी देवानंदा माताके गर्भमे आनेसे त्रिशलामाताके गर्भमें जाना पडा. सो अच्छेरारूप कहते हैं, तोभी उनको च्यवनकल्याणक माननेमें कोईभी बाधा नहीं आसकती. इसलिये अच्छेरा कहकर कल्याणकपनेका निषेध करना यहभी बे समझही है.

१३- और श्री मल्लिनाथस्वामि स्त्रीपनेमें तीर्थंकर उत्पन्न हुएहैं, तोभी चौवीश तीर्थंकर महाराजोंकी अपेक्षासे सामान्यतासे पुरुषपनेमें कहनेमेंआतेहैं. तैसेही श्रीवीरप्रभुकेभी छ कल्याणक आचारांग-स्थानांगादि आगमोंमें विशेषतासे खुलासापूर्वक कहेहैं, तोभी 'पंचाशक' में सर्व तीर्थंकर महाराजोंकी अपेक्षासे सामान्यतासे पांच कल्याणक कहेहैं, उसकाभावार्थ समझे बिनाही सर्वजिनसंबंधी पांचकल्याणकोंका सामान्य पाठको आगे करके आचारांग-स्थानांगादि आगमोंमें कहे हुए विशेषतावाले छ कल्याणकोंका निषेधकरना यह भी बे समझका व्यर्थही आग्रह है।

१४-इसतरहसे आगमपंचांगीके अनेक शास्त्रानुसार तीर्थंकर, गणधर,पूर्वधरादि प्राचीन पूर्वाचार्योंके कथनमुजब गर्भापहारको दूसरा च्यवनरूप कल्याणकपनाप्रत्यक्षसिद्ध होनेसे-श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने चितोडमें छठे कल्याणककी नवीनप्ररूपणाकी, पहिले नहीं थी, ऐसा कहेनाभी बे समझसे व्यर्थही है।

१५-और गर्भापहाररूप दूसरे च्यवनकल्याणकके अतीव उत्तम कार्यको 'सुबोधिका' टीकामें अतीव निंदनीक कहकरके निंदाकीहै, सोभी भगवान्की आशातनाकारक होनेसे सम्यक्त्वको व संयमको हानीपहुचानेवालीहै, उसका तत्त्वदृष्टिसे विचारकियेबिनाही विद्वान् कहलानेवाले सर्व मुनिमहाराज वर्षोंवर्ष पर्युषणापर्वके मांगलिक रूप व्याख्यान समय ऐसी अनुचित बातको वांचते हैं, यह बडीही शर्मकी बात है, भवभीरू आत्मार्थियोंको ऐसा करना कदापि योग्य नहीं है। इन सर्व बातोंका विशेष निर्णय प्रथम भागकी भूमिकामें और इस ग्रंथके उत्तरार्द्धमें अच्छी तरहसे लिखनेमें आयाहै, उनके बांचनेसे सर्व बातोंका निर्णय हो जावेगा.

१६- सामायिकमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करनेसंबंधीभी आवश्यकचूर्णि-बृहद्वृत्ति-लघुवृत्ति-नवपदप्रकरण विवरणरूपवृत्ति-दूसरीवृत्ति-श्रावकधर्मप्रकरणवृत्ति-

वंदित्तासूत्रचूर्णी-श्राद्धदिनकृत्यसूत्रवृत्ति-पंचाशकचूर्णी-वृत्ति-विचारामृतसंग्रह-धर्मसंग्रहवृत्ति-सबोधसत्तरी प्रकरणवृत्ति-जयसोमोपाध्यायजी कृत 'ईर्यापथिकी षट्त्रिंशिका विवरण', श्रावकप्रज्ञप्तिवृत्ति इत्यादि अनेक शास्त्रानुसार श्रीजिनदासगणिमहात्तराचार्यजी पूर्वधर, श्रीहरिभद्रसूरिजी, अभयदेवसूरिजी, हेमचंद्राचार्यजी, देवेंद्रसूरिजी, देवगुप्तसूरिजी, वगैरह सर्व गच्छोंके प्राचीन पूर्वाचार्योंने सामायिक विधिमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करके स्वाध्याय, ध्यानादि धर्मकार्य करनेका बतलाया है, यहीबात जिनाज्ञानुसारहै. पहिले सर्व गच्छोंमें इसीप्रकारसेही सामायिकविधि करतेथे, मगर पीछेसे कितनेही चैत्यवासियोंने अपनी मतिकल्पना मुजब प्रथम इरियावही पीछेकरेमिभंते स्थापन करनेका आग्रहचलायाथा, उनकीपरंपरामुजब अबीभी कितनेकमहाशय प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंतेका स्थापन करनेकेलिये अन्य कोईभी प्रकट अक्षरवाले शास्त्रप्रमाण न मिलनेसे महानिशीथ-दशवैकालिकादिकके अधूरे २ पाठोंसे संबंधके विरुद्ध अर्थ करके सामायिकमें प्रथमइरियावही पीछेकरेमिभंते ठहरातेहैं, परंतु उससे अनेक दोष आते हैं, उसका विचारभी कभी नहीं करते हैं. देखो - विसंवादी शास्त्रोंको व विसंवादी कथन करनेवालोंको शास्त्रोंमें मिथ्यात्वी कहेहैं, इसलिये जैन शास्त्रोंको व पूर्वाचार्योंको अविसंवादी कहनेमें आतेहैं, और आवश्यकचूर्णिआदि अनेकशास्त्रोंमेंसामायिकमें प्रथमकरेमिभंते पीछेइरियावहीके पाठमौजूद होनेपरभी महानिशीथ-दशवैकालिकादिसे प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहरानेसे सर्वज्ञ शास्त्रोंमें विसंवादरूप यह प्रथमदोषआताहै. और आवश्यक बडी टीका, महानिशीथका उद्धार, दशवैकालिक बडीटीका यह सर्वशास्त्र श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजने कियेहैं, इसलिये आवश्यक बडी टीकाके विरुद्ध महानिशीथसे प्रथम इरियावही ठहरानेसे इन महाराजके कथनमे विसंवाद आनेरूप यह दूसरा दोषआताहै. आवश्यकादिमें सामायिकके नामसे प्रथमकरेमिभंते पीछेइरियावही खुलासा लिखीहै, महानिशीथके तीसरेअध्ययनमें उपधानसंबंधी चैत्यवंदन स्वाध्यायादिकरनेकापाठहै, दशवैकालिककी टीकामें साधुके गमनागमन (जाने आने) संबंधी इरियावही करके स्वाध्यायादि करनेका पाठहै, इस प्रकार भिन्न २ अपेक्षा वाले शास्त्रोंके पाठोंके संबंध विरुद्ध होकर अधूरे २ पाठोंसे सामायिकमेंभी प्रथम इरियावही ठहरानेसे शास्त्रोंकी

मर्यादाका भंगहोनेरूप यह तीसरा दोषआताहै. और सर्व गीतार्थपूर्वाचार्योंने महानिशीथादि देखेथे, उन्होंके अर्थकोभी अच्छी तरहसे जानतेथे, तोभी सामायिकमें प्रथम इरियावही नहींलिखी, जिसपरभी अभी महानिशीथसे सामायिकमें प्रथम इरियावही ठहरानेसे उन सर्व गीतार्थ पूर्वाचार्योंको महानिशीथके अर्थको नहीं जाननेवाले अज्ञानी ठहरानेका यहचौथादोषआताहै. और सर्वपूर्वाचार्योंने सामायिकमें प्रथमकरेमिभंते पीछेइरियावही लिखीहै,उसको उत्थापनकरनेसे सर्व पूर्वाचार्योंकी आज्ञा लोपनेका यह पांचवा दोषभी आताहै. और आवश्यकचूर्णि आदिक सर्व शास्त्रोंके विरुद्ध होकर सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करनेसे आगम पंचांगीके उत्थापनरूप यह छठा दोषआताहै. और खास तपगच्छके श्रीदेवेंद्रसूरिजी,कुलमंडनसूरिजी वगैरहोंनेभी सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही खुलासा लिखी है, उसकेभी विरुद्ध होकर सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहरानेसे अपने पूर्वज बडील आचार्योंकीभी अवज्ञा करनेरूप यह सातवा दोषभी आताहै. इसप्रकार सामायिकमें प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही कहनेका निषेध करके प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहरानेसे अनेक दोष आते हैं, इसका विशेष खुलासा पूर्वक निर्णय शास्त्रोंके संपूर्ण संबंधवाले पाठोंकेसहित इसीग्रंथके दूसरेभागकी पीठिकाके पृष्ठ८७से११२ पृष्ठतक और इस ग्रंथमेंभी पृष्ठ ३१० से ३२९ पृष्ठ तक छपगयाहै. वहां सर्व शंकाओंका खुलासा समाधान करनेमें आया है, इसलिये आत्मार्थी भव्य जीवोंको जिनाज्ञानुसार, सर्व गच्छोंके पूर्वाचार्योंके वचनानुसार, प्राचीन अनेक शास्त्रानुसार, तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंकी भाव परंपरानुसार सामायिकमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करनाहीयोग्यहै, और प्रथमइरियावही करनेकी अभी थोडेकालकी गच्छकीरूढीके आग्रहको छोडनाही श्रेयरूप है। इस बातको विशेष तत्त्वज्ञ जन आपही विचार लेंगे.

जिन २ महाशयोंको इतना बडा संपूर्णग्रंथ वांचनेका अवकाश न होवे; उनमहाशयोंको इसग्रंथके प्रथमभागकी भूमिका और दूसरे भागकी पीठिकाको अवश्यही वांचनाचाहिये. मैंने भूमिका-पीठिकामें अन्य २बातें नहींलिखी,किंतु इसग्रंथकासार और सर्वशंकाओंका थोडेसेमें समाधानमात्रही लिखाहै इसलिये भूमिका-पीठिका वांचनेवालोंको ग्रंथकासार अच्छीतरहसे मालूम होसकेगा. इतिशुभम्.

इसग्रन्थके उत्तरार्द्धके तीसरे खंडकी—जाहिर खबर.

१-इसग्रंथके उत्तरार्द्धके तीसरेखंडमें आगमादि अनेकप्राचीन शास्त्रानुसार,व चंद्रगच्छ,वडगच्छ, खरतरगच्छ,तपगच्छ,अंचलगच्छ, पायचंदगच्छादि सर्वगच्छोंके पूर्वाचार्योंके घनायेग्रंथानुसार श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणक मान्यकरनेका अच्छी तरहसे सिद्ध करके वतलाया है. और शांतिविजयजीने 'जैनपत्र'में, विनयविजयजीने 'सुबोधिका'में, कांतिविजयजी-अमरविजयजीनें 'जैनसिद्धांत सामाचारी' में, श्रीआत्मारामजीने 'जैन तत्त्वादर्श'में, धर्मसागरजीनें 'कल्पकिरणावली' 'प्रवचन परीक्षा' वगैरहमें जो जो छ कल्याणक निषेध संबंधी शंकायें की हैं. और शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायको समझे बिनाही अधूरे२ पाठ लिखकर उनके खोटे२ अर्थ करके भोले जीवोंको उलटा मार्ग बतलानेकी कोशिश की है, उन सर्वबातोंका समाधान सहित निर्णय इसमें लिखनेमें आया है।

२-और श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजसे वस्तिवासी-सुविहित-खरतर विरुदकी शुरूयात हुयीहै,इसलिये श्रीनवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज खरतर गच्छमें हुए हैं, यह बात प्राचीन शास्त्रानुसार तथा तपगच्छके पूर्वाचार्योंके बनाये ग्रंथानुसार सिद्धकरके बतलायाहै। और कोई महाशय श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजसे संवत् १२०४में खरतरगच्छकी शुरूयातहोनेका कहतेहैं, सोभी सर्वथा असत्य है. क्योंकि-इन महाराजसे सं.१२०४में खरतरगच्छकी शुरूयात होनेका कोईभी कारण नहीं हुआ है. व्यर्थ झूठे आक्षेप करने बडी भूलहै, देखो-१२०४में तो खरतर गच्छकी तीसरी शाखा हुईहै.इस बातका अच्छीतरहसे खुलासा इसग्रंथमें करनेमें आयाहै.

३-और जैनशास्त्रोंकी यह आज्ञा है, कि-यदि अपनी गच्छ परंपरामें ३-४ पेढीके आगेसेही शिथिलाचार चला आता होवे, तो क्रिया उद्धार करनेवाले दूसरेगच्छके अन्यशुद्ध संयमीके पासमें क्रिया उद्धार करें. अर्थात्- उनके शिष्य होकरके शुद्ध संयम पालें, उससे पहिलेकी शिथिलाचारकी अशुद्ध परंपरा छुटकर, क्रिया उद्धार करवानेवाले गुरुकीशुद्धपरंपरा मानीजावे. देखो जैसे-श्रीआत्माराम जीने ढूंढियोंके झूठेमतको छोडकर तपगच्छमें दीक्षाली है. इसलिये यद्यपि पहिलेढूंढियेथे तोभी उनकीपरंपरा ढूंढियोंमेंनहीलिखी जावे; किंतु तपगच्छमेंही लिखीजावे. तथा कोई शिथिलाचारी यति अपने गुरु व गच्छको छोडकर अन्यगच्छवाले शुद्धसंयमीके पासमें क्रिया

उद्धारकरें(फिरसे दीक्षालेंवे)तो उनकी यतिपनेकी अशुद्धपरंपरा छु-टकर जिसगुरुके पासमें क्रिया उद्धार किया होगा, उन्हीं गुरुकीशु-द्ध परंपरा चलेगी ॥ इसी तरहसे श्रीवडगच्छके जगचंद्रसूरिजी म-हाराजने अपनेको व अपनी गच्छ परंपराको शिथिलाचारी अशुद्ध जानकर छोडदियाथा और श्रीचैत्रवालगच्छके शुद्ध परंपरावाले शुद्ध संयमी श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके पासमें क्रिया उद्धार कियाथा,अर्था-त्-उनके शिष्य होकर शुद्ध संयमी बने थे. और उसके बादमें बहुत तपस्या करनेसे 'तपा' विरुद मिलाथा, उस रोजसे इन महाराजकी समुदायवाले तपगच्छके कहलाये गये. इसलिये श्रीदेवेंद्रसूरिजीम-हाराजने और श्री क्षेमकार्त्तिसूरिजी महाराजने श्रीजगचंद्रसूरिजीम-हाराजकी पहिलेकी शिथिलाचारकी वडगच्छकी अशुद्ध परंपरा लि-खना छोडकर; इनमहाराजकी चैत्रवालगच्छकी शुद्ध परंपरा अपनी बनाई 'धर्मरत्न प्रकरण वृत्ति' में और 'श्रीबृहत्कल्प भाष्य वृत्ति' में लिखीहै. यही शुद्ध परंपरा लिखना जिनाज्ञानुसार है, मगर पहिलेकी वडगच्छकी अशुद्ध परंपरा लिखना जिनाज्ञानुसार नहींहै.यह बात अल्पज्ञभी अच्छी तरहसे समझसकताहै. जिसपरभी अभी वर्तमानि क तपगच्छके विद्वान् मुनिमंडल देवेंद्रसूरिजी वगैरह महाराजोंकी लिखी हुई जिनाज्ञानुसार चैत्रवालगच्छकी शुद्ध परंपराको छोड देते हैं.और जिनाज्ञाविरुद्ध शिथिलाचारी वडगच्छकी अशुद्ध परंपराको लिखते हैं. यह सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है. इन सर्व बातोंका विस्तार पूर्वक खुलासा इस ग्रन्थके उत्तरार्द्धमें लिखा गयाहै. सोभी छपकर तैयार होगयाहै, इस पूर्वार्द्धके प्रकट हुएबाद, थोडे समयसे उत्तरा-र्द्धभी प्रकट होगा, सो संपूर्ण तया वांचनेसे सर्व निर्णय हो जावेगा.

विद्वान् सर्व मुनिमंडलसे विनति.

श्रीमान्- विजयकमलसूरिजी, विजयधर्मसूरिजी, विजयनेमि-सूरिजी, बुद्धिसागरसूरिजी, विजयवीरसूरिजी, विजयनीतिसूरिजी विजयसिद्धिसूरिजी, आनंदसागरसूरिजी, उ०इन्द्रविजयजी, प्र० श्री कांतिविजयजी-मंगलविजयजी, पं० गुलाबविजयजी- धर्मविजयजी- केशरविजयजी-दानविजयजी-मणिविजयजी- अजितसागरजी, श्री हंसविजयजी-कपूरविजयजी- वल्लभविजयजी-कल्याणविजयजी-ल-ब्धिविजयजी-आनंदविजयजीआदि विद्वान्सर्व मुनिमंडलसेविनति.

आप यह तो जानतेहीहैं, कि-श्रीनिशीथचूर्णिमें वर्षाऋतुमेंही मु-

नियोंको आलोयणालेनेकाकहाहै, और अभी श्रावणादि महीने बढे. तब पांच महीनोंके दश पक्ष; १५० दिन वर्षाकालके होते हैं, उसमें आ- यंबिल, उपवास, नवकरवाली गुणने वगैरहसे जितने दिन धर्मकार्य होंगे; उतनेही दिन आलोयणाकी गिनतीमें आवेंगे,इसी तरहसे वर्षी और छ मासी तपके दिनोंमें व ब्रह्मचर्य पालने वगैरह कार्योंमेंभी अधि- क महीनेके ३० दिन गिनतीमें आते हैं ॥ इस हिसाबसे धर्मकार्यमें व कर्म बंधनके व्यवहारमें सूर्यके उदय अस्त (रात्रि दिनके) परिवर्तन- के हिसाबसे और अंग्रेजी, मुसलमानी, पारसी, बंगलाकी तारिखोंके हिसाबसेभी आषाढ चौमासीसे जब दो श्रावण होवें; तब भाद्रपद त- क, या जब दो भाद्रपद होवे तब दूसरेभाद्रपद तक ८० दिन होतेहैं, उसके ५०दिन कहतेहैं, और जब दो आसोज होवे तब कार्तिक तक- १००दिनहोतेहैं, उसकेभी ७०दिन कहतेहैं. यहबात संसार व्यवहार- के हिसाबसे, रात्रिदिनके जानेके (समयके प्रवाहके) हिसाबसे, धर्म शास्त्रोंके हिसाबसे, ज्योतिषपंचांगकेहिसाबसे,राज्यनीतिके हिसाब- से, और धर्म-कर्मके अनादि नियमके हिसाबसेभी सर्वथा विरुद्धहै. और अन्य दर्शनियोंके विद्वानोंके सामने जैनशासनको कलंक रूपहै. इसलिये मेहेरबानी करके बहुत समयकी गच्छ परंपराकी रूढीरूप प्रवाहके आग्रहको छोडकर जिनाज्ञाका विचार करके यह अनुचित रीवाजको वगर विलंबसे सुधारनेकी कौशिशकरें. इसके संबंधमें स- र्व बातोंका खुलासापूर्वक समाधान इस ग्रंथकी भूमिकाके ४७ प्रक- रणोंमें व सुबोधिकादिककी २८ भूलोंवाले लेखमें और इसग्रंथमें अ- च्छीतरहसे लिखनेमें आयाहै, उसको पूरेपूरा अवश्यवांचे और योग्य लगे उतना सुधाराकरें,पक्षपात झूठाआग्रह शास्त्रविरुद्ध बहुतलोगोंकी समुदाय व गुरुगच्छकी परंपरा हितकारीनहींहै,किंतु जिनाज्ञाही हित कारीहै. परोपदेशकेलिये बहुत लोगबडे कुशल होतेहैं, मगर वैसाही कार्य करनेवाले आत्मार्थीबहुतहीअल्पहोतेहैं, यहभी आपजानतेहीहैं.

और सर्वज्ञ शासनमें कर्मबंधन व धर्मकार्यसंबंधी समय २ का व श्वासोश्वासका हिसाब किया जाताहै, उसमें ८० दिनके ५० दिन और १०० दिनके ७० दिन कहनेवाले, यदि कसाई व व्यभिचारी वगैरह पापीप्राणियोंके कर्मबंधन और साधु मुनिमहाराजोंके व ब्रह्म- चारी वगैरह धर्मी प्राणियोंके कर्मक्षयकरने संबंधीभी ८० दिनके ५० दिन, व १००दिनके ७०दिन कहेंगे, तबतो-सर्वज्ञ भगवान्‌के प्रवचन- की व धर्म-कर्मकी अनादिमर्यादा भंग करनेके दोषी ठहरेंगे, अथवा

८०दिनके व १००दिनके धर्म-कर्म समय२ के श्वासोश्वासके हिसाब से सर्वज्ञ भगवान्‌के प्रवचनानुसार अनादिमर्यादा मुजब मान्यकरेंगे, तो-८०दिनके ५०दिन,व १०० दिनके ७० दिन कहनेकाआग्रह झूठाही ठहरजावेगा. यहभी न्यायबुद्धिसे विचारने योग्यहै, विशेष क्या लिखें.

देव द्रव्य निर्णयः ।

१-वर्तमानिक देवद्रव्यकी चर्चा संबंधी अर्पण बुद्धिसे भगवान्‌को चढाई हुई वस्तु देव द्रव्यमें गिनी जातीहै, यह बात सर्वमान्य है, इसी तरहसे पूजा और आरतीकी बोलीभी अर्पण बुद्धिसे पहिलेसेही संघ तरफसे भगवान्‌को चढाई हुई वस्तु हैं, अर्थात्-देवद्रव्यमें जानेका नियम होचुका है, उनको अन्य मार्गमें ले जानेसे बिनाकारण संघकी आज्ञा भंगका व भगवान्‌को अर्पण कीहुई वस्तु रूपांतरसे पीछी लेनेका दोष आताहै, इसलिये ऐसा करना योग्य नहीं है।

२-भगवान्‌की पूजा आरतिकी बोली कलेश निवारण करनेके लिये नहींहै, किंतु शुद्ध भक्तिके लिये है, देखो-अपने अनुभवसे यही मालूम होता है, कि-बहुत भाविक जन आज अमुक पर्व दिवस है, मेरी शक्तिके अनुसार आज १०।२० या १००।२०० रुपये भगवान्‌की भक्तिके लिये देवद्रव्यमें जावें तोभी कोई हरज नहीं है, मगर आज तो भगवान्‌की पहिली पूजा-आरति मैं करूं, तो मेरे कल्याण-मंगल होवे,वर्षभर भगवान्‌की भक्तिमें जावें,इसी निमित्तसे मेरा द्रव्य भगवानकी भक्तिमें लगेगा.तो मेरी कमाईभी सफल होवेगी, और सुकृतकीकमाईवालेभाग्यशालीको आज भगवान्‌की भक्तिका पहिलालाभ मिलेगाऐसाकहनेमेंभीआताहै. इत्यादि शुभभावसेबोलीबोलतेहैं, इसलिये कलेश निवारणकेलिये बोली बोलनेका ठहराना योग्य नहीं है.

औरभी देखो-भगवान्‌केमंदिर बनवाने व प्रतिमा भरवानेमें महान् लाभ कहा है, यह कार्य भक्तिकेलिये धर्म बुद्धिसे करनेकी शास्त्राज्ञा है. तोभी कितनेक बेसमझलोग नामकेलिये या अभिमानसे वा देखा देखीके विरोधभावसे करतेहैं,सो यह अनुचितहै. इसी तरहसे बोली बोलनेका रीवाजभी भगवान्‌की भक्तिके लिये महान् लाभका हेतु है, तोभी कितनेक बेसमझलोग नामकेलिये या अभिमानसे वा देखादेखीके विरोध भावसेबोलतेहैं. उनको देखकर बोलीबोलनेके रीवाजको भक्ति राग छोडकर कलेश निवारणका हेतु ठहराना योग्यनहींहै.

तथा देवद्रव्यकी तरह साधारण द्रव्यकीभी बहुतही आवश्यकताहै, उसमें बे दरकारीका दोष मुनिमंडल व आगेवानोंपरहै. औ-

रभी देव द्रव्य संबंधी सर्व शंकाओंका समाधान व साधारण द्रव्य-की वृद्धिके लिये उपायवगैरह बहुतबातोंके खुलासे समाधान 'देव-द्रव्य निर्णय' नामा पुस्तकमें लिखनेमें आवेंगे.

निवेदन और उपकार.

इसग्रंथकी कोईबात समझमें न आवे, या वांचते २ कोई शंका होवे, तो इस ग्रंथके कर्त्ताको लिखकर खुलासा मंगवानेका सबको हक है, ग्रंथ संबंधी सब तरहका जबाबदार लेखक है.

इस ग्रंथमें अनुमान ३०० शास्त्रोंके प्रमाण बतलाये गयेहैं, इस ग्रंथके बनवाने संबंधी शास्त्रोंके संग्रह करने वगैरहमें, श्रीमान् जिनयशसूरिजीमहाराज, श्रीमान् शिवजीरामजीमहाराज, श्रीमान् जिन चारित्रसूरिजीमहाराज, श्रीमान् कृपाचंद्रसूरिजीमहाराज, पन्यासजी श्रीमान् केशरमुनिजीमहाराज, पं० श्रीमान् गुमानमुनिजीमहाराज और कलकत्तानिवासी उ.श्रीमान् जयचंद्रजीगणि व रायबहादुर बद्रीदास जीजौहरीवगैरहोंने जो जो मदतदीहै, उनका मैं उपकार मानता हूं.

संवत् १९७८ वैशाखशुदी ३. हस्ताक्षर मुनि-मणिसागर.

विनाकिंमतभेटसे पुस्तक मिलनेके नाम व स्थान.

यहग्रन्थ एकहजार पृष्ठकाबडाहोनेसे दो विभागमें प्रकटकियाहै.

१ बृहत्पर्युषणा निर्णय पूर्वार्द्ध, प्रथम-दूसरा खंड.
२ बृहत्पर्युषणा निर्णय उत्तरार्द्ध, तीसरा खंड.
३ लघुपर्युषणा निर्णयका प्रथम अंक.
४ प्रश्नोत्तर विचार. ५-६-७ प्रश्नोत्तर मंजरीके १-२-३ भाग.
८-९ हर्षहृदय दर्पण १-२ भाग. १० आत्मभ्रमोच्छेदन भानुः.

यह ग्रन्थभी छपनेवाले हैं.

१ देवद्रव्यनिर्णय. २ न्यायरत्न समीक्षा. ३ प्रवचनपरीक्षा निर्णय.

---

१ श्रीमद् अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला कार्यालय, ठे० श्रीजैनश्वेतांबर मित्रमंडल केनिंगस्ट्रीट नं. २१, मु०-कलकत्ता.

२ श्रीमद् अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला कार्यालय, ठे० बडा उपाश्रय देश-मारवाड, मु०-बीकानेर.

३ श्रीजिनदत्तसूरिजी ज्ञानभंडार, ठे० गोपीपुरा-शीतलवाडी देश-गुजरात, मु०-सुरत.

४ जौहरी माहूमलजी धनपतसिंहजी भणशाली, सुंदरबील्डिंग ठे० फतहपुरी, मु०- दिल्ली.

॥ ॐ ॥

श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः



प्रथम भागकी भूमिका

पहिले इसको अवश्यही पढिये.



मांगलिक्यके करनेवाले श्रीस्थंभनपार्श्वनाथ जिनेश्वर भगवान् को नमस्कार करके, श्रीजिनाज्ञाके अभिलाषी सर्व सज्जन महाशयोंको निवेदन किया जाता है, कि-जन्म-मरण-रोग-शोक--आधि--व्याधि संयोग--वियोगादि--उपाधियुक्त दुष्तर संसार समुद्रके परिभ्रमणका दुःख निवारण करनेके लिये, आत्महितैषी पुरुषोंको जिनाज्ञानुसार शांतिपूर्वक धर्मकार्य करने चाहिये। जिसमें वर्तमानिक द्रव्य गच्छ परंपरा बहुत समुदायकी देखादेखीकी रूढीको अहितकारी जानकर त्याग करनाचाहिये। और सुधारेके जमानेमें गच्छांतरोंके भेदोंकी भिन्न भिन्न प्रवृत्ति देखकर शंकाशील होकर धर्मकार्योंमें शिथिलता करनाभी योग्य नहीं है, किंतु 'मेरा सो सच्चा' का आग्रह छोडकर मध्यस्थ बुद्धिसे गुणग्राही होकरके सत्यकी परीक्षाकरके उसको अंगीकार करना, यही मनुष्य जन्मकी सफलताका कारण है।

यद्यपि खंडनमंडनके विवादमें सत्यासत्यका विचार छोडकर अपनापक्ष स्थापन करनेके लिये शुष्कवाद या वितंडावाद करनेवाले आजकल बहुत लोग देखे जाते हैं. मगर दूसरेकी सत्यबात अंगीकार करके अपना असत्य आग्रहको छोडनेवाले बहुतही थोडे देखनेमें आते हैं. जब दूसरेके पक्षका खंडन करनेके ईरादेसे उद्यम करनेमें आता है, तब उसपक्षवालोंकी अनेक शास्त्रोंके प्रमाणसहित युक्तिपूर्वक सत्यबातकोभी छोडकर भोले जीवोंको अपना पक्ष सत्य दिखलानेके लिये शास्त्रोंके आगे पीछेके संबंध वाले सब पाठोंको छुपाकरके थोडेसे अधूरे २ पाठ लिखते हैं, तथा शास्त्रकारोंके अभिप्राय विरुद्ध उनके अर्थ करते हैं, या शास्त्रीय बातको झूठी ठहरानेकेलिये कुयुक्तियेंभी लगानेमें उद्यम किया जाता है. अथवा विषय संबंध

छोडकर विषयांतर लेकर निष्प्रयोजन व्यक्तिगत आक्षेप करनें लग जातेहैं. और अपनी या अपनें पक्षकारोंकी विनाप्रसंगही बडाई करनें लगतेहैं। मगर शास्त्रोंमेंतो कहाहै. कि-आत्मप्रदेशगत मिथ्यात्वसेभी प्ररूपणागत मिथ्यात्व अधिक दोषवाला होनेसे अनेक भवभ्रमण करानेवाला होता है।

और अनादिकालसे ११ अंगादिशास्त्रोंको देखकर अनंतजीव संसार परिभ्रमणके दुखःसे मुक्त होगये हैं, और अनंतजीव संसारपरिभ्रमणके दुःखको बढानेवालेभी होगये हैं। इसका आशय यही है कि, अतीव गहनाशयवाले, अपेक्षा गर्भित शास्त्रकारोंके अभिप्रायको समझकर वर्ताव करनेवाले तो मुक्तिगामी होते हैं, और शास्त्रकारोंके अभिप्राय विरुद्ध होकर शब्दमात्रके आग्रहमें पडकर विवादकरनेवाले संसारगामी होते हैं। मगर जो आत्मार्थी होते हैं, वो तो शब्द मात्रके विवादको छोडकर तात्पर्यार्थ तरफ दृष्टि करते हैं, और जो आग्रही होते हैं वो तात्पर्यार्थको छोडकर शब्दमात्रके विवादको विशेष बढाते हैं। इसीही कारणसे रागद्वेषादि भाव शत्रुओंको हटानेवाला श्रीवीतराग सर्वज्ञ भगवान्का कथन किया हुआ अविसंवादी शांतिप्रिय श्रीजिनशासनमेंभी अभी विसंवादरूपी विरोध भावको स्थान मिलगया है।

और पहिले तो सर्व तीर्थंकर महाराजोंके जितने गणधर होतेथे उतनेही गच्छ [साधु समुदायकी ओलखान] होतेथे और पीछे भी प्रभावकाचार्योंकी बहुत समुदाय होनेसे कुल-गण-शाखा वगैरह होतेथे, मगर सबकी प्ररूपणा और क्रिया एक समान होनेसे संपशांतिसे मिलते हुए आत्मकल्याण करतेथे, उस समय विरोधी प्ररूपणाके अभावसे किसीकोभी कोई तरहकी शंका उत्पन्न होनेका कारण या अपने गच्छके आग्रहका कारण नहींथा; मगर श्रीवीरप्रभुके निर्वाण बाद पडताकाल होनेसे कितनेक शिथिलाचारी चैत्यवासी होगये, उन्हींसे गच्छोंका आग्रह और भिन्नभिन्न प्ररूपणा विशेष होने लगी तबसेही शास्त्रोक्त जिनपूजा विधिमें कुछ अविधिभी होगई, और जैन पंचांगके विच्छेद होनेपर जैनसमाज लौकिक टिप्पणा मानने लगा, उसमें श्रावणादिभी महीने बढतेहैं। उस मुजब वर्तावशुरू किया, तबसे महामांगल्यकारी शांतिमय अतीवउत्तम पर्युषणा जैसे पर्व आराधनकरनेंमेंभी भेद पडगया और शासन नायक श्रीवर्द्धमानस्वामीके छ कल्याणक नहीं माननें वगैरह कितनीही बातोंका विवाद

उपस्थित होगया. उसके विषयमें आगे लिखनेमें आवेगा, मगर इस जगह तो हम केवल पर्युषणा संबंधी थोडासा लिखतेहैं.

जैन पंचांगके अनुसार जब वर्ताव करनेमें आताथा, तब पर्युषणा करनेसंबंधी " अभिवड्ढियंमि वीसा, इयरेसु सवीसई मासो" इत्यादि निशीथ भाष्य,चूर्णि, बृहत्कल्प भाष्य,चूर्णि,वृत्ति, पर्युषणाकल्प निर्युक्ति,चूर्णि,वृत्ति वगैरह प्राचीन शास्त्रोंमें खुलासा लिखा है, कि, आषाढ चौमासीसे वर्षाऋतुमें जीवाकुलभूमि होनेसें जीवदयाके लिये मुनियोंको विहार करनेका निषेध और वर्षाकालमें एक स्थानमें ठहरना, उसका नाम पर्युषणाहै। इसलिये जब अधिक महीना होवे तब उसको तेरह [१३] महीनोंका अभिवर्द्धित वर्ष कहतेहैं, उस वर्षमें आषाढ चौमासीसे २० वें दिन प्रसिद्ध पर्युषणा करना। और जिस वर्षमें अधिक महीना न होवे, तब उसको १२महीनोंका चंद्रवर्ष कहतेहैं, उस वर्षमें आषाढ चौमासीसे ५० वें दिन प्रसिद्धपर्युषणा करना [वर्षाकालमें रहनेका निश्चय कहना] उसीमेंही उसीदिन वार्षिक कार्य और उसका उच्छव किया जाता है, यह अनादि नियमहै.इसलिये निशीथभाष्य,चूर्णि,पर्युषणा कल्पनिर्युक्ति,चूर्णि, जीवाभिगमसूत्रवृत्ति, धर्मरत्नप्रकरणवृत्ति, कल्पसूत्रमूल और उसकी सर्व टीकाओंमें संवच्छरी शब्दकोभी पर्युषणा शब्दसे व्याख्यान कियाहै,और प्रसिद्ध पर्युषणाकरनेके दिनसे भिन्न [अलग] वार्षिक कार्योंका दिन कोईभी नहीं है, किंतु एकही है, इसीको पर्युषणा पर्व कहो, संवच्छरीपर्व कहो, सांवत्सरिकपर्व कहो या वार्षिकपर्व कहो, सबका तात्पर्य एकही है। और कारणवश " अंतरा वि य से कप्पइ, नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणा वित्तए " इत्यादि कल्पसूत्र वगैरह शास्त्र पाठोंके प्रमाणसे आषाढ चौमासीसे ५०वें दिन पहिले तो पर्युषणा करना कल्पताहै, मगर ५०वें दिनकी रात्रिकोभी उल्लंघन करके आगे पर्युषणा करना नहीं कल्पताहै और५०वें दिनतक पर्युषणाकरनेको ग्रामनगरादि योग्यक्षेत्र न मिलसके तो, जंगलमेंभी वृक्ष नीचेभी अवश्यही पर्युषणाकरनाकहाहै. और अभिवर्द्धितवर्षमें२०दिने तथा चंद्रवर्षमें५०दिने पर्युषणा न करे और विहार करे तो "छक्काय जीव विराहणा"इत्यादि स्थानांगसूत्रवृत्तिवगैरह शास्त्रपाठोंसे छकायके जीवोंकी विराधना करनेवाला. आत्मघाती, संयम और जिनाज्ञाको विराधन करनेवाला कहा है। यह नियम जैन पंचांगानुसार पौष और आषाढ बढताथा तब चलताथा, मगर जबसे जैन पंचांग

विच्छेद हुआ, तबसे लौकिक टीप्पणा मुजब मास-पक्ष-तिथी-वार-नक्षत्र-मुहूर्त्तादि व्यवहार जैन समाजमें शुरू हुआ. उसमें श्रावण भाद्रपदादि मासभी बढने लगे तब जैनसंघने श्रीवीर निर्वाणसे९९३ वर्षे अधिक महीने वाला वर्षमें २०दिने पर्युषणापर्व करनेकी मर्यादा बंध करी और अधिक महीना हो,चाहे न हो, तो भी ५०वें दिन पर्युषणापर्वमें वार्षिक कार्य करनेका नियम रक्खाहै. सो "जैनटिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौपो युगांते चाऽऽपाढ एव वर्धते नान्ये मासास्तट्टिप्पणकं तु अधुना सम्यग् न ज्ञायते ततः पंचाशतैव दिनैः पर्युषणा युक्तेति वृद्धाः"यह पाठ कल्पसूत्रकी सुबोधिकादिसर्व टीकाओंमें प्रसिद्धही है। उसके अनुसार श्रावणबढेतो दूसरेश्रावणमें और भाद्रपदबढेतो प्रथम भाद्रपदमें ५०दिने पर्युषणापर्वका आराधन करना जिनाज्ञा है। और पहिले मास वृद्धिके अभावसे५०वें दिन पर्युषणा करतेथे, तब पर्युषणाकेबाद कार्तिक तक ७० दिन ठहरतेथे,मगर जब मास वृद्धि होनेपर २० दिने पर्युषणा करतेथे,तब तो पर्युषणाके पिछाडी कार्तिक तक १०० दिन ठहरतेथे,यहबात निशीथभाष्य-चूर्णि-पर्युषणाकल्पचूर्णि,वृहत्कल्पचूर्णि,वृत्ति-जीवानुशासनवृत्ति गच्छाचारपयन्नवृत्ति,स्थानांगसूत्रवृत्ति, वगैरह अनेक शास्त्र पाठोंसे सिद्ध होतीहै। और वर्तमानमें श्रावण, भाद्रपद तथा आश्विन बढनेपरभी५०दिने पर्युषणापर्व करनेसे पिछाडी कार्त्तिक तक १००दिन ठहरतेहैं। यह भी कल्पसूत्रकी सर्व टीकाओंके अनुसार होनेसे जिनाज्ञानुसारही है, इसलिये इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं है।

इस ऊपरके शास्त्रीय लेखपर दीर्घ दृष्टिसे निष्पक्ष होकर मध्यस्थ बुद्धिसे विचार किया जावे तो स्पष्ट मालूम हो जावेगा,कि-पर्युषणा पर्व करनेमें जैन टिप्पणानुसार या लौकिक टिप्पणानुसार अधिक मास अथवा कोईभी मास, या कोईभी दिन कभी बाधक नहीं होसकताहै. क्योंकि पर्युषणापर्वकरनेमें५०दिनोंकी गिनतीका व्यवहारिक शास्त्रीय नियम होनेसे पर्युषणा पर्व दिन प्रतिबद्ध ठहरते हैं. किंतु मास प्रतिबद्ध कभी नहीं ठहरसकते। और ५० दिनोंकी गिनतीमें अधिक महीनेके३० दिवस तो क्या मगर एक दिवस मात्रभी गिनतीमें कभी नहीं छुट सकता। जिसपरभी पर्युषणा पर्व-दो श्रावण होनेपरभी भाद्रपद मास प्रतिबद्ध ठहराना १. अधिक महीनेके ३० दिनोंको बीचमेंसे छोड देना २. बीश दिनोंसे पर्युषणा पर्व करनेकी बातको सर्वथा उडा देना ३. श्रावण भाद्रपद या आश्विन बढनेसे १००

दिन होनेपरभी उसको ७० दिन कहनेका आग्रह करना ४. सो यह सब बातें सर्वथा शास्त्रकारोंके विरुद्ध हैं.

अब पर्युषणा पर्व करने संबंधी ५० दिनोंकी गिनती करनेमें अधिक महीनेके ३० दिनोंको गिनतीमेंसे छोड देनेका आग्रह करने के लिये कितनेक लोग शास्त्रविरुद्ध होकर कितनीक कुयुक्तियें करते हैं, उसके विषयमें थोडासा लिखते हैं।

१— कल्पसूत्रादिमें आषाढ चौमासीसे दिनोंकी गिनतीसे ५० वें दिन अवश्यही पर्युषणापर्व (वार्षिक कार्य) करने कहेहैं, उसमें अधिक महीनेका १ दिनमात्रभी गिनतीमें नहीं छुट सकता.और ५० वें दिनकी रात्रिकोभी उल्लंघन करनानहीं कल्पताहै। जिसपरभी वर्तमानिक कितनेक लोग श्रावण भाद्रपद बढनेपर ८० दिने पर्युषणापर्व करतेहैं, सो शास्त्रविरुद्धहै, इसका विशेष खुलासा इसीही "बृहत्पर्युषणा निर्णय" ग्रंथकी आदिसे पृष्ट २७ तक देखो.

२—अधिकमहीनेके ३० दिन जैनशास्त्रोंमें गिनतीमें नहीं लिये, ऐसा कहते हैं सो भी शास्त्र विरुद्ध है, अधिक महीनेके ३० दिनोंको दिनोंमें, पक्षोंमें, मासोंमें, वर्षोंमें और युगकी गिनतीमें खुलासापूर्वक गिनेहैं,इसका विशेष खुलासा देखो इसी ग्रंथके पृष्ठ२८ से४८तक

३— अधिकमहीना काल चूलारूप है, सो गिनतीमें नहीं लेना ऐसा कहते हैं सो भी शास्त्र विरुद्ध है, निशीथचूर्णि, दशवैकालिक बृहद्वृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें अधिक महीनेको काल चूलाकी शिखर रूप श्रेष्ठ, (उत्तम) ओपमादी है, और उसके ३० दिनोंको गिनतीमेंभीलिये हैं. इसकाभी विशेष खुलासा देखो इसी ग्रंथके पृष्ठ ४९ से ६५ तक। तथा पृष्ठ ७५ से ९१ तक.

४— पर्युषणाकल्प चूर्णि तथा निशीथ चूर्णिके पाठसे दो श्रावण होवे तो भी भाद्रपदमें पर्युषणापर्वकरनेका ठहरातेहैं, सोभी शास्त्रविरुद्धहै,दोनों चूर्णिके पाठोंमें अधिकमहीना पौष अथवा आषाढ होवें तब उसके३०दिनोंको गिनतीमें लेकर आषाढ चौमासीसे२० वें दिन श्रावणमें पर्युषणा पर्व करना लिखाहै, और अधिक महीना न होवे तब ५० वें दिन भाद्रपदमें पर्युषणा करना लिखा है। और ५० वे दिनको उल्लंघन करनेवालोंको प्रायश्चित्त कहा है, इसलिये दोश्रावण होनेपरभी ८० दिने भाद्रपदमें पर्युषणा पर्व करना योग्य नहीं है। और अधिकमासके ३० दिन गिनतीमें छोड देनाभी शास्त्र विरु-

क्ष है. इसकाभी विशेष खुलासा देखो दोनों चूर्णिके विस्तार पूर्वक पाठों सहित इसीग्रंथके पृष्ठ ९१ से १०६ तक.

५—जैन टिप्पणामें अधिकमहीना होताथा तबभी २० वें दिन श्रावण शुदि पंचमीको पर्युषणा पर्वमें वार्षिक कार्य होतेथे, इसलिये २० वें दिनकी पर्युषणामें वार्षिक कार्य कभी नहीं हो सकते, ऐसा कहनाभी सर्वथा शास्त्र विरुद्धहै, इसकाभी विशेष खुलासा देखो इसीग्रंथके पृष्ठ १०७ से ११७ तक,

६– श्रावण भाद्रपद या आश्विन बढे तो भी ५० वें दिन पर्युषणापर्व करनेसे शेष कार्त्तिक मास तक १०० दिन होते हैं, जिसपरभी ७० दिन रहनेका आग्रह करते हैं, सो भी शास्त्र विरुद्ध है, ७० दिन रहनेका तो मास वृद्धिके अभाव संबंधीहै,मगर मास वृद्धि होवे तबतो १०० दिन रहना शास्त्रानुसार हैं। इसकाभी विशेष खुलासा इस ग्रंथमें पृष्ठ ११७ से १२८ तक, तथा १७४ से १८५ तक देखो.

७– अधिकमहीना होवे उसवर्षके १३ महीने व एक चौमासेके ५ महीने होते हैं. उतनेही महीनोंके कर्मबंधनभी होते हैं, तोभी उसमें १२ महीनोंके व ४ महीनोंके क्षामणेकरने कहतेहैं. सोभी शास्त्र विरुद्ध है. अधिक महीना होवे तब १३ महीनोंके व ५ महीनोंके क्षामणे करने शास्त्रानुसार हैं; इसकाभी विशेष खुलासा पृष्ठ १३३ से १३६ तक. और पृष्ठ ३६२ से ३७८ तक देखो.

८– अधिक महीनेमें सूर्यचार नहीं होता, ऐसा कहनाभी शास्त्रविरुद्धहै, छ छ महीने१८३ वें दिन, सूर्य दक्षिणायनसे उत्तरायनमें और उत्तरायनसे दक्षिणायनमें हमेशा होता रहता है, उसमें अधिक महीनेके ३० दिनोंमेंभी जैनशास्त्र मुजब या लौकिक टिप्पणामुजबभी सूर्यचार होताहै. इसकाभी विशेष खुलासा देखो इसी ग्रंथके पृष्ठ १३७ से १३९ तक.

९–अधिक महीनेके ३० दिनोंमें देवपूजा, मुनिदान, प्रतिक्रमण वगैरह धर्मकार्य करने, मगर उसके ३० दिनोंको गिनतीमें नही लेनेका कहना,सो भी प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्धहै. जितने रोज देवपूजादि धर्मकार्य किये जावेंगे, उतने दिन अवश्यही गिनतीमें लिये जावेंगे, और जैसे मुनिदानादि कार्य दिन प्रतिबद्धहैं, वैसेही पर्युषणपर्वभी५०दिन प्रतिबद्धहैं. इसकाभी विशेष खुलासा पृष्ठ १४२ से १४३ तक देखो

१० अधिक महिनेमें विवाह आदि शुभकार्य नहीं होते, उसमु-

जब पर्युषणा पर्वभी नहीं हो सकते. ऐसा कहनाभी प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्धहै,मुहूर्त्तवाले विवाहादि तो मलमास, अधिकमास, क्षयमास, १३ महिनोंके सिंहस्थ, अधिकतिथि,क्षयतिथि,गुरुशुक्रका अस्त और हरि शयनका चौमासा वगैरह कितनेही, तिथि-वार-नक्षत्र-मास वगैरह योगोंमें नहीं किये जाते,मगर बिना मुहूर्त्तके धर्मकार्य करनेमें तो किसी समयका निषेध नहीं हो सकता.इसी तरहसे पर्युषणा पर्वभी अधिकमासमें,तथा १३महीनोंके सिंहस्थमें,और चौमासेमेंही करनेमें आते हैं । इसमें अधिकमहीना या कोईभी योग बाधक नहीं हो सकता.है. इसकाभी विशेष खुलासा पृष्ठ १९२ से २०४ तक देखो.

११- अधिकमहीनेको वनस्पतिभी अंगीकार नहीं करती,ऐसा कहनाभी शास्त्र विरुद्ध है, अधिक महीनेके ३० दिन तो क्या परंतु १ दिन मात्रभी वनस्पति कभी नहीं छोड सकती, किंतु हरेक समय प्रत्येक दिवसको अंगीकार करतीहै. इसकाभी विशेष खुलासा इसी ही ग्रंथके २०५ से २१० तक देखो

इत्यादि मुख्य २ बातों संबंधी शास्त्रीय प्रमाण और युक्तिपूर्वक इस प्रथमभागमें अच्छीतरहसे खुलासापूर्वक लिखनेमें आया है.

और इस ग्रंथको पक्षपात रहित होकर संपूर्ण पढनेवाले सज्जनोंको सत्यासत्यकी परीक्षा स्वयं होसकेगी,इसलिये यहांपर विशेष लिखनेकी कोई अवश्यकता नहीं है ।

इस ग्रंथ कारका उद्देश क्या है ?

इस ग्रंथकारका मुख्य उद्देश यहीहै,कि-सबगच्छवाले आपसमें हिलमिलकर संपपूर्वक सुखशांतिसे धर्मकार्य हमेशांकरें,मगर पर्युषणा जैसे अतीवउत्तम धार्मिकशांतिके दिनोंमें अधिक महीनेके३०दिनोंको धर्मकार्योंमें गिनतीमेंसे छोड देनेके लिये तपगच्छके कितनेक मुनिमहाराज जो खंडन मंडनका विषय व्याख्यानमें चलाते हैं, सो सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है,और समयकेभी प्रतिकूल होनेसे-कर्मबंधन, कुसंप व शासनहिलना कराने वालाहै. (इसीबातका विषेश निर्णय इसी ग्रंथमें अच्छी तरहसे लिखा गया है) उसको (इस ग्रंथके संपूर्ण वांचे बाद) अवश्यही बंध करना योग्य है.

पक्षपात रहित ग्रंथकी रचना.

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष. कपिलादिषु। युक्तिमद्वचनं यस्य,तस्य कार्यः परिग्रहः ॥१॥" इत्यादि श्रीहरिभद्रसूरिजी जैसे महापुरुषोंके न्यायानुसार पक्षपात रहित होकर आगम पंचांगी सम्मत युक्तिपू-

वैक खरतरगच्छ, तपगच्छ, अंचलगच्छादि सर्व गच्छवालोंके शास्त्र वाँ क्योंका संग्रह इसग्रंथमें करनेमें आया है। मगर अमुक गच्छवालेके अमुक आचार्यके वाक्य हमको मंजूर नहीं, ऐसा एकांत आग्रह किसी जगहभी करनेमें नहीं आया. और शास्त्रविरुद्ध व युक्ति बाधित वाक्य तो किसीगच्छवालेकाभी मान्य करना योग्य नहीं. यह बात सर्व जन सम्मतहीहै, वोही न्याय इस ग्रंथमें रखखा गया है. इसलिये पाठकगणकोभी किसी गच्छ समुदायका पक्षपात न रखकर अवश्यही इस ग्रंथको संपूर्ण अवलोकन करके सार निकालना चाहिये.

इस ग्रंथका लेखक मैं खास संसारीपनेमें तपगच्छका वीसापोरवाल श्रावकथा, मगर उपाध्यायजी श्रीसुमतिसागरजी महाराजके पास श्रीसिद्धक्षेत्र (पालीताणा) में विक्रम संवत् १९६० वैशाख शुदी २ को खरतरगच्छमें दीक्षा अंगीकार की, तो भी दोनों गच्छोंके पूर्वाचार्योंपर तथा वर्तमानिक मुनिमहाराजोंपर पूज्यभाव था, और है भी। मगर जिस२अंशमें शास्त्र विरुद्ध होकर परंपराके वहानें जिस२बातोंका झूठाही आग्रह किया गयाहै, उन२बातोंकी आलोचना करके शास्त्रानुसार सत्य बातें जनसमाजमें प्रकट करनी, यह मैंरा खास कर्तव्यही समझकर मैने इस ग्रंथमें इतना लिखाहै। इसमें किसीको पक्षपात न समजना चाहिये. और किसीको नाराज होनेकाभी कोई कारण नही हैं। वर्तमानिक समयके अनुसार परंपराकी अंधरूढीको त्यागना और सत्यको ग्रहण करना, सब सज्जनोंको प्रिय है। और समय बदलता जाता है, तथा संपसे शासनोन्नतिके कार्य करनेकी बहुत जरुरत है, इसलिये कुसंप वढानेवाला पर्युषणाके व्याख्यानमें आपसका खंडन मंडन चलाना योग्य नहीं है. विशेष दूसरे, तीसरे और चौथे भागमें अनुक्रमसे लिखनेमें आवेगा।

क्षमा याचना तथा अपनी भूल स्वीकार.

इसग्रंथकी रचना करते समय मेरी अल्पवय व अल्प अभ्यास होनेसे, इसग्रंथमें-लेखक दोष, भाषादोष, दृष्टिदोष, पुनरुक्ति दोष, प्रेसदोष व शास्त्रीय पाठोंकी विशेष अशुद्धताके दोषोंकी पाठक गण अवश्यही क्षमा करेंगे, तथा हंसकी तरह दोष त्यागकर सत्य २ सार ग्रहण करेंगे, और सुधारकर वांचेगे; दूसरी आवृत्तिमें इन सर्व दोषोंका संशोधन अच्छी तरहसे करनेमें आवेगा.

और सुबोधिका, दीपिका तथा किरणावली आदिकमें शास्त्रविरुद्ध जो जो बातें लिखी हैं, उन्हीं सर्व बातोंका निर्णय इस ग्रंथमे लिखा

गयाहै. उसको समझकर उनके पक्षके अनुयायी विद्वान् पुरुषोंको उनकी सब भूलोंको क्रमशः अवश्यही सुधारना योग्य है, तथा इस ग्रंथमेंभी जो कोई बात शास्त्र विरुद्ध देखनेमें आवे, तो जरूर मेरेको लिख भेजना. लिखने वालेका उपकार मानकर अपनी भूलको अवश्यही स्वीकार करूंगा, और दूसरी आवृत्तिमें उसको सुधार लूंगा.

यह ग्रंथ विलंबसे प्रकट होनेका कारण ।

इस ग्रंथकी रचनाका कारण ग्रंथकी आदिमेंही लिखाहै, तथा सुबोधिका, किरणावलीआदिककी खंडनमंडनसंबंधी भूलोंका कारण तो प्रकटही है। और यह ग्रंथ छपनेपर शीघ्रही प्रकट होने वालाथा. मगर कितनेही महाशयोंका कहनाथा कि-यदि मुनिमंडलकी सभामें, विद्वानोंकी समक्ष, इस विषयका शास्त्रार्थसे निर्णय हो जावे, तो बहुत ही अच्छा होवे, और तीन वर्ष पहिले दो भाद्रपद होनेसे इस विवाद के निर्णय करनेकी चर्चाभी खूब जोरशोरसे चलीथी, तब मैंनेभी 'मुंबई' से 'पर्युषणा निर्णयका शास्त्रार्थ' करने संबंधी विज्ञापन छपवाकर जाहिर कियाथा. उसपर आनंदसागरजी और शांतिविजयजी लोकलज्जासे हां हां करने लगेथे, तो भी बीचमें व्यर्थही आडी २ बातें निकालकर चुप बैठ गये, इसका खुलासा आगे लिखूँगा. और अन्य कोईभी मुनि सभामें निर्णय करनेको तैयार नहीं हुए, इसलिये अब यह ग्रंथ इतने विलंबसे प्रकाशित किया जाता है. यह ग्रंथ एक हजार पृष्ठके लगभग होनेसे, ४ भागोंमें अनुक्रमसे यथा अवसर प्रकट होता रहेगा. और मंगवाने वाले साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका-यति-श्रीपूज्य-ज्ञान भंडार-लायब्रेरी और साक्षर वर्ग सबको बिना किंमतसे भेट भेजा जावेगा ।

१-देखिये-एक वहेम ॥

तपगच्छके कितनेक मुनिमहाराजोंने अपनी समाजमें यहभी एक तरहका वहेम ठसा दिया है, कि-'अधिकमहीनेमें विवाह-सादी वगैरह शुभकार्यलोगनहींकरतेहैं, उसीतरह अपनेसी अधिकमहीनेमेंपर्युषणा पर्वादि धार्मिककार्य नहीं हो सकतेहैं', मगर इस बातपर तत्त्व दृष्टि से विचार कियाजावे तो यहभी एकतरहका एकांतआग्रहसे झूठाही वहेमहै, क्योंकि विवाहादि मुहूर्त्तवाले कार्य तो मास, पक्ष, तिथि, वार नक्षत्रादि देखकर, वर्ष छ महीने आगे पीछेभी करते हैं. परंतु बिना मुहूर्त्तके लोकोत्तर धर्मकार्य तो नियमित दिवससे आगेपीछे कभीनहीं

हो सकतेहैं,इसलिये लौकिक वालेभी मुहूर्त्त वाले कार्य नहीं करते,मगर बिना मुहूर्त्तके दान, पुण्य,जप, तप परोपकारादि तो विशेष रूपसे करनेके लियेही अधिकमहीनेको 'पुरुषोत्तमअधिकमास',कहते हैं,उसकी कथाभी सुनते हैं और सिंहस्थमें नाशिकादि तीर्थोंमें यात्राका मेलाभी भरते हैं। इसी प्रकार वर्तमानिक जैन समाजमेंभी मुहूर्त्तवाले कार्य अधिकमहीनेमें नहीं करते हैं. मगर विना मुहूर्त्तवाले पर्युषणापर्वादि धार्मिक कार्य करनेमें कोई तरहकाभी हरजा नहींहै। अधिक महीनेके३०दिनोंको मुहूर्त्तादि कार्योंमें नहींलेते,परंतु विना मुहूर्त्तके(दिवसोंकी संख्यासे प्रतिबद्ध) धार्मिक कार्योंमें लेतेहैं। बस! इसका मर्म सरल दिलसे न्यायपूर्वक समझ लिया जावे तो अधिकमहीनेमें पर्युषणापर्वादि धर्म कार्य नहीं हो सकतेहैं. ऐसा एकांत आग्रहका झूठा वहेम आपसेही निकल सकता है. इसका विशेष निर्णय इस ग्रंथको वांचने वाले तत्त्वज्ञ विवेकी सज्जन स्वयं कर सकेंगे।

२–यह बे समझ है, या हठाग्रह है॥

अधिक महीनेके अभावमें ५० दिने भाद्रपदमें पर्युषणा करना लिखाहै सो५० दिनके अंदर करनेवाले आराधक होतेहैं ऊपरांत करनेवाले तो विराधक होतेहैं. इसलिये५०वें दिनकी रात्रिकोभी किसी-प्रकारसेभी उल्लंघन करना नहीं कल्पता है. यह बात जैन समाजमें प्रसिद्ध ही है। जिसपरभी सिर्फ भाद्रपद शब्दमात्रकोही पकडकर वर्तमानिक दो श्रावण होनेपरभी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका आग्रह करतेहैं, मगर उसमें ८० दिन होनेसे शास्त्रविरुद्ध होता है, इसका विचार कुछभी करते नहीं हैं।

औरभीइसीतरहसे पर्युषणाके पिछाडीभी हमेशा७०दिन रखनेका एकांत आग्रहकरतेहैं, मगर ७० दिनका नियम अधिकमहीनेके अभावसंबंधीहै, और अधिकमहीना होवे तब तो निशीथचूर्णि, बृहत्कल्पचूर्णि,स्थानांगसूत्रवृत्ति और कल्पसूत्रकी टीकाओंमें १०० दिन रहनेका कहा है। इसलिये ७० दिन संबंधी या १०० दिन संबंधी यथा अवसर दोनों बातें आत्मार्थियोंको मान्य करने योग्य हैं, जिसपरभी १०० दिन संबंधी शास्त्रप्रमाणोंको छोडकर सिर्फ ७० दिनके शब्द मात्रको आगेकरके १०० दिनकी जगहभी ७० दिन रहनेका आग्रहकरतेहैं. इसलिये ऊपरकी दोनों बातों संबंधी शास्त्रीय अपेक्षाकी यह बे समझ है, या समझने परभी हठाग्रह है। इसका विशेष विचार तत्त्वज्ञ पाठकगणको करना चाहिये.

३-कहतेहैं मगर करते नहीं, यहभी देखिये-आग्रह ?

अधिकमहीनेके ३० दिनोंको गिनतीमेंसे छोडदेनेका आग्रहकरनेवाले; जब दो श्रावण होवे तबभी भाद्रपद तक ५० दिन हुए ऐसा कहतेहैं, मगर प्रत्यक्ष प्रमाण व न्यायकी युक्तिसे विचारकर देखा जावे तो यहकहना प्रत्यक्ष प्रमाणसेभी सर्वथा अनुचितही मालूम होता है। देखिये- किसी श्रावक या श्राविकाने आषाढचौमासीसे उपवास करने शुरू किये होवें, उनको बतलाईये दो श्रावण होनेपर ५०उपवास कबतक पूरेहोवेंगे.और८०उपवास कबतक पूरे होवेंगे?इसके जवाबमें छोटासा बालक होगा वहभी यही कहेगा, कि-५० दिनोंके ५० उपवास दूसरे श्रावणमें और ८० दिनोंके ८० उपवास दोश्रावणहोनेसे भाद्रपदमें पूरे होवेंगे। इसीतरह साधुसाध्वीयोंके संयमपालनेमें,तथा सर्व संसारी जीवोंके प्रत्येक समयके हिसाबसे ७।८ कर्मोंके शुभाशुभ बंधन होनेमें और धार्मिक पुरुषोंके धर्मकार्योंसे कर्मोंकी निर्ज्जरा होनेमें व सूर्यके उदय अस्तके परिवर्त्तन मुजब दिवसोंके व्यतीत होनेके हिसाबमें, इत्यादि सर्व कार्योंमें दो श्रावण होनेसे भाद्रपद तक ८० दिन कहते हैं।५० उपवास दूसरे श्रावणमें, व ८० उपवास भाद्रपदमें पूरे होनेकाभी कहते हैं. और उपवासादिक उपरके तमाम कार्योंमें अधिक महीनेके ३० दिनोंको बीचमें सामील गिनकर ८० दिन कहते हैं, ८० दिनोंके लाभालाभ-पुण्यपापके कार्यभी प्रत्यक्षमें मंजूरकरतेहैं.ऐसेही दो आश्विनमहीने होनेसे पर्युषणाके पिछाडी कार्त्तिक तक१०० दिन होतेहैं, उसकेभी१००उपवास, व १०० दिनोंके कर्मबंधन तथा धर्मकार्य वगैरह सर्व कार्योंमें १००दिन कहतेहैं.और१००दिनोंको आपभी अपने व्यवहारमेंभी मंजूर करते हैं। उसमें अधिक श्रावणके३०दिनोंको गिनतीमें लेनेकी तरह अधिक आसोजकेभी ३० दिनोंको गिनतीमें मान्य करना कहते हैं. मगर जब दो श्रावण होवे तब भाद्रपद तक ८० दिन होते हैं, व जब दो आश्विन होवे तबभी पर्युषणाकेबाद कार्त्तिक तक १०० दिन होते हैं, उनोंको अंगीकार करते नही. और ८० दिनके ५० दिन, व १०० दिनके ७० दिन कहते हैं. यह जगत विरुद्ध कैसा जबरदस्त आग्रह कहा जावे, इसको विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं।

४-कालचूलारूप अधिकमहीना पहिला या दूसरा ?

यद्यपि जैनटिप्पणा विच्छेद है, इसलिये लौकिक टिप्पणा मु-

जब मास,पक्ष,तिथि,वार,नक्षत्रादिक मानतेहैं.मगर जैनशास्त्रतो मौ-
जूदही हैं. इसलिये पर्युषणादि धार्मिक कार्य जैनसिद्धांतोंके मुजबही
करनेमें आते हैं। और जैनशास्त्र मुजबही अभी सर्व गच्छवाले अ-
धिक महीनेको कालचूला कहतेहैं। किंतु कितनेक प्रथम महीनेको
कालचूला कहतेहैं, मगर प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्ति, सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र-
वृत्ति,चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति,लोकप्रकाश, ज्योतिषकरंडपयन्नवृत्ति वगैर-
ह शास्त्रप्रमाणोंसे दूसरा अधिकमहीना कालचूलारूप ठहरताहै.दे-
खिये—"सट्ठीए अईयाए, हवई हु अहिमासो जुगद्धंमि। बावीसे प-
व्वसए, हवइ हु बीओ जुगंतमि ॥ १ ॥ इत्यादि सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिके अ-
नुसार ६०पर्व (पक्ष)के३०महीने व्यतीत होनेपर३१वा महीना दूसरा
पौष अधिक होताहै,और १२२ पक्षके ६१ महीने जानेपर कालचूला
रूप दूसरा आषाढअधिक होताहै.उसी कालचूलारूप दूसरे अधिक
आषाढ महीनेमेंही चौमासीप्रतिक्रमणादि धार्मिककार्य सर्व गच्छवा-
लोंके करनेमें आते हैं। और अधिक पौष महीने व अधिक आषाढ
महीनेके दिनोंकी गिनतीसहितही ६२ महीने, १२४ पक्ष, १८३० दिन
और ५४९०० मुहूर्तोंके पांच वर्षोंका एक युग शास्त्रोंमें कहा है। इस
लिये कालचूलारूप अधिक महीनेके ३० दिन गिनतीमें नहीं आते १,
तथा कालचूलारूप अधिक महीनेमें चौमासी प्रतिक्रमणादि धार्मिक
कार्यनहीं हो सकते २, और मासवृद्धि दो महीने होनेसे प्रथम महो-
नेको कालचूलाकहना ३, यह सर्व बातें सर्वथा शास्त्रविरुद्धहैं।

५– पूर्वापर विसंवादी (विरोधी) कथन ॥

जोलोग जिसअधिकमहीनेको कालचूलाकहकर गिनतीमेंलेनेका
व पर्युषणपर्वादि धर्मकार्यकरनेकानिषेधकरतेहैं,वोहीलोग उसीकाल-
चूलारूप दूसरे अधिकआषाढको गिनतीमेंलेकर चौमासीप्रतिक्रमणा
दि सर्वकार्य आप करतेहैं. जिसपरभी मुंहसे कालचूलारूप अधिकम-
हीनेको गिनतीमें नहीं लेना तथा उसमें पर्युषणा व चौमासी आदि
धर्मकार्य नहींकरनेका कहतेहैं. और कालचूलारूप अधिक महीनेको
गिनतीमें लेकर धर्मकार्यकरनेवालोंको दोषबतलातेहैं. सो देखो-एक
जगह कालचूलारूप अधिकमहीना गिनतीमें छोडतेहैं. दूसरी जगह
उसीकोही खास आप गिनतीमें लेकर चौमासीआदिधर्म कार्य करते
हुए अंगीकारकरतेहैं. और फिर दूसरे गिनतीमेंलेने वालोंको दोषभी
बतलातेहैं.यह तो "मम वदनेजिव्हा नास्ति" की तरह कैसा पूर्वापर
सर्वथा असंगतरूप विसंवादी कथन है. सो भी विचारने योग्य है।

६-कालचूला शिखररूप है, या चोटीरूप है ?

अधिकमहीनेको निशीथचूर्णि आदि शास्त्रोंमें शिखररूप कालचूलाकहाहै और दिनोंकी गिनतीमेंभी लियाहै, जिसपरभी कितनेक महाशय दिनोंकी गिनतीमें निषेध करनेके लिये चोटीरूप कहते है. और 'जैसे पुरुषके शरीरके मापमें उसकी चोटीकी लंबाईका माप नहीं गिना जाता, तैसेही अधिकमहीना कालपुरुषकी चोटीसमान होनेसे उसीके ३० दिनोंको प्रमाण गिनतीमें नहीं लिये जाते' ऐसा दृष्टांत देतेहैं,सोभी सर्वथाशास्त्र विरुद्धहै,क्योंकि पुरुषकी उँचाईकी गिनतीमें उसकीचोटी १-२ हाथलंबी होवे तोभी कुछभी गिनतीमें नहीं लीजाती,उससेउसका प्रमाणभीकुछ नहींबढसकता,मगर जैसे-देवमंदिरोंके शिखर व पर्वतोंके शिखर प्रत्यक्षपणे उनकी उचाई की गिनतीमें आते हैं, उसीसे उन्होंकी उंचाईका प्रमाणभी वढजाता है. तैसेही अधिकमहीनेको कालचूला कहा है, सो शिखररूप होनेसे गिनतीमें आता है, उससे उस वर्षका प्रमाणभी १२ महीनोंके २४ पक्षोंके ३५४ दिनोंकी जगह, १३ महीनोंके २६ पक्षोंके३८३ दिनोंका होता है,और मास वृद्धिके कारण चंद्र वर्षकी जगह अभिवर्द्धित वर्ष भी कहा जाता है. इसलिये शिखरकी जगह बालरूप चोटी कह करके अधिकमहीनेको दिनोंकी गिनतीमें लेनेका निषेध करना सो "करे माणे अकरे" जमालिकी तरह सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है।

७-अधिकमहीना गिनतीमें न्यूनाधिकहै, या बरोबरहै ?

जैनसिद्धांतोंके हिसाबसे तो जैसे १२ महीनोंके सर्वदिन धर्मकार्योंमें बरोबर हैं, तैसेही अधिकमहीना होनेसे१३ महिनोंकेभी सर्वदिन बरोबर ही हैं। इसमें न्यूनाधिक कोईभी महीना नहीं है, और पापी प्राणियोंके कर्मोंकाबंधन होनेमें व धर्मीजनोंके कर्मोंकी निर्जरा होनेमें एक समयमात्रभी व्यर्थ खाली नहीं जाता है. और समय,आवलिका,मुहूर्त्त दिन,पक्ष,मास,वर्ष,युग, पल्योपम,सागरोपमादि कालमानमेंसे १समयमात्रभी गिनतीमें कभी नहीं छूटसकता, जिसपरभी धर्म कार्योंमें ३० दिनोंको गिनतीमें छोड देनेका कहते हैं,या अधिक महीनेके दिनोंको तुच्छही समझते हैं, सो सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध है.

८ - अधिकमहीना नपुंशकहै, या पुरुषोत्तमहै ?

जैसे-ब्रह्मचारी उत्तम पुरुष समर्थ होनेपरभी परस्त्री प्रति नपुंशक समान होता है, तैसेही-लौकिक रूढीसे विवाह सादीवगैरह

आरंभवाले या मुहूर्तवाले कार्य करनेमें तो अधिकमहीनेको नपुंशक समान कहतेहैं मगर तोभी दिनोंकीगिनतीमें तो बरोबरलेतेहैं। और निरारंभी व बिना मुहूर्त्तवाले दान, पुण्य, परोपकार, जप, तपादि कार्य करनेमें तो अधिक महीनेको 'पुरुषोत्तम अधिक मास' कहा है, सो बात प्रकटही है. इसलिये जैनसिद्धांतोंके हिसाबसे या लौकिक शास्त्रोंके हिसाबसेभी अधिक महीनेको दिनोंकी गिनतीमें निषेध करते हैं, सो शास्त्रीय दृष्टिसे व युक्ति प्रमाणसे या दुनियाके व्यवहारसेभी सर्वथा विरुद्ध है। इसको विशेष पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं

९–दूसरे आषाढमें चौमासी करनेका क्या प्रयोजनहै ?

भो देवानुप्रिय! चौमासीप्रतिक्रमणादि पर्वकार्य ग्रीष्मऋतुपूरी होनेपर वर्षाऋतुकीआदिमें किये जाते हैं, और ज्येष्ठ व आषाढमें ग्रीष्मऋतु कही जाती है. इसलिये जब दो आषाढ होवे; तब उन दोनों आषाढमहीनोंको ग्रीष्मऋतुमें गिने जाते हैं यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणसे जगजाहिरहीहै, और जैनसिद्धांतानुसार तो दूसरे आषाढ शुदी पूर्णिमाका हमेशा क्षय होता है. इसलिये दूसरे आषाढ शुदी१४को पांच वर्षोंका एक युग पूरा होताहै, उसी रोज ग्रीष्मऋतुभी पूरी होतीहै, तथा पांचवा अभिवर्द्धितवर्षभी उसीरोज पूरा होताहै. और १ युगमें सुर्यके दक्षिणायन उत्तरायणके दशअयनभी १८३०दिनोंसे उसीदिन पूरे होतेहैं. इसलिये उसी दिन दूसरे आषाढ शुदी१४ को चौमासी प्रतिक्रमणादि कार्य करनेकी अनादि मर्यादा है। और प्रथम आषाढ ग्रीष्मऋतुमें होनेसे वहां ग्रीष्मऋतु, युग, वर्ष, अयन, वगैरह पूरे नहीं होते, व प्रथम आषाढमे वर्षाऋतुभी शुरू नहीं होती, इसलिये प्रथम आषाढमें चौमासी प्रतिक्रमणादि पर्वके कार्य करनेमें नहीं आतेहैं और शास्त्रीय हिसाबसे श्रावण वदी१को (गुजरातदेशकी अपेक्षासे आषाढ वदी १ को) युगकी, वर्षकी और वर्षाऋतुकी शुरूआत होती है. इसलिये उसकी आदिमें और ग्रीष्मऋतुकी, वर्षकी, युगकी समाप्ति समय दूसरे आषाढकेअंतमें चौमासी प्रतिक्रमणादि पर्वके कार्य करने शास्त्रोंमें कहे हैं, सो युक्तियुक्तही हैं।

१० – चौमासा ४ महीनोंका या ५ महीनोंका ?

देखिये–१२ महीनोंका वर्ष कहा जाता है, मगर जब अधिक महीना होवे तब १३ महीनोंका वर्ष कहा जाता है, इसीतरह यद्यपि चौमासा शब्द व्यवहारसे ४ महीनोंका कहा जाता है, मगर अधि-

क महीनाहोनेसे १३ महीनोंके वर्षकी तरह चौमासीभी पांच महीनोंका होताहै.इसलिये अधिक महीना न होवे तब तो ४ महीनोंके ८ पक्षोंके१२०दिनोंसे चौमासीकार्य होते हैं, मगर जब अधिक महीना होवे तब तो पांच महीनोंके दश (१०) पक्षोंके १५०दिनोंसे चौमासी प्रतिक्रमणादिकार्य होतेहैं। यहबात प्रत्यक्ष प्रमाणसे व लौकिक टिप्पणाके प्रमाणसे जग जाहिर है,और आगम पंचांगी सिद्धांत प्रमाणसेतो अनादि सिद्धप्रवाह ऐसाही है.इसलिये इसको कोईभी कभी निषेध नहीं कर सकता है.इसका विशेष विचार तत्त्वज्ञ पाठक गण स्वयं कर सकते हैं।

११ — देखो – एक कुतर्क.

कितनेक कहतेहैं,कि–'चौमासी प्रतिक्रमणादि कार्य आषाढमेंकरनेका कहा है, इसलिये प्रथम आषाढमें करोंगे तो दूसरा आषाढ छूट जावेगा और दूसरेमें करोंगे तो, प्रथम छूट जावेगा. या दोनोंमें करोंगे तो पुनरुक्ति दोष आवेगा' ऐसी २ कुतर्क करते हैं, सो भी सर्वथा शास्त्र विरुद्धहै। क्योंकि प्रथम आषाढमें ग्रीष्मऋतु वगैरह उपर मुजब कारण होनेसे चौमासीकार्य कभी नहीं होसकने, इसलिये 'प्रथम आषाढमें करोंगे तो दूसरा आषाढ छुट जावेगा' ऐसा कहना व्यर्थही है। और दो आषाढ होनेसे दोनोंकी गिनतीपूर्वक ५ महीने दूसरे आषाढमें चौमासीकार्य करते हैं, इसलिये 'दूसरेमें करोंगे तो प्रथम छूट जावेगा' ऐसा कहनाभी व्यर्थही है। और दोनों आषाढोंमें दो वार चौमासी कार्य नहीं; किंतु ग्रीष्मऋतुकी समाप्ति वगैरह उपर मुजब कारणोंसे दूसरे आषाढमें एकही वार चौमासीकार्य करते हैं. इसलिये 'दोनोंमें करोंगे तो पुनरुक्ति दोष आवेगा' ऐसा कहनाभी व्यर्थहीहै। और चौमासी प्रतिक्रमण तो ४ महीने, या मास वृद्धि होवे तब पांच महीने सब गच्छवाले एकवार प्रत्यक्षपने करतेहैं इसलिये मास बढने परभी चौमासीकार्य ४ महीने होवे मगर पांच महीने नहीं होवे, ऐसा प्रत्यक्ष असत्य भाषण करना आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है. इसकोभी विशेष तत्त्वज्ञ पाठकगणस्वयं विचारलेंगे.

१२–दूसरे आषाढमें चौमासीकार्य करनेकी तरह पर्युषणापर्वभी दूसरे भाद्रपदमें हो सकें, या नहीं?

आषाढ–कार्त्तिकादि चौमासा ४–४ महीनोंसे होताहै, मगर अधिक महीना होवे तब पांच महीनोंकाभी होता है, यह बात ऊपर

लिख चुके हैं. इसलिये मासवृद्धि होनेसे १२० दिनोंकी जगह १५० दिनभी चौमासेमें होतेहैं. उसमें किसी प्रकारका दोष कोईभी शास्त्रमें नहीं बतलाया. मगर पर्युषणातो वर्षाऋतुमें दिन प्रतिबद्ध होनेसे ५०दिने अवश्यही करना सर्वशास्त्रोंमें कहाहै, उसपर कभी १ दिनभी बढ जावे तो उसका दोष कहाहै. और दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणाकरें, तो ८० दिन होनेसे प्रत्यक्षपने सर्व शास्त्रविरुद्ध होता है. इसलिये दूसरे आषाढमें चौमासी पर्वकी तरह पर्युषणा पर्व ८० दिन होनेसे दूसरे भाद्रपदमें कभी नहीं होसकते हैं, किंतु आगमादि सर्व शास्त्रोंकी आज्ञा मुजब ५० दिने प्रथम भाद्रपदमें करना युक्तियुक्त न्यायसंपन्नही है, इसको तो विशेष पाठक गण स्वयं विचार सकते हैं.

१३–जिसको मान्यकरतेहैं उसीकोही उत्थापनकरतेहैं ।

हमेशां भाद्रपदमेंही पर्युषणा पर्व करनेका ठहरानेके लिये निशीथचूर्णिके अधूरे पाठको आगेकरते हैं, मगर चूर्णिमें तो ५० दिने या ४९ दिने अवश्यही पर्युषणा करना लिखा है, परंतु ५० दिन उपरांत करना कभी नहीं लिखा और अधिक महीनेके ३० दिनोंकोभी खुलासा पूर्वक गिनतीमें लिये हैं । जिसपरभी दो भाद्रपद होवें,तब ५० दिने प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्वका आराधन करना छोडकर, ८० दिने दूसरे भाद्रपदमें करतेहैं । उसीसे जिस चूर्णिका पाठ मान्य करतेहैं,उसी चूर्णिकापाठ (दूसरे भाद्रपदमें ८०दिने पर्युषणा करनेसे) उत्थापनभी करते हैं.इसको विशेष तत्त्वज्ञ जन स्वयं विचार सकतेहैं.

१४—अब देखो एक--वितंडा वाद ॥

८० दिने पर्युषणापर्व करनासो शास्त्र विरुद्ध ठहराते हो, मगर दो आषाढ महीने होवे तब प्रथम आषाढमें चौमासी प्रतिक्रमण करोगे, तो–तुमारेभी ८०दिने पर्युषणा पर्व होवेंगे, तब कैसे करोगे? समाधान भो–देवानुप्रिय ! पर्युषणाके ५०दिनोंकी गिनती ग्रीष्मऋतुकी समाप्ति होनेपर वर्षाऋतुकी शुरूआतसे गिनी जाती है. और प्रथम आषाढ महीना ग्रीष्मऋतुमें होनेसे उसमें चौमासी कार्य नहीं हो सकते और ग्रीष्मऋतुकी समाप्ति हुए विना व वर्षाऋतुकी शुरूआत हुए विना प्रथम आषाढसे पर्युषणासंबंधी ५० दिनोंकी गिनतीभी कभी नहीं हो सकती. इसलिये प्रथम आषाढमें चौमासी कार्य करने का, व उससे पर्युषणाके ८० दिन गिननेका कहना अज्ञानताका कारण है, क्योंकि वर्षाऋतुकी आदिमें दूसरे आषाढके अंतमे चौमासीकार्य होनेसे पर्युषणाके ५०दिन गिननेका निशीथचूर्णि, प-

र्युषणाकल्पचूर्णी वगैरहशास्त्रोंमें कहाहै,इसलिये प्रथम आषाढसे८० दिन बतलाकर दो श्रावणहोनेपरभी भाद्रपदमें८०दिने पर्युषणाकरना. या दो भाद्रपद होवें तब दूसरे भाद्रपदमें८०दिनेपर्युषणा ठहराना,सर्वथा शास्त्रविरुद्धहै,इसकोभी विवेकी पाठकगण स्वयंविचार लेवेंगे।

१५ – देखिये यह—कैसी कुयुक्ति है।

कितनेक महाशय अपना असत्य आग्रहको छोड सकते नहीं तथा सत्यबातको ग्रहणभी कर सकते नहीं और व्यर्थही अपनी सचाई जमानेकेलिये कहतेहैं, कि "दूसरेश्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करना किसीभी आगममें नहीं लिखा" ऐसी२ कुयुक्तियें करतेहैं, और भद्रजीवोंको संशयमें गेरतेहैं. मगर इतना विचार करते नहींहैं, कि-५०दिनेपर्युषणापर्व करना कल्पसूत्रादि सर्वआगमोंमें लिखाहै, यहीजिनाज्ञाहै. देखिये—"सवीसइ राएमासे" वा " सविंशतिरात्रे मासे " वा " दश पंचके " वा " पचाशतैव दिनैः पर्युषणा युक्तेति वृद्धाः "इन सर्व वाक्योंमें ५०दिने पर्युषणाकरना कहाहै, सो वर्तमानमें५० दिने दूसरेश्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करना कल्पसूत्रादि आगमानुसार ठहरताहै.इससे ५० दिन कहो,या दूसरा श्रावण, प्रथम भाद्रपद कहो, दोनों एकार्थही हैं. इसलिये 'दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करना किसी आगममें नहीं लिखा' ऐसी२ जानबुझकर कुयुक्तियें लगाकर अपना झूठा पक्ष जमानेकेलिये मायामृषा भाषण करना आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है.

१६—उत्सूत्र प्ररूपणा ॥

चंद्रप्रज्ञप्ति–सूर्यप्रज्ञप्ति–जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति–भगवती–समवायांगादि आगम–निर्युक्ति–भाष्य–चूर्णि–वृत्ति–प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें अधिक महीनेके ३० दिन गिनतीमें लियेहैं,वे सर्व शास्त्रोंके पाठ छुपानेसे छुप सकते नहीं. और अर्थ बदलनेसे अर्थभी बदला सकते नहीं. इसलिये कितनेक आग्रही जन कहतेहैं,कि–' उन शास्त्रोंमें तो अधिक महीना होनेसे १३ महीनोंके २६ पक्षोंके ३८३ दिनोंका अभिवर्द्धितवर्षका स्वरूप बतलायाहै,मगर१३ महीनोंको गिनतीमें लेनेका कहां लिखाहै' ऐसा कहनेवाले प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणा करतेहैं, क्योंकि देखो–चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति वगैरह सर्व शास्त्रोंमे, जैसे– १ वर्षके १२ महीनोंके २४ पक्षोंके ३५४ दिनोंका स्वरूप गणित प्रमाण बतलाया- है, तैसेही अधिकमहीना होनेसे उसवर्षकेभी १३ महीनोंके २६ पक्षोंके ३८३ दिनोंका स्वरूप गणित प्रमाण बतलाया है, इस लिये

चंद्र और अभिवर्द्धित इन दोनों वर्षोंका स्वरूप गणित प्रमाण सर्व शास्त्रोंमें समानरूपसे खुलासापूर्वक होनेपरभी १२ महीनोंके वर्षको प्रमाणभूत मानना और १३महीनोंके वर्षको स्वरूप बतलानेका बहाना बतलाकर प्रमाणभूत नहीमानना.यह तो प्रत्यक्षही अन्यायहै,यदि १३ महीनोंका स्वरूप बतलानेका कहकर गिनतीमें प्रमाणभूत नहीं मानोंगे, तो १२ महीनोंकाभी स्वरूप बतलाया है,उसकोभी गिनतीमें प्रमाणभूत नहीं मानसकोंगे.और शास्त्रोंमें तो १२ या १३ महीनोंके दोनों वर्षोंके समानरूपसे स्वरूप बतलाकर गिनतीमें प्रमाणभूत माने हैं.इसलिये दोनोंप्रकारके वर्षमाननेयोग्यहैं, इसमें शास्त्रप्रमाणसे तो एकभी वर्षका निषेध नहीं होसकताहै. देखिये – ११ अंग; व १४ पूर्वादिशास्त्रोंमें जैसे,दर्शन-ज्ञान–चारित्र–चौदहराजलोक-षट्द्रव्य-नवतत्त्व-चौदहगुणस्थान–जीवाजीवादि पदार्थोंका स्वरूप; व चरणकरणानुयोगमें संयमके आराधनकी क्रियाका स्वरूप बतलाया है, वोही सर्वमान्य करनेयोग्य है,इसलिये स्वरूप बतलाना सोही श्रद्धापूर्वक मान्य करनें योग्य सत्यप्ररूपणा कही जाती है। जिसपरभी चरणकरणानुयोगमें संयमकी क्रियाका व षट्द्रव्य – नवतत्त्वादिकका स्वरूप बतलाया है,मगर उस मुजब मान्य करना कहां लिखाहै,ऐसा कोई कहे और उनोंको प्रमाणभूत नहीमानें;तो ११अंग व१४पूर्वोंके उत्थापनकरनेका प्रसंग आनेसे अनेक भवोंकी वृद्धिकरनेवाली उत्सूत्र प्ररूपणाका दोष आवे. इसी तरहसेंही१३ महीनोंका स्वरूपकहकर प्रमाणभूत नहीं मानेंतो सूर्यप्रज्ञप्तिवगैरहपूर्वोक्त शास्त्रोंके उत्थापनकरनेका प्रसंग आनेसे उत्सूत्र प्ररूपणा ठहरतीहै। और जैसे-षट्द्रव्य, नवतत्त्वादिकके स्वरूप शास्त्रोंमें कहेहैं. उसमुजबही मानने पडतेहैं। तैसेही १२ महीनोंके स्वरूपकी तरहै; १३ महीनोंकास्वरूपभी शास्त्रोंमें बतलायाहै, उस मुजबही १३ महीनेगिनतीमें प्रमाणभूत माननेपडते हैं.इसलिये '१३ महीनोंके अभिवर्द्धित वर्षका स्वरूप बतलायाहै,मगर मान्यकरना कहां लिखाहै' ऐसी उत्सूत्रप्ररूपणा करना. और भोले जीवोंको संशयमें गेरना आत्मार्थी भवभीरुओंको योग्य नहीं है।

१७ – लौकिक अधिकमहीना मानना; या नहीं ?

कितनेकमहाशयकहतेहैं,कि–जैनटिप्पणामेंतो पौष और आषाढ दो महीने वढतेथे और अबलौकिकटिप्पणामेंतो श्रावण भाद्रपदादिमहीनेभी वढने लगेहैं सो कैसे माने जावे? इसपर इतनाही विचार कर-

नेकाहै,कि-जैनटिप्पणामें तीसरेवर्षमें जो महीना बढताथा उसकोभी गिनतीमें लेतेथे और जैनटिप्पणामें ज्यादेमें ज्यादे ३६घटिका प्रमाणे दिनमान होताथा, तथा कमतीमें कमती२४ घटिकाप्रमाणे दिनमान होताथा. और माघमहीने दक्षिणायनसे सूर्य उत्तरायनमें होताथा और श्रावणमहीने उत्तरायनसे दक्षिणायनमें सूर्य होताथा और श्रावण वदि एकमसे६२वीं तिथि क्षय होतीथी. इसीप्रकार १ वर्षमें ६ तिथि क्षयहोतीथी बीचमें कोईभीतिथि क्षयनहींहोतीथी. और तिथिबढनेकातो सर्वथा अभावहोनेसे कोईभीतिथि कभी बढतीनहींथी और ६० घडीसेकम तिथिकाप्रमाणहोनेसे,६०घडीके ऊपर कोईभी तिथि नहीं होतीथी. और नक्षत्रसंवत्सर, ऋतुसंवत्सर, सूर्यसंवत्सर, चंद्रसंवत्सर व अभिवर्द्धितसंवत्सरसहित ५वर्षोंके १८३० दिनोंका १ युग, व ८८ ग्रह मानतेथे इत्यादि अनेक बातें जैनटिप्पणासें होतीथी वो जैन टिप्पणा परंपरागत जैनीराजा देशभरमें चलातेथे और पूर्वगत आम्नायसे गुरुगम्यतावाले जैनकुलगुरु बनातेथे,इसलिये उसमें ग्रहणादि किसीतरहका फरकभीकभी नही पडताथा,मगर परंपरागत जैनी राजओंका व पूर्वगत आम्नायका,अभावहुआ और जबसे ८८ग्रहवाला जैनपंचांग बंधहुआ, तबसे सर्व जैनसमाजमें९ग्रहवाला लौकिक टिप्पणा माननेकी प्रवृत्ति शुरूहुई, उसमें श्रावण व माघमें दक्षिणायनमें व उत्तरायनमें सूर्यके होनेका नियम न रहा और हरेक महीने बढनेसे ज्येष्ठ-आषाढ व मार्गशीर्ष-पौषादिमेंभी दक्षिणायन व उत्तरायन होनेलगा,तथा क्षेत्रफळ व गणित विभागमें फेर पडनेसे ज्यादेमें ज्यादे ३४ घटिका, व कमतीमें कमती २६ घटीकाप्रमाणे दिनमानभी मानने लगे और एक तिथिका ६० घटिकासे ज्यादे प्रमाण माननेसे हरेकपक्षमें तिथियोंका क्षयभी होनेलगा और हरेक तिथियोंकी वृद्धि होनेसे दो दो तिथियेंभी होने लगी. और १२ वर्षका युग इत्यादि अनेकबातें अभी जैनपंचांगके अभावसे, लौकिकटिप्पणाकी माननीपडतीहैं, इसीतरह अधिकमहीनाभी लौकिकटिप्पणाकीरीतिसे वर्तमानमें माननापडताहै, इसलिये ८४ गच्छोंके सर्व पूर्वाचार्योंने श्रावण भाद्रपदादिमहीने लौकिक टिप्पणामुजब मानेहैं वोहो प्रवृत्ति अभी सर्वजैनसमाजमें शुरू है। और दक्षिणायन,उत्तरायन,तिथिकी हानी, वृद्धि वगैरह तिथि, वार, नक्षत्र, पक्ष, मास, वर्ष आदिक सर्व लौकिक टिप्पणामुजब अभीमानतेहैं.मगर अधिकमहीना बाबत जैन पंचांगकी आड लेकर नही मानना, यह न्याय युक्ति बाधक होनेसे

सत्य कभी नहीं ठहर सकताहै. इसलिये ऊपर मुजब बातोंकी तरह श्रावण भाद्रपदादि अधिकमहीनेभी लौकिकटिप्पणामुजब वर्तमानमें मान्य करने सो युक्तियुक्त न्यायसंपन्न होनेसे कभी निषेध नहीं हो सकते. और यद्यपि जैनटिप्पणामें पौष-आषाढ बढताथा, उसबातको जिनकल्पीव्यवहारकी तरह सत्यमानना, श्रद्धारखना, प्ररूपणाकरना. मगर जिनकल्पीव्यवहार अभी विच्छेद होनेसे उनको अंगीकार नहीं करसकतेहैं, उसीतरह अभी जैनटिप्पणाभी विच्छेद होनेसे वर्तमानमें जैनटिप्पणा मुजब तिथि, वार, या पौष-आषाढमहीने माननेकाआग्रहकरना सो देशकालके व सर्वपूर्वाचार्योंके सर्वथाविरुद्ध है.

१८ – जैन ज्योतिषपरसे अभी जैनटिप्पणा शुरूकरें तो शुरू हो सके; या नहीं ?

यद्यपि जैनज्योतिष्के सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति, चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति, ज्योतिष्करंडपयन्नवृत्तिआदि अनेक शास्त्रमौजूदहैं, उसपरसे तिथि, वार, मास, पक्ष, वर्षादिकका गणित अभी हो सकताहै. मगर ग्रहणादि सर्वबातें बरोबर मिलान करना मुश्किल पडताहै, इसलिये कितनीक बातोंमें अन्य आधारलेना पडताहै. और लौकिक व जैन दोनोंके गणित विभागमें फेर होनेसे, तिथि, वार, मास, नक्षत्र व ग्रहणादि दोनोंके समानरूपसे बरोबर नहीं आसकते और पूर्वगतगीतार्थ गुरुगम्यआम्नायके अभावसे व अल्पज्ञताकेकारणसे यदि कोई ग्रहणादि बतलानेमें न्यूनाधिक कुछ फरक पडजावे तो अभी सर्वज्ञशासनकी लघुता होनेका कारण बनजावे. और परंपरागत जैनीराजाओंका अभाव होनेसे व ब्रह्मचारी, व्रतधारी, गुरुगम्यतावाले कुलगुरुओंका अभाव होनेसे, तथा खरतरगच्छ नायक श्रीनवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीशांतिसूरिजी, श्रीहेमचंद्राचार्यजी वगैरह समर्थ व शासनप्रभावक आचार्योंके समयसेभी बहुतकालसे जैनटिप्पणाविच्छेदहोनेसे, अभी अपने अल्प बुद्धिवालोंसे फिरसे शुरू नहीं होसकताहै. और कोई शुरूकरें तोभी सर्वमान्य युगप्रधान समर्थआचार्यके अभावसे सर्वदेशोंके, सर्वगच्छोंके, सर्व जैनसमाजमें परंपरागत चल सकताभी नहीं । देखिये–जैन शासनमें प्राचीनकालमें विशेषज्ञानी समर्थप्रभावक पूर्वाचार्योंके समयमें जो बात पहिलेसे विच्छेद हो जावे; उसको विशिष्टतर अवधिज्ञानादि रहित अल्पज्ञोंसे इसकालमें फिरसे शुरू नहीं होसके । इतनेपरभी फिरसे शुरू करें,

तो सर्व पूर्वाचार्योंकी आशातनाके तथा शासनकी लघुताके दोषके भागी होवें। इसीतरह जैनपंचांगभी प्राचीन पूर्वाचार्योंके समयसे विच्छेद होनेसे, अभीफिरसे शुरू नहीं होसकता. जिसपरभी कोई फिरसे शुरू करें तो२०वे दिन पर्युषणापर्व करनेकी, व पांच पांच दिने अज्ञात पर्युषणास्थापन करने वगैरह बातें जो विच्छेद होगईहैं, वे सब बातेंभी जैन टिप्पणाशुरू होनेसे पीछीशुरू करनी पडेंगी, और वें सर्व बातें अभी पडताकाल होनेसे फिरसे शुरू नहीं होसकती हैं, इस लिये अभी जैन पंचांग शुरू नहीं होसकताहै।

१९– अभी लौकिक दो श्रावणादिक महीनोंके; अपने दो आषाढ बनासकें या नहीं ?

कितनेक कहते हैं, कि–लौकिक टिप्पणामें श्रावण भाद्रपद बढे तब जैन शास्त्रोंके हिसाबसे दो आषाढ बनालेवे तो पर्युषणाका भेद मिट जावे मगर ऐसाभी कभीनहीं होसकता. क्योंकि देखो–जब जैन पंचांगही अभी विच्छेदहै, और तिथि, वार, नक्षत्र पक्ष मासादि पंचांग संबंधीव्यवहार लौकिक टिप्पणा मुजब करतेहैं, जिसपरभी १ महीनेका फेरफार करदेना योग्यनहींहै। देखिये–दो श्रावण होनेसे भरपूर वर्षाऋतुवाला प्रथम श्रावणशुदी १५ को प्रत्यक्षप्रमाणसेभी विरुद्ध होकर उसकोआषाढ पूर्णिमाकहना यहजगत विरुद्ध होनेसे व्यवहारमेंभी मिथ्याभाषणका दोषलगे। औरपहिले पूर्वाचार्योंनेभीऐसाकभी नहीं किया, इसलिये अभी दो श्रावण या दो भाद्रपदके, दो आषाढ बनाना कभी नहीं बनसकताहै, किंतु लौकिक टिप्पणामुजब दो श्रावण भाद्रपदादि सर्वगच्छोंके पूर्वाचार्यपहिलेसे जैसे मानते आयेहैं, वैसेही वर्तमानमें अपने सबकोभी मान्य करना योग्यहै. बस! धार्मिक व्यवहार पर्युषणपर्वादिकार्य जैन सिद्धांतोंके अनुसार५०वें दिन करने. और तिथि, वार, नक्षत्र, चंद्रयोग, मास, पक्षादि व्यवहार लौकिकटिप्पणाकेअनुसार करना. यहीन्याय युक्तियुक्त व सर्वसम्मत होनेसे सर्व जैनीमात्रको मान्य करना योग्य है, इसलिये इसमें अन्य २ कल्पनायें करनी सर्वथा व्यर्थही हैं।

२०–पर्युषणा कितने प्रकारकी होती हैं ?

निशीथचूर्णि, बृहत्कल्पचूर्णि, कल्पसूत्रनिर्युक्ति, चूर्णि, वृत्तिवगैरह शास्त्रोंमें पर्युषणाके नामांतसे ८ प्रकारसे अनेक भेद बतलाये हैं, मगर यहां तो अभी मुख्यतासे वर्षास्थितिरूप और वार्षिक कार्यरूप

ऐसे दो अर्थ वर्तमानमें सर्व गच्छवाले ग्रहण करतेहैं। इसलिये आषाढ चौमासीसे ठहरना सो वर्षास्थितिरूप अज्ञात पर्युषणा और मासवृद्धिके सद्भावमें २० दिने या उसके अभावमें ५० दिने ज्ञात (प्रकट) पर्युषणा करना सो वार्षिक कार्यरूप प्रसिद्ध पर्युषणा करनेका समझना चाहिये। जब जैनपंचांगके अभावसे २० दिनकी पर्युषणा बंधहुई, तबसे लौकिक हरेक मास बढे तो भी ५० दिने वार्षिक कार्यरूप पर्युषणा करनेकी सर्वगच्छोंके पूर्वाचार्योंकी मर्यादा है.

२१–महीना बढे तब बीश दिनकी पर्युषणा वर्षास्थितिरूप हैं; या वार्षिकपर्वरूप है ?

भो देवानुप्रिय ! जैसे चंद्रवर्षमें ५० दिनकी ज्ञात पर्युषणा वार्षिक कार्यरूप हैं, तैसेही--अभिवर्द्धित वर्षमें २० दिनकी ज्ञात पर्युषणाभी वार्षिक कार्यरूप है। जिसपरभी श्रावणमें बीश दिनकी ज्ञात पर्युषणा सिर्फ वर्षास्थितिरूपमानोंगे,तो भाद्रपदमेंभी ५० दिनकी ज्ञात पर्युषणाभी वर्षा स्थितिरूप ठहर जावेंगे और वार्षिककार्य करने सर्वथा उडजावेंगे. और २० दिने वार्षिककार्य नहीं करने, मगर ५० दिने करने; ऐसाभी कोई शास्त्र प्रमाण नहींहै, और २० दिने ज्ञात पर्युषणा किये बाद पीछे एक महीनेसे वार्षिककार्य करने ऐसाभी कोई शास्त्र प्रमाण नहींहै। इसलिये जैसे-५० दिने भाद्रपदमें वार्षिक कार्य होतेहैं, वैसेही--२० दिने श्रावणमेंभी वार्षिक कार्य होतेथे। और वर्तमानमेंश्रावण या भाद्रपदबढे;तोभी दूसरेश्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें५०दिने वार्षिक कार्यरूप पर्युषणापर्व करनासो शास्त्राज्ञाहै.

२२–वार्षिक कार्य१२महीने होवें;या १३ महीनेभी होवें?

देखो पहिलेभी जैसे-२०दिने श्रावणमें वार्षिककार्यकरतेथे तबभी आवतेवर्ष भाद्रपदतक१३महीने होतेथे,तैसेही अभी वर्तमानमेंभी ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें वार्षिक कार्य होनेसे आवते वर्ष१३महीने होतेहैं इसमें कोई दोषनहींहै, देखिये-दो पौष,दो आषाढ, अथवा दो आसोज होनेसेभी १३ महीने प्रत्यक्षमें होते हैं; इसलिये महीना बढे तब तो पहिले या पीछे १३ महीनोंके २६ पाक्षिक प्रतिक्रमण सर्व गच्छवालोंकोही होतेहैं। और जैनमें या लौकिकमें १२ महीनोंके या १३ महीनोंके दोनोंवर्षमाने हैं, इसलिये १२महीनेभी वार्षिक कार्यहोवें. और१३महीनेभी वार्षिककार्यहोवें,यह कोई नवीन बात नहीं है। किंतु अनादि मर्यादाका प्रवाह ऐसाही है.जिसपरभी १३

महीने वार्षिक कार्य होनेका दोष बतलाकर, १२ महीने वार्षिककार्य होनेकाठहरानेकेलिये अधिकमहीनेको बीचमेंसे छोडदेना अनुचितहै,

२३ – पर्युषणा संबंधी कल्पसूत्रका पाठ वार्षिक कार्योंके लिये है, या केवल वर्षास्थितिके लियेही है ?

कल्पसूत्रका पर्युषणा संबंधी पाठ वर्षास्थितिके साथही वार्षिक कार्योंकेलियेभी है, जिसपरभी उसको सिर्फ वर्षास्थितिरूप ठहराकर वार्षिककार्य निषेध करते हैं, वो गंभीर आशयवाले अनेकार्थयुक्त आगमपाठके अर्थको उत्थापनकरनेवालेबनतेहैं.जैसे"णमो अरिहंता णं" पदके अर्थमें कर्मशत्रुको जितनेवाले अरिहंतभगवानको नमस्कार करनेका अर्थ अनादिसिद्धहै, जिसपरभी कर्मशत्रुके अर्थको नहीं माननेवालेको अज्ञानी समझा जाताहै.तैसेही कल्पसूत्रादिके५० दिने पर्युषणाकरनेसंबंधीपाठोंमें वार्षिककार्यकरनेका अर्थतो अनादिसिद्धहै, जिसपरभी ५० दिने वार्षिक कार्योंको नहीं मानने वालोंको अज्ञानी या हठवादी समझने चाहिये ।

२४ -भगवान् किसीप्रकारकेभी पर्युषणा करतेथे या नहीं ?

उग्रविहारी जिनकल्पीमुनियोंके तथा स्थविर कल्पीमुनियोंके आचारमें बहुतभेदहै,और भगवान्तो अनंतशक्तियुक्त कल्पातित हैं. इसलिये भगवान्के आचारमेंतो विशेष भेद है तो भी वर्षाऋतुमें वर्षास्थितिरूप पर्युषणा तो सर्वकोईकरतेहैं और स्थविर कल्पी मुनियोंके तो वर्षास्थितिके साथही चौमासी व वार्षिकपर्वके कार्य करने वगैरहका अधिकार प्रसिद्ध ही है । जिसपरभी कल्पसूत्रमें पर्युषणा शब्दमात्रको देखकर अतीव गहनाशयवाले सूत्रार्थके भावार्थको गुरुगम्यतासे समझे बिना भगवान्कोभी वार्षिक प्रतिक्रमणादिकरनेवाले ठहरानें, या ५० दिनकी पर्युषणाको वार्षिक कार्योंरहित ठहरानी, सो अज्ञानता है. इसकोभी विवेकीजन स्वयं विचार सकते हैं.

२५ -पर्युषणासंबंधी सामान्य व विशेषशास्त्र कौन २ हैं ?

देखो— जिसशास्त्रमें मुख्यतासे एक विषयको विशेषरूपसे खुलासाके साथ कथन किया होवे, उसको विशेष शास्त्र कहते हैं। और जिसशास्त्रमें थोडा२ बहुत बातोंका कथनहोवे,उसको सामान्य शास्त्रकहतेहैं। यद्यपि यथा अवसर दोनोंशास्त्रमान्यहैं,मगर सामान्यशास्त्रसे विशेषशास्त्र ज्यादे अधिक बलवान होताहै.इसलिये मुख्यतासे विशेष शास्त्रकी बात अंगीकार करनेके समय;सामान्य शास्त्रकी बात

गौण्यताभात्रमें रहती है. यहन्याय विद्वानोंमें सर्वत्र प्रसिद्धही है। औरभी देखिये— जैसे श्री भगवतीजीसूत्र बडा कहा जाता है, तोभी उनमें बहुत बातोंका थोडा २ कथन होनेसे संयमके आराधनकी क्रिया संबंधी सामान्यशास्त्र कहा जावे.और आचारांग, दशवैकालिक छोटे २ सूत्रहैं,तोभी उसमें मुख्यतासे संयमकेआराधनका विशेष विधान होनेसे यह संयमक्रियासंबंधी विशेपशास्त्रकेहजातेहैं. इसीतरह समवायांगसूत्रमें थोडा २ अनेक बातोंका कथन होनेसे पर्युपणासंबंधी समवायागसूत्र सामान्य शास्त्रहै, और कल्पसूत्रमें तो खास पर्युपणासंबंधी सामान्य व विशेप दोनो प्रकारसे विस्तारपूर्वक खुलासाके साथ वर्षास्थितिरूप व वार्षिकपर्वरूप दोनों पर्युपणाका अधिकार है. इसलिये पर्युपणासंबंधी श्रीकल्पसूत्र विशेपशास्त्रहै. यही श्रीकल्पसूत्ररूप विशेपशास्त्रको पर्युपणापर्वमें चतुर्विधसंघके मांगलिकके लिये वर्षोवर्ष प्रत्येक गांव नगरादिमें सर्वत्र वांचनेमें आता है. उस विशेषशास्त्रके पर्युपणासंबंधी मूलमंत्ररूप मुख्य विशेप पाठको छोडना और समवायांगके सामान्यपाठपर दृढ आग्रहकरना सो आत्मार्थी विवेकी विद्वानोंको योग्य नहीं है. मगर अल्पज्ञ बिना समझवाले अपना आग्रह न छोडें;तो उनकी खुशीकी बात है ।

२६–पर्युपणासंबंधी हमेशां नियत नियम ५० दिनका है; अथवा ७० दिनका है ?

देखो–पर्युषणासंबंधी सर्वशास्त्रोंमें ५० दिनको पर्युपणा कियेबिना उल्लंघनकरना निवारणकियाहै, इसलिये ५० दिनका नियतनियमहै,और ७०दिनसे ज्यादे दिन होंवे उसका कोईभी दोप किसीभी शास्त्रमें नहींकहा, इसलिये ७० दिनका हमेशां नियतनियम नहीहै.

१– देखो पहिलेभी २०दिने पर्युषणा करतेथे, तबभी पीछे१०० दिन रहतेथे. इसलिये ७०दिनका हमेशा नियत नियम नहीहै ।

२– अबीभी श्रावण भाद्रपद या आसोज बढे तब तपगच्छके पूर्वाचार्योंके कथन मुजब कल्पसूत्रकी टीकाओंके वाक्यसेभी ५० दिनेपर्युषणा होंवे तबभी पीछे १०० दिन रहते हैं। इसलियेभी ७० दिन रहनेका हमेशां नियत नियम नहीं है।

३– पचास दिन उल्लंघेतो सर्वशास्त्रोंमें उसका प्रायश्चित्त कहा है, मगर ७० दिन उल्लंघेतो किसीभी शास्त्रमे उसका प्रायश्चित्त नही कहा इसलियेभी७० दिनका हमेशां नियतनियम नही ठहरसकताहै.

४- ५० दिनतो ग्रामादिक न होवे तोभी जंगलमें वृक्षनीचेभी अवश्यही पर्युषणा करनेकी आवश्यकता बतलाईहै, और ७० दिनकी स्वाभाविक गिनती बतलाई है,परंतु वैसीही ७०दिनकी आवश्यकता नहींबतलाई,इसलियेभी७०दिनका हमेशां नियत नियम नहींहै.

५- ७० दिवसकापाठ मासवृद्धिके अभावसंबंधी है, इसलिये उसको मासवृद्धि होनेपरभी आगेकरना व उसपर आग्रहकरना सो शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायविरुद्ध होनेसे सर्वथा योग्य नहीं है.

६- इन्हीं समवायांगसूत्रके टीकाकार महाराजने स्थानांगसूत्रवृत्तिमें, मासवृद्धि होवे तब पर्युषणाके पिछाडी कार्त्तिकतक १००दिन ठहरनेकाकहाहै, उसको उत्थापनकरना और शास्त्रकार महाराजके अभिप्राय विरुद्ध होकर १०० दिनकी जगहभी ७० दिन ठहरनेका आग्रह करना सो आत्मार्थियोंको कभी योग्य नहीं है।

७- निशीथचूर्णि-बृहत्कल्पचूर्णि--वृत्ति--पर्युषणाकल्पनिर्युक्ति--चूर्णि-वृत्ति-गच्छाचारपयन्नवृत्ति-जीवानुशासनवृत्ति वगैरह प्राचीन शास्त्रोंमें, वर्षास्थितिकेलिये कालावग्रहमें, जघन्यसे ७० दिन, मध्यमसे ७५-८०-८५-९०-९५ यावत् १२० दिन, और उत्कृष्टसे १८० दिनका कालमान प्रमाण बतलाया है, उसके अंदरमेंसे एक दिनमात्रभी गिनतीमें नहीं छूट सकता. जिसपरभी शास्त्रविरुद्ध होकर वर्षास्थितिके अनियत व जघन्य७०दिनके नियमको हमेशां नियत नियम ठहरानेका आग्रह करनासो विवेकीयोंको सर्वथा योग्य नहींहै॥

८- निशीथचूर्ण्यादिमें द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावसे पर्युषणाकी स्थापना करनी बतलायी है, उसमें कालस्थापना संबंधी समय-आवलिका-मुहूर्त्त-दिन-पक्ष-माससे अधिक महीनेकेभी ३० दिनोंकी गिनती सहित प्रत्येक दिवसको पर्युषणासंबंधी कालस्थापनाके अधिकारमें गिनतीमेंलियेहैं,इसलिये पर्युषणासंबंधी दिनसंख्यामेंसे एक दिनभी गिनतीमें निषेध नही होसक्ताहै, जिसपरभी जघन्य ७० दिनके अनियत नियमको मास बढनेपरभी आगे करते हैं. और फिर अधिकमहीनेके ३० दिन गिनतीमें छोडकर १०० दिनके ७० दिनभी अपनी कल्पनासे बना लेते हैं, सो सर्वथा चूर्णिके विरुद्ध है, इसका विशेष विचार तत्त्वज्ञजन स्वयं कर लेवेंगे।

९- सीत्तर दिनका नियत नियम न होनेसे ७० दिनके ऊपर ज्यादे दिनभी होते हैं, और " वासावासाए अणावुट्ठीए, आसोए कत्तिए वा निग्गंताणं, अट्ठ अतिरित्ता भवंति " इत्यादि निशीथचूर्णि,

बृहत्कल्पचूर्णि,पर्युषणाकल्पचूर्णि, वृत्ति आदि अनेकशास्त्रोंमें लिखे मुजब वर्षाके अभावसे आसोजमें विहार करें; तो ७० दिनसे कमती भी ४०दिन, या ४५-५० दिनभी होतेहैं। देखो- पहिले ५० दिने वार्षिक कार्य जब लग नहीं करें;तब तक विहार करनेमें आताथा. मगर अभी वर्तमानमें तो आषाढ चौमासी बाद विहार करनेकी रूढी नहीं है। तैसेही पहिले वर्षाके अभावसे आसोजमेंभी विहार करते थे, मगर अभीतो वर्षा नहीहोवे रस्तोंके कीचड सुककर रस्ते साफ होगयें होवें तो भी कार्त्तिक पूर्णिमा पहिले आसोजमें विहार करने की रूढी नही है, इसलिये वर्षाके अभावसे आसोजमें विहार नहीं कर सकते. और कभी दो आसोज होवें तो भी कार्त्तिक तक १०० दिन ठहरतेहैं। इसलियेभी ७० दिनका हमेशां नियत नियम नहींहै। इस बातको विशेष तत्त्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे।

२७-महीना बढे तब होली, दीवाली वगैरह लौकिक पर्व पहिले महीनेमें होवें या दूसरे महीनेमें होवें?

देखो- कितनेक पर्व पहिले महीनेमें होते हैं, और कितनेक पर्व दूसरे महीनेमेंभी होते हैं. जब दो भाद्रपद होवेंगे; तब जन्माष्टमी का पर्व पहिले भाद्रपदमें करते हैं, और गणेश चौथका पर्व दूसरे भाद्रपदमें करतेहैं. तथा जब दो आसोज होवेंगे तब श्राद्धपक्ष पहिले आसोजमें करतेहैं, और दशहराका पर्व दूसरे आसोजमें करते हैं. तथा दो कार्त्तिक होवे तब दीवाली पर्व पहिले कार्तिकमें करते हैं. इसीतरहसे बारहहीमासोंके पर्व कार्य कृष्णपक्षसंबंधीपर्व पहिले महीनेमें और शुक्लपक्ष संबंधी पर्व दूसरे महीनेमें समझ लेना. और " मलमासो द्वेधा अधिक मासः-क्षयमासश्चेति। तदुक्तं काठकगृह्ये। यस्मिन् मासे न संक्रांतिः, संक्राति द्वयमेव वा मलमासो स विज्ञेयो मासः स्यात् तु त्रयोदशः। तथा च उक्तं हेमाद्रि नागर खंडे। नभो वा नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् सप्तमःपितृपक्षः स्यादन्यत्रेव तु पंचमः। इत्यादि " निर्णयसिंधु, धर्मसिंधु, निर्णयदीपकादि लौकिक धर्मशास्त्रोंके प्रमाणानुसार, आषाढ चौमासीसे पांचवा पितृपक्ष (श्राद्धपक्ष) होताहै, मगर जब श्रावण, भाद्रपद बढे तब उसकी गिनतीसे सातवा [७] श्राद्धपक्ष होताहै, इसलिये लौकिकवाले भी अधिकमहीनेके३०दिन गिनतीमें लेतेहैं. जिसपरभी लौकिकवाले अधिकमहीनेके ३०दिन गिनतीमें नहीलेते,या प्रथम महीनेमें दीवाली

व जन्माष्टमी वगैरह पर्वकार्य नहीं करते; ऐसा जान बुझकर मायामृ-षा कथन करना और बालजीवोंको उलटा रस्ता बतलाना भवभीरु आत्मार्थियोंको सर्वथा योग्य नहीं है।

२८– गणेश चौथके पर्वकी तरह पर्युषणा पर्वभी दूसरे भाद्रपदमें हो सकें या नहीं ?

भो देवानुप्रिय ! गणेश चौथका पर्वतो मास प्रतिबद्ध होनेसे मासवृद्धिके अभावमें आषाढ चौमासीसे दूसरे महीनेके चौथेपक्षमें ५० दिने भाद्रपदमें होताहै. मगर कभी श्रावण या भाद्रपद बढे तब तो तीसरे महीनेके छठ्ठे पक्षमें ८० दिने दूसरे भाद्रपद होताहै। इसी-तरह मास बढनेके अभावमें अढाई (२॥) महीनोंसे पांचवा श्राद्धपक्ष होताहै. मगर श्रावणादि मासबढे तब तो साढेतीन (३॥) महीनोंसे सातवा श्राद्धपक्ष होताहै, तथा दीवालीपर्वभी मासवृद्धिके अभावमें ३॥ महीनोंसे ७ वें पक्षमें कार्तिकमें होता है, मगर श्रावणादि ब-ढे तबतो साढेचार (४॥) महीनोंसे ९ में पक्षमें होता है. यह बात प्रत्यक्षप्रमाणसे जगत्प्रसिद्ध सर्वजन सम्मतही है. और पर्युषणापर्व तो दिन प्रतिबद्धहोनेसे दूसरे महीनेके चौथेपक्षमें ५०दिने अवश्यही करने सर्वशास्त्रोंमेंकहेहैं.इसलिये गणेशचौथके पर्वकी तरह पर्युषणा-पर्वभी दूसरेभाद्रपदमें करें तो तीसरेमहीनेके छठ्ठेपक्षमें ८०दिनहोनेसे शास्त्रविरुद्धहोताहै,इसलिये दूसरेभाद्रपदमें पर्युषणापर्व नहीहोसक-ते. किंतु दूसरेमहीनेके चौथेपक्षमें ५० दिने प्रथमभाद्रपदमेंही करना शास्त्रानुसार होनेसे आत्मार्थियोंको योग्यहै। इसलिये मासप्रतिबद्ध लौकिक गणेशचौथकी तरह दिनप्रतिबद्ध लोकोत्तर पर्युषणापर्वतो दूसरे भाद्रपदमें ८०दिन होनेसे कभी नहीं होसकतेहैं. इसबातकोभी विशेष तत्त्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

२९–पहिले पौषादि मास बढतेथे तब कल्याणकादि तप; अपने वडील कैसे करतेथे ?

पहिले पौषादि मास बढतेथे तब दोनों महीनोंके चारों पक्षों-में–पहिले पक्षमें,या दूसरेपक्षमें, वा तीसरेपक्षमें, अथवा चौथेपक्षमें, जिसपक्षमें, जिसरोज, जिन जिन तीर्थंकर भगवान्के जो जो च्यव-न–जन्मादिकल्याणक हुएहोवे,उसमुजब उस उस पक्षमें, अर्थात्-दोनों महीनोंके ४पक्षोंमें ज्ञानीमहाराजोंकोपूछकर आराधनकरतेथे.यह अ-नादिकालसे ऐसीही मर्यादा चलीआतीहै। इसलिये अधिकमहीनेमें

कल्याणकादि तप नहींहोसकते, ऐसा कहना प्रत्यक्ष मृषाहै । देखो— अनंतकालसे अनंततीर्थंकर महाराजहोगये हैं, उन महाराजोंके च्यवन-जन्म-केवलज्ञानादि कल्याणक होनेमें, कोईभी पक्ष, कोईभी मास, कोईभी दिवस; या कोईभी वर्ष बाधक कभी नहींहोसकतेहैं, किंतु हरेक मास, हरेक पक्ष, हरेक ऋतु व हरेक दिवसमें होसकते हैं. इसलिये पहिले महीनेके या दूसरे महीनेके प्रथमपक्षमें या दूसरे पक्षमें जिसरोज च्यवनादि जो जो कल्याणक हुए होवें उसी महीनेके उसी पक्षमें उसीरोज उन्हीं कल्याणकोंका आराधनकरना शास्त्रानुसारही है. इसलिये इसको कोईभी निषेध नहीं कर सकता है । मगर अभी जैनपंचांगके अभावसे व ज्ञानीमहाराजके अभावसे अधिक पौषमें या अधिक आषाढमें कौन २ भगवान्के कौन २ कल्याणक हुए हैं, उनकी मालूम नहीं होनेसे तथा लौकिकटिप्पणामें हरेक मासोंकी वृद्धि होनेसे चैत्र-वैशाखादि महीने बढें तब भी परंपरागत ८४ गच्छोंके सभी पूर्वाचार्योंने लौकिक रूढीके अनुसार कितनेक पर्व प्रथम महीनेमें और कितनेक पर्व दूसरे महीनेमें करनेकी प्रवृत्ति रखीहै । उसी मुजब वर्तमानमेंभी करनेमेंआते हैं । देखिये-जैसे-कार्तिकमहीने संबंधी श्रीसंभवनाथस्वामीजीके केवलज्ञानकल्याणक, श्रीपद्मप्रभुजीके जन्म व दीक्षा कल्याणक, श्रीनेमिनाथजीके च्यवन कल्याणक और श्रीमहावीरस्वामीके निर्वाणकल्याणक व दीवालीपर्वादि कार्य दो कार्त्तिकहोंवे; तब प्रथमकार्त्तिकमेंकरनेमें आतेहैं; तथा दो पौष होवें तब श्रीपार्श्वनाथजीका जन्मकल्याणक पौषदशमीकापर्व प्रथम पौषमहीनेमें करनेमेंआताहै, और जब दो चैत्रमहीने होंवे तब श्रीपार्श्वनाथजीके केवलज्ञान कल्याणकादि पर्वकार्य उष्णकालके प्रथममहीनेके प्रथमपक्षमें अर्थात् पहिलेचैत्रमें करनेमेंआतेहैं. मगर श्रीमहावीरस्वामीके जन्मकल्याणक व ओलीआदिकपर्वतो उष्णकालके दूसरे महीनेके चौथे पक्षमें अर्थात् दूसरे चैत्रमें करनेमें आतेहैं. ऐसेही दोआषाढहोवें तब श्रीआदीश्वरभगवान्के च्यवनादि उष्णकालके चौथेमहीनेकेसातवेपक्षमें प्रथमआषाढमें करनेमेंआतेहै, और श्रीमहावीरस्वामीके च्यवनादि पांचवे महीनेके दशवेपक्षमें दूसरे आषाढमें करनेमेंआतेहैं इसीतरहअधिकमहीनेके दोनोंपक्षोंकीगिनतीसहित सर्व महीनोंके कार्य यथायोग्य कल्याणकादि तप वगैरह करनेमेंआतेहैं। इसलिये कल्याणकादि पर्वकार्योंमें अधिकमहीना गिनतीमें नहींलेते, ऐसाकहनासर्वथा अनुचितहै. इसकोविशेषतत्त्वज्ञजनस्वयंविचारलेंगे.

३०- जब अधिकमहीना होवे; तब तेरह महीनोंके संवच्छरी क्षामणों संबंधी खुलासा.

जैसे-इन्हीं भूमिकाके पृष्ठ २२ वें के मध्यमें २२ वें नंबरके लेख मुजब वार्षिक कार्य १२महीनेभी होवे, और जब महीना बढे तब तेरह महीनेभी होवें। तैसेही संवच्छरी क्षामणेभी १२ महीनेभी होवें और जब महीना बढे तब तेरह महीनेभी होवें,देखो-चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति, सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति, प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्ति, ज्योतिष्करंडपयन्नवृत्ति, निशीथचूर्णि वगैरह अनेक प्राचीन शास्त्रोंमेंभी, जब महीना बढे तब उस वर्षके १३महीनोंके २६ पक्ष खुलासा पूर्वक लिखे हैं. इसलिये १३ महीनोंके २६ पक्षोंके संवच्छरीमें क्षामणे करनेका ऊपर मुजब अनेक प्राचीनशास्त्रानुसारहै. जिसपरभी कोई कहेगा, कि-ऊन शास्त्रोंमें तो १३ महीनोंके २६ पक्षोंके संवच्छरीमें क्षामणेकरनेका नहींलिखा. मगर ऐसा कहनेवालोंको अतीव गहनाशयवाले शास्त्रोंके भावार्थको समझमें नहीं आया मालूम होता है, क्योंकि - देखो-उन शास्त्रोंमें, जैसे- पक्षका, चौमासेका, व वर्षका गणितसे जो जो प्रमाण बतलाया है, तैसेही उन्हीं शास्त्रोंके उन्हीं प्रमाण मुजब, पाक्षिक, चौमासी व वार्षिक पर्वादि कार्य करनेमें आते हैं, इसलिये जैसे-जिसवर्षमें १२ महीनोंके २४ पक्ष होवें, उसी वर्षमें १२ महीनोंके २४ पक्षोंके संवच्छरी प्रतिक्रमणमें क्षामणे करनेमें आते हैं। तैसेही उसी मुजब जब जिस वर्षमें अधिकमहीना होनेसे१३महीनोंके २६पक्ष होवें; तब उस वर्षमें १३ महीनोंके २६ पक्षोंके संवच्छरी प्रतिक्रमणमें क्षामणे करनेमें आते हैं. इसलिये उन शास्त्रोंमें १३ महीनोंके क्षामणे नहींलिखे, ऐसा कहना प्रत्यक्ष मिथ्या होनेसे आज्ञानताका कारण है।

औरभी देखिये आवश्यक बृहद्वृत्ति वगैरह प्राचीन शास्त्रोंमेंभी जहां जहां वार्षिक प्रतिक्रमणका अधिकार आया है, वहां वहांभी 'संवच्छर' शब्द लिखा है. सो संवच्छर शब्दके १२ महीनोंके २४ पक्ष, व १३ महीनोंके २६ पक्ष, ऐसे दोनों अर्थ आगमोंमें प्रसिद्धही हैं, इसलिये १२ महीनोंके २४ पक्षका अर्थ मान्य करके क्षामणोंमें कहना, और १३ महीनोंके २६ पक्षका अर्थ मान्य नहीं करना व क्षामणोंमेंभी नहीं कहना, यह तो प्रत्यक्षमेंही आगमार्थके उत्थापनका आग्रह करना सर्वथा अनुचित्त है, इसलिये दोनों प्रकारके अर्थ मा-

न्य करके उस मुजब प्रमाण करना आत्मार्थी सम्यक्त्व धारियोंको योग्य है. इसबातको विशेष तत्त्वज्ञ जन स्वयं विचार सकतेहैं । और इसविषयका विशेष खुलासाभी इसी ग्रंथके पृष्ठ ३६२ से ३८२ तक छपगया है, उसके देखनेसे सब निर्णय हो जावेगा ।

३१- पांच महीनोंके चौमासी क्षामणों संबंधी खुलासा.

पहिले जैनटिप्पणामें जब पौषमहीना वढताथा तबभी फाल्गुनचौमासा पांचमहीनोंका होताथा, तथा जब आषाढमहीना वढताथा तबभी आषाढ चौमासा पांच महीनोंका होताथा, तैसेही अभी वर्तमानमें लौकिक टिप्पणामें श्रावणादि वढतेहैं, तबभी कार्तिक चौमासा पांच महीनोंका होता है. यद्यपि सामान्य व्यवहारसे चौमासा ४ महीनोंका कहा जाताहै, मगर जब अधिकमहीना होवे तब विशेष व्यवहारसे निश्चयमें पांच महीनोंके १० पाक्षिक प्रतिक्रमण सर्व गच्छवालोंको प्रत्यक्षमेंही करनेमें आते हैं । और जितने मास पक्षोंका प्रायश्चित [दोष] लगा होवे, उतनेही मास पक्षोंकी आलोचना [क्षामणा] करना स्वयं सिद्धही है । और मास वढनेसे पांच महीनोंके दश पक्ष होनेपरभी उसमे; ४ महीनोंके ८ पक्षोंके क्षामणे करने और एकमहीनेके दो पक्षोंकी आलोयणा छोडदेनी यह सर्वथा अनुचित है । इसलिये ऊपर मुजब ३० वें नंबरके १३ मासी संवच्छरी क्षामणों संबंधी लेख मुजबही यथा अवसर पांच महीनोंके दशपक्षोंके चौमासेमें क्षामणेकरने शास्त्रानुसार युक्तियुक्तहोनेसे कोईभी निषेध कभी नहींकरसकता,इसकाभी विशेषखुलासा इसग्रंथके पृष्ठ३६२ से ३८२ तकके क्षामणोंसंबंधी लेखमें छपगयाहै, वहांसे जान लेना

३२- १५ दिनोंके पाक्षिक क्षामणों संबंधी खुलासा ।

जंबूद्वीपपन्नत्तिसूत्रवृत्ति, ज्योतिष्करंडपयन्नवृत्ति, लोकप्रकाशादि जैनज्योतिष्के शास्त्रानुसार तो जिसपक्षमें तिथिका क्षयहोवे, वो पक्ष१४दिनोंकाहोताहै और जिसपक्षमें तिथिकाक्षयनहोवे,वो पक्ष १५ दिनोंका होता है । मगर लौकिक टिप्पणामें तो अभी हरेक तिथियोंकी हानी और वृद्धि होतीहै,इसलिये कभी१३दिनोंकाभी पक्ष होता है, कभी १४ दिनोंकाभी पक्ष होताहै, कभी १५दिनोंकाभी पक्ष होता है और कभी १६दिनोंकाभी पक्ष होताहै,मगर व्यवहारसे१५ दिनोंका पक्ष कहाजाताहै. इसलिये व्यवहारसे पाक्षिकप्रतिक्रमणमे १५ दिनोंके क्षामणे करनेमेंआतेहैं.मगर निश्चयमें तो प्रतिक्रमण करनेके समय तक जितने रोजके कर्मबंधन हुए होंगे, उतनेही रोजके कर्मोंकी नि-

र्जरा होगी, किंतु ज्यादे कम कभी नहीं होसकेगी. इसलिये निश्चय और व्यवहारके भावार्थको समझे बिना शब्दमात्रको आगे करके विवाद करना विवेकी आत्मार्थियोंको तो योग्यनहींहै, इसकाभी विशेष खुलासा इसीग्रंथके क्षामणासंबंधी प्रकरणके लेखसे जानलेना.

३३–अपेक्षा विरुद्ध होकर आग्रह करना योग्य नहीं है।

मासवृद्धिके अभावमें ४महीनोंके चौमासीक्षामणे, व १२ महीनोंके संवच्छरी क्षामणे करनेका कहाहै. उसकी अपेक्षा समझे बिना ही मासबढनेपरभी उसीपाठको आगे करना और ५ महीनोंके १०पक्ष, व १३ महीनोंके २६ पक्ष शास्त्रोंमें लिखेहैं. उन पाठोंको छुपादेना. यह तत्त्वज्ञ आत्मार्थियोंको योग्यनहींहै,इसीतरह जब पौष व चैत्रादि महीनेबढें तब प्रत्येकमहीनेके हिसाबसे विहारकरनेवाले मुनिमहाराजोंको एककल्प चौमासेका और नवमहीनोंके नवकल्प मिलकर दशकल्पीविहार प्रत्यक्षमें होताहै। जिसपरभी महीनाबढनेके अभावसंबंधी एककल्प चौमासेका और ८महीनोंके ८ कल्प मिलकर ९ कल्पीविहार करनेका पाठबतला करके मासबढे तबभी दशकल्पी विहारको निषेधकरनेकेलिये भोलेजीवोंको संशयमेंगेरना यहभीविवेकी सज्जनोंको सर्वथा योग्यनहीं है, इसीतरह मासबढनेके अभावकी अपेक्षासंबंधी हरेकबातोंको मासबढनेपरभी आगेलाकर उसका आग्रहकरना और मासवृद्धिकी अपेक्षावाले शास्त्रोंकीबातोंको छोडदेना सर्वथा अनुचितहै. इसको विशेषतत्त्वज्ञ पाठकगण स्वयंविचार लेवेंगे.

३४– विषय छोडकर विषयांतर करना योग्य नहीं है।

५० दिनोंकी गिनतीसे दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्वका आराधनकरनेकी अपनेही पूर्वाचार्योंकी सत्यबातकोग्रहण करसकते नहीं और पचास दिनोंकी गिनती उडानेके लिये ऐसा कोई दृढ बाधक प्रमाणभी दिखला सकते नहीं,इसलिये दिन प्रतिबद्ध पर्युषणाका विषयछोडकर.होली,दीवाली,ओली आदिक मास प्रतिबद्ध कार्योंके विषयकी बात बीचमें लाते हैं, सो भी यह असत्य आग्रहकी सूचना रूप विषयांतर करना योग्य नहीं है। क्योंकि ऐसे तो मासप्रतिबद्ध कार्योंमें कितनेही महीनें, और कितनेही वर्षभी छूट जातेहैं.देखो-मास प्रतिबद्धकार्य तो एक महीनेसे करनेके होंवे सो अधिक महीना होंवे तब एक महीनेकी जगह कितनेक पर्व दूसरे

महीनेभी किये जातेहैं। और दूज-पंचमी-अष्टमी-चतुर्दशी वगैरहमें उपवास करनेका, ब्रह्मचर्य पालनेका, रात्रिभोजन त्याग करनेका इत्यादि व्रत, नियम पच्चख्खाण तो दोनों महीनोंमें दो दो वार करनेमें आतेहैं। और पर्युषणापर्व तो मास वढे तो भी ५० दिनकी जगह ५१वें दिनभी कभी नहींहोसकते हैं. इसलिये दिन प्रतिवद्ध पर्युषणापर्वके साथ,मास प्रतिवद्ध होली, दीवाली दशहरा वगैरहका विषय लाना सो विषयांतर होनेसे सर्वथा अनुचित है।

और महीनावढनेके अभावमें ओलियोंका पर्व छठे महीने करनेका शास्त्रोंमें कहाहै, मगर जब कभी महीना वढजावे तवतो प्रत्यक्ष प्रमाणसे और शास्त्रीय हिसावसेभी सातवें (७) महीने ओलीयोंकापर्व होताहै. तो भी व्यवहारसे छठे महीने आंवीलकी ओलियें करनेका कहाजाता है. देखो जैसे– श्रीआदीश्वरभगवान्‌ने चैत्र वदी ८ [गुजरातदेशकी अपेक्षासे फागण वदी ८] को दीक्षा अंगीकारकी थी और दीक्षाके दिनसे लेकर तपस्याका पारणा दूसरे वर्षमें वैशाखशुदी३ को हुआथा, तोभी व्यवहारसे सर्व शास्त्रोंमें वर्षी तपका पारणा लिखा है. और ऐसेही वर्षीतपका पारणा सर्व कोई जैनीमात्र अभीभी कहते हैं. मगर दिनोंकी गिनतीसे तो १३ महीनोंके ऊपर १० दिन होनेसे ४००दिन पारणाके रोज होतेहैं. जिसमेभी कदाचित उस वर्षमें बीचमें अधिक महीना आजावे तो १४ महीनेके उपर १० दिन होनेसे ४३०दिनेपारणा होताहै. तोभी व्यवहारसे वर्षी तप करनेका कहाजाताहै, और यह बात तो अभी वर्तमानमेंभी वर्षी तप करनेवालोंके सर्वके अनुभवमें प्रत्यक्षही आती है, इसलिये ४३० दिने पारणा करते हैं, तोभी व्यवहारसे वर्षीतपही कहते हैं। और व्यवहारसे वर्षके ३६० दिन होते हैं, मगर निश्चयमें तो ४३० दिने पारणा करनेका बनता है. तो भी किसी तरहका विसंवाद या दोष नहीं आ सकता. इसी तरहसेही व्यवहारसे ओली ६ महीने, चौमासा ४ महीने व वार्षिक पर्व १२ महीने करनेका कहतेहैं. मगर जब बीचमें अधिक महीना आजावे तब तो निश्चयमें, ओली७महीने, चौमासा ५ महीने,व वार्षिकपर्व१३महीने होताहै.तोभी तत्त्वदृष्टिसे कोई तरहका विसंवाद या दोष कभी नहींआसकताहै.मगर पर्युषणापर्व तो अधिक महीना होवे तबभी आषाढ चौमासीसे वर्षाऋतुके ५० वें दिनकी जगह५१वें दिनभी कभी नहीं होसकते. इसलिये मास प्रतिवद्ध होली, दीवाली,ओली वगैरहका दृष्टांत दिन प्रतिवद्ध पर्युषणामें वतलाना सो

विषयांतर होनेसे सर्वथा शास्त्रविरुद्धहै और व्यवहारसेभी प्रत्यक्ष अनुचितहै,इसबातको विशेष तत्त्वज्ञ पाठकजन स्वयंविचार लेवेंगे ।

३५ – लौकिक श्रावणादि अधिक महीनोंकी तरह क्षयमहीनेभी मान्यकरने योग्य हैं या नहीं ?

पर्युषणापर्वादि धार्मिककार्योंके करनेका भेदसमझे बिनाही अधिक महीनेके ३० दिनोंमें चौमासी व पर्युषणादिपर्वकार्य नहींकरनेका कितनेक लोगआग्रह करतेहैं,मगर कभी कभी श्रावणादि अधिकमहीनेवाले वर्षमें कार्त्तिकादि क्षयमासभी बीचमें आतेहैं, तबतो कार्त्तिक महीनेसंबंधी श्रीवीरप्रभुके निर्वाण कल्याणकका तप,दीवालीका पर्व, श्रीगौतमस्वामीके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका महोत्सव,ज्ञानपंचमीका आराधन,चौमासी प्रतिक्रमण व कार्त्तिक पूर्णिमाका उच्छव वगैरह सर्वकार्य तो उसी क्षयकार्त्तिकमासमेंही करतेहैं. और लौकिकमें अधिकमहीना या क्षयमहीना दोनों बरोबरही मानेहैं। जिसपरभी क्षय मासमें दीवालीपर्वादि धर्मकार्य करते हैं । और अधिक महीनेमें पर्युषणापर्वादि धर्मकार्य नहीं करनेका कहतेहैं । यहतो प्रत्यक्षमेंही पक्षपातका झूठा आग्रहहीहै. सो आत्मार्थियोंको तो करनायोग्य नहींहै । इसलिये अधिकमहीनेमें और क्षयमहीनेमेंभी धर्मकार्य करने उचित हैं, इनमें कोईभी बाधा नहीं आसकती. इस बातकोभी विवेकीतत्त्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे ।

३६–वार्षिक क्षामणे;या प्राणियोंके कर्मबंधन; व आयु प्रमाणकी स्थिति; किस २ संवत्सरकी अपेक्षासे मानते हैं ?

जैनशास्त्रोंमें पांच प्रकारके संवत्सर मानेहैं, जिसमें नक्षत्रोंकी चालके प्रमाणसे ३२७ दिनोंका नक्षत्र संवत्सर मानतेहैं । चंद्रकी चालके प्रमाणसे ३५४ दिनोंका चंद्रसंवत्सर मानते हैं । फलफूलादिक होनेमें कारणभूत ऋतु प्रतिबद्ध ३६० दिनोंका ऋतुसंवत्सर मानतेहैं । तथा जब अधिकमहीनाहोवे तब१३महीनोंके३८३दिनोंका अभिवर्द्धित संवत्सर मानतेहैं । और सूर्यके दक्षिणायन व उत्तरायनके प्रमाणसे ३६६ दिनोंका सूर्य संवत्सर मानतेहैं । और पांच सूर्यसंवत्सरोंके प्रमाणसेही१८३०दिनोंका एक युग मानतेहैं। इसी एक युगके १८३० दिनोंका प्रमाण पांचोंही प्रकारके संवत्सरोंके हिसाबसे मिलनेकेलियेही, एक युगमें दो चंद्रमास बढते हैं,सात नक्षत्रमास बढते हैं, और एक ऋतुमास बढताहै,तब सब मिलकर१८३०दिनोंका एक

युग पूराहोताहै. और एक युगके सभी दिनोंको अभिवर्द्धित महीनेके हिसाबसे गिननेमेंआवें तबतो कुल ५७ अभिवर्द्धित महिनोंसेही१युग पूराहोताहै। इसलिये शास्त्रोंके नियमसे तो अधिकचंद्रमासके या अधिकनक्षत्रमासके किसीभी महीनेके एकदिनकोभी गिनतीमें निषेध करनेवाले तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनके प्रमाणका भंग करनेवाले होनेसे,उन महाराजोंकी आशातनाके भागी बनतेहैं.क्योंकि चंद्रादि अधिकमहीनोंके दिनोंकीगिनती सहितही पांच वर्षोंके एक युगके १८३० दिनोंका प्रमाण पूरा होसकता है, अन्यथा कभी पूरा नहीं होसकता है.

और तिथि, वार, मास, पक्षादि व्यवहार चंद्रमासके हिसाबसे चंद्रसंवत्सरकी अपेक्षासेमानतेहैं। और प्राणियोंके कर्म बंधनकी स्थिति व आयुप्रमाणकी स्थिति सूर्यमासके हिसाबसे सूर्यसंवत्सरकी अपेक्षासे मानतेहैं, इसलिये सूर्यसंवत्सरके हिसाबसेही मास, अयन, वर्ष, युग, पूर्व, पूर्वांग, पल्योपम, सागरोपमादिकके काल प्रमाणसे ४ गतियोंके सर्वजीवोंके आयुका प्रमाण व आठोंही प्रकारके कर्मोंकी जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टस्थितिके बंधका प्रमाण, और उत्सर्पिणी अवसर्पिणीकालसे कालचक्रकाप्रमाण, यहसर्वबातें सूर्यसंवत्सरकी अपेक्षासेमानतेहैं. इसकाअधिकार लोकप्रकाशादि शास्त्रोंमें प्रकटहीहै। और वार्षिकक्षामणे करनेका तो चंद्रमासके हिसाबसे चंद्रसंवत्सरकी अपेक्षासेमानते हैं, मगर चंद्रसंवत्सरके ३५४ दिन होतेहैं. तो भी व्यवहारिकरूढीसे एकवर्षके ३६० दिनकहनेमें आतेहैं. तैसेही जब महीना बढे तब उसवर्षके १३महीनोंके ३९०दिनकहनेमें आतेहैं. मगर कितनेक लोग ऋतु संवत्सरकी अपेक्षासे ३६० दिनोंके वार्षिक क्षामणे करनेकाकहतेहैं,परंतु ऋतु संवत्सर तो पूरे ३६० दिनोंका होताहै, उसमें कोईभी तिथिकेक्षय होनेकाअभावहै, व तीसरे वर्षमें महीना बढनेकाभी अभावहै, और चंद्रसंवत्सर ३५४ दिनोंका होनेसे संवत्सरीके रोज चंद्र संवत्सर पूरा होसकता है, मगर ऋतुसंवत्सर पूरा नहीं होसकताहै,और तिथि, वार, मास, पक्ष, वर्षका व्यवहारभी ऋतुसंवत्सरकी अपेक्षासे नही चलता, किंतु चंद्र संवत्सरका अपेक्षासे चलताहै, और ऋतु संवत्सरके ३६० दिनतो संवत्सरीका पर्व हुए बाद ६ रोजसे दशमीको पूरे होतेहैं,और संवत्सरी पर्वतो ४ या ५ को करनेमें आता है, इसलिये वार्षिक क्षामणे ऋतुसंवत्सरकी अपेक्षासे नहीं, किंतु चंद्रसंवत्सरकी अपेक्षासे कर

नेका समझना चाहिये. और ३५४ दिने, या ३८३ दिने संवत्सरीपर्व होता है, तोभी ३६० दिन,या ३९०दिन कहनेमें आतेहैं, सो ऋतुसंवत्सरसंबंधी नही,किंतु चंद्र या अभिवर्द्धित संवत्सरसंबंधी व्यवहारसे कहनेमें आते हैं. देखो-चंद्रमासकी अपेक्षासे एक पक्ष १४ दिन ऊपर कुछ भाग प्रमाणे होता है, मगर पूरे १५ दिनोंका नहीं होता, तो भी व्यवहारमें लोकसुखसे उच्चारण करसकें; इसलिये १५ दिनोंका एकपक्ष कहनेमें आताहै। यह अधिकार ज्योतिष्करंडपयन्नवृत्ति वगैरह शास्त्रोंमे खुलासालिखाहै। इसीतरहसे महीनेके३०दिन या वर्षके३६०दिनभी व्यवहारकी अपेक्षासे समझने चाहिये, मगर निश्चय में तो जितने दिनोंसे संवत्सरीपर्वमें वार्षिक क्षामणे होवेंगे उतनेही दिनोंके कर्मोंकीनिर्ज्जराहोगी,किंतु ज्यादे कम कभीनहीं हो सकेगी।

और संजलनीय, प्रत्याख्यानीय, अप्रत्याख्यानीय कषायकी अनुक्रमसे,एक पक्षके१५दिन,४महीनोंके१२०दिन,व १२ महीनोंके३६०दिनोंके एक वर्षकी स्थितिकाप्रमाण शास्त्रोंमें बतलायाहै,सो,व्यवहारसे बतलायाहै,मगर निश्चयमें तो रागद्वेषादि तीव्र परिणामोंके अनुसार न्यूनाधिकभी बंध पडसकताहै. इसलिये उसकी स्थितीके प्रमाणकी गिनती सूर्य संवत्सरकी अपेक्षासे होती है। और क्षामणे तो चंद्रसंवत्सरकी अपेक्षासे व्यवहारसे करनेमें आतेहैं,सो ऊपरमें इसबात का खुलासा लिख चुकेहैं। इसलिये एकवर्षके ३५४दिन होने परभी व्यवहारिक दृष्टिसे ३६० दिनोंके क्षामणे करनेका, और कषायादि कर्मोंकीस्थिति परिपूर्ण ३६० दिनतक निश्चय भोगनेका,दोनों विषय भिन्न२ अपेक्षासे, अलग२ संवत्सरोंसंबंधीहैं,इसलिये इन्होंके आपसमें कोई तरहका विरोधभाव कदापि नही आसकता.जिसपरभी चंद्रसंवत्सरसंबंधी व्यवहारिकक्षामणकरनेका, और सूर्यसंवत्सरसंबंधी निश्चयमें कर्मोंकीस्थिति पूरेपूरीभोगनेका रहस्यको समझेविनाही अधिकमहीनेके३०दिनोंको गिनतीमें लेनेका छोडदेनेकेलिये, अधिकमहीनेकोगिनतीमे लेवें,तो कषायकीस्थितिका प्रमाणबढजानेसे मर्यादा उल्लंघन होनेकाकहते हैं, सो शास्त्रोंके मर्मकोनही जाननेके कारणसे अज्ञानताजनक होनेसे सर्वथा मिथ्याहै.देखो-एकयुगके दोनों अधिक महीनोंके दिनोंकोगिनतीमें नहीलेवें तो सूर्यसंवत्सरका प्रमाणभीपूरा नहीं हो सकताहै,इसलिये दोनों अधिकमहीनोंके दिनोंको अवश्यमेव गिनतीमें लेनेसेही पांच सूर्यसंवत्सरोंके एक युगमें १८३० दिन पूरे होसकते हैं. इसलिये अधिकमहीना गिनतीमें कभी नहीं छुट सकता

और भी देखो-३५४ दिने संवत्सरी प्रतिक्रमण करें,तो भी व्यवहार में ३६०दिनोंकेक्षामणे करनेमें आतेहैं,मगर अप्रत्याख्यानीय कषायके ३६० दिनोंके एक वर्षकी पूरेपूरी स्थितिका निश्चयमें बंध पडा होवे वह बंध, ३५४ दिनोंमें (३६०दिनोंका) कभी क्षय न हो सकेगा,किंतु वो तो समय २ के हिसाबसे पूरे पूरे ३६० दिनही भोगने पडेंगे । इ-सीतरहसे चौमासी, व पाक्षिककाभी भावार्थ समझलेना. इसलिये व्यवहारिक क्षामणे करनेके साथ निश्चय संबंधी कर्मबंधनकी स्थितिका दृष्टांतसे भोले जीवोंको मर्यादा उल्लंघन होनेका भय बतलाते हुए अपनी विद्वत्ताके अभिमानसे अधिकमहीना निषेध करना चाहते हैं, सो प्रत्यक्ष शास्त्रविरुद्ध होनेसे सर्वथा अनुचित है ।

३७— चूलिका संबंधी एक अज्ञानता ॥

कितनेक लोग शास्त्रोंके रहस्यको समझे बिनाही कहतेहैं, कि-जैसे-एक लाख योजनके मेरुपर्वतमें उनकी चूलिका नहीं गिनी-जाती है, तैसेही १२ महीनोंके एक वर्षमें अधिकमहीनाभी नहीं गिना जाता । ऐसा कहकर अधिकमहीनेकी गिनती उडाना चाहते हैं,सो उन्होंकी अज्ञानताहै,क्योंकि एक लाख योजनके मेरुपर्वत ऊपर ४० योजनकी उंची चूलिका है,उसपर एक शाश्वत जिन चैत्य है, उनमें १२०शाश्वती श्रीजिनप्रतिमायें हैं, इसलिये ४० योजनकी चूलिकाके प्रमाणकी गिनतीसहित विशेषतासे एक लाख योजनके ऊपर४०यो-जनके मेरुपर्वतका प्रमाण क्षेत्रसमासादि शास्त्रोंमें खुलासालिखाहै, तैसेही १२महीनोंके३५४दिनोंके एकवर्षके प्रमाण उपर अधिकमही-नेके ३०दिनोंकी गिनतीसहित ३८३दिनोंकोभी एक वर्षकी गिनतीमें लियेहैं, इसलिये चूलिकाके दृष्टांतसे अधिकमहीना गिनतीमें निषे-ध नहीं होसकता, मगर गिनतीमें विशेष पुष्ट होता है । औरभी दे-खो-पंचपरमेष्ठिमंत्र कहनेसे सामान्यतासे पांच पदोंके ३५ अक्षरों-का नवकार कहाजाताहै, मगर उसपरकी ४ चूलिकाओंके ४ पदोंके ३३ अक्षर साथमें मिलनेसे विशेषतासे नवपदोंके ६८ अक्षरोंका 'नवकार मंत्र' चूलिकाओंके प्रमाणकी गिनतीसहित कहनेमें आता है. इसी तरहसे दशवैकालिक व आचारांगसूत्रकी दो दो चूलिका-ओंका प्रमाणभी गिनतीमें आताहै. तैसेही सामान्यतासे एक लाख योजनका मेरुपर्वत,व १२महीनोंका एकवर्ष व्यवहारसे कहनेमेंआता है मगर विशेषतासे निश्चयमें तो चूलिकाके प्रमाणकी गिनतीसहित एक लाख चालीस योजनका मेरुपर्वत, व अधिक महीनेकी गिनती

सहित १३ महीनोंका अभिवार्द्धत वर्ष कहनेमें आताहै,सो सर्व शास्त्र प्रमाणोंसे प्रकटही है इसलिये अधिक महीना व मेरुचूलिका वगैरह सब विशेषतासे गिनतीमें आतेहैं, जिसपरभी चूलिकाके नामसे अधिकमहीना गिनतीमें निषेधकरतेहैं, उनोंकी अज्ञानताहै ।

३८- पर्युषणा पर्व शाश्वत है; या अशाश्वत है ?

यद्यपि पांच भरतक्षेत्रोंमें व पांच ऐरवर्तक्षेत्रोंमें चौवीश तीर्थंकरमहाराजोंके शासनमें प्रथम और चौवीशवें तीर्थंकर महाराजके साधुओंको चौमासा ठहरने व पर्युषणापर्व करने संबंधी निज निज तीर्थकी अपेक्षासे तो पर्युषणापर्व अशाश्ववत है, मगर अनादि कालकी अपेक्षासे तो शाश्वतही है. इसलिये तीनों चौमासीपर्व;या पर्युषणापर्व; वा आसो, चैत्रकी ओलियोंका अट्ठाईपर्व आनेसे,भुवनपति-व्यंतर-ज्योतिषी और वैमानिक इंद्रादि असंख्य देव देवी, अपने समुदाय सहित देवलोक संबंधी अनंत सुखको छोडकर,आठवा नंदीश्वरद्वीपमें जाकर वहां शाश्वत चैत्योंमें श्रीजिनेश्वरभगवान्के शाश्वत जिनबिंबोकी जल-चंदन-पुष्पादिसे द्रव्यपूजा व स्तवन नाटक वाजित्रादिसे भावपूजा करते हुए महोत्सव करके अपनी आत्माको निर्मल करते हैं । यह अधिकार श्रीजिवाभिगमसूत्र और उनकी टीकावगैरह बहुत शास्त्रोंमें खुलासा लिखा है. इसी प्रकार पर्युषणादि पर्व आराधन करनेकेलिये जैनीमात्र सर्वश्रावकोंकोंभी विशेपरूपसे धर्मकार्यकरनें योग्य हैं, इसकाभी विशेष खुलासा ' पर्युषणा अट्ठाई व्याख्यान ' में और कल्पसूत्रकी सवीटीकाओंमें सर्वत्र प्रकटही है, इसलिये यहांपर विशेष लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

३९ – पर्युषणाके विवाद संबंधी सत्यकी परीक्षा करो.

जिनाज्ञानुसार सत्यग्रहण करनेंवाले आत्महितैषी सज्जनोंको निवेदन किया जाता है,कि- आगम-निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-वृति-प्रप्रकरणादि प्राचीन और आजकालके पर्युषणा संबंधी सर्व शास्त्रोंके पाठोंका,व सभी गच्छोंके पूर्वाचार्योंके वचनोंका इस ग्रंथमें मैंने संग्रह किया है । और इस भूमिकामेंभी वर्तमानिक सभी शंकाओंका नंबर वार अनुक्रमसे समाधानभी खुलासापूर्वक करके वतलाया है. और इसग्रंथमेंभी अधिकमहीनेके ३० दिनोंको गिततीमें लेनेका निषेध करनेंवाले प्रत्येक लेखकोंके सवी लेखोंको पूरेपूरे लिखकर, पीछे उन सब लेखोंकी पंक्ति पंक्तिकी अच्छी तरहसे समीक्षा करके [इसग्रंथमें] खुलासापूर्वक वतलाया हैं, मगर पर्युषणा संबंधी

किसीभी लेखककी शंकावाली एकभी बातको छोडी नहीं है। इस-लिये इस ग्रंथमें वादी और प्रतिवादी दोनोंके सब पूरे लेखोंको,और आगम पंचांगीके सर्व शास्त्र पाठोंको; पक्षपात रहित होकर न्याय बुद्धिसे संपूर्ण वांचने वाले सत्यके अभिलाषियोंको अवश्यही जिनाज्ञानुसार सत्य बातोंकी परीक्षा स्वयंही हो जावेगी. अल्पसंसारी आत्मार्थियोंके लिये तो इस ग्रंथमें लिखे मुजब इतना खुलासा बहुतही है. मगर दीर्घ संसारी भारी कर्मोंकी तो बातही अलग है.

४०– जिनाज्ञाकी दुर्लभता।

जैसे-पूर्वदिशा तरफ कोई अपना अभीष्ट नगर होवे;उसमें जानेकेलिये थोडा २ भी पूर्व दिशा तरफ चलनेसे अवश्यही उस नगरकी प्राप्ति होती है, मगर पूर्वदिशा छोडकर पश्चिम दिशामें बहुत २ चलें; तो भी वो नगर दूर दूरही जायगा, मगर नजदिक कभी नहीं आसकेगा. इसी तरह जिनाज्ञानुसार थोडा२ धर्मकार्य किया हुआभी मुक्ति रूपी अपना अभीष्ट नगरमें आत्माको पहुचाने वाला होता है, परंतु जिनाज्ञा विरुद्ध बहुत२तपश्चर्यादि धर्म ध्यान व्यवहार में करें; तो भी तत्त्वदृष्टिसे शून्य होनेसे मुक्तिनगरमें पहुंचाने वाला नहीं होता. किंतु संसार बढाने वालाही होता है। और वर्तमानिक आग्रही लोगोंकी भिन्न २ प्ररूपणा होनेसे भोले भव्य भद्र जीवोंको जिनाज्ञानुसार सत्यबातकी प्राप्ति होना अभी बहुत मुश्किल है.यही दशा पर्युषणासंबंधी विवादमेंभी हो गई है। इसलिये भव्यजीवोंको जिनाज्ञानुसार पर्युषणा जैसे अतीव उत्तम पर्वके आराधन होनेकी प्राप्ति होनेकेलिये आगम पंचांगी सम्मत,व सर्व लेखकोंकी शंकाओं का समाधान पूर्वक मैंने इसग्रंथमें इतना लिखा है। उसको अपने गच्छका आग्रह छोडकर तत्त्वदृष्टिसे पढनेवालोंको अवश्यही जिनाज्ञानुसार सत्यबातकी प्राप्ति हो जावेगी.

और मनुष्य भवमें शुद्ध श्रद्धा पूर्वक जिनाज्ञानुसार धर्म कार्य करनेकी सामग्री मिलना अनतकालसे अनंतभवोंमेंभी महान दुर्लभ है;वारंवार ऐसा सुअवसर कभी नहीं मिलसकता. इसलिये गच्छका पक्षपात, दृष्टिराग, लोकलज्जाकी शर्म, विद्वत्ताका झूठा अभिमान, जिनाज्ञाविरुद्ध अपने गच्छपरंपराकी रूढी, व बहुत समुदायकी देखादेखीकी प्रवृत्ति वगैरह बातोंको छोडकर जिनाज्ञानुसार सत्यग्रहण करनेमेंही आत्मसाधन होनेसे, नरकादि ४ गतियोंके जन्म-मरण-गर्भावास वगैरह अनत दुःखोंसे छुटना होताहै, इसलिये, जिना-

ज्ञानुसार सत्यबातको समझेबादभी जानबुझकर भोलेजीवोंकोउन्मार्गमें गेरनेकेलिये विद्वत्ताके मिथ्याही अभिमानसे शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायविरुद्धहोकर झूठी २ कुयुक्तियें लगाना संसारवृद्धि व दुर्लभबोधिका कारण होनेसे आत्मार्थियोंको सर्वथा योग्य नहींहै।

४१ – पर्युषणापर्व इधरके उधर कभी नहीं होसकते हैं.

कितनेक लोग जिनाज्ञानुसार धर्मकार्य करनेका मर्मभेद समझे बिनाही कहतेहैं. कि-पर्युषणापर्व अधिकमहीनाहोवे तब५०दिने करो तोक्या,या ८० दिनेकरो तोभी क्या,मगर आगे या पिछे कभी करने चाहिये. ऐसा कहनेवाले सोने व पितल दोनोंको एकसमान बनानेकी तरह जिनाज्ञानुसार सत्य बातको, और जिनाज्ञा विरुद्ध झूठी बातको, एक समान ठहराते हैं। इसलिये उन्होका कथन प्रमाणभूत नही होसकता, किंतु मोक्षके हेतुभूत जिनाज्ञानुसार ५० दिनेही पर्युषणा पर्वका आराधना करना अवश्यही योग्य है, मगर ८० दिने करना जिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे कदापि योग्य नहीं ठहरसकता.देखो-जमालि वगैरहोंने जप, तप, ध्यान, आगमोंका अध्ययन, परोपदेश, क्रिया अनुष्ठानादि हमेशां बहुत २ किये थे, तोभी वे जिनाज्ञाविरुद्ध होनेसे संसार बढाने वाले हुए, मगर यही क्रिया अनुष्ठान जिनाज्ञानुसार करते तो निश्चय उसी भवमें मोक्ष प्राप्त करने वाले होते, इसलिये आत्मार्थी भव्यजीवोंको जिनाज्ञानुसारही ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्वका आराधन करना योग्य है, मगर जिनाज्ञा विरुद्ध ८० दिने करना योग्य नहीं है। इसबातको भी विशेष तत्त्वज्ञ पाठक जन स्वयं विचार लेवेंगे।

४२ – पर्युषणा पर्वकी आराधना करनेके बदले विराधना करना योग्य नहीं है।

पर्युषणा जैसे आनंद मंगलमय परम शांतिके दिनोंमें जिनाज्ञानुसार धर्मकार्यकरके पर्वकी आराधना करते हुए, सर्वजीवोंसे मैत्रिभावपूर्वक शांततासे वर्ताव करना चाहिये। और वर्षभरके लगे हुए अतिचारोंकी आलोचना करके सबजीवोंके साथ भाव पूर्वक क्षमत क्षामणे करके अपनी आत्माको निर्मल करना चाहिये. जिसके बदले कितनेही आग्रही जन पर्युषणाकेही व्याख्यानमें सुबोधिका-दीपिका-किरणावली आदि वांचनेके समय;श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणक आगमोंमें कहेहैं.उन्होंको व अधिकमहीनेके३० दिन गिनतीमें लिये हैं; उन्होंको निषेध करनेकेलिये, कितनीही जगहतो शास्त्रविरुद्ध, व

कितनीही जगह प्रत्यक्ष मिथ्या कथनकरके आपसमेंही विशेषरूपसे खंडन मंडनके झगडे चलातेहैं, और पर्वदिनोंमें सबजीवोंकी जगह केवल जैनीमात्रसेभी मित्रता नहीं रख सकते, उससे मैत्रीभावनाका भंग, विरोधभावकी वृद्धि, व खंडन मंडनसे रागद्वेष करके कर्मबंधनका कारण करतेहैं। और शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करनेसे जिनाज्ञाकीभी विराधना करतेहैं, उससे परिणामोंकीभी मलिनता होनेसे पर्व दिनोंमें वर्षभरके अतिचारोंकी आलोचना करके आत्माको निर्मल करनेके बदले विशेषरूपसे मलिनकरतेहैं. और खंडन मंडनके झगडेके लिये सबजीवोंसे क्षमतक्षामणे करनेके बदले अपनेसर्व जैनीभाईयोंसेही क्षमतक्षामणे नहींकरसकते. उससे अनंतानुबंधी कषायके उदयहोनेका प्रसंगआनेसे सम्यक्त्वकी व संयमकी विराधना होकर संसारभ्रमणका कारणकरतेहैं. इसलिये कर्मक्षयकारक महामंगलमय शांतिके पर्वदिनोंके व्याख्यानमें श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक आगमोंमें कहेहैं उन्होंको, व अधिकमहीनेके ३० दिनोंको सर्वशास्त्रोंमेंगिनतीमे लियेहैं, उन्होंको निषेधकरनेकेलिये खंडनमंडनके विवादके झगडे कितनेक तपगच्छके मुनिमहाराज जो व्याख्यानमें चलातेहैं, सो पर्वकी विराधना करनेवाले, शांतिके भंग करनेवाले, अमंगलरूप अशांतिको बढानेवाले, व उत्सूत्रप्ररूपणासे संसार बढानेवाले होनेसे, तत्त्वदर्शी, विवेकी, आत्मार्थी भव भिरू, अल्पसंसारी सज्जनोंको अवश्यही छोडना योग्यहै । इस बातकोभी विशेष निष्पक्षपाति पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं ।

४३--पर्युषणाके मंगलिक दिनोंमें क्लेशकारक अमंगलिक करना योग्य नहीं है ।

यहबात व्यवहारसे प्रत्यक्ष अनुभवपूर्वक देखनेमें आती है, कि मांगलिकरूप वार्षिक पर्व दिन सुखशांतिसे हर्षपूर्वक व्यतीत होवे, तो, वो वर्षभी संपूर्ण सुखशांतिसे व्यतीत होता है, मगर मांगलिक रूप पर्वदिनोंमें किसीके साथ विरोधभाव कलेश होकर अमंगलरूप अपशुकन होंवे, तो वो वर्षभरभी चिंतासे कलेशमेंही जाताहै, इसलिये पर्वके दिनोंमें तो अवश्यही शांति रखना योग्य है। इसप्रकार व्यवहारिक बातकेभी विरुद्ध होकर तपगच्छके अभी कितनेही मुनिमहाराज पर्युषणा जैसेपरम मांगलिकके दिनोमेभी शांतिसे नहीं बैठते, और सुबोधिका-दीपिका-किरणावली वगैरहके विवादवाले विषय हाथमें लेकर श्रीमहावीरस्वामिके छ कल्याणक आगमपंचांगी अने

क शास्त्रोंमें कहेहैं उन्होंको, व अधिकमहीनेके ३० दिन सर्वशास्त्रोंमें गिनतीमेंलियेहैं,उन्होंको निषेधकरनेकेलिये अपने धर्मबंधुओंके सामने व्याख्यानमें अशांतिके हेतुभूत व अमंगलरूप आपसके खंडनमंडनसे विरोध भावके झगडे खडे करतेहैं, उससे 'जैसे राजा वैसी प्रजा' की तरह यही गुण श्रावकोंमेंभी प्रवेश करताहै, इसलिये वर्षभरके झगडे पर्युषणापर्वमें लाकर कलेशकरके विशेष कर्मबंधनकरतेहैं। इसलिये साधुओंके और श्रावकोंके दोनोंके आपसमें एक एककीनिंदाकरनेमें,अपनी झूठी २ बडाईकरनेमें,दूसरेका बिगाडकरनेमें, या कोई शासन उन्नतिके कार्यकरेंतो उनकी साह्यता करनेके बदले उसमे कोईभी अवगुण बतलाकर उसका खंडन करनेमें इत्यादि अमंगलरूप कलेशके कार्योंमें सब वर्षचला जाता है। इसलिये दिनोंदिन शासनकी यह दशा होती हुई चली जातीहै। और इससे अपने आत्माके कल्याणमें व परोपकारके कार्योंमेंभी विघ्न आते हैं, इसलिये मंगलिकरूप पर्वके दिनोंमें अमंगलिकरूप खंडन मंडनसंबंधी विरोधभावको आपसमेंखडाकरना सर्वथाअनुचितहै.और अपनी सचाई जमानेकेलिये खंडनमंडन वैरविरोधके झगडेही करनेकी इच्छा होतोभी पर्वदिन छोडकर अन्यभी वहुतदिन मौजूदहैं,मगर पर्युषणा पर्व अराधन करनेकेलिये सर्व गच्छवाले श्रावक मुनिराजोंके पास उपाश्रय,धर्मशालामें आवें; उसवखत अपने आपसके खंडनमंडनके विरोधभाववालीबातकोंचलाना यह कितनी बडीअनुचितबातहै. और मंगलिकरूप पर्वदिन किसीप्रकारसेभी कलेशकारक खंडनमंडनके विरोधभावसे अमंगलिकरूप न बनाकर शास्त्रानुसार शांतिसेपर्वकाआराधन होवेंतो आत्माभी निर्मलहोवें,वर्षभी हर्षपूर्वक सुखशांतिसे जावे,बुद्धिभी अच्छी होवे. और आत्म साधन व परोपकारभी विशेषरूपसे होवे, संपसे शासन उन्नतिके कार्योंमेंभी वृद्धि होनेसे वर्तमानिक यह दशाकाभी शीघ्र सुधारा होवे. इसलिये वार्षिक पर्वरूप पर्युषणा शांतिमय सर्वजीवोंके साथ मैत्रिभाव पूर्वक आराधन करके उसमें मांगलिकके कार्यकरने चाहिये। और विरोधभावके कारणरूप खंडन मंडनके अनुचित वर्तावको छोडनाही अपनेको व दूसरे भव्य जीवोंकोंभी कल्याणकारक है। और शासनकी उन्नतिकाभी हेतुभूत है. इसबातको जो आत्मार्थी निकट भव्य होंगे, सो दीर्घ दृष्टिसे खूब विचारेंगे, और ऊपर मुजब शास्त्रविरुद्ध अनुचित व्यवहारको छोडकर शास्त्रानुसार संप शांतिका उचित व्यवहारको अवश्यमेवही ग्रहण करेंगे, व दूसरोंकोंभी ग्रहण करावेंगे।

४४ – अभीके झूठे आग्रही जनोंकी मलीन बुद्धि; और सम्यक्त्वी मिथ्यात्वीकी परीक्षा.

कोईभी वादविवादके विषयकी चर्चा करनेमे पहिले वाले सम्यक्त्वी आत्मार्थी होतेथे, वो तो तत्त्वार्थकी दृष्टितरफ विचारकरके सत्य बातग्रहण करतेथे और अपना पक्ष छोडनेमें किसीप्रकारकीभी हानीनहीं समझतेथे. श्रीगौतमस्वामि आदिगणधर महाराजोंकी तरह तथा श्रीसिद्धसेनदीवाकर, श्रीहरिभद्रसूरिजीवगैरह उत्तमपुरुषोंकी तरह. और अभीके झूठे अभिमानी अंतर मिथ्यात्वी हठाग्रही होतेहैं, वो तो शास्त्रोंकी बातको मनमें समझने परभी अभिमानसे सत्यबातको ग्रहणकरके अपनाझूठा पक्ष छोडनेमें बडीभारी हानीसमझतेहैं, आनंदसागरजी, शांतिविजयजी वगैरहोंकीतरह (इसका खुलासा आगे लिखुंगा) और शास्त्रोंके अभिप्रायविरुद्ध होकर व्यर्थही झूठी २ कुयुक्तियें लगातेहैं, या विषयांतर करके सामनेवालेपर वा उनके समुदायपर विरोधभावको बढानेवाले आक्षेप करने लगजातेहैं। और मुख्यमुद्देके विवादको छोडकर निंदा ईर्षासे; राग, द्वेष करके विरोधभावसे अपनेको और दूसरोंकोभी कर्मबधन करानेमें हेतुभूत बनतेहैं. मगर झूठे आग्रहसे उत्सूत्रप्ररूपणा करके कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंको उन्मार्गमें गेरनेसे वा राग, द्वेष, निंदा, ईर्षासे विरोधभाव करनेसे संसार बढनेकाभय नहीं रखते हैं, इसलिये अभीके झूठे आग्रही जनोंकी मलीन बुद्धि कही जातीहै. इसीप्रकार पर्युषणा संबंधीभी यह ग्रंथ वांचे बाद अब देखनेमें आवेगा, कि–५०दिन प्रतिबद्ध पर्युषणाके विषयको छोडकर मासप्रतिबद्ध होली, दीवाली, दशहरा आदिके विषयांतरमें या अंगत आक्षेपकरनेमें कौन २ महाशय अपनेअंतरंग आत्माके कैसे२गुणप्रकाशित करेंगे, सो तत्त्वज्ञजनस्वयं देख लेवेंगे. इसलिये यहांपर अभीसे पहिले विशेषलिखनेकी कोई आवश्यकता नहींहै.

४५– इस ग्रंथ संबंधी लेखकोंको सूचना.

इस ग्रंथपर किसी तरहकाभी लेख लिखने वाले महाशयोंको सूचना करनेमें आती है, कि–जैसे–मैंने इसग्रंथमें सुबोधिका-दीपिका-किरणावली वगैरहके विवादवाले प्रत्येक लेखोंको पूरेपूरे लिखकर पीछे शास्त्रानुसार व युक्तिपूर्वक उसकी समीक्षामें खुलासा करके बतलाया है, मगर विवादवाली एकभी बातको छोडी नहींहै. वैसे ही इसग्रंथपर लेख लिखनेवाले आप लोगभी इसग्रंथके प्रत्येक वि-

षयको पूरेपूरा लिखकर पीछे उसपर अपना विचार सुखसे लिखें, मगर शास्त्रोंके पाठोंवाली सत्य२बातोंके पृष्ठकेपृष्ठ छोडकर कहींक- हींकी अधूरी २ बातें लिखकर,शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्राय वि- रुद्ध होकर संबंध बिनाके अधूरे २ पाठ लिखकरके कुयुक्तियोंसे स- त्य बातको झूठी ठहरानेका व भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेका उद्यम न करें. अन्यथा लेखकोंमें कितना न्याय व आत्मार्थीपनाहै, और स- म्यक्त्वका अंशभी कितनाहै, उसकी परीक्षा विवेकी विद्वानोंमें अ- च्छी तरहसे हो जावेगा, और उसको सभामें सिद्ध करके बतलाने- को तैयार होना पडेगा. फिर शास्त्रार्थ करनेमें मुह नहीं छुपाना विशेष क्या लिखें।

४६– उत्सूत्र प्ररूपणाके विपाक ॥

शास्त्रार्थ करनेको सभामें आमने सामने आनामंजूरकरना नहीं, व अपनाझूठा आग्रह छोडकर सत्य बातग्रहणभी करना नहीं. और विषयांतरकरके कुयुक्तियोंसे शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणाकरते हुए दृष्टिरा- गी व भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेका उद्यम करते रहना. उससे दृष्टिरागी, पक्षपाती, अज्ञानी लोग चाहे जैसे पूजेंगे,मानेंगे, मगर "उ सूत्त भासगा णं बाहि णासो अणंत संसारो" इत्यादि, तथा "सम्मत्तं उच्छिदीय, मिच्छत्तारोवणं कुणई नियं कुलस्स ॥ तेण सयलो वि वंसो, कुगई मुह समुहो नीओ ॥ १ ॥" इत्यादि, देखो– शास्त्रविरु- द्ध होकर उत्सूत्र प्ररूपणा करने वालेके बोधिबीज (सम्यक्त्व) का नाश होकर अनंत संसार बढता है, और जिसने अपने कुलमें, ग- णमें (गच्छमें),समुदायमें सम्यक्त्वका नाश करनेवाली मिथ्यात्वकी प्ररूपणाकी होवे, वो अपने सब वंशको, गच्छको, समुदायकोभी, दुर्गतिमें गेरनेवाला होताहै। शिवभूति--लुंका- लवजी--भीखम वगै- रह झूठे २ मत चलानेवालोंकी तरह इत्यादि भावको विचारो और संसारसे उदासीन भावधारण करनेवाले, आत्मार्थी, भव्यजीवोंको उन्मार्गका रस्ता बतलानेवाला 'शरणे आनेवालोंका विश्वासघा- तसे शिरच्छेदन करनेवालेसेभी' अधिक दोषी ठहरता है, और यह याद रखने योग्य बात है, कि–दृष्टिराग, लोकपूजा, मानता, व झूठा आग्रहका अभिमान परभवमें साथ न चलेगा. मगर उत्सूत्रप्ररूपक ८४लाख जीवायोनीका घात करनेवाला होनेसे उसके विपाक अव- श्यही भवांतरमें भोगे विना कभी नहीं छुटेंगे, इस बातपर खूब वि- चार करना चाहिये। और जिनाज्ञानुसार सत्यप्ररूपणा करके भव्य-

जीवोंको मुक्तिमार्गका रस्ता बतलानेवाले ८४ लाख जीवायोनीके स-र्व जीवोंको अभयदान देनेसे महान्पुण्यके भागी होते हैं, और अपने कुलको, गच्छको, समुदायकोभी सद्गतिके भागीबनातेहैं, व आपभी अपनी आत्माको निर्मल करके अल्पकालमें निर्वाण प्राप्तकरने वाले होतेहैं, श्रीगौतमस्वामी गणधरादि उपकारी महाराजोंकी तरह. इ-सलिये संसारसे डरनेवाले आत्मार्थियोंको झूठा आग्रह छोडकर व-गर विलंबसे सत्यग्रहण करना चाहिये। इस बातकोभी विशेष वि-वेकी निष्पक्षपाति पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे।

४७- सुबोधिका-दीपिका-किरणावली वगैरहकी पर्युप-णा संबंधी तथा छ कल्याणक संबंधी शास्त्रविरुद्ध प्ररू-पणाकी भूलोंको सुधारनेकी खास आवश्यकताहै.

१- जैनपंचांगके अभावसे अभी महीना बढे तो भी " जैन टि-प्पणकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगांते चाषाढ एव वर्धते, नान्येमासास्तट्टिप्पणकं तु अधुना सम्यग् न ज्ञायते, तत पंचाशतैव दिनैः पर्युषणा संगतेति वृद्धा. " इस वाक्यसे सुबोधिका-दीपिका-किरणावली इन तीनों टीकाकारोंने अपने तपगच्छकेही पूर्वाचार्यों-की आज्ञासे ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा-पर्वकी आराधना करनेका लिखा है, फिर उसीकोही उत्थापन कर-नेके लिये शास्त्रविरुद्ध और अपने प्राचीन पूर्वाचार्योंकेभी विरुद्ध हो-कर कुयुक्तियोंका संग्रहकिया है, यह सबसे बडी प्रथम भूलकी है, उसको वगर विलंबसे खास सुधारनेकी आवश्यकता है।

२- निशीथचूर्णिमें अधिकमहीनेको कालचूलाकहकरकेभीउसके ३०दिन पर्युषणासंबंधी दिन संख्याकी व्यवस्थामें गिनतीमें लिये हैं, उसको कालचूलाकेनामसे निषेद्ध किये सो यहभी दूसरी भूलकीहै।

३-निशीथ चूर्णिके अधिक मासके अभाववाले५०दिनों संबंधी अधूरे पाठ भोलेजीवोंको बतलाकर अभी दो श्रावण होवे,तबभी जि-नाज्ञाविरुद्ध होकर ८०दिने पर्युषणा होनेका भय न करके भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका ठहराया सो भी तीसरी भूलकी है।

४- अधिक महीनेके अभावमें सामान्यतासे पर्युषणाके पिछा-डी कार्तिकतक ७० दिन रहनेका कहाहै,उसको समझेबिना अधिक महीना होवे तब विशेषतासे शास्त्रानुसारही १०० दिन होते हैं, उ-सकीजगहभी ७०दिन रहनेका आग्रहकिया सोभी चौथी भूलकीहै।

५– पौष–आषाढ–श्रावणादि बढें तब शास्त्रानुसार या प्रत्यक्षमेंभी पांचमहीनोंसे फाल्गुन–आषाढ–कार्तिकमें चौमासीप्रतिक्रमण करनेमें आताहै, जिसपरभी श्रावणादि बढें तब आसोजमें ४ महीनोंसे चौमासी प्रतिक्रमण करनेका बतलाया सोभी पांचवी भूलकीहै।

६– पहिले मास बढताथा तबभी २० दिने वार्षिक कार्य पर्युषणा करतेथे, उनको सर्वथा उडादिये सो भी यह छट्ठी भूलकी है।

७– मास बढे तब १३ महीनोंके क्षामणे वार्षिक प्रतिक्रमणमें, तथा पांचमहीनोंके क्षामणे चौमासी प्रतिक्रमणमें हमलोगकरते हैं, तो भी मास बढे तब १२महीनोंके वार्षिक क्षामणे,तथा ४ महीनोंके चौमासी क्षामणेकरनेका प्रत्यक्ष झूठलिखा सोभी यह सातवी भूलकीहै.

८– पौष–चैत्रादिमहीनें बढें तब शास्त्रप्रमाणमुजब और प्रत्यक्षमें भी १० कल्पी विहार होता है, जिसपरभी मास वृद्धिके अभावसंबंधी ९ कल्पी विहारकी बात बतलाकर मास बढे तबभी १० कल्पी विहारका निषेध किया सो भी यह आठवी भूलकी है।

९– अधिकमहीनेमें सूर्यचार होता है, जिसपरभी नहीं होनेका प्रत्यक्षही झूठ लिख बतलाया सो भी यह नवमी भूलकी है।

१०– श्रावणादि महीने बढें तब उनकी गिनती सहित प्रत्यक्षमेंही पांचवें महीनेके नवमें पक्षमें ४॥ महीनोंसे दीवालीपर्व करनेमें आता है, और कभी दो कार्त्तिकमहीने होंवे, तबभी प्रथम कार्तिक महीनेमें दीवाली पर्व करनेमें आता है. जिसपरभी दीवाली वगैरह पर्वोंमें अधिक महीना नहीं गिननेका प्रत्यक्षही झूठ लिखा सो भी यह दशवी भूलकी है।

११– यज्ञोपवित,दीक्षा,प्रतिष्ठा,विवाह,सादी वगैरह मुहूर्त्तवाले कार्य तो अधिकमहीनेमें, क्षय महीनेमें, चौमासेमें, और सिंहस्थादि बहुतयोगोंमेंभी नहीं करते.मगर चौमासी पर्व व पर्युषणापर्वादि तो अधिकमहीनेमें, क्षयमहीनेमें, चौमासेमें. और सिंहस्थादिमेंही करनेमें आते हैं। जिसपरभी मुहूर्त्तवाले कार्योंकी तरह अधिक महीनेमे पर्युषणापर्व करनेकाभी निषेध किया सो यहभी जिनाज्ञा विरुद्ध उत्सूत्रप्ररूपणारूप इग्यारहवी बडी भूलकी है.

१२– ५० दिने प्रथमभाद्रपदमें पर्युषणापर्व करने चाहियें, जिसके बदले दूसरे भाद्रपदमें करनेका लिखा सो ८०दिन होनेसे यहभी शास्त्रविरुद्ध बारहवी बडी भूलकी है।

१३– जैसे देवपूजा,मुनिदान,आवश्यकादि कार्य दिन प्रतिबद्ध हैं, वैसेही–पर्युषणापर्वभी ५० दिन प्रतिबद्धहैं,इसलिये जैसे–अधिक

महीनेके ३०दिन देवपूजा,मुनिदानादि कार्योंमें गिनतीमें लिये जातेहैं, तैसेही-पर्युषणापर्व करने संबंधीभी अधिक महीनेके ३० दिन गिनतीमें लिये जातेहैं,जिसपरभी पर्युषणापर्व करनेमें अधिक महीनेके ३०दिन नहीं गिननेका लिखा, सो भी यह तेरहवी वडी भूलकी है।

१४- अधिक महीनेके ३० दिनोंमें वनस्पति वढती है, व फूल, फलादिकभी प्रत्यक्षमें होतेहैं, जिसपरभी आवश्यक निर्युक्तिकी गाथाका भावार्थ समझे विनाही अधिक महीनेमें वनस्पति पुष्पवाली नहीं होनेका लिखा, सो भी यह चौदहवी वडी भूलकी है।

इत्यादि अनेक तरहसे शास्त्रविरुद्ध होकर अधिक महीनेके३० दिनोंको गिनतीमें लेनेका निषेध करनेके लिये उत्सूत्रप्ररूपणारूप बहुत वडी २ भूलेंकी हैं, उन्होंको खास सुधारनेकी आवश्यकता है।

अब शासननायक श्रीमहावीरस्वामीके आगमोक्त छ कल्याणकोंका निषेध करने संबंधी भूलोंका थोडासा खुलासा लिखते हैं।



१५- तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन-जन्मादिकोंको कल्याणक पना आगमानुसार अनादि सिद्ध है, इसलिये उन्होंको च्यवनादि वस्तु कहो, चाहे च्यवनादि स्थान कहो, या च्यवनादि कल्याणक कहो, यद्यपि वस्तु व स्थान शब्दअनेकार्थवालेहैं, तोभी तीर्थंकरमहाराजोंके चरित्रमें प्रसंगसे च्यवन-जन्मादिकमें सब एकार्थवाले पर्यायवाचक शब्द अलग २ हैं, मगर सबका भावार्थ एकहीहै, किंतु भिन्न २ नहीं है। इसलिये श्रीपार्श्वनाथस्वामीके तथा श्रीनेमिनाथ स्वामीके च्यवनादि पांच पांच कल्याणकोंकी तरहही श्रीमहावीरस्वामीकेभी च्यवनादि पांच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें और छट्ठा निर्वाण कल्याणक स्वातिनक्षत्रमें होनेका कल्पसूत्रादि आगमोंमें खुलासा पूर्वककहाहै। जिसका मर्म समझे विना कल्पसूत्रकेमूल पाठके अर्थमें च्यवनादि छ कल्याणकोंका निषेधकरनेके लिये छ वस्तु, या छ स्थान कहकर अनादिसिद्धकल्याणक अर्थकोउडादिया यह सूत्रार्थके उत्थापनकरनेवाली उत्सूत्रप्ररूपणारूप सबसेबडीपंदरहवी भूलकीहै।

१६- श्री महावीर स्वामीके प्रथम च्यवन कल्याणकके दिनमें तो आषाढ सुदी ६ को इन्द्र महाराजका आसन चलायमानभी नहीं

हुआ, तथा इन्द्रमहाराजने अवधिज्ञानसे देवानंदामाताके गर्भमें भगवान्को देखेभी नहीं,और नमुत्थुणं वगैरह कुछभीनहींकिया तोभी उन्हींको कल्याणकपना मानते हैं. और कल्पसूत्रमूल तथा उन्हींकी सर्वटीकाआदि अनेकशास्त्रोंके अनुसारतो यही सिद्धहोताहै, कि ८२ दिन गये बाद गर्भापहाररूप दूसरे च्यवन कल्याणकके दिनमें आसोज वदी १३ को इन्द्रमहाराजने अवधि ज्ञानसे भगवान्को देखेहै, तब हर्षसहित सिंहासनसे नीचे उत्तरकर विधि पूर्वक ' नमुत्थु णं' किया.और हरिणेगमेषि देवको आज्ञा करके त्रिशलामाताकी कुक्षिमें स्थापित करवाये हैं, तब त्रिशलामाताने असोजवदी १३ कीरात्रिको तीर्थंकरभगवान्के अवतार लेनेकी सूचना करानेवाले १४ महास्वप्न देखेहैं। और कलिकाल सर्वज्ञ विरुद धारक श्रीहेमचंद्रसूरिजी महाराजने तो ' श्रीत्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र' के दशवे पर्वमें श्रीमहावीरस्वामीके चरित्रमें लिखा है, कि-गर्भापहारके दिन आसोजवदी १३ को इन्द्रमहाराजका आसन चलायमान होनेसे अवधिज्ञानसे भगवान्को देखकर नमस्काररूप'नमुत्थु णं'किया औरहरिणेगमेषिदेव द्वारा त्रिशलाके गर्भमें स्थापित करवाये, तब त्रिशलामाताने तीर्थंकरभगवान्के अवतार लेनेकी सूचना करानेवाले १४ महास्वप्न देखेहैं, उसके बाद खास इन्द्रमहाराजने त्रिशलामाताके पासमें आकर १४ महास्वप्न देखनेसे उनका फल तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा है, तथा धनद भंडारीको आज्ञा करके देवताओं द्वारा धन धान्यादिकसे सिद्धार्थ राजाके राज्य ऋद्धिकी भंडारादिमें वृद्धि कराई है, इत्यादि अनेक बातें च्यवन कल्याणकपनेकी सिद्धिकरनेवाली प्रत्यक्षमें हुयीहैं। इसलिये इन्हींकोही गर्भापहाररूप दूसरा च्यवन कल्याणक मानते हैं । उसका भावार्थ समझे विनाही कल्याणकपनेका निषेध करनेकेलिये राज्याभिषेककी बात बीचमें लाते हैं, मगर श्रीऋषभदेव भगवान्के राज्याभिषेकमें तो किसीभी कल्याणकपनेके कोईभी लक्षण नहीहै,इसलिये राज्याभिषेकको जन्म-दीक्षादि कोईभी कल्याणक नही मानसकते हैं, परंतु इस अवसर्पिणीमें प्रथम राज्याभिषेक उत्तराषाढा नक्षत्रमें इन्द्रमहाराजने किया, और प्रथम राज्यप्रवृत्ति चलाया,उसकी याद गिरिके लिये केवल राज्याभिषेकका नक्षत्र माअही च्यवनादि कल्याणकोंके साथ बतलायाहै, उसका भावार्थ समझेविनाही उसकोभी कल्याणकपना ठहरानेका आग्रहकरना,या राज्याभिषेकके समान गर्भापहारकोभी कल्याणकपने रहित ठहराना

सोभी गर्भापहाररूप दूसरे च्यवनकल्याणकके और राज्याभिषेकके, भावार्थको समझे विना व्यर्थही यह सोलहवींभी वडी भूलकीहै।

१७- जैसे श्रीमल्लीनाथस्वामी स्त्रीत्वपनेमें तीर्थंकर उत्पन्नहुएहैं. सो विशेषतासे प्रसिद्धहीहै,तोभी चौवीश तीर्थंकर महाराजोंकी अपेक्षासे सामान्यतासे श्रीमल्लीनाथ स्वामीकोभी पुरुषत्वपनेमें कहनेमें आतेहैं. मगर उसमें सामान्य विशेष संबंधी अपेक्षाकी भिन्नता होनेसे इनबातके आपसमें कोईतरहका विरोधभाव नहींआसकताहै, तैसेही-श्रीमहावीरस्वामीकेभी विशेषतासे छ कल्याणक आचारांग, स्थानांग, कल्पसूत्रादि आगमोंमें कहेहैं,तो भी अतित,अनागत, और वर्तमान काल संबंधी भरतक्षेत्रके तथा ऐरवर्त क्षेत्रके सर्व तीर्थंकर महाराजोंकी अपेक्षासे सामान्यतासे श्रीमहावीर स्वामीकेभी पांच कल्याणक 'पंचाशक सूत्रवृत्ति' में कहे हैं, मगर उनमें सामान्य विशेष अपेक्षाकी भिन्नता होनेसे इनके आपसमें कोई तरहका विरोध भाव कभी नहीं आ सकता है,तो भी आचारांग,स्थानांगादि आगमोंके छ कल्याणकों संबंधी विशेषताके और 'पंचाशक' के पांच कल्याणकों संबंधी सामान्यताके अभिप्रायको समझे विनाही सामान्य पांच कल्याणकों संबंधी पूर्वापर संबंध बिनाका अधूरापाठ अल्पज्ञ भोलेजीवोंको बतलाकर आगमोंमें विशेषतापूर्वक छ कल्याणक कहे हैं, उन्होंका निषेध करनेके लिये आग्रह किया है, सो भी अज्ञानता जनक सर्वथा अनुचित यह सत्तरहवी भी बडी भूलकी है।

१८- आचारांग,स्थानांगादि मूल आगमोंमें च्यवनादि अलग २ छ कल्याणक खुलासा पूर्वक बतलायेहैं,और उन्होंकी टीकाओंमेंभी च्यवनादि कल्याणक अर्थकी सूचना करनेवाले पर्याय वाचक च्यवनादि छ स्थान बतलायेहैं.उनका तत्त्वदृष्टिसे भावार्थ समझेबिनाही च्यवनादिकोंको वस्तु या स्थान कहकर कल्याणकपनेका सर्वथा निषेध किया,सोभी अतीव गहनाशयवाले आगमोंके भावार्थका अजानपना होनेसे यहभी अठारहवी बडी भूलकीहै।

१९-आषाढ शुदी ६ को भगवान् देवानन्दामाताकी कुक्षिमें आये, सो नीचगौत्रके कर्म विपाकका उदयरूप है,उसीकोही शास्त्रकारोंने आश्चर्यरूप अच्छेराकहाहै, तोभी उनको प्रथम च्यवनकल्याणक मानतेहैं.और नीचगौत्रका कर्मविपाक क्षय हुए बाद पीछे उंचगौत्रके कर्म विपाकका उदय होनेसे आसोज वदी १३ को त्रिशला माताकी कुक्षिमें उत्तम कुलमें भगवान् पधारेहैं तब अनादि कालकी मर्या

दामुजब तीर्थंकरमहाराजोंकी माताओंके गर्भमें तीर्थंकरउत्पन्न होने-
की सूचना करानेवाले १४ महास्वप्न देखनेकी तरहही त्रिशलामाता-
नेभी१४महास्वप्न आकाशसे उत्तरतेहुए देखेहैं,इसलिये यहतो दूसरा
च्यवनरूप कल्याणकपना प्रत्यक्षमेंही सिद्धहै। उन्हीको नीच गौत्रका
विपाकरूप और आश्चर्यरूप कहकर कल्याणक पनेका निषेध किया
सो यहभी एकोणवीशवीभी वडी भूलकी है।

२०-जैसे देवलोकसे देवभव संबंधी आयु पूर्ण होनेपर वहांसे
च्यवनरूप कारणहोनेसे माताकेगर्भमें उत्पन्नहोनेरूप(अवतारलेनेरूप)
कल्याणकपनेका कार्यहोताहै, तो भी कारणमें कार्यका उपचार होने
से च्यवनकोही कल्याणकपना कहनेमें आता है. तैसेही-गर्भापहार-
रूप कारण होनेसे तीर्थंकरपनेमें प्रकट होनेके लिये गर्भसंक्रमणरूप
(अवतारलेनेरूप)दूसराच्यवनरूप कल्याणकपनेका कार्यहुआहै.तोभी
कारणमें कार्यकाउपचार होनेसे गर्भापहारको कल्याणकपना कहनेमें
आताहै.इसलिये उनको गर्भापहार कहो, गर्भसंक्रमण कहो, त्रिशला-
कुक्षिमें अवतार लेनेका कहो, या दूसरा च्यवनरूप कल्याणक कहो,
सबका तात्पर्यार्थसे भावार्थ एकही है.इसलिये इनके आपसमें किसी
तरहका विरोधभाव नहीहै.इसप्रकार तीर्थंकरपनेमें प्रकटहोनेकेलिये
त्रिशलामाताके गर्भमें अवतारलेनेरूप गर्भापहारके अतीव उत्तम का-
र्यके भावार्थको समझे विनाही गर्भापहारको अतिनिंदनीक कहते हैं,
सो तीर्थंकरभगवान्‌के अवर्णवाद वोलनेरूप (आशातना करनेरूप)
दुर्लभवोधि पनेकी हेतुभूत यहभी वीशवी वडी भूलकी है।

२१- जैसे-श्रीआदीश्वर भगवान् १०८ मुनियोंके साथ एक स-
मयमें अष्टापदपर्वत ऊपर मोक्ष पधारे हैं, उनको आश्चर्यरूप अच्छेरा
कहतेहैं,तोभी उन्हीकोही मोक्षकल्याणकभी मानतेहैं, तथा श्रीमल्लीना-
थस्वामीके जन्म, दीक्षा, व केवलज्ञानकी उत्पत्ति वगैरह सर्व कार्य
स्त्रीत्वपनेमें हुएहैं,उन्होंको आश्चर्यकारक अच्छेरेकहतेहैं, तोभी उन्हों-
कोंही जन्म, दीक्षादिक कल्याणकभी मानतेहैं । तैसेही श्रीमहावीर-
स्वामिके गर्भापहारकोभी आश्चर्यकारक अच्छेराकहतेहैं,तो भी उनको
दूसरा च्यवनरूप कल्याणकपनाभी माननेमें आताहै, उसका आशय
समझे विनाही गर्भापहारको आश्चर्यकहके कल्याणक पनेका निषेध
किया सो भी अज्ञानताजनक यह एकवीशवीभी वडी भूलकी है.

२२- जैसे-श्रीसिद्धसेनदीवाकरसूरिजी महाराजने उज्जयनीनगरी
में दवी हुई श्रीअवंतिपार्श्वनाथजीकी प्राचीनप्रतिमाको फिरसे प्रकट-

की, तथा गुजरात देशमें अणहिलपुरपाटणमें शिथिलाचारी चैत्यवासियोंने संयमधर्मको दबा दियाथा, उसको श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजने वहां जाकर फिरसे प्रकट किया और श्रीनवांगीवृत्ति कारक खरतरगच्छनायक श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने श्रीस्थंभनपार्श्वनाथजीकी प्राचीनप्रतिमाको फिरसे प्रकटकी. तैसेही-कल्प, स्थानांग, दशाश्रुतस्कंध, आचारांगादिआगमोंमेंकहेहुए श्रीमहावीरस्वामीकेच्यवनादि छ कल्याणकोंको मेवाडदेशमें चितोडनगरमे शिथिलाचारी, लिंगधारी, चैत्यवासियोंने दबा दियेथे, उन्होंकोंही श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने वहां जाकर फिरसे प्रकट किये हैं. सो शास्त्रविरुद्ध नवीन नही, किंतु आगमोक्त प्राचीनही हैं. जिसकाभी भावार्थ समझे बिनाही नवीन प्रकट करनेका कहतेहैं, सो भी अज्ञानताजनक प्रत्यक्ष ही मिथ्या भाषणरूप यह बावीशवीभी बडी भूलकी है।

२३- जैसे-अभी वर्तमानिक गच्छोंके पक्षपाती लोग अहमदाबाद वगैरह शहरोंमें अपने गच्छके उपाश्रय वा धर्मशाला वगैरह मकान खालीपडेहोंवें, तोभी अन्यगच्छवाले शुद्धसंयमीमुनियोंको उस मकानमें ठहरने नही देते, और यति लोगभी अपने गच्छके आश्रित भगवान्के मंदिरमें अन्य गच्छकेयतिको स्नात्र महोत्सवादि पूजापढाने नहीं देते. जिसपरभी अन्यगच्छवाला कोई यति अपनेगच्छके आश्रित मंदिरमें स्नात्रमहोत्सवादि पूजापढानेको आवे, तो वो लोग मरणे-मारणे शिरफोडनेको तैयार होतेथे, और कहतेथे, कि-'ऐसा कभी पहिले हुआ नहीं और अभी होने देंगेभी नहीं.' यहबात गच्छोंके विरोधभावसे मारवाड, गुजरात वगैरहदेशोंमें पहिले प्रसिद्धहीथी और कोई शहरोंमें अबभी देखनेमें आतीहै। इसी तरहसेही पहिले चैत्यवासी लोगभी आपसके द्वेषसे या लोभदशासे अपने गच्छके आश्रित मंदिरमें अन्यगच्छवालेकों स्नात्रपूजा महोत्सव, प्रतिष्ठादि कार्य नहीं करनेदेतेथे. उस अवसरमें श्री जिनवल्लभसूरिजी महाराजभी गुजरातदेशसे विहार करके मेवाडदेशमें विशेषलाभ जानकर जिनाज्ञाविरुद्ध शिथिलाचारी चैत्यवासियोंका अविधिमार्गका निषेध करतेहुए; जिनाज्ञानुसार विधिमार्गका उपदेशद्वारा स्थापन करतेहुए, भव्यजीवोंके उपकारकेलिये चितोडनगरमें पधारे. तब वहांवाले चैत्यवासियोंने और उन्होंके पक्षपातिभक्तलोगोंने अपनीभूल प्रकटहोनेके भयसे महाराजको शहरमें ठहरनेकेलिये कोईभीजगह नही दिया और द्वेषबुद्धिसे चामुंडिका देवीके मंदिरमे ठहरनेका बतलाया, तब महाराज तो दे-

वीकी आज्ञा लेकर वहांही ठहरे. उनके संयमानुष्ठान,जप,तप,ध्यान, धैर्य,ज्ञानादिगुण देखकर देवीभी प्रसन्न होकर जीवहिंसा छोडकर,जीवदया पालनेवाली व महाराजकीभक्ति करनेवाली होगई. और शहर वालेभी पुण्यवान् भव्यजीव जिनाज्ञानुसार सत्यधर्मकी परीक्षाकरनेको वहां महाराजकेपास थोडे२ आनेलगे. और अन्य दर्शनियोंमेंभी महाराजके विद्वत्ताकी बडी भारी प्रसिद्धि होनेसे बहुत लोग अपना संशय निवारणकरनेकेलिये महाराजकेपास आनेलगे, शहरभरमें बहुत प्रसंशाहोनेलगी, तब कितनेक गुणग्राही श्रावकलोगभी महाराज को गीतार्थ, शुद्ध संयमी और शास्त्रानुसार विधिमार्गकी सत्यबातें बतलानेवाले जानकर,चैत्यवासियोंकी शास्त्राविरुद्ध प्ररूपणाकी तथा चैत्यकी पैदाससे अपनी आजीविका चालनेकी स्वार्थीकल्पितबातोंको छोडकर महाराजकेपास शास्त्रानुसार सत्यबातोंको ग्रहण करने वाले होगये। पीछे महाराजका चौमासाभी वहां करवाया, तब तो महाराज चैत्यवासियोंकी शिथिलता और अविधिको खूबजोरशोरसे निषेध करने लगे और जिनाज्ञानुसार विधिमार्गकी सत्यबातें विशेषरूपसे प्रकाशित करने लगे, उसको देखकर बहुत भव्य जीव चैत्यवासियोंकी मायाजालसे छुटकर शास्त्रानुसार क्रिया अनुष्ठान करने लगे. तबतो चैत्यवासी लोग महाराज ऊपर बहुत नाराज होगये और अपनी शास्त्रविरुद्ध भूलोंको सुधारनेके बदले पांचसौ चैत्यवासी इकठ्ठे होकर लकडीयें वगैरह हाथमें लेकर महाराजको मारनेके लियेआये,इसबातकी अच्छे २ आगेवान श्रावकोंद्वारा चितोडनगरके राजाको मालूम पडनेसे महाराज ऊपरका यह उपसर्ग वहांके राजाने दूर किया,चैत्यवासी लोग बहुत द्वेष करतेथे और नगर भरके सबमंदिर चैत्यवासियोंके तावेमेंथे.उसअवसरमें महाराज श्रावकोंके साथ श्रीमहावीरस्वामीके दूसरेच्यवन कल्याणकसंबंधी आसोजवदी १३को चैत्यवासियोंके मंदिरमेंदेववंदनादि करनेको जानेलगे,तब पहिलेके विरोधभावके कारणसे राज्यमानआगेवान् बहुतश्रावकलोग साथमेंथे,इसलिये चैत्यवासीलोगतो कुछभी बोलसके नहीं,मगर एक चैत्यवासीनीबुढिया अपनेस्त्रीजातीके तुच्छस्वभावसेअपनेगच्छकेआश्रित भगवान्के मंदिरकेदरवाजेपर आडी सोगई और क्रोधसे बोलने लगी कि-'पहिले ऐसा कभीहुआनहीं और यहअभी करतेहैं, सो मेरे जीवतेतो मंदिरमें नहीजानेदूंगी; मेरेकोमारकर पीछे भले अंदरजावो

देखा उस चैत्यवासीनी बुढियाका क्रोधसहित अनुचित वर्त्तावकोदे-
खकर; यद्यपि श्रावकलोग उसको दरवाजेसे हटाकर मंदिरमेंदर्शन
करनेको जासकतेथे, तो भी स्त्रीकेसाथ वैसा करना योग्य न समझ-
कर महाराजके साथ पीछे अपने स्थानपर चले आये. इत्यादि 'गण
धर सार्धशतक' बृहद्वृत्ति वगैरहमें श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज
के चरित्रसंबंधी पूर्वापरके आगे पीछेके प्रसंगको,व चितोडके निवा
सी चैत्यवासियोंके विरोधभावको, विवेकी बुद्धिसे समझे बिनाही
अथवा तो जान बुझकर आगे पीछेके संबंधको छुपाकरके कितनेक
लोग कहतेहैं, कि—' श्रीजिनवल्लभसूरिजीने चितोडनगरमें छठे क-
ल्याणककी नवीन प्ररूपणाकरी तब उनको बुढियाने मना किया था
तोभी मानानहीं.' ऐसाकहनेवाले अपनी अज्ञानताकोही प्रकटकरतेहैं,
क्योंकि देखो-वो चैत्यवासीनी बुढिया अज्ञानी आगमोंके भावार्थको
नहीं जाननेवालीथी,तथा शिथिलाचारी होकर अपनी आजीविकाके
लिये चैत्यमें ठहरकरके चैत्यकी पैदाससे अपना गुजरान करती थी
और श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज चैत्यमें [मंदिरमें] रहनेका, तथा
उसकी पैदाससे अपनी आजीविका चलानेका निषेध करने वालेथे,
और शास्त्रानुसार व्यवहार करने वाले शुद्ध संयमीथे. इसलिये चि-
तोडके सब चैत्यवासियोंकी तरह वह बुढियाभी महाराजसे विशे-
ष द्वेष धारण करने वाली थी. और बुढियाके जन्म भरमेंभी उसके
सामने कोईभी शुद्ध संयमी चैत्यवासका निषेध करनेवाला चितोड
नगरमें पहिले कभी नही आयाथा. उससेही शास्त्रानुसार विधिमा-
र्गकी बातोंको उसको मालूम नहींथी. इसलिये इन महाराजका आ-
गमानुसार छठे कल्याणकका कथनभी उस बुढियाको नवीन मालू-
म पडा. और अपने चैत्यनिवासकी तथा उससे अपनी आजीविका
चलानेकी बातका खंडन करने वाला और अपनी शिथिलाचारकी
भूलोंको प्रकट करनेवाला, ऐसा अपना विरोधी अपने ताबेके मंदि-
रमें अपने सामने चला आवे; सो उस बुढियासे सहन नहींहोसका.
इसलिये क्रोधसे मंदिरके दरवाजे पर आडी पड गई, सो उस
निर्विवेकी अज्ञानी क्रोधसे विरोध भावको धारण करनेवाली बुढि-
याके कहनेसे प्रत्यक्ष आगम प्रमाण मौजूदहोनेसे छठा कल्याणक नवी-
न कभी नहीं ठहर सकता जिसपरभी उस बुढियाके अज्ञानताजनक व-
चनोंका भावार्थ समझे विनाही उस चैत्यवासीनी बुढियाकी परंपरा-
वाले अभी वर्तमानमेंभी कितनेक आग्रही जन अज्ञानतासे बुढियाकी

तरह द्वेष बुद्धिसे, छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेका श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर झूठा दोष आरोपण करतेहैं. मगर प्रत्यक्षपने आगम प्रमाणोंको उत्थापन करके मिथ्याभाषणसे न्यायरत्नजी यह भी बडीभूल करके विवेकी तत्वज्ञ विद्वानोंके सामने अपनी लघुता-होनेका कारण करतेहुए कुछभी विचारनहीकरते, यह कितनी बडी लज्जा (शर्म) की बात है. सो भी विचारने योग्य है।

औरभी एक प्रत्यक्ष प्रमाण देखिये — श्रीअंतरिक्षपार्श्वनाथजी महाराजकी यात्रा करनेकेलिये मुंबईसे संघगयाथा, उनके साथमें आनंदसागरजी आदि साधुजीभीथे, सो रस्तामें संघके दर्शनकरनेकेलिये साथमें श्रीजिनेश्वर भगवान्की प्रतिमाथी. उनको वहां संघ ठहरे तब तक संघ वाले मंदिरमें विराजमान करनेलगे, सो दिगंबर लोगोंने मना किया, जब उनके सामने जबराई करनेको गये. तब आपसमें मारपीट हुई, शिर-फुटे, कोर्ट कचेरीमें गये, दंडहोनेका या कैदमें जानेका मोका आया, हजारों रुपयें संघके खर्च हुए, तब साधू लोग छूटे, और आपसमें विरोधभाव बढा, तथा शासन हिलनाभी बहुत हुई, इस पर अब विचार करना चाहिये, कि--उस समय संघवाले तथा संघकेसाथ आनंदसागरजी वगैरह साधु लोगभी विवेक वाले होते, तो व्यर्थ हठकरके तकरार खडी न करते, तो इतना नुकसान कभी उठाना नहीं पडता. इसीतरहसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजभी व्यर्थ तकरार न होनेके लिये बुढियाका हठ देखकर वहांसे पीछे चले आये, सो तो दीर्घदृष्टिसे विवेकता पूर्वक बहुतअच्छा काम कियाथा. जिसके बदले उनको झूठे ठहरानेका दोष लगाना यह कीतनी बडी अज्ञानताहै।

और न्यातन्यातमें, गांवगांवमें, देशदेशमें, अपने २ पाडोसीपाडोसीमें, पंचपंचायतमें, राजदरबारमें, या गच्छगच्छमें व अंधपरंपरारूढीकी खोटी प्रवृत्तिमें, आपसके विरोधभाव संबंधी " ऐसा पहिले कभीहुआनही, और अभी यह ऐसा करते हैं, सो कभी होने देंगें भी नहीं" इस तरहसे कहनेकी एक प्रकारकी प्रचलीत रूढीहीहै, उसमें सत्यासत्यकी परीक्षा किये बिना किसीको झूठा ठहराना यह सर्वथा निर्विवेकताहै. इसी तरहसे उन चैत्यवासीनी बुढियानेंभी अपने आग्रहसे वैसा कहाथा, उसका भावार्थ समझेबिनाही छठे कल्याणकको नवीन ठहराना, सोभी यह आगमोंके उत्थापनकरनेरूप तथा श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर झूठादोष आरोपणकरनेरूप व अज्ञानताजनक बडीभारीभूलहै. इसबातकोविशेष पाठक स्वयं विचार लेंगे.

२४- देवानंदामाताकेगर्भमें ८२ दिनगयेबाद त्रिशलामाताकेगर्भमें आनेको च्यवनकल्याणकपना प्रकटतयासिद्धकरनेकेलियेही खास कल्पसूत्रमें च्यवनकल्याणकके सर्व कार्य देवानंदामाता संबंधी वर्णन नहीं किये, किंतु त्रिशलामाता संबंधी वर्णन कियेहैं, तथा श्रीसमवायांगसूत्र वृत्तिमेंभी देवानंदामाताके गर्भसे ८२ दिनगये बाद त्रिशलामाताके गर्भमें आनेको अलग २ भव गिनतीमें लियेहैं, और कल्पसूत्र तथा उन्हींकी सर्व टीकाओंमें तथा श्रीवीरचरित्रादिअनेकशास्त्रोंमेंभी देवानंदामाताकेगर्भमें८२दिन गयेबाद आसोजवदी१३को त्रिशलामाताके गर्भमें भगवान् आयेहैं, यह अधिकार बहुतविस्तार पूर्वक खुलासाके साथ कथन किया है, इसलिये देवानंदामाताकी कुक्षिसे जन्म होनेके बदले त्रिशलामाताकी कुक्षिसे जन्म होने संबंधी किसी तरहकीभी असंगतिरूप शंकाकभी नहींहोसकती. जिसपरभी असंगतिरूप शंका निवारण करनेकेलिये गर्भापहारका नक्षत्र बतलानेका कहकर उनमें अलग२भव गिनने, व १४महास्वप्नदेखनेवगैरह सर्व बातोंको उडाकर दूसराच्यवनरूप गर्भापहारको कल्याणकपने रहित ठहरातेहैं, और उनको बहुततुच्छ समझकरबडीनिंदाकरतेहैं, सो भी मायावृत्तिसे तीर्थंकरभगवान्‌की आशातनाकरनेरूप चौवीशवी बडीभूलकी है.

२५- श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकरमहाराज पहिले होगये, तथा श्री सीमंधरस्वामि आदि वर्तमानमें हैं, उन्हीं सबीने श्रीमहावीरस्वामिके च्यवनादि छ कल्याणक कथनकियेहैं, उन्होंकेही अनुसार गणधर-पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंनेभी आचारांग, स्थानांगादि आगमोंमेंभी च्यवनादि छ कल्याणक कथनकियेहैं, उसीकेही अनुसार तपगच्छके पूर्वज वडगच्छके श्रीविनयचंद्रसूरिजीने कल्पसूत्रके प्राचीन निरूक्तमें, तथा चंद्रगच्छके श्रीपृथ्वीचंद्रसूरिजीने कल्पसूत्रके प्राचीन टिप्पणमें और श्रीपार्श्वनाथस्वामिकी पट्टपरंपरामें उपकेश गच्छीय श्रीदेवगुप्त सूरिजीने कल्पसूत्रकी टीकामें इत्यादि अनेक प्राचीन शास्त्रोंमेंभी खुलासा पूर्वक च्यवनादि छ कल्याणकलिखे हैं। उसीकेही अनुसार तपगच्छकेभी पूर्वाचार्य श्रीकुलमंडनसूरिजी वगैरहोंनेभी श्रीकल्पावचूरि आदिक ग्रंथोंमें च्यवनादि छ कल्याणकलिखे हैं, इसलिये श्री तीर्थंकर-गणधर-पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंके प्राचीन समयसेही आगमानुसार आत्मार्थी सर्वगच्छवाले च्यवनादि छ कल्याणक माननेवाले थे, जिसपरभी आगमादि सर्व प्राचीनशास्त्रोंके प्रमाणोंको जान बुझकर छुपाकरके या अज्ञानतासे ' श्री जिनवल्लभसूरिजीने चितोडमें

छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करी' ऐसा कहकर जो लोग छठे क-ल्याणकका निषेध करते हैं. वो लोग तीर्थंकर, गणधर, पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी और खास अपनेही तपगच्छकेभी पूर्वाचार्योंकीभी आ-शातना करनेवाले ठहरतेहैं, इसलिये आत्मार्थी भवभिरू विवेकी ज-नोंकों तो छठे कल्याणकका निषेध करना सर्वथा योग्यनहींहै. मगर निषेध करनेवालोंने यह पचीशवीभी बडी भूलकी है।

२६- सभा मंडलमें जाहिर व्याख्यान करते हुए परोपकारकेलिये सत्य बात प्रकट करनेमें अपनी स्वाभाविक प्रकृतिसे,सच्चके जोशमें आकर कितनेक वक्ता लोग चौकी,टेबल, या पाटापर जोरसे अपना हाथ पिछाडते हुए अपना मंतव्य प्रकट करतेहैं, तथा कितनेक छा-ती ठोकते हुए, या भुजा आस्फालन करते हुए, अपनी सत्यबात प्र-कट करतेहैं, और कोई विशेष प्रबल विद्वान् वादी तो हाथमें खूब उंचा झंडा लेकर नगारेको पीटवाते हुए विवाद करनेकेलिये नगरमें उद्घोषणा करवाते हैं, मगर यह बात कोई प्रकारसे अनुचित नहींहै, किंतु सत्यबात प्रकाशित करनेमें अपनी हिम्मत बहादुरीकी स्वाभा-विक प्रकृति है। इसीतरहसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजनेभी सर्व शिथिलाचारी चैत्यवासियोंके सामने चैत्यवासका निषेध व आग-मानुसार श्रीमहावीरस्वामिके छ कल्याणक मानने वगैरह विषयों सं-बंधी सत्यबातें प्रकाशित करनेमें अपनी हिम्मत बहादुरीसे भुजास्फा-लन पूर्वक कहाथा,कि-'चैत्यवास निषेधादिक ऊपरकीबातें जो न मा ननेवाले होवें,वो उन्होंकी शास्त्रार्थ करनेकी ताकत हो तो मेरे सामने आकर उन बातोंका शास्त्रार्थसे निर्णय करो' मगर उस समय किसी-भी चैत्यवासीकी महाराजके साथ शास्त्रार्थ करनेकी हिम्मत नहींहुई. तब महाराजने सब लोगोंके सामने ऊपर मुजब सत्यबातें प्रकाशित-की.इसीतरहसे 'गणधरसार्धशतक' बृहद्वृत्ति, लघुवृत्ति वगैरहका भावार्थ समझे बिनाही श्रीजिनवल्लभसूरिजीने 'स्कंधास्फालनपूर्वक' छठा कल्याणक नवीन प्रकट किया, ऐसा कहकर चैत्यवास निषेध वगैरह ऊपरकी सबबातोंका संबंध छुपाकर छठेकल्याणको नवीन ठह राकरके जो निषेधकरते हैं,सो मायावृत्तिसे व्यर्थही भोलेजीवोंकों उ-न्मार्गमें गेरनेकेलिये मिथ्याभाषणकरके यहभी छवीशवीबडीभूलकीहै.

२७-श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज चैत्यवासका खंडन करनेवा-लेथे, इसलिये चैत्यवासियोंने महाराजको शहरमें ठहरनेको जगह नहीं दी. और द्वेषबुद्धिसे चामुंडिका देवीके मंदिरमें ठहरनेका बतला-

थी, तब महाराज तो वहांही ठहरकर अनेक प्रकारके कष्ट सहन करतेहुएभी भव्यजीवोंके उपकारकेलिये जिनाज्ञानुसार सत्यवातें लोगोंको बतलाते रहे, और चैत्यमें ठहरने वगैरह चैत्यवासियोंकी कल्पित बातोंका खंडन करते रहे, यह बात 'गणधर सार्धशतक' ग्रंथकी लघुवृत्ति तथा वृहद्वृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें खुलासा लिखी है। जिसपरभी ऊपर मुजब चैत्यवासियोंकीभूलोंको तथा जिनाज्ञानुसार सत्य बातोंके प्रसंगको मायावृत्तिसे छुपा करके 'आपना नवीन मत स्थापन करनेकेलिये चामुंडिकादेवीके मंदिरमे ठहरेथे' ऐसा प्रत्यक्ष मिथ्या लिखकर महाराजकी झूठी निंदा की, और दृष्टिरागी बाल जीवोंकोभी परम उपकारी युग प्रधान आचार्य महाराजके झूठ अवर्णवाद बोलनेवाले बनाये. यहभी सत्तावीशवी बडी भूलकी है।

२८ "यो न शेष सूरीणामज्ञातसिद्धांतरहस्यानाम्" इत्यादि 'गणधर सार्धशतक' ग्रंथकी १२२वी गाथाकी लघुवृत्ति तथा वृहद्वृत्तिके यह वाक्य सिद्धांतकेरहस्यको नहीं जाननेवाले द्रव्यलिंगी चैत्यवासियों संबंधी है, मगर पहिले होगये उन सर्व पूर्वाचार्योंसंबंधी नहींहै, जिसपरभी 'पहिले जितने आचार्य होगये हैं, उन सबोंको सिद्धांतके रहस्यको नही जाननेवाले ठहराकर जिनवल्लभसूरिजीने छठा कल्याणक नवीन प्रकाशित किया' ऐसा अर्थ कहते हैं। सो अपनी विद्वत्ताकी लघुताकारक अपनी अज्ञानता प्रकट करतेहैं। क्योंकि 'शेष' कहनेसे सिद्धांतके रहस्यको जानने वाले सर्व पूर्वाचार्योंको छोडकर सिद्धांतके रहस्यको नही जानने वाले बाकीके अज्ञानियोंका ग्रहण होताहै, और 'अशेष' कहनेसे सर्वका ग्रहण होसकताहै, मगर यहांतो 'अशेष' शब्द नहींहै, किंतु 'शेष' शब्दहै, इसलिये सर्व पूर्वाचार्योंका ग्रहण नहीं होसकता, जिसपरभी सर्वपूर्वाचार्योंका ग्रहणकरतेहैं, सो 'शेष' शब्दके अर्थकोभी नहीं जाननेवाले अपनी अज्ञानतासे शास्त्रोंके खोटे २ अर्थ करके, यहभी अट्ठावीशवी बडी भूलकी है। इस बातकोभी विशेष विवेकी तत्त्वज्ञ विद्वान् लोग स्वयं विचार सकते हैं।

देखिये-खरतरगच्छ वालोंने अपने पूर्वाचार्योंके चारित्रोंमें, जैसे-श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज संबंधी 'श्रीस्थंभन पार्श्वनाथ प्रकट कर्ता' तथा 'श्रीनवांगी वृत्ति कर्त्ता' वगैरह बातें, उन महाराजने जैनसमाजपर किए हुए उपकारोंकी यादगिरिकेलिये प्रसंशारूप लिखीहैं। तैसेही-श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज संबंधीभी 'दश सह

स्त्र नवीनश्रावक तथा चामुंडिका देवी प्रतिबोधक ' 'चैत्यवास शिथिलाचार निषेधक ' ' षष्ट कल्याणक प्रकट कर्ता ' वगैरह बातेंभी इन महाराजने जैनसमाजपर किये हुए उपकारोंकी याद गिरिकेलिये प्रसंशारूप लिखी हैं, सो नवीन कल्पित नहीं, किंतु शास्त्रानुसार प्राचीनहीहैं. इसलिये प्रसंशारूप लिखी हैं । जिसका मर्मभेद समझेबिना, ' गणधर सार्द्ध शतक ' ग्रंथकी लघुवृत्ति तथा बृहद्वृत्तिके ' यो न शेषसूरीणां ' इत्यादि पाठोंके ऊपर मुजब सत्यअर्थोंको छुपाकरके अपनी मतिकल्पना मुजब खोटे खोटे अर्थकरके भोले जीवोंको मिथ्यात्वके उन्मार्गमें गेरनेकेलिये धर्मसागरजीकी अंध परंपरावाले उनकी देखा देखी वर्तमानिक न्यायांभोनिधिजी, शास्त्र विशारदजी, न्यायविशारदजी, विद्यासागर न्यायरत्नजी, जैनरत्न, व्याख्यानवाचस्पति, आगमोद्धारक,गीतार्थ,वगैरह विशेषणोंको धारणकेरनवोल आचार्य,उपाध्याय, प्रवर्त्तक,गणि,पन्यास,प्रसिद्धवक्ता, विद्वान् मुनिजनआदि सर्व ऐसेही अनर्थ करते हुए चले जातेहैं और सामान्यविशेष बातका भेदसमझे बिनाही सर्वतीर्थंकर महाराजों संबंधी'पंचाशक सूत्रवृत्ति'का पांच कल्याणकों संबंधी सामान्यपाठको आगे करके कल्प,स्थानांग,आचारांगादिमें विशेषता पूर्वक च्यवनादि छ कल्याणककहेहैं,उन्होंका निषेधकरनेकेलिये आगमोंके अनादिसिद्ध च्यवनादि कल्याणक अर्थको उडा देतेहैं. तथा जैसे यति-मुनि-साधु-अणगार शब्द एकार्थके भावार्थवालेहैं,तैसेही च्यवनादि वस्तु-स्थान-कल्याणक शब्दभी एकार्थके भावार्थवालेहैं, उसकाभेद समझे बिना ही च्यवनादिकोंको वस्तु-स्थान कहकर कल्याणकपने रहित ठहराते हैं। मगर दीर्घदृष्टिसे विवेकबुद्धिपूर्वक शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्राय तरफ उपयोग लगाकर सत्य तत्त्व बातका कोईभी विचार नहीं करतेहैं,यह अंधपरंपराकी कितनी बडीभारी लज्जनीय अनुचित प्रवृत्तिहै. इसकोविशेष विवेकीतत्त्वज्ञ पाठकगण स्वयंविचार सकतेहैं।

औरभी देखिये-विवेक बुद्धिसे खूब विचारकरीये, यदि-नीचगौत्र कर्मविपाकरूप तथा आश्चर्यरूप कहनेसे कल्याणकपनेका निषेध हो सकता होवे, तबतो आषाढशुदी ६ को देवानंदामाताके गर्भमें भगवान्आये,सोही नीचगौत्र कर्मविपाकरूप होनेसे कल्पसूत्रादि शास्त्रोंमें उनको आश्चर्यकहाहै,इसलिये तुम्हारे मंतव्य मुजबतो उनकोभी कल्याणकपनेका निषेध हो जावेगा. और विशेष अधिक आश्चर्यकारक दूसरे च्यवनकी तरह प्रथमच्यवनभी कल्याणकपनें रहित होनेसे श्री-

षबाकीके ४कल्याणकही रहजावेंगे.और नीचगौत्रके विपाकरूप तथा आश्चर्यरूप कहते हुएभी प्रथम च्यवनको कल्याणकपना मानोंगे,तो-नीचगौत्र विपाकरूप और आश्चर्यरूप कहकर दूसरे च्यवनरूप गर्भा पहारको कल्याणकपने रहित ठहराया सो प्रत्यक्षमिथ्या व्यर्थही झूठा आग्रह सिद्ध होवेगा. इसलिये ऐसे झूठे आग्रहसे भोले जीवोंको सं-शयरूप मिथ्यात्वके भ्रममें गेरकर भगवानकी आशातनाका हेतुभूत अनर्थ करना सर्वथा योग्य नहीं है. किंतु प्रथम च्यवनमें कल्याणक पना माननेकी तरहही दूसरे च्यवनमेंभी कल्याणकपना आगमादि शास्त्रप्रमाण तथा युक्तिसम्मत होनेसे आत्मार्थियोंको अवश्यही मान्यकरना उचितहै, इसको विशेष तत्त्वज्ञजन स्वयंविचारसकतेहैं।

औरभी प्रत्यक्ष शास्त्रप्रमाण देखिये—कल्पसूत्रकी सर्व टीकायें वगैरह बहुतशास्त्रोंमें श्रीजंबूस्वामिके निर्वाणगयेबाद दश(१०) वस्तु विच्छेद होनेका लिखाहै. उसमें-केवलज्ञान,केवलदर्शन, यथाख्यात-चारित्र,मुक्तिगमन वगैरह बातोंकोभी वस्तु कहाहै. और 'गुणस्थान-क्रमारोह'वगैरह शास्त्रोंमेंभी केवलज्ञान उत्पन्नहोनेको,तथा मुक्तिगम-नको १३-१४ वा गुणस्थान कहाहै. इसी तरहसे इन शास्त्रप्रमाण मु-जबभी तीर्थंकर भगवानके केवलज्ञान उत्पन्न होनेको तथा मुक्तिगम-न निर्वाणको वस्तु कहो या स्थान कहो और उन्होंकोंही केवलज्ञान तथा निर्वाण कल्याणकभी मानो,तो भी इस बातमें कोई तरहका वि-रोधभाव नहींहै, इसलिये च्यवनादिकोंको वस्तु कहो, या स्थान क-हो, वा कल्याणककहो, सबका तात्पर्यार्थसे भावार्थ एकहीहै. जिस परभी वस्तु-स्थान कहकर कल्याणकपनेका निषेध करनेवाले अपनी अज्ञानतासे शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा करके भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गे-रते हैं, और अपनी आत्माकोभी उत्सूत्र प्ररूपणाके दोषसे मलीन करते हैं. इसबातकोभी विवेकी तत्त्वज्ञजन स्वयं विचार सकते हैं।

और तीर्थंकरभगवानके च्यवनादिकोंको कल्याणकपना आगमानु-सार अनादिसिद्धहै, उन्हीं च्यवनादिकोंको शास्त्रोंमें एक जगह स्था-न कहे,दूसरी जगह वस्तु कहे,तीसरी जगह कल्याणक कहे, इससे-भी वस्तु-स्थान-कल्याणक यह तीनों शब्द पर्यायवाचक एकार्थवाले सिद्ध होतेहैं जिसपरभी वस्तु-स्थान शब्द देखकर अनादिसिद्ध च्य-वनादिमें कल्याणक अर्थको उडादेना सो अपने झूठे पक्षपातके आग्र-हसे शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करनेरूप यह कितनी बडी भूल है इसको

आत्मार्थी विवेकी तत्त्वज्ञ पाठक जन स्वयं विचार सकते हैं।

छ कल्याणक संबंधी ऊपरके संक्षिप्त लेखसेभी जो आत्मार्थी सत्य ग्रहण करने वाले निकट भव्य होंगे, वह तो थोडेसेमेंही सार समझ लेवेंगे, कि-गर्भापहारको अलग भव गिननेसे तथा त्रिशलामाताने सर्व तीर्थंकर माताओंकी तरह आकाशसे उतरते हुए १४ महास्वप्न देखने वगैरह कार्योंसे दूसराच्यवनरूप कल्याणकपनेकी उत्तमताको छुपाकरके व्यर्थही छठे कल्याणककी निंदाकरना सर्वथा योग्यनहींहै और शास्त्रोंकेअर्थ बदलकरके उत्सूत्रप्ररूपणासे व कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंकोंभी उत्तम कार्यके हेतुभूत गर्भापहारकी निंदा करवाने वाले बनवाकर तीर्थंकर भगवानकी आशातनासे भवहार जानेका कारण कराना कदापि योग्य नहींहै। ऊपरकी इन सब बातोंका विशेष निर्णय शास्त्रोंके संपूर्ण पाठोंके प्रमाणोंसहित इस ग्रंथके पृष्ट ४५२ से ८२६ तक छप चुका है, सो तीसरे भागमें प्रकट होगा. उसके बांचनेसे सर्व शंकाओंका खुलासा समाधान अच्छी तरहसे होजावेगा।

और शासन नायक श्रीमहावीरस्वामि आदि सर्व तीर्थंकर महाराजोंके चरित्र भव्यजीवोंकों कर्मोंकी निर्जरा करानेवाले कल्याणकारक मंगलरूपही हैं, इसलिये पर्युषणाके मंगलिक पर्व दिनोंमें आत्मकल्याणके लिये वांचनेमेंआतेहैं. और श्रीमहावीरस्वामिके गर्भापहाररूप दूसरा च्यवनका कार्य तो त्रिशलामाता, सिद्धार्थपिता, व इंद्रमहाराज वगैरह सर्व जीवोंकों कल्याण मंगलरूप हर्षका देनेवालाहुआहै। तथा उनका आराधन करनेवाले अल्पसंसारी आत्मार्थी भव्यजीवोंकोंभी अभिमानरहित कर्मोंकी विचित्रताकी भावनासे कर्मोंकी निर्जरा करानेवाला कल्याणकारक मंगलरूपहोता है। मगर गर्भापहारके नाम सुननेमात्रसेही चमकउठनेवाले और उनको नीच गौत्रविपाकरूप, आश्चर्यरूप अतीवनिंदनीककहकरनिंदाकरनेवालोंकों तीर्थंकरभगवानके अवर्णवाद बोलनेसेसंसारपरिभ्रमणके बहुतविशेष दुःख भोगनेबाकी होंगे, इसलिये उन्होंकों वो कार्य अमंगलरूप अकल्याणरूप मालूमपडता होगा। इससे उनकार्यसे द्वेषरखकर वर्षोवर्ष पर्युषणाके मांगलिकरूप कल्याणकारक पर्वदिनोंके व्याख्यानमें उनकी निंदा करते हुए अकल्याणरूप अतिनिंदनीक ठहराकार तीर्थंकर भगवानकी आशातना करनेसे अपनेको और दूसरे भव्य जीवोंकेंभी अकल्याणरूप दुर्लभबोधिका हेतुकरतेहैं, ऐसी २ अनर्थभूत अनुचित बातोंसेही 'सुबोधिका' नाम रक्खाहै। मगर वास्तविक में

तो 'दुर्लभबोधिका' नाम सिद्ध होताहै । इसबातको विशेष आत्मार्थी तत्त्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे ।

एक बात उत्थापन करनेसे अनेक बातें उत्थापन करनी पडती हैं ॥

देखो-एक अधिकमहीना व छ कल्याणक उत्थापनकरनेसे उसकी पुष्टिकेलिये, अनेक शास्त्रोंके अर्थबदलनेपडे। अनेक जगह शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध आग्रह करना पडा। कितनीही जगह मिथ्या बातें भी लिखनी पडी। कितनीक जगह शास्त्रोंके आगे पीछे के संबंधवाले पाठोंको छोडकर बिनासंबंधके अधूरे २ पाठभी भोले जीवोंको बतलाकर अपनापक्षकी सत्यता बतलानेका परिश्रम करना पडा और कितनीही जगहतो शास्त्रोंकी, पूर्वाचार्योंकी व भगवानकी भी आशातनाके हेतुभूत अनुचित शब्दभी लिखने पडे. उसकाअनुभवतो सुबोधिक-किरणावलीआदिककी२८भूलोंवाले ऊपरकेलेखसे तथा इसभूमिकाके सबलेखपरसे और इस ग्रंथके अवलोकन करनेसे पाठकगणको अच्छी तरहसे होसकेगा, इसलिये 'एक बात उत्थापन करनेसे अनेक बातें उत्थापन करनी पडतीहैं' यह लोकरूढीकी कहावतकी बात ऊपरके विषयमें प्रत्यक्ष देखनेमें आती है ।

इसप्रकार पर्युषणासंबंधी, व छ कल्याणक संबंधी अपना झूठा पक्ष स्थापन करनेकेलिये और भोले जीवोंको उन्मार्गमें गेरनेकेलिये, शास्त्र विरुद्ध होकर विनयविजयजीने सुबोधिकामें, तथा जयविजयजीने दीपिकामें, और धर्मसागरजीने किरणावलीमें, ऊपर मुजब अनेक भूले की हैं, उन्हीं भूलोंको तपगच्छके कितनेक आग्रही जन पर्युषणाके व्याख्यानमें वर्षोवर्ष वांचते हैं. उससे जिनाज्ञाकी विराधनाहोकर भवबढनेका व दुर्लभबोधिका हेतुभूत अनर्थ होताहै. इसलिये अल्पसंसारी भव्यजीवोंको जिनाज्ञानुसारसत्यबातोंकी प्राप्ति होनेरूप उपकारकेलिये उपरकी सब बातोंका खुलासा निर्णय इसग्रंथमें अच्छीतरहसे लिखनेमें आया है। उसको देखकर यदि शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणासे संसार परिभ्रमणका भय लगता हो तो उन भूलोंको सुधारो, व्याख्यानमें वांचनेका बंध करो, और सत्यबातोंको ग्रहण करो या वडोदा वगैरह किसीभी राज्य दरबारमें इन भूलोंसंबंधी श्रीगौतमस्वामिआदि गणधरमहाराज व सिद्धसेनदीवाकर, हरिभद्रसूरिजी वगैरह महाराजोंकी तरह सत्य ग्रहण करनेकी प्रति-

ज्ञापूर्वक शास्त्रार्थ करनेको तैयारहो, हमने तो इनका सत्य निर्णय अ-च्छी तरहसे करलियाहै,तोभी इन शास्त्रार्थमें सत्यनिर्णय ठहरेगा सो मंजूर है, इसलिये जो महाशय ऊपरकी भूलोंसंबंधी शास्त्रार्थ करना चाहते होवें, वो अपनी सहीसे अपना प्रतिज्ञा पत्र जाहिर रूपसे ह-मको भेजें.समय, स्थान, नियम, साक्षि वगैरहकी व्यवस्था तो सब-के अनुकूल उसी राज्यके नियममुजब होसकेगी, विशेष क्या लिखें।

पर्युषणा संबंधी मंतव्यके कथनका संक्षिप्त सार.

१– जैनटिप्पणाके अभावसे लौकिक टिप्पणामुजब मास-पक्ष-ति-थि–वर्ष वगैरह माननेका व्यवहार करना और पर्युषणादि धार्मिक कार्योंका व्यवहार जैन सिद्धांतोके अनुसार करना. तथा जैनसिद्धां-तोंके अनुसार या लौकिक टिप्पणाके अनुसारभी अधिक महीनेके ३० दिनोंको दान, पुण्य, परोपकार, जप, तप, धर्म ध्यानादि करनेमें व ब्रह्मचर्य पालनेमें या देशविरती–सर्वविरती संयम पालनेमें, तथा कर्मबंधनकी स्थितिके प्रमाणमें और कर्मोंकी निर्जरा करने वगैरह कार्योंमें गिनतीमें लियेजातेहैं, तैसेही ५० दिन प्रतिबद्ध पर्युषणापर्व का आराधन करनेमेंभी उसके३० दिन गिनतीमें लेकर खरतरगच्छ, तपगच्छादिककी कल्पसूत्रकी टीकाओंके "पंचाशतैव दिनैः पर्यु-षणा संगतेति वृद्धाः" इसवाक्यमुजब अभी दूसरेश्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें५०दिने पर्युषणापर्वकरना, यही शास्त्रानुसार जिनाज्ञा है।

२– मास प्रतिबद्ध कार्य तो एक महीनेकी जगह दूसरे महीनेमेंभी करनेमें आवे, तो भी कोई शास्त्रमें उनका दोष नहीं बतलाया. मगर पर्युषणापर्व करनेमें तो ५०दिनकी जगह ५१दिनभी कभी नहींहोस-कते, इसलिये बिनामुहूर्त्तवाले ५० दिन प्रतिबद्ध पर्युषणापर्वके साथ मास प्रतिबद्ध या मुहूर्त्त प्रतिबद्ध होली, ओली, दीवाली, दशहरा, अक्षयतृतीया,पौष–श्रावणादिक महिनोंके कल्याणकादितप,या यज्ञो-पवित, दीक्षा, प्रतिष्ठा,विवाह सादी वगैरह कोईभी कार्योंका संबंध नहीं है। जिसपरभी दिन प्रतिबद्ध पर्युषणापर्व आराधन करनेकी चर्चामें मासप्रतिबद्ध या मुहूर्त प्रतिबद्ध कार्योंकी बात बीचमें लाते हैं. वो लोग पर्युषणापर्वकरने संबंधी शास्त्रकार महाराजोंका आ-शय नहीं जानने वाले होनेसे, शास्त्रोंकी आज्ञा विरुद्ध होकर व्यर्थही कुयुक्तियोंसे विषयांतर करके भोले जीवोंको उन्मार्गमें गेरते हैं।

३- अधिक महीनेके अभावसंबंधी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेके व उसकेपीछे ७० दिन रहनेके और १२ मासी क्षामणे वगैरहके सामान्यपाठोंको अधिकमहीना होवे तबभी आगेलातेहैं। और अधिकमहीनेसंबंधी " पचाशतैव दिनैः पर्युषणा संगतेति वृद्धाः " कल्पसूत्रकी सर्व टीकाओंके इस विशेषपाठको, तथा स्थानांगसूत्रवृत्ति, निशीथचूर्णि,बृहत्कल्पचूर्णि,वृत्ति, पर्युषणाकल्पचूर्णि वगैरह शास्त्रोंके १०० दिन रहने संबंधीआदि विशेषताके पाठोंकी सत्यबातोंको छुपाकरके छोड देते हैं, सो यह सर्वथा अनुचित है।

४- धार्मिक कार्य करनेमें १२ महीनोंके सर्व दिन, या अधिक महीना होवे तब १३महीनोंकेभी सर्व दिन, वा क्षय महीनेकेभी सर्व दिन बरोबर समानही हैं, उनमें कर्मबंधनके संसारिक कार्य और कर्म निर्जराके धार्मिक कार्य हमेशा बराबर होते रहते हैं, इसलिये तत्त्वदृष्टिसे तो उनमेंसे एक समय मात्रभी गिनतीमें नहीं छुट सकता. जिसपरभी कार्तिकादि क्षयमहीनेके ३० दिनोंमें दीवाली, ज्ञानपंचमी, चौमासी वगैरह धार्मिक कार्य करते हुएभी अधिक महीनेके ३० दिनोंको तुच्छ समझकर बडी निंदा करते हैं, या कालचूलाके नामसे गिनतीमें छोड देनेका कहते हैं, सो सर्वथा जिनाज्ञाका उत्थापन करते हैं।

५— जैन ज्योतिषविषयसंबंधी प्ररूपणा आगमानुसार करनी और श्रद्धाभी उसीमुजबरखनी,परंतु अभी पडताकालमें जैनटिप्पणा बंध होनेसे उस मुजब व्यवहार नहींकरसकते.और लौकिकटिप्पणा मुजब व्यवहार करनेमें आता है। इसलिये अभी जैन शास्त्रमुजब पौष-आषाढ अधिक होनेसंबंधी पाठ बतलाकर लौकिक टिप्पणासंबंधी चैत्र;श्रावणादि अधिकमहीनें मान्यकरनेका निषेध नहीं करसकते। और जैसे जिनकल्पी व्यवहार अभी विच्छेद-है तोभी उन्हकी प्ररूपणाकरनेमें आतीहै, तैसेही पौष--आषाढ बढनेकी प्ररूपणा तो शास्त्रानुसार करसकते हैं, मगर मास-पक्ष-तिथि वगैरहका वर्ताव तो लौकिक टिप्पणा मुजबही करना योग्य है।

इन सर्व बातोंका विशेष निर्णय ऊपरके भूमिकाके लेखमें और इस ग्रंथमें अच्छी तरहसे हो चुका है। यहां तो उसका संक्षिप्तसार मात्रही बतलाया है. मगर विशेष निर्णय करनेकी अभिलाषावाले पाठकगण इसग्रंथको संपूरणतया वांचेगेतो सबखुलासा हो जावेगा

छ कल्याणकों संबंधी मंतव्यके कथनका संक्षिप्त सार.

१– कल्पसूत्र तथा आचारांग सूत्रादि आगमानुसार विशेषतासे श्रीमहावीरस्वामिके च्यवनादि छ कल्याणकमान्य करने, और अतित-अनागत-वर्तमानकालके सर्वतीर्थंकर महाराजोंकी अपेक्षासंबंधी सामान्यतासे पंचाशकादि शास्त्रानुसार पांचकल्याणकभी मान्य करने, इनमें कोई दोष नहींहै. मगर कितनेक लोग शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायको नहीं जाननेसे पंचाशकके पांच कल्याणकों संबंधी सामान्य पाठको भोले जीवोंको बतलाकर; विशेषतासे कल्प–आचारांगादि आगमोक्त छ कल्याणकोंका निषेध करते हैं, सो अज्ञानतासे शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करते हैं।

२– श्रीऋषभदेवस्वामिके राज्याभिषेकके कार्यमें तो च्यवन-जन्म-दीक्षादि कोईभी कल्याणकके कुछभी लक्षण नहीं हैं, तथा उनके मास, पक्ष, तिथि वगैरहकाभीकहीं उल्लेखनहींहै. और श्रीमहावीरस्वामिके दूसरे च्यवनरूप गर्भापहारके कार्यमें तो सर्व तीर्थंकर महाराजोंकी माताओंकी तरह त्रिशला मातानेभी १४ महास्वप्न आकाशसे उतरते हुए देखेहैं, तथा उसी दिन इन्द्रमहाराजका त्रिशलामाताकेपास आगमनहुआहै, तीर्थंकर पुत्र होनेका स्वप्नफल कहाहै, व उनके मास-पक्ष-तिथि वगैरह च्यवन कल्याणकके सर्व कार्य प्रत्यक्षपने शास्त्रोंमें कथन किये हुए हैं. और समवायांगसूत्रवृत्ति, लोकप्रकाशादिशास्त्रोंमें उनको अलग भव गिनतीमेंलियाहै, इसलिये गर्भापहाररूप दूसरे च्यवनके कार्यमें तो च्यवन कल्याणकपनेके सर्व लक्षण मौजूद हैं, जिसपरभी राज्याभिषेकके समान गर्भापहारकोभी ठहरते हैं, और उनको कल्याणकपने रहित कहतेहैं सो सर्वथा अनुचितहै।

३– श्रीमल्लीनाथस्वामिके स्त्रीत्वपनेमें तीर्थंकरपनेके जन्म-दीक्षादि कार्य अच्छेरारूप हुए हैं, तो भी उन्होंकोही कल्याणकपना माननेमें आताहै. तथा श्रीमहावीरस्वामि भगवानभी ब्राह्मण कुलमें देवानंदा माताके गर्भमें उत्पन्न हुए सो अच्छेरा रूपहै, तो भी उनको प्रथम च्यवनरूप कल्याणकपना मानते हैं । तैसेही गर्भापहाररूप आश्चर्य को भी दूसरा च्यवनरूप कल्याणकपना माननेमें आता है, इसलिये आश्चर्य कहनेसे कल्याणकपना निषेध नहीं हो सकता. जिसपरभी आश्चर्य कहकर कल्याणकपनेका जो निषेध करतेहैं, वो लोग अपनी अज्ञानतासे बडी भूल करते हैं।

४- देवानंदामाताकी कुक्षिमें भगवान आये सो ही नीचगोत्र कर्म विपाकरूपहै, उनका क्षय हुए बाद उच्चगोत्रके कर्मका उदय होनेसेही गर्भापहार करनापडाहै, तो भी शास्त्रकार महाराजोंने तो देवानंदाकी कुक्षिमे आनेको तथा त्रिशलामाताकी कुक्षिमें आनेको, इन दोनों कार्यों को तीर्थंकर भगवानके चरित्रमें उत्तमतापूर्वक कल्याणकारक माने हैं। जिसपरभी त्रिशलामाताके गर्भमें आनेको नीचगोत्र कर्म-विपाकरूप अतिनिंदनीक कहकर जो लोग वर्षोवर्ष पर्युषणाके मांगलिक पर्व दिनोंके व्याख्यानमें प्रत्यक्ष झूठ बोलकर भगवानकी निंदा करतेहैं, सो तीर्थंकर भगवान्के अवर्णवाद बोलनेवाले होनेसे आशातनाके दोषी ठहरते हैं।

५- जैसे श्रीअभयदेवसूरिजीमहाराजने श्रीस्थंभनपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको प्रकट किया, उनका आशय समझेविना कितनेक ढूंढिये व तेरहापंथी लोग जिनप्रतिमाकी नवीन प्ररूपणा कहै, तो उन्होंकी आज्ञानता समझी जावे. मगर तत्त्वदृष्टिवाले विवेकीलोग जिनप्रतिमाकी नवीन प्ररूपणा कभी नहीं कहेंगे, किंतु आगमोक्त प्राचीनही कहेंगे। तैसेही श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजनेभी षष्ट कल्याणकको प्रकट किया, उनका आशय समझेविना कितनेक लोग उनकी नवीन प्ररूपणा कहते हैं, वो उन्होंकी अज्ञानता समझनी चाहिये. मगर तत्त्व दृष्टिवाले विवेकीलोग उनकी नवीन प्ररूपणाकभी नहीं कहेंगे, किंतु आगमोक्त प्राचीन ही कहेंगे.

६- भगवानके शरीर-इन्द्रीय-पर्याप्तिके अवयव [पुद्गलपरमाणु] देवानंदामाताके शरीरसे बने हुए थे, और उसी शरीरसे त्रिशलामाताके गर्भमें भगवान् आगयेथे, यहबात आश्चर्यकारक होनेसे शरीर-इन्द्रीय-पर्याप्ति बदले बिनाभी शास्त्रकार महाराजोंने उनको अलग भव गिना है। उनमें प्रत्यक्षपने च्यवन कल्याणकपना दिखलानेके लियेही खास कल्पसूत्रके मूलपाठमें त्रिशलामाताने १४ स्वप्न देखेहैं उन संबंधी "एए चउदस सुमिणे, सव्वा पासेइ तित्थयर माया। जं रयणिं वक्कमई, कुच्छिंसि महायसो अरिहा ४७॥" यह पाठ लिखा है, और इसपाठकी सुबोधिका टीकामें इस प्रकार व्याख्या किया है "अत्र प्रसंगेन एतेषां स्वप्नानां गर्भकाले सकलजिनराजजननीविलोकनीयत्वं दर्शयन्नाह-एतान् चतुर्दश स्वप्नान्, सर्वाः पश्यंति तीर्थंकर मातरः। यस्यां रजन्यां उत्पद्यंते, कुक्षौ महायशसः अर्हन्तः ॥४७॥ इसी तरहसेही सर्व टीकाओंमेभी ऐसेही भावार्थका

पाठजानलेना. देखो-जिसरात्रिको तीर्थंकरभगवान माताकेगर्भमेंआके र उत्पन्नहोवें,उसरात्रिको उन्होंकीमाता गर्भकाले अर्थात् च्यवन कल्याणक समय सर्व तीर्थंकरोंकी मातायें यह१४महास्वप्न देखती हैं। ऐसेही श्री महावीरस्वामिभी त्रिशलामाताके गर्भमें आये,तब त्रिशलामातानेंभी १४महास्वप्न देखे हैं। इस ऊपरके पाठपर अच्छी तरहसे तत्त्वदृष्टिसे विचारकिया जावे. तो-अनादिकालकी मर्यादा मुजब सर्व तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन कल्याणककी तरहही आश्विन वदी १३ की रात्रिको त्रिशलामाताके गर्भमें भगवान् आये; उनको खास सूत्र कारने और सुबोधिका, दीपिका, किरणावली वगैरह सर्व टीकाकारोंनेभी च्यवन कल्याणक मान्य कियाहै। और तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन कल्याणकमें इंद्रमहाराजाका आसन चलायमानहोनेसे विधिपूर्वक नमस्काररूप'नमुत्थुणं'करना। तीनजगतमें उद्योत होना, तथा सर्व संसारी प्राणी मात्रको थोडीदेर सुखकी प्राप्ति होना, वगैरह कार्यहोतेहैं। यह अनादि मर्यादा आगमानुसार प्रसिद्धहीहै। यही सर्व कार्य आसोज वदी १३को भगवान त्रिशलामाताके गर्भमें आये तब उसीरोज होनेका ऊपरके कल्पसूत्रके मूलपाठसे तथा उन्होंकी सर्व टीकायें वगैरह बहुत शास्त्रोंके प्रमाणोंसेभी प्रत्यक्ष सिद्धहोताहै,क्योंकि देखो- आषाढ शुद्ध ६ को भगवान देवानंदामाताके गर्भमें आये तब उसी समय तो सिर्फ देवानंदामाताने १४ महा स्वप्न देखे सो अपने पति ऋषभदत्त ब्राह्मणको कहे, उनने स्वप्नोंके अनुसार उत्तम लक्षण वाला गुणवान् पुत्र होनेका कहा, सो बात अंगीकार किया और उसके बाद दोनो दंपति संसारिक सुखभोगते हुए काल व्यतीत करने लगे. इसप्रकार कल्पसूत्रादि सर्व शास्त्रोंमें लिखाहै, मगर 'भगवान् देवानंदा माताके गर्भमें आषाढशुदी६को आये,तब उसीरोज १४ महास्वप्न देखनेके सिवाय इन्द्रका आसन चलायमान होनेका व नमुत्थुणं वगैरह कोईभी च्यवन कल्याणकके कार्य होनेका उल्लेख कल्पसूत्र व भगवानके चरित्र संबंधी किसीभी शास्त्रमें देखनेमें नहीं आता. और त्रिशिलामाताके गर्भमें आसोज वदी १३ को भगवान आये,उसीरोज तो 'महापुरुष चरित्र' व ' त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र ' तथा कल्पसूत्र और उन्होंकी सर्व टीकायें वगैरह बहुत शास्त्रोंके पाठोंसे प्रत्यक्षमेंही ' नमुत्थुणं ' वगैरह च्यवन कल्याणकके सर्व कार्य होनेका देखनेमेंआताहै. इसलिये कल्पसूत्रमें जो'नमुत्थुणं' होनेका पाठ है, सो. आषाढ शुदी ६ के दिन संबंधी नहीं है, किंतु

आसोज वदी १३ के दिन संबंधी है, ऐसा समझना चाहिये क्योंकि देखो— इन्द्रमहाराजने भगवानको नमुत्थुणं करके अपने सिंहासन पर बैठकर, प्राचीन कर्म उदयसे देवानंदाके गर्भमें भगवानको उत्पन्न होना पडा, ऐसा अच्छेरारूप विचारके हरिणेगमेषिदेवको आज्ञाकरके आसोज वदी १३को त्रिशलामाताके गर्भमें भगवानको संक्रमण करवाये, इसलिये यह सबबातें आसोज वदी १३को उसी समय हुईहैं, इसलिये ८२दिन तकतो इन्द्रमहाराजका आसन चलायमान नहीं होनेसे भगवान देवानंदाके गर्भमें उत्पन्नहुएहैं,ऐसा मालूमभी नहीं पडा,मगर संपूर्ण ८२ दिन गये बाद अवधिज्ञानसे मालूम पडा; तब हर्षसे विधिपूर्वक नमस्कार रूप नमुत्थुणं किया और त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये। इसलिये त्रिशलामाताके गर्भमें आनेके दिन आसोज वदी १३ को नमुत्थुणं करनेका कल्पसूत्रादि आगमानुसार प्रत्यक्षही सिद्ध होताहै,और तीर्थंकर भगवान माताके गर्भमें आकर उत्पन्न होवें, तब इन्द्रमहाराजको अवधिज्ञानसे मालूम पडे, उसी समय 'नमुत्थु णं' रूप नमस्कार करनेकी आगमानुसार अनादि मर्यादा है, मगर उस समय वहां सामान्य नमस्कार करनेकी मर्यादा नहीहै। इसलिये 'महापुरुष चारित्र' में और 'श्रीत्रिषष्ठिशालाका पुरुषचरित्र' के १० वें पर्वमें श्रीमहावीरस्वामिके चरित्रमें आसोज वदी१३को इन्द्रमहाराजका आसन चलायमान होनेसे अवधिज्ञानसे भगवानको देवानंदाके गर्भमें देखकर नमस्कार किया ऐसा अधिकारहै, सो नमुत्थुणं रूप नमस्कार करनेका समझना चाहिये मगर सामान्य नमस्कार करनेका नहीं समझना। और तीर्थंकर भगवानके च्यवन समये इन्द्रमहाराज नमुत्थुणंरूप नमस्कार हमेशां करतेहैं,तथा उसीसमय तीनजगतमें उद्योत,और सर्व जीवोंको क्षणमात्र सुखकी प्राप्ति होती है,उन्हीकोही च्यवन कल्याणक मानते हैं, यही सर्व कार्य आसोज वदी १३ के रोज होनेका ऊपरके लेखसे आगमादि प्राचीन शास्त्रानुसार सिद्ध होताहै.और समवायांग सूत्रवृत्ति वगैरह आगमादि शास्त्रोंमें त्रिशलामाताके गर्भमें आसोज वदी १३ को भगवान् आये उन्हीकोही तीर्थंकर पनेके भवमें गिना है, इसलिये त्रिशलामाताके गर्भमें आनेको आसोज वदी १३ के रोज दूसरा च्यवनरूप कल्याणक पना मान्य करना आत्मार्थी निकट भव्य जीवोंको उचितहीहै. जिसपरभी उनको कल्याणकपनेका निषेध करनेके लिये देवानंदाके १४ महास्वप्न त्रिशलासे हरण हुए हैं, इस

लिये वो कल्याणक नहीं होसकता. ऐसा कहनेवालोंकी बडी अज्ञानताहै, क्योंकि देखो- जैसे देवानंदानें मेरे १४ महा स्वप्न त्रिशलाने हरण किये ऐसा स्वप्न देखा, वैसेही त्रिशलाभी मैने देवानंदाके १४ महा स्वप्न हरण कियेहैं, वैसा सिर्फ एकहीस्वप्न देखती और च्यवन कल्याणककी सिद्धि बतलानेंवाले नमुत्थुणं वगैरह अन्य कोईभी कार्य उसीरोज न होते तथा कल्पसूत्रमेंभी "एए चउदस सुमिणा, सव्वा पासेइ तित्थयरमाया । जं रयणिं वक्कमई कुच्छिसि,महायसो अरिहा" यहपाठ अनादि मर्यादामुजब त्रिशला संबंधी न कहकर देवानंदा संबंधी कहते और पार्श्वनाथस्वामिके तथा नेमिनाथस्वामिके च्यवन कल्याणक संबंधी उन्होंकी माताओंने १४महास्वप्न देखे,उसी समय इन्द्रकाआसन चलाय मान हुआ, तबविधिपूर्वक हर्षसे नमुत्थुणं किया और प्रभातमें राजाओंने स्वप्न पाठकोंको बुलाकर स्वप्नोंका फल पूछा, तब स्वप्न पाठकोंने १४ महास्वप्न देखनेंसे रागद्वेषको जितनेवाले जिने;त्रैलोक्य पूज्यनीक तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा. इत्यादि च्यवन कल्याणकके कार्योंकी भलामणभी त्रिशला संबंधी न देकर देवानंदा संबंधी देते. और आषाढ शुदी६ को ही नमुत्थुणं होने वगैरह उपरके तमाम कार्योंका उल्लेख कल्पसूत्रादिमें शास्त्रकार करते,व समवायांगसूत्रवृत्तिमें अलग भवभी न गिनते और आसोजवदी१३को नमुत्थुणं वगैरह च्यवन कल्याणकके कोईभी कार्य नहीं होते,तबतो त्रिशलाके गर्भमें आनेको च्यवनकल्याणक नहींमानते तोभी चल सकता,मगर ऐसा नहींहै,और आषाढ शुदी ६ को नमुत्थुणं वगैरह च्यवन कल्याणकके कार्य नही हुए, किंतु आसोज वदी १३को हुए हैं. इसलिये आसोज वदी १३को ही च्यवन कल्याणकके तमाम कार्य होनेसें उनको अवश्यही कल्याणकपना मान्य करना योग्य है। और स्वप्न हरण वगैरहके बहानेसे कल्याणकपना निषेध करना सो अज्ञानतासे शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा करना योग्यनहींहै. और जन्म त्रिशलामाताकेगर्भसे हुआहै,तथा च्यवनकल्याणकके सर्वकार्यभी त्रिशलाके गर्भमेंआये तबहुएहैं,इसलिये त्रिशलाके गर्भमें आनेरूप च्यवन माननाही आगम प्रमाण अनुसार और युक्तियुक्तहै,च्यवनके सिवाय जन्मभी नहींमानसकते.यह जगत विख्यात प्रसिद्ध न्यायकी बातहै. त्रिशलाके गर्भमें आये तब अनादि मर्यादामुजब च्यवन कल्याणकके सर्वकार्य खाससूत्रकारनेलिखेहैं, जिसपरभी उन्होंको उत्थापनकरके अकल्याणकरूप ठहरानेंके लिये उसबातको निंदनीक कहकर बाल

जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका अनर्थ करना सर्वथा अनुचितहै.
और जैसे-देवलोकसे च्यवन हुए बाद तथा माताके गर्भमें अवतार लेनेबाद नमुत्थुणं वगैरह च्यवन कल्याणकके कार्य होते हैं, तो भी 'कारणमें कार्यका उपचार' होता है, इसलिये च्यवनसमय नमुत्थुणं वगैरह कार्य होनेका कहनेमें आता है। तैसेही यद्यपि देवानंदामाताके गर्भमें नमुत्थुणं हुआ तो भी आषाढशुदी६के दिननहीं, किंतु आसोज वदी १३ के दिन हुआहै, तथा उसी समय त्रिशला माताके गर्भमें जानेका होनेसे उन्हीके निमित्त भूतही 'कारणमें कार्यका उपचार' मानकर त्रिशला माताके गर्भमें आने संबंधी नमुत्थुणं वगैरह कार्य होनेका कहनेमें आता है. और इन्द्रमहाराज भगवान्‌के विनयवान भक्त थे; इसलिये अवधिज्ञानसे भगवान्‌को देखतेही उससमय नमुत्थुणं किया और त्रिशला माताके गर्भमें पधराये. यदि भगवान्‌को अवधिज्ञानसे देवानंदामाताके गर्भमे देखकर त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये बाद पीछेसेनमुत्थुणंकरते तो विनयभक्तिरूप मर्यादाकाभंग होता,इसलिये विनय भक्तिरूप मर्यादा रखनेकेलिये पहिले नमुत्थुणं किया और पीछे त्रिशलामाताकेगर्भमें पधराये.देखो,जैसे कोई राजा महाराजा भगवान्‌का आगमनसुनने मात्रसेही हर्षयुक्त होकर उसीसमय उसी दिशा तरफ पहिले वहांसेही भगवान्‌को नमस्कारकरते हैं, और बादमें भगवानके पास वहां जाकर उचित भक्ति करते हैं। तैसेही इन्द्रमहाराजनेभी अवधिज्ञानसे भगवानको देखतेही वहांसे नमुत्थुणंरूप नमस्कारकिया और त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये,बाद त्रिशला माताके पासमें आकर तीन जगतके पूजनीक तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा और देवताओंको आज्ञा करके धनधान्यादिककी वृद्धि करवाने वगैरह कार्योंसे भगवानकी उचित भक्ती करी। यह सर्व कार्य आसोजवदी१३के दिन हुएहैं,इसलिये कारणमें कार्यका उपचार माननेसे नमुत्थुणं वगैरह तमाम कार्य त्रिशलामाताके गर्भमें आनेसंबंधी समझने चाहिये.जिसपरभी देवानंदाके गर्भमें नमुत्थुणं होनेका कहकर त्रिशलाके गर्भमें आनेसंबंधी आसोज वदी १३के दिनको च्यवन कल्याणकपने रहित कहतेहैं उन्होंकी अज्ञानता है।

और जोबातनहीं बननेवालीहोवे;असंगतीरूप या असंभवित होवे, वोही बात कभी कालांतरमें बनजावे, उन्हीं बातको शास्त्रोंमें आश्चर्य कारक अच्छेरारूप कहते हैं। इसलिये जिसबातको अच्छेरा कह दिया, उस बातमें अन्य शास्त्र प्रमाणकी मर्यादा बाधक

नहीं हो सकती.इसी तरहसे भगवानकेभी देवानंदा माता तथा त्रिशलामाता दोनोंका गर्भकाल मिलकर ९ महीने और ऊपर ७॥ दिन मानतेहैं, मगर देवानंदाके गर्भमें आनेको शास्त्रकारोंने अच्छेरा कहा है. और ८२ दिन गये बाद त्रिशलाके गर्भमें आनेको तीर्थंकर पनेके भवमें गिनाहै, इसलिये देवानंदाके गर्भमें आये तब च्यवन कल्याणक के सर्वकार्य नहीं हुए, परंतु त्रिशलाके गर्भमें आये तबही च्यवनकल्याणकके सर्व कार्य हुए हैं. तो भी देवानंदाके गर्भमें भगवान आये तब माताने १४ महास्वप्न देखे,तथा ८२ दिनतक वहां विश्रामलिया और शरीर-इन्द्रीय-पर्याप्ति देवानंदामाताके शरीरसे बने हैं. इसलिये देवानंदाके गर्भमें आनेकोभी भगवानके प्रथम च्यवनरूप कल्याणक पना मानते हैं। और जैसे–मारवाड,गुजरात,दक्षिण, पूर्व वगैरह देशोंमें पुत्रको दत्तक [गोद] लेनेमें आताहै, उनके पहिलेके मातापिता अलगहोतेहैं और पीछेपालने पोपनेवाले दूसरे मातापिता अलगहोते हैं, इसलिये उनके दो माता और दो पिता कहनेमें कोई दोष नहीं आता, मगर नाम पीछेवालोका चलता है । तैसेही भगवानकेभी देवानंदाके गर्भसे ८२दिन गये बाद आश्चर्यरूप त्रिशलाके गर्भमें आना पडा, उससे दो माता तथा दो पिता और दो च्यवन कल्याणक माननेमें आते हैं. इसलिये दोनों माताओंका गर्भकाल मिलकर ९महीने और ७॥ दिन हुए हैं, तो भी दो च्यवन कल्याणक माननेमें कोईभी शास्त्र बाधा नहीं आ सकती और कोई कुयुक्ति व वितर्कभी बाधकन ही होसकती, इस बातको विशेष तत्त्वज्ञजन स्वयंविचार सकते हैं।

इन सर्वबातोंका विशेषनिर्णय ऊपरके भूमिकाके लेखमें और इस ग्रंथमें अच्छीतरहसे सर्व शंकाओंका निवारणपूर्वक खुलासा हो चुकाहै, यहां तो उसका संक्षिप्तसार बतलायाहै,और विशेष निर्णय करनेकी अभिलाषावाले तत्त्वसारग्रहण करनेवाले पाठकगण इस ग्रंथको संपूर्ण वांचेगे तो सर्वबातोंका खुलासा अच्छी तरहसे होजावेगा

विवादवाले विषयों संबंधी अभिप्राय.

तपगच्छके श्रीमान् विजयधर्मसूरिजीके शिष्यश्रीमान् रत्नविजयजीने विवादवाले विषयों संबंधी पौषशुदी३बुधवार, श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४४२ के जैन शाशन पत्रके पृष्ठ ५८८ में श्रीपार्श्वनाथस्वामीकी परंपरासंबंधी उपकेशगच्छ (कवलागच्छ) की हकीकत छपवाया है, उसका थोडासा उतारा यहांपर बतलाते हैं ।

"श्रीरत्नप्रभसूरिजीकृत सामाचारीमां लख्युंछे के.पुष्पवती थया बाद स्त्रीने पूजा नहीं करवी. आंबिलमां २-३ द्रव्य कल्पे. तथा देवगुप्तसूरिजीकृत कल्पसूत्रनी टीकामां ६ कल्याणिक लख्यां छे,पजोसणा ५० दिवसे करवा इत्यादि" तथा "वीर प्रभुना २८ भव लख्या छे, सुधर्मा, जंबु, प्रभव, सिजंभव ए चारना ८४ शाखा, ८५ गण, ८ कुल थया. आ सामाचारी तथा कल्प टीका हालनां गच्छोंथी घणी प्राचीन बनेली छे, प्राचीन समयथी ६ कल्याणिक, स्त्री पूजा निषेध विगेरे प्रवृत्तिओ चाली आवीछे, जिनदत्तसूरिजी, जिनवल्लभसूरिजी विगेराने लोको खाली निंदे छे, नवुं कोईए कर्युं नथी. पजोपण जेवा वीतराग पर्वमां कल्पसूत्रना मांगलिक व्याख्यानमां चतुर्विध श्रीसंघमां अकारण कलह करी जैनभाईयोनां अंतकरण दुभावी धर्मनी निंदा करावी वर्षोवर्ष अनी अे वातने 'अभूतद्भावच्चिच' करीनें किंतुना कलासमां दाखल करवी, ए कोई रीते इच्छवा योग्य नथी, शासन प्रेमी महाशयो आ बाबत बराबर समजी गया हशे, [अयं निजपरोवेत्ति, गणनालघु चेतसा। उदार चरितानां तु,वसुधैव कुटुंबकम्' ॥१॥] आमा 'वसुधैव कुटुंबकं' ए वाक्य अत्यंत श्रेष्ट छे पण अने बदले 'सर्व गच्छ कुटुंबकं' एवुं बनो,एज प्रार्थना, याचना अने सलाह" यहीलेख उसीअरसेमे जैनपत्रमेंभी प्रकाशित होगयाहै औरभीजेठवदि१बुधवार वीर सं०२४४४ के जैनशासनपत्रकेपृष्ठ१६८ में श्रीरत्नविजयजीनें पर्युषणामें समभावरखनेसंबंधी लेख छपवाया था,उसमेसे थोडासावतलातेहै."दरेकगच्छनीपट्टावलीजुओ,तेमांपरस्पर पठनपाठन साथे रहेता,वंदनादि व्यवहार करता,विनयमूल धर्मनी पुष्टि करनाराहता,आजे विरोधभाव करनारा बीकनथीराखता. खरतरगच्छना आचार्योंने सत्कारआपनारा तपगच्छना साधुओहता अने तपगच्छनाआचार्योंने बहुमान आपनारा खरतरगच्छनासाधुओ हता, तपगच्छनां जेवा परम प्रभाविक पुरुषो थयाछे तेवाज खरतर गच्छमां परम प्रभाविक पुरुषो थया छे.जिनदतसूरिजी, जिनकुशल सूरिजी जेणे सवालाखनवा जैनो बनाव्या,हजारोराजा महाराजाओनें जैन धर्म अंगीकार कराव्यो, हजारो क्षत्रीयोनें ओसवाल बनाव्या, जिनचंद्रसूरि,जिनहर्षसूरि जिनप्रभसूरि आदि अनेक प्रभाविक पुरुषो थया. तेवा महा पुरुषोना अवर्णवाद बोलवा,आवते भवे जीभ पामवी मुश्किल छे. उपकारी नो उपकार रदी करवो महा भयंकर पाप छे, एक खास मुद्दो तपागोके आजे साधुओ वखाणमां टीकाओ

वांचेछे तथा चरित्रोनां चरित्रो वांचेछे, ग्रंथो वांचेछे ते घणेभागे खरतर गच्छना बनावेला ग्रंथो छे, परस्पर गच्छवालाओ वांचे छे सर्व गच्छवालाओ श्रद्धाथी सांभले छे ' पुरुष विश्वासे वचन विश्वास' जेना बनावेला पुस्तको हाथमां लई सन्मुख धरी वांचो छो, अने मोढेथी तेज आचार्योनी बद बोई कराय. आजे दादा साहेबने मानवा वाला चरण पादुकाना दर्शन करनारा तपगच्छवाला हजारो भाविक भक्तो छे तथा श्री हीरविजयसूरि प्रमुखने माननारा खरतरगच्छना हजारो भाविक भक्तोछे. आवा शंभु मेलामां खाली विक्षेप पेदा करवाथी कोईनुं कल्याण थवानुं नथी " इत्यादि.

देखो-ऊपर मुजब खास तपगच्छके श्रीरत्नविजयजीके लेखपर खूब दीर्घ दृष्टिसे विवेकपूर्वक विचार किया जावे, तो श्रीपार्श्वनाथस्वामिकी परंपराके श्रीदेवगुप्तसूरिजीकृत कल्पसूत्रकी प्राचीन टीका वगैरह शास्त्रानुसार पहिले पूर्वाचार्योंके समयसेही श्रीवीर प्रभुके २८ भव, तथा छ कल्याणक मानने वगैरह बातें प्रचलीतही थीं. उन्हीके अनुसार श्रीजिनवल्लसूरिजी वगैरह महाराजोंने चैत्यवासियोंको हटाते हुए, भव्य जीवोंके सामने विशेषरूपसे प्रकटपने कथन की हैं। परंतु शास्त्रविरुद्ध होकर नवीन प्ररूपणा नहीं की, जिसपरभी आगमप्रमाणोंको उत्थापन करके शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायको समझेबिना अपनी मतिकल्पनासे शास्त्रपाठोंके खोटे खोटे अर्थ करके नवीन छठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेका झूठा दोष लगाते हैं. सो प्रत्यक्षपणे मिथ्याभाषणकरके अपने दूसरे महाव्रतका भंग करना और भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गेरना सर्वथा अनुचितहै।

और श्रीजिनवल्लभसूरिजी, श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज जैसे शासन प्रभावक परम उपकारी पुरुषोंने, चैत्यवासियोंकी उत्सूत्रप्ररूपणाके तथा शिथिलाचारके मिथ्यात्वको हटाया, और क्षत्री-ब्राह्मणादि लाखों अन्य दर्शनियोंको प्रतिबोधकर जैनी श्रावक बनाये, उन्होंकोही वंश परंपरा वाले अभी वर्तमानमेंभी गुजरात, कच्छ, मारवाड, पूर्व, पंजाब, दक्षिणादि देशोंमें लाखों जैनी विद्यमान मौजूद हैं। इसलिये उन महाराजोंने परंपराके हिसाबसे करोंडो जीवोंको सम्यक्त्व प्राप्त कराने संबंधी बडाभारी महान् उपकार किया हैं। तथा विद्या, मंत्र, देवसाह्य, व संयमानुष्ठान-आत्मशक्ति प्रकाशित करके बहुत बडीभारी जैनशासनकी प्रभावना करी. उन महाराजोंके प्रतिबोधे हुए श्रावकोंकी वंश परंपरावाले श्रावकोंसेही, वर्तमानिक

सबगच्छवाले बहुतसाधुओंको आहार,पानी,तथा संयम उपकरणोंसे निर्वाह होता है। ऐसे महान् शासन प्रभावक परम उपकारी महाराजोंने पूर्वाचार्योंकी प्रवृत्ति मुजब तथा आगमादि प्राचीन शास्त्रानुसारही सत्य प्ररूपणाकरीहै, मगर शास्त्राविरुद्ध होकर नवीन प्ररूपणानहींकरी. जिसपरभी कितनेक पक्षपातीजन उपकारी महाराजोंके उपकारोंको छुपादेतेहैं, और छठे कल्याणक प्रकटकरनेकी तथा स्त्रीपूजा निषेधकरनेकी नवीनप्ररूपणाकरनेकाझूठा दोपलगाकर अनेक तरहसे निंदा करते हुए आक्षेप करते हैं। उन्होंको परभवमें जीभ मिलना मुश्किलहै यहबात तपगच्छवालेही गुणानुरागी मध्यस्थ भावसे लिखतेहैं। अर्थात् ऐसे उपकारोंको भूलकर झूठा दोष लगाकर निंदा करनेवाले एकेन्द्रिय होवेंगें, फिर उन्होंको जैनधर्म प्राप्त होना बहुत मुश्किल होवेगा, संसारमें बहुत काल परिभ्रमण करेंगे. इसलिये भवभिरु आत्मार्थी भव्य जीवोंको संसार परिभ्रमण के हेतुभूत उपकारी पुरुषोंकी झूठी निंदा करके भोले जीवोंको मिथ्यत्वमें गेरनेरूप अनर्थ करना सर्वथा अनुचित है।

और ऊपरके लेखसे श्रीरत्नविजयजीके लेखमुजब तपगच्छके तथा खरतरगच्छके आपसमें विशेषरूपसे संपकी वृद्धि होना चाहिय और कुसंपके कारण भूत पर्युषणामें खंडनमंडनके विवाद वाले विषयोंको सर्वथा त्याग करके संपसे शासन उन्नतिके कार्योंमें कटिबद्ध होना, यही अपने और दूसरे भव्यजीवोंकेभी आत्म कल्याणका हेतु है। ऐसी ही श्रद्धा तथा प्ररूपणा और प्रवृत्तिका शुद्ध हृदयसे व्यवहारकरके उपकारी पुरुषोंकी झूठीनिंदा छोडकर; प्राचीन पूर्वाचार्योंकी परंपरामुजब शास्त्रानुसार आषाढ चौमासीसे ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा पर्वका अराधन करके तथा श्री महावीर स्वामिके च्यवनादि छ कल्याणकोंको आगमानुसार भावपूर्वक मान्य करके भगवान्की आज्ञानुसार धर्मकार्योंसे निज और परका कल्याणकरो,संसार परिभ्रमणके दुःखसे छुटो,और अक्षय सुख प्राप्त करो. यही आत्मिक हृदयकी विशुद्ध प्रेम भावसे आत्महितैषी पाठक गण भव्यजीवोंके प्रति प्रार्थनाहै. इति शुभम्.

विक्रम संवत् १९७७, प्रथम श्रावण शुदी १३ बुधवार.

हस्ताक्षर – श्रीमान् उपाध्यायजी श्रीसुमतिसागरजी महाराजके लघुशिष्य—मुनि- मणिसागर. जैन धर्मशाल, धुलिया—खानदेश.

श्रीवीतरागाय नमः ।

दूसरे भागकी पीठिका.

इनकोंभी पहिले अवश्यही बांचिये.

अब हम यहांपर दूसरे भागकी पीठिकामें न्यायरत्नजी शांतिविजयजी संबंधी थोडासा लिखतेहैं, जिसमें ३ वर्ष पहिले दो भाद्रपद होनेसे पर्युषणापर्व प्रथम भाद्रपदमें करने या दूसरे भाद्रपदमें, इस विषयकी मुंबईशहरमें चर्चा खूब जोरशोरसे दोनों तरफसे चलीथी, उससमय मैनेभी 'लघु पर्युषणा निर्णयका प्रथम अंक' नामा छोटीसी पुस्तकमें मुख्य २ सर्वबातोंकी शंकाओंका समाधान अच्छीतरहसेलिखदियाथा. वह पुस्तक एकश्रावकने छपवाकर प्रसिद्ध की थी. उसपर न्यायरत्नजीने उन पुस्तककी शास्त्रानुसार सत्य २ बातोंको ग्रहण तो नहीं करी और मेरे सबलेखोंको अनुक्रमसे पूरेपूरे लिखकर पीछे उनसबका जवाब देनेकीभी ताकत न होनेसे जानबुझकर कुयुक्तियोंसे अनेकबातें शास्त्रविरुद्ध लिखकर 'पर्युषणापर्वनिर्णय' तथा 'अधिकमासनिर्णय' में प्रकटकी. उसपर मैने उनदोनों पुस्तकोंकी शास्त्रविरुद्धबातोंसंबंधी शास्त्रार्थसे सभामेंनिर्णयकरनेकोलिये न्यायरत्नजीको जाहिररूपसे छपवाकर सूचना दीथी. वो लेख नीचे मुजबहै.

विज्ञापन, नं० ७

न्यायरत्नजी शांतिविजयजी सावधान ! शास्त्रार्थके लिये जलदी तैयार हो.

मैंने- आपको शहर पुनामें शास्त्रार्थ संबंधी विज्ञापन नंबर १-२-३-४ भेजेथे और वर्तमानिक पर्युषणाकी चर्चासंबंधी आपकी बनाई 'पर्युषणापर्वनिर्णय' किताब "शास्त्रकारोंके अभिप्रायविरुद्ध, जिनाज्ञा बाहिर और कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंको उन्मार्गमें गेरने वाली है," यह सूचना विज्ञापन नंबर पहिलेमें लिखकर, इसका विशेष खुलासा मुंबईकी सभामें शास्त्रार्थद्वारा करनेकोलिये आपको आमंत्रण कियाथा और 'श्रीकच्छी जैन एसोसीयन सभा' नेभी सब मुनिमहाराजोंकी तरह आपकोभी पर्युषणाका निर्णय करनेसंबंधी विनतीपत्र भेजाथा, जिसपरभी आपने मुंबईमें शास्त्रार्थकरना मंजूर न

किया और दूसरों पर गेरकर मौनही कर बैठे, तथा दूरसेही फिर "अधिकमासनिर्णय" की छोटीसी किताब छपवाकर प्रकटकी. उसके बाद थोडे रोज पीछे आप मुंबई दादर आये, तब मैंने आपको दोनों किताबों संबंधी शास्त्रार्थ करनेकी सूचना पत्र द्वारा दीथी, उसकी नकल नीचे मुजब है:—

"श्रीदादर मध्ये श्रीमान् न्यायरत्नजी शांतिविजयजी योग्य श्री मुंबई वालकेश्वरसे मुनि-मणिसागरकी तरफसे सूचना.मैंने कलरात्रिको आपके दादर आनेकासुनाहै,उससेआपको सूचनादेताहूं,कि-आपने "पर्युषणापर्व निर्णय" और "अधिक मास निर्णय" दोनो पुस्तकोंमें बहुत जगह शास्त्रविरुद्ध होकर उत्सूत्र प्ररूपणारूप लिखा है, आपने दोनों पुस्तकोंमें सर्वथा शास्त्रविरुद्ध और कल्पित बातोंकाही संग्रह किया है, इसलिये हम सभामे शास्त्रार्थसे आपकी दोनों पुस्तकें जिनाज्ञाविरुद्ध सिद्ध करनेको तैयार हैं, शास्त्रार्थ किये विना आप चले जावोंगे तो झूठे समझे जावोंगे, विशेष क्या लिखुं, शास्त्रार्थका विज्ञापन नं० १ आपको पहिलेभी भेज चुका हूं, कल दादर आवुंगा आप जाना नहीं. इसका उत्तर अभीही लालबागमें आदमीके साथ पीछा भेजना; मै लालबाग जाताहूं, हस्ताक्षर मुनि-मणिसागर, पौष शुदी १ रविवार, सं० १९७४." इस मुजबपत्र पौषशुदी१ को आदमी भेजकर आपको पहुंचाया और दूजके दिन खास मै और मुनिश्रीलब्धि मुनिजी, तथा अंचलगच्छीय मुनि दानसागरजी और केवलचंदजी चारोंही ठाणे दादर आये, और शास्त्रार्थ करनेका आपसे कहा,तब आपनेभी अन्य मुनियोंकीतरह आनंदसागरजीकी आड लेकर दो महीनोंबाद शास्त्रार्थ करनेका कहाथा, सो २ महीनेंकी जगह ४ महीने होगये, अब जलदी करो. आनंदसागरजी तो आडी आडी बातोंसे दूसरेका नाम आगे करते हैं. अपना नामसे लिखतेभी डरते हैं, तो सभामें नियमानुसार क्या शास्त्रार्थ करेंगे. और आपने किताबें बनवानेमें किसी आगेवानोंकी व आनंदसारगजी वगैरह मुनियोंकी आड न ली तो फिर उसका खुलासा करनेमें दूसरोंकी आड लेते हो— यही आपका अन्याय समझा जाता है, वालकेश्वरमें जब हमारे गुरुजी महाराजकेसाथ आपकी मुलाकात हुईथी तबभी झगडीया वगैरह तीर्थयात्राको जाकर आये बाद शास्त्रार्थ करनेका मंजूर कियाथा, सो आप यात्राकरके आगये.अब आमने सामने या लेखद्वारा वा सभामें आपकी इच्छाहो वैसे शास्त्रार्थ करना मंजूर करिये

और विशेष सूचनायें विज्ञापन, नंबर ६ से समझ लीजिये. और नि-
यमभी जो आपकी इच्छा हो सो प्रतिज्ञापत्रके साथ१५ दिनके भीत-
र प्रकट करीये, आनंदसागरजी, विजयधर्मसूरिजी, विद्याविजयजी
व न्यायविजयजीकी तरह आडी आडी बातें निकालकर शास्त्रार्थ क-
रना मंजूर न करोंगे.तो-आपकीभी हार समझी जावेगी. अथवा श्री-
कच्छी जैन एसोसीयनकी विनतीके अनुसार, व मेरे विज्ञापनोंके अ-
नुसार यदि आपको मुंबईमें ठहरकर सभामें शास्त्रार्थ करनेमें अनुकू-
लता न होंवे, तो लीजिये चलिये- लेख द्वाराही सही, मगर विज्ञापन
नंबर ६ मुजब प्रतिज्ञा वगैरह नियमोंके साथ उत्तर दीजिये. देखो —

न्यायरत्नजी मेरे बनाये 'लघु पर्युषणानिर्णय के प्रथम अंक' के
सब लेखोंका न्यायसे पूरेपूरा उत्तर देनेकी आपमें ताकत नहींहै, य-
दि होती तो उसके पृष्ठ ३-४-५-६-७ और १०में अधिकमासमें सूर्य-
चार न होवे, वनस्पति न फूले, वगैरह सुबोधिकाकी ११ बातोंका खु-
लासा मैंने लिखाथा. उन सबको लिखकर अनुक्रमसे पूरा उत्तर क्यों
न दिया,यदि भूल गये हो, तो अभीही देवो। और पृष्ठ १७के अंतके
पाठका खुलासाभी साथही करो ॥ और मैने 'लघु पर्युषणा निर्णय'
में निशीथचूर्णि और दशवैकालिक बृहद्वृत्तिके पाठसे अधिकमास
को कालचूला कहकरकेभी दिनोंकी गिनतीमें लेनेका सिद्धकर दिखा
या है,इसलिये दिनोंकी गिनतीमें निषेध नहीं होसकता,देखो-लघुपर्यु-
षणानिर्णयके पृष्ठ २४-२५ ॥ और लौकिक शास्त्रानुसारभी अधिक-
मासको दिनोंमें गिना है, देखो-लघुपर्युषणानिर्णय के पृष्ठ २८-२९ ॥
और अधिक मासमें मुहूर्त्तवाले शुभकार्य न होवें,उसी तरह चौमासे-
में, सिंहस्थमें,गुरु शुक्रके अस्तमें, पौष-चैत्र मलमासमें, क्षयमासमें,
वदीपक्षकी १३-१४ और अमावास्या इन तीन क्षीणतिथियोंमें,और वै-
धृति-गंडांत-व्यतिपात-भद्रा वगैरह कुयोगोंमें; तिथि, वार, नक्षत्र,
चंद्रादि बहुत, मास-पक्ष-वर्ष-दिन वगैरह योगोंमेंभी मुहूर्त्तवाले शुभ-
कार्य न होंवे, देखो-ज्योतिःशास्त्रे"जंभारिति पुरोहिते हरिगते, सुप्ते-
मुकुंदेविभौ । जातेधर्मघने धनशफटयो- क्षीणेकुवारास्तिथिः ॥ अस्ते
भार्गव जीवयोः कुदिने, मासाधिके वैधृतौ । गंडांते व्यतिपात विष्टि-
क शुभं, कार्यं न कार्यं बुधैः ॥ १ ॥" मगर-दान, शील, तप, भाव,
सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध वगैरह धर्मकार्य अधिक मासमें भी
होसकते हैं, उसी तरह पर्युषणापर्वभी दिन प्रतिबद्ध होनेसे अधिक-
मासमें करनेमें कोई बाधा नहींहै। देखो लघुपर्युषणा निर्णयके पृष्ठ

२७-२८ ॥ और मासवृद्धि होने परभी पर्युषणाके पिछाडी ७० दिन रहनेका किसीभी शास्त्रमें नहीं लिखा, समवायांगका पाठ तो मास वृद्धिके अभावकाहै, इसलिये अधिकमास होनेपरभी ७० दिन रहनेका कहना शास्त्रकारोंके अभिप्रायविरुद्ध होनेसे मिथ्याहै, देखो लघुपर्युषणा निर्णयके पृष्ठ १८-१९-२०-२१ ॥ इसीतरहसे दोनों आषाढ वगैरहका खुलासाभी लघुपर्युषणाके पृष्ठ २५-२६में अच्छी तरहसे दिखला दियाथा॥ जिसपरभी न्यायरत्नजी आपने मेरे सब लेखोंका आगे पीछेका संबंध तोडकर मेरे अभिप्रायके विरुद्ध होकर अधूरे अधूरे लेख, भोलेजीवोंको दिखलाकर अपनी दोनों किताबोंमें आप वारंवार अधिकमहीनेके दिनोंको गिनतीमेंसे उडादेनेकेलिये कोईभी शास्त्रका पाठ बतलाये बिनाही, और लघुपर्युषणाके पृष्ठ २७-२८ का लेखको पूरा बिचारे बिनाही,'अधिकमासनिर्णय' के दूसरे पृष्ठकी आदिमें आप लिखतेहैं, कि-'अधिकमहीनेमें विवाह सादी वगेरा कामनहींकिये जाते, दीक्षा प्रतिष्ठा वगैरा धार्मिक कामभी अधिकमहीनेमें नहींकियेजाते, फिर पर्युषणापर्व जैसा उमदापर्व अधिकमहीनेमें कैसे किया जाय.' तथा ' पर्युषणापर्व निर्णय' के मुख्य पृष्ठ परभी ' दीक्षा प्रतिष्ठा और दुनियादारीके विवाह सादी वगेराकाम अधिकमहीनेमें नहींकियेजाते, तो फिर पर्युषणापर्व जैसा उमदापर्व कैसेकिया जाय' यह दोनों लेख आपके जिनाज्ञाविरुद्ध उत्सूत्र प्ररूपणारूपहीहैं. यदि मुहुर्त्तवाले दीक्षा प्रतिष्ठा व संसारी विवाह सादीकी तरह पर्युषणा भी आप मानोंगे, तबतो चौमासेमें, तथा १३ महीनों तक सिंहस्थवाले वर्षमेंभी पर्युषणा करनाही नहीं बनेगा, मगर शास्त्रोंमें तो चौमासेमेंही और सिंहस्थवाले वर्षमेंभी वर्षा ऋतुमेंही दिनोंकी गिनतीसे५०वें दिन अवश्यही पर्युषणा करनाकहाहै,मुहुर्त्तवाले विवाहसादी वगैरह लौकिक कार्योंके साथ, बिना मुहुर्त्तवाले लोकोत्तर पर्युषणापर्वका कोईभीसंबंधनहींहै सिंहस्थ, अधिकमास, क्षयमास, गुरु शुक्रका अस्त, चौमासा,व्यतिपात,भद्रा,और चंद्र व सूर्य ग्रहण वगैरहकोईभी योग पर्युषणा करनेमें बाधक नहीं होसकते, इसलिये आपका उत्सूत्र प्ररूपणाका और प्रत्यक्ष अयुक्त व मिथ्यालेखको पीछा खींच लीजिये और मिच्छामिदुक्कडं प्रकट करिये, नहीं तो सभामें सिद्ध करनेको तैयार हो जाइये ॥ १ ॥ औरभी आपने 'मानव धर्म संहिता' के पृष्ठ ८०० में लिखाहै कि "अगर अधिकमास गिनतीमें लियाजाता हो तो पर्युषणापर्व दूसरे वर्ष श्रावणमें और इसतरह अधिकम

हीनोंके हिसाबसे हमेशां उक्त पर्व फिरते हुए चले जायेंगे, जैसे मुसलमानोंके ताजिये- हर अधिक मासमें बदलते हैं " यह लेखभी उत्सूत्र प्ररूपणारूपहीहै, क्योंकि जिनेंद्रभगवान्ने अधिकमहीना आनेपरभी वर्षाऋतुमेंही पर्युषणा करना फरमायाहै, मगर वर्षाऋतु बिना माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाखमें शरदी व धूपकालमें पर्युषणा करना नहीं फरमाया, जिसपरभी आप अधिक महीनेके ३० दिन उडा देनेकेलिये मुसलमानोंके ताजियोंके दृष्टांतसे हर अधिक महीनेके हिसाबसे बारोंही महीनोंमें [छही ऋतुओंमें] पर्युषणापर्व फिरते हुए चले जानेका बतलाते हो, सो किस शास्त्र प्रमाणसे, उसकाभी पाठ बतलाइये, या आपनी भूलका मिच्छामि दुक्कडं दीजिये, अथवा सभामें सत्य ठहरनेको तैयार हो जाईये ॥ २ ॥ और भी ' पर्युषणापर्व निर्णय' के मुख्यपृष्ठपर 'अधिकमहीना जिसवर्षमें आवे उसवर्षका नाम अभिवर्द्धित संवत्सर कहते हैं, और वो अभिवर्द्धित संवत्सर तेरह महीनोंका होता है, मगर अधिक महीना कालपुरुषकी चूला यानी चोटी समान कहा इसलिये उसको चातुर्मासिक-वार्षिक और कल्याणिकपर्वके व्रत नियमकी अपेक्षा गिनतीमें नहीं लियाजाता' तथा ' अधिकमास निर्णय ' के प्रथम पृष्ठके अंतमें ' अधिक महीना कालपुरुषकी चूला यानी चोटी समानहै, आदमीके शरीरके मापमें चोटीका माप नहीं गिनाजाता, इसतरह अधिक महीना अच्छे काममें नहीं लिया जाता ' इस लेखसे अधिक मासको केशोंकी चोटी समान कहते हो और गिनतीमें लेना निषेधकरते हो सो भी सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध है, देखो-चोटी तो १०-२० अंगुल, अथवा १-२ हाथ लंबीभी होसकतीहै, व नहींभी होतीहै. और शरीरके मापमें चोटीका कुछभी भाग नहीं लियाजाता, इसीतरह यदि अधिकमासभी चोटी समान गिनतीमें नहीं लिया जाता तो फिर उसको गिनतीमें लेकर १३ महीनोंके, २६ पक्षोंके, ३८३ दिनोंका अभिवर्द्धित संवत्सर क्यों कहा ? देखिये-जैसे पर्वतोंके शिखर और घास एकसमान नहीं है, तथा मंदिरोंके शिखर और ध्वज एक समाननहीहैं. तैसेही चूला याने शिखर और चोटीएकसमाननहींहै, इसलिये चोटीकहोंगे तो गिनतीमेंनहीं और गिनतीमें लेवोंगे तो चोटी समाननहीं. चोटीकहोंगे तो अभिवर्द्धित संवत्सर कैसे बना सकोंगे ? इसको विचारो, अधिकमासको चोटीसमान कहकर गिनतीमें छोडदेना किसीभी जैनशास्त्रमें नहींकहा, निशीथचूर्णि व दशवैकालिक वृत्तिमें कालचूला याने शिखरकहाहै,

और गिनतीमैंभी लियाहै, देखो लघुपर्युषणाके पृष्ठ २५ में. इसलिये शिखरको चोटी कहना और गिनतीमें छोड देना बडी भूल है ॥३॥ इसीतरहसे अधिकमहीनेमें धर्म, ध्यान, व्रत, पच्चख्खान, तप, जप, चौमासी, पर्युषणा, कल्याणकादि धर्म कार्य निषेध करना ॥४॥ वर्तमानिक श्रावण, भाद्रपद, आश्विन वढनेपरभी समवायांग सूत्रवृत्तिकारका अभिप्राय को समझे बिनाही पीछे ७० दिन ठहरनेका आग्रह करना ॥५॥ श्रावण-पौष वढनेपर एक महीनेमें कल्याणिक माननेसे दूसरे महीनेको छुटनेका कहकर अधिकमासके ३० दिन उडादेना ॥ ६ ॥ दो आषाढ होनेपर प्रथम आषाढको कालचूला ठहराना ॥७॥ दूसरे आषाढमें चौमासी करनेसे प्रथम छुट जानेका कहना ॥ ८ ॥ और नवतत्त्व- षट् द्रव्यके स्वरूपकी तरह चंद्र और अभिवर्द्धित दोनो वर्षोंका समानही स्वरूपकहाहै, तथा दोनोंसेही मास-पक्ष-तिथि-वर्ष वगैहरका व्यवहार चलता है, तिसपरभी दिनोंकी गिनतीके विषयमें दिन प्रतिबद्ध पर्युषणाकी चर्चामें विषयांतर करके मास व ऋतु प्रतिबद्ध कार्योंको दिखलाकर अधिक मासके दिन गिनतीमें छोड देना ॥ ९ ॥ अधिकमास आनेसें ५० वें दिन पर्युषणा पर्वकरनेको जैनशास्त्रसे खिलाफ ठहराना॥१०॥और पंचाशकके पूर्वापर संबंधवाले संपूर्ण सामान्य पाठको छोडकर शास्त्रकार महाराजके अभिप्रायको समझेबिना थोडासा अधूरा पाठ भोलेजीवोंको दिखलाकर, वीरप्रभुके विशेषतासे आगमोक्त छ कल्याणकोंका निषेध करना ॥ ११ ॥ और सुबोधिकाकी तरह समयसुंदरोपाध्यायजी कृत-कल्पलतामें खंडन मंडनका विषय संबंधी कुछभी अधिकार नहीं है. तो भी झूठा दोष आरोप रखना ॥ १२ ॥ इत्यादि अनेक बातें आपकी दोनों किताबोंमें शास्त्रविरुद्ध व प्रत्यक्ष मिथ्या और बालजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेवाली भरीहुईहैं, उसका लेख द्वारा या सभामें निर्णय करनेको तैयार हो जाईये, मगर झूठेको क्या प्रायश्चित देना वगैरह नियम होने चाहिये. वीर निर्वाण२४४४, विक्रमसंवत् १९७५, वैशाख वदी १२, हस्ताक्षर- मुनि-मणिसागर, लालबाग, मुंबई.

उपर मुजब छपाहुआ विज्ञापन न्यायरत्नजीको पहुंचाया, मगर उसमें लिखेप्रमाणे सभामें आकर शास्त्रार्थ करनेका मंजूर नहीं किया तथा इन विज्ञापनमें बतलाई हुई उत्सूत्र प्ररूपणारूप अपनी भूलोंको सुधारनेकाभी प्रकट नहीं किया, और शास्त्रप्रमाणसे साबित करके भी बतला सके नहीं. सर्वथा मौनकर बैठे, तब हमने उनकी हारका विज्ञापन छपवाकर प्रकाशित कियाथा, सो नीचे मुजब है:—

विज्ञापन, नं ० ९

न्यायरत्नजी शांतिविजयजी हार गये !

सत्याग्राही पाठकगणसे निवेदन कियाजाताहै, कि-न्यायरत्नजी शांतिविजयजी को पर्युषणा बाबत सभामें शास्त्रार्थ करनेके लिये मैंने विज्ञापन नं ७ वें में सूचना दीथी, उसमें १५ दिनके भीतर शास्त्रार्थ करना मंजूर न करोंगे, तो आपकी हार समझी जावेगी, यह बात खुलासा लिखीथी, और वैशाख शुदी १०को विज्ञापन नं. ७-८ के साथ १ पत्रभी उनको डाक मारफत रजिष्टरी द्वारा'ठाणे'भेजाथा, उसमें १५ दिनकी जगह २० दिनका करार लिखाथा, उसको आज २२दिन होगये, तोभी न्यायरत्नजीने शास्त्रार्थ करना मंजूर नहींकिया और वैशाख शुदि १३ को फिरभी दूसरा पत्र भेजाथा उसमें हमने ठाणेमेंही शास्त्रार्थ करना मंजूर कियाथा. उसकाभी कुछभी उत्तर न मिला और लेखद्वारा शास्त्रार्थ शुरू करनेके लिये प्रतिज्ञापत्र व साक्षी वगैरह नियमभी प्रगटनहींकिये. इससे मालूमहोताहै, कि-न्यायरत्नजीमें न्यायानुसार धर्मवादका शास्त्रार्थकरनेकी सत्यतानहींहै, इसलिये चुप लगाकर बैठेहैं, उससे वो हारगये समझे जातेहैं, पाठकगणको मालूमहोनेके लिये दोनों पत्रोंकी नकल यहां बतलाते हैं.

प्रथम पत्रकी नकल "श्रीमान् न्यायरत्नजी शांतिविजयजी, विज्ञापन, नं० ७-८ भेजता हूं, लघुपर्युषणा निर्णयके सत्य सत्य लेख छोडदिये, और मेरे अभिप्रायविरुद्ध उलटा उलटाही लिखमारा, वैसा अब न करना, सबका पूरा उत्तर देना, आजसे १५-२० दिन तकमें, वैशाख शुदी १० सोमवार, हस्ताक्षर मुनि-मणिसागर."

दूसरे पत्रकी नकल "श्रीठाणा मध्ये न्यायरत्नजी शांतिविजयजी योग्य श्रीमुंबईसे मुनि-मणिसागरकी तरफसे सूचना.

१—आप ठाणेमें शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो, हम ठाणे आनेकोभी तैयार हैं, मगर विज्ञापन नं० ६ की ३-४-५ सूचना मुजब नियम मंजूर करो और कल्पसूत्रकी कौन २ प्राचीन टीका आप मानते हो, उत्तर दो, ठाणेकी कोटवालीमें शास्त्रार्थ होगा.

२—शास्त्रार्थ आपका और मेराहै, इसमें मुंबई के सब संघको व आगेवानोंको बीचमें लानेकी कोई जरुरत नहीं है, आप संघको बीचमें लानेका लिखो या कहो यही आपकी कमजोरी है, न सब संघ बीचमें पडे और न हमारी पोल खुले, ऐसी कपटता छोडो,

ताकत हो तो मुंबईकी पोलीश चौकी कोटवालीमें शास्त्रार्थ करनेको आवो, दूरसे कागज काले करके मनमानी आडी२ लंबी चौडी झूठीझूठी बातें लिखकर भोलेजीवोंको भरमानेका काम नहीं करना.

३-दोनोंको सब लेख सिद्ध करके बतलाने पडेंगे. उसमें झूठे को क्या आलोयणा लेनी, सो लिखो, वैशाखशुदी १३."

न्यायरत्नजी आपकी धर्मवाद करनेकी ताकातहोती तो इतने दिन मौनकरके क्यों बैठे. खैर !!! जैसी आपकी इच्छा. मगर याद रखना सभामें योग्य नियमानुसार शास्त्रार्थ न करना और अपने झूठे पक्षकी बात रखनेके लिये वितंडावाद करना या सामने न आकर साक्षि व प्रतिज्ञा बिनाही दूरसे कागज काले करते रहना और विषयांतर व कुयुक्तियोंसे उत्सूत्रप्ररूपणाकी आपकी दोनों कीतावें सच्ची बनाना चाहो सो कभी नहीं हो सकेगा, किंतु इसके विपाक भवांतरमें अवश्यही भोगनेपडेंगे.मरीचि और जमालिसेभी आपका उत्सूत्र बहुत ज्यादे है, आत्महित चाहते हो तो हृदयगम करके प्रायश्चित्त लेवो. उससे श्रेय हो. तथास्तु. सं० १९७५ ज्येष्ठ शुदी २ सोमवार हस्ताक्षर-मुनि मणिसागर.

इसप्रकार उपरमुजब लेख प्रकटहोनेसे न्यायरत्नजी 'झूठेहैं इसलिये चुप लगाकर बैठे हैं' इत्यादि बहुत चर्चा होने लगी, तब अपनी झूठी इज्जत रखनेके लिये १ हेंडबील छपवाया उसमें लिखाथा कि, 'सभा हुईनहीं शास्त्रार्थ हुआनही फिर हारजीत कैसे होसके' इसके जवाबमें हमनेभी विज्ञापन १० वा छपवाकर उनके लेखका अच्छीतरहसे खुलासा कियाथा, वो लेखभी नीचे मुजबहैः—

विज्ञापन, नंबर १०

श्रीतपगच्छके न्यायरत्नजी शांतिविजयजीके हारका कारण, और उनकी अधिकमासके शास्त्रार्थकी जाहिर सूचनाका उत्तर.

१-न्यायरत्नजी लिखतेहैं कि,-'सभाहुईनहीं शास्त्रार्थहुआनहीं फिर हारजीत कैसे होसके' जवाब-आपकी हारका कारण विज्ञापन७वें में और ९ वें में लिख चुका हूं. उसको पूरेपूरा लिखकर सबका उत्तर क्यों न दिया ? फिरभी देखिये-मेरेविज्ञापन नं. ७ वें के सब लेखोंका पूरेपूरा उत्तर नियत समयपर आप देसकेनहीं १, विज्ञापना ६ मुजब सभाके नियमभी मंजूर किये नही २,आजकाल वारंवार मुंबईमें आ-

५ आना जाना करतेहैं, मगर सभा करनेको खडे होते नहीं ३,सभामें सत्यग्रहण करनेकी प्रतिज्ञाभी करते नहीं ४, झूठ पक्षवालेको क्या प्रायश्चित्त देना सो भी स्वीकार करते नहीं ५, और श्रीकच्छीजैन एसोसीयन सभाकी विनतीसेभी सभा करनेको आप आते नहीं ६, और लेखीत व्यहारसेभी शास्त्रार्थ शुरु किया नहीं, ७,इसलिये आपकी हार समजी गई, महाशयजी ! ९ महीनोंसे शास्त्रार्थ करनेके लिये आपसे लिखता हुं, मगर आपतो आडी २ बातें बीचमें लाकर शास्त्रार्थ करनेसे दूरहीभटकतेहैं, फिर हारमें क्या कसररही. जबतक दूसरी आड छोडकर शास्त्रार्थकरनेको सामने न आवोंगे तबतकही आपकी कम जोरी समझी जावेगी.अभीभी अपनी हार आपको स्वीकार न करना हो,तो, थाणा छोडकर आगे पधारना नहीं. शास्त्रार्थ करनेको जलदी पधारो. कंठशोष-सुष्क विवाद व वितंडवादसे कागजकाले करनेकी व कालक्षेप करनेकी और व्यर्थ श्रावकोंके पैसे बरबाद करवानेकी कोई जरूरत नहीं है।

२-- " शास्त्रार्थ आपका और मेरा है, इसमें मुंबईके सब संघको व आगेवानोंको बीचमें लानेकी कोई जरूरत नहीं है,आप संघको बीचमें लानेका लिखो या कहो यही आपकी कमजोरीहै, न सब संघ बीचमें पडे और न हमारी [न्यायरत्नजीकी] पोल खुले, ऐसी कपटता छोडो " इसतरहसे विज्ञापन नं० ९ वें के मेरे पूरे सब लेखको आपने छोडदिया और मेरे अभिप्राय विरुद्ध होकर आप लिखतेहैं, कि " शास्त्रार्थ करना और फिर जैन संघकी जरूरत नहीं यह कैसे बन सकेगा " महाशयजी ! यह आपका लिखना सर्वथा अर्थका अनर्थ करनाहै,कौन कहताहै जैन संघकी जरूरत नहींहै, मेरे लेखका अभिप्राय तो सिर्फ इतनाहीहै, कि—मुंबईमें सबगच्छोंका,सब देशोंका, व सब न्यातोंका अलग २ संघ समुदाय होनेसे सब संघ आपके और हमारे शास्त्रार्थके बीचमें पंचरूपसे आगेवान नहीं होसकता, मगर सत्यासत्यकी परीक्षाके इच्छावालोंको सभामें आनेकी मनाई नहीं, सभामें आना व सत्य ग्रहण करना मुंबईके संघको तो क्या मगर अन्यत्रकेभी सब संघको अधिकारहै, और इतनी बडी सभामें हजारों आदमियोंके बीचमें पक्षपाती व अल्प विचार वाले कोईभी किसी तरहका बखेडा खडाकरदेवे,या अपना निजका द्वेषसे आपसमें गडबड करदेवे,तो मुंबईके संघको व आगेवानोंको सुरतके झगडेकी तरह कर्मकथा, धनहानी, शासनहिलना व कुसुंप वगैरह-

प्रपंचमें फँसना पडे,इस अभिप्रायसे मैंने मुंबईके सब संघको बीचमे न पडनेका लिखाथा, जिसपर आप "संघकी जरूरत नहीं" ऐसा उलटा लिखते हो सो अनुचित है, मुंबईके, व अन्यत्रकेभी सब संघको सभामें आना व शांतिपूर्वक सत्यग्रहण करना, यह खास जरूरत है, इसलिये-सभामें अवश्य पधारना और पक्षपात रहित होकर सत्यग्राही होना चाहिये.

३-ओर आपभी अपनी बनाई 'पर्युषणापर्वनिर्णय'के पृष्ट २२ वें की पंक्ति ४-५-६ में लिखतेहैं, कि-"सभामें वादी-प्रतिवादी-सभादक्ष-दंडनायक और साक्षी ये पांचबातें होना चाहिये.दोनों पक्षवालोंकी रायसे सभा करनेका स्थान और दिन मुकरर करना चाहिये" देखिये-न्यायरतनजी यह आपकेलेख मुजबही हममंजूर करतेहैं, अब आपकोभी अपना यह लेख मंजूर हो तो सभा करना मंजूर करो,आपका और हमारा शास्त्रार्थ कबहोवे, यह देखनेको सारी दुनिया उत्सुक हो रही है. जब सभाका दिन मुकरर होगा तब मुंबईके व अन्यजगहकेभी बहुतसे आदमी स्वयं देखनेको आजावेगें "सभाका २ महीनेका समय होनेसे देशांतरकेभी श्रावक सभाका लाभ ले सकेंगे" यहकथन दादर और वालकेश्वरमें आपहीकाथा, अब आपकेलेख मुजबही साक्षीवगैरहके नाम व अन्य नियमभी मिलकर करनेचाहिये, पहिले विज्ञापनमें मैंभी लिख चुकाहूं.

४ आप लिखतेहैं कि "संघका मेरेपर आमंत्रण आवे तो मैं सभामें शास्त्रार्थकेलिये आनेकोतयार हूं" यह आपका लिखना शास्त्रार्थसे भगनेकाहै, क्योंकि पहिले आपही लिखचुके हो कि स्थान और दिन दोनोंमिलकर मुकररकरें,अब संघपर गेरतेहो यहन्यायविरुद्धहै, और पहिले कभी राजा महाराजोंकी सभामें शास्त्रार्थ होताथा,तबभी वादी प्रतिवादीको संघ तरफसे आमंत्रण हो या न हो, मगर अपना पक्षकी सत्यता दिखलानेको स्वयं राजसभामें-जातेथे.या अपनेपक्षके संघ अपनेविश्वासी गुरुको विनती करताथा, मगर सब संघ दोनोंपक्षवाले विनती कभीनहीं करसकते,इसलिये आपको संघकीविनतीकी आवश्यकतानहींहै, स्वयं आनाचाहिये, या आपके तपगच्छके संघको आपपर पूराभरोसा [विश्वास]होगा तो वो विनतीकरेंगें अन्य सब नहीं करसकते.देखो- 'आनंदसागरजी वडौदेकी राजसभामें शास्त्रार्थ करनेको तैयारहुएथे, और मुंबईमेंभी शास्त्रार्थकरनेका मंजूरकियाथा तबभीसंघकी विनतीनहीं मांगीथी,स्वयं आनेको तैयारहुए

थे.मगर अब शास्त्रार्थ क्यों नहींकरते,सो उनकी आत्मा जाने' इतने-परभी आप संघके आमंत्रणका लिखते हो सो भी 'श्रीकच्छीजैन एसोसीयन सभा' ने सर्व जैनश्वेतांबर मुनिमहाराजोंको सभाकरनेकी विनती की थी, सो आमंत्रण हो ही चुका फिर वारंवार क्या? यदि आप मुनिमंडळमें हैं तबतो आपकोभी आमंत्रण होचुका, यदि आप अपनेको भिन्न समझतेहैं तो संघ आमंत्रणभी कैसे कर सकताहै, मैं पहिलेही लिखचुकाहूं कि 'न सब संघ बीचमें पडे और न न्यायरत्नजीको शास्त्रार्थ करनापडे'ऐसी कपटता क्यों रखतेहो,आपके गच्छवालोंको आपका भरोसा न होवे, तो वे आपको विनती न करें, अथवा आपकी बात सच्ची मालूम न होवे तो मौनकर जावें,इसमें हम क्याकरें. आप अपनापक्ष सच्चा समझतेहोतो शास्त्रार्थको पधारो. आप दूरदूरसे खंडनमंडनका विवाद चलाते हैं, किताबें छपवाते हैं, तबतो संघसे पूछनेकी दरकार रखतेनहींहैं, फिर उसबातका निर्णय करनेकी अपनेमें ताकत न होनेसे संघकी बात बीचमेंलाते हैं, यहभी एक तरहकी कमजोरी व अन्यायकीही बातहै और यह विवाद तो खास करके मुख्यतासे साधुओंकाही है, श्रावकोंका नहीं.श्रावक तो साधुओंके कहने मुजब पर्युषणापर्वका आराधन करनेवाले हैं,इसलिये साधुओंकोही मिलकर इसका निर्णय करना चाहिये.

५–पहिले राजा महाराजाओंकी सभामें शास्त्रार्थ होताथा और अभीके भारतकेमहाराज लंडनमें हजारों कोशबहुतदुरहैं,उनकी आज्ञाकारिणी और प्रजापालीनी कोर्ट व कोतवाली है, इसलिये वहां सभामें किसी तरहका बखेडा न होनेके लिये और शांतिसे पक्षपात रहित पूरा न्याय होनेके लिये विद्वानोंकी साक्षीपूर्वक शास्त्रार्थ होनेमें कोई तरहकाभी हरजा नहींहै.यह तो जगतप्रसिद्धही बातहै,कि अदालतमें जो न्यायालय है,उसमें सुलह शांतिसे पूरा न्याय मिलताहै इसलिये न्यायाधीशके समक्ष इन्साफ मिलनेके लिये शास्त्रार्थ करनेका हमने लिखा सो न्याय युक्तही है. देखो–पंजाबमें जैनियोंके और आर्यसमाजियोंके अदालतमेंही शास्त्रार्थ हुआथा उससेही जैनियोंको पूरा न्याय मिला, विजय हुईथी.उसीतरह न्यायसे धर्मवाद करनेको वहां हम बहुत खुशीसे तैयार हैं, अब आपभी जलदी पधारो, हम तो सिर्फ न्यायसे इन्साफ चाहते हैं. वहांभी बहुत आदमी देखनेको आसकते हैं, सचेको भय नही रहता झूठेको भय रहता है.इसलिये वो बीचमें आडी २ बातोंसे झूठे २ बहाने बतलाकर किसी तरह-

सेभी अपनी इज्जतका बचावकरके शास्त्रार्थकरनेसे भगने चाहताहै।

६- आपकी इच्छा धर्म स्थानमेंही सभा करनेकी हो तो भी हम तैयार हैं, देखो- आपकेही गच्छके आपके वडील आचार्य आनंदसागरजीजोअभी मुंबईमें श्रीगौडीजीकेउपाश्रयमेंहैं,उनके व्याख्यानमें हजारों आदमियोंकीसभासरातीहै, वहां आपका और हमारा शास्त्रार्थहोतोभी हमेंमंजूरहै,मगर ऊपर लिखेमुजबनियमानुसार होनाचाहिये. अथवा मुंबईमें अन्य स्थानभी बहुतहैं, जहां आप लिखे वहांही सही. वालकेश्वरमें हमारे गुरुजी महाराजके पास २-३ श्रावकोंके समक्ष आपने कहाथा, कि- आनंदसागरजी शास्त्रार्थ करेंगे, तो मैं साक्षीरहूंगा औरयदि मैं शास्त्रार्थ करूंगातो आनंदसागरजीको साक्षी बनाऊंगा सो यह योगभी आपके बन गया है, अब अपनी प्रतिज्ञासे आपको बदलना उचित नहींहै ,और सभादक्ष-दंडनायक वगैरह नियमभी मिलकर जलदी करीयेगा.

७- और आप लिखतेहैं, कि " पर्युषणापर्व निर्णय,छपनेको नव महीने होगये हरेक बयानका पूरेपूरा उत्तर दीजिये" जवाब-महाशयजी श्रावकोंके विशेष पैसे खर्च न होनेके लिये व कितावें छपवानेसे बहुत वर्षोंतक खंडन मंडनका प्रपंच नहीं चलानेके लियेही आपकी किताबोंका उत्तर सभामें देनेका विचार रखखा है,सो प्रथम विज्ञापनमें लिखभी चुका हूं. इसलिये ९ महीनेका लिखना आपका अनुचितहै, और श्रीमान् पन्यासजी केशरमुनिजीके बनाये ' प्रश्नोत्तर विचार " और ' हर्षहृदयदर्पण'का दूसरा भागके पर्युषणासंबंधी लेख, व 'प्रश्नोत्तर मंजूरी'के तीन (३) भागके ४००-५०० पृष्ट छपेको आज ४ वर्ष ऊपर हो चुका है,उनकी प्रत्येक बातका उत्तर आजतक आप कुछभी नहींदेसकते, तो फिर ९ महीने किस हिसाबमें हैं,और मेरे लघुपर्युषणा निर्णयके सब लेखोंकाभी पूरा उत्तर ११ महीने-हो गये तो भी आजतक आप न दे सके, बलिक सत्य सत्य लेखोंके पृष्ठकेपृष्ट और पंक्तियेंकी पंक्तियें छोडकर अधूरा२लेख लिखकर उलटा२ ही जवाब देतेहैं, यह जवाब नहीं कहा जा सकता,सत्यता तभी मानी जा सकेगा कि पूरे पूरा लेख लिखकर अभिप्राय मुजब बरोबर उत्तर दिया जावे, सो तो आपने अपनी दोनों किताबोंमें कहींभी नहीं किया,और उलट पुलट झूठाझूठाही लिख दिखलायाहै, सो यह युक्तही है सत्यको कौन असत्य बना सकताहै।मगर कुक्तियोंसे बातको अपनी तरफ खींचना अलग बात है। देखिये हमने तो आपकी

दोनों किताबोंकी उत्सूत्र प्ररूपणासंबंधी १२ भूलेंतो विज्ञापन नं ७में दिखलादी हैं, और भी बहुत हैं सो सभामें विशेष खुलासा होगा. और ७वें विज्ञापन का तो पहिले कुछभी उत्तर आपने नहीं दिया. और नवमेंका देनेलगे, यह भी आपका अन्याय है, और सभामें निर्णय होनेवाला है, जिसपरभी आप अभी किताब द्वारा जवाब मांगते हैं, इससे साबित होताहै, कि शास्त्रार्थ करनेकी आपकी इच्छा नहीं है, अन्यथा ऐसा क्यों लिखते, यदि हो तो कब विचार है, सो लिखो आपकी तीसरी पुस्तककाभी उत्तर उस समय सभामें मिलजावेगा मगर दोनों किताबोंमें जैसी उत्सूत्रता भरी है, वैसी तीसरीमेंभी होगा, तो सभामें सिद्धकरके बतलाना मुश्किलहोगा. और उसकीआलोयणा लेनीपडेगी. अधिकमहीनेके दिनोंकी गिनती, व आषाढचौमासीसे ५० वें दिन दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करना, तथा श्रीवीरप्रभुके ६ कल्याणक मान्यकरने और श्रावकके सामायिकमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावहीकरना शास्त्रानुसार होनसे इनबातोंको कोईभी निषेधनहीं करसकता.

विशेष सूचना—गये चौमासेमें हमनें सब मुनिमहाराजोंको पर्युषणापर्वका निर्णयकरनेकी सभा करनेकेलिये विनतीपत्रसे आमंत्रण भेजाथा. तथा 'श्रीकच्छीजैन एसोसियन सभा'नेभी सब मुनिमहाराजोंकों सभा भरकर वर्षोवर्षके अधिकमाससंबंधी इस विवादके निर्णय करनेकी विनती कीथी, जिसपरभी कोई सभा करनेको न आये, सबने चुप लगादी. अब आप लोगभी चौमासा' वगैरहके बहाने बतलाकर सभा न करोगा, तो फिर आपकीभी हार समझी जावेगी. तथा आपके पक्षके सब मुनियोंकीभी सत्यताकी परीक्षा दुनिया स्वयंकर लेवेंगी. और सभा करनेका मंजूर कियेबिना व्यर्थ निष्प्रयोजनके विषयांतरके वितंडावादवाले लंबे चौडे किसीकेभी लेखका उत्तर आजसे नहीं दिया जावेगा. संवत् १९७५ आषाढ वदी ३ गुरुवार, हस्ताक्षर—मुनि—मणिसागर, मुंबई.

देखिये—ऊपर मुजब विज्ञापन छपवाकर जाहिर कियाथा, तोभी न्यायरत्नजीने शास्त्रार्थ करनेको सभामें आनेका मंजूर किया नहीं. विज्ञापन, ७वेंमें लिखेप्रमाणे, अपनी १२भूलोंको सुधारकर उसका प्रायश्चित्तभीलियानहीं, तथा अनुक्रमसे उनभूलोंकोशास्त्रप्रमाणोंसेसाबितकरके सत्यठहरासकेभीनहीं और हमनेशास्त्रानुसारसत्य२बातें बतलायाथा उन्होंको अंगीकारभी किया नहीं और अपने पकडेहुए झूठे

हठको छोडाभी नहीं. यह कितना बडा भारी अभिनिवेशिक मिथ्या-त्वका आग्रह कहाजावे सो दीर्घदर्शीतत्त्वज्ञ जनस्वयंविचार सकतेहैं.

औरभी न्यायरत्नजीने एक हँडबील तथा ' अधिकमासदर्पण ' नामा छोटीसी एक किताब छपवाया, उनमेंभी विज्ञापन ७ वेंमें जो हमने उनकी १२ भूलें बतलायीथी, उन सब भूलोंका अनुक्रमसे पूरे पूराखुलासाकरनेके बदले १भूलकाभी पूरेपुरा खुलासा करसके नहीं और मास वृद्धिके अभावसे पर्युषणाके बाद ७० दिन रहनेका व दू-सरेआषाढमें चौमासी कार्य करनेका तथा श्रावण- पौषसंबंधी कल्या-णक तप वगैरह सब बातोंका स्पष्ट खुलासापूर्वक निर्णय ' लघुपर्यु-षणा'में और सातवे विज्ञापनमें अच्छीतरहसे हमबतला चुकेहैं, तो-भी उन्ही बातोंको बालहठकी तरह वारंवार लिखे करना और स्था-नांगसूत्रवृत्ति, निशीथचूर्णि, कल्पसूत्रकी टीकायें आदि बहुत शास्त्रों-मे मास बढे तब पर्युषणाके बाद १०० दिन ठहरनेका कहा है, तथा अधिक महीनेके ३० दिन गिनतीमें लिये हैं, इसलिये अधिक महीना होवे तब ७० दिनकी जगह १०० दिन होवें उसमे कोई दोष नहीं है. मगर पर्युषणापर्व किये विना ५०वें दिनको उल्लंघन करे तो जिनाज्ञा भंगका दोष कहाहै,इसीलिये ५०दिनकी जगह ८०दिनतो क्या परंतु ५१ दिनभी कभी नहीं होसकते इत्यादि बहुत सत्य २ बातोंको उडा-देनेका उद्यम किया सो सर्वथाअनुचितहै,इनसब बातोंका विशेषनि-र्णय ऊपरके भूमिकाके लेखमें और इन ग्रंथमें विस्तार पूर्वक शास्त्रों-के प्रमाणोंसहित अच्छी तरहसे खुलासासे छपचुका है, इसलिये यहांपर फिरसे लिखनेकी कोई आवश्यकता नहींहै, पाठक गण ऊप-रके लेखसे सब समझ लेंगे ।

अब हम यहां पर 'खरतरगच्छ समीक्षा' के विषयमें थोडासा लिखतेहैं, न्यायरत्नजी 'खरतरगच्छ समीक्षा ' नामा किताब छपवा-ने संबंधी वारंवार जाहेर खबर लिखतेहैं, यह किताब आज लगभ-ग १२—१३ वर्षहुए उनोंने बनायाहै, जब हम संवत् १९६५ को श्री-अंतरिक्ष पार्श्वनाथजी महाराजकीयात्रा करनेकेलिये बराड देशमें गये थे, तब बालापुरमें न्यायरत्नजी हमकोमिलेथे, उससमय उस किता-बकी कॉपी उन्होंनेहीखास मेरेको वंचायाथा,तब मैंने उस किताबपर महानिशीथ वगैरह कितनेही शास्त्रोंका प्रमाण मांगा, तब न्यायरत्न-जी बोले अभीमेरे पास महानिशीथसूत्र वगैरह शास्त्र यहांपर मौजूद नहींहै, फिर कभी आगेदेखाजावेगा,ऐसा कहकर उस समय बातको

डाल दिया. अब वोही किताब छपवानाचाहतेहैं, उस किताबमें सामायिक—कल्याणक—पर्युषणा—अभयदेवसूरिजी-तिथि वगैरह बातोंसंबंधी शास्त्रानुसार सत्य २ बातोंको झूठी ठहरानेके लिये शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध होकर अधूरे २ पाठ लिखकर उन पाठोंके अपनी कल्पना मुजब जान बुझकर खोटे खोटे अर्थ करके कुयुक्तियोंसे उत्सूत्र प्ररूपणारूप और प्रत्यक्ष मिथ्या बहुतजगह लिखाहै, उसका थोडासा नमूना पाठकगणको यहांपर बतलाते हैं, जिसमें प्रथम सामायिक संबंधी लिखतेहैं :-

१ - श्रावकके सामायिक करनेकी विधि संबंधी सर्व शास्त्रोंमें पहिले करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करनेका लिखाहै, देखो-श्रीजिनदासगणिमहत्तराचार्यजी कृत आवश्यक सूत्रकी चूर्णिमें १, श्रीहरिभद्रसूरिजीकृत बृहद्वृत्तिमें २, तिलकाचार्यजी कृत लघुवृत्तिमें ३, देवगुप्तसूरिजी कृत नवपदप्रकरण वृत्तिमें ४, लक्ष्मीतिलकसूरिजी कृत श्रावकधर्म प्रकरण वृत्तिमें ५, श्रीनवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिजी कृत पंचाशक सूत्रकी वृत्तिमें ६, विजयसिंहाचार्यजीकृत वंदीतासूत्रकीचूर्णिमें ७, हेमचंद्राचार्यजी कृत योगशास्त्र वृत्तिमें, ८, तपगच्छीय देवेंद्रसूरिजी कृत श्राद्धदिनकृत्यसूत्रकीवृत्तिमें ९, कुलमंडनसूरिजी कृत विचारामृत संग्रहमें १०, मानविजयजी-कृत धर्मसंग्रह वृत्तिमें ११, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें खास तपगच्छादि सर्व गच्छोंके पूर्वाचार्योंने प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करनेका बतलायाहै.

२ - श्रीमान् देवेंद्रसूरिजी कृत श्राद्धदिनकृत्य सूत्रवृत्तिका पाठ यहां पर बतलाताहूं. सो देखिये :—

" श्रावकेण गृहे सामायिकं कृतं, ततोऽसौ साधुसमीपं गत्वा किं करोति इत्याह—साधुसाक्षिकं पुन: सामायिकंकृत्वा ईर्याप्रतिक्रम्यागमनमालोचयेत् । तत आचार्यादीन् वंदित्वा स्वाध्यायं काले-चावश्यकं करोति " इत्यादि

इस पाठमें गुरुपास जाकर करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावहीकरके आचार्यादिकोंको वंदनाकरके स्वाध्यायकरना बतलायाहै और पीछे अवसर आवे तब छ आवश्यक रूप प्रतिक्रमण करनेकाभी बतलाया है ।

३—श्रीहीरविजयसूरिजीके संतानीय श्रीमानविजयोपाध्यायजीकृत धर्मसंग्रह वृत्तिका पाठभी देखो:—

" साध्वाश्रयंगत्वा साधून्नमस्कृत्य सामायिकं करोति, तत्सूत्रं यथा – ' करेमिभंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव-साहू पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं,मणेणं वायाए काएणं,न करेमि न कारवेमि, तस्स भंते पडिक्कमामि, निंदामि,गरिहामि,अप्पाणं वो-सिरामि ' त्ति, एवं कृतसामायिकं इर्यापथिक्याप्रतिक्रामति, पश्चा-दागमनमालोच्य यथा ज्येष्ठमाचार्यादीन्वंदते, पुनरपि गुरु वंदित्वा प्रत्युपेक्षितासने निविष्टः शृणोति पठति पृच्छति वा " इत्यादि

इनपाठमेंभी उपाश्रयमें जाकर साधुमहाराजको वंदना करके पहिले करेमिभंतेका पाठउच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावहीकर के अनुक्रमसे बडील आचार्यादिकोंको वंदनाकर फिर शास्त्र सुने, वांचे या धर्म चर्चाकी बातें गुरुसे पूछता रहे. ऐसा खुलासा लिखाहै.

४- श्री लक्ष्मीतिलकसूरिजीकृत श्रावक धर्म प्रकरण वृत्तिका पाठभी यहांपर बतलाताहूं, सो देखो :—

" चैत्यालये विधि चैत्ये, स्वनिशांते स्वगृहे, साधुसमिपे, पौषो-ज्ञानादीनां धियते-अस्मिन्निति पौषधं पर्वानुष्ठानं, उपलक्षणत्वा त्सर्वं धर्मानुष्ठानार्थं शालागृहं; पौषधशाला तत्र वा, तत् समायिकं कार्यं श्राध्धैः सदा नोभयसंध्यमेवेत्यर्थः । कथं तद्विधिना इत्याह– ' खमासमणं दाउं, इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् सामाइय मुहप-त्तिं पडिलेहेमित्ति भणियं, बीयखमासणपुव्वं सामाइयं ठावित्ति,वुत्तुं खमासमण दाणपुव्वं अध्धावणगत्तो पंच मंगलं कड्ढिता ' करेमिभं ते सामाइयं'इच्चाइ सामाइय सुत्तंभणइ,पच्छा इरियंपडिक्कमइ,इत्यादि

देखिये—इस प्राचीन पाठमेंभी मंदिरमें, अपने गृहमें, साधुपा-स उपाश्रयमें, अथवा पौषधशालामें, जब संसारिक कार्योंसे निवृति होवे तब किसीभी समयमें सामायिक करनेका बतलाया है, सो प-हिले खमासमणसे आज्ञा लेकर सामायिक मुहपतिकापडिलेहण करके फिरभी दो खमासमणसे सामायिक संदिसाहणेका तथा सामायिक ठाणेका आदेशलेकर विनयसहित करेमिभंतेका पाठ उच्चारण करके पीछेसे इरियावही करनेका खूलासापूर्वक स्पष्ट बतलाया है ।

५- इसीही तरहसे श्री हरिभद्रसूरिजीने आवश्यकबृहद्वृत्तिमें, श्रीनवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिजीने पंचाशकवृत्तिमें, श्रीहेमचंद्रा-चार्यजीने योगशास्त्रवृत्तिमें इत्यादि अनेक प्रभावक प्राचीन आचार्यों-ने अनेक शास्त्रोंमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछे इरि-यावही करनेका खुलासा पूर्वक स्पष्ट बतलाया है ।

६- " पयमक्खरंपि इक्कं, जो न रोएइ सुत्तनिद्दिट्ठं । सेसं रोअंतो वि हु, मिच्छादिट्ठी जमालिव्व ॥१॥" इत्यादि शास्त्रीय प्रमाणके इस वाक्यसे सर्वशास्त्रोंकी बातोंपर श्रद्धा रखनेवालाभी यदि शास्त्रोंके एक पद या अक्षरमात्रपरभी अश्रद्धाकरे, तो उसको जमालिकीतरह मिथ्या दृष्टि समझना चाहिये । अब इस जगह श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी सज्जनोंको विचार करना चाहिये, कि—श्रीहरिभद्रसूरिजी, नवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिजी, हेमचंद्राचार्यजी, लक्ष्मीतिलकसूरिजी,देवेंद्रसूरिजी,वगैरह महापुरुषोंके कथन मुजब आवश्यक बृहद्वृत्ति वगैरह प्रामाणिक व प्राचीन शास्त्रोंके पाठोंसे श्रावकके सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करने संबंधी जिनाज्ञानुसार सत्य बातपर श्रद्धा नहीं रखने वाले, तथा इस सत्य बातकी प्ररूपणाभी नहीं करनेवाले,और उसमुजब श्रावकोंकोभीनहीं करवानेवाले,व इससे सर्वथाविपरीत प्रथमइरियावही पीछे करेमिभंते करवानेका आग्रह करनेवालोंको ऊपरके शास्त्रवाक्य मुजब जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी सम्यग्दृष्टि कैसे कहसकतेहैं, सो आपने गच्छके पक्षपातका दृष्टिरागको और परंपराके आग्रहको छोडकर तत्त्व दृष्टिसे सत्यशोधक पाठकगणको खूब विचार करना चाहिये ।

७- ऊपर मुजब सत्यबातको न्यायरत्नजीनें 'खरतर गच्छ समीक्षा'में सर्वथा उडादियाहै,और इनसत्य बातकेसर्वथा विरुद्ध होकर सामायिक करनेमें प्रथम इरियावही किये बाद पीछेसे करेमिभंतेका उच्चारणकरनेका ठहरानेके लिये शास्त्रोंके आगे पीछेके संबंधवाले पाठोंको छोडकर बिना संबंधवाले अधूरे २ (थोडे २) पाठ लिखकर अपनी मति कल्पना मुजब खोटे २ अर्थ करके व्यर्थही उत्सूत्रप्ररूपणासे उन्मार्गको पुष्ट किया है, उसकाभी यहां पर पाठकगणको निसंदेह होनेकेलिये प्रत्यक्ष प्रमाणसे थोडासा नमूना बतलाता हूं :-

८- श्रीमहानिशीथसूत्रके तीसरे अध्ययनमें उपधान करने संबंधी चैत्यवंदन करनेकेलिये जो पाठहै, सो पहिले दिखलाताहूं, यथा-

" असुहकम्मक्खयट्ठा, किंचि आयहियं चिइवंदणाई अणुट्ठिज्जा, तयात्तयट्ठे चेव उवउत्ते से भवेज्जा, जयाणं से तयट्ठे उवउत्ते भवेज्जा, तया तस्सणं परमेगग्गचित्त समाही हवेज्जा, तयाचेव सव्वजगजीवपाणभूयसत्ताणं जहिट्ठफलसंपत्ती भवेज्जा, ता गोयमा णं अपडिक्कंताए इरियावहियाए नकप्पइ चेवकाउं किंचिइवंदणं सज्झायज्झाणाइयंकाउं, इट्ठफलासायमभिकंखुगाणं, एएणं अट्ठेणं गोय-

भा एवं वुच्चई,जहाणं ससुत्तत्थोभयं पंचमंगलं थिरपरिचिअं काउणं तओ इरियावहियं अज्झीए त्ति. से भयवं कयराए विहिए तं इरिया-वहीयाए अज्झीए गोयमा जहाणं पंचमंगलं महासुयखंधं. से भयवं इरियावहीयमहिज्झित्ताणं, तओ किंमाहिज्झे गोयमा सक्कत्थयाइयं चेइयवंदणं विहाणं, णवरं. सक्कत्थयं एगट्ठम वत्तीसाए आयंबिलेहिं इत्यादि ”

इसपाठमें अशुभकर्मोंके क्षयके लिये तथा अपनी आत्माको हितकारी होवे वैसे चैत्यवंदनादि करने चाहिये, इसमें उपयोगयुक्त होनेसे उत्कृष्टचित्तकी समाधी होती है, इसलिये गमनागमनकी आलोचनारूप इरियावही किये विना चैत्यवंदन,स्वाध्याय,ध्यानादिकरना नहीं कल्पता है, अतएव चैत्यवंदनकरनेके लिये पहिले पंचपरमेष्ठि नवकारमंत्रके उपधान वहनकरने चाहिये उसके वाद इरियावही, नमुत्थुणं, अरिहंत चेइयाणं वगैरहके आयंबिल उपवासादि पूर्वक उपधान वहन करने चाहिये.

९ — देखिये ऊपरके पाठमें उपधान वहन करनेके अधिकार में विधिसहित उपयोगयुक्त चैत्यवंदन-स्वाध्याय-ध्यानादिकार्यकरने संबंधी पहिले इरियावही करके पीछेसे चैत्यवंदनादिकरें,ऐसा खुलासासे बतलाया है. इसलिये ऊपरका पाठ पौषधग्राही उपधान वहन करनेवालों संबंधीहै, और पौषध(पौषह) करनेवालोंको तो इरियावही कियेबिना चैत्यवंदन,स्वाध्याय-पढना गुणना, तथा ध्यानादि नोकरवालीफेरना वगैरह धर्मकार्यकरना नहींकल्पताहै,इसलिये यहबात तो अभीवर्तमानमेंभी सर्वगच्छवाले उसी मुजब करतेहैं. मगर इस पाठमें सामायिकके अधिकारमे, प्रथम इरियावही किये बाद पीछेसे करेमिभंतेका उच्चारणकरने संबंधी कुछभी अधिकारका गंधभी नहींहैं.जिसपरभीसूत्रकारमहाराजोंके अभिप्रायविरुद्ध होकर आगे पीछेके उपधानके संबंधवाले संपूर्णपाठको छोडकर वीचमेंसे थोडासा अधूरापाठ लिखकर उसकाभी अपना मनमाना अर्थकरके सामायिककरने संबंधी प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहराना. सो ऊपर मुजब आवश्यक चूर्णि वगैरह अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध होनेसे सर्वथा उत्सूत्रप्ररूपणारूपही है।

१० — श्रीदशवैकालिकसूत्रकी दूसरीचूलिकाकी ७ वी गाथाकी टीकामें साधुके गमनागमनादि कारणसे इरियावही करनेका कहा है, सो पाठभी यहांपर बतलाता हूं. देखो :—

" अभीक्ष्णं, पुनः पुनः पुष्टकारणाभावे, निर्विकृतिकश्च, निर्गत विकृतिपरिभोगश्च भवेत् । अनेनपरिभोगोचित्तविकृत्तिनामप्यकारणे प्रतिषेधमाह. तथा अभीक्ष्णं, गमनागमनादिषु, विकृति परिभोगेऽपि चान्ये किमित्याह-कायोत्सर्गकारीभवेत्, ईर्यापथिकीप्रतिक्रमणमकृत्वा न किंचिदन्यत् कुर्यादशुद्धतापत्तेरितिभावः। तथा स्वाध्याययोगे,वाचनाद्युपचार व्यापार आचामाम्लादौ पयतोऽतिशय यत्नपरो भवेत्तथैव तस्य फलवत्त्वाद्विपर्यय उन्मादादि दोष प्रसंगादिति "

ऊपरके पाठमें साधुओंके उपदेशके अधिकारमें-दुध-दही-घी-शक्कर-पक्कान् वगैरह विगयोंका त्याग करनेका बतलायाहै,तथा आहार पानी-देव दर्शन या ठले- मात्रे वगैरह गमनागमनादि कार्योंसे इरियावही किये विना कायोत्सर्गकरना,स्वाध्याय-सूत्रपाठपढना गुणना, ध्यानादि करना नहीं कल्पे, इस लिये पहिले इरियावही करके पीछे सूत्र वाचनादि कार्योंमें प्रवृत्ति करें, इत्यादि.

११ — इस ऊपरके पाठमेंभी साधुओंके गमनागमनादिकारणसे व स्वाध्यायादि करनेकेलिये इरियावहीकरनेका बतलाया है, मगर श्रावकके सामायिक करनेसंबंधी प्रथम इरियावहीकरके पीछे करेमि भंते उच्चारण करनेका नहीं बतलायाहै,जिसपरभी पंचमहाव्रतधारी सर्व विरति साधुओंके इरियावहीके पाठका आगे पीछेका संबंध छोड कर अधूरे पाठसे सामायिकका अर्थ करना बडी भूल है.

१२- इसी तरहसे किसी जगह पौषधसंबंधी इरियावहीके, किसी जगह उपधानसंबंधी इरियावहीके, किसीजगह साधुओंके गमनागमन संबंधी इरियावहीके,किसी जगह प्रतिक्रमण संबंधी इरियावहीके, किसीजगह चैत्यवंदन- स्वाध्याय-ध्यानसंबंधी इरियावहीके अक्षरोंको देखकर, उन जगहके प्रसंगसंबंधी शास्त्रकारोंके अभिप्रायकोसमझेविनाही अथवा तो अपना झूठा आग्रह स्थापन करनेके लिये आवश्यक चूर्णि-बृहद्वृत्ति-लघुवृत्ति-श्रावकधर्मप्रकरणवृत्ति वगैरह अनेकशास्त्रपाठोंकेविरुद्धहोकर पौषधादिसंबंधी इरियावहीको सामायिकमें जोडकर प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंतेके पाठका उच्चारण करनेका ठहराना सो सर्वथा प्रकारसे अज्ञानतासे या जानबुझकरके उत्सूत्रप्ररूपणारूपही मालूम होता है.

देखिये— सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवालोंको अनेक दोषोंकी प्राप्ति होतीहै, सोही दिखाताहूं :—

१३ – जैनाचार्योंकी शास्त्ररचना अविसंवादी पूर्वापर विरोध

रहित होती है, तथा पूर्वापर विरोधी विसंवादीको शास्त्रोंमें मिथ्यात्वी कहा है, और श्री हरिभद्रसूरिजी महाराजनें आवश्यक वृहद्वृत्तिमें तथा श्रावकप्रज्ञप्तिवृत्तिमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करनेका साफ खुलासा लिखाहै, और महानिशीथ सूत्रका उद्धारभी इन्हीं महाराजने किया है, इसलिये महानिशीथ सूत्रके पाठसे प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेमें आवें, तो श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजको विसंवादी कथनरूप मिथ्यात्वके दोष आनेकी आपत्ति आतीहै, इसलिये आवश्यक वृत्ति आदिके विरुद्ध होकर इन्हीं महाराजके नामसे महानिशीथसूत्रके पाठसे प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनासो पूर्वापर विसंवादरूप मिथ्यात्वका कारण होनेसे सर्वथा अनुचित है।

१४- महानिशीथसूत्रके पाठसे 'इरियावही किये बिना कुछभी धर्म कार्य नहीं कल्पे,' इसलिये सर्व धर्मकार्य इरियावही करके ही करने चाहिये, ऐसा एकांत आग्रह करोंगे तो भी नहीं बन सकेगा, क्योंकि देखो-देव दर्शनको या गुरु वंदनको जाती वख्त १, जिनप्रतिमाको या गुरुको देखतेही नमस्काररूप वंदना करती वख्त २, तीर्थयात्राको जाती वख्त ३, नवकारसी,पोरशी, उपवासादि पच्चखखाण करती वख्त ४, मंदिरमें जघन्य चैत्यवंदन करती वख्त ५, गुरुमहाराजको आहारवस्त्रादि वहोराती वख्त ६,इत्यादि अनेक धर्मकार्य इरियावही कियेबिनाभी प्रत्यक्षपने करनेमें आते हैं, इसलिये इरियावही किये बिना कुछभी धर्मकार्य नहीं करना, ऐसा एकांत आग्रह करना सो सर्वथा विवेक बिनाकाही मालूम होताहै,इसलिये कोन२ कार्योंमें पहिले इरियावही करना, कौन २ कार्योंमें पीछेसे इरियावही करना, व कौन २ कार्य इरियावही किये बिनाभी हो सकतेहैं, इन बातोंका गुरुगम्यतासे भेद समझे बिना सामायिकमें प्रथम इरियावही करनेका एकांत आग्रह करना सो अज्ञानतासे सर्वथा शास्त्र विरुद्धहै,

१५-औरभीदेखिये-स्वाध्याय,ध्यानादिमें प्रथम इरियावही करनाकहाहै,उसमें आदि पदसे सामायिकमेंभी प्रथम इरियावही करनेका आग्रहकियाजावे, तो भी सर्वथाअनुचितहै,क्योंकि,देखो-श्रीखरतर गच्छनायक श्रीनवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिजी, तथा कलिकाल सर्वज्ञ बिरुद धारक श्रीहेमचंद्राचार्यजी और खास तपगच्छनायक श्रीदेवेंद्रसूरिजीआदि पूर्वाचार्योंने महानिशीथसूत्र अवश्यही देखाथा तथा स्वाध्यायध्यान आदिपदका अर्थभी अच्छीतरहसे जाननेवालेथे

तोभी सामायिकमें प्रथम इरियावही करनेका नहीं कहते हुए अपने २ बनाये ग्रंथोंमें सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करनेकाखुलासा लिखगयेहैं, उसका भावार्थ समझेबिनाही उन महाराजोंके विरुद्ध होकर सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करतेहैं, सो उन महाराजोंके वचन उत्थापनरूप और उन महाराजोंके विरुद्ध प्ररूपणा करनेरूप दोषके भागी होते हैं।

१६- दशवैकालिकसूत्रकी टीकाके पाठसेभी 'इरियावही किये विना कोईभी कार्यकरें तो अशुद्ध होताहै', इस बात परसे सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करतेहैं सो भी बडीही भूलहै, क्योंकि यह तो जैनसमाजमें प्रसिद्धही बात है, कि-दशवैकालिकमूलसूत्रमें और उसकी टीकामें सर्वजगह साधुओंके आचार-विचार-कर्तव्य संबंधीही अधिकार है, उसमें किसी जगहभी श्रावकके सामायिक वगैरह कार्यौंसंबंधी कुछभी अधिकारनहीहै, इसलिये साधुओंके गमनागमनसे जाने आनेसे इरियावही करके पीछे स्वाध्याय, ध्यानादिधर्म कार्य करने बतलाये हैं, उसके आगे पीछेके संबंधवाले पाठको छोडकर अधूरे पाठसे सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करना सर्वथा अनुचित है.

१७- श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजने'आवश्यकसूत्र'की बडी टीकामें तथा श्री उमास्वातिवाचक विरचित 'श्रावकप्रज्ञप्ति' की टीकामेंभी सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही कहना खुलासा लिखा है, और इन्ही महाराजने श्रीदशवैकालिकसूत्रकी टीकाभी बनाया है, इसलिये इन्हीं महाराजके नामसे दशवैकालिकसूत्रकीटीकाके पाठसे प्रथम इरियावही स्थापन करनेसे इन महाराजके कथनमें पूर्वापर विरोधभाव विसंवादरूप दोषकी प्राप्ति होतीहै,इसलिये इनमहाराज के अभिप्राय विरुद्ध होकर अधूरे पाठसे सामायिक संबंधी खोटा अर्थ करके विसंवादका झूठा दोष लगाना बडी भूल है. यह महाराजतो विसंवादी नहीं थे. मगर संबंध विरुद्ध आग्रह करनेवालेही प्रत्यक्ष मिथ्या भाषणसे बालजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेके दोषी ठहरतेहैं.

१८ - श्रीदेवेंद्रसूरिजी महाराजने 'श्राद्धदिनकृत्य'सूत्रकीवृत्तिमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही खुलासा लिखाहै, तथा धर्मरत्न प्रकरणकी वृत्तिमें तो-वाचना,पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा व धर्मकथारूप पांचप्रकारकीस्वाध्यायकरने संबंधी अधिकारमें सिर्फ परावर्तनारूप (शास्त्रपाठ-पढे हुए फिरसे याद करने रूप)स्वाध्याय करनेके

लिये इरियावही करनेका बतलायाहै,उसका आशय समझे विनाही अपने गच्छके पूर्वज आचार्य महाराजकोभी विसंवादरूप मिथ्यात्व-का दोष लगानेका भय नहीं करते हुए सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करते हैं, सो भी बडी भूल करते हैं.

१९ – औरभी देखो धर्मरत्नप्रकरण वृत्तिमें "इरियं सु पडिक्कंतो कउ समइयं " इरियावही पूर्वक स्वाध्याय करें; ऐसा पाठ है,उसमें ' समइय ' शब्दकीजगह ' सामाइय ' शब्द बनाकर दो मात्राज्यादे अधिक पाठमें प्रक्षेपन करके स्वाध्यायकी जगह सामायिकका अर्थ बदलातेहैं सो यहभी सर्वथा शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणारूप बडीभूलहै.

२०– श्रीधर्मघोषसूरिजीनें 'संघाचारभाष्यवृत्ति'में चैत्यवंदन संबंधी दशत्रिकके अधिकारमें सातवी त्रिकमें तीनवार भूमिप्रमार्जन करके इरियावहीपूर्वक-चैत्यवंदन करनेका बतलाया है, उसकेभी पूर्वापरका संबंध छोडकर उसपाठका भावार्थ समझे विना उसपाठसे भी सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहरते हैं, और इन महाराजकेही गुरु महाराज श्रीदेवेंद्रसूरिजीने प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही लिखा है, उस बातके विरुद्ध प्ररूपणाकरनेवाले बनाते हैं, सो भी बडी भूल है.

२१–वंदीत्तासूत्रकीटीकाके पाठसेभीसामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहरातेहैं,सोभी सर्वथाअनुचितहै,क्योंकि देखो–वंदीत्तासूत्रकी प्राचीन चूर्णि और श्रावकप्रज्ञप्तिवृत्ति वगैरह अनेकप्राचीन शास्त्रोंमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करनेका खुलासा लिखा है और खास वंदीत्तासूत्रकी टीकामेंभी नवमा सामायिक व्रतकी विधिसंबंधी आवश्यकचूर्णि,पंचाशकचूर्णि,योग शास्त्रवृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रानुसार सामायिककरनेकी विधि लिखाहै, उन्हीं सर्व शास्त्रोंमें भी प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही लिखाहै, इसलिये प्राचीन चूर्णि आदिअनेक शास्त्रोंके विरुद्ध होकर पूर्वापर विसंवादीरूप विविरोधी कथन — एकही विषयमें ; एकही ग्रंथमें ; कभी नहीं होसकताहै, जिसपरभी एकही विषयमें, एकही ग्रथमें विसंवादी कथन माननेवाले या कहनेवाले शास्त्रविरुद्ध श्रद्धा रखनेवाले सर्वथा अज्ञानी समझने चाहिये.

२२– पंचाशकसूत्रकी चूर्णिके पाठसेभी नवमें सामायिक व्रतमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंतेका स्थापन करते हैं,सो भी सर्वथा अनुचितहै,क्योंकि इन्हीं चूर्णिमें नवमें सामायिकव्रत संबंधी प्रथम

करेमिभंतेपीछे इरियावहीकरनेकाखुलासालिखाहै,जिसपरभीचूर्णिके लिखे सत्य पाठको छुपा देना, और चूर्णिकारने रात्रिपौषध वालोंके लिये ११ वा पौषधव्रत संबंधी इरियावही लिखी है, उसको चूर्णिकारके अभिप्राय विरुद्ध होकर ९ वें सामायिक व्रतमें भोले जीवोंको दिखलाना,सो मायावृत्तिरूपप्रपंचसे प्रत्यक्षझूठबोलकर शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करना संसारवृद्धिका कारण होनेसे आत्मार्थियोंको कदापि योग्यनहींहै.यहांपर लडकोंके खेल जैसी प्रपंचताकी बातें नहीं हैं, किंतु सर्वज्ञ शासनकी बातें हैं,इसलिये एकही ग्रंथमें,एकही विषयमें, एकही पूर्वाचार्यको पूर्वापर विरोधी विसंवादी कथन करने वाले ठहराना, सो बडी अज्ञानताहै.अथवा जान बुझकर पूर्वाचार्योंकी आशातनाका और शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणाका भय न रखकर इस लोककी पूजा मानताकेलिये अपना झूठा आग्रह स्थापन करनेकेलिये व्यर्थही एसी शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करते होंगे, सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने. हम इस बातमें विशेष कुछभी नहीं कहसकते हैं।

२३-इसीतरहसे सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते कहनेका स्थापनकरनेवाले न्यायरत्नजीआदिको पूर्वाचार्योंको विसंवादीके झूठे दोषलगानेके हेतूभूत तथा अनेक शास्त्रोंके विरुद्धप्ररूपणा करनेरूप अनेक दोषोंके भागी होनापडता है,और पूर्वाचार्योंको झूठा दोष लगानेकी आशातनासे तथा शास्त्रकारोंके अभिप्रायविरुद्धप्ररूपणा करनेसे आपने व अपने पक्षके आग्रहकरनेवाले बालजीवोंकेभी संसारवृद्धिका कारणरूप महान् अनर्थ होता है, यही सर्व बातें न्यायरत्नजीने 'खरतरगच्छ समीक्षा' में सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीकरनेकी आवश्यक चूर्णि, बृहद्वृत्ति वगैरह शास्त्रानुसार सत्य बातको निषेध करनेके लिये और प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेके लिये महानिशीथ-दशवैकालिक सूत्रकी टीकाकारवगैरह बहुतशास्त्रकारमहाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध होकर अधूरे२पाठोंसे उलटा२संबंध लगाकर उत्सूत्रप्ररूपणासे बडा अनर्थ किया है, उसका नमूनारूप थोडासा सामायिक संबंधी पाठकगणको निसंदेह होनेकेलिये हमने ऊपरमें इतना लिखाहै. मगर इस प्रकरणका विशेष खुलासा पूर्वक इसीही "बृहत्पर्युषणा निर्णय" ग्रंथके पृष्ठ३०९से३२९तक अच्छी तरहसे छप चुका है, वहांसे विशेष जान लेना और "आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः" नामा ग्रंथमेंभी विस्तारपूर्वक शास्त्रोंके पाठोंसहित निर्णय हमारी तरफसे छप चुका है, इस लिये

यहांपर फिरसे ज्यादे विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नहीं हैं।

२४-अब सत्यप्रिय पाठकगणसे हमारा इतनाही कहनाहै, कि-महानिशीथसूत्रके उपधान चैत्यवंदनसंबंधी इरियावहीके अधूरे पाठसे, तथा दशवैकालिककी टीकाके साधुओंके स्वाध्याय करनेसंबंधी इरियावहीके अधूरे पाठसे, श्री हरिभद्रसूरिजीमहाराजके अभिप्राय विरुद्ध होकर सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करतेहैं, और इन्हीं महाराजने जिनाज्ञानुसारही प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही खुलासा पूर्वक आवश्यकसूत्रकी बडी टीकामें लिखा है, उसको निषेध करतेहैं, या उसपर अविश्वास लाकर कुयुक्तियोंसे भोलेंजीवोंकोभी उस बातपर शंकाशील बनातेहैं, वो लोग जिनाज्ञा विरूद्धहोकर उत्सूत्रप्ररूपणाकरतेहुए अपने सम्यक्त्वकोमालिन करतेहैं.

२५-और किसीभी प्राचीन पूर्वाचार्यमहाराजनेंअपने बनाये किसीभी ग्रंथमें, किसी जगहभी ९ वें सामायिकव्रतसंबंधी प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते नहींलिखा. मगर खास तपगच्छादि सर्व गच्छोंके सर्वपूर्वाचार्योंने प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही स्पष्ट खुलासा पूर्वक लिखा है, इसलिये इस बातमें पाठांतरसे पहिले इरियावहीभी नहीं कह सकते, जिसपरभी पाठांतरके नामसे पहिले इरियावही स्थापन करें सो भी शास्त्रविरुद्ध होनेसे प्रत्यक्ष मिथ्या है.

२६- और कितनेक अज्ञानी लोग अपनी मति कल्पनासे कहते हैं, कि- पहिले इरियावही करें तो क्या, और पीछे करें तो भी क्या, किसी तरहसे सामायिक तो करनाहै, ऐसा मिश्र भाषण करनेवालेभी सर्वथा शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करते हैं, उन लोगोंको सामायिकमें प्रथम करेमिभंते कहनेसंबंधी शास्त्रकारोंके गंभीर अभिप्रायको समझमें नहीं आया मालूम होताहै, नहीं तो ऐसा शास्त्रविरुद्ध मिश्र भाषण कभी नहीं करते. क्योंकि देखो-सर्व शास्त्रोंमें स्वाध्याय, ध्यान, प्रतिक्रमण, पौषधादिधर्मकार्योंमें पहिले इरियावही कहाहै, और सामायिकमें करेमिभंते पहिले कहे बाद पीछेसे इरियावही करनेका कहा है, सो इसमें गुरुगम्यताका अतीव गंभीरार्थवाला कुछभी रहस्य होना चाहिये, नहीं तो सर्व शास्त्रोंमें महान् शासन प्रभावक श्री हरिभद्रसूरिजी, नवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिजी, कलिकाल सर्वज्ञविरुदधारक हेमचंद्राचार्यजीआदिगीतार्थमहाराज प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही कभी नहीं लिखते. इसलिये इनमहाराजोंके गंभीरआशयको समझेविना इनसे विरुद्ध प्ररूपणा करना बडी भूलहै.

२७- कितनेकलोग अपना असत्य आग्रह छोडसकतेनहीं,व सत्य बात ग्रहणभी कर सकते नहीं, इसलिये भोले जीवोंको अपने पक्षमें लानेके लिये जान बुझकर कुतर्क करते हैं, कि, श्रीआवश्यक सूत्रकी चूर्णि-बृहद्वृत्ति- लघुवृत्ति-पंचाशकचूर्णि-वृत्ति-श्राद्धदिनकृत्यसूत्रवृत्ति-श्रावकधर्म प्रकरणवृत्ति-नवपद प्रकरणवृत्ति-योगशास्त्र वृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें सामायिकमें पहिले करेमिभंतेका उच्चारण करके पीछेसे इरियावही करनेका कहाहै, सो वह शास्त्र पाठ स्वाध्याय संबंधीहैं ? या चैत्यवंदन-गुरुवंदन संबंधीहैं ? या आलोयणा संबंधी हैं? अथवा सामायिक संबंधीहैं? इसकी हमको अच्छी तरहसे मालूम नहीं पडती, उससे वह शास्त्र पाठ सामायिक संबंधीहैं, ऐसा निश्चयनहींहोसकता.इसलिये उनशास्त्रपाठोंके अनुसार सामायिकमें पहिले करेमिभंते पीछे इरियावही कैसे किया जावे ? ऐसी२ कुतर्क करतेहैं,सो सर्वथा झूठीहीहैं,क्योंकि ऊपरके सर्व शास्त्रपाठोंमें श्रावकके १२ व्रतोंमें ९में सामायिकव्रतसंबंधी सामायिक करनेके लियेही सामायिककी विधिसंबंधी खुलासापूर्वक प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करनेका लिखाहै,उसके विषयमें सत्य ग्रहण करनेवाले आत्मार्थी भव्यजीवोंको निस्संदेह होनेकेलिये थोडेसे शास्त्रोंके पाठभी यहां पर बतलाते हैं.

२८— श्री यशोदेव सूरिजी महाराज कृत श्री पंचाशक सूत्रकी चूर्णिका पाठ देखो—

" तिविहेण साहुणो णमिऊण सामाइयं करेइ ' करेमिभंते ! सामाइअं ' एवमाइ उच्चरिऊण, तउ पच्छा इरियावहीयाए पडिक्कमइ, आलोएत्ता, वांदित्ता आयरियादि, जहा- रायणिए, पुणरवि गुरुं वंदित्ता, पडिलेहित्ता णिविट्ठो पुच्छति पढति वा " इत्यादि.

२९- श्रीचंद्रगच्छीय श्रीविजयसिंहाचार्यजी कृत श्रावकप्रतिक्रमण [वंदित्तासूत्र] की चूर्णिका पाठ भी देखो -

" वंदिऊण त्थोभ वंदणेण गुरुं संदिसाविऊण सामाइय दंडकमणु कड्ढिय, जहा- ' करेमिभंते ! सामाइयं, जाव-अप्पाणं वोसिरामि ' तओ इरिअं पडिक्कमिय आगमणं आलोएइ, पच्छा, जहा-जेट्ठं साहुणो वंदिऊण, पढइ सुणइ वा " इत्यादि.

३०- श्रीलक्ष्मीतिलकसूरिजीकृत श्रावकधर्मप्रकरणवृत्तिका पाठ यहांपर दिखलाताहूं यथा- "अत्र क्रियमाणं श्राद्धानां सामायिकं निप्रत्यूहं निर्वहति तत्स्थानमुपदिशति—

चैत्यालये स्वनिशांते, साधूनामंतिकेऽपि वा ॥
कार्यं पौषधशालायां, श्राद्धैस्तद्विधिना सदा ॥ १ ॥

व्याख्या- चैत्यालये विधिचैत्ये, स्वनिशांते स्वगृहेऽपि विजन-स्थान इत्यर्थः। साधुसमीपे, पौषो ज्ञानादीनां धीयतेऽनेनेति पौषधं पर्वानुष्ठानं उपलक्षणात् सर्वधर्माऽनुष्ठानार्थं शालागृहं पौषधशाला, तत्र वा तत् सामायिकं कार्यं श्राद्धैः सदा नोभयसंध्यमेवेत्यर्थः। कथंतद्विधिना इत्याह-खमासमणं दाउं इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सामाइयमुहपत्तिं पडिलेहेमि त्ति भणिय, बीय खमासमण पुव्वं मुहपत्तिं पडिलेहिय, पुणरवि पढम खमासमणेण सामाइयं संदिसाविय, बीय खमासमणपुव्वं सामाइयं ठामि त्ति वुत्तं, खमासमणदाणपुव्वं अद्धाविणय गत्तो पंचमंगलं कढित्ता 'करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि' त्ति सामाइय सुत्तं भणति, तओ पच्छा इरियंपडिक्कमति, इत्यादिपूर्वसूरिनिर्दिष्टविधानेन। अत्र च ईर्यां प्रतिक्रम्यैव सामायिकोच्चारण यत्केचिदाचक्षते तत्सिद्धांतादनुत्तीर्णम्,यत उक्तमावश्यक चूर्णि-बृहद्वृत्त्यादौ- यथा "करेमिभंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव साहू पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणमिति, काउण पच्छा इरिअं पडिक्कमइ त्ति" इत्यादि

३१-श्रीपार्श्वनाथस्वामीके संतानीय परंपरामें श्रीउपकेशगच्छीय श्रीदेवगुप्तसूरिजी महाराजने श्री नवपदप्रकरणवृत्तिमेंभी प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही सामायिक संबंधी कहा है, सो पाठभी यहां पर बतलाते हैं, यथा :—

" आवश्यक चूर्ण्याद्युक्त समाचारी त्वियं-सामायिकं श्रावकेण कथं कार्यं ? तत्रोच्यते- श्रावको द्विविधोऽनृद्धिप्राप्तः ऋद्धिप्राप्तश्च, तत्राद्यश्चैत्यगृहे, साधुसमीपे,पौषधशालायां, स्वगृहे वा. यत्र वा विश्राम्यति तिष्ठति च निर्व्यापारस्तत्र करोति, चतुर्षु स्थानेषु नियमेन करोति, चैत्यगृहे, साधुमूले पौषधशालायां स्वगृहे वा अवश्यं कुर्वाण इति. एतेषु च यदि चैत्यगृहे साधुमूले वा करोति,तत्र यदि केनाऽपि सह विवादो नास्ति,यदि भयं कुतोऽपि न विद्यते, यस्य कस्यापि किंचिद् न धारयति,मा तत्कृताकर्षापकर्षौ भूतां, यदि वाऽधम वर्ण्यमवर्ण्यमवलोक्य न गृह्णीयात्, मा भांक्षीत् इति बुद्ध्या यदि वा गच्छन् न किमपि व्यापारं व्यापारयेत् तदा गृहे एव सामायिकं गृही-

त्वा चैत्यगृहं साधुमूलं वा यथा साधुः पंचसमितिसमितस्त्रिगुप्तिगुप्तस्तथा याति, आगतश्च त्रिविधेन साधुन् नमस्कृत्य तत्साक्षिकं पुनः सामायिकं करोति " करेमिभंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव साहू पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं " इत्यादि सूत्रमुच्चार्य, ततः, ईर्यापथिकीं प्रतिक्रामयति, आगमनं चालोचयति. ततः, आचार्यादीन् यथारत्नाधिकतयाभिवंद्य सर्वसाधून्, उपयुक्तोपविष्टः पठति, पुस्तक वाचनादि वा करोति । चैत्यगृहे तु यदि वा साधवो न संति, तदा ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण पूर्वमागमनालोचनं च विधाय चैत्यवंदनां करोति,पठनादि विधत्ते,साधुसद्भावे तु पूर्व एष विधिः । एवं पौषधशालायामपि । केवलं यथा गृहे आवश्यकं कुर्वाणोगृह्णाति—तथैव गमनविरहितं इत्यादि । तथा ऋद्धिप्राप्तस्तु चैत्यमूलं साधुमूलं वा महद्धर्यैव एति, येन लोकस्य आस्था जायते, चैत्यानि साधवश्च सत्पुरुषपरिग्रहेण विशेष पूज्यानि भवंति. पूजित पूजकत्वात् लोकस्य । अतस्तेन गृहे एव सामायिकमादाय नागंतव्यमधिकरण भयेन हस्त्यश्वाद्यनानयनप्रसंगात्,आगतश्च चैत्यालये विधिना प्रविश्य चैत्यानि च द्रव्य–भावस्तवेनाभिष्टुत्य, यथासंभवं साधुसमीपे मुखपोतिका प्रत्युपेक्षणपूर्वं "करेमिभंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव साहू पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि " त्ति उच्चार्य ईर्यापथिक्यादि प्रतिक्रम्य यथा रत्नाधिकतया सर्वसाधूंश्चाभिवंद्य प्रश्नादि करोति, सामायिकं च कुर्वाण एष मुकुटमुपनयति कुंडलयुंगलनाम मुद्रे च पुष्प-तांबूल-प्रावरणादिव्युत्सृजति। किंच यदि एष श्रावक एव तदाऽस्यागमनवेलायां न कश्चिदुत्तिष्ठति, अथ यथा भद्रकस्तदाऽस्यापि सन्मानो दर्शितो भवति,इति बुद्ध्या आचार्याणां पूर्वरचितमासनंध्रियते अस्य च, आचार्यास्तु उत्थायैवतस्ततश्चंक्रमणं कुर्वाणा आसते तावद् यावदेष आयाति, ततः सममेवोपविशंति । अन्यथा उत्थानानुत्थानदोषाविभाव्याः, एतच्च प्रासंगिकमुक्तम् । प्रकृतं तु सामायिकस्थेन विकथादि न कार्यं,स्वाध्यायादिपरेण आसितव्यं" इत्यादि.

३२–श्रीतपगच्छनायक श्रीदेवेंद्रसूरिजी महाराज कृत श्राद्धदिनकृत्यसूत्रकी वृत्तिका पाठभी देखो:–

"तओ वियाल वेलाए,अत्थमिए दिवायरे । पुव्वुत्तेण विहाणेण,पुणो वंदे जिणोत्तमे ॥२८॥ तओ पोसहसालं तु,गंतुण तु पमज्जए । ठावित्ता

तत्थसूरिं, तओ सामाइयं करे ॥२९॥ काऊणय सामाइयं, इरियंपडि-
क्कमियं,गमणमालोए। वंदित्तु सूरिमाइ, सज्झायावस्सयं कुणइ ॥३०॥

व्याख्या— सांप्रतमष्टदशं सत्कार द्वारमाह- ततो वैकालिका-
नंतरं, विकालवेलायां अंतर्मुहूर्त्तरूपायां, तामेवव्यनक्ति अस्तमितेदि-
वाकरे अर्द्धबिंबादर्वाक् इत्यर्थः। पूर्वोक्तेन विधानेन पूजाकृत्वेतिशेषः।
पुनर्वंदते जिनोत्तमान् प्रसिद्ध चैत्यवंदन विधिना ॥ २८ ॥ अथैकोन
विंशति वंदनकोपलक्षितमावश्यक द्वारमाह—ततस्तृतीय पूजा नंत-
रं श्रावक. पौषधशालांगत्वा यतनया प्रमार्ष्टि, ततो नमस्कार पूर्वकं
व्यवहित तुशब्दस्यैवकारार्थ त्वात् स्थापयित्वैव तत्र सूरिं स्थापना-
चार्यं, ततो विधिना सामायिकं करोति ॥ २९ ॥ अथ तत्र साधवोऽ
पिसंति श्रावकेण गृहे सामायिकं कृतं, ततोऽसौसाधुसमीपे गत्वा-
किं करोति इत्याह-- साधुसाक्षिकं पुन. सामायिकं कृत्वा ईर्याप्रतिक्र-
म्यागमनमालोचयेत् तत आचार्यादीन् वंदित्वा स्वाध्यायं काले चा-
वश्यकं करोति॥ ३० ॥ इत्यादि ”

३३-अब देखिये-ऊपरके सर्वमान्य प्राचीन शास्त्रपाठोंमें-श्रावकको
सामायिक कैसे करना चाहिये? इस सवालके जवाबमें सर्व शास्त्र
कार महाराजोंने इस प्रकार खुलासा पूर्वक लिखा है.

१-सामायिक करनेवाले राजादि धनवान् व व्यवहारिक धन
रहित ऐसे दो प्रकारके श्रावक बतलाये.

२- धन रहित श्रावकको भगवान्‌के मंदिरमें १, उपद्रवरहित
एकांत जगहमें अपने घरमें २, साधु महाराजके पासमें ३, वा पौषध
शालामें ४, ऐसे ४ स्थान सामायिक करनेके लिये बतलाये.

३ - जब श्रावकको संसारिक कार्योंसे निवृत्ति होवे [फुरसत
मिले] तब हरेक समय सामायिक करनेका बतलाया.

४-धर्म कार्योंमें अनेक तरहके विघ्न आतेहैं, और उपयोगी वि-
वेकवाले श्रावकको धर्मकार्योंके विना समय मात्रभी खाली व्यर्थ ग-
मानायोग्यनहींहै,इसलिये संसारिक कार्योंसे फुरसद मिलतेही रस्ते
चलनेमें यदि किसीके साथ लेने देने वगैरहसे कोईतरहका भयनहीं
होवे तो अपनेघरमें सामायिकलेकर पीछे गुरुपासजानेकाबतलाया.

५-जैसे उपवासादिकके पच्चक्खाण अपनेघरमें करलिये हों तो
भी गुरुमहाराजकेपास जाकर फिर गुरु साक्षिसे उपवासादि पच्च-
क्खाण करनेमेंआतेहैं. तैसेही- श्रावकको अपने घरमें सामायिक ले-

कर सावद्य योगका त्याग करके, साधुकी तरह पंचसमिति और तीन गुप्तिसहितउपयोगसे गुरुमहाराजपास आकर फिर सामायिकका उच्चारणकरके पीछे इरियावहीपूर्वक स्वाध्यायादि करनेकाबतलाया.

६-शामको छ आवश्यकरूप प्रतिक्रमणकरनेकेलिये पहिले मंदिरमें देवदर्शन,पूजा आरति वगैरहकरके पीछे उपाश्रय या पौषधशालामें आकर गुरुके अभावमें भूमिका प्रमार्जनपूर्वक सामायिककरनेके लिये नवकार गुणकर स्थापनाचार्यकी स्थापनकरनेका बतलाया.

७- सामायिक करनेके लिये खमासमण पूर्वक गुरुसे आदेश लेकर सामायिकलेनेसंबंधी मुहपत्तिका पडिलेहणकरनेका बतलाया.

८- मुहपत्तिका पडिलेहणकरके प्रथम खमासमण पूर्वक सामायिक संदिसाहणेका, तथा फिर दूसरा खमासमण पूर्वक सामायिक ठाणेका आदेश लेनेका बतलाया.

९- विनय सहित मस्तक नमाकर नवकारपूर्वक 'करेमिभंते! सामाइयं' इत्यादि सामायिकका पाठ उच्चारण करनेका बतलाया.

१०- करेमिभंतेका पाठ उच्चारण कियेबाद पीछेसे इरियावही-करनेकाबतलाया सो 'इरियावही' कहनेसे इरियावही,तस्स उत्तरी, अन्नत्थ उससिएणं, कहकरके ४ नवकार या १ लोगस्सका काउस्सग्ग करनेका और ऊपर संपूर्ण लोगस्स कहनेका समझलेना चाहिये.

११- जैसे पौषधवाला देवदर्शनादिक कार्योंसे गमनकरके आया होवे वो इरियावही पूर्वक आगमनकी आलोचना करे, अर्थात्-इरियासमिति इत्यादि अष्टप्रवचनमाताके विराधनाकी आलोचनाकरके मिच्छामि दुक्कडं देताहै, तैसेही-यदि श्रावक अपने घरसे सामायिक लेकर इरियासमिति आदि पांच समिति और तीन गुप्ति सहित उपयोगसे गुरुपास आया होवे तो फिर गुरु साक्षिसे 'करेमि भंते!' इत्यादि सामायिक लेकर पीछे इरियावहीपूर्वक इरियासमिति इत्यादि आगमनकी आलोचना करनेका बतलाया.

१२-सामायिक लेकर पीछे इरियावही करके आगमनकी आलोचना करे, बाद यथा योग्य आचार्यादिक वडीलोंको अनुक्रमसे सर्व साधुओंको वंदना करनेका बतलाया.

१३ — 'पूर्वसूरिनिर्दिष्टविधानेन' तथा 'पडिलेहित्ता' अर्थात्-जगह आसनादिकका प्रमार्जन पडिलेहण पूर्वक बैठने स्वाध्यायादि करनेका आदेश लेकर अपना धर्मकार्य करनेका बतलाया.

१४- सामायिक लिये बाद गुरुके साथ धर्म वार्ता करें या कोई

शंका होवे तो गुरुसे पूछे या पुस्तकादि वांचे, अथवा दूसरा कोई पुस्तकादि वांचता होवे तो उपयोगयुक्त सुनता रहे.

१५- अपने घरसे सामायिक लेकर भगवान्‌के मंदिरमें आया होवे,वहां पासमें साधु न होवे तो भी भगवान्‌के समक्ष फिरसे सामायिक लेकर इरियावही पूर्वक आगमनकी आलोचना करके पीछे चैत्यवंदन, शास्त्रपाठ पढना गुणनादि धर्म कार्य करनेका बतलाया.

१६ — उपाश्रयमें गुरु महाराज होवे,तो उपर मुजब सामायिक करनेकी विधि बतलायी है, ऐसेही पौषधशालामेंभी सामायिक करनेकी विधि समझ लेना चाहिये.

१७— उपाश्रयमें गुरु महाराज न होवे, या समयके अभावसे कारणवश गुरु पास जाकर सामायिक करनेका अवसर न होवे और केवल अपने घरमेंही छ आवश्यकरूप प्रतिक्रमण करनेकेलिये सामायिक ग्रहण करें,तो भी ऊपर मुजब खमासमणपूर्वक सामायिक मुहपत्तिके पडिलेहणका,सामायिक संदिसाहणेका व ठाणेका आदेश लेकर नवकारपूर्वक करेमिभंतेका उच्चारणकरके पीछेसे इरियावही पूर्वक अपना धर्मकार्य करें,मगर वहांसे गुरु पास जाने वगैरह कार्योंसे गमनागमन नहीं होनेसे आगमनकी आलोचना न करें. परंतु शेष बाकीकी उपर मुजब सर्व विधि करनेका बतलाया.

१८- यहांपर कोई पहिले इरियावही करके पीछे करेमिभंतेका उच्चारण करनेका कहतेहैं,वोलोग शास्त्रोंके भावार्थको नहींजाननेवालेहैं,क्योंकि आवश्यकचूर्णि-बृहद्वृत्ति वगैरह प्राचीनशास्त्रोंमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही साफ खुलासा पूर्वक कहा है ।

१९- कभी गुरुके अभावमें अपनेघरमें या पौषधशालामें सामायिक करें,तब वहां "जाव नियम पज्जुवा सामि" ऐसा पाठ उच्चारणकरें और उपाश्रयमें गुरु समक्ष सामायिक करें, तब वहां "जावसाहू पज्जुवा सामि " ऐसा पाठ उच्चारण करें और इरियावही पूर्वक अपने धर्मकार्योंमें समय व्यतीत करनेका बतलाया.

२०-राजा-महाराजादि महर्द्धिक होवे,उन्होंको शहरकेरस्तोंमें नंगे पैर पैदल चलना योग्य न होनेंसे वो अपने घरसे सामायिक लेकर गुरु पास उपाश्रयमें नहीं जावें, किंतु-हाथी, अश्व, पदातिक आदिक राज्यऋद्धिकी सोभा युक्त भेरी भंभादि वाजिंत्र सहित बडे आडंबरसे सामायिक करनेकेलिये गुरुपास आवें, उससे शासनकी प्रभाव-

ना होवे, तथा भगवान् उपर और गुरुमहाराज उपर लोगोंकी श्रद्धा बढे, बहुत जीवोंको धर्म प्राप्तिका महान् लाभ होवे, इसलिये घरसे सामायिक लेकर नंगे पैरसे पैदल इरियासमितियुक्त आनेके बदले बडे आडंबरसे गुरुपास आकर पीछे सामायिक करें.

२१ — राज्यऋद्धिकी सोभा युक्त गुरुपास आकर जो नजदीक भगवान्का मंदिर होवे तो पहिले वहां मंदिरमें जाकर विधिसहित उपयोग युक्त भावसे- केशर चंदनादिसे पहिले द्रव्य पूजा करें बाद पीछे चैत्यवंदन स्तवनादिसे भाव पुजा करें उसके बादमें गुरु पास आकर "यथासंभवं साधु समीपे मुखपोतिका प्रत्युपेक्षणपूर्वं" अर्थात्- खमासमणपूर्वक मुहपत्तिकापडिलेहणकरके सामायिक संदिसाहणे वगैरहके आदेश लेकर ऊपर मुजब विधिसे पहिले करेमिभंतेका उच्चारणकरके पीछे इरियावही पूर्वक स्वाध्यायादि करें.

२२- राजादिक सामायिक करें तब तक राज्याचिन्ह मुकुटादिकको अलग रक्खें, त्याग करें.

२३-इसप्रकार सामायिक करनेवाले वहां विकथादि कर्मबंधनें केहेतुभूत कोईभी कार्य न करें, किंतु स्वाध्याय ध्यानादि कर्मोंकीनिर्जराके हेतुभूत धर्मकार्य करनेमें अपना समय व्यतीत करें, इत्यादि,

२४- अब देखिये-ऊपर मुजब सर्वमान्य प्राचीन शास्त्रपाठोंपर विवेक बुद्धिसे तत्त्व दृष्टिपूर्वक विचार किया जावे तो सामायिक करनेके लिये प्रत्येकवार खमासमण सहित 'सामाइय मुहपत्ति पडिलेहेमि' 'सामाइयंसंदिसावेमि' 'सामाइयंठावेमि' इत्यादि वाक्योंसे सामायिक करनेका आदेश लेकर नवकारपूर्वक विनयसहित 'करेमिभंते ! सामाइयं' इत्यादि संपूर्ण सामायिकका पाठ उच्चारण कियेबाद पीछेसे इरियावही करनेका सुस्पष्टतासे साफ खुलासा पूर्वक सब शास्त्रकार सर्व गच्छोंके पूर्वाचार्योंने लिखा है, सो अल्प बुद्धिवालाभी ऊपरके शास्त्र पाठोंपरसे सामायिकका अधिकारको अच्छी तरहसे समझ सकताहै. जिसपरभी ऊपरकी तमाम सर्व बातोंको छोडकर " ऊपरके शास्त्रपाठ आलोयणा संबंधी हैं, या स्वाध्याय संबंधी हैं, या वंदनासंबंधी हैं, अथवा सामायिक संबंधी है. इसकी हमको अच्छी तरहसे मालूम नहीं पडती, इसलिये ऊपरके शास्त्र प्रमाणोंसे सामायिकमें प्रथम करेमि भंते और पीछे इरियावही कैसे किया जावे?" ऐसी २ कुतर्क जान बुझकरके या उपरके शास्त्रपाठोंको वांचे, विचारे, समझे बिनाही परंपराकी अज्ञानतासे करते हैं, सो तो श्री-

ज्ञानीजीमहाराज जाने. मगर ऐसी २ कुतर्क करके जिनाज्ञानुसार प्रत्यक्ष अनेक शास्त्र प्रमाण मुजब सत्य बात परसे भोले जीवोंकी श्रद्धा उडादेते हैं, और जिनाज्ञाविरुद्ध कोईभी शास्त्रप्रमाण विनाही अपने झूठे हठवादके आग्रहकी बातको स्थापन करनेकेलिये शास्त्रोंके सत्य२ पाठोंपरभी झूठी२ शंका लाकर उत्सूत्र प्ररूपणासे उन्मार्गको पुष्ट करते हैं, सो यह काम संसार बढानेवाला अनर्थ भूत होनेसे आत्मार्थी भवभिरुयोंको तो करना योग्यनहींहै. इसविषयको विशेष तत्त्वज्ञ पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे.

३५-कितनेक कहतेहैं,-'सामायिकमें प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही करनेसंबंधी आवश्यक सूत्रकी चूर्णि-बृहद्वृत्ति वगैरह शास्त्रपाठोंमें सामायिकमुहपत्ति पडिलेहणके, सामायिक संदिसाहणके, सामायिक ठाणेके आदेशलेनेवगैरह सबपूरी विधिनहींहै,ऐसा कहनेवालेभी प्रत्यक्षही मिथ्या भाषण करके जिनाज्ञाका उत्थापन करतेहैं, क्योंकि देखो-श्रावकधर्म प्रकरणवृत्ति तथा वंदित्तासूत्रकी चूर्णि वगैरह शास्त्रपाठोंमें सामायिक मुहपत्ति पडिलेहणके,सामायिक संदिसाहणके, सामायिकठाणवगैरहके आदेशलेकर नवकारपूर्वक विनयसहित 'करेमि भंते' इत्यादि पाठ उच्चारण करके पीछेसे इरियावही किये बाद स्वाध्यायादि करनेका संक्षेपमेंभी साफ बतलायाहै, उसके भावार्थमें गुरुगम्यतासे सामायिकमें सब पूरीविधि समझना चाहिये.

३६-आवश्यक निर्युक्ति, उत्तराध्ययनादि शास्त्रोंमें सामान्यतासे संक्षेपमें प्रतिक्रमणकी विधि बतलायाहै,परंतु उसका विस्तारपूर्वक विशेष अधिकार भावपरंपरानुसार पूर्वाचार्योंके सामाचारियोंके ग्रंथोंसे जाननेमें आताहै, और उसी मुजबही अभी प्रतिक्रमणकी सर्व क्रियायें करनेमें आतीहैं.मगर कोई अज्ञानी आवश्यकनिर्युक्ति-उत्तराध्ययनादिशास्त्रोंकी प्रतिक्रमण विधिको अधूरी कहकर निषेधकरें और उसकेविरुद्ध ढूंढियोंकी तरह अपनी मतिकल्पना मुजब प्रतिक्रमण की विधिको स्थापन करें, तो आवश्यकादि आगमार्थरूप पंचांगीके उत्थापनसे उत्सूत्रप्ररूपणारूप मिथ्यात्वके दोषके भागी होनापडताहै, तैसेही- आवश्यक चूर्णि, बृहद्वृत्ति वगैरह ऊपरमुजब शास्त्रपाठोंमें सामायिक संबंधीभी सूचनारूप संक्षेपमें सामान्यतासे शास्त्रकार महाराजोंने सामायिककी विधि लिखीहै. उसका विस्तारसे विशेष अधिकार भावपरंपरानुसार पूर्वाचार्योंके सामाचारियोंके ग्रंथोंसे जानना चाहिये और उसी मुजबही आत्मार्थी भव्य जीवोंको सा-

मायिककी सबपूरी विधि करलेनाचाहिये. जिसकेबदले उसको अधूरी विधि कहकर निषेध करने वालोंको व उसके सर्वथा विरुद्ध अपनी कल्पनामुजब करवाने वालोंको श्रीआवश्यकसूत्रादि आगमार्थरूप पंचांगीके उत्थापनसे उत्सूत्रप्ररूपणारूप दोषके भागी होनापडता है, इसलिये आत्मार्थी भवभिरुयोंको ऐसा करना योग्य नहीं है।

३७- औरभी देखिये जैसे-जिनमंदिरमें विधियुक्त 'द्रव्य भाव पूजा कर निजघर गया' ऐसा किसी शास्त्रमें संक्षेपमें सूचनारूप अधिकार आया होवे, उसका विशेष भावार्थ तत्त्वदृष्टिसे समझे विनाही उसमें स्नान करने, पवित्र वस्त्र पहिरने, मुख कोश बांधने, केशर चंदनादि सामग्री लेने वगैरहके अक्षर न देखकर उसको जिनपूजाकी अधूरी विधि कहकर सर्वथा जिनपूजाका निषेध करने वालोंको अज्ञानी समझनेमें आतेहैं, क्योंकि उपयोगयुक्त भावसे हमेश जिनपूजा करने वाले तो जिनपूजाकी सब पूरी विधिको अच्छी तरहसे जाननेवाले होते हैं, उन्होंके लिये विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नही है, किंतु 'द्रव्य भाव पूजा' कहनेसे उपयोग युक्त स्नान करने, पवित्र वस्त्र धारन करने, मुखकोश बांधने, जिन मंदिरमें प्रवेश करने, निसीही कहने, मंदिरकी सार संभाल लेने, ३ प्रदिक्षणा देने, केशर-चंदन-धूप-दीप-अक्षतादि सामग्री लेने, और चैत्यवंदन-शक्रस्तव- जिनगुण स्तुति आदिसे दश त्रिकसहित उपयोगसे पूजा करने वगैरहकी सब बातें तो अपने आपही समझलेतेहैं. इसलिये 'द्रव्य भाव पूजा' कहनेसे संक्षेपमें जिनपूजाकी सब पूरी विधि समझनी चाहिये, तैसेही-सामायिककी विधिको जानने वाले उपयोग युक्त हमेश सामायिक करनेवालोंके लिये तो- 'अपने घरसे सामायिकलेकर साधुकीतरह इरिया समिति पूर्वक उपयोगसे गुरुपास आवे' इस वाक्यसे, तथा 'गुरुको वंदनाकरके फिर सामायिकका उच्चारण करे बाद इरियावहीपूर्वक पढे सुने वा पूछे' इस वाक्यसे सामायिक करनेके लिये पवित्रवस्त्र धारणकरनेका तथा मुहपत्ति आदि सामग्री लेनेका और खमासमणपूर्वक सामायिक संबंधी मुहपत्ति पडिलेहणादिकके आदेशलेने वगैरहसे सामायिककी सब विधिपूरी समझ लेना चाहिये, जानकारोंकेलिये उसजगह ईसंसे विशेष लिखें तो पुनरुक्ति दोष आवे, पिष्टपेषण जैसे होवे, उससे वहां 'जागृतको जगाने' की तरह विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नहीं हैं, इसलिये गुरुगम्यतासे तत्त्वदृष्टिपूर्वक विवेकबुद्धिसे शास्त्रकार महाराजोंके गंभीर आशयको स-

मझे बिना अधूरी विधिके नामसे सामायिकमें प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही करनेकी सत्यबातको सर्वथा उडादेना सो उत्सूत्रप्ररूपणारूप होनेसे आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है.

३८-देखो विवेकबुद्धिसे खूब विचारकरो- श्रीजिनदासगणिमहत्तराचार्यजी पूर्वधर,श्रीहरिभद्रसूरिजी,अभयदेवसूरिजी,देवगुप्तसूरिजी,हेमचंद्राचार्यजी,देवेंद्रसूरिजी,आदिगीतार्थ शासन प्रभावक महाराजोंको तो सामायिकमें प्रथमकरेमिभंते पीछे इरियावहीकी बात तत्त्वज्ञानसे जिनाज्ञानुसार सत्यमालूमपडी, इसलिये अपने२ बनाये ग्रंथोंमे निसंदेहपूर्वक लिखगये तथा आत्मार्थी भव्यजीवभी शंकारहित सत्य बात समझकर उस मुजब सामायिककी सब विधिभी करतेथे और अभी करतेभी हैं। जिसपरभी कितनेक लोग अपने तपगच्छ नायक श्री देवेंद्रसूरिजी महाराज वगैरह पूर्वाचार्योंकेभी विरुद्ध होकर इस बातमें सर्वथा विपरीत रीतिसे प्रथमइरियावही पीछेकरेमिभंते स्थापन करके जिनाज्ञाके आराधक बनना चाहतेहैं और प्रथम करेमिभंते पीछेइरियावहीको शास्त्रविरुद्ध ठहराकरनिषेधकरतेहैं.अब विचारकरना चाहिये, कि- प्रथमकरेमिभंते पीछेइरियावही स्थापनकरनेवाले जिनाज्ञाके आराधक ठहरतेहैं, या प्रथम इरियावही पीछे करेमि भंते स्थापन करनेवाले जिनाज्ञाके आराधक ठहरतेहैं, यदि-प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवाले जिनाज्ञाके आराधक बनेंगे, तो प्रथम करेमि भंते पीछे इरियावही स्थापन करने वाले प्राचीन सर्व पूर्वाचार्य जिनाज्ञाविरुद्ध मिथ्यात्वकी खोटी प्ररूपणा करनेवाले ठहरेंगे. और यदि प्राचीन सर्व पूर्वाचार्य प्रथम करेमि भंते पीछे इरियावही स्थापन करनेवाले जिनाज्ञाके आराधक सत्यप्ररूपणा करने वाले मानोंगे, तो, उन सर्व पूर्वाचार्योंके विरुद्ध होकर प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवाले जिनाज्ञा विरुद्ध मिथ्यात्वकी खोटी प्ररूपणा करनेवाले ठहर जावेंगे. तथा इस बातमें पाठांतरभी न होनेसे पूर्वापर विरोधी दोनों बातेंभी कभी सत्य ठहर सकतीनहीं. और प्राचीन सर्व गीतार्थ पूर्वाचार्योंकोभी खोटी प्ररूपणा करनेवालेभी कभी ठहरासकतेनहीं. मगर उन्हीं गीतार्थ महाराजोंके विरुद्ध आग्रह करनेवालेही खोटी प्ररूपणा करनेवाले ठहरतेहैं, इसलिये सर्व गीतार्थ पूर्वाचार्योंको जिनाज्ञाके आराधक सत्य प्ररूपणा करनेवाले समझ करके उन सर्व महाराजोंकी आज्ञा मुजब सामायिकमें प्रथम करेमि भंते पीछे इरीयावही मान्य करना और इनके

विरुद्ध प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंतेकी शास्त्र विरुद्ध और पूर्वाचार्योंकी आज्ञाबाहिर कल्पितबातकोछोडदेना यही जिनाज्ञाके आराधकभवभिरु निकटभव्य आत्मार्थियोंकोउचितहै. ज्यादे क्या लिखें.

३९- कितनेकलोग शंका करतेहैं, कि-पौषध, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, ध्यानादि कार्योंमें पहिले इरियावही करनेका कहा है, और सामायिकमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पछिसे इरियावही करनेका कहा है, उसका क्या कारण होना चाहिये ? इसका समाधान यह है कि-पौषध-प्रतिक्रमणादिक कार्य तो आत्माको निर्मलकरनेके हेतुभूत क्रियारूपहैं सो मनकी स्थिरतासे होसकते हैं, इसलिये मनकी स्थिरता करनेकेलिये गमनागमनकी आलोचनारूप इरियावहीकर के पीछे इनकार्योंमें प्रवृत्ति करें तो शांततापूर्वक उपयोग शुद्धरहताहै, इसलिये इनकार्योंमें पहिले इरियावही करनेका कहा है. मगर सामायिकको तो श्रीभगवती-आवश्यकादि आगमोंमें " आया खलु सामाइअं " इत्यादि पाठोंसे सामायिकको खास आत्मा कहाहै, इसलिये आत्माकीस्थापनाकरनेकेलिये और आत्माके साथ कर्मबंधनकेहेतुरूप आतेहुए आश्रवको रोकनेकेलिये प्रथम करेमिभंतेका पच्चख्खाण करनेका कहा है. पहिले आत्माकी स्थापनारूप और आश्रवनिरोधरूप सामायिकका उच्चारण होगया, तो, उसके बादमें पीछे आत्माको निर्मल करनेके लिये स्वाध्याय ध्यानादि कार्य करनेके लिये इरियावही करनेकीआवश्यकताहुई. इसलिये पीछेसे इरियावहीपूर्वक स्वाध्याय, ध्यानादिधर्मकार्यकरनेचाहिये, और आत्माकी स्थापनारूप व आश्रव निरोधरूप जबतक सामायिकके पच्चख्खाण न होंगे, तब तक एकवार तो क्या मगर हजारवार इरियावही करतेही रहेंगे तो भी आश्रवनिरोध बिना निजआत्मगुणकी प्राप्ति कभी नहीं होसकेगी, इसलिये सर्वशास्त्रोंकी आज्ञामुजब पहिले आत्माकी स्थापनारूप सामायिकके पच्चख्खाण करके पीछेसे आत्माकी शुद्धिके लिये इरियावही पूर्वक स्वाध्यायादि धर्मकार्य करने चाहिये. इस प्रकार सामायिकमें प्रथम करेमिभंते कहने संबंधी शास्त्रकारोंके गंभीर आशयको समझे बिना पौषधादि कार्योंकी तरह सामायिकमेंभी प्रथम करेमिभंते का उच्चारण किये पहिलेसेही इरियावही स्थापन करनेका आग्रह करना आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है।

४०- कितनेकमहाशय कहतेहैं, कि-श्रीनवकारमंत्रके पीछे इरिया-

वहीके उपधानकहेहैं,मगर इरियावहीके पहिले करेमिभंतेके उपधान नहींकहेहैं,इसलिये सामायिकमेंभी पहिले इरियावही करना योग्यहै' ऐसा कहनेवालोंको सामायिकके स्वरूप संबंधी शास्त्रकारमहाराजों के अभिप्रायको समझमें नहीं आया मालूम होताहै। क्योंकि देखिये- शास्त्रोंमें सामायिकको आत्मा कहा है, और इरियावही वगैरह क्रियारूपसूत्र कहेहैं,और आत्माके उपधान तो कभी होसकतेनहीं, किंतु आत्माकीशुद्धिरूप क्रियाके उपधान होसकतेहैं. आत्मा तो स्वयं उपधान करनेवालाहै, और उपधान क्रियारूपहैं, सामायिकरूप आत्माके उपधान तो इरियावहीके पहिले या पीछेभी किसी शास्त्रमें नहींकहेहैं, इसलिये आत्माके निजगुणरूप सामायिक संबंधी और इरियावही वगैरह आत्माकी शुद्धिरूप क्रियासंबंधी शास्त्रकार महाराजोंके भावार्थकोसमझेबिनाही पहिले इरियावहीके उपधानकरनेका पाठ देखकर सामायिकमेंभी पहिलेइरियावही स्थापनकरतेहैं, उन्होंकी अज्ञानताहै.

४१- कितनेकआग्रहीलोग नवांगीवृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी के नामसे अथवा उन्होंके शिष्य श्रीपरमानंदसूरिजीके नामसे सामायिकमें पहिलेइरियावही पीछेकरेमिभंते कहनेसंबंधी श्रीअभयदेवसूरिजीकृत 'सामाचारी' ग्रंथका पाठ भोलेजीवोंको बतलातेहैं, सोभी प्रत्यक्ष मिथ्याहै,क्योंकि-देखो श्रीनवांगीवृत्तिकार महाराजने खास 'पंचाशक' सूत्रकीवृत्तिमें सामायिकमें प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही खुलासापूर्वक लिखीहै, सर्व प्राचीन पूर्वाचार्यभी ऐसेही लिखे गयेहैं, यही बात जिनाज्ञानुसार है। इसलिये इन्हीं महाराजने खास 'सामाचारी' ग्रंथमेंभी प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही लिखी थी, उसपाठको निकाल देना और प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते कहनेका पाठ अपनी मति कल्पना मुजब नवीन बनवाकर बडे प्रौढ प्रामाणिकपुरुषोंकेबनाये ग्रंथमें प्रक्षेपकरके भोलेजीवोंकोबतलाकर उन्मार्ग चलाना यह बडाभारीदोषहै, देखिये-कोईभीपूर्वाचार्यमहाराजने सामायिकमें प्रथमइरियावही पीछेकरेमिभंते नहीं लिखी, किंतु प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही सर्व प्राचीन पूर्वाचार्योंने सर्वशास्त्रोंमें लिखीहै. तो फिर श्रीनवांगीवृत्तिकारक जैसे प्रौढ प्रामाणिक सर्वसम्मत यह महाराज सर्व पूर्वाचार्योंके विरुद्ध होकर प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते कैसे लिखेंगे, ऐसा कभी नहीं हो सकता.इसलिये इन महाराजके नामसे प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते करनेका ठहराने वाले प्रत्यक्ष मिथ्यावादी हैं।

४२- औरभी देखो खूब विचारकरो- शास्त्रोंमें विसंवादी कथन करनेवालोंको मिथ्यात्वी कहेहैं, और जैनाचार्य तो अविसंवादीहोतेहैं. इसलिये श्रीनवांगीवृत्तिकारक यह महाराजभी विसंवादीनहींथे. किंतु अविसंवादीथे, इसलिये इन्हीं महाराजके बनाये वृत्ति-प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमेंसे एकही विषयमें पूर्वापर विरोधी विसंवादी वाक्य किसीभी ग्रंथमें किसी जगहभी देखनेमें नहीं आते, इसलिये इन महाराजकी बनाई सामाचारीमेंभी विसंवादी वाक्य नहींहैं, किंतु 'पंचाशकसूत्रवृत्तिके अनुसार प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करने का पाठथा, उसको उडा करके इन महाराजके सत्य कथनके पूर्वापर विरोधी विसंवादीरूप प्रथमइरियावही पीछेकरेमिभंतेकहनेका पाठबनाकर भोलेजीवोंको बतलाकर खोटी प्ररूपणा करनेवालोंकी बडी भारीभूलहै. यह महाराज तो विसंवादी कथन करनेवाले कभी नहीं ठहरसकते,मगर ऐसे महापुरुषोंके नामसे झूठापाठ बनानेवालेही मिथ्यात्वीठहरतेहैं। अबपाठकगणसे मेराइतनाहीकहनाहै,कि-नवांगीवृत्तिकारकने या उन्होंकेशिष्योंने अथवा अन्यकिसीभी जिनाज्ञाकेआराधक पूर्वाचार्य महाराजने किसीभी ग्रंथमें सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते किसी जगहभी नहीं लिखी, व्यर्थ भोले जीवोंको भरमानेका काम करना आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है।

४३- कितनेक श्रीउत्तराध्ययनसूत्रकी बडी टीकाके नामसे सामायिकमें प्रथमइरियावही पछिकरेमिभंते करनेका ठहरातेहैं,सोभी प्रत्यक्ष मिथ्याहै.क्योंकि देखो उत्तराध्ययन सूत्रमें या इनकी बडी टीकामें सामायिक करनेसंबंधी प्रथमइरियावही पीछेकरेमिभंते करनेका कुछभी अधिकारनहींहै.किंतु-२९वें अध्ययनमें "सामाइएणं भंते ! जीवे किं जणेइ ? सावज्जजोग विरइं जणयइ ॥ चउवीसत्थएणं भंते ! जीवे किं जणेइ ? दंसण विसोहिं जणइ ॥

व्याख्या-' सामायिकेन ' उक्तरूपेण सहावद्येन वर्त्तत इति सावद्याः-कर्मबंधनहेतवो योगा-व्यापारास्तेभ्यो विरतिः-उपरमः सावद्ययोग विरतिस्तां जनयति, तद्विरति सहितस्यैव सामायिक संभवात्, न चैवं तुल्यकालत्वेनानयोः कार्यकारण भावासंभव इति वाच्यं, केषुचित्तुल्यकालेष्वपि वृक्षच्छायादिवत्कार्यकारण भावदर्शनाद्, एवं सर्वत्रभावनीयं॥ सामायिकं च प्रतिपत्तुकामेन तत्प्रणेतारःस्तोतव्याः ते च तत्त्वतस्तीर्थकृत एवेति,तत्सूत्रमाह 'चतुर्विंशतिस्तवेन' एतदवसर्पिणी प्रभवतीर्थकृदुत्कीर्तनात्मकेन दर्शनं सम्यक्त्वं तस्याविशुद्धिः

तदुपघातिक कर्मापगमतो निर्मलीभवनं दर्शनविशुद्धस्तां जनयति"

ऐसा कहकर सामान्यतासे सामायिक, चउवीसत्थो,वंदन, प्रतिक्रमण, काउसग्ग आदि कर्तव्योंका फलबतलायाहै.मगर वहां सामायिककरनेकी विधिमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते उच्चारण करनेका नहीं बतलाया. इसलिये उत्तराध्ययन सूत्रवृत्तिके नामसे प्रथम इरियावही पीछेकरेमिभंते स्थापनकरनेवालोंकी वडी भूलहै.

४४-अब आत्मार्थी तत्त्वग्राही पाठकगणसे मेरा यही कहनाहै,कि-श्रीमहानिशीथसूत्रका उद्धार श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजनेकियाहै। श्रीदशवैकालिकसूत्रचूलिकाकी वडी टीकाभी इन्हीं महाराजने बनाया है, तथा आवश्यक सूत्रकी वडी टीकाभी इन्हीं महाराजने बनाया है। श्रावक प्रज्ञप्तिकी टीकाभी इन्हीं महाराजने बनायाहै, अब देखो-आवश्यक बडीटीकामें व श्रावकप्रज्ञप्तिटीकामें सामायिक विधिमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करनेका खुलासापूर्वक पाठ है तथा महानिशीथसूत्रके तीसरेअध्ययनमें उपधान चैत्यवंदनसंबंधी इरियावही करनेका पाठहै, और दशवैकालिक चूलिकाकीटीकामें साधुके गमनागमनसंबंधी इरियावही करके स्वाध्यायादि करनेकापाठहै, इसलिये भिन्न२ अपेक्षावाले इन शास्त्रपाठोंके आपसमें किसीतरहकाभी विसंवाद नहीं है, और विसंवादी शास्त्रोंको व विसंवादी कथन करनेवालोंको शास्त्रोंमें मिथ्यात्वी कहे हैं। इसलिये जैनशास्त्रोंको व पूर्वाचार्योंको अविसंवादी कहनेमें आतेहैं, इसी तरह श्री हरिभद्रसूरिजी महाराजभी अविसंवादी होनेसे इन्हीं महाराजके बनाये ऊपरके सर्व शास्त्रोंको अविसंवादी कहनेमेंआतेहैं, और श्रीआवश्यकसूत्रकी वडी टीका व श्रावकप्रज्ञप्ति टीकामें सामायिक करने संबंधी प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करनेका पाठ मौजूद होने परभी महानिशीथ, दशवैकालिक चूलिकाकी टीकाके भिन्न २ अपेक्षावाले अधूरे २ पाठोंका उलटा २ अर्थकरके शास्त्रकारोंके अभिप्रायविरुद्ध होकर सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेसे ऊपरके शास्त्रपाठोंमें और इन्हीं शास्त्रोंके करनेवाले श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजके वचनोंमें एकही विषय संबंधी आपसमें पूर्वापर विसंवादरूप दूषणआताहै,मगर इन्हीं शास्त्रपाठोंमें व इन्हींमहाराजके कथनमें किसी प्रकारसेभी कभी विसंवादका दूषण नहीं आ सकता. यह तो सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंतेका स्थापन करनेके आग्रह करनेवालोंकीही पूर्ण अज्ञानताहै, कि-ऐसे अविसंवादी आप्त-

शास्त्रोंको व ऐसे शासनप्रभावक गीतार्थ महापुरुषोंको विसंवादीका झूठा कलंक लगानेकाभी भय न करके अपना आग्रहकी प्रत्यक्ष असत्य बातको दृढकरनेके लिये ऐसे २ अनर्थ करते हैं। इसलिये आत्मार्थी भव भिरुयोंको ऐसा असत्य आग्रह छोडकर प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीकरनेकी सत्यबातको श्रद्धापूर्वक अंगीकार करनाही जिनाज्ञानुसार होनेसे श्रेयरूपहै. इसीतरहसे आवश्यक चूर्णि-बृहद् वृत्ति-लघुवृत्ति-पंचाशकचूर्णि-वृत्ति-श्रावकधर्म प्रकरणवृत्ति-योगशास्त्रवृत्ति वगैरह अनेकशास्त्रानुसार सामायिकमें प्रथमकरेमिभंते पीछे इरियावहीकी सत्य बातको निषेध करनेवाले और महानिशीथ-दशवैकालिक-पंचाशक चूर्णि-उत्तराध्ययन-संघाचार भाष्य वृत्ति-धर्मरत्न प्रकरण वृत्ति वगैरह शास्त्रकारमहाराजोंके अपेक्षा विरुद्ध और अधूरे २ पाठोंके नामसे या किसीप्रकारकीभी कुयुक्तिसे सामायिकमें प्रथम इरियावही और पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवाले आगमपंचागीके अनेक शास्त्रपाठोंके उत्थापनकरनेके दोषी बनतेहैं. और खास अपने तपगच्छादिक सर्व गच्छोंके पूर्वाचार्योंकीभी आज्ञालोपने वाले बनते हैं [इसका विशेष खुलासा निर्णय उपरमें देखो] और तपगच्छमें पहिले तो प्रथमकरेमिभंते पीछेइरियावही करतेथे, इसलिये श्रीदेवेंद्रसूरिजी,श्रीकुलमंडनसूरिजी वगैरहोंने अपने२बनाये ग्रंथोंमें प्रथमकरेमिभंते और पीछे इरियावही करनेका खुलासापूर्वक लिखाहै, मगर थोडे समयसे अपने प्राचीन पूर्वाचार्योंके कथन विरुद्ध प्रथम इरियावहीकरनेका आग्रह चल पडा है, मगर जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थियोंको ऐसा आग्रहकरना योग्यनहींहै। देखो-'सेनप्रश्न' में श्रीविजयसेनसूरिजीने सर्व पूर्वाचार्योंके और अपने गच्छकेभी पूर्वाचार्योंके विरुद्धहोकर सामायिकमें प्रथमइरियावही पीछेकरेमिभंते करनेका कहा है,मगर तोभी उन्हींकेही संतानीय अंतेवासी श्रीमानविजयजी और सुप्रसिद्धन्यायाविशारदश्रीयशोविजयजीने 'धर्मसंग्रह'वृत्तिमें आवश्यक चूर्णि-पंचाशकचूर्णि-योगशास्त्रवृत्ति आदि अनेक शास्त्रानुसार प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करनेका खुलासा लिखा हैं, इसी तरहसे आत्मार्थियोंको अपने गच्छका या गुरुकाभी झूठ पक्षपातको त्याग करके प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीकी जिनाज्ञानुसार सत्य बातको आवश्यमेवही ग्रहण करना उचित है

न्यायरत्नजी शांतिविजयजीने महानिशीथ, दशवैकालिकादिक शास्त्रोंके भिन्न २ अपेक्षावाले [illegible] से शास्त्रकारमहारा

अभिप्रायविरुद्धहोकर सामायिकमें प्रथमइरियावही पीछेकरेमिभंते-का स्थापन करनेके लिये 'खरतरगच्छ समीक्षा' में अनेक तरहसे शास्त्रविरुद्ध व कुयुक्तियेंसे अनर्थ किये हैं, उसका खुलासा ऊपरके लेखसे पाठकगण स्वयं विचार लेंगे. इसी तरहसे आनंदसागरजीने 'धर्म संग्रह' की प्रस्तावनामें, चतुरविजयजीने 'संबोधसत्तरिप्रकरण वृत्ति'की टिप्पणिकामें,श्रीकांतिविजयजी अमरविजयजीने 'जैनसिद्धांतसामाचारी'में, धर्मसागरजीने इरियावही पट्त्रिंशिका-प्रवचन परीक्षादिकमें औरभी कोईभी महाशय कोईभी ग्रंथमें सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करनेका निषेधकरके, प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवाले सब शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा करनेवाले उपरके लेखसे समझ लेने चाहिये.

और पर्युषणासंबंधी,तथा छ कल्याणक संबंधीभी न्यायरत्नजीने अनेक शास्त्रविरुद्ध और कुयुक्तियोंके संग्रहसे ऐसे२ ही अनर्थकियेहैं, उन सबका खुलासा समाधान पूर्वक निर्णय इसी ग्रंथमें और इस ग्रंथके प्रथम भागकी भूमिकाके ४७ प्रकरणोंमें और सुबोधिकादिककी २८ भूलोंवाले लेखमें अच्छी तरहसे खुलासा सहित छप चुका है। इसलिये यहां पर फिरसे विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नहींहै, सत्य तत्त्वाभिलाषी पाठक गण वहांसे समझ लेंगे। औरभी न्यायरत्नजीने श्रीअभयदेवसूरिजी संबंधी व तिथि संबंधी जो जो शास्त्र-विरुद्ध बातें लिखी हैं, उन सबका खुलासा श्रीमान् पन्यासजी श्री केशर मुनिजीने 'प्रश्नोत्तरमंजरी' के तीनों भागोंमें अच्छी तरहसे छपवाकर प्रसिद्ध कियाहै, उनके वांचनेसे सब खुलासा हो जावेगा. और मैं भी तीसरे भागकी उद्घोषणामें थोडासा नमूनारूप लिखूंगा तब वहां जैनमुनियोंको रेल विहार निषेध, व व्याख्यानके समय मुहपत्तिका बांधना और देशकालानुसार विशेष लाभ जानकर स्त्री-पुरुषोंकी सभामें साध्वियोंको धर्म शास्त्रका व्याख्यान करना [धर्मका उपदेश देना] वगैरह बातों संबंधीभी खुलासा लिखनेमें आवेगा. पाठक गण वहांसे सर्व निर्णय समझ लेना. इति शुभम्.

विक्रम संवत् १९७८ वैशाख वदी पंचमी बुधवार.

हस्ताक्षर श्रीमान्-उपाध्यायजी श्रीसुमतिसागरजीमहाराजके लघु शिष्य मुनि--मणिसागर. जैन धर्मशाला, खानदेश--धूलिया.

मुनि महाराज श्रीसुमति सागरजीके लघु शिष्य



मुनि श्रीमणिसागरजी इस ग्रन्थके लेखक।

ज्ञाति वीशापोरवाल। वडगांम मारवाड़।

संसारीपक्ष श्रीतपगच्छ दीक्षा श्रीखरतरगच्छ मे

जन्म संवत् १९४३। दीक्षा १९६०।

॥ ओम् ॥

॥ श्रीपञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः ॥

श्रीपर्युषणा निर्णय नामा ग्रंथः प्रारभ्यते

नत्वा श्रीशासनाधीशं, विघ्न व्यूह विदारणं,
पर्युषणादि कार्याणां. निर्णयः क्रियते खलु ॥१॥
आत्मार्थिनाञ्च लाभाय, पाखण्ड पथ शान्तये
वाणी गुरु प्रसादेन, शास्त्रयुक्त्यनुसारतः॥२॥ युग्मम्

विघ्नोंके समूहकोनाश करने वाले शासन नायक श्रीवर्द्धमानस्वामीको नमस्कार करके श्रीसरस्वती देवी तथा श्रीगुरु महाराजके प्रसादसे, शास्त्रोंके प्रमाण पूर्वक तथा युक्तियोंके अनुसार, आत्मार्थि भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकीप्राप्ति रूप लाभके वास्ते और उत्सूत्रपरूपणा रूप पाखण्डमार्गकी शान्तिके लिये श्रीपर्युषणपर्वादि सम्बन्धी कार्यौंका निश्चयके साथ निर्णय करता हूं। सो इस ग्रन्थमें सम्बन्ध तो मुख्य करके अधिक मासके ३० दिनोंकी गिनतीके प्रमाण करनेका है। और दो श्रावण अथवा दो भाद्र पद होनेसे आषाढ़ चौमासी से ५० दिने दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें श्रीपर्युषणपर्वका आराधन करने सम्बन्धी निर्णयरूप कथन करनेका इस ग्रन्थमें मुख्य विषय है और वर्त्तमानकालमें गच्छोंके पक्षपातसे आपसमें जूदी जूदी प्ररूपणाके होनेसे भोलेजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी शुद्ध श्रद्धामें मिथ्यात्वरूप भ्रम पड़ता है, उसीका निवारण करनेके लिये पञ्चाङ्गी प्रमाण पूर्वक युक्ति अनुसार इस ग्रन्थकी रचना करता हूं, सो इसको

अवलोकन करनेसे असत्यको छोड़कर सत्यको ग्रहण करके मोक्षाभिलाषी जन अपने आत्म कल्याणमें उद्यम करें, एही इस ग्रन्थकारका तथा इस ग्रन्थका मुख्य प्रयोजन है। और इस ग्रन्थका अधिकारी तो वही होगा जो कि अपने गच्छ संबंधी परंपराके पक्षपातका कदाग्रह रहित तथा जिनाज्ञा इच्छक और शास्त्रोक्त शुद्ध व्यवहारको अङ्गीकार करनेवाला सम्य-क्त्वधारी मोक्षाभिलाषी, नतु अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी वहुलसंसारी गड्डरीह प्रवाही।

मङ्गलाचरण और सम्बन्ध चतुष्टय कहे वाद सर्वसज्जन पुरुषोंको निवेदन करनेमें आता है कि–वर्त्तमानकालमें संवत् १९६६ के लौकिक पञ्चाङ्गमें दो श्रावण होनेसे श्री-खरतर गच्छादिवाले पञ्चाङ्गी प्रमाण पूर्वक तथा श्रीपूर्वा-चार्यों की आज्ञामुजब आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने दूसरे श्राव-णमें श्रीपर्युषणपर्वका आराधन करते हैं जिन्होंको प्रथम श्रीवल्लभविजयजीने अपनी मति कल्पनासे कोई भी शास्त्रके प्रमाण विना जैनपत्रद्वारा आज्ञा भङ्गका दूषण लगाकरके कुसंपके वृक्षका बीज लगाया तथा प्रत्यक्ष श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें यावत् ८० दिने श्रीपर्युषणपर्वका आराधन करके भी मायावृत्तिसे आप आज्ञाके आराधक बनना चाहा, तथा उन्हींकाही अनुकरण करके दूसरे काशी से श्रीधर्मविजयजीने अपने शिष्य विद्याविजयजीके नामसे 'पर्युषणा विचार' का लेख प्रगट कराया जिसमें भी उत्सूत्र भाषणोंका तथा कुयुक्तियोंका संग्रह करके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे शास्त्रोंके आगे पीछेके पाठोंको छोड़करके विना सम्बन्धके अधूरे अधूरे पाठ लिखकर शास्त्रकार महाराजोंके

अभिप्रायसे विरुद्ध होकरके दूसरे श्रावणमें ५० दिने श्रीपर्युषण पर्वका आराधन करने वालोंपर खूबही आक्षेपोंकी बड़े जोरसे वर्षा करी और पञ्चाङ्गोंके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको उत्थापन किये और जो संपसे धर्मकार्य होते थे जिन्होंमें विघ्नकारक छोटीसी १० पृष्ठकी पुस्तक प्रगट कराके कुसंपके वृक्षको उत्पन्न कराया और तीसरे जैन पत्रवालेने भी इन्होंकेही अनुसार चल करके दुराग्रहके हठसे पर्युषणा विचारके लेखका गुजरातीमें भाषान्तर जैनपत्रके २३ वें अङ्ककी आदिमें प्रगट करके उत्सूत्र भाषणोंके फल विपाक प्राप्त करनेके लिये और गच्छ कदाग्रहके झगड़ेको बढ़ानेके लिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक पुरुषोंको अनेक तरहसे आक्षेपरूप कटुक वचन लिखके कुसंपके वृक्षको बढ़ानेका कारण किया।

इनतीनोंमहाशयोंके इसतरहकेलेखोंको मैंने अवलोकन किये तो जिनाज्ञा विरुद्ध एकान्त अपने गच्छ संबन्धी आग्रहके पक्षपातसे दूसरोंको मिथ्या दूषण लगानेवाले और आत्मार्थि भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकाआराधन करनेमें विघ्न रूप मालूम हुए तब इस विघ्नको दूर करनेकी इच्छाहुई इसलिये मोक्षाभिलाषी जिनाज्ञा इच्छक भव्य जीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी शुद्ध श्रद्धामें दृढ़ करनेके वास्ते और उत्सूत्रभाषक गच्छकदाग्रहियोंको हितशिक्षाके लिये शास्त्रानुसार तथा शास्त्र युक्ति पूर्वक श्रीपर्युषणपर्वका आराधन सम्बन्धी वर्त्तमानिक विषंवादका निर्णय करना उचित समझा सो करके तत्वान्वेषि पुरुषोंको दिखाता हूं :—

श्रीगणधर महाराज कृत श्रीनिशीथ सूत्रमें १, श्रीपूर्वाचार्यजी कृत श्रीनिशीथसूत्रके लघु भाष्यमें २, तथा बृहद्भा-

ष्यमें ३, और श्रीजिनदासगणि महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर कृत श्रीनिशीथसूत्रकी चूर्णिमें ४, श्रीभद्रबाहु स्वामीजी कृत श्रीदशाश्रुत स्कन्ध सूत्रमें ५, श्रीपूर्वाचार्यजी कृत तत्सूत्रकी चूर्णिमें ६, श्रीपार्श्वचंद्रगच्छके श्रीब्रह्मर्षिजी कृत तत्सूत्रकी वृत्तिमें ७, श्रीपूर्वाचार्यजी कृत श्रीवृहत्कल्पसूत्रके लघुभाष्यमें ८, वृहद्भाष्यमें ९, तथा चूर्णिमें १०, और श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी कृत श्रीवृहत्कल्पसूत्रकी वृत्तिमें ११, श्रीसुधर्म्मस्वामीजी कृत श्रीसमवायांगजी सूत्रमें १२, तथा श्रीखरतरगच्छ नायक सुप्रसिद्ध श्रीनवांगीवृत्तिकार श्रीअभयदेव सूरिजी कृत तत्सूत्रकी वृत्तिमें १३, और उक्त महाराज कृत श्रीस्थानांगजीसूत्रकी वृत्तिमें १४, श्रीभद्रबाहुस्वामीजी कृत श्रीकल्पसूत्रमें १५, तथा निर्युक्तिमें १६, और श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत श्रीकल्पसूत्रकी श्रीसंदेहविषौषधि वृत्तिमें १७, तथा निर्युक्तिकी वृत्तिमें १८, और विधिप्रपा नाम श्री समाचारी ग्रन्थमें १९, और श्रीखरतरगच्छके श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत श्रीकल्पसूत्रकी कल्पद्रुमकलिकावृत्तिमें २० तथा श्रीखरतरगच्छके श्रीसमयसुन्दरजी कृत श्रीकल्पकल्पलतावृत्तिमें २१ और उक्त महाराज कृत श्रीसमाचारीशतकनाम ग्रन्थमें २२, श्रीतपगच्छके श्रीकुलमण्डनसूरिजी कृत श्रीकल्पावचूरिमें २३, तथा श्रीतपगच्छके श्रीधर्मसागरजी कृत श्रीकल्पकिरणावली वृत्तिमें २४, और श्रीजयविजयजी कृत श्रीकल्पदीपिकावृत्तिमें २५, और श्रीविनयविजयजी कृत श्रीसुबोधिकावृत्तिमें २६, श्रीसंघविजयजी कृत श्रीकल्पप्रदीपिकावृत्तिमें २७, श्रीविजयविमलगणिजी कृत श्रीगच्छाचारपयन्नाकीवृत्तिमें २८ श्रीअञ्चलगच्छके श्रीउदयसागरजी कृत श्रीकल्पावचूरिरूपवृत्तिमें २९, श्रीखरतर

गच्छके श्रीजिनपतिसूरिजी कृत श्रीसमाचारीग्रन्थमें ३० तथा श्रीसंघपट्टकबृहद्वृत्तिमें ३१ और श्रीहर्षराजजी कृत श्रीसंघपट्टककी लघुवृत्तिमें ३२, और श्रीपूर्वाचार्य्योंके बनाये तीन श्रीकल्पान्तरवाच्योंमें ३५, इत्यादि पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें आषाढ़ चौमासीसे ५० दिन जानेसे अवश्यमेव पर्युषणा करना कहा है उसीकेही अनुसार तथा श्रीपूर्वाचार्य्योंकी आज्ञामुजब वर्त्तमानकालमें दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणमें अथवा दो भाद्रपद होनेसे प्रथम भाद्रपदमें ५० दिने पर्युषणा करनेमें आती है इसी विषयकी पुष्टिके लिये पाठकवर्गको निःसन्देह होनेके वास्ते शास्त्रोंके थोड़ेसे पाठ भी लिख दिखाता हूं।

१ श्रीकल्पसूत्रके पृष्ठ ५३ से ५४ तकका पर्युषणा संबंधी पाठ नीचे लिखे मुजब जानो, यथा—

तेणंकालेणं तेणंसमएणं समणेभगवंमहावीरे वासाणं सवीसइराएमासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥१॥ सेकेणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ समणेभगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ। जउणं पाएणं, अगारीणं अगाराइं, कडियाइं, उक्कंपियाइं, छन्नाइं, लित्ताइं, घट्ठाइं, मट्ठाइं, संधूपियाइं, खाउ दगाइं, खायनिद्धमणाइं, अप्पणो अट्ठाए कडाइं, परिभुत्ताइं, परिणामियाइं भवंति॥ सेतेणट्ठेणं एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥२॥ जहाणं समणेभगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ। तहाणं गणहराविं वासाणं सवीसइ राए मासेवइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति ॥ ३ ॥ जहाणं गणहरावि

वासाणं सवीसइराएमासे जाव पज्जोसविंति। तहाणं गणहरं सीसावि वासाणं जाव पज्जोसविंति॥५॥ जहाणं गणहरसीसा वासाणं जाव पज्जोसविंति। तहाणं थेरा वि वासावासं जाव पज्जोसविंति ॥५॥ जहाणं थेरा वासाण जाव पज्जोसविंति। तहाणं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एएवि-अणं वासाणं जाव पज्जोसविंति।६॥ जहाणं जे इमे अज्ज-त्ताए समणा निग्गंथावि वासाणं सवीसइराए मासे विइ-क्कंते वासवासं पज्जोसविंति। तहाणं अम्हंपि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति॥७॥ जहाणं अम्हंपि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति। तहाणं अम्हेवि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कन्ते वसावासं पज्जोसवेमो। अंतरावियसे कप्पइ नोसे कप्पइ तं रयणिं उवायणावित्तए॥८॥ इत्यादि

भावार्थः—तिसकाल तिससमयके विषे श्रमणभगवान् श्रीमहावीरस्वामी वर्षा संबंधी आषाढ़ चौमासीसे वीश दिन सहित एक मास याने ५० दिन जानेसे वर्षावासमें पर्युषणा करते भये, ॥१॥ यहां पर शिष्य पूछता है कि हेभगवान् किस कारणसे ऐसा कहते हो तब गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि-प्राय करके गृहस्थ लोग भगवान्का महा-त्म्य जान करके इस समय वर्षा बहुत होगी ऐसा विचार करके अपने घरोंको चटाइयोंसे आच्छादित करेंगे, चूनादि से सफेदी करेंगे, घास तृणादिसे उपरमें बंदोवस्त करेंगे, गोबरने लिंपन करेंगे, आसपासमें वाड वगैरहसे जाबता करेंगे, ऊंची नीची भूमीको तोड़कर बराबर करेंगे, पाषाणादिसे घस करके चीकणी करेंगे, मकानोंको धूपादिसे सुगंधयुक्त करेंगे और

अपने घरोंके ऊपरका वर्षा संबंधी पाणी निकलनेके लिये प्रणालिका करेंगे, और सब घरका पानी निकलनेके वास्ते नवीन खाल बनावेंगे, अथवा पहिलेका खाल होवे उसीका सुधारा करेंगे, और उपयोगी सचित वस्तुओंको अचितकरके रखेंगे, इत्यादि अनेक तरहके आरम्भादि कार्य पहिलेसेही अपने लिये करलेवेंगे इसलिये उपरोक्त दोषोंका निमित्त कारण न होने के वास्ते आषाढ़ चौमासीसे १ मास और २० दिन गये बाद भगवान् पर्युषणा करते थे, ॥२॥ जैसे १ मास और २० दिन गयेबाद भगवान् पर्युषणा करते थे तैसेही गणधरमहाराजभी १ मास और २० दिन गयेबाद पर्युषणा करते थे॥३॥ जैसे गणधर महाराज पर्युषणा करतेथे, तैसेही गणधरमहाराजके शिष्य प्रशिष्यादि भी पर्युषणा करते थे ॥४॥ जैसे गणधर महाराजके शिष्यादि पर्युषणा करते थे तैसेही स्थविर भी करते थे ॥५॥ जैसे स्थविर करते थे तैसेही वर्तमानमें श्रमण निर्ग्रन्थ विचरने वाले हैं सो भी उपरोक्त विधिके अनुसार पर्युषणाकरते हैं॥६॥ जैसे वर्तमानमें श्रमण निर्ग्रन्थ पर्युषणा करते हैं तैसेही हमारे आचार्य उपाध्याय ५० दिने पर्युषणा करते हैं ॥७॥ जैसे हमारे आचार्यउपाध्याय ५० दिने पर्युषणा करते हैं तैसेही हमभी आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने पर्युषणा करते हैं जिसमें भी कारण योगे ५० दिन के भीतर पर्युषणा करना कल्पता है परन्तु कारण योगसे ५० वे दिनकी रात्रिकोभी उल्लंघन करना नहीं कल्पता है, याने ५० वें दिनकी रात्रिको उल्लंघन करनेवाले को जिनाज्ञा विरुद्ध दूषणकी प्राप्ति होवे ।

अब देखिये उपरोक्त सुप्रसिद्ध श्रीकल्पसूत्रानुसार दूसरे

श्रावणमें पर्युषणा करनेवालोंको वृथा द्वेषबुद्धिसे आज्ञा-भङ्गका दूषण लगाना और दो श्रावण होते भी आषाढ़ चौमासीसे दो मास ऊपर बीस दिन याने ८० दिने (प्रत्यक्ष पंचाङ्गकी विरुद्ध अपनी मति कल्पनासे) पर्युषणा करके भी आज्ञाके आराधक बनना सो गच्छकदाग्रहि उत्सूत्र भाषण करनेवालोंके सिवाय और कौन होगा सो विवेकी सज्ज-नोंको विचार करना चाहिये । और दो श्रावण होतेभी भाद्रपदमें तथा दो भाद्रपद होनेसे भी दूसरे भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करनेवाले महाशयोंको हर वर्ष पर्युषणा में प्राय करके सब जगह पर बंचाता हुआ मूलमन्त्ररूप उपरोक्त सूत्रपाठको विवेक बुद्धिसे विचारके असत्यको छोड़ कर सत्यको ग्रहण करना चाहिये ।

और अब ऊपरके सब पाठकी सब व्याख्याओंके सबपाठ बहोत विस्तार हो जानेके कारणसे नहीं लिखता हूं परंतु (अन्तरा वियसे कप्पइ नोसे कप्पइ तं रयणिं उवायणा वितए) इस अन्तके पाठकी थोड़ीसी व्याख्याओंके पाठ लिखके पाठक वर्गको विशेष निःसन्देह होनेके लिये लिख दिखलाता हूं ।

२ श्रीखरतरगच्छके श्रीसमयसुन्दरजी कृत श्रीकल्पकल्प-लता वृत्तिके पृष्ठ १११ से ११२ तकका तत्पाठः—

अन्तराावियसेकप्पइ पज्जोसवित्तए। अन्तरापि च अर्वा-गपि कल्पते पर्युषितुं, "नोसेकप्पइ तं रयणिं" परं न कल्पते तां रजनींभाद्रपद शुक्लपञ्चमीं, "उवाइणावित्तएत्ति," अति-क्रमितुं । वसनिवासे इत्यागमिकोधातुः, इह पर्युषणाद्विधा-गृहिज्ञाता गृह्यज्ञाताच, तत्र गृहिणामज्ञातायां वर्षा योग्य

पीठफलकादी प्राप्ते कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावं, स्थापना क्रियते, सा स्थापना आषाढ़पूर्णिमायां, योग्यक्षेत्राभावेतु पञ्च पञ्च दिनवृद्धया यावद्भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीं एकादशसुपर्व तिथिषु क्रियते, गृहि ज्ञातायां तु यस्यां साम्वत्सरिकातिचारालोचनं १, लुञ्चनं २, पर्युषणायां कल्पसूत्राकर्णनं वा कथनं ३, चैत्यपरिपाटी ४, अष्टमंतपः ५, साम्वत्सरिकंचप्रतिक्रमणं क्रियते, ययाचव्रत पर्यायवर्षाणि गण्यंते सा भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यां, युगप्रधान कालकसूर्यादेशाच्चचतुर्थ्यामपि जनप्रकटा कार्या यत्तु अभिवर्द्धितवर्षे दिनविंशत्या पर्युषितव्यं, तत्सिद्धान्तटिप्पनानुसारेण तत्रहि युगमध्येपौषो युगान्तेच आषाढ एव वर्द्धते, तान्येतानि च अधुना न सम्यग् ज्ञायंते अतो दिनपञ्चाशतैव पर्युषितव्यम् ॥

३ और श्रीखरतरगच्छके श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत श्रीकल्पद्रुमकलिकावृत्तिके पृष्ठ २४२से२४३ तकका तत्पाठः—

(सूत्रम्) अन्तरावियसे कप्पइ-इत्यादि, अर्थ-अन्तरापिच अर्वागपि महाकार्यविशेषात् भाद्रपद शुक्लपञ्चमीतःइतःकल्पते पर्युषणापर्वकर्तुं, परं न कल्पते तां रजनीं भाद्रपद शुक्लपञ्चमीं अतिक्रमितुं । पूर्वं उत्सर्गनयः प्रोक्तः अन्तराविय‌से इत्यादिना अपवादनयः प्रोक्तः । एकादशसु पञ्चकेषु कुर्वत्सु आषाढ़ पूर्णिमादिवसे प्रथमं पर्व, एवमग्रे पञ्चभिः पञ्चभिर्दिवसैः एकैकंपर्व, एवं कुर्वतां साधूनां पञ्चाशद्दिनैः एकादश पर्वाणि भवन्ति, एतेषु एकादशपर्वदिवसेषु पर्युषणापर्व कर्त्तव्यं । पर्वसु एकस्मिन्दिने न्यूनेपि कारण विशेषेण पर्युषणा कर्त्तव्या, परं एकादशभ्यः पर्वभ्यः उपरि अधिके एकस्मिन्नपि दिने गते पर्युषणा पर्व न कर्तव्यमुपरिदिनं नोल्लङ्घनीय मित्यर्थः ।

अधिकमासोऽपि गणनीय अधिकमासाभावे तु सरलभाव गणनया आषाढ़चतुर्मासात् पञ्चाशद्दिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमी दिने पर्युषणा पर्व भवति, श्रीकालिकाचार्याणामादेशात् भाद्रपदशुक्लपंचमीतः इतः चतुर्थ्यांक्रियते, भाद्रपदशुक्लपञ्चम्या रात्रिमुल्लङ्घ्य अग्रेपर्युषणा न कल्पते अनादि सिद्धानां तीर्थंकराणां आज्ञया। इदानीमपि चतुर्थ्यां पर्युषणां कुर्वंतः साधवो गीतार्थास्तीर्थंकराज्ञाराधका ज्ञेया ॥

४ और श्रीतपगच्छके श्रीकुलमंडन सूरिजीकृत श्रीकल्पावचूरिके पृष्ठ ११२ में तत्पाठः—

अन्तरा वियसे कप्पइ, अंतरापि च अर्वागपि कल्पते, "पज्जोसवेयव" पर्युषितुं परं "नोसेकप्पइ" न कल्पते "तं रयणिं उवायणा वित्तए" तांरजनीं भाद्रपद शुक्लपञ्चमीं अतिक्रमितुं ॥ उषनिवासे इत्यागमिकोधातुः ॥ इहहि पर्युषणा द्विधा गृहिज्ञाताज्ञातभेदात् तत्र गृहिणामज्ञाता यस्यां वर्षायोग्य पीठ फलकादौ प्राप्ते यत्नेन कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्थापना क्रियते सा आषाढ़पूर्णिमायां, योग्य क्षेत्राभावेतु पंच पंच दिन वृद्ध्या यावद्भाद्रपदसित पंचमीं, साचैकादशसु पर्वतिथिषु, क्रियते, गृहिज्ञाता यस्यां तु सांवत्सरिकातिचारालोचनं, लुञ्चनं, पर्युषणायां कल्पसूत्रकथनं, चैत्यपरिपाटी, अष्टमं, सांवत्सरिकंप्रतिक्रमणंचक्रियते, ययाच व्रतपर्याय वर्षाणि गण्यन्ते, सा नभस्य शुक्लपञ्चम्यां कालकसूर्यादेशाच्चतुर्थ्यामपि जनप्रकटाकार्या, यत्पुनरभिवर्द्धित वर्षे दिनविंशत्या पर्युषितव्यमित्युच्यते, तत्सिद्धांत टिप्पनानुसारेण तत्रहि युगमध्ये पौषो युगान्ते चाषाढ़ एव वर्द्धते नान्येमासास्तानिचअधुना न सम्यग् ज्ञायन्तेऽतो दिन पञ्चाशतैव पर्युषणा सङ्गतेतिवृद्धाः ॥

५ और श्रीतपगच्छके श्रीधर्म्मसागरजी कृत श्रीकल्पकिरणावलीवृत्तिके पृष्ठ २५७ से २५८ तकका तत्पाठ.—

तत्र अन्तरापिच अर्वागपि कल्पते पर्युषितुं परं न कल्पते तां रजनीं भाद्रपद शुक्ल पंचमीं, "उवायणा वित्तएत्ति" अतिक्रमितुं, उषनिवासे इत्यागमिकोधातुः। वम निवास इति गणसंबन्धीवाधातुः। इहहि पर्युषणा द्विविधा गृहि ज्ञाताज्ञातभेदात् तत्र गृहिणामज्ञाता यस्यां, वर्षायोग्य पीठफलकादौ प्राप्ते यत्नेन कल्पोक्तद्रव्य क्षेत्र काल भाव स्थापना क्रियते सा चाषाढ़पूर्णिमायां, योग्यक्षेत्राभावेतु, पंच पंच दिन वृद्धया दशपर्वतिथि क्रमेण यावत् भाद्रपदसितपंचमीमेवेति गृहिज्ञाता तु द्विधा साम्वत्सरिक कृत्यविशिष्टा गृहिज्ञातमात्राच तत्र साम्वत्सरिक कृत्यानि, "सांवत्सरप्रतिक्रान्ति १ र्लुञ्चनं २ चाष्टमन्तपः ३ सर्वार्हद्भक्तिपूजाच ४ सङ्घस्य क्षामणं मिथः ५" एतत्कृत्य विशिष्टा भाद्रपदसितपचम्यां कालकाचार्यादेशाच्चतुर्थ्यामपि जनप्रकटाकार्या, द्वितीयातु अभिवर्द्धितवर्षे चातुर्मासिक दिनादारभ्य विंशत्यादिनैः वयमत्रस्थितास्म इति पृच्छतां गृहस्थानां पुरो वदन्ति सातु गृहिज्ञात मात्रैव, तदपि जैनटिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगान्ते चाषाढ़ एव वर्द्धते नाऽन्येमासाः तच्चाधुना सम्यग्न ज्ञायतेऽतः पंचाशतैवदिनैः पर्युषणासङ्गतेति वृद्धाः॥

६ और श्रीतपगच्छके श्रीजयविजयजी कृत श्रीकल्पदीपिका वृत्तिके पृष्ठ १३० में तत्पाठः—

अन्तराविपसेकप्पइत्ति, अन्तरापि च अर्वागपि कल्पते पर्युषितुं, परं न कल्पते तां रजनीं भाद्रपदशुक्लपंचमीं "उवायणा वित्तएत्ति" अतिक्रमितुं, उषनिवासे इत्यागमि

को धातुः, वस निवास इति गणसंबंधीवाधातुः। इहहि पर्युषणा द्विविधा गृहिज्ञाताज्ञातभेदात् तत्रगृहिणामज्ञाता यस्यां वर्षायोग्य पीठ फलकादौ प्राप्ते कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्थापना क्रियते, साच आषाढ़पूर्णिमायां. योग्यक्षेत्रा-भावे तु पंच पंच दिन वृद्धया दशपर्वतिथि क्रमेण यावत् भाद्र पदसित पंचमीमेवेति। गृहिज्ञाता तु द्विधा सांवत्सरिककृत्य-विशिष्टा गृहिज्ञातमात्रा च तत्र सांवत्सरिक कृत्यानि, "सांव-त्सरिकप्रतिक्रमणं १, लुंचनं २, अष्टमं तपः ३, चैत्यपरिपाटी, संघक्षामणं" एतत्कृत्यविशिष्टा भाद्रपदसित पंचम्यां कालका-चार्यादेशाच्चतुर्थ्यां जनप्रकटा कार्या, द्वितीयातु अभिवर्द्धितवर्षे चातुर्मासिकदिनादारभ्य विंशत्यादिनैः वयमत्रस्थितास्म इति पृच्छतां गृहस्थानां पुरो वदन्ति सातु गृहिज्ञातमात्रव तदपि जैनटिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगांते च आषाढ़ एव वर्द्धते नान्येमासाः तच्चाधुना सम्यग् न ज्ञायते अतः पंचाशतैवदिनैः पर्युषणासङ्गतेति वृद्धाः ॥

७ और श्रीतपगच्छके श्रीविनयविजयजी कृत श्रीसुख-बोधिकावृत्तिके पृष्ठ १४६ में तथाच तत्पाठः—

अंतरावियसेकप्पइ, अंतरापिचअर्वागपि कल्पते पर्युषितुं परं न कल्पते तां रात्रिं भाद्रपदशुक्लपंचमीं, "उवायणा वित्तएत्ति" अतिक्रमितुं, तत्र परिसामस्त्येन उषणं वसनं पर्युषणा, साद्विधा गृहस्थैर्ज्ञाता गृहस्थैरज्ञाताच, तत्र गृहस्थैरज्ञाता यस्यां वर्षायोग्य पीठफलकादौ प्राप्ते कल्पोक्त-द्रव्य क्षेत्र काल भाव स्थापना क्रियते साचाषाढ़पूर्णिमायां, योग्य क्षेत्राभावेतु पंच पंच दिन वृद्धया दशपर्वतिथि क्रमेण यावत् भाद्र पद सितपंचम्याम्, एवं गृहिज्ञाता तु द्विधा

साम्वत्सरिककृत्याविशिष्टा गृहिज्ञातमात्राच, तत्र साम्व-त्सरिककृत्यानि "सांवत्सर प्रतिक्रांति १ लुंञ्चनं २ चाष्ट-मंतपः ३ सर्व्वार्हद्भक्तिपूजाच ४ संघस्यक्षामणं मिथः ५ ॥ १ ॥" एतत्कृत्यविशिष्टा भाद्रपदसित पंचम्यामेव कालिकाचार्या-देशाच्चतुर्थ्यामपिकार्या, केवलं गृहिज्ञातातु सा यद् अभि-वर्द्धितवर्षे चातुर्मासिकदिनादारभ्य विंशत्यादिनैर्वयमत्रस्थिता-स्मइति पृच्छतां गृहस्थानां पुरोवदंति तदपि जैनटिप्पनका-नुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगांतेचाषाढएव वर्द्धते नान्येमासास्तट्टिप्पनकन्तु अधुनासम्यग् न ज्ञायते अतः पंचाशतैवदिनैः पर्युषणायुक्तेतिवृद्धाः ॥

उपरोक्त श्रीखरतरगच्छ तथा श्रीतपगच्छ उन दोनों गच्छ-वालोंके छ पाठोंका संक्षिप्त भावार्थः—अंतरा वियसे कप्पइ। अन्तरापिच अर्वागपि कल्पते पर्युषितुं, इत्यादि कहनेसे-जो आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने पर्युषणा करनेमें आती है जिसमें कारण योगे ५० दिनके अंदर ४९ वे दिन पर्युषणा करना कल्पता है परन्तु ५० वे दिनकी जो भाद्रपद शुक्लपंचमीकी रात्रिहै उसीको उल्लंघन करना नहीं कल्पता है और उषधातुसे उषणा बनता है तथा परिउपसर्ग लगनेसे पर्युषणा बन जाता है सो उषधातु निवास अर्थमें वर्तती है अथवा गण संबंधी वस धातु भी निवासार्थमें वर्तती है और ग्रामानुग्राम विहार करनेका निवारण करके सर्वथा प्रकारसे वर्षाकाले एकस्थानमें निवास करना सो पर्युषणा कही जाती है वो पर्युषणा इहां दो प्रकारकी है गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई तथा गृहस्थी लोगोंकी नहीं जानीहुई तिसमें गृहस्थीलोगों की नहीं जानी हुई पर्युषणा जिसमें वर्षाकालके उचित

पाट पाटलादि द्रव्योंका योग बननेसे यत्न करके शास्त्रोक्त विधिसे द्रव्य क्षेत्र काल और भावकी स्थापना करनी जिसमें उपयोगी वस्तुओंका संग्रहसो द्रव्य स्थापना, और विहारका निषेध परन्तु आहारादि कारणसे मर्यादा पूर्वक जानेका नियम सो क्षेत्रस्थापना, और वर्षाकालमें जघन्यसे ७० दिन तक तथा मध्यमसे १२० दिन तक और उत्कृष्टसे १८० दिन तक एक स्थानमें निवास करना सो कालस्थापना, और रागादि कर्मबन्धके हेतुओंका निवारण करके इरियासमिति आदिका उपयोग पूर्वक वर्ताव करना सो भावस्थापना, इस तरहसे वो द्रव्यादि चतुर्विध स्थापना आषाढ़ पूर्णिमामें करनी परन्तु योग्य क्षेत्रके अभावसें तो आषाढ़ पूर्णिमासे पांच पांच दिनकी वृद्धि करके दशपंचक तिथियोंमें क्रमसें यावत् भाद्रपद सुदी पंचमी तक, आषाढ़ पूर्णिमासे दशपंचकमें परन्तु आषाढ़ सुदी १० मी के निवासकी गिनतीसे एकादशपंचकोंमें जहां द्रव्यादिका योग मिले वहां पूर्वोक्त कहे वैसे दोषोंका निमित्त कारण न होनेके लिये अज्ञात पर्युषणा स्थापन करनी और आषाढ़ चौमासीसे ५०दिने गृहस्थी लोगोंकीजानी हुई पर्युषणा जिसमें वार्षिकातिचारोंकी आलोचना करनी, केशोंकालुंचन करना,श्रीकल्पसूत्रकासुनना वा पठनकरना, अष्टमतप करना, चैत्यपरिपाटी (जिन मन्दिरोमें दर्शनकरने) और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना, और सर्व संघकोक्षामणे करना और दीक्षापर्यायके वर्षोंकी गिनती करना सो ज्ञातपर्युषणा भाद्रपदशुक्ल पंचमीमें होती थी, परन्तु युग प्रधान श्रीकालकाचार्य्यजीमहाराजके आदेशसे भाद्रशुक्लचतुर्थीके दिन करनेमें आती है। सो गीतार्थों की आचरणा होनेसे श्रीजिनाज्ञा

मुजबही जाननी सो भाद्र पदकी पर्युषणा मासवृद्धिके अभावसे चन्द्रसंवत्सर सबधिनी जाननी । और मासवृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्सरमें तो आषाढ़चौमासीसे बीस दिन करके याने श्रावणशुक्लपंचमीको गृहस्थी लोगोकी जानी हुई पर्युषणा करनेमें आती थी सो तो जैन सिद्धान्त का टिप्पणानुसार युगके मध्यमें पौषमास और युगके अन्तमें आषाढ़मासकी वृद्धि होती थी परन्तु और किसी भी मासकी वृद्धिका अभाव था। वो टिप्पणा तो अभी इस कालमें अच्छी तरहसे देखनेमें नहीं आता है इसलिये मासवृद्धि हो तो भी ५० दिनोंसे पर्युषणा करनी योग्य है इस तरहसे वृद्धाचार्य कहते हैं अर्थात् मासवृद्धि होनेसे जैनपंचांगानुसार बीस दिने श्रावणमें पर्युषणा करनेमें आती थी परन्तु जैनपंचांगके अभावसे लौकिक पंचांगानुसार मासवृद्धि दो श्रावण अथवा दो भाद्रपद होतो भी उसीकी गिनती पूर्बक ५० दिने दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करनेकी प्राचीनाचार्योंकी आज्ञा है इसी ही कारणसे श्रीलक्ष्मीवल्लभ गणिजीने अधिकमासकी गिनती पूर्वक ५० दिने पर्यूषणा करनेका खुलासा लिखा है। उसी मुजब आत्मार्थियोंको पक्षपात छोड़कर वर्तना चाहिये ।

और श्रीधर्मसागरजी श्रीजयविजयजी श्रीविनयविजयजी इन तीनों महाशयोंके बनाये (श्रीकल्पकिरणावली श्रीकल्प दीपिका श्रीसुखबोधिका इन तीनों वृत्तियोके) पर्युषणा सम्बन्धी पाठ ऊपरसें लिखे हैं उसीमें इन तीनों महाशयोंने, ज्ञात याने गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई पर्युषणा दो प्रकारकी लिखी है और अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ चौमा-

मीसे बीस दिने पर्युषणा करनेमें आती थी उसीको वार्षिक कृत्योंरहित केवल गृहस्थीलोगोंके कहने मात्रही ठहराई है सो कदापि नहीं बन सकता है क्योंकि अधिक मास होनेसे बीस दिनकी पर्युषणाकोही जैन पंचाङ्गके अभावसे अधिक मास होतो भी ५० दिने पर्युषणा पूर्वाचार्योंने ठहराई है इस लिये बीस दिनकी पर्युषणा कहनेमात्रही ठहरानेसे ५० दिनकी पर्युषणा भी कहनेमात्रही ठहर जावेगी और वार्षिक कृत्य उसी दिन करनेका नहीं बनेगा इसलिये जैसे मासवृद्धिके अभावसे ५० दिने ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य होते हैं तैसेही मासवृद्धि होनेसे बीस दिनकी ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य मानने चाहिये क्योंकि ज्ञात पर्युषणा एकही प्रकारकी शास्त्रोंमें लिखी है परन्तु बीस दिने ज्ञात पर्युषणा करके फिर आगे वार्षिक कृत्य करे ऐसा तो किसी भी शास्त्रमें नहीं लिखा है इसलिये जहां ज्ञात पर्युषणा वहांही वार्षिक कृत्य शास्त्रोक्त युक्ति पूर्वक सिद्ध होते हैं इसका विशेष विस्तार इनही तीनों महाशयोंके लिखे (अधिक मासकी गिनती निषेध सम्बन्धी पूर्वापरविरोधि) लेखोंकी आगे समीक्षा होगी वहां लिखनेमें आवेगा।

अब देखिये बड़ेही आश्चर्यकीबातहै कि श्रीतपगच्छके इतने विद्वान् मुनीमंडली वगैरह महाशय उपरोक्त व्याख्याओंको हर वर्ष पर्युषणाके व्याख्यानमें बांचते हैं इसलिये उपरोक्त पाठार्थोंको भी जानते हैं तथापि मिथ्या हठवादसे भोले जीवोंको कदाग्रहमें गेरनेके लिये पौष अथवा आषाढ़के अधिक होनेसे उसीकी गिनती पूर्वक जैनपंचांगानुसार प्राचीनकालमें आषाढ चौमासीसे बीस दिने श्रावण सुदीमें

पर्युषणा होती थी परन्तु जैन पंचांगके अभावसे वर्त्तमान-कालमेंभी लौकिक पंचाङ्गानुसार अधिक मास होनेसे उसीकी गिनती पूर्वक ५० दिने दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रमें पर्युषणा करनेकी पूर्वाचार्योंकी मर्यादा है ऐसा उपरोक्त पाठार्थोंसे खुलासा दिखता है तथापि उपरोक्त पाठार्थोंका भावार्थ बदला करके मासवृद्धिके अभावसे ५० दिने भाद्र-पदमें पर्युषणा कही है उसीकोही वर्त्तमानमें मासवृद्धि दो श्रावण होते भी ८० दिने जिनाज्ञा विरुद्धका भय न करते हुए भाद्रपदमें ठहरानेका वृथा आग्रह करते हैं सो क्या लाभ प्राप्त करेंगे। तथा उपरोक्त व्याख्याओंमें "अभिवर्द्धित वर्षे" इस शब्दसे श्रीखरतरगच्छके श्रीसमय सुंदरजी तथा श्रीतपगच्छके श्रीकुलमंडनसूरिजी श्रीधर्म-सागरजी श्रीजयविजयजी श्रीविनयविजयजी इन सबी महाशयोंके लिखे वाक्यसे अधिक मासकी गिनती प्रत्यक्षपने सिद्ध है इसलिये अधिकमासकी गिनती निषेध भी नहीं हो सकती है तथापि कोई निषेध करेगा तो उत्सूत्र भाषणरूप होनेसे श्रीअनंत तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी और अपनेही गच्छके पूर्वजोंकी आज्ञा उल्लंघनका दूषण लगेगा क्योंकि श्रीअनंत तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वा चार्योंने तथा श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छादिके पूर्व-जोंने अधिकमासके दिनोंकी गिनती पूर्वक तेरह मासोंका अभिवर्द्धितसंवत्सर कहाहै इसका विस्तार आगे शास्त्रोंके पाठार्थों सहित तथा युक्ति पूर्वक लिखनेमें आवेगा—

और भी श्रीपार्श्वचंद्रगच्छके श्रीब्रह्मर्षिजी कृत श्रीदशाश्रुत स्कन्ध सूत्रकी वृत्तिके पृष्ठ ११२ से ११५ तकका पर्युषणा स-म्बन्धी पाठ यहां दिखाता हूं तथाच तत्पाठ :—

तेणं कालेणं तेणं समएणमित्यादि। व्याख्यातार्थः वासा-णान्ति आषाढ़चातुर्मासिक दिनादारभ्य सविंशति रात्रेमासे व्यतिक्रान्ते भगवान् "पज्जोसवेइति" पर्युषणामकार्षीत्। परिसामस्त्येन उषणं निवासः। इत्युक्तेशिष्यःप्रश्नयितुमाह सेकेणट्ठेणमित्यादि प्रश्नवाक्यंसुबोधं गुरुराह। जउणमित्यादि निर्वद्धवाक्यं यतः णंप्राग्वत् पएणमित्यादि अगारिणां गृह-स्थानां, अगाराणि गृहाणिः, कडियाइंत्ति कठयुक्तानि, उक्कं-पियाइं-धवलितानि, छन्नाइं-तृणादिभिः, लित्ताइं-लिप्तानि छगणाद्यैःक्वचित् गुत्ताइंत्ति पाठस्तत्र गुप्तानि वृत्तिकरण द्वार-पिधानादिभिः, घट्ठाइं-विषमभूमिभंजनात्, मट्ठाइंश्लक्ष्णीकृतानि क्वचित्सम ट्ठाइंतिपाठ स्तत्र समन्तात् मृष्टानि मसृणीकृतानि, संधूपियाइंति-सौगन्ध्यापादनार्थं धूपनैर्वासितानि, खातो-दगाइं कृतप्रणालीरूपजलमार्गाणि, खायनिद्धमणाइं-निद्धमणं खालं गृहात्सलिलं येन निर्गच्छति, अप्पणोअट्ठाए आत्मार्थं स्वार्थं गृहस्थैः कृतानि परिकर्मितानि करोति, काएइं करो-तीत्यादि विविधपरिकर्मार्थत्वात्, परिभुतानि तैः स्वयं परिभुज्यमानत्वात्, अतएव परिणामितानि अचित्तीकृतानि भवन्ति, ततः सविंशतिरात्रे मासे गते अमी अधिकरणदोषा न भवन्ति। यदि पुनः प्रथममेव साधवः स्थितास्म इति ब्रयुस्तदा ते प्रव्रजितानामवस्थानेन सुभिक्षं सम्भाव्यं गृहिणास्तप्तायो गोलकल्पा दंताल क्षेत्रकर्षण, गृहच्छादनादीनि कुर्युः, तथा चाधिकरणदोषा अतः पञ्चाशद्दिनैः स्थिता स्म इति वाच्यं, गणहराविति गणधरापि एवमेवाकार्षुः, अज्जत्ताए इति अद्य-कालीना आर्य्यतया व्रतस्थविरा इत्येके, अम्हंपित्ति अस्माक-मपि आचार्य्योपाध्याया, अम्हेविति वयमपीत्यर्थः॥ अन्तरा-

वियसे कप्पइ इत्यादि अन्तरापि च अर्वागपि कल्पते युज्यते पर्यु षितुं परं न कल्पते तां रजनीं भाद्रपदशुक्लपञ्चमीं उवायणा वित्तएति अतिक्रमितुं।उष निवासे इत्यागमिको धातुः पर्युषितुं वस्तुमिति सूत्रार्थः॥ अत्र अन्तरा वियसे कप्पइ इति कथनात् पर्युषणा द्विधा सूचिता, गृहिज्ञाताज्ञातभेदात्। तत्र गृहिणामज्ञाता यस्यां, वर्षायोग्य पीठफलकादौ प्राप्ते यत्नेन कल्पोक्त-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव स्थापना क्रियते, सा आषाढ़ शुक्लपौर्णमास्यां, योग्यक्षेत्राभावेतु पञ्च पञ्च दिन वृद्धया यावद्भाद्रपदसितपञ्चम्यां सा चैकादशसु पर्वतिथिषु क्रियते। गृहिज्ञाता तु यस्यां सांवत्सरिकातिचारालोचनं, लुंचनं, पर्युषणा कल्पसूत्राकर्णनं, चैत्यपरिपाटी, अष्टमं, सांवत्सरिकंप्रतिक्रमणं च क्रियते, यया च व्रतपर्य्याय वर्षाणि गण्यन्ते सा नभस्य शुक्लपञ्चम्यां, एतावता यदा भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यां सांवत्सरिकप्रतिक्रमणं कृतं ततः ऊर्द्ध्वन्तु न कल्पते विहर्तुं, ततस्तदवधि विहर्त्तव्यं। अन्तरापिचैकादशसु पर्वतिथिषु क्रियते निवासो नतु प्रतिक्रमणं। कैश्चिदुच्यते यत्र वासस्तत्रैव प्रतिक्रमणमपि देयं,यदियत्रैव वासस्तत्रैव प्रतिक्रमणंचेत्तर्ह्याषाढ़शुक्ल पञ्चदश्यामपि तत्कर्त्तव्यं न चैवं दृष्टमिष्टं वा, ततो नियत निवासएव वासोयुक्त इति परमार्थः। अमुमेवार्थं श्रीसुधर्मस्वामिव्यासः प्रतिपादयति। श्रीसमवायांगे यथा समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कन्ते सत्तरिएहिंराइंदिएहिंसेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइत्ति। व्याख्यातु समणे इत्यादि वर्षाणां चातुर्मासप्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविंशतिदिवसाधिके मासे व्यतिक्रान्ते पञ्चाशतिदिनेष्वतीतेष्वित्यर्थः। सप्तत्यां च रात्रि दिवसेषु शेषेषु संवत्सरप्रतिक्रम-

वरूप धर्म्मदिवसे भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामित्यर्थः। वर्षास्वावासो वर्षावासः वर्षावस्थानं 'पज्जोसवेइत्ति' परिवसति सर्वथा करोति पञ्चाशद्दिनेषु व्यतिक्रान्तेषु तथाविध वसत्यभावादि कारणे स्थानान्तरमप्याश्रयति, पर भाद्रपदशुक्लपञ्चमयां तु वृक्षमूलादावपि निवसतीति हृदयं। चन्द्रसंवत्सरस्यैवायं नियमः नाभिवर्द्धितस्येत्यादि। तथाहि निर्युक्तिकारः—एत्थउ पणगं पणगंकारणीयं जाव सवीसइमासो॥ सुद्धदसमी ठियाण-आसाढ़ीपुण्णिमो सरणं॥१॥ इयसत्तरी जहण्णा असीइ णउइं दसुत्तर सयंच॥ जइ वास मग्गसिरे दसरायातिण्णि उक्कोसा॥२॥ काउण मासकप्पं तत्थेव ठियाण जइवास मग्गसिरे सालंबणाणं छम्मासितो जेठोग्गहोहोइ॥३॥ सुगमाश्चेमा नवरं-माद्यगाथा द्वयस्य चूर्णिः॥ आसाढ़पुण्णिमाए ठियाण जति तण डगलादीणि गहियाणि पज्जोसवणाकप्पो ण कहितो तो सावणबहुल पञ्चमीए ध्वज्जोसवेंति। असति खेत्ते सोवणबहुल-दसमीए। असति खेते सावणबहुलपण्णरसीए एवं पञ्च पञ्च उस्सारं तेणं जाव असतिखेते भद्दवयसुद्धपञ्चमीए। अतोपरेण ण वट्टति अतिकमितुं आसाढ़पुण्णिमा तो आढ़त्तं मग्गंताणं जाव भद्दवय जोण्हस्स पञ्चमीए एत्थन्तरे जतिवासखेत्तं ण लद्धं ताहे रुक्खसहेट्ठ ठितो तोवि पज्जोसवेयव्व एतेसु पव्वेसु जहालंभे पज्जोसवेयव्वमिति अपव्वे ण वट्टति अत्र पूर्वोक्तानि एकादश-पर्व्वाणि अन्यानि तु वसतिमाश्रित्य अपर्व्वाणि ज्ञेयानि संवत्सरप्रतिक्रमणं तु भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामेवेति द्रव्य क्षेत्र काल भाव स्थापना तु सम्प्रत्यध्ययने दर्शितैवेति न पुनरुच्यते ततएवावसेया। नवरं कल्पमाश्रित्य जघन्यतो नभस्य सितपञ्चम्यारारभ्य कार्त्तिकचातुर्मासंयावत् सप्ततिदिनमानं एतावता

यदा स्मृत्या अहोरात्रेण चातुर्मासिकंप्रतिक्रमणं विहितं तदनन्तरं प्रत्यूषे विहर्त्तव्यं कारणान्तराभावे। तत्सद्भावे तु मार्गशीर्षेणापि सह आषाढ़ मासेनापि च सह षण्मासा इति ; यत् पुनरभिवर्द्धितवर्षे दिन विंशत्या पर्युषितव्यमिति, उच्यते तत्सिद्धान्त टिप्पनानुसारेण तत्र हि प्रायो युगमध्ये पौषो युगान्ते चाषाढ़एववर्द्धते तानि च नाधुना सम्यग् ज्ञायन्ते अतो लौकिकटिप्पनानुसारेण यो मासो यत्र वर्द्धते स तत्रैव गणयितव्यः नान्याकल्पनाकार्य्या दृष्ट परित्यज्याऽदृष्टकल्पनानसङ्गता आम्नाया ऽपरिज्ञानात्तु कल्पनापि न निश्चयितव्येति साम्प्रतं तु कालकाचार्य्याचरणाच्चतुर्थ्यामपि पर्युषणां विदधति इत्यादि ।

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीसमवायाङ्गजी यथा तद्वृत्ति और श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रकी निर्युक्ति तथा उसीकी चूर्णिके पाठोके प्रमाण पूर्वक दिनोकी गिनतीसे आषाढ़ चौमासीसे ५० वे दिन मासवृद्धिके अभावसे चन्द्रसंवत्सरमें निश्चय निवास पूर्वक ज्ञात पर्युषणामे सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करनेका प्रगटपने खुलासे दिखाया है और योग्य क्षेत्रके अभावसे ५० वें दिनकी रात्रिको भी उल्लंघन न करते हुए जंगलमे वृक्ष नीचे पर्युषणा करलेनेका भी खुलासा लिखाहै और चन्द्रसंवत्सरमे ५० दिने पर्युषणा करनेसे कार्त्तिक तक स्वभावसेही ७० दिन रहते है सो जघन्यकालावग्रह कहा जाता है और प्राचीनकालमें जैन पचाङ्गानुसार पौष वा आषाढ़की वृद्धि होनेसे अभिवर्द्धितसंवत्सरमे आषाढ़ चौमासीसे वीस दिने श्रावण सुदीमें ज्ञात पर्युषणा करनेमें आती थी तब भी पर्युषणाके पिछाड़ी कार्त्तिक तक स्वभावसेही

१०० दिन रहते थे इसलिये वर्त्तमानमें मास वृद्धि दो श्रावणादि होते भी पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रखनेका आग्रह करना सो अज्ञानतासे प्रत्यक्ष अनुचित है और जैन पंचाङ्ग इस कालमें अच्छी तरहसे नहीं जाना जाता है इसलिये उसीके अभावसे लौकिक पंचाङ्गानुसार जिस महीनेकी जिस जगह वृद्धि होवे उसीकोही उसी जगह गिनना चाहिये परन्तु अन्य कल्पना नहीं करनी, अर्थात् जैन पञ्चाङ्गके अभावसे लौकिक पञ्चाङ्गानुसार पौष, आषाढ़के सिवाय चैत्र, श्रावणादि मासोंके वृद्धिकी गिनती निषेध करनेके लिये गच्छाग्रहसे अपनी मति कल्पना करके अन्यान्य कल्पनायें भी नहीं करनी चाहिये क्योंकि लौकिक पंचाङ्गानुसार चैत्र, श्रावणादि मासोंकी वृद्धि होनेका प्रत्यक्ष प्रमाणको छोड़ करके पौष आषाढ़की वृद्धि होनेवाला जैन पंचाङ्ग वर्त्तमानमें प्रचलित नहीं होते भी उसी सम्बन्धी मास वृद्धिका अप्रत्यक्ष प्रमाणको ग्रहण करनेका आग्रह करना सो भी योग्य नहीं है क्योंकि जैन पचाङ्गके अभावसे लौकिक पंचाङ्गानुसार वर्ताव करते भी उसी मुजब मास वृद्धिकी गिनती नहीं करना ऐसा कोई भी शास्त्रका प्रमाण नहीं होनेसे गच्छाग्रहकी युक्ति रहित कल्पना भी मान्य नहीं हो सकती है और आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करना सो तो शास्त्रोक्त प्रमाण पूर्वक तथा युक्ति सहित प्रसिद्ध न्यायकी बात है।

और अब प्राचीनकालमें जैन पंचाङ्गानुसार पर्युषणा की मर्यादावाला एक पाठ वांचक वर्गको ज्ञात होनेके लिये दिखाता हूं श्रीचैत्रवालगच्छके श्रीजगच्चंद्र सूरिजीकी परंपरामें

श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्ति सूरिजी कृत श्रीबृहत्कल्पसूत्रकी वृत्तिका तीसरा खण्डका तीसरा उद्देशाके पृष्ठ ५८ से ५९ तकका पाठ नीचे मुजब जानो, यथा—

अथ यस्मिन् काले वर्षावासे स्थातव्यं यावन्तंवा कालं येन विधिना तदेतदुपदर्शयति । आसाढ़पुण्णिमाए वासावाससु होति अतिगमणं मग्गसिरबहुल दसमीउ जावएक्कंमि खेत्तंमि ॥ आषाढ़पूर्णिमायां वर्षावास प्रयोग्य क्षेत्रे गमनं प्रवेशः कर्त्तव्यं भवति तत्र चापवादतो मार्गशीर्ष बहुलदशमी यावदेकत्र क्षेत्रे वस्तव्यं एतच्च चिक्खिल्ल वर्षादिकं वक्ष्यमाणं कारणमङ्गीकृत्योक्तं, उत्सर्गतस्तु कार्त्तिकपूर्णिमायां निर्गन्तव्यं इदमेव भावयति ॥ बाहिट्ठिया वसभेहिं खेत्तंगाहित्तु वास पाउग्गं कप्पंकथेतुट्ठवणा सावणबहुलस्स पञ्चाहे ॥ यत्राषाढ़मासकल्पं कृतस्तत्रान्यत्र वा प्रत्यासन्नग्रामेस्थिता वर्षावासयोग्यक्षेत्रेवृषभासाधुसामाचारीं ग्राहयन्ति, तेच वृषभा वर्षा प्रयोग्यं संस्तारकं तृण डगल छार मल्लकादिकमुपधिं गृह्णन्ति, तत आषाढ़पूर्णिमायां प्रविष्टाः प्रतिपदमारभ्य पञ्चभिरहोभिः पर्युषणा कल्पं कथयित्वा श्रावण बहुल पञ्चम्यां वर्षाकाले सामाचार्याःस्थापनां कुर्वन्ति पर्युषयन्तीत्यर्थः॥ इत्थय अणभिग्गहिय वीसतिरायं सवीसइ मासं तेण परमभिग्गहियं गाहिणायं कत्तिओजाव॥ अत्रेत्ति श्रावण बहुल पञ्चम्यादौ आत्मना पर्युषितेऽपि अनभिग्रहीतमनवधारितं गृहस्थानां पुरतः कर्त्तव्यं किमुक्तं भवति यदि गृहस्थाः पृच्छेयुरार्यायूयमत्र वर्षाकाले स्थितावा न वेति एवं पृष्टे सति स्थितावयमत्रेति सावधारणं न कर्त्तव्यं, किन्तु तत्संदिग्धं, यथा नाद्यापि निश्चितः स्थिता अस्थिता श्चेति, इत्थमनभिगृहीतं कियन्तं कालं वक्तव्यं उच्यते

यद्यभिवर्द्धितो सौ संवत्सरस्ततो विंशतिरात्रि दिनानि, अथ चान्द्रोसौ ततः स विंशतिरात्रं मासं यावदनभिगृहीतं कर्त्तव्यं, तेण विभक्ति व्यत्यया ततः परं विंशति रात्र मासा च्चोर्द्ध्वमभिगृहीतं निश्चितं कर्त्तव्यं गृहिज्ञातञ्च गृहस्थानां पृच्छतां ज्ञापना कर्त्तव्या, यथा वयमत्र वर्षाकालेस्थिता एतच्च गृहिज्ञातं कार्त्तिकमासं यावत् कर्तव्यं किं पुनः कारणम् कियति काले व्यतीत एव गृहिज्ञातं क्रियते नार्वागित्यत्रोच्यते ॥ असिवाइ कारणेहिं अहवा वासं ण सुट्ठु आरद्धं अभिवट्ढियंमि वीसा इयरेसु सवीसइ मासो ॥ कदाचित्तत्क्षेत्रे अशिवं भवेत् आदिशब्दात् राजदुष्टादिकं वा भयमुपजायेत एवमादिभिः कारणै, अथवा तत्र क्षेत्रे न सुष्ठु वर्षं वर्षितुमारब्धं येन धान्यनिष्पत्तिरुपजायते ततश्च प्रथममेव स्थिता वयमित्युक्ते पश्चादशिवादि कारणे समुपस्थिते यदि गच्छन्ति ततो लोको ब्रूयात् अहो एते आत्मानं सर्वज्ञ पुत्र तयाख्यापयन्ति परं न किमपि जानन्ति मृषावादं वा भाषन्ते स्थिता स्म इति भणित्वा सम्प्रति गच्छन्तीति । अथाशिवादि कारणेषु सञ्जातेषु अपि न गच्छंति तत आज्ञाऽतिक्रमणादि दोषा अपिच स्थिता स्म इत्युक्ते गृहस्थाश्चिन्तयेयुरवश्यं वर्षं भविष्यति येनेति वर्षा रात्रमत्र स्थिताः ततो धान्यंविक्रीणीयुः गृहं वाच्छादयेयुः हलादीनि वा स्थापयेयुः यतएव मतो अभिवर्द्धितवर्षे विंशतिरात्रे गते इतरेषु च त्रिषु चन्द्रसम्वत्सरेषु सविंशतिरात्रे मासे गते गृहिज्ञातं कुर्वन्ति ॥ एत्थय पणगं पणगं कारणीयं, जाव सवीसइ मासो, सुद्ध दसमी ठियाण, आसाढीपुस्सिमोसरणं ॥ अत्रेति आषाढपूर्णिमायां स्थिताः पञ्चाहं यावदेव संस्तारकं डगलादि गृह्णन्ति

रात्री च पर्युषणाकल्पं कथयन्ति ततः श्रावण बहुलपञ्चम्यां पर्युषणां कुर्वन्ति, अथाषाढ़पूर्णिमायां क्षेत्रं न प्राप्तास्तत एवमेव पञ्चरात्रं वर्षावास प्रयोग्यमुपधिं गृहीत्वा पर्युषणा कल्पं च कथयित्वा श्रावणबहुलदशम्यां पर्युषणयन्ति एवं कारणेन रात्रि दिवानां पंचकं पंचकं वर्द्धयता तावत्स्थेयं यावत् सविंशति रात्रो मासः पूर्णः। अथवा ते आषाढ़शुद्ध दशम्यामेव वर्षाक्षेत्रे स्थितास्ततस्तेषां पंचरात्रेण डगलादौ गृहीते पर्युषणा कल्पे च कथिते आषाढ़ पूर्णिमायां समवसरणं पर्युषणं भवति एषउत्सर्गः॥ अत ऊर्द्ध्वं कालं पर्युषणमनुतिष्ठतां सर्वोऽप्यपवादः। अपवादोपि सविंशतिरात्रात् मासात् परतो नातिक्रमयितुं कल्पते यद्येतावत्कालेऽपि गते वर्षायोग्यक्षेत्रं न लभ्यते ततो वृक्षमूलेऽपि पर्युषितव्यं॥ अथ पंचक परिहाणिमधिकृत्य ज्येष्ठकल्पावग्रहप्रमाणमाह। इयसत्तरी जहन्ना असीइ णवइं दसुत्तरसयंच जइवास मग्गसिरे दसराया तिण्णि उक्कोसा॥ इयइति उपदर्शने ये किलाषाढ़पूर्णिमायाः सविंशतिरात्रे मासे गते पर्युषयन्ति तेषां सप्ततिदिवसानि जघन्यो वर्षा वासावग्रहो भवति, भाद्रपदशुद्धपंचम्यानन्तरं कार्त्तिकपूर्णिमायां सप्ततिदिनसद्भावात्। एवं भाद्रपदबहुलदशम्यां पर्युषयन्ति तेषामशीतिर्दिवसा मध्यमो वर्षाकालावग्रहः। श्रावणपूर्णिमायां नवतिर्दिवसाः। श्रावण बहुलदशम्यां दशोत्तरशतंदिवसा मध्यमएवकालावग्रहो भवन्ति॥ समवायांगेनुक्तमपि इत्थं वक्तव्यं। भाद्रपदामावास्यायां पर्युषणे क्रियमाणे पंचसप्ततिदिवसाः। भाद्रपदबहुलपंचम्यां पंचाशीति। श्रावणशुद्धदशम्यां पञ्चनवतिः। श्रावणामावस्यां पञ्चोत्तरशतं। श्रावण बहुलपंचम्यां पंचदशोत्तरशत। आषाढ़

पूर्णिमायां तु पर्युषिते विंशत्युत्तरं दिवसशतं भवति ॥ एव मेतेषां प्रकाराणां वर्षावासामामेकक्षेत्रे स्थित्वाकार्तिक चातुर्मासिक प्रतिपदि निर्गन्तव्यं। अथ मार्गशीर्षे वर्षा भवति कर्द्दमजलाकुलाः पन्थानः ततोअपवादेनैक दशरात्रं भवतीति। अथ तथापि वर्षा नोपरते ततो द्वितीय दशरात्रं तथा सति अथैव मपि वर्षा न तिष्ठति ततस्तृतीयमपि दशरात्रमासेवेत एव त्रीणि दशरात्राणि उत्कर्षतस्तत्र क्षेत्रे आसितव्यं मार्गशिर पौर्णमासीं यावदित्यर्थः ॥ तत उर्द्धं यद्यपि कर्द्दमाकुला पंथानो वर्षं वा गाढ़मनुपरतं वर्षति यद्यपि च पानीयैः पूर्य्यमाणैस्तदानीं गम्यते तथापि अवश्यं निर्गन्तव्यं एवं पञ्चमासिको ज्येष्ठकल्पावग्रहः सम्पन्नः ॥ अथ तमेव षाण्मासिकमाह। काउण मासकप्पं तत्थेव ठियाण जइवास मग्गसिरे सालंबणाणं छम्मासिओ जेट्ठो ग्गहोहोइति। यस्मिन् क्षेत्रे आषाढ़मास कल्पकृतः तदन्यद्वर्षावासयोग्य तथाविधं क्षेत्रं न प्राप्तं ततो मासकल्पं कृत्वा तत्रैव वर्षावासं स्थितानां ततश्चातुर्मासानन्तरं कर्द्दमवर्षादिभिः कारणैरतीते मार्गशीर्षमासे निर्गतानां षाण्मासिको ज्येष्ठकल्पावग्रहो भवति एकक्षेत्रे अवस्थानमित्यर्थः ॥

देखिये ऊपरके पाठमें अधिकरण दोषोंका निमित्तकारण। और कारण योगे गमन करना पड़े तो साधुधर्मकी अवहेलना न होनेके लिये वर्षायोग्य उपधिकी प्राप्ति होनेसे योग्यक्षेत्रमें अज्ञात याने गृहस्थी लोगोंकी नहीं जानी हुई अनिश्चित पर्युषणा स्थापन करे वहां उसी रात्रिको पर्युषणा कल्प कहे (श्रीकल्पसूत्रका पठन करे) और योग्यक्षेत्रके अभावसे पांच पांच दिनकी वृद्धि करते चन्द्रसंवत्सरमें ५० दिन तक तथा अभिवर्द्धित संवत्सरमें २० दिनतक अज्ञात पर्युषणा करे परन्तु

२० दिने तथा ५० दिने ज्ञात यानें गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई प्रसिद्ध पर्युषणा करे सो यावत् कार्त्तिकतक उसी क्षेत्रमें ठहरे और जघन्यसे ७० दिन, तथा मध्यमसे १२० दिन और उत्कृष्टसे १८० दिनका कालावग्रह होता है ।

और भी पर्युषणा सम्बन्धी-भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, समाचारी, तथा प्रकरणादि ग्रन्थोंके अनेक पाठ मौजूद हैं परन्तु विस्तारके कारणसे यहां नहीं लिखता हूं। तथापि श्रीदशाश्रुत स्कन्ध सत्रकी चूर्णि, श्रीनिशीथचूर्णि, श्रीवृहत्कल्पचूर्णि वगैरह कितनेही शास्त्रोंके पाठ आगेप्रशंगोंपात लिखनेमें भी आवेंगे ।

अब मेरा सत्यग्रहणाभिलाषी श्रीजिनाज्ञा इच्छुक सज्जन पुरुषोंको इतनाही कहना है कि वर्त्तमानकालमें जैन पञ्चाङ्गके अभावसे लौकिक पञ्चाङ्गानुसार जिस मासकी वृद्धि होवे उसीके ३० दिनोंमें प्रत्यक्ष पने सांसारिक तथा धार्म्मिक व्यवहार सब दुनियांमें करनेमें आता है तथा समय, आवलिका, मुहुर्त्तादि शास्त्रोक्त कालके व्यतीतकी व्याख्यानुसार और सूर्योदयसे तिथि वारोंके परावर्तन करके दिनोंकी गिनती निश्चयके साथ प्रत्यक्ष सिद्ध है तथापि उसीकी गिनती निषेध करते हैं सो निष्केवल हठवादसे संसारवृद्धिकारक उत्सूत्र भाषणरूप बाल जीवोंको मिथ्यात्वमें गेरनेके लिये वृथा प्रयास करते हैं इसलिये अधिक मासके दिनोंकी गिनती पूर्वक उपरोक्त व्याख्याओंके अनुसार आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने दूसरे श्रावणमें वा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करना सो श्रीजिनाज्ञाका आराधनपना है। इसलिये-मैं-प्रतिज्ञा पूर्वक आत्मार्थियोंको कहता हूं कि-वर्त्तमानिक श्रीतपगच्छके मुनिमण्डली वगैरह विद्वान् महाशय पक्षपात रहित हो करके विवेक बुद्धिसे उपरोक्त श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्याओंका तात्पर्यार्थको विचारेंगे तो मासवृद्धि होनेसे अपने पूर्वजोंकी

मर्यादाके प्रतिकूल तथा पञ्चाङ्गीके प्रमाणोंके भी विरुद्ध होकरके गच्छाग्रहके पक्षपातसे दो श्रावण होते भी प्रत्यक्षपने ८० दिने भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका वृथा आग्रह कदापि नहीं करेंगे। और उपरोक्त शास्त्रानुसार तथा युक्ति पूर्वक ५० दिने दूसरे श्रावणमें वा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करनेवाले श्रीजिनाज्ञाके आराधक पुरुषों पर द्वेष बुद्धिसे वृथा उत्सूत्र रूप मिथ्याभाषणसे आज्ञा भङ्गका दूषण लगाकर बाल-जीवोंको भ्रममें गेरनेका साहस भी कदापि नहीं करेंगे।

और फिर अपनी चातुराईसे आप निर्दूषण बननेके लिये जैन शास्त्रोंमें अधिक मासको गिनतीमें नहीं गिना है ऐसा उत्सूत्र भाषणरूप कहके अज्ञजीवोंके आगे मिथ्यात्व फैलाते हैं उसीका निवारण करनेके लिये और भव्य जीवोंको निःसन्देह होनेके लिये इसजगह अधिक मासकी गिनतीके प्रमाण करने सम्बन्धी पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाण यहां दिखाता हूं।

श्रीसुधर्मस्वामीजी कृत श्रीचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रमें १, तथा श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रमें २, औरसंवत् १३०० के अनुमान श्रीमलयगिरिजी कृत उपरोक्त दोनों सूत्रोंकी दोनों वृत्तियोंमें ४, श्रीभद्रबाहुस्वामिजीकृत श्रीदशवैकालिकसूत्रके चूलिकाकी निर्युक्तिमें ५, तथा श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत तत् निर्युक्तिकी वृहद्वृत्तिमें ६, श्रीनिशीथसूत्रके लघुभाष्यमें, वृहद्भाष्यमें ७, चूर्णिमें ८ श्रीवृहत्कल्पके लघुभाष्यमें, वृहद्भाष्यमें९, चूर्णिमें १० और वृत्तिमें ११ श्रीसमवायांगजीमें १२, तथा तद्वृत्तिमें १३ औरश्रीस्थानांगजीसूत्रकी वृत्तिमें १४, श्रीनेमीचन्द्रसूरिजी कृत श्रीप्रवचनसारोद्धारमें १५, श्रीसिद्धसेनसूरिजी कृत तत्सूत्रकी वृहद्वृत्तिमें १६, श्रीउदयसागरजी कृत तत्सूत्रकी लघुवृत्तिमें १७, श्रीजिनपतिसूरिजीकृत श्रीसमाचारी ग्रन्थमें १८, श्रीसंघपट्टक लघुवृत्तिमें, वृहद्वृत्तिमें १९ श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत श्रीविधिप्रपासमाचारीमें २० और श्रीसमय

सुन्दरजी कृत श्रीसमाचारी शतकमें २१ और श्रीपार्श्वचन्द्र गच्छके श्रीब्रह्मर्षिजी कृत श्रीदशाश्रुतस्कन्ध सूत्रकी वृत्तिमें २२ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें अधिकमासको गिनतीमें प्रमाण किया हैं इसलिये जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी पुरुष अधिकमासकी गिनती कदापि निषेध नहीं कर सकते हैं इस जगह भव्य जीवोंको निःसन्देह होनेके वास्ते थोड़ेसे अधिकमासकी गिनतीके विषयवाले पाठ लिख दिखाता हुं—

श्रीतपगच्छके पूर्वज कहलाते श्रीनेमिचन्द्र सूरिजी महाराज कृत श्रीप्रवचनसारोद्धार मूलसूत्र गुजराती भाषा सहित मुंबईवाले श्रावक भीमसिंह माणककी तरफसें श्रीप्रकरण रत्नाकरके तीसरे भागमें छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके पृष्ठ ३६४ सें ३६५ तक नीचे मुजब भाषा सहित पाठ जानो—

अवतरणः—मासाण पञ्चभेयत्ति एटले मासना पांचभेदोनुं एकसोने एकतालीसमुंद्वार कहे छे। मूलः—मासाय पंचसुत्ते, नरकत्ते चंदीओय रिउमासो ॥ आइच्चोविये अवरो, भिवड्ढिओ तहय पंचमओ ॥९०४॥

अर्थः-सूत्र जे श्रीअरिहंत परमात्मानुं प्रवचन तेने विषे मास पांच कह्या छे। तेमा प्रथमजे नक्षत्रनी गणनाये थाय तेनी रीतकहे छेः-चंद्रमाचारके० संचरतो जेटले काले अभिजितादिकथी विचरतो उतराषाढ़ा नक्षत्र सुधी जाय तेने प्रथम नक्षत्र मास कहिये। बीजो चंदिओयके० चंद्रथकीथाय ते अंधारा पड़वाथकी आरंभीने अजवाली पूर्णिमा सुधी चंद्रमास केहेवाये। त्रीजोरिओके० ऋतु ते लोक रूढ़िये साठ अहोरात्रीये ऋतु कहिये। तेनो अर्द्धमास एटले त्रीस अहो-

रात्री प्रमाणनो ते ऋतुमास जाणवो। चोथो, आदित्य जे सूर्य तेहनुं अयन एकसोने त्र्यासी दिवसनुं होय। तेनो छट्ठोभाग ते आदित्य मास कहिये। पांचमो अभिवर्द्धित ते तेर चंद्रमासे थाय। बार चंद्रमासे संवत्सर जांणवो परन्तु जेवारे एक वधे तेवारे तेने अभिवर्द्धित मास कहिये एनुंज प्रमाण विशेष देखाड़े छे। मूल.—अहरत्तसित्तवीसं तिसत्त सत्तट्ठि भाग नक्खतो॥ चंदोअ उगत्तीसं बसट्ठिभागाय बत्तीसं॥ ९०५॥

अर्थः—सतावीस अहोरात्री अने एक अहोरात्रीना शड़सठ भाग करिये तेवा एकवीस भागे अधिक एक नक्षत्र मासथाय। अने मासना उगणत्रीस अहोरात्री तेना उपर एक अहोरात्रिना बासठभाग करिये एवा बत्रीस भागे अधिक एक चंद्रमास थाय।

मूलः—उउमासो तीसदिणो, आइच्चोवि तीस होइ अद्धंच। अभिवढ्ढिओअ मासो चउवीस सएण छेएण॥९०६॥ अर्थः—ऋतुमास ते संपूर्ण त्रीसदिवस प्रमाणनो जाणवो तथा आदित्यमास ते त्रीसदिवस अने उपर एक दिवसना साठिया त्रीसभाग करिये तेटला प्रमाणनो जांणवो। अने अभिवर्द्धितमास ते चउवीसे अधिक एकशतछेद एटले भाग तेज देखाड़े छे॥ ९०६॥ मूलः—भागाणिगवीससयं, तीसाएगाहिया दिणाणंत्र। एएजह निप्पत्तिं, लहंति समयाऊतहनेयं॥ ९०७॥ अर्थः—ते पूर्व्वोक्त एकसोने चोवीसभाग एक अहोरात्रना करिये तेवा एकसो एकवीसभाग अने एकदिवसे अधिक त्रीस एटले एकत्रीस दिवस अर्थात् एकत्रीस दिवसने एक अहोरात्रीना एकसो चोवीसभाग मांहेला

एकसोने एकवीसभाग उपर एटेलुं अभिवर्द्धित मासनुं प्रमाण जाणवुं एरीतेए पांचमासनी जेम निःष्पत्ति एटले प्राप्तिथाय छे तेसमयके० सिद्धान्त थकी जांणवी इति गाथाचतुष्टयार्थ ॥ ९०७ ॥ अवतरणः—वरिसाणपंचभेयत्ति एटले वर्षना पांचभेदनुं एकसोने बेतालीसमु द्वार कहे छे ।

मूलः—संवछराउ पंचउ "चंदे चंदे भिवढ्ढिए चेव । चंदे भिवड्ढएतह बासट्ठिमासे हि जुगमाणं॥९०८॥ अर्थः—चंद्रादिक संवत्सर पांचकह्याछे तेमा पूर्वोक्त चंद्रमासे जे नीपन्योते चंद्रसंवत्सर जांणवो । तेनु प्रमाण त्रणसे चोपनदिवस अने एक दिवसना बासठभाग करिये तेवा बारभाग उपर जाणवा तेमज बीजा चंद्रसंवत्सरनुं पण मानजाणवुं । हवे चंद्रसंवत्सर थी एक अधिकमास थाय ऐटले तेने अभिवर्द्धित संवत्सरजांणवो तेनु प्रमाण त्रणसे त्र्यासीदिवस अने एक दिवसना बासठभाग करी तेमांना चुमालीसभाग एवो एक अभिवर्द्धित संवत्सर जाणवो एकत्रीश अहोरात्र अने एकदिवसना एकसो चोवीसभाग करिये तेमांहिला एकसो एकवीसभाग उपर ए अभिवर्द्धित मासनुं मान जाणवुं । हवे पूर्वोक्त माने अभिवर्द्धित संवत्सर बे अने चंद्रसंवत्सर त्रण एवा पांच संवत्सरे एक युगमान थाय छे ते बासठचंद्रमास प्रमाणक छे । सारांश एकयुगमां त्रण चांद्रसंवत्सर ते चांद्रसंवत्सरना प्रत्येक बारमास मली छत्रीस चांद्रमास अने बे अभिवर्द्धित संवत्सर तेमां एक अभिवर्द्धित संवत्सरना तेरे चांद्रमास ए प्रमाणे बीजा वर्षना पण तेरे मली एकंदर छवीसमास अने पूर्वोक्त चांद्रमास छत्रीस मलीने बासठ चांद्रमासे एक युगनुं मानथाय ॥ ९०८ ॥ इति—

देखिये उपरमें श्रीतपगच्छके पूर्वज श्रीनेमिचंद्र सूरिजीनें अधिक मासकी गिनती मंजूर करके तेरह चंद्रमाससे अभि-वर्द्धित संवत्सर कहा और एकयुगके बासठ (६२) मासकी गिनती दिखाइ अधिक मासके दिनोंकी भी गिनती खुलासें लिखी हैं इस लिये वर्तमानमें श्रीतपगच्छवाले महाशयोंको अपने पूर्वजके प्रतिकुल होकर अधिकमासकी गिनती निषेध करनी नही चाहिये किन्तु अधिकमासकी गिनती अवश्य-मेव मंजूर करनी योग्य हैं ।

औरसुनिये—श्रीमलयगिरिजी कृत श्रीचंद्रप्रज्ञप्ति सूत्र वृत्तिके पृष्ठ ९९ से १०० तक तत्पाठ—

युगसंवत्सरो युगपूरकः संवत्सरः पंचविधः प्रज्ञप्त-स्तद्यथा। चंद्रश्चांद्रोऽभिवर्द्धितश्चैव उक्तंच चंदो चंदो अभि-वड्ढितोय, चंदो अभिवड्ढितो चेव। पंचसहियं जुगमिणं, दिट्ठं ते लोकदंसीहिं ॥ १ ॥ पढम विइयाउ चंदातइयं अभि-वड्ढियं वियाणाहिं। चंदे चेव चउत्थं पंचममभिवड्ढियं जाण ॥ २ ॥ तत्र द्वादशपूर्णमासी परावर्त्ता यावता कालेन परिसमाप्ति मुपयाति तावत्काल विशेषश्चंद्रसंवत्सरः। उक्तंच। पुन्निम परियट्टा पुण बारस मासे हवइ चंदो। एकश्च पूर्णमासी परावर्त्त एकश्चंद्रोमासस्तस्मिंश्च चंदे मासेऽहोरात्र परिमाण चिंतायामेकोनत्रिंशदहोरात्रा द्वाविंशच्च द्वाषष्टि भाग अहोरात्रस्य एतत् द्वादशभिर्गुण्यते जातानि त्रीणि शतानि चतुःपञ्चाशदधिकानि रात्रिंदिवानां द्वादशच द्वाषष्टि-भागा रात्रिंदिवसस्य एवं परिमाणश्चांद्रः संवत्सरः तथा यस्मिन् संवत्सरे अधिकमास सम्भवेन त्रयोदश चंद्रस्य मासा भवति सोऽभिवर्द्धित संवत्सरः ॥ उक्तंच ॥ तेरसय चंद्रमासा

वासो अभिवड्ढिओय नायव्वो । एकस्मिन् चंद्रमासे अहो-
रात्रा एकोनत्रिंशद् भवन्ति द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागस्य अहो-
रात्रस्य एतच्चानन्तरं चोक्तं तत एष राशिस्त्रयोदशभिर्गुणितो
जातानि त्रीणि अहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वा-
रिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य एतावदहोरात्रप्रमाणोऽभि-
वर्द्धितसंवत्सर उपजायते कथमधिकमाससम्भवो येनाभिवर्द्धित
संवत्सर उपजायते कियता वा कालेन सम्भवतीति उच्यते
इह युगं चंद्राऽभिवर्द्धितरूप पञ्चसंवत्सरात्मकं सूर्य्यसंवत्सरा-
पेक्षया परिभाव्यमान मन्यूनातिरिक्तानि पञ्चवर्षाणि
भवन्ति सूर्य्यमासश्च सार्द्धत्रिंशदहोरात्रि प्रमाण चंद्रमास
एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्य ततो
गणितपरिभावनया सूर्य्यसंवत्सर सत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे
एकश्चांद्रमासोऽधिको लभ्यते तथाच पूर्वाचार्य्यप्रदर्शितेयं क-
रण गाथा ॥ चंदस्स जो विसेसो आइच्चस्स य हविज्ज मासस्स
तीसइ गुणिओ संतो हवइ हु अहिमासओ एक्को ॥१॥ अस्याऽक्षर-
गमनिका आदित्यस्य आदित्य संवत्सरः सम्बन्धिनो मासस्य
मध्यात् चंद्रस्य चंद्रमासस्य यो भवति विश्लेष इह विश्लेष
कृते सति यदवशिष्यते तदुपचारात् विश्लेषः स त्रिंशता
गुण्यते गणितः सन् भवत्येकोऽधिकमासः तत्र सूर्य्यमासपरि-
माणात् सार्द्ध त्रिंशदहोरात्ररूपात् । चन्द्रमासपरिमाणमेकोन-
त्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्यैवं रूप शो-
ध्यते तत स्थितं पश्चाद्दिनमेकमेकेन द्वाषष्टिभागेन न्यूनं तच्च
दिनं त्रिंशता गुण्यते जातानि त्रिंशद्दिनानि एकश्च द्वाषष्टिभाग
त्रिंशता गुणितो जातास्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः ते त्रिंशद्दिनेभ्यः
शोध्यन्ते ततस्थितानि शेषाणि एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिं-

शश्च द्वाषष्टिभागादिनस्य एतावत्परिमाणश्चन्द्रमास इति भवति सूर्य्यसंवत्सर सत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे एकोऽधिकमासो युगे च सूर्य्यमासाः षष्टिस्तो भूयोऽपि सूर्य्यसम्वत्सरः सत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे द्वितीयोऽधिकमासो भवति। उक्तंच सट्ठीये अइयाए हवइ हु अहिमासग्गो जुगद्धंमि बावीसे पव्वसए हवइ हु बीओ जुगंतंमि ॥१॥ अस्याऽपि अक्षरगमनिका एकस्मिन् युगे अनन्तरोदित स्वरूपे पर्वणां पक्षाणां षष्टौ अतीताया षष्टिसंख्येषु पक्षेषु अतिक्रान्तेषु इत्यर्थः। एतस्मिन्नवसरे युगार्द्धे युगार्द्धप्रमाणे एकोऽधिकोमासो भवति द्वितीयस्त्वधिकमासो द्वात्रिंशत्यधिके पर्वशते अतिक्रान्ते युगस्यान्ते युगपर्य्यवसाने भवति तेन युगमध्ये तृतीयसंवत्सरे अधिकमासः पञ्चमे चेति द्वौ युगे अभिवर्द्धितसंवत्सरौ संप्रति युगे सर्वसंख्यया यावन्ति पर्वाणि भवन्ति तावन्ति निर्दिक्षुः प्रतिवर्षं पर्वसंख्यामाह। ता पढमस्सण मित्यादि ता इति तत्र युगे प्रथमस्य णमिति वाक्यालंकृतौ चन्द्रस्य संवत्सरस्य चतुर्विंशतिपर्वाणि प्रज्ञप्तानि द्वादशमासात्मको हि चान्द्रः संवत्सरः एकैकस्मिंश्च मासे द्वे द्वे पर्वणि ततः सर्वसंख्यया चन्द्रसंवत्सरे चतुर्विंशतिः पर्वाणि द्वितीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि भवन्ति अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि तस्य त्रयोदशमासात्मकत्वात् चतुर्थस्य चान्द्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि पञ्चमस्याऽभिवर्द्धित संवत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि। कारणमनन्तरमेवोक्तं तत एवमेवोक्तेनैव प्रकारेण सपुव्वा वरेणंति पूर्वापर गणितमिलनेन पञ्चसांवत्सरिके युगे चतुर्विंशत्यधिकं पर्वशतं भवतीत्याख्यातं सर्वैरपि तीर्थकृद्भिर्मया चेति।

और भी इन महाराज कृत श्रीसूर्य्यप्रज्ञप्ति सूत्र वृत्तिके पृष्ठ १११ से ११२ तक तत्पाठ—

युगसंवत्सरेणमित्यादि। ता युगसंवत्सरो युगपूरकः संवत्सरपंचविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा। चंद्रश्चांद्रोऽभिवर्द्धितश्चांद्रोऽभिवर्द्धितश्चैव ॥ उक्तंच ॥ चंदो चंदो अभिवढ्ढिओय चंदोऽभिवढ्ढिओ चेव पंचसहियं युगमिणं दिट्ठं ते लोक्क दंसीहिं ॥ १ ॥ पढम बिइयाउ चंदा तइयं अभिवढ्ढिअं वियाणा हि चंदेचेव चउत्थं पंचममभिवढ्ढियं जाण ॥ २ ॥ तत्र द्वादशपौर्णमासी परावर्त्तोया यावता कालेन परिसमाप्तिमुपयांति तावत् कालविशेषश्चन्द्र संवत्सरः ॥ उक्तंच ॥ पुन्निम परियट्टा पुण बारसमासे हवइ चंदो ॥ एकश्च पौर्णमासी परावर्त्त एकश्चंद्रमास स्तस्मिं चांद्रमासे रात्रि दिवसपरिमाणचिन्तायां एकोनत्रिंशदहोरात्रा द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा रात्रि दिवसस्य एतद्द्वादशभिर्गुण्यते जातानि त्रीणि शतानि चतुःपञ्चाशदधिकानि रात्रि दिवानां द्वादश च द्वाषष्टिभागा रात्रि दिवसस्य एवं परिमाणश्चान्द्रः संवत्सरः। तथा यस्मिन् संवत्सरे अधिकमास सम्भवेत् त्रयोदशचन्द्रमासा भवन्ति सोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः ॥ उक्तंच ॥ तेरसय चंदमासा वासो अभिवढ्ढिओय नायब्बो ॥ एकस्मिं चंद्रमासे अहोरात्रा एकोनत्रिंशद्भवन्ति द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य एतच्चानन्तरमेवोक्तं। तत एष राशिस्त्रयोदशभिर्गुण्यते जातानि त्रीणि अहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य एतावदहोरात्र प्रमाणोऽभिवर्द्धितसंवत्सर उपजायते कथमधिकमाससम्भवो येनाभिवर्द्धितसंवत्सार उपजायते कियता वा कालेन सम्भवतीति उच्यते। इह युगं

चन्द्राभिवर्द्धितरूप पञ्चसंवत्सरात्मकं सूर्य्यसंवत्सरापेक्षया परिभाव्यमानमन्यूनातिरिक्तानि पंचवर्षाणि भवन्ति सूर्य्यमासश्च सार्द्धत्रिंशदहोरात्रिप्रमाण चन्द्रमास एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्य ततो गणितसंभावनया सूर्य्यसंवत्सर सत्क त्रिंशत्मासातिक्रमे एकश्चन्द्रमासोऽधिको लभ्यते। स च यथा लभ्यते तथा पूर्वाचार्य्यप्रदर्शितेयं करणं गाथा॥ चंदस्स जो विसेसो आइच्चस्सइ हविज्ज मासस्स तीसइ गुणिओ संतो हवइ हु अहिमासगो एक्को॥१॥अस्याक्षरगमनिका आदित्यस्य आदित्यसंवत्सरसम्बन्धिनो मासस्य मध्यात् चंद्रस्य चंद्रमासस्य यो भवति विश्लेष इह विश्लेष कृते सति यदवशिष्यते तदप्युपचाराद्विश्लेषः स त्रिंशता गुण्यते गुणितः सन् भवत्येकोऽधिकमासः तत्र सूर्य्यमासपरिमाणात् सार्द्धत्रिंशदहोरात्ररूपं चंद्रमासपरिमाणमेकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशश्च द्वाषष्टिभागा दिनस्येत्येवं रूप शोध्यते ततः स्थितं पश्चाद्दिनमेकमेकेन द्वाषष्टिभागेन न्यूनं तच्च दिनं त्रिंशता गुण्यते जातानि त्रिंशद्दिनानि एकश्च द्वाषष्टिभाग त्रिंशता गुणितो जातास्त्रिंशद्द्वाषष्टिभागास्ते त्रिंशद्दिनेभ्यः शोध्यन्ते तत स्थितानि शेषाणि एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशश्च द्वाषष्टिभागा दिनस्य एतावत्परिमाणश्चान्द्रोमास इति भवति सूर्य संवत्सर सत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे एकोऽधिकमासो युगे च सूर्यमासाः षष्टिस्तो भूयोऽपि सूर्यसम्वत्सर सत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे द्वितीयोऽधिकमासो भवति। उक्तंच सट्ठीए अइयाए हवइ हु अहिमासगो जुगद्धंमि बावीसे पव्वसए हवइहु बीओ जुगंतंमि॥१॥ अस्यापि अक्षरगमनिका एकस्मिन् युगे अनंतरोदित स्वरूपे पर्वणां पक्षाणां षष्टौ अतीतायां षष्टिसंख्येषु पक्षेष्वति-

क्रान्तेषु इत्यर्थः एतस्मिन्नवसरे युगार्द्ध युगार्द्ध प्रमाणे एको ऽधिको मासो भवति द्वितीयस्त्वधिकमासो द्वात्रिंशत्यधिके पर्वशते (पक्षशते) अतिक्रान्ते युगस्यान्ते युगस्य पर्य्यवसाने भवति तेन युगमध्ये तृतीयसम्वत्सरे अधिकमासः पञ्चमे चेति द्वौ युग अभिवर्द्धितसम्वत्सरौ सम्प्रति युगे सर्वसंख्यया यावन्ति पर्व्वाणि भवन्ति तावन्ति निर्दिक्षुः प्रतिवर्षं पर्वसंख्या माह ॥ तापढमस्सण मित्यादि ता इति तत्र युगे प्रथमस्य णमिति वाक्यालंकृतौ चान्द्रस्य सम्वत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि द्वादशमासात्मको हि चांद्रः सम्वत्सरः एकैकस्मिंश्च मासे द्वे द्वे पर्वणि ततः सर्वसंख्यया चान्द्रसंवत्सरे चतुर्विंशतिः पर्वाणि भवन्ति द्वितीयस्याऽपि चांद्रसम्वत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि भवन्ति अभिवर्द्धित सम्वत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि तस्य त्रयोदशमासात्मकत्वात् चतुर्थस्य चांद्र सम्वत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि पञ्चमस्याभिवर्द्धितसम्वत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि कारणमनन्तरमेवोक्तं तत एवमेव उक्तेनैव प्रकारेण सपुव्वावरेणंति पूर्वापरिगणितमिलनेन पञ्चसांवत्सरिके युगे चतुर्विंशत्यधिकं पर्वशतं भवतीत्याख्यातं सर्वैरपि तीर्थकृद्भिर्मया चेति ।

देखिये उपरके दोनुं पाठमें खुलासा पूर्वक प्रथम चन्द्र संवत्सर दूसरा चन्द्र संवत्सर तीसरा अभिवर्द्धित संवत्सर चौथा फिर चन्द्रसंवत्सर और पांचमा फिर अभिवर्द्धित संवत्सर इन पांच संवत्सरों सें एक युगकी संपूर्णता लोकदर्शी केवली भगवान् नें देखी हैं कही हैं जिससें एक चन्द्र मासका प्रमाण एकोनतीस संपूर्ण अहोरात्रि और एक अहोरात्रिके बासठ भाग करके बत्तीस भाग ग्रहण करनेसे २९ ।

३२।६२ अर्थात् २९ दिन ३० घटीका और ५८ पल प्रमाणे एक चन्द्रमास होता हैं इसको बारह चांद्रमासों सें बारह गुणा करने से एक चन्द्रसंवत्सरमें तीनसे चौपन संपूर्ण अहोरात्रि और एक अहोरात्रिके बासठ भाग करके बारह भाग ग्रहण करनेसें ३५४।१२।६२ अर्थात् ३५४ दिन ११ घटीका और ३६ पल प्रमाणें एक चन्द्र संवत्सर होता हैं और जिस संवत्सरमें अधिकमास होता हैं उसीमें तेरह चन्द्रमास होने सें अभिवर्द्धित नाम संवत्सर कहते हैं जिसका प्रमाण तीनसे तेंयाशी अहोरात्रि और एक अहोरात्रिके बासठ भाग करके चौमालीस भाग ग्रहण करनेसे ३८३।४४।६२ अर्थात् ३८३ दिन ४२ घटीका और ३४ पल प्रमाणे एक अभिवर्द्धित संवत्सर तेरह चन्द्रमासोंकी गिनतीका प्रमाण सें होता हैं इस तरहके तीन चंद्रसंवत्सर और दोय अभिवर्द्धित संवत्सर एसें पांच संवत्सरों सें एक युग होता हैं अब एक युगके सर्वपर्वोंकी गिनती कहते हैं प्रथम चन्द्र संवत्सरके बारहमास जिसमें एक एक मासकी दोय दोय पर्वणि होनेसें बारहमासोंकी चौवीश (२४) पर्वणि प्रथम चन्द्र संवत्सरमें होती हैं तैसे ही दूसरा चन्द्र संवत्सरमें भी २४ पर्वणि होती हैं और तीसरा अभिवर्द्धित संवत्सरमें छवीश (२६) पर्वणि मासवृद्धि होने सें तेरह-मासोंकी होती हैं तथा चौथा चन्द्र संवत्सरमें २४ पर्वणि होती हैं और पांचमा अभिवर्द्धितसंवत्सरमें २६ पर्वणि होती हैं सो कारण उपरके दोनुं पाठमें कहा हैं इन सर्व पर्वोंकी गिनती मिलनेसें पांच संवत्सरोंकें एक युगकी एकसो चौवीश (१२४) पर्वणि अर्थात् पाक्षिक होती हैं यह १२४

पर्वकी व्याख्या सर्वतीर्थङ्कर महाराजों नें अर्थात् अनन्त तीर्थङ्करों नें कही हैं तैसें ही वृत्तिकार मलयगिरिजीने चन्द्र प्रज्ञप्तिकी तथा सूर्य्यप्रज्ञप्ति की वृत्तिसें खुलासें लिखी हैं और श्रीचंद्रप्रज्ञप्ति वृत्तिमें पृष्ठ १११ सें ११२ में तथा १३४ में और श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिमें पृष्ठ १२४ सें १२८ तक नक्षत्र संवत्सर १ चन्द्र संवत्सर २ ऋतु संवत्सर ३ आदित्य (सूर्य्य) सम्वत्सर ४ और अभिवर्द्धित संवत्सर ५ इन पांच संवत्सरों का प्रमाण विस्तार पूर्वक वर्णन किया हैं जिसकी इच्छा होवें सो देखके निःसन्देह होना इस जगह विस्तार के कारण सें सब पाठ नही लिखते हैं ।

और भी श्रीसुधर्मस्वामिजी कृत श्रीसमवायांगजी मूलसूत्र तथा श्रीखरतरगच्छनायक श्रीअभयदेव सूरिजी कृत वृत्ति और श्रीपार्श्वचन्द्रजी कृत भाषा सहित (श्रीमकसूदाबाद निवासी राय बहादुर धनपतसिंहजीका जैनागम संग्रह के भाग चौथेमें) छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके ६१ मा और ६२ मा समवायाङ्गमें मासोंकी गिनतीके सम्बन्ध वाला पृष्ठ ११९ और १२० का पाठ नीचे मुजब जानो यथा—

पंचसंवच्छरियस्सणं जुगस्सरिऊ मासेणं मिज्जमाणस्स इगसठिं उऊ मासापन्नता ।

अथैकषष्टिस्थानकं तत्र पञ्चेत्यादि पञ्चभिः संवत्सरैर्निवृतमिति पञ्चसांवत्सरिकं तस्यणमित्यलङ्कारे युगस्य कालमानविशेषस्य ऋतुमासेन चन्द्रादिमासेन मीयमानस्य एकषष्टिः ऋतुमासाः प्रज्ञप्ताः इह चायं भावार्थः युगं हि पञ्चसंवत्सरा निष्पादयन्ति तद्यथा—चन्द्रश्चन्द्रोऽभिवर्द्धितश्चन्द्रोऽभिवर्द्धितश्चेति तत्र एकोनत्रिंशदहोरात्राणि द्वात्रिंशच्च द्विषष्ठिभागा

अहोरात्रस्येत्येवं प्रमाणेन २९।३२।६२। कृष्णप्रतिपदारभ्य पौर्णमासी निष्ठितेन चन्द्रमासेन द्वादशमास परिमाणश्चन्द्रसंवत्सरस्तस्य च प्रमाणमिदम् त्रीणि शतान्यह्नां चतुःपञ्चाशदुत्तराणि द्वादश च द्विषष्ठिभागा दिवसस्य ३५४। १२।६२। तथा एकत्रिंशदह्नां एकविंशत्युत्तरं च शतं चतुर्विंशतीत्युत्तरशतभागानां दिवसस्येत्येवं प्रमाणोऽभिवर्द्धितमास इति एतेन ३१।१२१।१२४। च मासेन द्वादशमास प्रमाणोऽभिवर्द्धित संवत्सरो भवति स च प्रमाणेन त्रीणि शतान्यह्नां त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्विषष्टिभागा दिवसस्य ३८३।४४।६२। तदेवं त्रयाणां चन्द्रसंवत्सराणां द्वयोरभिवर्द्धित संवत्सरयोरेकी करणे जातानि दिनानां त्रिंशदुत्तराणि अष्टादशशतानि अहोरात्राणां १८३० ऋतुमासश्च त्रिंशताहोरात्रैर्भवतीति त्रिंशताभागहारे लब्धा एकषष्ठिः ऋतुमासा इति।

हिवे ६१ मो लिखे छे। चन्द्र १ चन्द्र २ अभिवर्द्धित ३ चन्द्र ४ अभिवर्द्धित ५ एम पांचवर्षनो १ युगथाय ते ऋतुमासे करी मीयमानछे चन्द्रमासनोमान २९ अहोरात्रि अने१ अहोरात्रिना ३२ भाग ६२ ठिया ते कृष्णपक्षनी पडिवाथी पौर्णमासीये पूरोथाय एहमासमान १२ गुणोकीजे तिवारे वर्षनो मान ३५४ अहोरात्रि अने १ अहोरात्रिना १२ भाग ६२ ठियाथाय तेहने त्रिगुणो कीजे तिवार१०६२ अहोरात्रि अने १ अहोरात्रिना ६२ ठिया ३६ भागथाय एम अभिवर्द्धित मासनो मान ३१ अहोरात्रि अने १ अहोरात्रिना १२४ भाग हाइय १२१ भाग प्रमाणे थाय तेहने १२ गुणो कीजे तिवारे अभिवर्द्धित वर्षनो मान ३८३ अहोरात्रि अने १ अहोरात्रिना

४४ भाग ६२ ठिया तेहने बेगुणा कीजे ७६७ सातसो सड़सठ अहोरात्रि अनें १ अहोरात्रिना २६ भाग ६२ ठिया थाय तेहने पहिले ३ चन्द्रवर्षना मानमांहि घातिये तिवारे १८३० अहोरात्रिथाय ऋतु मासनो मान ३० अहोरात्रिनु तेमाटे १८३० नें भागें हरिये तो १ युगने विषें ६१ ऋतुमास थाय।

पंचसंवच्छरिएणं जुगे बावट्ठिं पुन्निमाउ बावट्ठिं अमावसाउ पन्नता

अथ द्विषष्ठिस्थानकं पंचेत्यादि तत्र युगे त्रयश्चन्द्रसंवत्सरा भवन्ति तेषु षट्त्रिंशत् पौर्णमास्यो भवन्ति द्वौचाभिवर्द्धितसंवत्सरौ भवतस्तत्र चाभिवर्द्धितसंवत्सरस्त्रयोदशभिश्चंद्रमासैर्भवतीति तयो षड्विंशतिः पौर्णमास्य इत्येवं द्विषष्ठिस्ता भवन्ति इत्येवममावास्यापीति।

हिवे ६२ मो लिखे छे। पांचसंवत्सरानो युगहोय तेह मांहि ६२ पुनिम अनें ६२ अमावस्या कही १ युगमाही ३ चन्द्रवर्ष होय तेह मांहि मास ३६ बारेत्रिक ३६ पूर्णिमा अनें ३६ अमावस्या होय अनें युगमाहि २ अभिवर्द्धित वर्ष होय तेहना मास २६ होय तेमाटे पूनिम २६ अमावस्या २६ सर्व पांच वर्षनामिलि ६२ पूर्णिमा अनें ६२ अमावस्या होय॥

देखिये पञ्चमगणधर श्रीसुधर्मस्वामिजीनें भी उपरके श्रीसमवायाङ्गजीके मूलसूत्र पाठमें और श्रीअभयदेवसूरिजी वृत्तिकारनें भी अधिक मासकी गिनती बरोबर किवी और चंद्रमासोंसें चंद्रसंवत्सरका प्रमाण तथा अभिवर्द्धितमासोंसें अभिवर्द्धितसंवत्सरका प्रमाण दिनोंकी गिनतीसें खुलासा करके एक युगके बासठ चंद्रमासके हिसाबसें ६२ पूर्णिमासी तथा ६२ अमावस्या और चंद्रमासकी गिनतीके प्रमाणसें

६२ चन्द मासके १८३० दिन एक युगकी पूर्ति करनेवाले दिखाये हैं तथापि वर्तमानिक श्रीतपगच्छादि वाले मेरे धर्म्मबन्धु अधिक मासकी गिनती निषेध करते हैं जिनोंको विचार करना चाहिये ॥

और भी श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्य्यजी श्रीक्षेमकीर्तिसूरिजी कृत श्रीवृहत्कल्पवृत्ति खंभायतके भंडारवालीके दूसरे उद्देशे दूसरे खण्डमें—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से ६ प्रकारके मासोंकी व्याख्या किवी हैं जिसमें से इस जगह एक काल मासकी व्याख्या वर्तमानिक श्रीतपगच्छवालोंको अपनें पूर्वजका वचन याद करानेके वास्ते और भव्य जीवोंको निःसन्देह होनेके लिये पृष्ठ १९८ वें का पाठ दिखाते हैं तथाच तत्पाठ—

कालमासः श्रावणादिः यद्वा कालमासो नक्षत्रादिकः पञ्चविधस्तद्यथा नक्षत्रमासः चंद्रमासः ऋतुमास आदित्यमास अभिवर्द्धितमास अमीषामेव परिमाणमाह गाथाः नख्कत्तो खलु मासो, सत्तावीसं हवंति अहोरत्ता ॥ भागाय एक्कवीसं, सत्तट्ठि कएण वेएणं ॥१॥ अउण तीसं चंदो, विसट्ठि भागाय हुंति बत्तीसा ॥ कम्मो तीसइ दिवसो, वीसा अध्धंच आइच्चो ॥२॥ अभिवढ्ढि इक्कतीसा चउवीसं भाग सयंवड़तिगहीणं भावे मूलाइभ्र उपगयं पुण कम्म मासेणं ॥३॥ नक्षत्रेषु भवो नक्षत्रः स खलु मासः सप्तविंशत्यहोरात्राणि सप्तषष्टी कृतेन छेदेन छिन्नस्याऽहोरात्रस्यैकविंशति सप्तषष्टीभागाः तथाहि चंद्रस्य भरण्याद्रीश्लेषा स्वाति ज्येष्टा शतभिषग् नामानि षट्नक्षत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तभोग्यानि तिस्र उत्तराः पुनर्वसु रोहिणी विशाखा चेति षट् पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्त भोग्यानि शेषाणि तु

पञ्चदशनक्षत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानीति जातानि सर्वसंख्यया मुहूर्त्तानामष्टाशतानि दशोत्तराणि एतेषां च त्रिंशन्मुहूर्त्तैरहोरात्रमिति कृत्वा त्रिंशता भागो ह्रियते लब्धानि सप्तविंशति रहोरात्राणि अभिजिद्योगश्चैकविंशति सप्तषष्टीभागा इति तैरप्यधिकानि सप्तविंशतिरहोरात्राणि सकल नक्षत्रमण्डलोपभोगकालो नक्षत्रमासो उच्यते १ चंद्रे भवश्चांद्रः कृष्णपक्षप्रतिपदारभ्य यावत् पौर्णमासी परिसमाप्तिस्तावत् कालमानः स च एकोनत्रिंशदहोरात्राणि द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य २ कर्म्मनास ऋतुमास इत्येकोऽर्थः स त्रिंशद्दिवसप्रमाणः ३ आदित्यमासस्त्रिंशदहोरात्राणि रात्रि दिवसस्य चार्द्ध दक्षिणायनस्यो उत्तरायणस्य वा षट्भागमान इत्यर्थः ४ अभिवर्द्धितो नाम मुख्यतस्त्रयोदशचंद्रमास प्रमाणः संवत्सरः परं तत् द्वादशभागप्रमाणो मासोऽपि अवयवे समुदायोपचारादभिवर्द्धितः स चैकत्रिंशदहोरात्राणि चतुर्विंशत्युत्तरशतभागी कृतस्य वाहोरात्रस्स त्रिकहीनं चतुर्विंशतिभागानां भवति एकविंशमिति भावः एतेषां चानयनाय इयं करण गाथा॥ जुगमासेहिं उभइए, जगंमिलद्धं हविज्ज नायव्वं॥ मासाणं पंचन्ह, विषयं राइदियपमाणं॥१॥ इह सूर्य्यस्य दक्षिण मुत्तरं वा अयनं त्र्यशीत्यधिकद्विनशतात्मकं द्वि अयने वर्षमिति कृत्वा वर्षे षट्षस्यधिकानि त्रिणि शतानि भवन्ति पञ्चसंत्सराद्युगमिति कृत्वा तानि पञ्चभिर्गुणयन्ते जातानि अष्टादशशतानि त्रिंशद्दिवसानां एतेषां नक्षत्रमासदिवसानेनाय सप्तषष्टिर्युगे नक्षत्रमासा इति सप्तषष्टया भागा ह्रियते लब्धाः सप्तविंशतिरहोरात्रा एकविंशतिरहोरात्रस्य सप्तषष्टीभागाः १ तथा चंद्रमास दिवसानयनाय द्वाषष्टिर्युगे चंद्रमासा इति

द्वाषष्ट्या तस्यैव युगदिन रात्रेर्भागा ह्रियते लब्धाहि एकोनत्रिंशदहोरात्राणि द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः एवं युगदिवसानामेवैकषष्टियुगे कर्म्ममासा इत्येकषष्ट्या भाग ह्रियते लब्धानि कर्म्ममासस्य त्रिंशत् दिनानि ३ तथा युगे षष्टि सूर्य्यमासा इति षष्ट्या युगदिनानां भाग ह्रियते लब्धाः सूर्य्यमासदिवसास्त्रिंशदहोरात्रस्यार्द्धं च ४ तथा युगदिवसा एव अभिवर्द्धितमासा दिवसानयनाय त्रयोदशगुणाः क्रियन्ते जातानि त्रयोविंशतिसहस्त्राणि सप्तशतानि नवत्यधिकानि तेषां चतुश्चत्वारिंशते सप्तभि शतैर्भोगो ह्रियते लब्धा एकत्रिंशद्दिवसा शेषास्यवतिष्ठन्ते षट्त्रिंशत्यधिकानि सप्तशतानि चतुश्चत्वारिंशत्सप्तशतभागानां ततः उभयेषामप्यङ्कानां षड्भिरपवर्तना क्रियते जातामेकविंशशतं चतुर्विंशत्युत्तरशतभागानामिति उक्ताः पञ्चापि कालमासाः ॥ १ ॥

देखिये उपरके पाठमें श्रीतपगच्छके मुख्याचार्य्यजी श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी अपने (स्वयं) नक्षत्रमास १ चंद्रमास २ ऋतुमास ३ आदित्यमास ४ और अभिवर्द्धितमास ५ इन पांचमासोंकी व्याख्या करते पांचमा अभिवर्द्धित मासकी और अभिवर्द्धित संवत्सरकी विशेष व्याख्या खुलासे कर दिखाइ हैं कि—

अभिवर्द्धितनाम संवत्सर मुख्य तेरह चंद्रमासोंसें होता हैं एक चंद्रमासका प्रमाण गुनतीस दिन बत्तीस बासटीया भाग अर्थात् २९ दिन ३० घटीका और ५८ पल प्रमाणे होता हैं जिसकों तेरह चंद्रमासोंसें तेरह गुना करने सें दिन ३८३। ४४। ६२ भाग अर्थात् ३८३ दिन ४२ घटीका और ३४ पल प्रमाणे एक अभिवर्द्धित संवत्सर होता हैं चंद्रमासकी व्यख्या

उपरमें लिखीहै सोही तेरह चंद्रमास के अभि वर्द्धितसंवत्सर का प्रमाणको बारह भाग में करनेसे एक भाग में ३१।१२४।१२१ होता है सोही प्रमाण एक अभिवर्द्धित मासका जानना, याने ३१ अहोरात्रि और एक अहोरात्रि के १२४ भाग करके उपरके तीन भाग छोड़कर बाकीके १२१ भाग ग्रहण करना अर्थात ३१ दिन तथा ५८ घटीका और ३३ पलसे दश अक्षर उच्चारणमें न्यून इतने प्रमाणका एक अभिवर्द्धित मास होताहै सो अवयवोंके उच्चारणसे अभिवर्द्धित मास कहतेहैं अर्थात् जिस संवत्सरमें जब अधिक मास होताहै तब तेरह चंद्रमास प्रमाणे अभिवर्द्धित संवत्सर कहतेहै उसी के तेरहवा चंद्रमासके प्रमाणको बारह भागोंमें करके बारह चंद्रमासोंके साथ मिलानेसे बारह चंद्रमासोंमें तेरहवा अधिकमासके प्रमाणों (अवयवों) की वृद्धिहुई इसलिये अवयवोंके उच्चारणसे मासका नाम अभिवर्द्धित कहाजाता है एसे बारह अभिवर्द्धित मासोंसे जो हुवा संवत्सरका प्रमाण उसीको अभिवर्द्धित संवत्सर कहतेहैं परंतु अधिक मासके कारणसे तेरह चंद्रमासोंसे अभिवर्द्धित संवत्सर होताहै सो गिनतीके प्रमाणमेंतो तेरहाही मास गिनेजावेंगे सोतो श्रीप्रवचनसारोद्धार, श्रीचंद्रप्रज्ञप्तिवृत्ति, श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति वृत्ति श्रीसमवायांगजीसूत्रवृत्ति के जो पाठ उपरमें छपगये हैं उनपाठोंसे खुलासा दिखता है।

और पांचोंही प्रकारके मासोंके निज निज मास प्रमाण से निज निज संवत्सरका प्रमाण तथा निज निज मासके और निज निज संवत्सरके प्रमाणसे पांच वर्षोंसे एक युगके १८३० दिनोंकी गिनती का हिसाब संबंधी आगे यंत्र (कोष्टक) लिखनेमें आवेगें जिससे पाठक वर्गको सरलता पूर्वक जल्दी अच्छी तरहसे समझमें आसकेगा।

और भी अधिक मासकी गिनती प्रमाण करने सम्बन्धी सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि वृत्ति और प्रकरणादि शास्त्रोंके पाठ मौजूदहैं परंतु विस्तारके कारण से यहां नहीं लिखताहू तथापि विवेकी जनता उपरोक्त पाठार्थोंसे भी स्वयं समझ जावेंगे ।

अब इस जगह जिनाज्ञा विरुद्ध प्ररूपणा से तथा वर्तने वर्तानेसे संसार वृद्धिका भय रखनेवाले और जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी निष्पक्षपाती सज्जनपुरुषोंको मैं निवेदन करता हुं कि देखे उपरमें श्रीचन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तिमें तथा श्रीसूर्य्य प्रज्ञप्तिवृत्तिमें सर्व (अनन्त) श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके कथनानुसार श्रीमलयगिरिजीने। तथा श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें श्रीगणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामीजीने और श्रीसमवायाङ्ग जी सूत्रकी वृत्तिमें श्रीखरतरगच्छके श्रीअभयदेवसूरिजीने और श्रीप्रवचनसारोद्धारमें श्रीतपगच्छके पूर्वज श्रीनेमिचन्द्र सूरिजीने। तथा श्रीवृहत्कल्पवृत्तिमें श्रीतपगच्छके श्रीक्षेम-कीर्ति सूरिजीने इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें अधिकमासको प्रमाण करके गिनतीमें मंजूर किया हैं जैसे बारे मासोकी गिनतीमें कोई न्यून्याधिक नहीं हैं तैसे ही अधिकमास होनेसे तेरहमासोंकी गिनतीमें भी कोई न्यून्याधिक नहीहैं किन्तु सबी हीबरो बरहैं सो उपरोक्त पाठार्थोंसे प्रत्यक्ष दिखता है सो विशेष करके अधिक मासकोभी मुहूर्त्तोंमें, दिनोंमें, पक्षों में, मासोंमें वर्षोंमें, गिनकर पांचसंवत्सरोके एकयुगकी गिनती के दिनोंका, पक्षोंका, मासोंका, वर्षोंका प्रमाण श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्यों ने और श्री खरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके पूर्वजोंने कहा है सो

आत्मार्थी जिनाज्ञाके आराधक पुरषोंको प्रमाण करने योग्य हैं ।

इस संसारको अनन्ते काल हो गये हैं जिसमें अनन्त चौवीशी व्यतित हो गइ चन्द्र सूर्य्यादिके विमान भी अनन्त कालसें सरू हैं इस लिये जैनज्योतिष भी अनन्ते कालसें प्रचलित हैं जिसमें अधिक मास भी अनन्ते कालसें चला आता हैं—मास वृद्धिके अभावसें बारह मासके संवत्सरका नाम चन्द्र संवत्सर हैं और मासवृद्धि होनेसें तेरहमासकी गिनतीके कारणसें संवत्सरका नाम अभिवर्द्धित संवत्सर हैं तीन चन्द्रसंवत्सर और दोय अभिवर्द्धित संवत्सर इन पांच संवत्सरोंसें एकयुग होता हैं एकयुगमें पांच संवत्सरोंके बासठ (६२) मासोंकी बासठ (६२) पूर्णिमासी और बासठ (६२) अमावस्याके एकसो चौवीश (१२४) पर्वणि अर्थात् पाक्षिक अनन्त तीर्थङ्करादिकोंनें कही हैं जिससें अनन्तकाल हुए अधिकमासकी गिनती दिन, पक्ष, मास, वर्षादिमें चली आती हैं किसीने भी अधिकमासकी गिनती का एकदिन मात्र भी निषेध नही किया हैं तथपि वड़े आफसोस की वात हैं कि, वर्तमानिक श्रीतपगच्छादिवाले अधिकमास की गिनती वड़े जोरके साथ वारंवार निषेध करके एकमासके ३० दिनोंकी गिनती एकदम छोड़ देते हैं और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर महाराजोंकी श्रीगणधर महाराजोंकी श्रीपूर्वधर पूर्वाचार्य्योंजी की तथा इनलोगोंके खास पूज्य श्रीतपगच्छके ही प्रभाविकाचार्य्योंजी की आज्ञा भङ्गका भय नही करते हैं और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्योंजी की आज्ञा मुजब वर्तमानमें श्रीखरतरगच्छादिवाले अधिक-

मासकों प्रमाण करके गिनतीमें मंजूर करते हैं जिन्होंकों आज्ञा भङ्गका मिथ्या दूषण लगाके उलटा निषेध करते हैं फिर आप आज्ञाके आराधक बनते हैं यह कितनी बड़ी आश्चर्य्यकी बात हैं।

श्रीअनन्त तीर्थङ्करादिकोंने अधिकमासको गिनतीमें प्रमाण किया हैं इसलिये जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी पुरुष कदापि निषेध नही कर सकते हैं तथापि वर्तमानमें जो अधिक मासको गिनतीमें निषेध करते हैं जिन्होंकों श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्योंकी और अपने पूर्वजोंकी आज्ञाभङ्गके सिवाय और क्या लाभ होगा सो निर्पक्षाती आत्मार्थी पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगें।

प्रश्नः—अजी तुम तो श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्योंजी की शाक्षिसें अधिकमासको दिनोंमें पक्षोंमें, मासोंमें, वर्षोंमें, गिनती करनेका प्रत्यक्षप्रमाण उपरोक्त शास्त्रोंके प्रमाणसें दिखाया हैं परन्तु वर्तमानिक श्रीतपगच्छादिवाले अधिकमास तो एककाल चूलारूप हैं इसलिये गिनतीमें नही लेना एसा कहते हैं सो कैसें।

उत्तरः—भो देवानुप्रिये वर्तमानिक श्रीतपगच्छादिवाले अधिकमासको कालचूला कहके गिनतीमें निषेध करते हैं सो कदापि नही हो सकता है क्योंकि अधिकमासको कालचूला किस कारणसें कही हैं जिसका अभिप्राय और कालचूला कहनेसें भी विशेष करके गिनती करने योग्य हैं तथा कालचूलाकी ओपमा बहुत उत्तम श्रेष्ठ शास्त्रकारोंने दिवी हैं सो हमतो क्या कुल जैन श्वेतांबर जिनाज्ञाके आराधन करनेवाले आत्मार्थी सबी पुरुषोकों मान्य करने योग्य हैं

और गिनती भी करनें योग्य है जिसका कारण शास्त्रोंके प्रमाण सहित दिखाते हैं श्रीजिनदास महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर महाराज कृत श्रीनिशीथ सूत्रकी चूर्णि श्रीसोहन-लालजी महाराजके खुरतका ज्ञानभंडारसें आई थी जिसके प्रथम उद्देशेके पृष्ठ २१ में तत्पाठ—

इयाणिं चूलेति दारं॥ णाम ठवणा गाहा णिक्खेव गाहा ॥ कंठा ॥ णाम ठवणाउमयाउ दव्वचूला दुविहा आगमतो णो आगमतोय आगमउ जाणए अणुवउते णो आगमतो जाणय भव्वसरीरं जाणयभव्वसरीरवइरित्ता तिधा य दव्वचूला गाहा पुव्वद्धं ॥ कंठं ॥ पढमो वसद्दो वधारणे वितिउरु सुव्वये पुव्वडे जहा संखंमि ॥उदाहरणा ॥ सचित्तचूडा कुक्कुटचूला सा मंसपेसी चेव केवला लोकप्रलिता सीसाचूडा मोरसिहा तस्स मंसपेसीए रोमाणि भवंति अचित्ता चूला मणीकुंतगा वा आदिसद्दाउ सीहकस्स पासाद थूभअग्गाणि ॥ दव्वचूलागता ॥ इदाणिं खेत्तचूला सा तिविहा ॥ अह तिरिय उद्द्ध। गाहा॥अह इति अधोलोकः तिरिय इति तिरियलोकः उद्द्ढ॥ इति ऊर्द्ध लोकः लोगस्स सद्दो पत्तेगं चूला इति सिहा-होंति। भवति। इमाइति प्रत्यक्षो तु शब्दो क्षेत्रावधारणे अहोलोगा दीण पच्छद्धेण जहा संखं उदाहरणा सीमंतग इति सीमंतगो णरगो रयणप्पभाय पुढवीउ पढमो सो अह लोगस्स चूला। मंदरोमेरु सो तिरियलोगस्सचूलातिक्रान्तत्वात् अहवा तिरिय लोगपति ठियस्स मेरोवरि चत्तालीसं जोयणा चूला सो तिरिय लोगचूला वसद्दो समुच्चये पाय पूरणे वा इसित्ति अप्पभावे पढति प्रायो वृत्याभार इति भारक्कं तस्स पुरिसस्स गायं पाय सो इसिणयं भवति जाव एवं ठितासा पुढवी

इसिपभाराणास इति एतसभिहाणं तस्स साथ मव्वट्ठ सिद्धि विमाणाउ उवरिं वारसेहि जोयणेहिं भवति तेण सा उट्ठलोए भवति। गता खित्तचूला। इयाणिं काल भावचूलाउ दोविएग गाहाए भसति। अहिमासउउकाले। गाहा। वारसमास वरिसाउ अहिस्मासो अहिमासउ अहिवड्ढिय वरिसे भवति सोय अधिकत्वात् कालचूला भवति तु सद्दोर्थेप्प दरिसणेण केवलं अधिको कालो कालचूला भवति अंतो विवड्ढमाणो कालो कालचूलाए भवति एवं जहाउसप्पिणीए अंते अंति दूस समाए सा उस्सप्पिणीए अंते कालस्सचूला भवति। कालचूला गता। इयाणिं भावचूला। भवणं भावः पर्याय इत्यर्थः॥ तस्स चूला भावचूला सोय दुविहा आगमउय णो आगमउय आगमउजाणए उवउत्तेण णो आगमउय इमाचेव तुसद्दो। खउवसम भावविसेसेण दट्ठव्वो इमाइति। पकप्प भयण चूला एग सद्दोवधारणे चूलेगठिता चूलात्तिवा विभूसणंति वा सोहरंति वा एते एगठो॥ चूलेति दारंगयं॥ इति श्रीनिशीथसूत्रके पहिले उद्देशे की चूर्णिके पृष्ठ २२ तक

और भी १४४४ ग्रन्थकार सुप्रसिद्ध महान् विद्वान् श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीदशवैकालिकसूत्रके प्रथम चूलिकाकी वृहत्‌वृत्तिका पाठ सुनिये श्रीदशवैकालिकमूलसूत्र, अवचूरि, भाषार्थ,दीपिका और वृहत्‌वृत्ति सहित मुम्बईसें छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके पृष्ठ ६४० और ६४१का चूला विषयका नीचे मुजब पाठ जानो—यथा—

अधुनौघतश्चूड़े आरभ्यते अनयोश्चायमभिसम्बन्धः। इहानन्तराध्ययने भिक्षुगुणयुक्त एव भिक्षुरुक्तः सचैवं भूतोऽपि कदाचित् कर्म्मपरतन्त्रत्वात् कर्म्मणश्च बलवत्त्वात्सीदेदत

एतत् स्थिरीकरणं कर्तव्यमिति तदर्थाधिकारवच्चूडाद्वयमभि-
धीयते तत्र चूडाशब्दार्थमेवाभिधातुकाम आह॥दव्वे खेत्ते काले,
भावम्मिअ चूलिआय निक्खेवो॥ तं पुण उत्तरतंतं, सुअ गहि-
अत्थं तु संगहणी ॥ २६ ॥ व्याख्या ॥ नाम स्थापनेक्षुस्णात्वा-
दनादृत्याह द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे च द्रव्यादिविषयश्चूडाया
निक्षेपो न्यास इति। तत्पुनश्चूडाद्वयमुत्तरतन्त्रमुत्तरसूत्रम्
दशवैकालिकस्याचारपञ्चचूडावत् एतच्चोत्तरतन्त्रं श्रुतगृही-
तार्थमेव दशवैकालिकाख्य श्रुतेन गृहीतोऽर्थोऽस्येति विग्रहः
यद्येवनपार्थकमिदम्। नेत्याह संग्रहणी तदुक्ता नुक्तार्थ-
संक्षेप इति गाथार्थः द्रव्यचूडादिव्याचिख्यासयाह ॥ दव्वे
सच्चित्ताई, कुक्कुट चूडामणी मऊराइ ॥ खेत्तमि लोगनिक्कुड
मंदरचूडा अ कूडाइ ॥ २७ ॥ व्याख्या ॥ द्रव्य इति द्रव्यचूडा
आगम नोआगम ज्ञशरीरेतरादिव्यतिरिक्ता त्रिविधा स
चित्ताद्या। सचित्ता अचित्ता मिश्राच। यथा संख्यमाह—
कुक्कट चूडा सचित्ता मणिचूडा अचित्ता मयूरशिखामिश्रा।
क्षेत्र इति क्षेत्रचूडा लोकनिष्कुटा उपरिवर्तिनः मन्दरचूडा
च पाण्डुकम्बला। चूडादयश्च तदन्यपर्वतानां क्षेत्रप्राधा-
न्यात् आदिशब्दादधोलोकस्य सीमंतकः तिर्य्यग् लोकस्य
मन्दर ऊर्द्ध्वलोकस्येषत्प्राग्भार इति गाथार्थः॥ अइरित्त
अहिगमासा, अहिगा संवत्सराअकालंमि॥ भावे खउ वस-
मिए, इमाउ चूडासुणे अव्वा॥ २८॥ व्याख्या॥ अतिरिक्ता
उचितकालात् समधिका अधिकमासका प्रतीताः अधिकाः
संवत्सराश्च षष्टाब्दाद्यपेक्षया काल इति कालचूडा भाव इति
भावचूडा क्षायोपशमिके भावे इयमेव द्विप्रकारा चूडा
मन्तव्या विज्ञेया क्षायोपशमिकत्वाच्छ्रुतस्येति गाथार्थः
तत्रापि प्रथमा रतिवाक्यचूडा इत्यादि।

और भी श्रीजिनभद्र गणिक्षमाश्रमणजी महाराज युग-प्रधान महाप्रभाविक प्रसिद्ध है जिन्होंके शिष्य श्रीशीलाङ्गाचार्य्यजी भी महाविद्वान् श्रीआचाराङ्गादि ११ अङ्गरूप सूत्रोंकी टीका करनेवाले प्रसिद्ध है जिसमें श्रीआचाराङ्गजी तथा श्रीसूयगडाङ्गजी सूत्रकी टीका तो सुप्रसिद्धिसे वर्त रही हैं और बाकी श्रीस्थानाङ्गजी आदि नवसूत्रोंकी टीका विच्छेद होगई थी जिससें श्रीअभयदेवसूरिजीनें दूसरी वार बनाई है सो प्रसिद्ध है श्रीशीलाङ्गाचार्य्यजी विक्रम संवत् ६५० के लगभग हुवे हैं सो श्रीआचाराङ्गजी सूत्रकी व्याख्या रूप टीका करते दूसरे श्रुतस्कन्धकी व्याख्याके आदिमें ही चूलाका विस्तार किया है परन्तु यहाँ थोड़ासा लिखता हुं श्रीमकसुदावाद निवासी धनपतिसिंह बहादुरकी तरफ सें श्रीआचाराङ्गजी मूलसूत्र, भाषार्थ, दीपिका और वृहत् वृत्ति सहित छपके प्रसिद्ध हुवा है जिसके दूसरा श्रुतस्कन्धके पृष्ठ ४में सें चूलाविषयका थोड़ासा पाठ नीचे मुजब जानो यथा—

चूडाया निक्षेपः नामादिः षड्विधः नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यचूड़ा व्यतिरिक्ता सचित्ता कुक्कुटस्य अचित्ता मुकुटस्य चूडामिश्रामयूरस्य, क्षेत्रचूड़ा लोकनिःकुटरूपा कालचूड़ा अधिकमासक स्वभावा भावचूडात्वियमेव क्षयोपशमिक-भाववर्तित्वात् तथा (इसके पहले तीसरे पृष्ठमें) कालाग्र-मधिकमासकः यदिवाग्र शब्दः परिमाणवाचक इत्यादि—

देखो उपरोक्तशास्त्रोंके कर्तामें श्रीजिनदासमहत्तराचार्य्यजी पूर्वधरगीतार्थ पुरुष प्रसिद्ध है तथा श्रीहरिभद्र सूरिजी भी पूर्वधर गत गीतार्थ पुरुष प्रसिद्ध हैं और श्रीजिनभद्रगणि

क्षमाश्रमणजी महाराजके पट्टधरशिष्य श्रीशीलांगाचार्य्यजी महाराज भी महाप्रभाविक गीतार्थ पुरुष प्रसिद्ध है। इस लिये उपरके पाठ सर्व जैनश्वेतांवर आत्मार्थी पुरुषोंको प्रमाण करनें योग्य हैं ऊपरके पाठमें नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सें, छ (६) प्रकारकी चूला कही हैं जिसमें नाम, स्थापना, तो प्रसिद्ध हैं और द्रव्य चूलादि की व्याख्या खुलासा किवी हैं कि,—द्रव्यचूला दो प्रकारकी प्रथम आगमरूप शास्त्रोंमें कही हुइ और दूसरी नो आगम सो मति, अवधि, मनपर्यव, तथा केवल ज्ञानसें जानी हुइ द्रव्य चूला सो भव्य शरीर अर्थात् ज्ञानीजो महाराज अपने ज्ञानसें पहलेसें ही देखके जानलेवें कि यह मनुष्य आगामी काले साधु आदि धर्मी पुरुष होने वाला हैं ऐसा जो मनुष्य का शरीर जिसको द्रव्य चूला कहते हैं, कारण कि, इस संसारमें अनन्तीवार शरीर पाया परन्तु उत्तम पदवी पाने योग्य शरीर पाना बहुत मुश्किल हैं तथापि अब पाया जिससें धर्मप्राप्तिका योग्य होवे एसें शरीर को ज्ञानी महा-राजनें भव्यशरीर कहा हैं सो उस शरीरको अनन्ते सब शरीरोंसें उत्तम कहो तथा श्रेष्ठ कहो अथवा चूलारूप कहो सबीका तात्पर्य्य एकार्थका हैं—और भी प्रसिद्ध द्रव्य चूला तीनप्रकारकी कही है जिसमें प्रथम कुक्कुट (मुरगा) के मस्तक उपर शिखररूप मांसपेसी सहित होनेसें उसीकों सचित्तचूला कही जाती हैं तथा दूसरी मोर (मयूर) के मस्तक उपर शिखररूप मांसपेसी और रोंम सहित होनेसें उसीको मिश्र चूला कही जाती हैं और तीसरी मणि तथा कुन्त और मुकुटादिकके उपर शिखररूप होवे उसीकों अचित्त

चूला कही जाती हैं इन्होंकों चूलाकी ओपमा देनेका यही कारण है कि सब भवअवयोंसें विशेष सोभाकारी सुन्दर उत्तम होनेसें शिखरकी अर्थात् चूलाकी ओपमा शास्त्रकारोंने दिवी हैं, द्रव्यचूलारूप भव्यशरीरकों गिनतीमें करके प्रमाण करनें योग्य हैं, द्रव्यनिक्षेपावत् अर्थात् रावण कृष्ण श्रेणिकादि अबी द्रव्य निक्षेपेमें गिने जाते हैं परन्तु ज केवल ज्ञान पावेंगें तब भाव निक्षेपेमें गिने जावेंगें तैसेही भव्यशरीर जो द्रव्यचूलासें हैं सो जब साधु आदि धर्मकी प्राप्ति होगा तब भावचूलामें गिना जावेगा । द्रव्यचूला की गिनती नही करोगे तो आगे भावचूलामें कैसे गिना जावेगा इस लिये द्रव्यचूलाकी गिनती प्रमाण करने योग्य हैं ।

और क्षेत्रचूला भी तीनप्रकार की कही हैं जिसमें प्र अधोलोकमें रत्नप्रभा पृथ्वीके सीमन्तनामा नरकावासा अ लोकके उपर जो शिखररूप है उसीकों अधोलोक चूला क जाती हैं तथा दूसरी तिर्यग् (तीरछा) लोकमें सुप्रसिद्ध मेरुपर्वत हैं उसीको तिर्यग् लोकचूला कहते हैं कारण तिर्यग् लोकका प्रमाण उंचा १८०० सो योजनका हैं पर मेरुपर्वत तो एक लक्ष योजनका होनेसें तिर्यग्लोककों अतिक्रान्त (उल्लङ्घन) करके उंचा चला गया इस लि तिर्यग्लोकके उपर शिखररूप होनेसें मेरुपर्वतकों चूल गिना जाता हैं तथा मेरुके उपर जो ४० योजनकी चूली हैं सो भी मेरुके शिखररूप होनेसें चूलामें गिनी जाती और मेरुके चार वनोंमें १६ तथा १ चूलीकाका मिलके मन्दिरोंमें २०४० श्रीजिनेश्वर भगवान् की शाश्वती प्र माजी हैं इसलिये क्षेत्रचूलाका प्रमाण एक अंशमात्र

गिनतीमें नही छुटसकता हैं और तीसरी ऊर्द्ध (उंचा) लोकमें सर्वार्थ सिद्धि विमानसें बारह योजन पर ईषत्प्राग्भारा नाम पृथ्वी जो सिद्धसिला ४५०००००० लक्ष योजन प्रमाणे लंबी और चौड़ी हैं तथा बीचमें आठ योजन की जाड़ी हैं जिसके उपर श्रीअनन्त सि भगवान् विराजमान हैं एसी जो सिद्ध सिला सो ऊर्द्ध लोकके शिखररूप होनेसें चूलामें गिनी जाती हैं यह क्षेत्रचूला भी प्रमाण करके गिनतीमें करनें योग्य हैं।

और कालचूला उसीको कहते हैं कि जो बारह चन्द्र मासोंसें चन्द्रसंवत्सर एकवर्ष होता हैं जिसका उचितकाल हैं उसमें भी एक अधिक मासकी वृद्धि हो कर बारह मासोंके उपर पड़ता हैं सो लोकोंमें प्रसिद्ध भी हैं और अनादि कालसें अधिकमासका एसाही स्वभाव है सो प्रमाण करनें योग्य हैं और अधिकमास ज्यादा पड़नेसें संवत्सरका नाम भी अभिवर्द्धित होजाता हैं बारहमासोंका कालके शिखररूप अधिकमास ज्यादा होनेसें उसको कालचूला कही जाती है तथा जैन ज्योतिषके शास्त्रोंसें साठ (६०) वर्षोंकी अपेक्षासें एक वर्षकी भी वृद्धि होती थी जिसकों भी कालचूला कहते हैं और उत्सर्पिणिके अन्तमें भी जो काल वर्त्ते सोभी कालचूलामें गिना जाता हैं तथा कालचूलारूप जो अधिकमास है उसीको प्रमाण करके गिनतीमें मंजूर करना चाहिये क्योंकि अधिकमासको कालचूलाकी जो ओपमा है सो निषेधकवाची नहीं है किन्तु विशेष शोभाकारी उत्तम होनेसें अवश्य ही गिनती करनेके योग्य है। तथापि वर्तमानिक श्रीतपगच्छादिवाले जो महाशय अधिकमास को

कालचूला कहके गिनती में नही लेते हैं और निषेध भी करते है। जिन्होंको मेरा इतना ही पूछना है कि आप लोग अधिक मासको कालचूला जानके गिनती नही करते हो तो अभिवर्द्धित नाम संवत्सर कैसे कहते हो और अभिवर्द्धित नाम सवत्सर तो कालचूलारूप अधिकमास ज्यादा होनेंसे तेरह चन्द्रमासोंकी गिनती करनेसें ही होता है तथाहि—

अभिवर्द्धीत्यभिवर्द्धितः अभिवर्द्धितश्चासौ संवत्सरोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः अभिवर्द्धतश्चात्राभिवृद्धिरूपः अभिवृद्धिस्तु अधिकमासे नैव बोधव्य अनयारीत्या अयं संवत्सर अन्वर्थसंज्ञां लब्धवान् अन्वर्थसंज्ञायाः कारणतातु अधिकमासनिष्ठैव कारणत्वावच्छिन्नस्तु शिरोमौलिमुकुटहीरायमाणोऽधिकमास एव अधिकमासनिरुक्तिश्चेत्थं यतोऽत्र संवत्सरे द्वादशमासेभ्योऽधिकः पतति अतोऽधिकमासः एतद्गणनामन्तरेण तु अन्वर्थसंज्ञायारसङ्गत्यापत्तिरेवेति ध्येयम् ।

अर्थः जो और संवत्सरोंकी अपेक्षासें ज्यादा हो यानें अधिक महिनावालो होय सो अभिवर्द्धित संवत्सर इस संवत्सरमें वृद्धि जो है सो अधिकमास ही करके है इस कारणसे इस संवत्सरका अर्थानुसार अभिवर्द्धित नाम हुवा अर्थानुसार अभिवर्द्धित नाम रखनेमें अधिकमास कारण हुवा और अभिवर्द्धितनाम कार्य्य हुवा इनोंका कार्य्य कारण भाव सिद्ध हुवा कारणताधर्मयुक्त होनेसें यह अधिकमास सब मासोंके मस्तकके शोभा करने वाला जो मुकुट जिसकी शोभा करनें वाला जो हीरारत्न उसकी तुल्य हुवा और जिस कारणसें इस महिनें का नाम अधिकमास हुवा सो

कारण यह है कि यह मास इस संवत्सरमें वारहमासोंसे अधिक पड़ा इसलिये इसका नाम भी अर्थानुसार है इसकी गणनाके बिना अर्थानुसार नाम अभिवर्द्धित संवत्सरका न होगा न होनेसें असङ्गति दोष रहता है यह चिन्तन करना चाहिये। अब अधिक मासकी गिनती नही करने वाले महाशय तेरह चन्द्रमासोंके बिना अभिवर्द्धित संवत्सर कैसे बनावेंगे क्योंकि तेरह चन्द्रमासोंके बिना अभिवर्द्धित-संवत्सर नही हो सकता हैं तथा अभिवर्द्धित संवत्सरके बिना एकयुगके ६२ चन्द्रमासोंकी ६२ अमावस्या और ६२ पूर्णिमासीके १२४ पाक्षिकोंकी गिनती नही बन सकेगा इस लिये कालचूलारूप अधिक मासकी गिनती करनेसें अभि-वर्द्धित संवत्सर तेरह चन्द्रमासोंकी गिनतीसें होता है सोही श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधर पूर्वाधरादि पूर्वाचार्य्ये तथा खरतरगच्छके और तपगच्छादिके पूर्वाचार्य्योंने अधिक-मासकों दिनोंमें पक्षोंमें मासोंमें वर्षोंमें गिनतीमें प्रमाण करके एकयुगके ६२ चन्द्रमासोंके १८३० दिनोंकी गिनती कही है सो उपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंसे लिख आये हैं जिससे जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी पुरुषोंको अधिक मासकी गिनती मंजूर करनी चाहिये इसके लिये आगे युक्ति भी दिखावेंगे इति कालचूला सम्बन्धी किञ्चित् अधिकार—

और चौथी भावचूला भी आगमसें तथा नो आगमसे क्षयोपशमादिकी व्याख्या प्रसिद्ध हैं और श्रीदशवैका-लिकजी सूत्रकी दो चूला तथा श्रीआचाराङ्गजी सूत्रकी दो चूला और मन्त्राधिराज महामङ्गलकारी श्रीपरमेष्ठि-मन्त्रकी चार चूला इत्यादि सब भावचूला कही जाती हैं

सो विभूषणा कहो, शोभारूप कहो, शिखररूप कहो, विशेष सुन्दरता मुपटरूप कहो अथवा चूलारूप कहो, सब मतलबका तात्पर्य्य एकार्थका हैं इसलिये गिनती करने योग्य है और जैसें द्रव्य, भाव, नाम, स्थापनासें चार निक्षेपे कहे हैं सो मान्य करने योग्य है तथापि द्रव्य, स्थापनादि का निषेध करने वालोंकों (श्रीखरतरगच्छवाले तथा श्रीतपगच्छादि वाले सर्व धर्म्मबन्धु) मिथ्यात्वी कहते हैं तैसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे जो चूला कही है सो अनादिकालसें प्रवर्त्तना रूरू हैं श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंनें प्रमाण किवीं है सो आत्मार्थियोंकों प्रमाण करके मान्य करनें योग्य है तथापि क्षेत्रकालादि चूलायोंकों गिनतीमें मान्य नही करते उलटा निषेध करते हैं और जो मान्य करते हैं जिन्होंको दूषण लगाते हैं ऐसे श्रीतीर्थङ्करादि महाराजों के विरुद्ध वर्तने वाले विद्वान् नामधारक वर्त्तमानिक महाशयोंको आत्मार्थी पुरुष क्या कहेंगे जिसका निष्पक्षपाती श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके पाठक वर्ग स्वयं विचार लेवेंगे—

और अधिक मासकों कालचूला कहनेसें भी गिनतीमें निषेध कदापि नही हो सकता है किन्तु अनेक शास्त्रोंके प्रमाणोंसें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार अवश्यमेव गिनतीमें प्रमाण करणा योग्य है तथापि जैन सिद्धान्त समाचारीकारनें कालचूलाके नामसें अधिकमासकी गिनती उत्सूत्रभाषणरूप निषेध किवी है जिसका उतारा प्रथम इसजगह लिख दिखाते हैं और पीछे इसकी समालोचनारूप समीक्षा कर दिखावेंगे, जैनसिद्धान्त समाचारीके पृष्ठ ९०की

पंक्ति १६॥ से पृष्ठ ९१ की पंक्ति १३ वीं तक चूला सम्बन्धी लेखका उतारा नीचे मुजब जानो—

[इस अधिक मासकों कालचूला मानते हैं सो अब दिखाते हैं, चूला चार प्रकारकी शास्त्रोंमें कथन करी है, यथा–निशीथे दशवैकालिक वृत्तौ च ॥ तथाहि—'चूला चातुर्विध्यं। द्रव्यादिभेदात् तत्र द्रव्यचूला ताम्र चूलादि १ क्षेत्रचूला मेरोश्चत्वारिंशद्योजन प्रमाण चूलिका २ कालचूला युगे तृतीयपञ्चमयोर्वर्षयोरधिकमासकः ३ भावचूला तु दश-वैकालिकस्य चूलिकाद्वयं ४ इति॥

(भावार्थः) जैसें निशीथसूत्र विषे और दशवैकालिक वृत्ति विषे है तैसें दिखाते हैं, चूला चार प्रकारकी है, द्रव्यादि भेद करके तिसमें द्रव्यचूला उसकों कहते है कि-जो मुरगादिके शिरपर होती है. १ क्षेत्रचूला यह है कि-मेरूपर्वतकी चालीश योजन प्रमाण जो चूला है. २ काल चूला उसकों कहते है कि-जो तीसरे वर्ष और पाँचमें वर्षमें अधिक मास होता है. ३ भावचूला उसकों कहते है कि-जो दशवैकालिक की चूलिका है ॥ ४ ॥

(पूर्वपक्ष) कालचूला कहनेसें आपकी क्या सिद्धि हुई ?

(उत्तर) हे परीक्षक! कालचूला कहनेसें यह सिद्ध होता है कि-चूलावाले पदार्थके साथ प्रमाणका विचार करना होवे तो उस पदार्थसें चूला न्यारी नही गिनी जाती है. जैसें मेरुका लक्ष योजन प्रमाण कहेंगे तब चूलिकाका प्रमाण भिन्न नही गिणेंगे।

तैसें चतुर्मासके विचारमें और वर्षके विचार करनेके

अवसरमें अधिक मासका विचार न्यारा नही करेगे. इस वास्ते अधिक मासकों कालचूला कहते है]।

उपरके लेखकी समीक्षा करते हैं कि—प्रथमतो जैन सिद्धान्त समाचारीकारनें निशीथ सूत्रके नामसें चूलाका पाठ लिखा है सो सूत्रमें बिलकुल नही है किन्तु निशीथ सूत्रकी चूर्णिमें जिनदास महत्तराचार्य्यजीने चूलासम्बन्धी व्याख्या किवी है और दशवैकालिक सूत्रकी वृत्तिके पाठका नाम लिखा सोभी नही है किन्तु दशवैकालिक सूत्रकी प्रथम चूलिका की वृहत् वृत्तिमें पाठ हैं और उपरमें जो चूला चातुर्विध्यं इत्यादि पाठ लिखा है सो न तो चूर्णिकारका है और न वृत्तिकारका हैं क्योंकि चूर्णिकारनें और वृत्तिकारनें द्रव्यचूला, आगम नो आगमसे भव्यशरीर और सचित्त, अचित्त, मिश्र, तथा क्षेत्रचूला भी सिद्धशिला और मेरुपर्वत अथवा मेरुचूलिका इत्यादि कालचूला भाव चूलाकी विस्तारसे व्याख्या किवी हैं सो हम उपरमें सम्पूर्ण पाठ लिख आये हैं। जिसको और जैनसिद्धान्त समाचारी कारका लिखा पाठको वांचकवर्ग आपसमें मिलावेंगे तो स्वयं मालुम हो सकेगा कि जैनसिद्धान्त समाचारीकारने जो पाठ लिखा है सोनिकेवल बनावटी है क्योंकि हमने उपरमें सम्पूर्ण पाठ लिखा है जिसके साथ इस पाठका अक्षर अक्षर और पंक्ति पंक्ति नही मिलती है तथा चूर्णिकार की प्राकृत संस्कृत मिली हुवी भाषा है और वृत्तिकारकी निर्युक्ति सहित व्याख्या किवी हुई है। जिनसें उपरका पाठ विलकुल भाषा वर्गणादिमें बरोबर नही है इस लिये उपरका पाठ बनावटी हैं—सो प्रत्यक्ष दिखता है तथापि

जैन सिद्धान्त समाचारी कारनें (यथा निशीथे दशवैकालिक वृत्तौच—इस वाक्यसें जैसे निशीथ सूत्र विषे और दशवैकालिक वृत्तिविषे है तैसे दिखाते हैं) एसा लिखके भोले जीवोंको शास्त्रके नाम लिख दिखाये परन्तु शास्त्रकारका बनाया पाठ नही लिखा एसा करना आत्मार्थी उत्तम पुरुषको योग्य नही है और पाठका भावार्थ लिखे बाद पूर्वपक्ष उठायके उत्तर लिखा है जिसमें भी शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप बिलकुल सर्वथा अनुचित लिख दिया है क्योंकि (चूलावाले पदार्थके साथ प्रमाण का विचार करना होवे तो उस पदार्थसें चूला न्यारी नही गिनी जाती है) इन अक्षरो करके चूलाकी गिनती भिन्न नही करनी करते है सो भी मिथ्या है, क्योंकि शास्त्रकारों नें चूला की गिनती भिन्न करके मूलके साथ मिलाइ है सोही दिखाते है कि–देखो जैसे श्रीमन्त्राधिराज महामङ्गलकारी श्रीपरमेष्टि मन्त्रमें मूल पांचपदके ३५ अक्षर है तथा चार चूलिका के ३३ अक्षर हैं सो मूलके साथ मिलने सें नवपदोसें चूलिकायों सहित ६८ अक्षरका श्रीनवकार परमेष्टि मन्त्र कहा जाता है और श्रीदशवैकालिकजी मूलसूत्रके दश अध्ययन है तथा दो चूलिका है जिसको भी शास्त्रकारोनें अध्ययन रूप ही मान्य किवी है और निर्युक्ति, चूर्णि, अवचूरि, वृहद्वृत्ति, लघुवृत्ति, शब्दार्थवृत्ति वगैरह सबी व्याख्याकारोंनें जैसें दश अध्ययनोंका अनुक्रमे सम्बन्ध मिलायके व्याख्या किवी है तैसें ही दो चूलिकारूप अध्ययनकी भी अनुक्रमणिका सम्बन्ध मिलायके व्याख्या किवी है और व्याख्यायोंके श्लोकोंकी संख्या भी चूलिकाके साथ सामिल करनेमें आती

है ऐसे ही श्रीआचारांगजीकी चूलिका, श्रीव्यवहार सूत्रजी की चूलिका, श्रीमहानिशीथसूत्रकी चूलिका वगैरह सबी चूलिकायोंकी गिनती शास्त्रोंके साथ श्लोकोंकी संख्यामें आती है तथा व्याख्यानावसरमें भी चूलिका साथ सूत्र वांचनेमें आता है। परन्तु चूलिकाकी गिनती नही करनी ऐसे तो किसी भी जैन शास्त्रमें नही लिखा हैं इस लिये जो जो चूलावाले पदार्थ है उसीके प्रमाणका विचार और गिनतीका व्यवहारमें चूलाका प्रमाण सहित गिना आता हैं और क्षेत्र चूलाके विषयमें जैनसिद्धान्त समाचारीकारनें लिखा है कि (जैसे मेरुका लक्षयोजनका प्रमाण कहेंगें तब चूलिकाका प्रमाण भिन्न नही गिनेंगे) इन अक्षरोंको लिखके मेरुपर्वतके उपर जो चालीस योजनके प्रमाणवाली चूलिका है। जिसके प्रमाणकी गिणती मेरुसे भिन्न नही कहते हैं सोभी अनुचित है क्योंकि शास्त्रोंमें मेरुके लक्ष-योजनका प्रमाण तथा चूलिकाका चालीस योजनका प्रमाण खुलासा पूर्वक भिन्न कहा हैं सोही दिखाते हैं कि—खास जैन सिद्धान्त समाचारीकारके ही परम पूज्य श्रीरत्नशेखर सूरिजीनें लघुक्षेत्र समास नामा ग्रन्थ बनाया हैं सो गुजराती भाषा सहित श्रीमुंबईवाला श्रावक भीमसिंहमाणक की तरफसें श्रीप्रकरण रत्नाकरका चौथाभागसें छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके पृष्ठ २३४ में मेरुकी चूलिकाके सम्बन्धवाली ११३ भी गाथा भाषा सहित नीचे मुजब जानो यथा—

तदुवरि चालीसुच्चा, वट्टामूलुवरि बारचउपिहुला
वेरुलिया वरचूला, सिरिभवण प्रमाण चेइहरा ॥ ११३ ॥

अर्थः—तदुपरि के, ते लाखयोजन प्रमाणना उंचा

मेरुपर्वत उपरे, चालीसुच्चा के०, चालीस योजननी उंची, अने, वट्ट के०, वर्तुल तथा, मूलुवरि बारचउपिहुला के०, मूलने विषे बार योजन पहोली अने उपर चारयोजन पहोली, तथा, वेरुलिया के०, वैडूर्यनामे जे नीलारत्न तिनी, वर के०, प्रधान, चूला के०, चूलिका छे तेवली चूलिका केहवी छे, सिरिभवण पमाण चेइहरा के०, श्रीदेवीना भवन सरखा चैत्यग्रह एटले जिन भवण तेणे करि महा-शोभित छे इति गाथार्थ ॥ ११३ ॥ उपरकी श्रीरत्नशेखर सूरिजी कृत गाथासे पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे कि, प्रगट पनेसे लक्षयोजनका मेरुके उपरकी चूलिकाके चालीस योजन का प्रमाण भिन्न गिना हैं तथापि जैनसिद्धान्त समाचारीकार भिन्न नही गिनना कहते हैं सो कैसे बनेगा तथा और भी सुनिये जो चूलिकाके प्रमाणको भिन्न नही गिनोंगे तो फिर चूलिकाके उपर एक चैत्य है जिसमें १२० शाश्वती श्रीजिने-श्वर भगवान्‌की प्रतिमाजी है उन्होंकी गिनती कैसे करोगे क्योंकि मेरुमें तो १६ चैत्य कहे है जिसमें १९२० प्रतिमाजी है। तथा एक चूलिकाके चैत्यकी १२० प्रतिमाजीकी गिनती शास्त्रकारोंने भिन्न किवी है सो, जैनमें प्रसिद्ध है। इस लिये चूलिकाकी गिनती अवश्यमेव करनी योग्य है तथापि जो मेरुके चूलिकाकी गिनती भिन्न नही करते हैं जिन्होंको एक चैत्यकी १२० शाश्वती जिन प्रतिमाजीकी गिनतीका निषेधके दूषणकी प्राप्ति होनेका प्रत्यक्ष दिखता है।

और भी आगे कालचूलाके विषयमें जैन सिद्धान्तसमा-चारीके कर्त्ताने ऐसे लिखा है कि (तैसे चतुर्मासके विचारमें और वर्षके विचार करनेके अवसरमें अधिक मासका विचार

न्यारा नही करेंगे इस वास्ते अधिकमासको कालचूला कहते हैं) इन अक्षरोंको लिखके अधिक मासको काल-चूला कहनेसें चतुर्मासकी और वर्षकी गिनतीमें नही लेना ऐसा कहते हैं सो भी अयुक्त है क्योंकि अधिक मासको कालचूला कहनेसें भी अवश्यमेव गिनतीमें लेना योग्य है सो उपरमें विस्तारसे लिख आये है, इसलिये अधिक मासकी गिनती कदापि निषेध नही हो सकती है श्रीतीर्थङ्कारादि महाराजोंने प्रमाण किवी है और अधिकमासको काल चूलाकी ओपमा देनेवाले श्रीजिनदास महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर महाराज भी अधिक मासकी गिनती निश्चयके साथ करते हैं सोही दिखाते हैं श्रीनिशीथसूत्रकी चूर्णिके दशवें उद्देशेमें पर्युषणाकी व्याख्याके अधिकारमें पृष्ठ ३२२का तथाच तत्पाठः—

अभिवढ्ढिय वरिसे वीसती राते गते गिहिणा तं करंति तिसुचन्दवरिसे सवीसति राते गते गिहिणा तं करंति जत्थ अधिमासगो पड़ति वरिसे तं अभिवढ्ढिय वरिसं भरणति जत्थ ण पड़ति तं चन्द वरिसं—सोय अधिमासगो जुगस्सगंते मज्झे वा भवंति जतितो णियमा दो आसाढ़ा भवंति अहमज्जे दो पोसा—सीसो पुछति जम्हा अभिवढ्ढिय वरिसे वीसति रातं, चन्द वरिसे सवीसति मासो उच्यते, जम्हा अभिवढ्ढिय वरिसे गिम्हे चेव सो मासो अतिक्कंतो तम्हा वीस दिना अणभिग्गहियं करंति, इयरेसु तिसु चन्द वरिसेसु सवीसति मासो इत्यर्थः ॥

देखिये उपरके पाठमें अधिक मास जिस वर्षमें पड़ता है उसीको अभिवर्द्धित संवत्सर कहते हैं जहाँ अधिक मास जिस वर्षमें नही पड़ता है उसीको चन्द्र संवत्सर कहते हैं

सो अधिक मास नियम करके होनेंसे युगके मध्यमें दो पौष तथा युगके अन्तमें दो आषाढ़ होते हैं जब दो आषाढ़ होते हैं तब ग्रीष्म ऋतुमें चेव निश्चय वो अधिकमास अतिक्रान्त (व्यतित) होगया इस लिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ़ चौमासीसे वीश दिन तक अनियत वास, परन्तु वीशमें दिन जो श्रावण शुक्लपञ्चमी उसी दिनसें नियत वास निश्चय पर्युषणा होवे और चन्द्र संवत्सरमें पचास दिन तक अनियत वास, परन्तु पचासमें दिन जो भाद्रपदशुक्लपञ्चमी उसी दिनसे नियत वास निश्चय पर्युषणा होवे—

अब उपरके पाठसे पाठकवर्ग पक्षपात रहित होकर स्वयं विचार करेंगें तो प्रत्यक्ष निर्णय हो सकेगा कि खास चूर्णिकार महाराजनें मास वृद्धिको गिनतीमें चेव (निश्चय) अवश्यमेव कहा है और प्रथम उद्देशेका जो पहिले पाठ लिखचुके हैं जिसमें कालचूलाकी भी उत्तम ओपमा दिवी है सो अधिक मासकी गिनती करनेसेही अभिवर्द्धित नाम संवत्सर बनता है सो विशेष उपर लिख आये है तथापि जैन सिद्धान्त समाचारीके कर्त्ताने चूर्णिकार महाराजके सिद्धार्थमें कालचूला कहनेसें अधिक मासकी गिनती नहीं करना ऐसा लिखनेमें क्या लाभ उठाया होगा सो पाठकवर्ग विचार लेना-इति ॥

तथा और इसके अगाड़ी श्रीतपगच्छके अर्वाचीन (थोड़े कालके) तथा वर्त्तमानिक त्यागी, वैरागी, संयमी, उत्कृष्टि क्रिया करनेवाले जिनाज्ञा मुजब शास्त्रानुसार चलने वाले शुद्धपरूपक सत्यवादी और सुप्रसिद्ध विद्वान् नाम धराते भी प्रथम श्रीधर्म्मसागरजीनें श्रीकल्पकिरणावलीमें

दूसरे श्रीजयविजयजीनें श्रीकल्पदीपिकामें तीसरे श्रीविनय विजयजीनें श्रीसुखबोधिकामें चौथे न्यायांभोनिधिजी श्री-आत्मारामजीनें जैन सिद्धान्तसमाचारी नामा पुस्तकमें पांचवें। न्यायरत्नजी श्रीशान्तिविजयजीनें मानवधर्म्म संहिता पुस्तकमें छठे श्रीवल्लभविजयजीनें वर्त्तमानिक जैन पत्र द्वारा सातवें श्रीधर्म्मविजयजीनें पर्युषणा विचारनामकी छोटीसी १० पृष्ठकी पुस्तकमें और आठवा श्रावक भगुभाई फतेचंदने भी पर्युषणा विचार नामका लेख खास जैन पत्रके २३ में अङ्कके आदिमें। इन सबीमहाशयोंने जैन शास्त्रोंके अति गम्भिरार्थका तात्पर्य्य गुरुगमसें समझे विना श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्योंके तथा खास श्रीतपगच्छकेही पूर्वाचार्य्योंके भी विरुद्ध होकर शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप अधूरे अधूरे पाठ लिखके (परभवका भय न रखते मिथ्या) अपनी अपनी इच्छानुसार अधिक मास की गिनती निषेध सम्बन्धी अनेक तरहके विकल्प श्रीखर-तरगच्छादिवालोंके ऊपर आक्षेपरूप किये है।

जिसको पढ़नेसें भोले जीवोंकी श्रद्धा भङ्ग होनेका कारण जानके निर्पक्षपाती आत्मार्थी जिनाज्ञाके आराधक सत्य-ग्राही भव्य जीवोंको सत्यासत्यका निर्णय दिखानेके लिये उपरोक्त महाशयोंके लिखे हुए लेखोंकी समालोचनारूप समीक्षा शास्त्रानुसार तथा ग्रन्थकार महाराजके अभिप्राय सहित और युक्तिपूर्वक लिख दिखाता हुं—

प्रश्नः—तुम उपरोक्त महाशयोंके लिखे हुएं लेखोंकी समीक्षा करोगें जिसमें जैन सिद्धान्त समाचारी की पुस्तक श्रीआत्मारामजी की बनाई हुई नहीं है किन्तु उनके शिष्य

श्रीकान्तिविजयजी तथानें श्रीअमरविजयजीनें बनाई है ऐसा उस पुस्तकमें छपा है फिर श्रीआत्मारामजीका नाम उपरमें क्यों लिखा है और पर्युषणा विचार नामकी छोटी पुस्तकके लेखक भी श्रीधर्म्मविजयजी नही है किन्तु उनके शिष्य विद्याविजयजी हैं फिर श्रीधर्म्मविजयजीका नाम उपरमें क्यों लिखा है।

उत्तरः—भो देवानुप्रिय। मैंने उपरमें श्रीआत्माराम जीका और श्रीधर्म्मविजयजीका नाम लिखा है जिसका कारण यह हैं कि जैन शास्त्रानुसार गुरु महाराजकी आज्ञा विना शिष्य कोई कार्य्य नही कर सकता हैं इस लिये शिष्यके जो जो कार्य्य करनेकी जरूरत होवे सो सो गुरु महाराजसें निवेदन करे जब गुरु महराज योग्यता पूर्वक कार्य्य करनें की आज्ञा देवें तब शिष्य गुरु महाराजकी आज्ञानुसार जो कार्य्य करना होवे सो कर सकता हैं उन कार्य्यके लाभा-लाभके अधिकारी गुरु महाराज होते हैं परन्तु शिष्य गुरु महाराजकी आज्ञानुसार कार्य्यकारक होता है इस लिये उस कार्य्यकों करानेंके मुख्य अधिकारी गुरु महाराज हैं इस न्यायके अनुसार प्रथम श्रीकान्तिविजयजीनें तथा श्री-अमरविजयजीनें, जैन सिद्धान्तसमाचारीकी पुस्तक बनानेके लिये श्रीआत्मारामजीसे आज्ञा मांगी होगी और बनाये पीछे भी अवश्यमेव दिखाई होगी जिसको श्रीआत्माराम जीने पढ़के छपानेकी आज्ञा दिवी होगी तब छपके प्रसिद्ध हुई है जो श्रीआत्मारामजी बनानेकी तथा छपाके प्रसिद्ध करनेकी आज्ञा न देते तो कदापि प्रसिद्ध नही हो सकती इस लिये जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकके प्रगटकारक

श्रीआत्मारामजी ठहरे, आप कोई कार्य्य करना अथवा आप आज्ञा देकर कोई कार्य्य कराना सोभी बरोबर है जिससे मेंने श्रीआत्मारामजीका नाम लिखा है इसी न्यायसे श्रीधर्म्मविजयजीका भी नाम जानो—कदाचित् कोई ऐसा कहेगा कि गुरु महाराजकी आज्ञाविनाही प्रसिद्ध कर दिवी होगी तो इसपर मेरा इतनाही कहना है कि गुरु महाराजकी आज्ञा विना जो कोई भी कार्य्य शिष्य करे तो उसको गुरु आज्ञा विराधक अविनित तथा अनन्तसंसारी शास्त्रकारोंने कहा हैं ऐसेको हितशिक्षारूप प्रायश्चित्त दिया जाता हैं तथापि अविनित पनेसें नही माने तो अपने गच्छसे अलग करनेमें आता है सो बात प्रसिद्ध है इसलिये जो श्रीआत्मारामजीकी आज्ञासे जैन सिद्धान्तसमाचारीकी पुस्तक तथा श्रीधर्म्मविजयजीकी आज्ञासे पर्युषणा विचारकी पुस्तक प्रसिद्ध हुई होवे तब तो उस दोनो पुस्तकमें शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें अधूरे अधूरे पाठ लिखके उत्सूत्रभाषणरूप अनुचित बाते लिखी है जिसके मुख्य लाभार्थी दोनो गुरुजन है इसी अभिप्रायसे मेंने भी दोनो गुरुजनके नाम लिखे हैं—

और अब उपरोक्त महाशयोंके लिखे लिखोंकी समीक्षा करते हैं जिसमें प्रथम इस जगह श्रीविनयविजयजी कृत श्रीकल्पसूत्रकी सुबोधिका (सुखबोधिका) वृत्तिविशेष करके श्रीतपगच्छमें प्रसिद्ध हैं तथा वर्तमानिक श्रीतपगच्छके साधु आदि प्रायः सब कोई शुद्ध श्रद्धापूर्वक सरल जानके उसीको हर वर्षे गांव गांवके विषे श्रीपर्युषणापर्वमें वांचते हैं जिसमें अधिक मासकी गिनती निषेध करनेके लिये लिखा हैं जिसको यहाँ लिखकर पीछे उसीमें जो अनुचित है

जिसकी समीक्षा करके दिखावुंगा जिससे आत्मार्थी प्राणियोंको सत्यासत्यकी स्वयंमालुम हो सकेगा श्रीसुखबोधिका वृत्ति मेरे पास हैं जिसके पृष्ठ १४६ की दूसरी पुठीकी आदि से लेकर पृष्ठ १४७ की दूसरी पुठीकी आदि तकका नीचे मुजब पाठ जानो यथा—

अन्तरावियत्ति अर्वागपि कल्पते परं न कल्पते तां रात्रिं भाद्रशुक्लपञ्चमी उवायणा वित्तएत्ति अतिक्रमयितुं तत्र परि-सामस्त्येन उषणं वसनं पर्युषणा सा द्वेधा गृहस्थज्ञाता गृहस्थै अज्ञाता च तत्र गृहस्थै अज्ञाता यस्यां वर्षायोग्य पीठफलकादौ प्राप्ते कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्थापना क्रियते साषाषाढ़पूर्णिमायां योग्यक्षेत्राभावे तु पञ्च पञ्चदिन वृद्धया दशपर्वतिथि क्रमेण यावत् भाद्रपद सितपञ्चम्यां एवं गृहिज्ञाता तु द्वेधा सांवत्सरिक कृत्यविशिष्टा गृहिज्ञातमात्राच तत्र सांवत्सरिक कृत्यानि॥संवत्सरप्रतिक्रान्ति१ लुञ्चनं२ चाष्टमं तपः ३ सर्वार्हद्भक्तिपूजा च ४ संघस्य क्षामणं मिथः ५ ॥ १ ॥ एतत्कृत्यविशिष्टा भाद्रसितपञ्चम्यामेव कालिकाचार्यादेशाच्चतुर्थ्यामपि केवलगृहिज्ञाता तु सा यत् अभिवर्द्धिते वर्षे चतुर्मासकदिनादारभ्य विंशत्यादिनैः वयमत्र स्थितास्म इति पृच्छतां गृहस्थानां पुरो वदन्ति। तदपि जैनटिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगान्ते चाषाढ़ो वर्द्धते नान्येमासास्तट्टिप्पनकंतु अधुना सम्यग् न ज्ञायते ततः पञ्चाशतैश्च दिनैः पर्य्युषणायुक्तेति वृद्धाः अत्र कश्चिदाह ननु श्रावणवृद्धौ श्रावणसित चतुर्थ्यामेव पर्युषणायुक्ता नतु भाद्रसितचतुर्थ्यां दिनानामशीत्यापत्तेः। वासाणं सवीसइराए मासेवइक्कंते इति वचनबाधा स्यादिति चेन्मैवं अहो देवानां प्रिय एवमाश्विन-

वृद्धौ चतुर्मासकक्कत्य माश्विनसितचतुर्द्दश्यां कर्तव्यं स्यात् कार्तिकसितचतुर्द्दश्यां करणे तु दिनानां शतापत्या॥ समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कंते सत्तरिराइंदिएहिं॥ इति समवायांगवचनबाधा स्यात्। नच वाच्यं चतुर्मासकानां ही आषाढ़ादिमासप्रतिबद्धानि तस्मात्कार्तिकचतुर्मासिकं कार्तिकसितचतुर्द्दश्यामेव युक्तं दिनगणनायां त्वाधिकमासः कालचूलेत्यविवक्षणाद्दिनानां सप्ततिरेवेति कुतः समवायांगवचनबाधा इति यतो यथा चतुर्मासकानि आषाढ़ादिमास प्रतिबद्धानि तथा पर्युषणापि भाद्रपदमास प्रतिबद्धा तत्रैव कर्त्तव्या दिनगणनायां त्वधिकमासः कालचूलेत्यविवक्षणाद्दिनानां पञ्चाशदेव कुतोऽशीतिवार्तापि नच भाद्रपदप्रतिबद्धं तु पर्युषणा अयुक्तं बहुष्वागमेषु तथा प्रतिपादनात्॥ तथाहि॥ "अन्नया पज्जोसवणादिवसे आगए अज्जकालगेण सालवाहणो भणिओ, भद्दवयजुण्ह पंचमीए पज्जोसवणा" ॥ इत्यादि॥ पर्युषणाकल्पचूर्णौ तथा "तत्थ य सालवाहणो राया, सो अ सावगो, सो अ कालगज्जं इंतं सोऊण निग्गओ, अभिमूहो समणसंघो अ, महाविभूईए पविट्ठो कालगज्जो, पविट्ठेहिं अ भणिअं, भद्दवयसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जइ, समणसंघेण पडिवन्नं, ताहे रन्ना भणिअं, तद्दिवसं मम लोगाणुवत्तीए इंदो अणुजाणेयव्वो होहित्ति साहू चेइए अणुपज्जुवासिस्सं, तो छट्ठीए पज्जोसवणा किज्जइ, आयरिएहिं भणिअं, न वट्टति अतिक्कमितुं, ताहे रन्ना भणिअं, ता अणागए चउत्थीए पज्जोसविज्जति, आयरिएहिं भणिअं, एवं भवउ, ताहे चउत्थीए पज्जोसवितं एवं जुगप्पहाणेहिं कारणे चउत्थी पवत्तिआ, सा चेवाणुमतासव्वसाहू-

णमित्यादि ॥ श्रीनिशीथचूर्णौ दशमोद्देशके एवं यत्र कुत्रापि पर्यूषणानिरूपणम् तत्र भाद्रपदविशेषितमेव नतु क्वाप्यागमे भद्दवयसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्ज इति पाठवत् अभिवड्ढिअ वरिसे सावणसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जइति पाठ उपलभ्यते ततः कार्त्तिकमासप्रतिबद्ध चतुर्मासिकः कृत्य करणे यथा नाधिकमासः प्रमाणं तथा भाद्रमासप्रतिबद्ध पर्युषणाकरणेऽपि नाधिकमासः प्रमाणमिति त्यजकदाग्रहम् ।

श्रीविनयविजयजी कृत उपरके पाठका संक्षिप्त भावार्थः— अन्तरा वियसेत्ति इत्यादि कहनेसे आषाढ़पूर्णिमासे पचासमें दिन भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी जिसके अन्तरमे कारण योगे पर्यु-षणा करना कल्पे परन्तु पञ्चमीको उल्लङ्घन करना नही कल्पे वर्षाकालमें सर्वथा एकस्थानमें निवास करना सो पर्युषणा- जिसमें योग्यक्षेत्रके अभावसे पांच पांच दिनकी वृद्धि करते दशपर्वतिथिमें यावत् पचासमें दिन भाद्रपदशुक्लपञ्चमीको परन्तु श्रीकालकाचार्य्यजीसे चतुर्थीको गृहस्थी लोगोंको साधुके वर्षाकालका निवास अर्थात् पर्युषणाकी मालुम होती थी सो चन्द्रसंवत्सरकी अपेक्षासे परन्तु मास वृद्धि होनेसें अभिवर्द्धितनाम संवत्सरमें वीशदिने गृहस्थीलोगोंको साधुके निवास (पर्युषणा) की मालुम होती थी सो जैन टिप्पनाके अनुसारे एकयुगके मध्यमें पोषकी तथा अन्तमें आषाढ़की वृद्धि होती थी इसके सिवाय और मासोंके वृद्धिका अभावथा तब चन्द्रमें पचास दिनका तथा अभिवर्द्धितमें वीशदिनका नियम था, परन्तु अब वर्त्तमानकाले जैन टिप्पना नही वर्तता है तथा लौकिक टिप्पनामें हरेकमासोंकी वृद्धि होती है इस लिये—पंचाशतैश्चदिनैः पर्युषणायुक्तेति वृद्धाः—अर्थात् इस

कालमें मास वृद्धि हो अथवा न हो परन्तु पचासदिने पर्यु-षणा करना योग्य है ऐसे वृद्धाचार्य्य कहते हैं यहाँ कोई कहते हैं कि इस न्यायानुसार वर्तमान कालमें जब दो श्रावण होते हैं तब तो पचास दिनकी गिनतीसे दूजा श्रावण सुदी चौथके दिन पर्युषणा करना योग्य है परन्तु दो श्रावण होते भी भाद्रव सुदी चौथके दिन पर्युषणा करना योग्य नही है क्योंकि ८० दिन होजावेंगे, और श्रीकल्पसूत्रमें—वासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते—अर्थात् आषाढ़ चौमासीसें एक मास और वीशदिन उपर, कुल पचाशदिन जानेसे पर्युषणा कहा है तथापि ८० दिने करनेसें सूत्रका इस वाक्यको बाधा आती हैं इस लिये ८० दिने पर्युषणा करना योग्य नही है,—ऐसा प्रश्नरूप वाक्य सुनके इसका उत्तर रूप वाक्य श्रीविनय विजयजी अपनी विद्वत्ताके जोरसे कहते हैं कि अहो देवानां प्रिय-अहो इति आश्चर्य्ये हेमूर्ख-अधिकमासकी गिनती करके दो श्रावण होनेसें दूजा श्रावणमें ५० दिने पर्युषणा करना कहता है तो दो आश्विन (आसोज) मास होनेसे ७० दिन की गिनती सें दूजा आश्विन मासमें तेरेको चतुर्मासिक कृत्य करना पड़ेगा तथापि कार्तिक मासमें चतुर्मासिक कृत्य करेगा तो १०० दिन हो जावेगें, क्योंकि समणे भगवं महा-वीरे वासाणं सवीसइराए मासेवइक्कंते सत्तरिएराइं दिएहिं इति। श्रीसमवायांगजीमें पीछाड़ीके ७० दिन रहना कहा है इसवास्ते दूजा आसोजमें चौमासिक कृत्य करना पड़ेगा तथापि कार्तिकमें करेगा तो १०० दिन होजावेंगें तो श्रीस-मवायाङ्गजी सूत्रके वचनको बाधा आवेगी इस लिये अधिक मासकी गिनती करनेसें दूजा श्रावणमें पर्युषणा करना योग्य

है। ऐसा नहीं कहना क्योंकि चतुर्मासिक कृत्य आषाढ़ादि-मासोंमें करनेका नियम हैं तिस कारणसें दो आश्विनमास होवे तोभी कार्त्तिक चौमासी कार्त्तिक शुदी चतुर्द्दशीके दिन करना योग्य है जिसमें अधिकमास कालचूला होनेसें दिनों की गिनतीमें नही आता है इसलिये दो आश्विन होवे तो भी कार्तिकमें १०० दिने चौमासी किया ऐसा नही समझना किन्तु ७० दिने ही किया गया ऐसा कहनेसें श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके वचनमें बाधा नहीं आती हैं इस कारणसें जैसें चतुर्मासिक आषाढ़ादि मासोंमें करनेका नियम हैं तैसे ही पर्युषणा भी भाद्रपद मासमें करनेका नियम हैं जिससे उसी (भाद्रवे) में करना चाहिये जिसमें भी अधिकमास आवे तो दिनोंकी गिनतीमें नही लेनेसे दो श्रावण होते भी भाद्रवेमें पर्युषणा करनेसे ५० दिने ही किया ऐसा गिना जाता है इस लिये ८० दिनोंकी वार्त्ता भी नही समझना तथा पर्युषणा भाद्रवेमें करनेका नियम है सो ही बहुत आगमोंमें कहा है तैसा ही श्रीविनयविजयजीने यहाँ श्रीपर्युषणा कल्पचूर्णिका तथा श्रीनिशीथ चूर्णिका पाठ लिख दिखाया जिसमें भी श्रीकालकाचार्य्यजी महाराज आषाढ़ चतुर्मासीके पीछे कारणयोगे विहार करके सालिवाहनराजा की प्रतिष्ठानपुर नगरीमें आने लगे तब राजा और श्रमण सङ्घ आचार्य्यजी महाराजके सामने आये, और महा महोत्सवपूर्वक नगरीमें प्रवेश कराया और पर्युषणा पर्व नजिक आये थे जब आचार्य्यजी महाराजके कहनेसे भाद्रव शुदी पञ्चमीके दिन पर्युषणा करनेके लिये सर्व सङ्घने मंजूर किया तब राजाने कहा कि महाराज उसी (पञ्चमी) के

दिन मेरे नगरीके लोगोंकी सम्मतीसे इन्द्रध्वजका महोत्सव होता है जिससे एक दिनमें दो कार्य्यके महोत्सव बननेमें तकलीफ होगा इस लिये पर्युषणा छठकी करो तब आचार्य्यजी महाराजने कहा कि छठकी पर्युषणा करना नही कल्पे जब फिर राजाने कहा कि चौथकी करो तब आचार्य्य जीने कहा यह बन सकता है, युगप्रधान महाराजकी इस बातको सर्व सङ्घने भी प्रमाण किवी है इत्यादि श्रीनिशीथ चूर्णिके दशवे उद्देशेमें इसी प्रकारसे पर्युषणाकी व्याख्या है सो भाद्रव मासमें करने की हैं जैसे ही मासवृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्सर (वर्ष)में श्रावण शुदी पञ्चमीकी पर्युषणा करनी ऐसा पाठ कोई भी आगममें नही मिलता है तिस कारणसे कार्तिकमास बद्ध (आश्री) चतुर्मासिक कृत्य करनेमें जैसे अधिक मास प्रमाण नही है तैसे ही भाद्रव मास प्रतिबद्ध पर्युषणा करने में भी अधिकमास प्रमाण नही है इति अधिकमासकी गिनती करनेका कदाग्रहको छोड़ो—

उपरका लेख अधिकमासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये श्रीविनयविजयजीकृत श्रीसुखबोधिकावृत्तिके उपरोक्तपाठसे हुवा है इसी ही तरहके मतलबका लेख श्रीधर्म्मसागरजीने श्रीकल्पकिरणावली वृत्तिमें तथा श्रीजयविजयजीने श्रीकल्प दीपिका वृत्तिमें अपने स्वहस्ये लिखा है सो यहाँ गौरवता ग्रन्थ बढ़ जानेके भयसे नही लिखते है जिसकी इच्छा होवे सो किरणावलीके तथा दीपिकाके नवमा व्याख्यानाधिकारे देख लेना इस तीनों महाशयोंके लेख प्रायः एक सदृश (तुल्य) है जिसमें भी विशेष प्रसिद्ध सुखबोधिका होनेसे मैंने उपर लिखा है सोही भावार्थः तथा पाठ तीनो महा-

शयोंके जान लेना—अब तीनो महाशयोंके लेखकी शास्त्रानु सार और युक्तिपूर्वक समीक्षा करता हुं—इन तीनो महाशयों का मुख्य तात्पर्य्य सिर्फ इतना ही है कि अधिकमासको गिनतीमें नही लेना इस बातको पुष्ट करनेके लिये अनेक तरहके विकल्प लिखे हैं जिसको और अबमें समीक्षा करता हुं उसीको मोक्षाभिलाषी सत्यग्राही पुरुष निष्पक्षपातसे पढ़के सत्यासत्यका स्वयं विचारके गच्छका पक्षपातके दृष्टि रागका फंदको न रखते असत्यको छोड़ना और सत्यको ग्रहण करना येही सज्जन पुरुषोंकी मुख्य प्रतिज्ञाका काम है अब मेरी समीक्षा को सुनिये—श्रीधर्म्मसागरजी तथा श्रीजय विजयजी और श्रीविनयविजयजी इन तीनों श्रीतपगच्छके विद्वान् महाशयोंको प्रथमतो अधिक मासको कालचूला जानके गिनतीमें निषेध करना ही सर्वथा अनुचित है क्यों कि श्रीअनन्ततीर्थङ्करगणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने तथा श्रीतपगच्छके पूर्वज और प्रभाविकाचार्योंने अधिक मासकी दिनोंमें, पक्षोंमें, मासोंमें, वर्षोंमें, गिनती खुलासा पूर्वक किवी है तथा कालचूलाकी उत्तम ओपमा भी शास्त्रकारोंने गिनती करने योग्य दिवी है और कालचूलाकी ओपमा देनेवाले श्रीजिनदास महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर भी अधिक मासको निश्चयके साथ गिनते हैं जिसका और श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंने अधिक मासको गिनतीमें लिया है जिसके अनेक शास्त्रोंके प्रमाणों सहित विस्तार पूर्वक उपरमें लिख आया हुं जिन शास्त्रोंके पाठोंसें जैनश्वेताम्बर सामान्य पुरुष आ-त्मार्थी होगा और शास्त्रोंके विरुद्ध परूपनासे संसारवृद्धिका भय रखनेवाला सम्यक्त्वी नामधारी होगा सो भी कदापि

अधिक मासकी गिनती निषेध नही करेगा तथापि श्रीतपगच्छके तीनो महाशय विद्वान् नाम धराते भी अपने बनाये ग्रन्थोंमें अपने स्वहस्ते श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंके विरुद्ध होकर अधिक मासकी गिनती निषेध करते हैं सो कैसे बनेगा अपितु कदापि नहीं इस लिये इन तीनो महाशयोंका कालचूलाके नामसे अधिक मासको गिनतीमें निषेध करना सर्वथा जैन शास्त्रोंके विरुद्ध है तथा और भी सुनिये जैन शास्त्रोंमें पांच प्रकारके मासोंसें और पांच प्रकारके संवत्सरोंसे एक युगके दिनोंका प्रमाण श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंने कहा है सो सर्वही निश्चयके साथ प्रमाण करके गिनती करने योग्य है जिसके कोष्टक नीचे मुजब जानो यथा—

मासोंके नाम	दिनोंका प्रमाण	और उपर एक अहोरात्रिके	
		भाग करके	ग्रहण करना
नक्षत्र मास	२७	६७	२१
चन्द्र मास	२९	६२	३२
ऋतु मास	३०	०	०
सूर्य्य मास	३०	६०	३०
अभिवर्द्धित मास	३१	१२४	१२१

संवत्सरोंके नाम	दिनोंका प्रमाण	और उपर एक अहोरात्रिके	
		भाग करके	ग्रहण करना
नक्षत्र संवत्सर	३२७	६७	५१
चन्द्र संवत्सर	३५४	६२	१२
ऋतु संवत्सर	३६०	०	०
सूर्य्य संवत्सर	३६६	०	०
अभिवर्द्धित सं०	३८३	६२	४२

मासोंकी गिनती तथा मासोंके नाम	संवत्सरोंके तथा मासोंके प्रमाणसें	एक युगकेदिनों का प्रमाण
६७ नक्षत्र मासके	पाँच नक्षत्र संवत्सर और उपर सात नक्षत्र मास जानेसे	एक युगके १८३० दिन
६२ चन्द्र मासके	पाँच संवत्सर जिसमें बारह बारह मासोंके तीन चन्द्र संवत्सर और तेरह तेरह मासोंके दो अभिवर्द्धित संवत्सर एसे पाँच संवत्सर जानेसे	एक युगके १८३० दिन
६१ ऋतु मासके	पाँच ऋतु संवत्सर और उपर एक ऋतुमास जानेसे	एक युगके १८३० दिन
६० सूर्य्य मासके	पाँच सूर्य्य संवत्सर जानेसे	एक युगके १८३० दिन
५७ अभिवर्द्धित मास तथा उपर ७ दिन और एक अहोरात्रिके १२४ भाग करके ४७ भाग ग्रहण करनेसे	चार अभिवर्द्धित संवत्सरके उपर नव (९) अभिवर्द्धित मास और ७ दिनके उपर एक अहो रात्रिके १२४ भाग करके ४७ भाग ग्रहण करे जितना काल जानेसे	एक युगके १८३० दिन

उपरोक्त कोष्टकों में पाँच प्रकारके मासोंका प्रमाणसे पाँच प्रकारके संवत्सरोंका प्रमाण, और एक युगके १८३० दिन का प्रमाण श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने कहा है जिसके अनुसार श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्ति सूरिजीने भी श्रीवृहत्-कल्पवृत्तिमें लिखा है सो पाठ भी उपर लिख आया हुं जैन शास्त्रोंमें सूर्य्य मासकी गिनतीकी अपेक्षासे एकयुगके ६०सूर्य्य मासोंके पॉच सूर्य्य संवत्सरोंमें एक युगके १८३० दिन होते हैं जिसमें सूर्य्यमासकी अपेक्षा लेकर गिनती करनेसे मासवृद्धिका ही अभाव है परन्तु एकयुगके१८३० दिनकी गिनती बरोबर सामिल होनेके लिये खास ऋतुमासोंकी अपेक्षासे पॉच ऋतु संवत्सरोंमें सिर्फ एकही ऋतुमास वढ़ता है और चन्द्रमासों की अपेक्षासे पाँच चन्द्रसंवत्सरोंमें दो चन्द्रमास वढ़ते हैं तथा नक्षत्रमासोंकी गिनतीकी अपेक्षासे पाँच नक्षत्रसंव-त्सरोंमें सात नक्षत्रमास वढ़ते है और अभिवर्द्धित मासोंकी गिनतीकी अपेक्षासे तो चार अभिवर्द्धित संवत्सर उपर ९ अभिवर्द्धित मास और सात (७) दिन तथा एक अहोरात्रिके १२४ भाग करके ४७ भाग ग्रहण करे जितना काल जानसे (नक्षत्रमास, चन्द्रमास, ऋतुमास, सूर्य्यमास, और अभिवर्द्धित, मास इन सबोंके हिसाबके प्रमाण से) एक युगके १८३० दिन होजाते है सो उपरके कोष्टोंमें खुलासा है उपरका प्रमाण श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि पूर्वाचार्यों का तथा श्रीखरतरच्छके और श्रीतपगच्छके पूर्वज पुरुषोंका कहा हुवा होनेसे इन महाराजोंकी आशातनासे डरनेवाला प्राणी १८३०दिनोंकी गिनतीमेंका एक दिन तथा घड़ी अथवा पल मात्र भी गिनतीमें निषेध नही कर सकता है तथापि

श्रीतपगच्छके अर्वाचीन तथा वर्तमानिक त्यागी, वैरागी संयमी, उत्कृष्टिक्रिया करनेवाले जिनाज्ञाके आराधक शुद्ध परूपक श्रद्धाधारी सम्यकत्वी विद्वान् नाम धराते भी महान् उत्तम श्रीतीर्थङ्कर गणधर और पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्य तथा खास श्रीतपगच्छकेही पूर्वजपूज्य पुरुषोंकी आशातनाका भय न रखते चन्द्रमासोंकी अपेक्षासे जो अधिक मास होता है जिसकी गिनती निषेध करके उत्तम पुरुषोंके कहे हुवे पाँच प्रकारके मासोंका तथा संवत्सरोंका प्रमाणकों भङ्ग करके एकयुगके दिनोंकी गिनतीमें भी भङ्ग डालते है जिन्होंकी विद्वत्ताको में कैसी ओपमा लिखुं इसका विचार करता था जिसमें श्रीआत्मारामजीकाही बनाया अज्ञानतिमिर भास्कर ग्रन्थका लेख मुजे उसी वखतयाद आया सो लिख दिखाता हुं अज्ञानतिमिर भास्कर ग्रन्थके पृष्ठ २९४ के अन्तसे पृष्ठ २९६ के आदि तक का लेख नीचे मुजब जानो—

संविज्ञ गीतार्थ मोक्षाभिलाषी तिस तिसकाल सम्बन्धी बहुत आगमोंके जानकार और विधिमार्गके रसीये बहुमान देनेवाले संविज्ञ होनेसें पूर्वसूरि चिरन्तन मुनियोंके नायक जो होगये हैं तिनोनें निषेध नही करा है ; जो आचरित आचरण सर्वधर्मी लोक जिस व्यवहारको मानते हैं तिसकों विशिष्ट श्रुत अवधि ज्ञानादि रहित कौन निषेध करे ? पूर्व पूर्वतर उत्तमाचार्य्योंकी आशातनासे डरनेवाला अपितु कोई नही करे बहुल कर्मीकों वर्जके ते पूर्वोक्तगीतार्थो ऐसे विचारते हैं जाज्वल्यमान अग्निमें प्रवेश करनेवालेसें भी अधिक साहस यह है उत्सूत्र प्ररूपणा, सूत्र निरपेक्ष देशना, कटुक विपाक, दारुण, खोटे फलकी देनेवाली, ऐसे जानते हुए भी

देते हैं, मरीचिवत, मरीचि एक दुर्भाषित वचनसें दुःखरूप समुद्रकों प्राप्त हुआ ; एक कोटा कोटी सागर प्रमाण संसार में भ्रमण करता हुआ जो उत्सूत्र आचरण करे सो जीव चीकणे कर्मका बन्ध करते हैं। संसारकी वृद्धि और माया मृषा करते हैं तथा जो जीव उन्मार्गका उपदेश करें, और सन्मार्गका नाश करे सो गूढ़ हृदयवाला कपटी होवे, धूर्ताचारी होवे शल्य संयुक्तहोवे सो जीव तिर्यंच गतिका आयुबन्ध करता है। उन्मार्गका उपदेश देनेसें भगवन्तके कथन करे चारित्रका नाश करता है, ऐसे सम्यग् दर्शनसें भ्रष्टकों देखना भी योग्य नही है, इत्यादि आगम वचन सुनके भी स्व अपने आग्रहरूप ग्रहकरी ग्रस्त चित्तवाला जो उत्सूत्र कहता है क्योंकि जिसका उरला परला कांठा नही है ऐसें संसार समुद्रमें महादुःख अंगीकार करनें सें।

प्रश्न—क्या शास्त्रकों जानके भी कोई अन्यथा प्ररूपणा करता है।

उत्तर—करता है सोई दिखाते हैं देखनेमें आते हैं—दुषमकालमें वक्रजड़ बहुत साहसिक जीव भवरूप भयानक संसार पिशाचसे न डरने वाले निजमतिकल्पित कुयुक्तियों करके विधिमार्गकों निषेध करने में प्रवर्त्तते है कितनीक क्रियांकों जे आगममें नही कथन करी है तिनको करते हैं और जे आगमने निषेध नही करी है चिरंतन जनोंने आचरण करी है तिनको अविधि कह करके निषेध करते हैं और कहते हैं—यह क्रियाओ धर्मीजनोंकों करने योग्य नही है।

उपरमें श्री आत्मारामजीके लेखमें जो पूर्वाचार्योंनें आचरीत (प्रमाण) करी हुई बातको निषेध करनेवालाकों

यावत् सम्यग् दर्शनसे भ्रष्टकों देखना भी योग्य नही है इत्यादि कहा तो इस जगह पाठकवर्ग बुद्धिजन पुरुष विचार करेंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंनें चंद्रमासकी अपेक्षासे जो अधिकमासकी वृद्धि होती है जिसको गिनतीमें प्रमाण किया है, तथापि श्रीतपगच्छके तीनो महाशय तथा वर्तमानिक विद्वान् नाम धराते भी निषेध करते हैं जिन्होंका त्याग, वैराग्य, संयम और जिनाज्ञाके शुद्ध श्रद्धाका आराधकपना कैसे बनेगा और शुद्ध परूपनाके बदले प्रत्यक्ष अनेक शास्त्रोंके प्रमाण विरुद्ध, उत्सूत्र भाषणका क्या फल प्राप्त करेंगें सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना—

और श्रीधर्म्मसागरजी श्रीजयविजयजी और श्रीविनयविजय जी ये तीनो महाशय इतने विद्वान् हो करके भी गच्छ कदाग्रहका पक्षपातसे श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध परूपनाके फल विपाकका बिलकुल भय न करते सर्वथा प्रकार से अधिक मासकी गिनती निषेध कर दिवी तथा औरभी अपने लिखे वाक्यका भी क्या अर्थ भूल गये सो अधिक मासकी गिनती निषेध करते अटके नही क्योंकि इन तीनो महाशयोंके लिखे वाक्यसे भी अधिक मास गिनतीमें सिद्ध होता है सोही दिखाते हैं (अभिवर्द्धित वर्षे चतुर्मासिक-दिनादारभ्य विंशत्यादिनैर्वयमत्र स्थिताः स्म) यह वाक्य तीनो महाशयोंने लिखा है इस वाक्यमें अभिवर्द्धित वर्ष (संवत्सर) लिखा है सो अभिवर्द्धित वर्ष मास वृद्धि होनेसे तेरह चन्द्रमासोंकी गिनतीसे होता है इसमें अधिक मासकी गिनती खुलासा पूर्वक प्रमाण होती है और अधिकमासकी गिनतीके बिना अभिवर्द्धित नाम संवत्सर नही बनता है

क्योंकि अधिक मासकी गिनती नही करनेसे बारह चन्द्र-मासोंसे चन्द्र संवत्सर होता है परन्तु अभिवर्द्धित नाम नही बनेगा जब अधिक मासकी गिनती होगा तब ही तेरह चन्द्रमासोंसे अभिवर्द्धित नाम संवत्सर बनेगा जिसका विस्तार उपर लिख आये हैं इस लिये अधिक मासकी गिनती तीनो महाशयोंके वाक्यसे सिद्ध प्रत्यक्ष पने होती है और फिरभी इन तीनो महाशयोंने (जैन टिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगान्ते च आषाढ़ो एव वर्द्धते नान्येमासाः तच्चाधुना सम्यग् न ज्ञायते ततः पञ्चाशतैव दिनैः पर्युषणा सङ्गतेति वृद्धाः) यह भी अक्षर लिखे हैं सो इन अक्षरोंसे भी सूर्य्यवत् प्रकाशकी तरह प्रगट दिखाव होता है कि जैन टिप्पनामें पौष और आषाढ़की वृद्धि होती थी सो टिप्पना इस कालमें नही हैं इस लिये पचास दिने पर्युषणा करना योग्य है यह श्रीतपगच्छके पूर्वज वृद्धाचार्योंका कहना है सो बातभी सत्य है क्योंकि इन तीनो महाशयोंके परमपूज्य श्रीतपगच्छके प्रभाविक श्रीकुलमण्डन सूरिजीने भी लिखी है जिसका पाठ इसी पुस्तकके नवमें (९) पृष्ठमें छप गया हैं—

अधिक मासकी गिनती अनेक जैन शास्त्रोंसे तथा उपरके वाक्यसे भी सिद्ध होती है और पचास दिने पर्युषणा करना अपने पूर्वजोंकी आज्ञासे तीनो महाशय लिखते हैं जिससे पाठकवर्ग विचार करे तो शीघ्रही प्रत्यक्ष मालुम हो सकता है कि वर्त्तमानमें दो श्रावण होतो दूजा श्रावणमें अथवा दो भाद्रव होतो भी प्रथम भाद्रवमें पचास दिनोंकी गिनतीसे ही पर्युषणा करना चाहिये यह न्याय स्वयं सिद्ध है

इन तीनो महाशयोंने प्रथम अभिवर्द्धित वर्षे इत्यादि वाक्य लिखे जिससे अधिक मासकी गिनती सिद्ध हुई और (पञ्चाशतैश्च दिनैः पर्युषणा युक्तेति वृद्धाः) यह वाक्य लिखके इस कालमें पचास दिने पर्युषणा करना ऐसे सिद्ध किया जिसमें जैन टिप्पनाके अभावसे भी पचास दिनका तो निश्चय रक्खा इस लिये वर्तमान कालमें पर्युषणा सर्वथा भाद्रव पदमें ही करनेका नियम नही रहा क्योंकि श्रावण मासकी वृद्धि होने से दूजा श्रावणमें और दो भाद्रव होनेसे प्रथम भाद्रवमें पचास दिनकी गिनती पूरी होती है यह मतलब तीनो महाशयोंके लिखे हुवे वाक्यसेभी सिद्ध होता है तथापि उपर का मतलबको ये तीनो महाशय जानते भी गच्छके पक्षपात के जोरसे अपनी विद्वत्ताकी लघुता कारक और अप्रमाण रूप विसंवादी (पूर्वापर विरोधि) वाक्य अपने स्वहस्ते लिखते बिलकुल विचार न किया और आषाढ़ चौमासीसे दो श्रावण होनेके कारणसे भाद्रव शुदी तक ८० दिन प्रत्यक्ष होते हैं जिसको भी निषेध करनेके लिये (पर्युषणापि भाद्रपदमास प्रति बद्धा तत्रैव कर्तव्या दिनगणनायांत्वधिक मासः कालचूलेत्य विवक्षणाद्दिनानां पञ्चाशतैव कुतोऽशीति वार्त्तापि) इन अक्षरोंको तीनो महाशयोंने लिखे है जिस में मास वृद्धि होनेसे भी भाद्रपदमें पर्युषणा करना और दो श्रावण होवे तोभी भाद्रवमें पर्युषणा करनेसे ८० दिन होते हैं ऐसी वार्त्तापि नही करना क्योंकि अधिक मास कालचूला होनेसे दिनोंकी गिनतीमें नही आता है इस लिये ५० दिने पर्युषणा किया समझना ऐसे मतलबके वाक्य लिखना तीनो महाशयोंके पूर्वापर विरोधी तथा पूर्वाचार्य्योंकी आज्ञा

खण्डनरूप सर्वथा जैन शास्त्रोंसे और युक्तिसे भी प्रतिकुल हैं क्योंकि प्रथमतो अधिक मासको गिनतीमें लेनेसेही अभिवर्द्धित नाम संवत्सर बनता हैं सो अभिवर्द्धित संवत्सर तीनो महाशयोंने उपरमें लिखा हैं जो अभिवर्द्धित संवत्सर का नाम श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंकी आज्ञानुसार कायम तीनो महाशय रक्खेंगें तो अधिकमास कालचूला है सो दिनोंकी गिनतीमें नही आता है ऐसे मतलबका लिखना तीनो महाशयोंका सर्वथा मिथ्या हो जायगा—

और अधिकमास कालचूला है सो दिनोंकी गिनतीमें नही आता है ऐसे मतलबको कायम रक्खेंगे तो जो अधिकमास की गिनतीसे अभिवर्द्धित नाम संवत्सर होता है सो नही बनेगा यह दोनो बात पूर्वापर विरोधी होनेसे नही बनेगे इस लिये अबजो ये तीनो महाशय अधिकमासको दिनोकी गिनतीमें नही लेवेंगें तब तो श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि तथा श्रीतपगच्छके नायक पूर्वाचार्योंने अधिक मासको दिनो की गिनतीमें लिया है जिन महाराजोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषणरूप तीनो महाशयोंका वचन होगया सो आत्मार्थियोंको सर्वथा त्यागने योग्य हैं इस लिये तीनो महाशयोंको जिनाज्ञा विरुद्ध परूपणाका भय होता तो अधिकमासकी गिनती निषेध किवी जिसका मिथ्या दुष्कृत्यादिसे अपनी आत्मा को उत्सूत्र भाषणके कृत्योंसे बचानी थी सो तो वर्तमान कालमें रहे नही है परलोक गयेको अनेक वर्ष होगये हैं परन्तु वर्तमान कालमें श्रीतपगच्छके अनेक साधुजी विद्वान् नाम धराते हैं और उन्ही तीनो महाशयोंके लिखे वाक्यको सत्य मानते है तथा हर वर्ष उसीको पर्युषणामें वाँचते है

जिसमें प्रायः करके गांव गांवमें श्रीतपगच्छके सब साधुजी अधिकमासकी गिनती निषेध जैन शास्त्रोंके विरुद्ध करते है जिससे श्रीतीर्थङ्करगणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्ये तथा श्रीतपगच्छके पूर्वज पुरुषोंकी आज्ञाभङ्गका कारण होता है सो आत्मार्थी पुरुषोंको करना उचित नही हैं इसलिये जो श्रीतपगच्छके वर्तमानिक मुनिमहाशयोंको जिनाज्ञा विरुद्ध परूपणाका भय होवे तो अधिकमासकी गिनती निषेध करनेका छोड़ देना ही उचित है और आजतक निषेध किया जिसका मिथ्या दुष्कृत्य देकर अपनी आत्माको उत्सूत्र भाषणके पापकृत्योंसे बचानी चाहिये, तथापि विद्वत्ताके अभिमानसे और गच्छके कदाग्रहका पक्षपातके जोरसे उपर की बातको अङ्गीकार नही करते हुए अधिकमासकी गिनती निषेध करते रहेगे तो आत्मार्थीपना नही रहेगा तथा अधिकमासकी गिनती निषेध जैन शास्त्रोंके विरुद्ध होनेसे कोई आत्मार्थी प्रमाण नही कर सकता है इस लिये जैन शास्त्रानुसार श्रीतीर्थङ्करगणधरादि महाराजोंकी तथा अपने पूर्वाचार्य्योंकी आज्ञा मुजब अधिकमासकी गिनती सर्वथा प्रकारसे अवश्यमेव प्रमाण करनी सोही सम्यक्त्व धारी पुरुषोंका काम है जैनटिप्पनानुसार पौष तथा आषाढ़मासकी वृद्धि होती थी जब भी गिनतीमें लेते थे इस कारणसे तेरह चन्द्रमासोंसे संवत्सरका नाम अभिवर्द्धित होता था, सो वर्तमान कालमें भी अनेक जैन शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है तथा श्रीधर्म्मसागरजी श्रीजयविजयजी श्रीविनयविजयजी, ये तीनो महाशय भी अभिवर्द्धित संवत्सर लिखते हैं जिसमें अधिकमासकी गिनती आजाती है इस मतलबका

विचार न करते उलटा विरुद्धार्थ में तीनो महाशयोंने अपने स्वयं विसंवादी (पूर्वापरविरोधि) वाक्यरूप अधिक मास कालचूला है सो दिनोंकी गिनतीमें नही आता है ऐसा लिख दिया, और विसंवादी वाक्यका विचार भी न किया। विसंवादी पुरुषका दुनियांमें भी कोई भरोसा नही करता है तथा राजदरबारमें भी विसंवादी पुरुष झूठा अप्रमाणिक होता है और जैनशास्त्रोंमें तो श्रावककों भी धर्म व्यवहारमें विसंवादी वचन बोलनेका निषेध किया है सोही दिखाते हैं श्रीआत्मारामजीने अज्ञानतिमिरभास्कर ग्रन्थके पृष्ठ २५६में श्रावककों यथार्थ कहना अविसंवादी वचन धर्म्म व्यवहारमें॥ तथा श्रीधर्म्मसंग्रह वृत्तिके ग्रन्थमें भी यही बात लिखी है और श्रीधर्म्मरत्नप्रकरण वृत्तिमें भी यही बात लिखी है सोही दिखाते हैं। श्रीधर्म्मरत्नप्रकरण वृत्ति गुजरातीभाषा सहित श्रीपालीताणामें श्रीविद्याप्रसारकवर्ग है जिसकी तरफसे छपके प्रसिद्ध हुवी है जिसके दूसरे भागमें पृष्ठ २१४ विषे यथा—

ऋजुप्रगुणं व्यवहरणमृजुव्यवहारो भावश्रावकलक्षणश्चतुर्द्धा चतुःप्रकारो भवति तद्यथा–यथार्थभणनमविसंवादि वचनं धर्मव्यवहारे।

अर्थ–ऋजु एटले सरल चालवुं ते ऋजुव्यवहार ते चार प्रकारनो छे जेमके एकतो यथार्थ भणन एटले अविसंवादी बोलवुं ते धर्मनीबाबतमां।

देखिये अब उपरमें श्रावककों भी धर्म्म व्यवहारमें विसंवादीरूप मिथ्याभाषण बोलनेका जैन शास्त्रोंमें नही कहा है। तो फिर विद्वान् साधुजी होकर विसंवादी वाक्य

अपने बनाये ग्रन्थमें लिखना क्या उचित है। कदापि नही और इसी ही श्रीधर्म्मरत्नप्रकरणके दूसरे भागमें पृष्ठ २४६ की आदिसे पृष्ठ २४७ की आदि तकका लेखमें विसंवादी आदि वाक्य बोलने वालेको जो फलकी प्राप्ति होती है सो दिखाते है यथा—

अन्यथा भणनमयथार्थजल्पनमादिशब्दाद्वंचक क्रिया दोषोपेक्षाऽसद्भावमैत्री परिग्रहस्तेषु सत्सु श्रावकस्येति भावः—अबोधेर्धर्माप्राप्तेर्बीजं मूलकारणं परस्य मिथ्या दृष्टे-र्नियमेन निश्चयेन भवतीति शेषः।

तथाहि—श्रावकमेतेषु वर्त्तमानमालोक्य वक्तारः सम्भ-वन्ति॥ धिगस्तु जैनं शासनं? यत्र श्रावकस्य शिष्टजन-निन्दितेऽलीकभाषणादौ कुकर्मणि निवृ तिर्नोपदिश्यते॥ इति निन्दाकरणादमी प्राणिनो जन्मकोटिष्वपि बोधिं न प्राप्नुवन्तीत्यबोधि बीजमिदमुच्यते ततश्चाबोधिबीजाद् भव-परिवृद्धिर्भवति तन्निन्दाकारिणस्तन्निमित्तभूतस्य श्रावकस्यापि यदवाचि—शासनस्योपघातेयो—नाभोगेनापि वर्त्तते सत-न्मिथ्यात्वहेतुत्वादन्येषां प्राणिनामिति॥१॥ बध्नात्यपि तदेवालं परं संसारकारणं विपाकदारुणं घोरं सर्वानर्थ विवर्द्धन (मिति)॥२॥

टीकानो अर्थः—अन्यथा भणन एटले अयथार्थ भाषण आदि शब्द थी वंचक क्रिया दोषोनी उपेक्षा तथा कपट मैत्री लेवी अे दोषो होय तो श्रावक बीजा मिथ्या दृष्टि जीवने नक्कीपणे अबोधिनुं बीजथइ पड़ेछे एटले के तेथी बीजा धर्म्मपामी शक्ता नथी। कारणके अे दोषोमां वर्तता श्रावकने जोइ तेओ येवुबोलेके "जिन शासनने धिक्कार

थाओ" के ज्यां श्रावकोने आवा शिष्टजनने निन्दनीय मृषा भाषण वगेरा कुकर्म थी अटकाववानो उपदेश करवामां नथी आवतो अेवी रीते निन्दा करवाथी ते प्राणिओ क्रोड़-जन्मो लगी पण बोधिने पामी शकता नथी तेथी ते अबोधिबीज कहवायें छे अने ते अबोधिबीजथी तेवी निन्दा करनारनो संसारवधे छे एटलुंज नहीं पण तेना निमित्त भूत श्रावकनो संसार वधे छे, जे माटे कहेलुं छे के—जे पुरुष अजाणतां पण शासननी लघुता करावे ते बीजा प्राणिओंने तेवी रीते मिथ्यात्वनो हेतु थई तेना जेटलाज, संसारनु कारण कर्म बांधवा समर्थ थई पड़े छे के जे कर्मविपाक दारुण घोर अने सर्व अनर्थनुं वधारनार थइ पड़ेछे ॥ १—२ ॥

उपरमें अन्यथा अयथार्थ भाषण अर्थात् विसंवादी वाक्यरूप मिथ्याभाषणादि करने वाला श्रावक निश्चय करके मिथ्या दृष्टि जीवोंको विशेष मिथ्यात वढ़ानेवाला होता है और उससे दूसरे जीव धर्म प्राप्त नही कर सकते हैं किन्तु ऐसे श्रावकको देखके जैन शासनकी निन्दा करने वालोंको संसारकी वृद्धि होती है। और विसंवादीरूप मिथ्याभाषण करनेवाला श्रावक भी निन्दा करानेका कारणरूप होनेसे अनन्त संसारी होता है तो इस जगह पाठकवर्ग बुद्धिजन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि श्रीधर्मसागरजी श्रीजय-विजयजी श्रीविनयविजयजी ये तीनो महाशय इतने विद्वान् होते भी अनेक जैनशास्त्रोंके विरुद्ध और अपने स्वहस्ते अभिवर्द्धित संवत्सर उपरमें लिखा है जिसका भी भङ्ग कारक अधिकमास की गिनती निषेधरूप विसंवादी मिथ्या वाक्य भी अपने स्वहस्ते लिखते अनन्त संसार वृद्धिका भी

भय नही करते हैं तो अब ऐसे विद्वानोंको आत्मार्थी कैसे कहे जावे और अधिक मासकी गिनती निषेधरूप विसंवादी मिथ्या वाक्य इन विद्वानोंका आत्मार्थी पुरुष कैसे ग्रहण करेगें अपितु कदापि नही तथापि जो अधिक मासकी गिनती निषेध श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा विरुद्ध होते भी वर्तमानिक पक्षपाती जन करते हैं जिन्होंको सम्यक्त्वरूप रत्न कैसे प्राप्त होगा इस बातको पाठकवर्ग स्वयं विचार शकते हैं—

और जैनशास्त्रानुसार अधिकमासके दिनोकी गिनती करनाही युक्त है इस लिये अधिकमास कालचूला है सो दिनोंकी गिनतीमें नही आता है ऐसा मतलब तीनों महाशयोंका शास्त्रोंके विरुद्ध है सो उपरोक्त लेखसे प्रत्यक्ष दिखता है इन शास्त्रों के न्यायानुसार वर्तमानकालमें दो श्रावण होनेसे भी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेसे ८० दिन प्रत्यक्ष होते हैं सो बात जगत् भी मान्य करता हैं तथापि ये तीनो महाशय और वर्तमानिक श्रीतपगच्छके महाशय भी मजूर नही करते हैं तो इस जगह एक युक्ति भी दिखलाने के लिये श्रीतपगच्छके विद्वान् महाशयोंसें मेरा इतना ही पूछना है कि आषाढ़ चतुर्मासीसे किसी पुरुष वा स्त्रीने उपवास करना सरू किया तथा उसी वर्षमें दो श्रावण हुवे तो उस पुरुष वा स्त्रीको पचास (५०) उपवास कब पूरे होवेंगे और अशी (८०) उपवास कब पूरे होवेंगे इसका उत्तरमें श्रीतपगच्छके सर्व विद्वान् महाशयोंको अवश्यमेव निश्चय कहना ही पड़ेगा कि— दो श्रावण होनेसे पचास उपवास दूजा श्रावण शुदी में और ८० उपवास दो श्रावण होनेके कारणसे भाद्रपदमें पूरे होवेंगे

इस युक्तिसे अधिक मासकी गिनती निश्चय के साथ श्रीतप-गच्छके विद्वान् महाशयोंके कहने से भी सिद्ध होगई तथा अनेक शास्त्रानुसार ५० दिने दूजा श्रावण शुदीमें श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन करनेवाले जिनाज्ञा के आराधक सिद्ध हो गये और दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करने वाले, शास्त्रोंकी मर्य्यादाके विरुद्ध होनेमें कोई शंसय भी करेगा अपितु नही, तथापि इन तीनो महाशयोंने(दो श्रावण होते भी भाद्रपद तक ८० दिनकी वार्त्ता भी नही समझना) ऐसे मतलबको लिखा है सो कैसे सत्य बनेगा तथापि वर्त्तमानिक श्रीतपगच्छके मुनिमहाशय विद्वान् होते भी उपरकी इस मिथ्या बातको सत्य मानके वारंवार कहते हैं जिन्होंको मृषावादका त्यागरूप दूजामहाव्रत कैसे रहेगा सो भी विचारने की बात है, इस उपरोक्त न्यायानु-सार भी अधिक मासकी गिनती निषेध कदापि नही हो सकती हैं तथापि तीनो महाशय करते हैं सो सर्वथा महा मिथ्या है इसलिये दो श्रावण होनेसें भाद्रव शुदी तक ८०दिन अवश्यमेव निश्चय होते हैं जिससे गिनती निषेध करना ही नही बनता है और मासवृद्धि होनेसे भी पर्युषणा भाद्रपद मास प्रति बद्ध है ऐसा लिखना भी तीनो महाशयोंका सर्वथा जैनशास्त्रोंसे प्रतिकुल है क्योंकि प्राचीनकालमें भी मासवृद्धि होती थी जब भी वीश दिने श्रावण शुक्लपञ्चमी के दिन पर्यु-षणा करनेमें आते थे जैसे चन्द्र संवत्सरमें पचास दिनके उपरान्त सर्वथा विहार करना नही कल्पे तैसे ही अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीश दिनके उपरान्त सर्वथा विहार करना नही कल्पे और वीश दिन तक अज्ञात पर्युषणा परन्तु बीचमें

दिनसे शात पर्युषणा करे सो १००दिन यावत् कार्तिकपूर्णिमा तक उसी क्षेत्रमें ठहरे ऐसा श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्ति सूरिजी कृत श्रीवृहत्कल्पवृत्तिका पाठमें विस्तारपूर्वक कहा है ऐसे ही अनेक शास्त्रोंमें कहा है जिसके पाठ भी श्रीवृहत्कल्प वृत्यादिकके कितने ही पहिले लिख आया हुं और आगे भी लिख दिखावुंगा और खास तीनो महाशयोंके लिखे पाठसे भी अभिवर्द्धितमें वीश दिने श्रावणशुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनेमें आतेथे इसका विशेष खुलासाके साथ आगे विस्तार पूर्वक लिखुंगा जिससे वहाँ प्राचीनकालका तथा वर्तमानिक कालका अच्छी तरहसे निर्णय हो जावेगा—

और आगे इन तीनो महाशयोंने श्रीपर्युषणा कल्प-चूर्णिका तथा श्रीनिशीथचूर्णिका पाठ लिखके मासवृद्धि वर्त-मानिक दो श्रावण होते भी भाद्रव मासमें ही पर्युषणा करने का दिखाया है इस पर मेरा इतना ही कहना है कि इन तीनो महाशयोंने (श्रीपर्युषणा कल्पचूर्णिमें और श्रीनिशीथ-चूर्णिमें ग्रन्थकार महाराजने पर्युषणा सम्बन्धी विस्तारपूर्वक पाठ लिखाथा जिसके) आगे और पीछे का संपूर्ण सम्बन्धका पाठको छोड़के ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र-भाषणरूप मायावृत्तिसे अधूरा थोड़ासा पाठ लिखके भोले जीवोंको शास्त्रके पाठ लिख दिखाये और अपनी विद्वत्ताकी बात दृष्टिरागियोंमें जमाई हैं इस लिये इस जगह भव्य जीवोंको निःसन्देह होनेसे सत्य बातपर शुद्धश्रद्धा हो करके सत्यबात ग्रहण करे इस लिये दोनो चूर्णिकार पूर्वधर महाराज कृत संपूर्ण पर्युषणा सम्बन्धी पाठ यहाँ लिख दिखाता हुं श्रीपूर्वधर पूर्वाचार्य्यजी कृत श्रीपर्युषणा कल्प

(दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रका अष्टम अध्ययनके) चूर्णिके पृष्ठ ३१ से ३२ तक तत्पाठः—

आसाढ़चाउम्मासियं पडिक्कमंति, पंचहिं दिवसेहिं पज्जोसवणा कप्पं कढ्ढेति, सावण वहुल पंचमीए पज्जोसवेति णच वाहिट्ठितेहिं ण गहिता णित्यरादीणि, ताहे कधं कहंता चेव गिण्हंति मलयादीणि एवं आसाढ़पुण्णिमाए ठिता, जाव मग्गसिरवहुलस्स दसमी, तावएगंमि खेत्ते अच्छेज्जा, तिन्निवा दससराता, एवंतिन्निपुण दस राता, चिक्खलादीहि कारणेहिं॥ एत्थउ गाथा पत्थंति पज्जोसविते, सवीसति राय मासस्स आरात्तो जति गिहत्था पुच्छंति, तुब्भे अज्जो वासा रत्तं ठिता, अहवा ण ठिता एवं, पुच्छितेहिं, जति अहिवढ्ढिय संवच्छरे, जत्थ अहिमासतो पडिति तो, आसाढ़पुण्णिमाओ वीसति राते गते भण्णति, ठितामोति आरतो ण कथयति वोत्थं ठिता मोति, अथ इतरे तिन्निचंद संवच्छरा तेसु सवीसति राते मासे गते भण्णंति, ठिताजोति आरतो ण कथयति वोतुं ठिता मोति, किं कारणं असिवादि, गाथा कयाइ, असिवादीणि उप्पज्जेज्जा जेहिं निग्गमणं होज्जा ताहेति, गिहत्था मण्णेज्ज, ण किंचि एते जाणंति, मुसावात वाउलावेंति, जेणं ठितामोति भणित्ता, निग्गता, अहवा वासं ण सुट्ठ आरद्धं, तेण लोगो भीता धणंज्जंपितुं, ठितो साहूहिं भणितो ठियामोति जाणति, एते वरिसारत्तति तो छुयामो धण्णं विक्किणामो, अधि करणं घराणियत्थप्पंति, हलादीणय संवप्पं करेंति, जम्हा एते दोसा, तम्हा वीसती राते आगते, सवीसति राते वा मासे आगते, ण कधंति वोतुं ठितामोति॥ एत्थउ गाथा॥ आसाढ़पुण्णिमाए ठिताणं जतितणडगलादीणि गहियाणि, पज्जोसवणा कप्पोय

ण कहितो, तो सावण बहुलपञ्चमीएपज्जोसवेंति असति खेते सावण बहुलदसमीए, असति खेते सावणबहुलस्स पन्नरसीए, एवं पंचपंच उसारं तेण जाव,असति भद्दव सुद्ध पंचमीए, अतो परेण ण वट्टति अतिकमितुं,आसाढ़पुन्निमातो अढत्तं मग्गंताणं, जाव भद्दवय जोण्हस्स पञ्चमीए एत्थन्तरे जति ण लं ताहे रुक्कस्स हेठ्ठेठितो तोविपज्जोसवेयव्वं, एतेसु पव्वेसु जहा लंभे पज्जोसवेयव्वं, अपव्वे ण वट्टति, कारिणिया चउत्थीवि अज्ज कालएहिं पवित्तिता कहं पुण उज्जेणीए णगरीए, बलमित्त भाणुमित्तो रायाणो, तेसिं भाइणेज्जो अज्ज कालए पव्वाविता,तेहिराईहं पटुट्ठे हिं, अज्ज कालतो निव्विसत्तोकत्तो सोपतिट्ठाणं आगतो, तत्थय सालवाहणो राया सावगो तेण समणपुयणत्थणो पवित्तितो ॥ अंते पुरंच भणितं अमावसाए उववासं काउइअट्ठमिमाईसु उववासं काउ ॥ इति पाठांतरं ॥ पारणए साहूण भिरकं दातुं पारिज्जव ॥ अन्नय पज्जोसवणादिवसे आसन्ने आगते अज्ज कालएण सालवाहणो भणितो, भद्दवय जोण्हस्स पंचमीए पज्जोसवणा, रन्ना भणितो तद्दिवसं मम इंदो अणुजातव्वो होहित्ति तो निप्पज्ज वासिताणि चेतियाणि साहूणोय भविस्संतित्ति कोऊं तो छट्ठीए पज्जोसवणा भवतु, आयरिएण भणितं न वट्टति अतिक्कामेसु, रन्ना भणिय तो चउत्थीए भवतु आयरिएण भणितं एवं होउत्ति ॥ चउत्थीए कतो पज्जोसवणा एवं चउत्थीविजाता कारणिता, सुद्ध दसमी ठिताण आसाढ़ी पुन्निमो सरणालि जत्थ आसाढ़मासकप्पो कतो तत्थ खेतं वासावासं पाउग्गं अन्नच णत्थि खेतं वासावासं पाउग्गं अथवा अज्जासे चेव अन्नी खेत्तं वासावास पाउग्गं सव्वंत्र पडिपुन्नं संथारग डग्ग-

लगाइ कयवभूमीय वद्ध वासंच गाढं अणोरयं आढ़तं, ताहे आसाढ़पुस्मिमाए चेव पज्जोसविज्जति, एवं पंचाहं परिहाणि मधिकृत्योच्यते, इय सत्तरी गाथा, इय प्रदर्शने आसाढ़चाउ मासिया तो सवीसति राते मासे गते पज्जोसवेंति, तेसिं सत्तरी दिवसा जहस्सतो जेट्ठोग्गहो भवति, कहं पुण सत्तरी, चउण्हं मासाणं सवीसं दिवस सतं भवति, ततो सवीसति रातो मासो, पसासं दिवसा सेसे वितो सेसा सत्तरी, दिवसा जे भद्दवय बहुलस्स दसमीए पज्जोसवेंति, तेसिं असीति दिवसा जेट्ठोग्गहो, जे सावण पुस्मिमाए पज्जोसवेंति तेसिं णउतिदिवसा जेट्ठोग्गहो, जे सावण बहुल दसमी ठिता तेसिं दसुत्तरं दिवससतं जेट्ठोग्गहो, एवमादीहिं पगारेहिं वरिसारत्तं एग खेत्ते अत्यिता कत्तिय चाउमासिए णिग्गंतव्वं, अह वासं ण उवरमति, तो मग्गसिरे मासे जं दिवसं पक्क मट्टियं जात तद्दिवसं चेव निग्गंतव्वं, उक्कोसेण तिन्नि दसराया न निग्गच्छेज्जा मग्गसिर पुस्मिमाएत्ति भणियं होइ मग्गसिर पुस्मिमाए परेण, जइ विप्लवंतेहिं तहवि णिग्गंतव्वं, अथ न निग्गच्छंति तो चउलहुग, एवं पंचमासिउ जेट्ठोग्गहो जाओ, काउण गाहा ॥ आसाढ़मासकप्पं काउं जत्थ अन्नं वासा वासे पाउग्गं जत्थ आसाढमासकप्पो कओ तत्थेव पज्जोसविते आसाढ पुस्मिमाए वा सालंबणाणं मग्गसिरं णिसव्वं, वासा णतो विरमति तेण या निग्गता असीयादीयिला वाहिपवं सालंबणाणं छमासि सो जेट्ठोग्गहो ॥ इत्यादि ॥

और श्रीजिनदास महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर महाराज कृत श्रीनिशीथ सूत्रकी चूर्णिके दशमे उद्देशेके पृष्ठ ३२१ से पृष्ठ ३२४ तक का पर्युषणा सम्बन्धीका पाठ नीचे मुजब जानो, यथा—

वासावासेक्कंमि खेत्तकंमि काले पवेसियव्वं, अतो भम्मति, आसाढपुस्मिमा ॥ गाहा ॥ वायवंति उस्सग्गेण पज्जोसवेयव्वं, अहवा प्रवेष्टव्यं, तंमि पविठा उस्सग्गेण कत्तिय पुस्मिमं जाव अच्छंति, अववादेण मग्गसिर बहुल दसमी जाव तंमि एग खेत्ते अच्छंति, दसरायगाहणातो अववातो दंसितो अणे वि दो दसराता अच्छेज्जा, अववातेण मार्गसिरमासं तत्रैवास्त्ये-त्यर्थः ॥ कहं पुण वासा पाउग्गं खेत्तं पविसंति, इत्येण विहिणा बाहिठिता॥ गाहा॥ बाहिठियत्ति जत्थ, आसाढमासकप्पो कतो अणत्थवा आसम्मे ठिता वा समायारी खेत्तं, वसभेहिं गाहेंति चावव्रंतीत्यर्थः ॥ आसाढपुस्मिमाए पविठा, पडिवयाउ आरभ्भ पंचदिणा, संथारग तण डलगछार मल्लादीयं गिरहति, तंमिचेवपणगेरातिए पज्जो सवणा कप्पं कड्ढेंति, ताहे सावण बहुल पञ्चमीए वासकाल सामायारिं ठवेति, एत्थउअ ॥गाहा॥ एत्थंतिएत्थ, आसाढपुस्मिमाए, सावण बहुलपञ्चमीए, वासावासं पज्जोसविएवि, अप्पणो अणभिग्गहियं, अहवा जति गिहत्था पुच्छंति अज्जो तुम्भे, अत्थेव वारिसाकालं ठिया, अहवा ण ठिया, एवं पुच्छिएहिं, अणभिग्गहियंत्ति संदिग्धं वत्तव्यं, अह अन्यत्रवास्यापि निश्चयो भवतीत्यर्थः ॥ एवं सन्दिग्धं कियत्कालं वक्तव्यं ॥ उच्यते ॥ वीसतिरायं, वीसतीमासं, जति अभिवढ्ढियवरिसं, तो, वीसतिरायं, जाव अणाभिग्गहियं, अह चंदवरिसं तो सवीसतिरायं, जाव अणाभिग्गहियं भवति तेषां तत्कालात्परतः अप्पणो अभिरामुख्येन गृहीतं, अभिगृहीतं इदं व्यवस्थिता इति, इहट्ठियामो वरिसाकालंति किं पुण कारणंति, वीसति राते, सवीसतिराते वा मासे गते, अप्पणो अभिग्गहियं गिहिणा

तंवा कहेंति ॥ आरतो न कहेंति उच्यते ॥ असिवादि गाहा कयाइ ॥ असिवं भवे आदिगाहणातो रायदुठाइ वा वासं ण सुट्ठ आरद्धं वासितुं, एवमादिहिं कारणेहिं, जइ अच्छंति तो आणा तीता दोसा, अहगच्छंति ततो गिहत्था भणंति एते, सव्वणुपुत्तगा ण किञ्चिजाणंति, मुसावाय भासंति, ठिता-मोत्ति भणित्ता जेण णिग्गता लोगो वा भणिज्ज साहूएत्थ वरिसारत्तं ठिता, अवस्सं वासं भविस्सति, ततो धण्णं विक्कणति, लोगो घरादीनिच्छादेंति, अह हलादिकं माणि-वाम ठवेति, अणिगाहिते गिहिणा तेय आरतो कतो, जम्हा एवमादिया अधिकरणदोसा, तम्हा अभिवड्ढि-यवरिसे,वीसतीराते गते गिहिणा तं करेंति, तिसु चंदवरिसे सवीसति राते मासे गते गिहिणा तं करेंति, जत्थ अधि-मासगो पडति वरिसे,तं अभिवड्ढियवरिसं भणति, जत्थ ण पडति, तं चंदवरिसं सोय अधिमासगो जुंगस्सगंते मज्जे वा भवन्ति, जइ तो नियमा दो आसाढा भवंति, अहमज्जे दो पोसा, सीसो, पुच्छति जम्हा अभिवड्ढियवरिसे वीसति-रातं, चन्दवरिसे सवीसतिमासो ॥ उच्यते ॥ जम्हा अभि-वड्ढियवरिसे, गिम्हे चेव सो मासो अतिक्कंतो, तम्हा वीस दिना अणभिगाहियं तंकरेंति, इयरेसु तिसु चंदवरिसेसु सवी-सतिमासा इत्यर्थः ॥ एत्थ पणगं गाहा ॥ एत्थउ आसाढपुण्णि माए,ठिया डगलादीयं गिण्हंति,पज्जोसवणाकप्पंच कहेंति, पंचदिणा ततो सावण बहुल पञ्चमीए, पज्जोसवेंति, खेत्ता भावे कारणेन पणगेसु वुड्ढे दसमीए, पज्जोसवेंति, एवं पण रसीए, एवं पणग्गवड्ढी,ताबकज्जति, जाव सवीसति मासो, पुणो सोय सवीसति मासो भद्दवयसुद्ध पञ्चमी पयुज्जति,

अहवा आसाढ़सुद्ध दसमीए वासा खेत्तं पविठा, अहवा, जत्थ आसाढमासकप्पोकओ तं वासप्पाउग्गं खेत्तं, अन्नं च णत्थि वास पाउग्गं ताहे तत्थेव पज्जोसवेंति,वासंच गाढं अणु वरयं आषाढ़पुन्निमाहिं तत्थेव पज्जोसवेंति, एक्कारसीओ आढवेउ डगलादी तं गेण्हंति पज्जोसवणा कप्पं कहेंति, ताहे आसाढ पुन्निमाए पज्जोसवेंति, एस उस्सग्गो, सेस कालं पज्जोसवेत्ताणं सव्वो अववातो,अववातेवि सवीसति राइमासा तो परेण अतिक्कामेउ ण वट्टति, सवीसति राते मासे पुणे जतिवासखेत्तं ण लब्भति तो रुक्ख हेट्ठे वि पज्जोसवेयव्वं तं पुन्निमाए पञ्चमीए दसमीए एवमादि पव्वेसु पज्जोसवेयव्वं, णोअपव्वे ॥ सीसो पुच्छति इयाणिं कहं चउत्थिए अपव्वे पज्जोसविज्जति, आयरिओ भणति, कारणिया चउत्थी, अज्जकाल गायरियाहिं पवत्तिया, कहं भन्नते कारणं, कालगायरिओ विहरंतो, उज्जेणिं गतो तत्थ वासावासो वासातरंठितो तत्थ ॥ णगरीए बलमित्तो राया, तस्स कणिट्ठो भाया भाणुमित्तो जुवराया, तेसिं भगणी भाणुसिरी णामं तस्स पुत्तो बलभाणू णाम, सोयपगितिभद्दविणीययराए साहू तो पज्ज वासति आयरिहिं से धम्मो कहितो पडिवुद्धोपव्वावितोय, तेहि य बलमित्त भाणुमित्ते हिं कालग्गज्जापज्जोसवितेणिविसतो कत्तो, आयरिया भणंति जहा, बलमित्त भाणुमित्ता कालगायरियाणं भागिणेज्जा भवंति, माउलोत्ति, काउ महंतं आयरं करेंति, अब्भुठाणादियंतं च पुरोहियस्स अप्पत्तियं भणातिय, एसमुद्दपासंडोवेतादिलादिरोहणोअ अतो पुणो पुणो उल्लावेंतो, आयरिएण णिप्पठप्पसिणा वागरणो कतो, ताहे.सो पुरोहितो आयरियस्स पदुठ्ठो, रायाणंआणुलोमेहिं

विप्परिणामेति एते रिसितो महाणुभावा एते जेणं गच्छन्ति तेण पहेणं जति रणो णागच्छति पताणि वा असमितो असिवं भवति, तम्हा विसज्जाहं ताहे विसज्जिता अणे भणंति, रसा उवाएण विसज्जिता कहं सव्वं निणागारकिल रणा असेसमा कराविता, ताहे णिग्गता एवमादियाण कारणाण अणुक्कमेण णिग्गता विहरंता पतिठ्ठाणं णयरं, तेण पविठा पतिठ्ठाण समणसंघस्सय अज्जकालगेहिंसदिठं, जावाहं आगच्छामि ताव तुब्भेहिं णो पज्जोसवियव्वं, तत्थ सालवाहणोराया सो सावगो सोयकालगज्जंएतं सोउंणणिग्गतो अभिमुहो समणसंघोय महसा विभूतीए पविठो, कालगज्जो पविठेहिं भणियं भद्दवय सुद्ध पञ्चमीए पज्जोसविज्जति, समणसंघेण पडिवसं,ताहेरसा भणियं तद्दिवसं मम लोगाणु-वत्तीए इन्दो अणुजायव्वो होहेत्ति, साहूचेतितेणपज्जवासे रसती तो छट्ठीए पज्जोसवणा किज्जउ, आयरिएहिं भणियं, ण वट्टति, अतिकामेउ ताहे रसा भणियं, तो अणागए, चउ-त्थीए पज्जोसविज्जति, आयरिएहिं भणियं एवं भवउ, ताहे चउत्थीए पज्जोसवियं, एवं जुगप्पहाणेहिं चउत्थी कारणे पवत्तिता, साचेवाणुमत्ता सव्व साधूणं, रसा अंते पुरियाउ भखिता तुब्भे अमावसाए उवावासंकाउं पडिवयाए सव्व खज्ज भोज्ज विहीहिं साधू उत्तरपारणाए पडिलाभेत्ता पारे ज्जाहा, पज्जोसवणाए अठ्ठमतिकाउ पडीवयाए उत्तर-पारणयं भवति तंच सव्वभोगेण विकयंततोपभिति मरहठ-विसपसवण पूव्वउत्तिवणोपवक्ले ॥ इयाणिं पंचगपरिहाणि-मधिकत्य कालावग्गाहोच्यते ॥ इय सत्तरी गाहा ॥ इय वति उपप्रदर्शने जे आसाढ़चाउम्मासिया तो सवीसति राते

मासे गते पज्जोसवेंति, तेसिं सत्तरी दिवसा जहस्रो वासा कालोगाहो भवति, कहं सत्तरी उच्यते, चउरहं मासाणं विसुत्तरं दिवससतं भवति, सवीसति मासो पन्नासं दिवसा, ते वीसुत्तरमज्जतो साधितो, सेसा सत्तरी, जे भद्दवय बहुलदस मीए पज्जोसवेंति, तेसिं असति दिवसा मज्झिमो वासा कालो गाहो भवति, सावणपुण्णिमाए पज्जोसवेंति तेसिं णिउति दिवसा मज्झिमो चेव वासकालो गाहो भवति, जे सावण बहुलदसमी पज्जोसवेंति तेसिं दसुत्तरं सतंमज्झिमो चेव वासा कालोगाहो भवति, जे आसाढ़पुण्णिमाए पज्जोसवेंति, तेसिं वीसुत्तरं दिवससयं जेठो वासोग्गहोभवइ सेसन्तरेसु दिवस पमाणं वत्तव्वं, पमातिप्पगारेहिं वरिसारत्तं एग्गखेत्ते, कत्तिय चउम्मासिय, पडिवयाए अवस्स णिग्गंतव्वं, अह मग्गसिर मासे वासत्ति चिरक्खाजलाउलापंथा तो अववातेण एक्कं उक्कोसेणं तिम्नि वा दसराया जावतस्मिखेत्ते अच्छंति, मार्ग-सिरपौर्णमासीयावेत्यर्थः॥ मग्गसिर पुण्णिमाए जं परतो जतिचिरक्खा पंथा वासं वा गाढ़ं अणावरयं वासति, जति विप्लवंतेहिं तहावि अवस्सं णिग्गंतव्वं, अह ण णिग्ग-च्छति, तो चउगुरूगा, एवं पञ्चमासि तो जेठो गाहो जातो,काउण मास गाहा, जंमि खेत्ते कतो आसाढ़मासकप्पो तंच वासावासं पाउग्गं खेत्ते अणं मिअलद्धे वास पाउग्गे खेत्ते जत्थ आसाढ़मासकप्पो कतो तत्थेव वासावासं ठिता तोसे वासा वासे चिरक्खादिएहिं कारणेहिं तत्थेव मग्गसिरं ठिता एवं सालंवणाण कारणे अववातेण छ मासितो जेठो गहो भवतीत्यर्थः॥

उपरोक्त दोनुं पाठ मेरे देखनेमें आयेथे वैसेही छपा दिये हैं

इसलिये कुछ विशेष अशुद्धता होवे सो दूसरी शुद्ध पुस्तकसे उपरोक्त दोनों पाठका मिलान करके वाँचना अब उपरोक्तदोनुं पाठका संक्षिप्त भावार्थः सुनो—वर्षाकालके लिये एक क्षेत्रमें प्रवेश करना ठहरना सो कितना काल तक सोही कहते हैं आषाढ़पूर्णिमासे लेकर उत्सर्गसे पर्युषणा करे अथवा प्रवेश करे सो यावत् कार्तिक पूर्णिमा तक रहे और अपवादसे मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी तक यावत् रहे तथा फिर भी कारणयोगे दो दशरात्रि (वीशदिन) यानें मार्गशीर्ष पूर्णिमा तक भी रहना कल्पे सो प्रथम किस विधिसे प्रवेश करके पर्युषणा करे वह दिखाते हैं—जहां आषाढ़मासकल्प रहा होवे वहाँ अथवा अन्य क्षेत्रमें आषाढ़पूर्णिमाके दिन चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद प्रतिपदा (एकम) से लेकर पाँच दिनमें उपयोगी वस्तु ग्रहण करके पञ्चमी रात्रि याने श्रावण कृष्णपञ्चमीकी रात्रिको पर्युषणा कल्प कहके वर्षा-कालकी समाचारी को स्थापन करे, याने पर्युषणा करे, सो अधिकरण दोष न होने के कारणसे और उपद्रवादि कारणसे दूसरे स्थानमें जावेतो अवहेलना न होवे इसलिये अनि-श्चय पर्युषणा करे, अधिकरण दोषोंका वर्णन संक्षेपसे पहिलेही लिखा गया है इसलिये पुनः नही लिखता हुं और निश्चय पर्युषणा कब करे सो कहते हैं कि अभिवर्द्धित वर्षमें वीशदिने और चन्द्रवर्षमें पचाशदिने निश्चय पर्यु-षणा करे, क्योंकि जैसे युगान्तमें जब दो आषाढ़ होते हैं तब ग्रीष्म ऋतुमें चेव निश्चय अधिक मास व्यतीत होजाता है इसलिये अभिवर्द्धित वर्षमें आषाढ़ चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद प्रतिपदासे वीशदिन तक अनिश्चय पर्युषणा

परन्तु वीशमें दिन श्रावणशुक्लपञ्चमीसे निश्चय प्रसिद्ध पर्यु-षणा होवे, और चन्द्रवर्षमें पचाश दिन तक अनिश्चय पर्युषणा परन्तु पचाशमें दिन भाद्रपद शुक्लपञ्चमीसे निश्चय प्रसिद्ध पर्युषणा होवे, सो जब आषाढ़पूर्णिमासेही योग्य-क्षेत्र मिले और उपयोगी वस्तुका योग्य होवे तो ग्रहण करके चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद उसी रात्रिको पर्युषणा कल्प कहे याने जो अकेला साधु होवे तब तो उस रात्रिको श्रीकल्पसूत्रका पठन करके अनिश्चय पर्युषणा स्थापन करे और साधुओंका समुदाय होवे तो सर्व साधु कायोत्सर्गमें सुने और वृद्धसाधुजी मधुर स्वरसे श्रीपर्युषणा कल्पका उच्चारण करके अनिश्चय पर्युषणा स्थापन करे तथा योग्यक्षेत्र न मिले तो फिर पाँच दिन तक दूसरे स्थान (गांव) में जाके उपयोगी वस्तु ग्रहण करके श्रावण कृष्ण पञ्चमीको पर्युषणा करे इसी तरहसे योग्यक्षेत्राभावादि कारणे अपवादसे पांच पांच दिनकी वृद्धि करते यावत् भाद्रपदशुक्लपञ्चमीको अवश्यही पर्युषणा निश्चय करे तथापि भाद्रपदशुक्लपञ्चमी तक योग्यक्षेत्र नही मिलेतो जङ्गलमें वृक्ष नीचे भी अवश्यही पर्युषणा करे परन्तु पञ्चमीकी रात्रिको उल्लङ्घन करना नही कल्पे और भाद्रपद शुक्लपञ्चमीके पहले आषाढ़ पूर्णिमासे योग्यता मिलनेसे अनिश्चय पर्युषणा स्थापन करनेमें आते है जिसमें स्थापन करे उसी रात्रिको श्रीपर्युषणा कल्प कहके पर्युषणा स्थापे जिसको गृहस्थी लोगोंके न जानी हुई पर्युषणा कहते हैं और पचासमें दिन भाद्रपद शुक्लपञ्चमी की निश्चय प्रसिद्धसे पर्युषणा उसीमें सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करे जिसको गृहस्थी लोगोंके

आनी हुई पर्युषणा कहते हैं और भाद्रपद शुक्लपञ्चमी के उपरान्त विहार करना सर्वथा नही कल्पे इस लिये योग्य-क्षेत्रके अभावसे वृक्ष नीचे भी अवश्यही निवास (पर्युषणा) करना कहा है जैसे चन्द्रवर्षमें पचास दिनका निश्चय है तैसे ही अभिवर्द्धितवर्षमें वीशदिने श्रावण शुक्लपञ्चमीकी निश्चय पर्युषणा करने का नियम था परन्तु वीशदिनमें श्रावण शुक्लपञ्चमीकी रात्रिको उल्लङ्घन करना सर्वथा प्रकारसे नही कल्पे इस तरह पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमादि पर्वतिथिमें पर्युषणा करे, परन्तु अपर्वमें नही, जब शिष्य पूछता है कि आप अपर्वमें पर्युषणा करना नही कहते हो फिर चतुर्थीका अपर्वमें कैसे पर्युषणा करते हो तब आचार्य्यजी महाराज कहते है कि कारण से चतुर्थी को पर्युषणा करनेमें आते हैं सोही कारण उपरोक्त पाठानुसार जैन इतिहासों में तथा श्रीकल्पसूत्र की व्याख्याओंमें प्रसिद्ध है और इसीपुस्तकमें पहिले संक्षेप से लिखागया है इस लिये यहां भावार्थमें विस्तारके कारणसे नहीं लिखता हुं, अब जघन्य, मध्यम, और उत्कृष्ट से पर्युषणाके कालावग्रहका प्रमाण कहते है कि चार मासके १२० दिनका वर्षाकाल होता है तब आषाढ चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद पचासदिने पर्युषणा करे तो सत्तर (७०) दिवस जघन्यसे कार्त्तिक चौमासी तक रहते हैं परन्तु योग्यक्षेत्र मिलनेसे भाद्रव कृष्णदशमी को ही पर्युषणा कर लेवे उसीको ८० दिन मध्यमसे रहते हैं तथा श्रावण पूर्णिमा को पर्युषणा करे तो ९० दिन मध्यमसे रहते हैं। इसी तरह यावत् श्रावण कृष्णपञ्चमी को पर्युषणा किवी हो तो ११५ दिन मध्यम से रहते हैं और आषाढ पूर्णिमासे ही

पर्युषणा किवी होवे तो उत्कष्ट से १२० दिन रहते हैं पीछे उत्सर्गसे कार्तिक पूर्णिमाको अवश्य विहार करे, परन्तु वर्षादि कारणसे चिक्खल कर्दमादि कारण योगे अपवाद से मार्ग-शीर्ष पूर्णिमा तक भी रहना कल्पे पीछे तो अपवाद से भी अवश्य निकले विहार करे, नही करे तो प्रायश्चित आवे जहां आषाढमास कल्प किया होवे वहां ही चौमासी ठहरे तथा मार्गशीर्ष पूर्णिमाको विहार करे तो उत्कष्ट छ मासका कालावग्रह होता है इत्यादि—

अब पाठकवर्ग देखिये उपरका दोनुं पाठ प्राचीनकाल में पूर्वधरोंके समयका उग्रविहारी महानुभाव पुरुषोंको जैन ज्योतिषानुसार वर्तने का है जिससें उत्सर्गसे आषाढ़ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमातक पर्युषणा करे और अप-वादसे श्रावण कृष्ण। ५। १०। ३०। श्रावण शुक्ल ५। १०। १५। भाद्र कृष्ण। ५। १०। ३०। और भाद्र शुक्ल ५। इन दिनोंमें जहां योग्यक्षेत्र मिले वहां ही पर्युषणा करे। परन्तु पञ्चमीको उल्लङ्घन नही करे, जिससे जघन्यमें ७० दिनकी पर्युषणा होती है तथा मध्यमसे। ७५। ८०। ८५। ९०। ९५। १००। १०५। ११०। ११५। ऐसे नव प्रकारकी पर्युषणा होती है और उत्कष्टसे १२० दिन की पर्युषणा होती है।

जिसमें चन्द्र संवत्सरमें अपवादसे भी पचास दिन की भाद्रवशुक्ल पञ्चमीको उल्लङ्घन नही करे जिससें पीछाड़ीके ७० दिन रहते हैं तैसेही अभिवर्द्धित संवत्सर में अपवादसे भी बीशमें दिनकी श्रावणशुक्लपञ्चमी को उल्लङ्घन नही करे जिससें पीछाड़ीके कार्तिकपूर्णिमा तक १०० दिन रहते हैं और श्रावण शुक्लपञ्चमीको सांवत्सरिक

प्रतिक्रमणादि भी पूर्वधरोंके समयमें जैन ज्योतिषानुसार करनेंसें आतेथे सो उपरमें लिख आया हुं और आगे भी खुलासापूर्वक लिखुंगा वहां विशेष निर्णय होजावेगा—

और आषाढ़ चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद योग्यतापूर्वक पांच पांच दिने पर्युषणा करे सो सिर्फ एक श्रीकल्पसूत्रका रात्रिको पठण करके पर्युषणा स्थापन करे परन्तु अधिकरण दोष उत्पन्न होने के कारणसे गृहस्थी लोगों को कहे नही और अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने तथा चन्द्रसंवत्सरमें पचासदिने वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करने से गृहस्थी लोगों को पर्युषणाकी मालुम होती है सो यावत् कार्तिकपूर्णिमा तक उसी क्षेत्रमें साधु ठहरे सर्वथा प्रकारसे एक स्थानमें निवास करना सो पर्युषणा कही जाती है इस लिये आषाढ़ चौमासी पीछे योग्यतापूर्वक जहां निवास करे उसीको पर्युषणा कहते हैं सो अज्ञात पर्युषणा कही जाती है और चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिने तथा अभिवर्द्धितमें वीशदिन सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करने से ज्ञात पर्युषणा कही जाती है इसका विशेष विस्तार आगे भी करने में आवेगा—

और श्रीदशाश्रुतस्कन्धचूर्णिके तीस (३०)के पृष्ठमें (पढमंकाल ठवणा भणामि किंकारणं जेण एवं सुत्तं काल ठवणाएसुत्ता देसेणं परूवेयव्वं कालो समयादिओ,गाथा—असंखेज्जसमया आवलिया एवं सुत्तालावएणजावसंवच्छरं एत्थपुणउडूबद्ध वासारतेणपयगतं अधिकारेत्यर्थः) इत्यादि व्याख्या प्रथम किवी हैं सो इस पाठमें कालकी व्याख्यासूत्रानुसार करनी कही है। समयादि काल करके असंख्याते समय जाने से एक

आवलिका होती हैं १,६७,७७,२१६ आवलिका जाने सें एक मुहूर्त्त होता है त्रीश मुहूर्त्तसे एक अहोरात्रिरूप दिवस होता है ऐसे पन्दरह दिवसोंसे एकपक्ष होता हैं दो पक्षसे एकमास होता है इसी तरह सें अनुक्रमे वर्ष, युग, पूर्वाङ्ग, पूर्व, पल्योपम, सागरादि कालकी व्याख्या अनेक जैन शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक प्रसिद्ध है।

अब इस जगह पाठकवर्ग सज्जन पुरुषोंसे मेरेको इतना ही कहना है कि श्रीदशाश्रुतस्कन्धचूर्णिमें और श्रीनिशीथ चूर्णिमें खुलासा पूर्वक अधिकमासको निश्चयके साथ प्रमाण करके गिनतीमें भी लिया है और अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने तथा चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिने निश्चय पर्युषणा कही हैं और मासवृद्धिके अभावसेही भाद्रपद शुक्लचतुर्थीको पचास दिनकेअन्तरमें कारणयोगे श्रीकालकाचार्य्यजीनें पर्युषणा किवी सो दिखाया है और पचासदिने योग्यक्षेत्रके अभावसे जंगलमें वृक्ष नीचे भी पर्युषणा करनी कही है परन्तु पचासमें दिनकी रात्रिको उल्लङ्घन करना भी नही कल्पे इत्यादि विस्तारपूर्वक संपूर्ण सम्बन्धके दोनो पूर्वधर महाराज कृत पाठ उपरोक्त छपगये है जिसको विचारो और श्रीधर्मसागरजी तथा श्रीजयविजयजी और श्रीविनयविजयजी इन तीनों महाशयोंने दोनों चूर्णिकार पूर्वधर महाराजके विरुद्धार्थमें वर्तमानमें मासवृद्धि दो श्रावण होनेसे भी आषाढ़ चौमासीसे यावत् ८० दिने भाद्रपदमें पर्युषणा सिद्ध करनेके लिये आगे और पीछेके सम्बन्धके पाठको और अधिकमासके प्रमाण करनेके पाठको छोड़कर अधूरा बिना सम्बन्धका थोडासा पाठ लिखके भोले जीवोंको शास्त्रोंके नामसे पाठ

लिख दिखाया जिसमें भाद्रपदका ही नाममात्र लिखा परन्तु मासवृद्धिके अभावसे भाद्रपद है किंवा मासवृद्धि होते भी भाद्र पद है जिसका कुछ भी लिखा नही और चूर्णिकार महा-राजने समयादिसे कालका प्रमाण दिखाया है जिसमें अधिक मास भी गिनतीमें सर्वथा आता है तथापि तीनो महा शयोंने निषेध करदिया और मासवृद्धिके अभावसे भाद्रपदकी व्याख्या चूर्णिकारने किवी थी जिसको भी मासवृद्धि होते लिख दिया इस तरहका तीनो महाशयोंको विरुद्धार्थका अधूरा थोड़ासा पाठको विचारो और निष्पक्षपातसे सत्या-सत्यका निर्णय करो जिसमें असत्यको छोड़ो और सत्यको ग्रहण करो जिससे आत्म कल्याणका रस्ता पावो यही सज्जन पुरुषोंको मेरा कहना है ।

और बुद्धिजन सर्व सज्जन पुरुष प्रायः जानते भी होवेंगे कि—जैन शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें एक मात्रा, बिंदु तथा अक्षर वा पद की उलटी जो परूपना करे तथा उत्थापन करे और उलटा वर्ते वह प्राणी मिथ्या दृष्टि संसार-गामी कहा जाता है, जमालीवत् अनेक दृष्टान्त जैनमें प्रसिद्ध है तथापि इन तीनों महाशयोंने तो संसार वृद्धिका किञ्चित् भी भय न किया और चूर्णिकार महाराजने अधिक मासकी गिनती विस्तार पूर्वक प्रमाण किवी थी जिसको निषेध कर दिवी और अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने प्रसिद्ध पर्युषणा कही थी जिसके सब पाठको उत्थापन करके यावत् ८० दिने पर्युषणा चूर्णिकार महाराजके विरु-द्धार्थमें स्थापन करके भोले जीवोंको कदाग्रहमें गेरे हैं, हा, हा, अति खेदः ॥—

और इसके अगाड़ी फिर भी तीनो महाशयोंने प्रत्यक्ष मायावृत्तिसे उत्सूत्र भाषणरूप अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध लिखके अपनी बात जमाई है कि (एवं यत्र कुत्रापि पर्युषणा निरूपणम् तत्र भाद्रपदविशेषितमेव नतु क्वाप्यागमे भद्दवयसुद्ध पञ्चमीए पज्जोसविज्जइति पाठवत् अभिवढ्ढियंवरिसे सावण सुद्धपञ्चमीए पज्जोसविज्जइति पाठ उपलभ्यते) इन वाक्योंको तीनो महाशयोंने लिखके इसका मतलब ऐसे लाये है कि श्रीपर्युषणा कल्प चूर्णिमें तथा श्रीनिशीथचूर्णिमें भाद्रपदमें पर्युषणा करनी कहीहै इसी प्रकारसे जिस किसी शास्त्रमें पर्युषणाकी व्याख्या है तहां भाद्रपदके नामसे है परन्तु कोई भी शास्त्रमें भाद्रपदशुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनी ऐसा पाठकी तरह मासवृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित सम्वत्सरमें श्रावण शुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनी ऐसा पाठ नही दिखता है, इस तरहके तीनो महाशयों के लेख पर मेरा इतनाही कहना है कि इन तीनो महाशयोंने (अभिवर्द्धित सम्वत्सरमें श्रावणशुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनेका कोई भी शास्त्रोंमें पाठ नहीं दिखता है) इस मतलबको लिखा है सो सर्वथा मिथ्या है क्योंकि जिन जिन शास्त्रोंमें चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिने, ज्ञात, याने-गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई पर्युषणा करनेका नियम दिखाया है उसी शास्त्रोंमें अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीश दिने ज्ञात पर्युषणा करनेका नियम दिखाया है सो यह बात अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक प्रगटपने लिखी है तथापि इन तीनो महाशयोंने भोले जीवोंको मिथ्या भ्रममें गेरनेके लिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें श्रावण शुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनेका कोई भी शास्त्रमें पाठ नहीं दिखाता है ऐसा लिख दिया है तो अब ऐसे मिथ्या भ्रमको दूर करनेके लिये इस जगह शास्त्रोंके प्रमाण

भी दिखाते हैं कि-श्रीनिशीथसूत्रके लघुभाष्यमें १ तथा बृहद्भाष्यमें ३, और चूर्णिमें ३, श्रीदशाश्रुतस्कन्ध चूर्णिमें ४, और वृत्तिमें ५, श्रीबृहत्कल्पसूत्रके लघुभाष्यमें ६, बृहद्भाष्यमें ७, तथा चूर्णिमें ८, और वृत्तिमें ९, श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रकी वृत्तिमें १०, श्रीकल्पसूत्रकी निर्युक्तिमें ११ तथा निर्युक्तिकी वृत्तिमें १२ और श्रीकल्पसूत्रकी चार वृत्तिओंमें १६, श्रीगच्छाचारपयन्नःकी वृत्तिमें १७, श्रीविधिप्रपासमाचारीमें १८, श्रीसमाचारीशतकमें १९, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक लिखा है कि-अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ़ चौमासीसे लेकरके २० दिने, याने-श्रावण सुदी पञ्चमीको पर्युषणा करनेमें आती थी। सो इसीही विषय सम्बन्धी इसी ग्रन्थकी आदिमेंही श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्याओंके पाठ भावार्थ सहित तथा श्रीबृहत्कल्पवृत्तिका पाठ पृष्ठ २३।२४ में, श्रीपर्युषणाकल्पचूर्णिका पाठ पृष्ठ ९२ में तथा श्रीनिशीथचूर्णिका पाठ पृष्ठ ९५।९६ में छप गया है और आगे भी कितनेही शास्त्रोंके पाठ छपेंगे जिनको और अब इसीही बातका विशेष खुलासा करता हूं जिसको विवेक बुद्धिसे पक्षपात रहित होकर पढ़ोगे तो प्रत्यक्ष निर्णय हो जावेगा कि अभिवर्द्धितमें वीशदिने पर्युषणा होती थी इसके विषयमें उपरोक्त अनेक शास्त्रोंके पाठोंके साथ श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी कृत श्रीबृहत्कल्पवृत्तिका पाठ भी पृष्ठ २३ तथा २४ में विस्तार पूर्वक छपगया है तथापि इस जगह थोड़ासा फिर भी लिख दिखाता हूं तथाच तत्पाठ यथा—

इत्थमनभिगृहीतं कियन्तं कालंवक्तव्यं,उच्यते। यद्यभिवर्द्धितो सौ संवत्सरस्ततो विंशतिरात्रिंदिवानि अथ चंद्रोसौ ततः सविंशतिरात्रं मासं यावदनभिगृहीतं कर्त्तव्यं। तेषाम्ति

विभक्तिव्यत्यया ततःपरं विंशतिरात्रमासा चोर्द्धमनभिगृहीतं निश्चितं कर्त्तव्यं गृहीज्ञातंच गृहिस्थानां पृच्छतां ज्ञापना कर्त्तव्या यथा वयमत्र वर्षाकालस्थिताः एतच्च गृहिज्ञातं कार्तिकमासं यावत् कर्तव्यं इत्यादि—

इसका भावार्थः ऐसा है कि—वर्षाकालमें साधु एक स्थानमें ठहरने रूप निवासकी पर्युषणा करे सो प्रथम गृहस्थी लोगोंके न जानी हुई अनिश्चय पर्युषणा होती है और दूसरी जानी हुई निश्चय पर्युषणा होती है इस प्रकारकी न जानी हुई पर्युषणा कितने काल तक और जानी हुई पर्युषणा कितने काल तक होती है सो कहते है कि—एक युगमें पाँच संवत्सर होते हैं जिसमें दो अभिवर्द्धित और तीन चन्द्रसंवत्सर होते हैं जब अभिवर्द्धित संवत्सर होता है तब आषाढ़चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद वीश अहोरात्रि अर्थात् श्रावण शुक्लपञ्चमी तक और चन्द्र संवत्सर होता है तब पचास अहोरात्रि अर्थात् भाद्रपद शुक्लपञ्चमी तक गृहस्थी लोगोंके न जानी हुई अनिश्चय पर्युषणा होती है परन्तु पीछे जानी हुई निश्चय पर्युषणा होती है और कोई गृहस्थी लोग साधुजीको आषाढ चौमासी बाद पूछे कि आप यहाँ वर्षाकालमें ठहरे अथवा नही तब उसीको साधुजी अभिवर्द्धितमें वीशदिन और चंद्रमें पचास दिनतक, हम यहाँ ठहरे हैं ऐसा अधिकरण दोषोंकी उत्पत्तिके कारणसे न कहे और पीछे याने अभिवर्द्धितमें वीशदिने श्रावण शुक्लपञ्चमी के बाद और चंद्रमें पचास दिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीके बाद गृहस्थी लोगोंको कह देवें कि—हम यहाँ वर्षाकालमें ठहरे हैं ऐसा कहनेसे गृहस्थी लोगोंको जानी हुई पर्युषणा कही

जाती हैं ऐसी गृहस्थी लोगोंके जानी हुई पर्युषणा यावत् कार्तिक पूर्णिमा तक याने जो अभिवर्द्धितमें वीशदिने श्रावण शुक्लपञ्चमीको जानी हुई पर्युषणा करे सो कार्तिक पूर्णिमा तक १०० दिन उसी क्षेत्रमें ठहरे और चन्द्रमें पचास दिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको जानी हुई पर्युषणा करे सो कार्तिक पूर्णिमा तक ७० दिन उसी क्षेत्रमें ठहरे ।

उपरोक्त श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी कृत पाठके भावार्थः मुजबही अनेक जैन शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक व्याख्या हैं सो उपरमें श्रीनिशीथचूर्णि श्रीदशाश्रुतस्कन्धचूर्णि श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्यों वगैरहके पाठ भी छपगये हैं और कितनेही शास्त्रोंके पाठ इस ग्रन्थमें विस्तारके भयसे नही छपाये हैं सो अबी मेरे पास मोजूद है जिसमें भी उपर मुजबही चतुर्मासीमें पर्युषणा संबन्धी अज्ञात और ज्ञातकी खुलासा पूर्वक व्याख्या हैं ।

उपरके पाठमें श्रावण तथा भाद्रव मासका नाम नही हैं परन्तु वीश तथा पचास दिनका नाम लिखा है जिससे वीश दिनकी गिनती आषाढ़पूर्णिमासे श्रावण शुक्लपञ्चमीको और पचास दिनकी गिनती भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको पूरी होती हैं इस लिये भावार्थमें श्रावण तथा भाद्रपदका नाम तिथि सहित लिखा जाता है—

उपरोक्त पाठमें आषाढ़ चौमासीसे कार्तिक चौमासी तककी व्याख्या दिनोंकी गिनती सहित खुलासा पूर्वक पर्युषणा सम्बन्धी करी है परन्तु आषाढ़ चौमासीसे इतने दिन गये बाद पर्युषणामें वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि असुक दिने करे ऐसा नही लिखा हैं परन्तु

आषाढ़ चौमासीसे अभिवर्द्धितमें वीशदिन तथा चन्द्रमें पचास दिन तक गृहस्थी लोगोंके न जानी हुई अनिश्चय और वीश तथा पचासके उपर जानी हुई निश्चय यावत् कार्तिक तकका लिखा है और श्रीकल्पसूत्रकी अनेक टीकाओंमें पाँच पाँच दिनकी वृद्धिसे पचासदिन तक न जानी हुई पर्युषणा परन्तु पचाश दिने वार्षिक कृत्यों करके प्रसिद्ध जानी हुई पर्युषणा चद्र संवत्सरमें खुलासा लिखी है तैसेही अभिवर्द्धितमें वीशदिने पर्युषणा जानी हुई लिखी है इस लिये अभिवर्द्धितमें वीशदिने श्रावण शुक्लपञ्चमीको वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करने से गृहस्थी लोगों को पर्युषणाकी मालुम होती थी और चंद्रमें पचासदिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करनेसे गृहस्थी लोगोंको पर्युषणाकी मालुम होती थी क्योंकि जैसे न जानी हुई पर्युषणा वीश तथा पचास दिन तक शास्त्रकारोंने खुलासा कही है तैसेही जानी हुई पर्युषणा अभिवर्द्धितमें १०० दिन और चंद्रमें ७० दिन तक ऐसा खुलासा पूर्वक लिखा हैं सो पाठ भी सब उपरमें छप गया है।

और पर्युषणा अज्ञात तथा ज्ञात दो प्रकारकी कही है परन्तु अमुकदिने ज्ञात पर्युषणा करे तथा अमुक दिने वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करे ऐसा कोई भी प्राचीन शास्त्रोंमें नही दिखता है इसलिये ज्ञात पर्युषणा होवे उसी दिन वार्षिककृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमण केशलुंचनादि समझने क्योंकि सबी शास्त्रकारोंने गृहस्थी लोगोंको ज्ञात पर्युषणा यावत् कार्तिकमास तक खुलासा लिख

दिया है जिससे ज्ञात पर्युषणा आषाढ़ चौमासीसे वीशे तथा पचाशे करे और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि अन्य अमुकदिने करे ऐसा कदापि नही बनता है किन्तु जहाँ ज्ञात पर्युषणा वहाँ ही वार्षिक कृत्य बनते हैं इसलिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ़ चौमासीसे लेकर वीशदिने श्रावण शुक्लपञ्चमीको और चंद्र संवत्सरमें पचासदिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि वार्षिक कृत्य अवश्यमेव निश्चय करनेमें आते थे यह निःसन्देहकी बात हैं तथा और भी जो पहिले तीनो महाशयोंने लिखा है (अभिवर्द्धिते वर्षे चतुर्मासिकदिनादारभ्यः विंशत्यादिनैः वयमत्र स्थिताः स्म इति पृच्छतां गृहस्थानां पुरो वदन्ति) और इसका मतलब ऐसे लाये है कि—अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ़चतुर्मासीसे लेकर वीशदिने याने श्रावण शुक्लपञ्चमी सेही कोई गृहस्थी लोग पूछे तो कह देवे कि वर्षाकालमें हम यहाँ ठहरे हैं॥ वर्षाकालमें एक स्थानमें सर्वथा निवास करना सो पर्युषणा हैं इस मतलबसे भी आषाढ़ चौमासीसे वीशदिने गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई पर्युषणा करे सो यावत् १०० दिन कार्तिक पूर्णिमा तक उसी क्षेत्रमें ठहरे॥

उपरोक्त तीनो महाशयोंके लिखे वाक्यार्थको भी विवेकी बुद्धिजन पुरुष निष्पक्षपातसे विचारेंगे तो प्रत्यक्ष मालुम हो जावेंगा कि प्राचीन कालमें अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीश दिने श्रावण शुक्लपञ्चमीसे गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई पर्युषणा करनेमें आती थी क्योंकि जिस जिस शास्त्रानुसार चंद्र संवत्सरमें पचासदिने जो जो कार्य्य करनेमें आते हैं

सोही कार्य्य प्राचीन कालमें अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीश दिने करनेसें आतेथे यह वात उपरोक्त अनेक शास्त्रोंके न्यायानुसार सिद्ध होगई तथा और आगे भी लिखनेसें आवेगा इसलिये इन तीनो महाशयोंका (अभिवर्द्धित संवत्सरमें श्रावण शुक्लपञ्चमीका पर्युषणा करनेका कोई भी शास्त्रमें नहीं दिखता है) ऐसा लिखना सर्वथा अप्रमाण हो गया सो आत्मार्थी निष्पक्षपाती पाठकवर्ग विचार लेना—

और अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ़ चौमासीसे वीश दिने निश्चय पर्युषणा वार्षिक कृत्योंसे भी करनेमें आती थी तथापि इन तीनो महाशयोंने पक्षपातके जोरसे उसको निषेध करनेके लिये गृहस्थी लोगोंके जानी हुई पर्युषणा दो प्रकारकी ठहराकर अभिवर्द्धितमें वीशदिनकी पर्युषणाको केवल गृहस्थी लोगोंके जानी हुई कहने मात्रही ठहराते है सो भी मिथ्या है क्योंकि अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने गृहस्थी लोगोंको कह देवे कि हम यहाँ वर्षाकालमें ठहरे हैं ऐसा कहकर फिर एक मासके वाद भाद्रपदमें वार्षिक कृत्य करे इस तरहका कोई भी शास्त्रमें नही लिखा है इसलिये इन तीनों महाशयोंका कहना शास्त्रोंके प्रमाण बिनाका होनेसे प्रत्यक्ष उत्सूत्रभाषणरूप है और आषाढ़पूर्णिमासे योग्यक्षेत्राभावादि कारणे पाँच पाँच दिनकी वृद्धि करते दशवें पंचकमें याने पचासदिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करे इस वाक्यको देखके— जो तीनो महाशय अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिनकी पर्युषणाको गृहस्थी लोगोंके जानी हुई सिर्फ़ कहने

मात्रही ठहरा कर फिर वार्षिक कृत्य अभिवर्द्धित संवत्सरमें भी दशपञ्चके पचासदिने ठहराते होवेंगे तो भी तीनों महाशयोंको जैन शास्त्रोंका अति गम्भिरार्थका तात्पर्य्य समझमें नही आया मालुम होता है क्योंकि जिस जिस शास्त्रमें दशपञ्चके पचासदिने अवश्य पर्युषणा करनी कही है सो निकेवल चंद्रसंवत्सरमें ही करनी कही है नतु अभिवर्द्धित संवत्सरमें क्योंकि दशपञ्चक तकका विहार चंद्रसंवत्सरमेंही होता है और अभिवर्द्धित संवत्सरमें तो निकेवल चारपञ्चकमें वीशदिने निश्चय प्रसिद्ध पर्युषणा किवी जाती थी सो उपरमें भी विस्तार पूर्वक लिख आया हुं—जिससे चारपञ्चकके उपर सर्वथा प्रकारसे विहार करनाही नही कल्पे तथापि अभिवर्द्धितमें वीश-दिनके उपरान्त विहार करे तो छकायके जीवोंको विराधना करने वाला और आत्मघाति आज्ञा विराधक कहा जाता है सो श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रकी वृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है इसलिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें दशपञ्चक कदापि नही बनते हैं जहाँ जहाँ दशपञ्चके पचासदिने पर्युषणा करनेकी व्याख्या लिखी है सो सब चंद्रसंवत्सरमें करनेकी समझनी—

और अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने गृहस्थी लोगोंको साधु कह देवें कि हम यहां वर्षाकालमें ठहरे हैं इस वाक्यको देखके तीनों महाशय वीशदिनकी पर्युषणाको कहने मात्रही ठहराते होवेंगे तब तो इन तीनों महाशयोंकी गुरुगम रहित तथा विवेक बिनाकी अपूर्व विद्वत्ताको देखकर मेरे को बड़ा आश्चर्य्य आता है क्योंकि जैसे अभिवर्द्धित संवत्सर में वीश दिने गृहस्थी लोगोंको साधु कह देवें कि हम यहाँ

वर्षाकालमें ठहरे हैं तैसेही चंद्रसंवत्सरमें भी पचासदिने कह देवें कि हम वर्षाकालमें यहाँ ठहरे हैं ऐसे अक्षर खुलासा पूर्वक चन्द्रके तथा अभिवर्द्धितके लिये अनेक शास्त्रकारोंने लिखे है सो इन शास्त्रकारोंके लिखे वाक्यपरसे तो इन तीनों विद्वान् महाशयोंकी विद्वत्ताके अनुसार चन्द्रसंवत्सरमें पचास' दिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीकी पर्युषणा भी गृहस्थी लोगोंके कहने मात्रही ठहर जावेंगे और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि वार्षिक कृत्य करनाही नही बनेगा क्योंकि ज्ञात पर्युषणा चन्द्रमें पचासदिने तथा अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने करे सो यावत् ' कार्त्तिकपूर्णिमा तक खुलासा पूर्वक शास्त्र-कारोंने लिख दिया है और अमुक दिने ज्ञात पर्युषणा करे और अमुक दिने वार्षिक कृत्य करे ऐसा कोई भी जगह नही लिखा है इसलिये तीनों महाशय जो ज्ञात पर्युषणा के दिन वार्षिक कृत्य मानेंगे तब तो अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने वार्षिक कृत्य भी माननें पड़ेंगे और वीश दिनकी पर्युषणा कहने मात्रही है ऐसा लिखना भी मिथ्या होनेमें कुछ बाकी नही रहा और चन्द्रसंवत्सरमें पचासदिने ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य मानोगें और अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य नही मानोगें ऐसा मन कल्पनाका अन्याय तीनों महाशयोंका आत्मार्थी बुद्धिजन पुरुष कदापि नही मान सकते हैं किन्तु वीशे तथा पचासे ज्ञात पर्युषणा वहाँ ही वार्षिक कृत्य यह न्यायशास्त्रानुसार होनेसे सर्व आत्मार्थियोंको अवश्यही प्रमाण करने योग्य है इसलिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीश दिने श्रावण शुक्लपञ्चमीको ज्ञात पर्युषणा वार्षिक कृत्यों

सहित होती थी सो निश्चय निःसन्देहकी वात है और पर्युषणा अज्ञात तथा ज्ञात दो प्रकारकी सवी शास्त्रकारोंने कही है इसलिये इन तीनों महाशयोंने ज्ञात पर्युषणाका भी दो भेद लिखके वीशदिनकी कहने मात्र ठहराई तथा पंचासदिनकी वार्षिक कृत्योंसे ठहराई सो सर्वथा शास्त्र विरुद्ध हैं क्योंकि जैसी ज्ञात पर्युषणा चंद्रसंवत्सरमें पचास दिने होती थी तैसीही अभिवर्द्धित संवत्सरमे वीशदिने होती थी सो ज्ञात पर्युषणाका एकही भेद सर्व शास्त्रकारोंने लिखा है परन्तु ज्ञात पर्युषणाका दो भेद कोई भी प्राचीन शास्त्रोंमें नही है इसलिये तीनों महाशयोंका ज्ञात पर्युषणा दो प्रकारकी लिखना प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्ध हैं—

और आषाढ़पूर्णिमाको योग्यक्षेत्राभावादि कारणे श्रावण कृष्णपञ्चमी, दशमी वगैरह पाँच पाँचदिने जो पर्युषणा कही है सो गृहस्थी लोगोंकी न जानी हुई और अनिश्चय होती हैं इसलिये अज्ञात और अनिश्चय पर्युषणामें वार्षिक कृत्य नही बनते हैं किन्तु वीशे तथा पचासे ज्ञात और निश्चय पर्युषणामें वार्षिक कृत्य बनते हैं ।

और श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रके अष्टमाध्ययन (पर्युषणाकल्प) की चूर्णिका और श्रीनिशीथसूत्रके दशवें उद्देशेकी चूर्णिका पाठमें श्रीकालकाचार्य्यजीने कारणयोगे चतुर्थीकी पर्युषणा किवी है सो भी चंद्रसंवत्सरमें किवी थी नतु अभिवर्द्धितमें क्योंकि खास चूर्णिकार महाराजने अभिवर्द्धितमें वीशे तथा चंद्रमें पचासे ज्ञात निश्चय पर्युषणा करनी कही है जिसका सब पाठ उपरोक्त छपगया हैं इसलिये मासवृद्धि होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापते हैं सो मिथ्यावादी है क्योंकि

प्राचीनकालमें जैन ज्योतिषके पञ्चाङ्गकी रीतिसे चंद्रमें पचासदिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको और अभिवर्द्धितमें वीश-दिने श्रावणशुक्लपञ्चमीको प्रसिद्ध निश्चय पर्युषणा वार्षिक कृत्योंसे करनेमें आती थी जब जैन पञ्चाङ्गमें सिर्फ पौष तथा आषाढ़ मासकी वृद्धि होती थी और मासोंकी वृद्धिका अभाव था जिससे वर्षाकालके चारमासमें श्रावणादि कोई भी मासकी वृद्धि नही होती थी परन्तु अब वर्त्तमानकाल में जैनज्योतिषके पञ्चाङ्गका अभाव होनेसे लौकिक पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी वृद्धि होती है जिससे वर्षाकालमें श्रावण भाद्रपदादि मास भी वढ़ने लगे [और अभिवर्द्धित संवत्सरमें योग्यक्षेत्राभावादिकारणे पाँच पाँच दिनकी वृद्धि करते यावत् चारपञ्चके वीशदिने पर्युषणा करनेका तथा चंद्र-संवत्सरमें भी योग्यक्षेत्राभावादि कारणे पाँच पाँच दिनकी वृद्धि करते यावत् दशपञ्चके पर्युषणा करनेका कल्प कालानुसार श्रीसङ्घकी आज्ञासे विच्छेद हुआ है इसका विशेष विस्तार आगे करनेमें आवेगा]

इसलिये वर्त्तमानकालमें मासवृद्धि होवे तो भी आषाढ़ चौमासीसे पचास दिनकी गिनतीसे पर्युषणा करनेकी श्रीखर तरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके पूर्वज पूर्वाचार्योंकी आज्ञा है जिससे दो श्रावण हो तो दूजा श्रावणमें तथा दो भाद्रपद हो तो प्रथम भाद्रपदमें प्रसिद्ध पर्युषणा श्रीजिनेश्वर भग-वान्‌की तथा श्रीपूर्वाचार्योंकी आज्ञाके आराधन करनेवाले मोक्षार्थी प्राणी अवश्य करते हैं इसलिये दो श्रावण तथा दो भाद्रपद अथवा दो आश्विनमास होनेसे पांचमासके १५० दिनका अभिवर्द्धित चौमासा होता है जिसमें पचासदिने

पर्युषणा करनेसे कार्त्तिक चौमासी तक पीछाड़ीके १००दिन रहते हैं तो भी कोई दूषण नहीं कहा है परन्तु मासवृद्धि की गिनती निषेध करनेसे श्रीअनन्ततीर्थङ्करगणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उल्लङ्घनरूप महान् मिथ्यात्वके दूषणकी अवश्यही प्राप्ति होती है तथापि इन तीनों महाशयोंने उपरके दूषणका जरा भी विचार न किया और श्रीगणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामिजी कृत श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठका उत्थापनका भी बिलकुल विचार न करते सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें पाठ लिखके भोले जीवोंको सत्य बात परसे श्रद्धा उतारके जिनाज्ञा विरुद्ध मिथ्यात्वरूप झगड़ेकी डोर हाथमें देकर कदाग्रहमें गेरदिये हैं और अधिकमासको गिनतीमें लेने वालेको उलटा मिथ्या दूषण दिखाते हैं और अधिक मासकी गिनती नहीं करते भी आप निर्दूषण बनके श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठसे सत्यवादी तथा आज्ञा के आराधक बनते हैं जिसका पाठ इसी पुस्तकमें पृष्ठ ६९। ७० में और भावार्थः पृष्ठ ७२। ७३ में छपगया है इसलिये इस जगह पुनः पाठ न लिखते थोड़ासा मतलब लिखके पीछे उसमें जो जो शास्त्रविरुद्ध है सो दिखावेंगें—तीनों महाशयोंका खास अभिप्रायः यह है कि अधिक मासको गिनती में करनेवालोंको दो आश्विन मास होनेसे दूजा आश्विनमें चौमासी कृत्य करना पड़ेगा और दूजा आश्विनमें चौमासी कृत्य न करते कार्त्तिकमें करेगे तो पर्युषणाके पीछाड़ी १०० दिन हो जावेगे तो श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके वचनको बाधा आवेगा क्योंकि—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ-राइ मासे विइक्कंते सत्तरिएहिंराइंदिएहिं इत्यादि श्रीसम-

वायाङ्गजीमें पीछाड़ीके ७० दिन रखना कहा है ऐसा लिखके तीनों महाशयोंने पर्युषणाके पीछे अवश्यही ७० दिन रखनेका दिखाकर अधिक मासकी गिनती करके पर्युषणा करनेवालों को कार्त्तिक तक १०० दिन होनेसे श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठके बाधक ठहराये [इस न्यायानुसार तो तीनों महाशय तथा तीनों महाशयोंके पक्षवाले सबी महाशय भी श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके बाधक ठहर जाते हैं क्योंकि दो आश्विन होनेसे भी चैामासी कृत्य कार्त्तिक मासमें करनेसे पर्युषणाके पीछाड़ी १०० दिन होते हैं तथापि अब आप निर्दूषण बननेके लिये फिर लिखते हैं कि कार्त्तिक चैामासी कार्त्तिक शुदीमें करना चाहिये जिसमें दो आश्विनमास होवे तो भी १०० दिन हुआ ऐसा नही समझना किन्तु अधिकमासको गिनतीमें नही लेनेसे ७० दिनही हुआ समझना और दो श्रावण होवे तो भी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेसे ८० दिन हुआ ऐसा नही समझना किन्तु अधिकमासको गिनतीमें नही लेनेसे ५० दिनही हुआ समझना, दो श्रावण हो तथा दो आश्विन हो तो भी गिनतीमें नही लेनेसे श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके वचनको बाधा भी नही आवेगी और शास्त्रोंके कहे पर्युषणाके पहिले ५० दिन तथा पीछाड़ी ७० दिन यह दोनुं बात रह जाती है] इस तरहका तीनों महाशयोंका मुख्य अभिप्राय है ॥—

इस पर मेरेको बड़ा खेद उत्पन्न होता है कि तीनों महाशयोंने कदाग्रहके जोरसे अपनी हठवादकी मिथ्या बातको स्थापनेके लिये सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थसें

उत्सूत्र भाषणरूप वृथा क्यों परिश्रम करके भोले जीवोंको भ्रमजालमें गेरते संसारवृद्धिका भय कुछ भी नही रक्खा है इसलिये अब लाचार होकर भव्यजीवोंकी शुद्धश्रद्धा होनेके कारणरूप उपकारके लिये और तीनों महाशयोंका सूत्रकारके विरुद्ध उत्सूत्रभाषणके कदाग्रहको दूर करनेके वास्ते सूत्रकार और वृत्तिकार महाराजके अभिप्राय को ईस जगह लिख दिखता हुं—

श्रीसुधर्मस्वामिजी कृत श्रीसमवायाङ्गजीमूलसूत्र तथा श्रीखरतरगच्छनायक श्रीअभयदेवसूरिजी कृत वृत्ति और गुजराती भाषासहित छपके प्रसिद्ध हुआ है जिसके पृष्ठ १२७ में तथाच तत्पाठः—

समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराइ मासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासंपज्जोसवेइ ॥

अथ सप्ततिस्थानके किमपि लिख्यते समणेत्यादि— वर्षाणां चातुर्मासप्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविंशतिदिवाधिके मासे व्यतिक्रान्ते पञ्चाशतिदिनेष्वतीतेष्वित्यर्थः सप्तत्याञ्च रात्रिदिनेषु शेषेषु भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामित्यर्थः, वर्षास्वावासो वर्षावासः वर्षावस्थानं पज्जोसवेइत्ति परिवसति सर्वथा करोति पञ्चाशतिप्राक्तनेषु दिवसेषु तथाविध वसत्यभावादिकारणे स्थानान्तरमप्याश्रयति अतिभाद्रपद शुक्लपञ्चम्यां तु वृक्षमूलादावपि निवसतीति हृदयमिति ॥

भावार्थः—श्रमण भगवन् श्रीमहावीरस्वामिजीने वर्षाकाल के चारमास कहे है जिसके १२० दिन होते हैं जिसमें एकमास अधिक वीशदिन याने ५० दिन जानेसे और ७० दिन पीछाड़ी बाकी रहनेसे भाद्रपद शुक्लपञ्चमीके

दिन वर्षाकालमें रहनेका सर्वथा प्रकारसे अवश्यही निश्चय करना सो 'पज्जोसवणा' अर्थात् पर्युषणा है जिसमें भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीके पहिले ५० दिनके अन्दरमें योग्य क्षेत्राभावादि कारणे दूसरे स्थानमें भी विहार करके जाना बन सकता है परन्तु पचासमें दिन योग्य क्षेत्रके अभावसे जङ्गलमें वृक्ष नीचे भी अवश्यही पर्युषणा करे यह मुख्य तात्पर्य है ।

और चन्द्र संवत्सरमें पचास दिने पर्युषणा करनेसे पीछाड़ी ७० दिन रहते हैं तैसे ही मास वृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीस दिने पर्युषणा करनेसे पीछाडी १०० दिन रहते हैं सो उपरमें अनेक जगह खुलासा पूर्वक छप गया है तैसेही इन्हीं वृत्तिकार महाराजने श्रीस्थानांगजी सूत्रकी वृत्तिमें कहा है जिसका यहाँ पाठ दिखाता हुं । छपी हुई श्रीस्थानांगजी सूत्र वृत्तिके पृष्ठ ३६५ का तथाच तत्पाठः—

पढमपाउसंसित्ति॥ इहाषाढ श्रावणौ प्रावृट् आषाढस्तु प्रथम प्रावृट् ऋतुनां वा प्रथम इति प्रथमप्रावृट् अथवा चतुर्मासप्रमाणो वर्षाकालः प्रावृडिति विवक्षित स्तत्र सप्तति-दिनप्रमाणे प्रावृषे द्वितीये भागे तावन्नकल्पत एव गन्तु म्प्रथम भागेऽपि पञ्चाशद्दिनप्रमाणे विंशति दिनप्रमाणे वा न कल्पते जीवव्याकुलभूतत्वा दुक्तंच एत्थय अणभिग्गहियं, वीसइराइंसवीसईमासं ॥ तेणपरमभिग्गहियं, गिहिनायं-कत्तियंजावत्ति ॥ १ ॥ अनभिगृहीत, मनिश्चित मशिवादिभि र्निर्गमभावात् आहच असिवादिकारणेहिं, अहवावासंनसुठ्ठु- आरद्धं ॥ अभिवड्ढियंमिवीसा, इयरेसु सवीसईमासो ॥२॥ यत्र संवत्सरेऽधिकमासको भवति तत्राषाढ्याः विंशतिदिनानि याव दनभिग्रहिक आवासो ऽन्यत्र

सविंशतिरात्रं मासं पंचाशतं दिनानीति अत्र चैते दोषाः छक्कायविराहणया,आवडणं विसमखाणुकंटेसु ॥ वुज्झणअभिहणरुक्खो, ल्लसावणतेण उवचरए ॥ १ ॥ अक्खुन्नेसु पहेसु, पुढवी उदगंचहोइदुविहंतु ॥ उल्लपयावणअगणि, इहरापण ओहरियकुंथुत्ति ॥ २ ॥ तत स्तत्र प्रावृषि किमत आह एकस्माद् ग्रामा दवधिभूता दुत्तरग्रामाणा मनतिक्रमो ग्रामानुग्रामं तेन ग्रामपरम्परयेत्यर्थः अथवा एक ग्रामाल्लघु-पश्चाद्ग्रामाभ्यां ग्रामोऽनुग्रामो गामोय अणुगामोय गामाणुगामं तत्र दूइज्जित्त एत्ति द्रोतुं विहर्त्तुमित्युत्सर्गो पवादमाह पंचेत्यादि तथैव नवर मिह प्रत्ययेत ग्रामाचवालये न्निष्काशयेत् कश्चित् उदकौघेवा आगच्छति ततो नश्येदिति उक्तंच आवाहे दुभिक्खे, भएदओघंसिवामहंतंसि ॥ परिभवणं तालणवा, जया परोवाकरेज्जासित्ति ॥१॥ तथा वर्षासु वर्षाकाले वर्षावृष्टिः वर्षावर्षावर्षासु वा आवासोऽवस्थानं वर्षावास स्तं स च जघन्यत आकार्त्तिक्या दिन सप्ततिप्रमाणो मध्यमवृत्याच चतुर्मासप्रमाण उत्कृष्टतः षण्मासमान स्तदुक्तं इयसत्तरीजहन्ना, असिईनउईविसुत्तरसयंच ॥ जइवासेमग्गसिर, दसरायातिन्निउक्कोसा ॥१॥ [मासमित्यर्थः] काऊणमासकप्प, तथेवठियाणतीत मग्गसिरे ॥ सालंबणाणछम्मा, सिओउ जिठ्ठोगहोहोइत्ति ॥ २ ॥ पज्जोसवियाणति परीति सामस्त्येनो षितानां पर्युषणाकल्पेन नियमवद्वस्तुमारब्धानामित्यर्थः पर्युषणा कल्पश्च न्यूनोदरताकरणं विकृतिनवकपरित्यागः पीठफलकादि संस्तारकादान मुच्चारादि मात्रकसंग्रहणं लोचकरणं शैक्षाप्रव्राजनं प्राग्गृहीतानां भस्मडगल्लकादीना परित्यजन मितरेनां ग्रहणं द्विगुणवर्षोवग्रहो-

पकरणधरण मभिनवोपकरणग्रहणं स क्रोशयोजनात्परतो गमनवर्जन मित्यादि ।

देखिये उपरोक्त पाठमें श्रीवृत्तिकार महाराजनें चार मासके वर्षाकालमें अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीस दिन और चन्द्र संवत्सरमें पचास दिन के उपरान्त विहार करने वालोंको छ कायके जीवोंकी विराधना करने वाला कहा अर्थात् वीसे और पचासे अवश्यही पर्युषणा करनी कही सो यावत् कार्त्तिक तक याने अभिवर्द्धितमें वीस दिने पर्युषणा करनेसे पीछाडी १०० दिन और चन्द्रमें पचास दिने पर्युषणा करनेसे पीछाडी ७० दिन उसी क्षेत्रमें ठहरे ॥ इत्यादि ॥

अब श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाके आराधन करने वाले मोक्षाभिलाषि निर्पक्षपाती सज्जन पुरुषों को इस जगह विचार करना चाहिये कि श्रीगणधर महाराजनें श्रीसमवायांगजी मूलसूत्रमें और श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजनें वृत्तिमें मास वृद्धिके अभावमें चन्द्रसंवत्सरमें जैन ज्योतिषके पंचाङ्गकी रीतिमुजब वर्तनें के अभिप्रायसे चार मासके वर्षाकालमें प्रथम पचास दिन जानेसे और पीछाडी ७० दिन रहने से पर्युषणा करनी कही है तथा विशेष खुलासा करते वृत्तिकार महाराजनें योग्यक्षत्रके अभावसे वृक्ष नीचे भी पचास दिने अवश्यही पर्युषणा करनी कही और अभिवर्द्धित संवत्सरमें वृत्तिकार महाराजनें और पूर्वधरादि महाराजोंनें वीस दिने अवश्यही पर्युषणा करनी कही है जिससे पीछाडी एकसो दिन रहते हैं;—तथापि ये तीनों महाशय अपनी कल्पनासें वृत्तिकार और पूर्वधारादि महाराजों का (अभिवर्द्धितमें वीस दिने पर्युषणा करनेसे पीछाडी एकसो

दिन रहते हैं) इस अभिप्राय के व्यवहारको जड़मूलसे ही उड़ा करके अभिवर्द्धितमें भी पचास दिने पर्युषणा और पीछाडी ७० दिन रखनेका शास्त्रकारों के विरुद्धार्थमें वृथा आग्रहसे हठ करते हैं क्योंकि श्रीगणधर महाराजने श्रीसमवायांगजी मूलसूत्रमें और श्रीअभयदेवसूरिजीने वृत्तिमें प्रथम पचास दिन जानेसे और पीछाडी ७० दिन रहनेसे जो पर्युषणा करनी कही है सो चन्द्रसंवत्सरमें नतु अभिवर्द्धितमें तथापि तीनों महाशय श्रीसमवायांगजीका पाठको अभिवर्द्धितमें स्थापन करते हैं सो निःकेवल श्रीगणधर महाराजके और वृत्तिकार महाराजके अभिप्रायके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषण करते हैं इसलिये मास वृद्धि होते भी पीछाडी ७० दिन रखनेका पाठको दिखाकर संशय रूप भ्रमजालमें भोले जीवोंको गेरना सर्वथा शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें है इसलिये मास वृद्धि होते भी वीस दिने पर्युषणा करनेसे पर्युषणा के पीछाडी एकसो दिन प्राचीन कालमें भी रहते थे उसमें कोई दूषण नहीं—और अब जैन पंचाङ्गके अभावसे वर्तमानिक लौकिक पंचाङ्गमें श्रावणादि हरेक मासोंकी वृद्धि होनेसे शास्त्रानुसार तथा पूर्वाचार्योंकी आज्ञा मुजब पचास दिने दूजा श्रावण शुदीमें पर्युषणा श्रीखरतरगच्छादि वालोंके करनेमें आती है जिन्होंको पर्युषणाके पीछाडी कार्त्तिक तक एकसो दिन स्वाभावसेही रहते हैं सो शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक है क्योंकि दो श्रावणादि होनेंसे पाँच मासके १५० दिनका अभिवर्द्धित चौमासा होता है जिसमें पचास दिने पर्युषणा होवे तब पीछाडीके एकसो दिन नियमित रीतिसे रहते हैं यह बात जगत्प्रसिद्ध है इसमें कोई भी दूषण नहीं है इसलिये

अधिक मासकी गिनती करने वाले श्रीखरतरगच्छादि वालोंको पर्युषणाके पीछाड़ी एकसो दिन होते हैं परन्तु कोई शास्त्रके वचनको बाधाका कारण नहीं है और श्रीसमवायांगजीमें पीछाड़ी ७० दिन रहने का कहा है सो मास वृद्धिके अभावसे है इसका खुलासा उपरोक्त देखो इसलिये मास वृद्धि होनेसे १०० दिन होवे तो भी श्रीसमवायांगजी सूत्रके वचनको कोई भी बाधाका कारण नहीं है। तथापि तीनों महाशय श्रीसमवायांगजी सूत्रके नामसे पीछाड़ीके ७० दिन रखनेका हठ करते है। और श्रीखरतरगच्छादि वालोंके उपर आक्षेपरूप पर्युषणाके पीछाड़ी ७० दिन रखने के लिये दो आश्विनमास होनेंसे दूजा आश्विनमें चौमासी कृत्य करनेका दिखाते है। और कार्त्तिक में करनेसें १०० दिन होते है जिससे श्रीसमवायांगजी सूत्रका पाठके बाधक ठहराते हैं सो मिथ्या हैं क्योंकि श्रीखरतरगच्छवाले श्रीसमवायांगजी सूत्रका पाठके बाधक कदापि नही ठहरते हैं किन्तु तीनों महाशय और तीनों महाशयोंके पक्षधारी सब ही श्रीसमवायांगजी सूत्रके पाठके उत्थापक बनते हैं सो ही दिखाताहुं। तीनों महाशय (समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राइमासे वीइक्कंते इत्यादि) पाठको तो खास करके मंजूर करते हैं। इस पाठमें पचास दिन कहे हैं, वर्तमानिक कालानुसार पचास दिने पर्युषणा इस पाठसे करनी मानों तो श्रावणमासकी वृद्धि होते दूजा श्रावण शुदीमें पचासदिने पर्युषणा तीनों महाशयोंको और इन्हों के पक्षधारिओंको मंजूर करनी चाहिये। सो नही करते हैं और दो श्रावण होते भी ८० दिने पर्युषणा करते

हैं इसलिये श्रीसमवायांगजी सूत्रका इसी ही पाठको न माननेवाले तथा उत्थापक तीनों महाशय और इन्होंके पक्षधारी प्रत्यक्ष बनते है। तथापि निदूषण बनने के लिये अधिक मासकी गिनती निषेध करके, ८० दिनके बदले ५० दिन मानकर निदूषण बनते है। और पर्युषणाके पीछाड़ी दो आश्विनमास होनेसे कार्त्तिक तक १०० दिन होते हैं। तथापि इसको निषेध करने के लिये अधिकमासकी गिनती निषेध करके १०० दिनके बदले ७० दिन मानकर अपनी मनोकल्पनासे निदूषण बनते है और श्रीसमवायांगजी सूत्रका पाठके आराधक बनते है। परन्तु शास्त्रार्थको आत्मार्थी पुरुष निर्पक्षपातसे देखके विचार करते हैं तबतो दोनों अधिक मासका गिनतीमें निषेध करनेका तीनों महाशयोंका और इन्होंके पक्षधारिओंका महान् अनर्थ देखके वड़े आश्चर्य सहित खेदको प्राप्त होते हैं क्योंकि तीनो महाशय और इन्होंके पक्षधारी अधिकमासकी गिनती निषेध करके श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठके आराधक बनते है परन्तु खास इसी ही श्रीसमवायांगजी मूलसूत्रमें अनेक जगह खुलसा पूर्वक अधिकमासको प्रमाणकिया हैं जिसमें का ६१ और ६२ वा श्रीसमवायांगका पाठ भी वृत्ति भाषा सहित इसी ही पुस्तकमें ३९। ४०। ४१ पृष्ठ में छप गया है जिसमें पांच संवत्सरोंका एक युगमें दोनु अधिकमास को दिनोमें पक्षोमें मासोमें वर्षोंमें खुलासा पूर्वक गिनके प्रमाण दिखायाहै इस लिये अधिकमासकी गिनतीका निषेध कदापि नही हो शकता है तथापि अधिकमासकी गिनती निषेध करके जो श्रीसमवायांगजी सूत्रका पाठके आराधक बनते है सो आराधकके बदले

उलटे विराधक बनते हैं और मासवृद्धि दो श्रावणादि होते भी भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करणी और वर्तमानिक पाँचमास के १५० दिनका अभिवर्द्धित चौमासा होते भी पर्युषणाके पीछाड़ी ७० दिन रखनेका आग्रहसे हठकरना, और पर्युषणाके पीछाड़ी मास वृद्धि होनेसे १०० दिन माननेवालेंाको दूषित ठहराना। और अधिक मासकी गिनती निषेध करके भी आप निर्दूषण बनना। ऐसा जो जो महाशय वर्तमानकालमें मानते है श्रद्धारखते है तथा परूपते भी है—सो निःकेवल अनेक शास्त्रोंके विरुद्धार्थसें उत्सूत्र भाषण करते दृष्टिरागी भोलेजीवों को जिनाज्ञा विरुद्ध कदाग्रहकी भ्रमजालमें गेरके अपनी आत्माको संसारगामी करते है इसलिये अधिकमासके निषेध करने वाले कदापि निर्दूषण नही बनशकते है,—और अधिक-मासका निषेध करनेकी ऐसी बाललीला मिथ्यात्व रूप मन कल्पना की गपोल खीचड़ी, क्या, अनन्तगुणी अविसंवादी सर्वज्ञ महाराज अतिउत्तमोत्तम श्रीतीर्थङ्कर केवलज्ञानी भगवान् उपदेशित शास्त्रोंमें कदापि चल शकती है अपितु सर्वथा प्रकारसें नही, नही, नही, क्योंकि अधिकमास को श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराज खुलासा पूर्वक गिनती में प्रमाण करते हैं। इसलिये तीनों महाशय तथा इन्होंके पक्षधारी वर्तमानिक महाशयोंकी अधिक मासके निषेध करनेकी सर्व कल्पना संसार वृद्धि कारक मिथ्यात्वकी हेतु हैं इसलिये वर्तमानिक श्रीतपगच्छादि वाले आत्मार्थी मोक्षाभिलाषि निर्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि—हे धर्म बन्धवों तुमको संसार वृद्धिका

भय होवे और श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाके आराधन करने की इच्छा होवे तो अधिक मासकी गिनतीको प्रमाण करो और दो श्रावण हो तो दूजा श्रावणमें तथा दो भाद्र पद हो तो प्रथम भाद्रपदमें पचास दिने पर्युषणा करनी मंजूर करो करावो श्रद्धो परूपो और मास वृद्धि होनेसे पर्युषणाके पीछाड़ी १०० दिन स्वभाविक होते है जिसको मान्य करो इस तरहका जब प्रमाण करोगे तब ही जिनाज्ञाके आराधक निर्दूषण बनोंगे। नहीं तो कदापि नही, आगे, इच्छा तुम्हारी—इतने परभी श्रीसमवायांगजी सूत्रका पर्युषणा के पहिले ५० और पीछाड़ी ७० दिनका पाठको दिखाकर मास वृद्धि होते भी दोनुं बात रखने के लिये जितनी जितनी कल्पना जोजो महाशय करते रहेंगे सोसो सूत्रकारके विरुद्धार्थमें वृथा परिश्रम करके उत्सूत्र भाषक बनेंगे—क्योंकि ५० और ७० दिन चारमासके १२० दिनका वर्षाकाल संबंधी पाठ है इसलिये दो श्रावणादि होनेसे पाँचमासके १५० दिनका वर्षाकालमें श्रीसमवायांगजीका पाठको लिखना सो प्रत्यक्ष सूत्रकारके वृत्तिकार के और न्याय युक्तिसे भी सर्वथा विरुद्धार्थमें हैं इसका विशेष खुलसा उपरोक्त देखो।

और एक युगके पांच संवत्सरोमें दोनुं अधिकमासकों खास श्रीसमवायाङ्गजी मूलसूत्रमें तथा वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक प्रमाण किये है जिसके विषयमें २२ शास्त्रोंके प्रमाण तो इसी ही पुस्तक के पृष्ठ २७ तथा २८ और २९ मे छपगये है और भी सूत्र, वृत्ति, प्रकरण, वगैरह अनेक शास्त्रोंके प्रमाण अधिक मासको गिनतीमें करने के लिये हमको मिले है सो आगे लिखने में आवेंगे, अधिक

मासको दिनोमें यावत् मुहूर्तोंमें भी खुलासासे प्रमाण किया है इसलिये अधिकमासकी गिनती निषेध करने वाले तीनों महाशय और इन्होंके पक्षधारी वर्तमानिक महाशय भी श्रीअनन्ततीर्थङ्कर, गणधर, पूर्वधर पूर्वाचार्य्यों के और अपने ही पूर्वजों के वचनों का खण्डन करते, सूत्र, वृत्ति, भाष्य, चूर्णि, निर्युक्ति, और प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंके पाठोंके न मानने वाले तथा उत्थापक प्रत्यक्ष बनते है और भोले जीवोंको भी उसी रस्ते पहोचाते मिथ्यात्वकी वृद्धिकारक संसार बढ़ाते है। इस लिये गच्छके पक्षपातका कदाग्रहको छोड़के शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक अधिक मासको प्रमाण करनेकी सत्यबातको ग्रहण करना और सब जनसमाजको ग्रहण कराना यही सम्यक्त्व धारीसज्जन पुरुषों का काम हैं;—

और भी तीनों महाशय चौमासी कृत्य आषाढ़ादि-मास प्रतिबद्धा की तरह मास वृद्धि होने से पर्युषणा भी भाद्रपदमास प्रतिबद्धा ठहराते है सो भी शास्त्रों के विरुद्ध है क्योंकि प्राचीन काल में भी मास वृद्धि होनेसे श्रावणमास प्रतिबद्धा पर्युषणाथी और वर्त्तमान कालमें भी दो श्रावण होनेसे कालानुसार दूजा श्रावण में पर्युषणा करने की शास्त्रकारों की आज्ञा हैं सोही श्रीखरतरगच्छादिमे करने में आती हैं इसलिये मास वृद्धि होते भी प्राचीन कालमें भाद्र-पद प्रतिबद्धा और वर्तमानमें दो श्रावण होते भी भाद्रपद-प्रतिबद्धा पर्युषणा ठहराना शास्त्रोंके विरुद्ध है इस बातका उपरमें विशेष खुलासा देखके सत्यासत्यका निर्णय पाठकवर्ग स्वयंकर सकते हैं। और जैसे चौमासी कृत्यमें अधिक मासको गिना जाता है तैसे ही पर्युषणा में भी अधिक मास को

अवश्यही गिना जाता हैं इस लिये धर्मकार्यों में और गिनती का प्रमाणमें अधिक मासका शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक प्रमाण करना ही उचित होनेसे आत्मार्थियों को अवश्य ही प्रमाण करना चाहिये। अधिक मास को प्रमाण करना इससें कोई भी तरहका हठवाद नहीं हैं किन्तु अधिक मास की गिनती निषेध करना सो निःकेवल शास्त्रकारों के विरुद्धार्थमें हैं,—तथापि इन तीनों महाशयोंने बड़े जोरसे अधिक मासकी गिनती निषेध किवी तब उपरोक्त समीक्षा मुजेभी अधिक मासकी गिनती करने के सम्बन्ध की करनी पड़ी और आगे फिर भी इन तीनों महाशयोंने अपनी चातुराई अधिक मास को निषेध करने के लिये प्रगट किवी है जिसमें के एक तीसरे महाशय श्री विनयविजयजी कृत श्रीसुखबोधिका वृत्तिका पाठ इसही पुस्तक के पृष्ठ ६९।७०।७१ मे छपा था जिसमेका पीछाड़ीका शेष पाठ रहा था जिसको यहाँ लिखके पीछे इसीकी समीक्षा भी करके दिखाता हु श्रीसुखबोधिकावृत्ति के पृष्ठ १४७ की दूसरी पुठी की आदि से पृष्ठ १४८ के प्रथम पुठी की मध्य तक का पाठ नीचे मुजब जानो यथाः—

किं काकेन भक्षितः किं वा तस्मिन्मासे पापं न लगति उत बुभुक्षा न लगति इत्याद्युपहस न्मास्वकीयं ग्रहिलत्वं प्रकटयत स्त्वमपि अधिकमासे सति त्रयोदशषु मासेषु जातेष्वपि साम्वत्सरिक क्षामणे, बारसण्हं मासाणमित्यादिकं वदन्नऽधिकमाससंगीकरोषि एवं चतुर्मास क्षामणे ऽधिकमास सद्भावेपि, चउण्हंमासाणमित्यादि पक्षिक क्षामणकेऽधिक तिथि संभवेपि, पन्नरसण्हं दिवसाणमिति च ब्रूषे—

तथा नवकल्पिविहारोहि लोकोत्तरकार्येषु,आसाढेमासे दुप्पया, इत्यादि सूर्य्यचारे,लोकेपि दीपालिका अक्षय तृतीयादि पर्वसु धन कलत्रादिषु च अधिकमासो न गण्यते तदपि त्वं जानासि अन्यच्च सर्वाणि शुभकार्य्याणि अभिवर्द्धिते मासे नपुंसक इति कृत्वा ज्योतिः शास्त्रे निषिद्धानि अतएव आस्ता मन्योऽभिवर्द्धितो भाद्रपदवृद्धौ प्रथमो भाद्रपदोपि अप्रमाणमेव यथा चतुर्दशी वृद्धौ प्रथमां चतुर्द्दशीमवगण्य द्वितीयायां चतुर्द्दश्यां पाक्षिक कृत्यं क्रियते— तथात्रापि एवं तर्हि अप्रमाणे मासे देवपूजा मुनि दानाऽवश्यकादि कार्य्यमपि न कार्य्यमित्यपि वक्तुमाधरोष्टं चपलय यतो यानि हि दिनप्रतिबद्धानि देवपूजा मुनि दानादि कृत्यादि तानि तु प्रतिदिन कर्त्तव्यान्येवं यानि च सन्ध्यादि समय प्रतिबद्धानि आवश्यकादीनि तान्यपि य कश्चन सन्ध्यादि समयं प्राप्य कर्त्तव्यान्येव यानि तु भाद्रपदादि मास प्रतिबद्धानि तानि तु तद्द्वयसम्भवे कस्मिन् क्रियते इति विचारे प्रथम मवगण्य द्वितीये क्रियते इति सम्यग् विचारय तथाच पश्य अचेतना वनस्पतयोपि अधिकमास नांगी कुर्वते येनाधिकमासे प्रथमं परितज्य द्वितीय एव मासे पुष्पति—यदुक्तम् आवश्यकनिर्युक्तौ, जइफुल्लाकसि आरडा, चूअग अहिमासयंमिघुट्टंमि॥ तुहनखमं फुल्लेउं, जइपच्चंताकरिंति डमराइं॥१॥ तथा च कश्चित्॥ अभिवड्ढियंमिवीसा, इयरेसु सवीसइ मासो,। इति वचन बलेन मासाभिवृद्धौ विंशत्यादि तैरेव लोचादि कृत्य विशिष्टां पर्युषणां करोति तदप्ययुक्तं, येन अभिवड्ढियंमिवीसा इति वचनं गृहिज्ञातमात्रापेक्षया अन्यथा आसाढ-

पुस्निमाए पज्जोसवेंति एसउस्सग्गो सेसकाल पज्जो-सवितारणं अववाउत्ति, श्रीनिशीथचूर्णिदशमोद्देशक वचना-दाषाढ पूर्णिमायामेव लोचादि कृत्यविशिष्टा पर्युषणा कर्त्तव्या स्यात् इत्यलं प्रसंगेन—

उपरोक्तपाठ जैसा मेंने देखा वैसा ही यहाँ छपा दिया है और जैसे श्रीविनयविजयजीने उपरोक्त पाठ लिखा हैं वैसा ही अभिप्रायः का श्रीधर्मसागरजीने श्रीकल्पकिरणा-वली वृत्तिमें और श्रीजयविजयजीनें श्रीकल्पदीपिका वृत्ति में अपनी अपनी विद्वत्ताकी चातुराई से अनेक तरहके उटपटांग, पूर्वापर विरोधी विसंवादी और उत्सूत्र भाषण रूप शास्त्र कारोंके विरुद्धार्थ में अपनी मनकल्पना से लिखके गच्छकदाग्रही दृष्टि रागी श्रावकोंके दिलमें जिनाज्ञा विरुद्ध मिथ्यात्वका भ्रमगेरा हैं। जिसका सबपाठ यहाँ लिखने से ग्रन्थ वढ़जावे,और वाचकवर्गको विस्तारके कारणसे विशेष वख्तलगे इसें नही लिखा और तीनों महाशयोंका अभिप्राय उपरके पाठ मुजब ही खास एक समान है, इसलिये तीनों महाशयोंके पाठको न लिखते एकही श्रीसुखबोधिका वृत्तिका पाठ उपरमें लिखा है उसीकी समीक्षा करता हुं सो तीनों महाशयोंके अभिप्रायका लेखकी समझ लेना—अब समीक्षा-सुनो तीनों महाशय अधिकमासकी गिनती निषेध करके फिर उसीकों ही पुष्टी करने के लिये प्रश्नोत्तर रूपमें लिखते है कि—अधिकमासको गिनती में नही करते होतो (किं काकेनः भक्षित;—इत्यादि) क्या अधिकमासको काकने भक्षण करलिया किं वा तिस अधिक मासमें पाप नही लगता हैं और उस अधिकमासमें क्षुधा भी नही लगती है

सो अधिकमासको गिनतीमें नही लेते हो अर्थात् जो अधिक मास में पाप लगता होवे और क्षुधा भी लगती होवे तो अधिकमासको गिनतीमें भी प्रमाण करके मंजूर करणा चाहिये—इत्यादि मतलबसे उपहास करता प्रश्नकार वादीको ठहराकर फिर श्रीविनयविजयजी अपनी विद्वत्ता के जोरसे प्रतिवादी बनके उपरके प्रश्नका उत्तर देने मे लिखते है कि—सास्वकीयं ग्रह्लिलत्वं प्रगटयत स्त्वमपि अधिक मासे सति त्रयोदशषु मासेषु जातेष्वपि—इत्यादि अर्थात् अधिकमासको क्या काकने भक्षण करलिया तथा क्या तिस अधिकमासमें पाप नही लगता है और क्षुधा भी नही लगती है सो गिनतीमें नही लेते हो इत्यादि उपहास करता हुवा तेरा पागलपना प्रगट मत कर क्योंकि—त्वमपि अर्थात् हमारी तरह जिस संवत्सरमें अधिकमास होता है उसी संवत्सरमें तेरहमास होते भी साम्वत्सरिक क्षामणे 'बारसण्हंमासाणं' इत्यादि बोलके अधिकमासको गिनती में अङ्गीकार तु भी नही करता है और तैसेही चौमासी क्षामणेमें भी अधिकमास होनेसे पांच मासका सद्भाव होते भी 'चउण्हंमासाणंइत्यादि बोलके अधिकमासकी गिनती नही करता हैं ;—

अब हम उपरके मतलब की समीक्षा करते हैं कि हे पाठकवर्ग ! भव्यजीवों तुम इन तीनों विद्वान् महाशयों की विद्वत्ताका नमुना तो देखो–प्रथम किस रीतिसे प्रश्न उठाते हैं और फिर उसीका उत्तरमें क्या लिखते हैं प्रश्नके समाधानका गन्ध भी उत्तरमें नही लाते और और बाते लिख दिखाते हैं क्योंकि उपरोक्त प्रश्नमें अधिक मासको गिनतीमें नहीं लेते हो तो क्या काकने

भक्षण करलिया इत्यादि प्रश्न उठाकर इसका संबंध छोड़के—तुंभी साम्वत्सरिक क्षामणामें तेरहमास होते भी बारहमासके क्षामणे करता है इत्यादि लिख कर क्षामणाका संबंध लिख दिखाया और प्रश्नं कारके उपर ही गेरके अपनी विद्वत्ता दिखाई परन्तु सम्पूर्ण प्रश्नके संबंधका समाधान उत्तरमें शास्त्रोंके प्रमाणसे तो दूर रहा परन्तु युक्ति पूर्वक भी कुछ नहीं कर शके क्या अलौकिक अपूर्व विद्वत्ता प्रश्नके उत्तर देनेमें तीनों विद्वानोंने खर्च किवी हैं सो पाठक वर्ग बुद्धि जन पुरुष स्वयं विचार लेना, और तुंभी अधिकमास होनेसे तेरह मासके क्षामणा न करते बारह मासका करके अधिक मासको अङ्गीकार नही करता हैं इत्यादि तीनों महाशयोंनें लिखा हैं सो मिथ्या हैं क्योंकि अधिक मासकी गिनती करने वाले मुख्य श्रीखरतर गच्छवाले जब अधिक-मास होता है तब अभिवर्द्धित संवत्सराश्रय सांवत्सरिक क्षामणे में तेरह मास तथा छवीश पक्षादि और अभिवर्द्धित चौमासेमें भी पांचमास तथा दशपक्षादि खुलासा कहकर सांवत्सरिक और चौमासी क्षामणेमें अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करते हैं इसलिये अधिक-मासको क्षामणामें अङ्गीकार नही करता हैं ऐसा तीनो महाशयों का लिखना प्रत्यक्ष मिथ्या हो गया और इस जगह किसीको यह संशय उत्पन्न होगा कि तेरह मास छवीश पक्षादि किस शास्त्रमें लिखे है तो इस बातका सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजी के नामसे पर्युषणा विचार नामकी छोटीसी पुस्तक की आगे में समीक्षा करुंगा वहाँ विशेष खुलासा शास्त्रोंके प्रमाणसे लिखा जायगा सो पढ़नेसें सर्व निर्णय हो जावेगा ।

और पाठकवर्ग तथा विशेष करके श्रीतपगच्छके मुनि महाशय और श्रावकादि महाशयों को मेरा इस जगह इतना ही कहना है कि आप लोग निष्पक्षपातसे विवेक बुद्धि हृदय में लाकर तीनों महाशयोंके लेखको टुक नजरसे थोड़ासा भी तो विचार करके देखो इस जगह क्षामणा के सम्बन्धमें दूसरों को कहने के लिये तीनों महाशयोंने 'अधिकमासेसति त्रयोदशषु मासेषु जातेष्वपि, इत्यादि। तथा 'एवं चतुर्मासक-क्षामणेऽधिकमास सद्भावेऽपि,—यह वाक्य लिखके अधिकमास को गिनतीमें लेकर तेरह मास अभिवर्द्धित सम्वत्सरमें और चौमासामें भी अधिक मासका सद्भाव मान्यकर अभिवर्द्धित चौमासा पाँचमास का दिखाया। इस जगह उपरोक्त इस वाक्यसे अधिकमासको तीनों महाशयोंने प्रमाण करके मंजूर कर-लिया—और पहिले पर्युषणाके सम्बन्धमें अधिक श्रावणकी और अधिक आश्विनकी गिनती निषेध कर दिवी, जब क्षामणा के सम्बन्धमें अधिक मासको गिनतीमें खुलासा मंजूर करलिया तो फिर विसम्वादी वाक्यरूप संसार वृद्धिकारक अधिक मासकी गिनतीका निषेध वृथा क्यों किया इसका विशेष विचार पाठकवर्ग स्वयं करलेना,—और अब श्रीतपगच्छके वर्त्तमानिक महाशयोंको मेरा इतनाही कहना है कि आप-लोग तीनों महाशयोंके वचनोंको प्रमाण करते हो तो इन्होंके लिखे शब्दानुसार अधिक मासकी गिनती मंजूर करोगे किम्वा विसंवादी पूर्वापर विरोधी वाक्यरूप निषेधको मंजूर करोगे जो गिनती मंजूरकरोगे तबतो वर्त्तमानिक लौकिक पञ्चागमें दो श्रावण वा दो भाद्रपद अथवा दो आश्विनादि मासोंकी वृद्धि होनेसे अधिक मासका गिनतीमें

निषेध करनाही नही बनेगा, और जो निषेधको मंजूर करोगे तब तो अनेक सूत्र, वृत्ति भाष्य, चूर्णि, निर्युक्ति, प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंके न माननेवाले उत्थापक बनोंगे इसलिये जैसा तुम्हारी आत्माको हितकारी होवें वैसा पक्षपात छोड़कर ग्रहण करना सोही सम्यक्त्वधारी सज्जन पुरुषोंको उचित है मेरा तो धर्मबन्धुओंकी प्रीति सें हितशिक्षारूप लिखना उचित था सो लिख दिखाया मान्य करना किंवा न करना सो तो आपलोगों की खुसी की बात है ;—

और आगे भी सुनो, तीनों महाशयोंने पाक्षिक क्षामणे अधिक तिथि होते भी "पन्नरसण्हंदिवसाणं", ऐसा कहके अधिक तिथि को नहीं गिनता है यह वाक्य लिखा है इससें मालुम होता है कि तिथिओंकी हाणी वृद्धि की और पाक्षिक क्षामणा संबंधी जैन शास्त्रकारोंका रहस्यके तात्पर्य्यको तीनों महाशयोंके समजमें नही आया दिखता है नही तो यह वाक्य कदापि नही लिखते इसका विशेष खुलासा श्रीधर्मविजयजीके नामसें पर्युषणा विचार नामकी छोटीसी पुस्तक की में समीक्षा आगे करुंगा वहाँ अच्छी तरह सें तिथियों की हाणी वृद्धि संबंधी और पाक्षिक क्षामणा सम्बधी निर्णय लिखनेमें आवेगा—और नवकल्पि विहारका लिखा सो मासवृद्धिके अभावसे नतु पौषादिमास वृद्धि होते भी क्योंकि मासवृद्धि पौष तथा आषाढ़की प्राचीन कालमें होती थी जब और वर्त्तमानमें भी वर्षाऋतुके सिवाय मास वृद्धिमें अधिक मासकी गिनती करके अवश्यही दशकल्पि विहार होता है यह बात शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक है इस का भी विशेष निर्णय वहाँ ही करनें में आवेगा—और

(आसाढ़े मासे दुप्पया इत्यादि सूर्य्यचारे) इस वाक्यको लिखके तीनों महाशय अधिक मासमें सूर्यचार नहीं होता है ऐसा ठहराते है सो भी मिथ्या हैं क्योंकि अधिक मासमें अवश्यही निश्चय करके सूर्यचार आनादिकाल सें होता आया है और आगे भी होता रहेगा तथा वर्तमान कालमें भी होता है सो देखिये शास्त्रोंके प्रमाण श्रीचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रमें १ तथा वृत्तिमें २ श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रमें ३ तथा वृत्ति में ४ श्री-बृहत्कल्प वृत्तिमें ५ श्रीभगवतीजी मूलसूत्रके पञ्चम शतकके प्रथम उद्देशेमें ६ तत्वृत्तिमें ७ श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रमें ८ तथा इन्हीं सूत्रकी पांच वृत्तियों मे १३ श्रीज्योतिष-करंडपयन्नेकीवृत्ति में १४ श्रीव्यवहारसूत्र वृत्तिमें १५ और लघु तथा बृहत्दोनुसंग्रहणीसूत्र में १७ तथा तिस की चार वृत्तियों में २१ और क्षेत्रसमास के तीन मूल ग्रन्थों में २४ तथा तीन क्षेत्रसमासों की सात वृत्तिओं में ३१ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें अधिक मासमें सूर्यचार होनेका कहा है अर्थात् सूर्यचारके १८४ मांडलेके १८३ अन्तरे खुलासा पूर्वक कहे है जिसमें दिन प्रते सूर्य अपनी मर्यादा पूर्वक हमेसां गति करके १८३ दिने दक्षिणा-यनसे उत्तरायण और फिर १८३ दिने उत्तरायणसे दक्षिणायन इसीही तरहसे एक युगके पांच सूर्य संवत्सरोंके १८३० दिनोंमें सूर्यचारके १० आयन होते हैं जिसमें चन्द्रमासकी अपेक्षासे दो मासकी वृद्धि होने से ६२ चन्द्रमासके १८३० दिन होते हैं इसलिये अधिक मासके दिनोंकी गनती करनेसेही सूर्यचारके गतिका प्रमाण मिल शकेगा, अन्यथा नहीं ?

और लौकिक पञ्चांगमें भी अधिक मासके दिनोंकी गिनती सहित सूर्यचार होता है सोही वर्त्तमानिक संवत्सर

को दिखाता हुं,—सम्वत् १९६६ का जोधपुरी चंडु पञ्चांगमें आषाढ़ शुक्ल ५ के दिन सूर्य उत्तरायनसे दक्षिणायन में हुवा था जिसमें मास वृद्धिसे दो श्रावण मास हुवे तब अधिक मासके दिनोंकी गिनती सहित चन्द्रमासकी अपेक्षासे तिथियोंकी हाणी वृद्धि हो करके भी १८३ वें दिन मार्गशीर्ष शुक्ल ९ के दिन फिर भी सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायन में हुवा है सो पाठकवर्गके सामनेकी ही बात हैं, इसी तरहसे लौकिक पञ्चाग में हरेक अधिक मासोंकी गिनतीसे सूर्यचारकी गिनती समझ लेना और सम्वत् १९६९में खास दो आषढ़ मास होवेगें तबभी सूर्यचारकी गतिको देखके पाठकवर्ग प्रत्यक्ष निर्णय करलेना—और मेरेपास विक्रम सम्वत् १९०१ से लेकर सम्वत् १९९९वें तकके अधिक मासोंका प्रमाण मौजूद है परन्तु ग्रन्थगौरवके कारणसे नहीं लिखता हुं, इसलिये तीनों महाशय अधिक मास में सूर्यचार नहीं होता है ऐसा ठहराते है सो जैनशास्त्रानुसार तथा युक्तिपूर्वक और लौकिक पञ्चाङ्गकी रीतिसे भी प्रत्यक्ष मिथ्या हैं तथापि तीनों महाशयोंने भोले जीवोंकों अपने पक्ष में लानेके लिये (आसाढ़ेमासे दुप्पया) इस वाक्यको लिखके सूत्रकार गणधर महाराजका अभिप्रायके विरुद्ध हो करके और फिरभी अधूरालिख दिया क्योंकि गणधर महाराज श्रीसुधर्म्मस्वामिजीनें श्रीउत्तराध्ययनजी सूत्रके छवीश (२६) वें अध्ययन में साधुसमाचारी सम्बन्धी पौरस्याधिकारे—असाढ़मासे दुप्पया, पोसेमासे चउप्पया ॥ चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पया हवइपोरसी ११ इत्यादि १२।१३।१४।१५।१६ गाथाओं से खुलासा पूर्वक व्याख्या मास वृद्धिके अभावसे स्वभाविक

रीतिसें किवी थी और इन्हीं गाथाओंकी अनेक पूर्वाचा-यौंने विस्तार करके अच्छी तरहसे टीका बनाई हैं उन सब व्याख्यायोंको और सूत्रकारके सम्बधकी सब गाथायोंको छोड़करके सिर्फ एक पद लिखा सोभी मास वृद्धिके अभावका था जिसको भी मास वृद्धि होते भी लिखके दिखाना सो आत्मार्थी भवभीरु पुरुषोंका काम नहीं हैं और में इस जगह श्रीउत्तराध्ययनजीसूत्र के २६ वा अध्ययनकी गाथा ११ वीं,से १६ वी तक तथा व्याख्यायोंके भावार्थ सहित विस्तार के कारणसे नहीं लिख सक्ता हुं परन्तु जिसके देखनेकी इच्छा होवे सो रायबहादुर धनपतसिंहजी की तरफसे जैनागम संग्रहका ४१ वा भागमें श्रीउत्तराध्ययनजी मूलसूत्र तथा श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत वृत्ति और गुजराती भाषा सहित छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके २६ वा अध्ययन में साधुसमाचारी संम्बधी पौरषीका अधिकार पृष्ठ ७६६ सें ७६९ तक गाथा ११वी से १६वी तथा वृत्ति और भाषा देखके निर्णय करलेना और जिसके पास हस्तलिखित पुस्तक मूल की तथा वृत्तिकीहोवे सोभी उपरोक्तअध्ययनकी गाथा और वृत्ति देखलेना और श्रीउत्तराध्ययनजी सूत्रकार श्रीगणधर महाराज अधिक मासको अच्छी तरहसे खुलासा पूर्वक यावत् मुहूर्तोंमें भी गिनती करके मान्य करने वाले थे तथा अधिक मासके भी दिनोंकी गिनती सहित सूर्यचार को मान्यने वाले थे इसलिये सूत्रकार गणधर महाराजके अभिप्राय: के सम्बन्धका सब पाठको छोड़के एकपद लिखनेसें अधिक मासमें सूर्यचार नहीं होता है ऐसा तीनों महाशयोंका लिखना कदापि सत्य नहीं होशक्ता हैं अर्थात् सर्वथा मिथ्या हैं।

और भी तीनों महाशय दो भाद्रपद होनेसें प्रथम भाद्रपको अप्रमाण ठहरा कर छोड़ देना और दूसरे भाद्रपद में पर्युषणा करना कहते है इसपर मेरेकों वड़ाही आश्चर्य्य सहित खेद उत्पन्न होता है क्योंकि जैसे अन्य मतवाले जिस देवकी अनेक तरहसें अज्ञान दशाके कारणसें विटंबना बहोतसी करते है फिर उन्हीं देवकों अपने परमेश्वर मानकर पूजते भी है तैसेही इन तीनों महाशयोंने भी अज्ञानी मिथ्यात्वियोंका अनुकरण किया अर्थात् जिस अधिक मास को कालचूला मान्यकरके गिनतीमें नही लेना ऐसा सिद्ध-करके फिर अनेक तरहके विकल्पोंसें अधिक मासको दूषण लगाके निंदते हुवे निषेध करते है फिर उन्हीं अधिक मासमें धर्मकार्य्य पर्युषणापर्व करना मंजूर कर लिया, क्योंकि तीनों महाशय अधिक मासको कालचूला कहनेसें गिनतीमें नहीं आता है ऐसा तो पर्युषणाके सम्बधमें प्रथम लिखते हैं इसपर पाठकवर्ग बुद्धिजनपुरुष निष्पक्षपातसे विचार करो कि, कालचूला उसको कहते हैं जो एक वर्षका कालके उपरमे बढ़े एक वर्षके बारह मास स्वाभाविक होतेही हैं परन्तु जब तेरहवा मास बढ़ेगा तब उसीको कालचूलाकी ओपमा होगा नतु बारहवा मासको जब तेरहवा मास को कालचूलाकी ओपमा हुई उसीकों गिनतीमें निषेधभी करदेना, और प्रमाणभी करलेना यह कैसी विद्वत्ताका न्याय हुवा जो कालचूलाको निषेधकरेंगे तब तो दूसरा भाद्रपदको कालचूलाकी ओपमा होती है उसीमें पर्युषणापर्व स्थापना नहीं वनेगा, और जो दूसरे भाद्रपदमें कालचूला जानके भी पर्युषणा स्थापेंगे तबतो दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणको

निषेध करना नहीं बनेगा, और अधिक मासको निषेध करनेके लिये जो जो कल्पना उपरके पाठमें लिखी है सो सबही वृथा होजावेगी सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना;—

और जैसे श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की प्रतिमाजीके निंदक जैनाभास ढूंढिये और तेरहापन्थी हठग्राही कदाग्रहीलोग अपने पक्षकी भ्रमजालमें भोले जीवोंको फसानेके लिये जिस सूत्रका पाठ लोगोंको दिखाते हैं उन्हीं सूत्रके पाठको जड़ मूलसेही उत्थापन करते है तैसेही इन तीनों महाशयोंने भी किया अर्थात् श्रीदशाश्रुतस्कंधसूत्रके अष्टमाध्ययनरूप पर्युषणा कल्पचूर्णिका और श्रीनिशीथसूत्रकी चूर्णिके दशवें उद्देशेका पाठ लिखके भोले जीवोंको दिखाया था उन्हीं चूर्णिके पाठको जड़मूलसे उत्थापन भी कर दिया, क्योंकि प्रथम पर्युषणा भाद्रपदमें ठहरानेके लिये दोनुं चूर्णिके पाठ लिखे थे जिसमें स्वभाविक रीतिसे आषाढ़ चौमासीसें पचास दिनके अन्तरमें कारण योगसें श्रीकालकाचार्यजीने पर्युषणा किवी थी सोभी प्राचीनकालाश्रय गुनपचास (४९) वें दिन मास वृद्धिके अभावसे परन्तु शास्त्रोंके प्रमाण उपरान्त एकावन दिने पर्युषणा नहीं किवी थी, तथापि इस जगह उन्हीं पाठको तीनों महाशयोंने जड़मूलसेही उत्थापन करके स्वभाविक रीतिसे प्रथम भाद्रपद था उसीको छोड़कर दूसरे भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करनी लिख दिया, फिर निर्दूषण बनने के लिये उन्हीं दोनुं चूर्णिमें अधिक मासको प्रमाण किया था उन्हीं चूर्णिके पाठको उत्थापनरूप अधिक मासको निषेध भी कर दिया, हा, आफसोस ;—

अब सज्जन पुरुषोंसे मेरा इतनाही कहना हैं कि दो

भाद्रपद होनेसे प्रथम भाद्रपदमें ही पर्युषणा करनी जिनाज्ञामुजब शास्त्रानुसार है नतु दूसरेमें, इतनेपर भी हठवादीजन शास्त्रोंके विरुद्ध होकरके भी दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणा करेंगे तो उन्होंके इच्छाकी बात ही न्यारी है;—

और तीनों महाशय दो चतुर्दशी होनेसे प्रथम चतुर्दशी को छोड़कर दूसरी चतुर्दशीमें पाक्षिक कृत्य करनेका कहते है सोभी शास्त्रविरुद्ध है इसका विशेष खुलासा तिथिनिर्णयका अधिकारमें आगे विस्तार पूर्वक शास्त्रोंके प्रमाण सहित करनेमें आवेगा ,—

और अधिक मासमें देवपूजा, मुनिदान, पापकृत्योंकी आलोचनारूप प्रतिक्रमणादि कार्य दिन दिन प्रति करनेका कहकर अधिक मासके तीस ३० दिनोंमें धर्मकर्मके कार्य करनेका तीनों महाशय कहते है परन्तु अधिक मासको गिनती में लेनेका निषेध करते हैं, इसपर मेरेकों तो क्या परन्तु हरेक बुद्धिजन पुरुषोंकों तीनों महाशयोंकी अपूर्व बालबुद्धिकी चातुराईको देखकर वड़ाही आश्चर्यको उत्पन्न हुये बिना नही रहेगा क्योंकि जैसे कोई पुरुष एक रुपैये को अप्रमाण मानता है परन्तु १६ आने, तथा ३२ आधाने और ६४ पाव आने, आदिको मान्य करता हैं और एक रुपैये को मानने वालोंका निषेध करता है, तैसेही इन तीनों महाशयोंका लेखभी हुवा अर्थात् अधिक मासके ३० दिनोंमें धर्मकर्म तो मान्य किये, परन्तु अधिक मासको मान्य नहीं किया और मान्य करनेवालोंका निषेध किया सो क्या अपूर्व विद्वत्ता प्रगट तीनों महाशयोंने किवी है, जैसे उस पुरुषने जब १६ आने तथा ३२ आध आने चौसठ पाव आने कों

मान्य करलिये तब एक रुपैया तो स्वयं मान्य होगया, तथापि निषेध करना, सो बे समझ पुरुषका काम है तैसेही तीनों महाशयोंनें भी जब देवपूजा, मुनिदानावश्यक (प्रतिक्रमण) वगैरह धर्मकर्म ३० दिनोंमें मान्य लिये तब तो ३० दिनका एक अधिक मास तो स्वयं मान्य होगया, तथापि फिर अधिक मासको गिनती करनेमें निषेध करना सो हठवादसे निःकेवल हास्यका हेतु लज्जाका घर और तीनों महाशयोंकी विद्वत्ताकी लघुताका कारण है ,—

तथा और भी सुनिये जब इस जगह तीनों महाशय ३० दिनोंमें धर्मकर्म मान्य करते है जिससे अधिक मास भी गिनती में सिद्ध होता हैं फिर पर्युषणाके संबंधमें दो श्रावण के कारणसें भाद्रपद तक प्रत्यक्ष ८० दिन होते है जिसको निषेध करके ८० दिनके ५० दिन बनाते है और अधिक मासको निषेध करते है सो कैसे बनेगा अपितु कदापि नही, इस लिये जो ८० दिन के ५० दिन मान्य करेंगे तब तो अधिक मासके ३० दिनोंमें देवपूजा मुनिदानावश्यकादि कुछ भी धर्मकर्म करनाही नहीं बनेगा और अधिक मासके ३० दिनोंमें धर्मकर्म करना तीनों महाशय मंजूर करेंगे तो अधिक मासके ३० दिनका धर्मकर्म गिनतीमें आजावेगा तब तो दो श्रावण हनेसे भाद्रपद तक ८० दिन होते है जिसका निषेध करनाही नही बनेगा और ८० दिने पर्युषणा करनी सो भी शास्त्रोंके प्रमाण बिना होनेसे जिनाज्ञा विरुद्ध तीनों महाशयोंके वचनसे भी सिद्ध होगई—इस बातको पाठकवर्ग बुद्धिजन पुरुष विशेष स्वयं विचार लेना ,—

और आगे फिरभी तीनों महाशयोंनें अभिवर्द्धित

संवत्सरमें वीश दिने पर्युषणा होतीथी उसीको गृहस्थी लोगोंके करने मात्रही ठहरानेके लिये श्रीनिशीथ चूर्णिका दशवा उद्देशाके पर्युषणा विषयका आगे पीछेका संबंधको छोड़कर चूर्णिकार महाराजके विरुद्धार्थ में सिर्फ दो पद, लिखके वृथा परिश्रम करके वड़ी भूल किवी हैं क्योंकि जो आषाढ़पूर्णिमाको पर्युषणा कही हैं सो गृहस्थी लोगके न जानी हुई, अप्रसिद्ध तथा अनिश्चयसे होती हैं उसमें लोचादिकृत्य करनेका कोई नियम नही हैं परन्तु वीशे, और पचासे, गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई प्रसिद्ध निश्चय पर्युषणा होती है उसीमें लोचादिकृत्योंका नियम है इस लिये वीश दिनकी भी पर्युषणा वार्षिक कृत्योंसे होती थी इसका विशेष विस्तार उपरमें पहिले अनेक जगह छपगया है और श्रीनिशीथचूर्णिके १० वे उद्देशेका पर्युषणा संबंधी संपूर्ण पाठ भी उपरमे पृष्ठ ९५ से ९९ तक और भावार्थ १०० से १०४ तक छपगया है और आगे पृष्ठ १०६ से यावत् ११७ तक उसी बातके लिये अनेक शास्त्रोंके प्रमाणसे और युक्तिपूर्वक विस्तारसे छपगया है सो पढ़नेसें सर्व निर्णय होजावेगा और आगे लौकिकमें दीवाली, अक्षय-तृतीयादि पर्व वगैरह तथा अन्यभी सर्व शुभकार्य्य अधिक मासको नपुंशक कहके ज्योतिषशास्त्रमें वर्जन किये हैं और अधिक मास में वनस्पति प्रफुल्लित नही होती हैं, इत्यादि बाते जो जो तीनों महाशयोंनें लिखी हैं सो निःकेवल शास्त्रकारोंके अभिप्रायःकों जाने बिना विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप भोले जीवोंको अपने फन्दमें फसानेके लिये लिखके मिथ्यात्वके कारणमें वृथा परिश्रम

करके समय खोया है और आपका तथा आपके लेखको सत्य माननेवालोंका संसार वृद्धिका कारणभी खुब किया है सो इन सब बातोंका जबाब शास्त्रोंके प्रमाणसें शास्त्रकार महाराज के अभिप्रायः समेत तथा न्यायपूर्वक युक्ति सहित अच्छी तरहसें खुलासाके साथ आगे चौथे महाशय श्रीन्यायांभोनिधिजी और सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नाम सें लिखनेमें आवेगा,—

परन्तु इस जगह निष्पक्षपाती सत्यग्राही श्रीजिनेश्वर भगवन्की आज्ञाके आराधक सज्जन पुरुषोंसें थोड़ीसी वार्त्ता दिखाकर पीछे तीनों महाशयोंकी समीक्षाको पूर्ण करुंगा सो वार्त्ता अब सुनो ;—

तीनों महाशयोंने श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठकी [अंतरा वियसे कप्पइ नोसे कप्पइ तं रयणिं उवायणा वित्तएति] इस पदकी व्याख्या [अर्वागपि कल्पे परं न कल्पेतां रात्रिं (रजनीं) भाद्रपदशुक्लपञ्चमी उवायणा वित्तएति अतिक्रमीतु इत्यादि] व्याख्या खुलासा पूर्वक किवी हैं जिसमें। प्रथम। आषाढ़-चैामासीसें पचास दिनके अंदरमें कारणयोगे पर्युषणा करना कल्पे परन्तु पचासवें दिनकी भाद्रपदशुक्लपञ्चमीकी रात्रिको उल्लङ्घन करना नही कल्पे। तथा दूसरी। पॉच पाँच दिनकी वृद्धि करते दशवें पञ्चकमें पचास दिने पर्युषणा जैन पञ्चाङ्गानुसार मासवृद्धिके अभावसें लिखी। और तीसरी। जैन पञ्चाङ्गानुसार एक युगमें पौष और आषाढ़ दो मासकी वृद्धि होनेसें वीशदिने पर्युषणा लिखी। और चैाथी। अबी वर्त्तमानकालमें जैन पञ्चाङ्गके अभावसें लौकिक-पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी वृद्धि होती है इसलिये आषाढ़

चैमासीसें पचास दिने पर्युषणा करनेकी पूर्वाचार्योंकी आज्ञा है। इस तरहसें तीनों महाशयोंने चार प्रकारसें खुलासा लिखा है इस पर बुद्धिजन पुरुष तत्त्वग्राही होके विचार करो कि प्राचीनकालमें पाँच पाँच दिनकी वृद्धि करते दशवें पञ्चकमें पचास दिने मासवृद्धिके अभावसें जैन पञ्चाङ्गानुसार भाद्रपदशुक्लपञ्चमी परन्तु श्रीकालकाचार्य्यजीसें चतुर्थीको पर्युषणा होती है परन्तु अब लौकिकपञ्चाङ्गमें हरेक मासकी वृद्धि होनेसें श्रावणभाद्रपदादि मास भी बढ़ने लगे इसलिये मासवृद्धि हो अथवा न हो तो भी पचास दिने पर्युषणा करनेकी पूर्वाचार्योंकी आज्ञा हुई तब मासवृद्धि होते भी भाद्रपदमेंही पर्युषणा करनेका निश्चय नही रहा किन्तु दो श्रावण होनेसें दूजा श्रावणमें और दो भाद्रपद होनेसें प्रथम भाद्रपदमें पचास दिने पर्युषणा करनेका नियम इस वर्त्तमानिक कालमें रहा जिससें दो श्रावण तथा दो भाद्रपद और दो आश्विन मास होनेसें पर्युषणाके पीछाड़ी ७० दिनका भी नियम नही रहा अर्थात् मासवृद्धि होनेसें पर्युषणाके पीछाड़ी १०० दिन श्रीतपगच्छकेही पूर्वजोंकी आज्ञानुसार रहते हैं यह तात्पर्य तीनों महाशयोंके लिखे वाक्य परसें सूर्य्यकी तरह प्रकाश कारक निकलता हैं सो न्यायकीही बात है इस बातकी अपने पूर्वजोंकी आशातनासें डरनेवाला कोई भी प्राणी निषेध नही कर सकता है तथापि इन तीनों महाशयोंने अपनी विद्वत्ताकी बात जमानेके लिये खास अपनेही पूर्वजोंका उपरोक्त वाक्यको जड़ मूलसेही उठाकर अपने पूर्वजोंकी आज्ञा लोपते हुवे दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका और मासवृद्धि

होते भी पर्युषणाके पीछाड़ी ७० दिन रखनेका झगड़ा उठाया—

और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि पूर्वधर पूर्वाचार्य्य और प्राचीन सब गच्छोंके पूर्वाचार्य्य जिसमें श्रीतपगच्छकेही पूर्वज पूर्वाचार्य्योदि महाराजोंने अधिक मासको प्रमाण किया था सो इन तीनों महाशयोंने उपरोक्त महाराजोंकी आशातनाका भय न रखते हुए अधिकमासको निषेध कर दिया और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने जैसे सुमेरु पर्वतके उपर चालीशयोजनके शिखरको तथा अन्य भी हरेक पर्वतोंके शिखरोंको और देव मन्दिरादिकके शिखरोंको क्षेत्र चूलाकी उत्तम ओपमा कही है तैसेही चंद्रसंवत्सरके बारह मासोंके उपर शिखररूप तेरह वा अधिकमासको भी कालचूलाकी उत्तम ओपमा देकर गिनतीमें लिया था जिसको इन तीनों महाशयोंने धर्मकार्योंकी गिनतीमें निषेध करने के लिये अधिकमास को नपुंशकादि हलकी ओपमा देकर श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी विशेष बड़ी भारी आशातना किवी हैं और अपनी बात जमाने के लिये श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्र की चूर्णि तथा श्रीनिशीथचूर्णि और श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठ लिखके दृष्टि रागियोंको दिखाये थे सोभी शास्त्रकार महाराज के विरुद्धार्थ में तथा उन्ही तीनों शास्त्रोंमें अधिकमास को अच्छी तरहसें प्रमाण कियाथा तथापि इन तीनों महाशयोंने उन्ही तीनों शास्त्रोंके पाठोंको जड़ मूलसें ही उत्थापन करके अधिक-मासको निषेध कर दिया और मासवृद्धिके अभावसें पचास दिने भाद्रपदमें पर्युषणा कही थी तब पर्युषणाके पीछाड़ी ७०

दिन भी स्वभाविक रहते थे तथापि इन तीनों महाशयोंने उत्सूत्र भाषणरूप मासवृद्धि होनेसें वर्तमानिक दो श्रावण होते भी भाद्रपद में पर्युषणा और पीछाड़ी के ७० दिन शास्त्रोंके प्रमाण विरुद्ध हो करके स्थापन किये और तीनों महाशय खास आप भी स्वयं एक जगह अधिकमास को कालचूला की उत्तम ओपमासें लिखते हैं दूसरी जगह नपुं-शककी तुच्छ ओपमासें लिखते हैं आगे और भी एक जगह अधिकमाके ३० दिनोंका धर्मकर्मको गिनती में लेते हैं दूसरी जगह ३० दिनोंको ही सर्वथा निषेध करते है इसी तरहसें कितनी ही जगहपूर्वापरविरोधी (विसम्वादी) उटपटांगरूप वाक्य लिखके गच्छपक्षी जनोंको शास्त्रानुसार की सत्य बात परसें श्रद्धा छोड़ा कर शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें मिथ्यात्वरूप कदाग्रहसें गेर दिये तथा आगे अनेक जीवोंको गेरनेका कार्य कर गये हैं इसलिये खास तीनों महाशयोंकी और इन्होंके शास्त्र विरुद्ध लेखको सत्य मान्यकर उसी तरह सें अधिक मासकी निषेधरूप मिथ्यात्वके पीष्ट पेषणको पीसते रहेंगे ज़िससें भोले जीव भी उसीमें फसते रहेंगे उन्होंकी आत्माका कैसे सुधारा होगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने तथा और भी थोड़ासा सुन लिजिये श्रीभग-वतीजी सूत्रमें १ और तत् वृत्तिमें २ श्रीउत्तराध्ययनजी सूत्रमें ३ और तीनकी छ व्याख्यायोंमें ९ श्रीदशवैकालिक सूत्रमें १० और तीनकी चार व्याख्यायोंमें १४ श्रीधर्मरत्न-प्रकरणवृत्तिमें १५ श्रीसङ्घपट्टक बृहत् वृत्तिमें १६ श्रीश्राद्ध-विधिवृत्तिमें १९ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें उत्सूत्रभाषक श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वाचार्य्यादि परम गुरुजन महा-

राजोंकी आशातना करने वाला और उन्हीं महाराजोंका वाक्यको न मानता हुवा उत्थापन करने वाला प्राणीको यावत् दुर्ल्लभबोधि मिथ्यात्वी अनन्त संसारी कहा है तैसे ही न्यायांभोनिधिजी श्रीआत्मारामजीने भी अज्ञान तिमिरभास्कर ग्रन्थके पृष्ठ ३२०में लिखा है—छठ दशम द्वादसें हिं, मासद्धमासखमणे हिं। अकरन्तो गुरुवयणं, अनन्त संसारिओ भणिओ ॥ १ ॥ तथा और भी पृष्ठ २९५ का लेख इसी ही पुस्तकके पृष्ठ ७९ और ८०, में छपगया है इससे भी पाठकवर्ग विचार करो कि श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्व-धरादि पूर्वाचार्य्योंको और अपने ही गच्छके पूर्वाचार्य्योंकी इन तीनों महाशयोंने अधिकमासको निषेध करने के लिये कितनी बड़ी आशातना करके कितने शास्त्रोंके पाठोंको उत्थापन किये है तो फिर इन तीनों महाशयोंमें अनन्त संसारका हेतु रूप मिथ्यात्वके सिवाय सम्यक्त्वका लेश मात्र भी कैसे सम्भव होगा क्योंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्व-धरादि पूर्वाचार्योंकी आशातना करने वाला तथा आज्ञा न मानने वाला और उलटा उन्ही महात्माओंके वचनोंका उत्थापन करने वालाको जैन शास्त्रोंके जानकार बुद्धिजन पुरुष सम्यक्त्वी नही समझ सकते हैं इसलिये अब पाठक वर्ग पक्षपातका दृष्टिरागको छोड़कर और श्रीजिनेश्वर भग-वान् की आज्ञानुसार सत्य बातके ग्रहण करनेकी इच्छा रखकर उपरकी बातोंको अच्छी तरहसें पढ़के सत्यासत्यका निर्णय करके असत्यको छोड़ो और सत्यको ग्रहण करो यही मोक्षाभिलाषि भवभिरु पुरुषोंसें मेरा कहना है—

और प्रथम श्रीधर्मसागरजीनें श्रीकल्पकिरणावलीवृत्तिमें

तथा दूसरे श्रीजयविजयजीनें श्रीकल्पदीपिका वृत्तिमें और तीसरे श्रीविनयविजयजीनें श्रीसुखबोधिकावृत्ति में इन तीनों महाशयोंने श्रीकल्पसूत्रका मूलपाठके विरुद्धार्थमें उत्सूत्रभाषणरूप अपने हठवादके कदाग्रहको जमानेके लिये जो जो बाते लिखी है उन बातोंको श्रीतपगच्छके वर्त्तमानिक मुनिजनादि गांम गांममें हर वर्ष पर्युषणामें भोले जीवोंको सुनाते हैं जिससें आत्मसाधनका धर्मके बदले जिनाज्ञा विरुद्ध मिथ्यात्वकी श्रद्धामें गिरके श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उल्लङ्घन करके बड़ी आशातना करते हुए दुर्लभ बोधिका साधन करनेके कारणमें पड़ते हैं इस विषयके सम्बन्धी प्रथम श्रीधर्मसागरजीने बड़ी धूर्त्ताई करके श्रीतपगच्छमें पर्युषणा संबन्धी अधिकमासको निषेध करनेके लिये श्रीकल्पकिरणावली वृत्तिमें प्रथमही मिथ्यात्वकी निव लगाई है इस बातका खुलासा [आठो ही महाशयोंके उत्सूत्र भाषणके लेखोंकी समीक्षा हुवे बाद] अन्तमें विस्तारपूर्वक लिखुगा और इन तीनों महाशयोंने इस तरहसें मायावृत्तिका लेख लिखा है कि जिसमें भोले जीव तो फसे उसमें कोई आश्चर्य्य नही है परन्तु न्यायाम्भोनिधिजी श्रीआत्मारामजी जैसे प्रसिद्ध विद्वान् होते भी फस गये और उन्होंकी तरह श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातनाका कारणरूप और पूर्वापर विरोधि अधिक मासका निषेध आपभी आगेवान होकर कराया है इसलिये अब इन्होंके लेखकी भी समीक्षा आगे करता हुं—

॥ इति तीनों महाशयों के नामकी संक्षिप्त समीक्षा ॥

अब आगे चौथे महाशय न्यायांभोनिधिजी श्रीआत्मा-रामजीनें, जैनसिद्धांतसमाचारी, नामा पुस्तक में पर्युषणा सम्बन्धी लेख लिखाया है जिसकी समीक्षा करके दिखाता हुं ;— जिसमें प्रथम श्रीखरतरगच्छके श्रावक रायबहादुर मायसिंहजी मेघराजजी कोठारी श्रीमुर्शिदाबाद अञ्जीमगञ्ज निवासीकी तरफसें, शुद्धसमाचारी, नामा पुस्तक छपके प्रसिद्ध हुई थी, जिसमें श्रीतीर्थंकर गणधर, चौदहपूर्वधरादि पूर्वाचार्योंके अनेक शास्त्रोंके पाठों करके सहित और युक्तिपूर्वक देश कालानुसार श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञा मुजब अनेक सत्य बातों को प्रगट किवी थी, जिसको पढने से श्रीन्यायांभोनिधिजी तथा उन्होंके सम्प्रदायवाले मुनिजन और उन्होंके दृष्टिरागी श्रावकजन समुदाय सत्यबातको ग्रहण तो न कर सके परन्तु अंतर मिथ्यात्व और द्वेषबुद्धिके कारणसें उसका खण्डन करनेके लियें अनेक शास्त्रोंके आगे पीछे के पाठोंको छोड़कर शास्त्रकार महाराजके विरुद्धार्थ में उलटा संबंध लाकर अधूरे अधूरे पाठ लिखके शुद्धसमाचारी कारकी सत्य बातोंका खण्डन किया और अपनी मिथ्या बातोंको उत्सूत्र भाषणरूप स्थापन किवी जिसके सब बातोंकी समालोचनारूप समीक्षा करके उसमें शास्त्रोंके सम्पूर्ण सम्बन्धके सब पाठ तथा शास्त्रकार महाराजके अभिप्रायः सहित और युक्ति पूर्वक भव्य जीवोंके उपगारके लिये इस जगह लिखके न्यायांभोनिधिजीके न्यायान्यायका विचारको प्रगट करना चाहुं तो जरूर करके अनुमान ६०० अथवा ७०० पृष्ठका वडा भारी-एक ग्रन्थ बन जावे परन्तु इस जगह विस्तारके कारणसें और हमारे विहारका समय नजिक आनेके सबबसें सब न

लिखते थोडासा नमुनारूप पर्युपणाके सम्बन्धी लेखकी समीक्षा करके लिख दिखाता हुं—जिसमें पहिले जो कि-शुद्ध समाचारी पुस्तकके बनानेवालेनें पर्युषणा सम्बन्धी लेख लिखा है उंसीको इस जगह लिखके फिर उसीका खण्डन जैनसिद्धान्तसमाचारी में न्यायांभोनिधिजीने कराया है उसीको लिख दिखाकर उसपर मेरी समीक्षा को लिखुङ्गा सो आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंको दृष्टिरागका पक्षको न रखते न्याय दृष्टिसें पढ़कर सत्य बातको ग्रहण करना सोही उचित हैं ;—अब शुद्धसमाचारीकारके पर्युषणा सन्बन्धी लेखका पृष्ठ १५४ पंक्ति १३ वी से पृष्ठ १६० की पंक्ति ७ वी तकका (भाषाका सुधारा सहित) उतारा नीचे मुजब जानो ;—

शिष्य प्रश्नः करता है कि अपनें गच्छमें जो श्रावणमास वढ़े तो दूसरे श्रावण शुदीमें और भाद्रपद वढ़े तो प्रथम भाद्रव शुदीमें, आषाढ़ चौमासीसें, ५० में दिनही पर्युषणा करना, परन्तु ८० अशीमें दिन नहीं करना ऐसा कोई सिद्धान्तोंमें प्रमाण हैं ।

उत्तर—श्रीजिनपतिसूरिजी महाराजनें अपनी ११ मी समाचारीके बिषे कहा है (तथाहि) सावणे भद्दवए वा, अहिग मासे चाउम्मासीओ ॥ पन्नासइमेदिणे, पज्जोसवणा कायव्वा न असीमे इति ॥ भावार्थः श्रावण और भाद्रपद मास, अधिक हो तो आषाढ़ चौमासीकी चतुर्दशीसें पचाश दिने पर्युषणा करना परन्तु अशीमें दिन न करना ।

प्रश्नः—जो अधिकमास होनेसें अशीमे दिन पर्युषणा सांवत्सरिक पर्व करते हैं तिसका पक्षको किसीने कोई ग्रन्थमें दूषित भी किया है वा नहीं ।

उत्तर—श्रीजिनवल्लभसूरिजी कृत संघपट्टेकी श्रीजिनपतिसूरीजी कृत वृहद्वृत्तिमें ८० दिने पर्युषणा करने वालोंके पक्षको जिन वचन बाधाकारी कहा है सोई काव्य लिखते हैं यथा—वृद्धौ लोक दिशा नभस्य नभसोः, सत्यां श्रुतोक्तं दिनं॥ पञ्चासं परिहृत्य ही शुचिभयात्, पश्चाच्चतुर्मासकात्॥ तत्राशीतितमे कथं विदधते, मूढ़ामहं वार्षिकं॥ कुग्रहाधिगणय्य जैन वचसो, बाधां मुनि व्यंसकाः॥ १॥

भावार्थः—लौकिक रीतिसें श्रावण और भाद्रपद मास अधिक होता है जब शास्त्रोंमें आषाढ़ चतुर्मासीसें पचास दिने पर्युषणापर्व करनेका कहा है जिसको छोड़कर मूढ़ लोग अपना कदाग्रहसें ८० दिने क्यों करते हैं क्योंकि ८० दिने पर्युषणा करनेसें जिन वचनको बाधा आती है याने शास्त्र विरुद्ध होता है जिसको नही गिनते हैं इस लिये ८० दिने पर्युषणा करनेवाले लिङ्गधारी चैत्यवासी हठग्राही मुनिजन सच्चे ठग धूतारे हैं।

प्रश्नः—कैसे तिसका पक्ष जिन वचन बाधाकारी है।

उत्तर—श्रवण करो, प्रथम तो श्रावण और भाद्रव मासकी जैन सिद्धान्तकी अपेक्षायें वृद्धिका ही अभाव है केवल पौष और आषाढ़की वृद्धि होती थी और इस समयमें लौकिक टिप्पणाके अनुसारे हरेक मास वृद्धि होनेसें श्रावण और भाद्रपद मासकी भी वृद्धि होती है तब उनोकी वृद्धि होनेसें भी दशपञ्चके अर्थात् आषाढ़ चौमासीसें पचास दिने ही पर्युषणा करना सिद्ध होता है। सोई श्रीमान् चौदह पूर्वधारी श्रीभद्रबाहुस्वामीजी श्रीकल्पसूत्रके विषे कहते हैं। यथा—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं

२०

महावीरे वासाणं सवीसइ राइमासे वइक्कन्ते वासावासं पज्जोसवेइ ।

भावार्थः—आषाढ़ चौमासीसें वीश दिन अधिक, एक मास अर्थात् ५० दिन जानेसें, श्रीमहावीर स्वामी पर्युषणा करे। इसी तरहसें वृहत् कल्पचूर्णिके विषे, दशपञ्चके पर्युषणा करना कहा है। यथा—आसाढ चउमासे पडिक्कन्ते, पंचेहिं पंचेहिं दिवसेहिं गएहिं, जत्थ २ वासजोग्गं खेत्तं पडिपुन्नं। तत्थ २ पज्जोसवेयव्वं। जाव सवीसइ राइमासो इत्यादि।

भावार्थः—आषाढ़ चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद पांच पांच दिन व्यतीत करते जहां जहां वर्षावास योग्य स्थान प्राप्त होय। वहां वहां पर्युषणा करें, यावत् दशपञ्चक एक मास और वीश दिन तक पर्युषणा करें। और दशमा पंचकमें अर्थात् पचासमें दिन तो योग्यक्षेत्र नही मिले तो वृक्षके नीचे भी रहकर पर्युषणा करें, इसी तरह श्रीसमवायाङ्गजी सूत्र तथा वृत्तिके विषे ७०वे समवायाङ्गमें कहा है। तथाहि। समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राइमासे वइक्कन्ते सत्तरिएहिं राइदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ।

भावार्थः—श्रमण भगवन् श्रीमहावीर स्वामीजी वर्षाकालके एकमास और वीश दिन गए बाद पर्युषणा करें। इसलिये पचास दिने करके ही पर्युषणा करना अवश्य है और पीछाडी ७० दिन कहे सो मास वृद्धिके अभावसें न कि मासवृद्धि होते भी। और ऐसा भी न कहना कि मासवृद्धि होनेसें अधिक मास गिनतीमें न आता है क्योंकि वृहत् कल्पभाष्य तथा चूर्णिके विषे, अधिक

मासकी गिनती प्रमाण किवी है। और ऐसा भी म कहना कि ज्योतिषादिक ग्रन्थोंमें प्रतिष्ठादिक शुभकार्य्य निषेध किया है तो पर्युषणा पर्व कैसें हुवें सो तो नार चन्द्रादिक ज्योतिष ग्रन्थोंमें, लग्न, दीक्षा, स्थापना, प्रतिष्ठादिकार्य्य कितनेही कारणोंसें निषेध किये है नारचन्द्र द्वितीय प्रकरणे यथा ॥ रविक्षेत्र गतेजीवे, जीवक्षेत्र गते रवौ। दिक्षां स्थापनांचापि, प्रतिष्ठां च न कारयेत् ॥१॥ इसवास्ते अधिक माससें पर्युषणा करनेका निषेध किसी जगह भी देखनेमें नही आता है। इसी कारण सें पूर्वोक्त प्रमाणोंसें श्रावण मासकी वृद्धि होनेसें दूसरे श्रावण शुदी ४ कों और भाद्रव मासकी वृद्धि होनेसें पहिले भाद्रव शुदी ४ चौथकों पर्युषणापर्व ५० पचास दिने करना सिद्ध होता है परन्तु अशीमें दिने नहीं। एस्थल अति गम्भीरार्थका है मैंने तो पूर्वगीतार्थ प्रतिपादित सिद्धान्ताक्षरों करके और युक्ति करके लिखा है इस उपरान्त विशेष तत्त्व केवली महाराज जानें, जो ज्ञानी भाव देखा है, सो सच्चा है और सर्व असत्य है। मेरे इसमें कोई तरहका हठवाद नहीं, इति श्रावण और भाद्रपद वढ़ते पचास दिने पर्युषणा करणाधिकारः ॥—

अब पाठकवर्ग उपरका लेख शुद्धसमाचारी प्रकाशनामा ग्रन्थका पढके विचार करोकी लेखकपुरुषनें कैसी सरलरीतिसें लिखा है और अन्तमें किसी गच्छवालेकों दूषित न ठहराते, (विशेष तत्त्व केवली महाराज जानें जो ज्ञानी भाव देखा है सो सच्चा है और सर्व असत्य है मेरे इसमें कोई तरहका हठवाद नही है) ऐसा लिखनेसें लेखक पुरुष पं० प्र० यतिजी

श्रीरायचन्द्रजी न्याययुक्त निष्पक्षपाती भवभिरू थे सो तो पाठकवर्ग भी विशेष विचार शकते हैं और उपरके लेखमें श्रीसङ्घपट्टक वृहत् वृत्तिका जो श्लोक लिखा हैं सो श्रीतप-गच्छवालोंके लिये वृत्तिकार महाराजनें नहीं लिखा था, तथापि श्रीतपगच्छवालोंके लिये उपरोक्त श्लोक समझते है उन्होंके समझ में फेर है क्योंकि श्रीसङ्घपट्टक की वृहद्वृत्ति सम्वत् १२५० के लगभग बनी थी उसी वख्त तपगच्छही नहीं हुवा था क्योंकि श्रीचैत्रवालगच्छके श्रीजगचन्द्रसूरिजी महाराजसें सम्वत् १२८५ वर्षे तपगच्छ हुवा है और श्रीतप-गच्छके पूर्वाचार्य जितने हुवे है सो सबीही अधिक मासको गिनतीसें मान्य करनेवाले तथा ५० दिने पर्युषणा करनेवाले थे इसलिये उपरका श्लोक श्रीतपगच्छवालोंके लिये नहीं हैं किन्तु उस समयमें कदाग्रही शिथिलाचारी उत्सूत्रभाषक चैत्य-वाशी बहुत थे वे लोग शास्त्रोंके प्रमाण विनाभी ८० दिने पर्युषणा करते थे और भी श्रीचन्द्रपन्नति श्रीसूर्यपन्नति श्री जम्बूद्वीपपन्नति श्रीसमवायाङ्गजी वगैरह अनेक सूत्रवृत्ति चूर्ण्यादि शास्त्रानुसार और अन्यमतके भी ज्योतिष मुजब वे चैत्यवाशीजन प्रायःकरके ज्योतिषशास्त्रोंके विशेष जान कार थे, इसलिये अधिक मासकी उत्पत्तिका कारण कार्या-दिकको जानते हुये अधिक मासको अङ्गीकार करनेवाले थे तथापि मिथ्यात्वरूप अज्ञानदशाके हठवादसें लौकिक पञ्चाङ्ग में दो श्रावण होतेभी भाद्रपदमें पर्युषणा चैत्यवाशी लोग करते थे जिमसें ८० दिन होते थे उन्होंके लिये उपरका श्लोक लिखा गया है नतु कि श्रीतपगच्छवालोंके लिये ।

अब उपरोक्त शुद्ध समाचारीप्रकाशका लेखपर जो न्यायां-

भोनिधिजीने जैनसिद्धान्त समाचारीमें उसीका खण्डन कराया है उसीको लिखके दिखाकर उसीके साथसाथमें मेंभी समीक्षा न्यायांभोनिधिजीके नामसें करता हुं जिसका कारण पृष्ठ ६६।६७।६८ में इसी ही पुस्तक में छपा हैं इसलिये न्यायांभोनिधिजीके नामसें ही समीक्षा करना मूजे उचित है सो करता हुं—जैनसिद्धांत समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ८७ की पंक्ति२२ वीसें पृष्ठ ८८ की पंक्ति१० वी तक का लेख नीचे मुजब जानो—शुद्धसमाचारीके पृष्ठ १५४ पंक्ति१४ में लिखा हैं कि [श्रावण मास वढ़ेतो दूसरे श्रावणशुदी में और भाद्रव मास वढ़े तो प्रथम भाद्रव शुदीमें अषाढ चौमासी सें ५० में दिन ही पर्युषणा करनी परन्तु ८० अशीमें दिन नही करनी, ऐसा लिखके पृष्ठ १५५में अपनेही गच्छके श्रीजिनपति सूरिजी की रचित समाचारीका प्रमाण दिया है आगे इसी पृष्ठके पंक्ति११ में लिखा है कि तिसका पक्षको कोई ने कोई ग्रन्थमें दूषित भी किया है वा नहीं, इसके उत्तरमें श्रीजिनवल्लभ सूरिजीके सङ्घपट्टेकी वडी टीकाकी शाक्षी दिवी हैं—(इस तरहका लेख शुद्ध समाचारी प्रकाशकी पुस्तक सम्बन्धी लिखके न्यायाम्भोनिधिजी अब उपरके लेखका लिखते हैं) उत्तर—हे मित्र ! इस लेखसें आपकी सिद्धि कभी न होगी क्योंकि तुमने अपने गच्छका मनन दिखाके अपनेही गच्छका प्रमाण पाठ दिखाया हैं यह तो ऐसा हुवा कि किसी लड़केने कहा कि मेरी माता सति है शाक्षी कौन कि मेरा भाई इस वास्ते यह आपका लेख प्रमाणिक नही हो सकता है ।]

अब हम उपरके लेखकी समीक्षा करते हैं कि हे सज्जन पुरुषों जैसे शुद्ध समाचारी कारनें अपना कार्य्यसिद्ध करनेके

लिये अपने ही गच्छके पूर्वाचार्य्यजी श्रीजिनपति सूरिजी कृत ग्रन्थका पाठ दिखाया है उसको श्रीन्यायाम्भोनिधिजी अप्रमाण ठहराते हैं इस न्यायानुसार तो श्रीन्यायाम्भोनिधिजीनें अपना कार्यसिद्ध करनेके लिये अपनेही गच्छके पूर्वाचार्य्योंके पाठ दिये हैं वह सर्व पाठ अप्रमाण ठहरनेसें श्रीन्यायाम्भोनिधिजीको अपने पूर्वाचार्य्योंका पाठ लिख दिखाना भी सर्व वृथा होगया तो फिर जैनसिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ३१ वा में श्रीधर्मघोष सूरिजी कृत श्रीसङ्घाचार भाष्यवृत्तिका पाठ, पृष्ठ ३३ में श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत श्रीधर्मरत्नप्रकरण वृत्तिका पाठ, पृष्ठ ३३। ४६। ५२। ५९। ६३, में श्रीरत्नशेखरसूरिजीकृत श्रीश्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र वृत्तिका पाठ, पृष्ठ ३५ में श्रीजयचन्द्रसूरिजी कृत श्रीप्रतिक्रमण-गर्भहेतु नामा ग्रन्थका पाठ, पृष्ठ ४१ में श्रीविजयसेन सूरिजीका प्रश्नोत्तर ग्रन्थका पाठ, और पृष्ठ ५१। ६१ में श्री कुलमण्डन सूरिजी कृत विचारामृतसंग्रहका पाठ, इत्यादि अनेक जगह ठाम ठाम अपनेही गच्छके पूर्वाचार्य्योंका प्रमाण श्रीन्यायाम्भोनिधिजीनें लिखके वृथा क्यों अन्याय किया होगा सो पाठकवर्ग भी विचार लेना॥

अब दूसरा सुनो—श्रीन्यायाम्भोनिधिजी जैनसिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ १२ में श्रीखरतरगच्छके श्रीउपाध्यायजी श्रीक्षमाकल्याणजी गणिजी कृत श्रीगणधरसार्द्धशतक प्रश्नोत्तर ग्रन्थका पाठ, पृष्ठ ३५। ३६ में श्रीखरतरगच्छके श्रीअभयदेव सूरिजीकृत श्रीभगवतीजी वृत्तिका और समाचारी ग्रन्थका पाठ, पृष्ठ ७२। ८१में श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनदत्त सूरिजीका पाठ, पृष्ठ ७२ में श्रीखास श्रीजिनपति सूरिजीके शिष्य श्री

सुमतिगणिजीका पाठ, पृष्ठ ८१ में श्रीउपाध्यायजी श्रीजय सागरजीका पाठ, पृष्ठ ८२। ८६। ९१में श्रीजिनप्रभ सूरिजीका पाठ, और पृष्ठ ८४ में श्रीजिनवल्लभ सूरिजीका पाठ इसी तरहसें शुद्ध समाचारी कारके पूर्वाचार्य्य श्रीखरतरगच्छके प्रभाविक पुरुषोंका पाठ श्रीन्यायाम्भोनिधिजी अपना कार्य्य सिद्ध करनेके लिये तो खास मान्य करके दिखाते हैं और शुद्ध समाचारी कारनें अपना कार्य्यसिद्ध करनेके लिये अपनेही पूर्वजोंका (शास्त्रानुसार युक्ति सहित न्यायपूर्वक सत्य) पाठ लिख दिखाये उसीको श्रीन्यायाम्भोनिधिजी अप्रमाणिक ठहराते हैं यह तो प्रत्यक्ष बड़े अन्यायका रस्ता श्रीन्यायाम्भोनिधिजीनें ग्रहण किया है सो विशेष पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना।

अब तीसरा और भी सुनो श्रीआत्मारामजीनें खास (चतुर्थ स्तुतिनिर्णय.) नामा ग्रन्थ तीन स्तुति वालोंका खण्डन करनेके लिये बनाया है सो छपा हुवा प्रसिद्ध है उसीके पृष्ठ ८३।८४।८५ में श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरीजी कृत श्रीविधिप्रपाग्रन्थका पाठ और उसीकी भाषा पृष्ठ ८५।८६ ८७।८८ के आदि तक लिखके पुनः पृष्ट ८८ के मध्यमें लिखते हैं कि—(इस विधिमें पडिक्कमणेकी आदिमें चारथुइसें चैत्यवंदना करनी कही है और श्रुत देवता अरु क्षेत्र देवता का कायोत्सर्ग अरु इन दोनोंकी थुइ करनी कही है—इस लेखको सम्यक्त्वधारी मानते हैं और मानतेथे फेर मानेंगे भी परन्तु मिथ्या दृष्टि तो कभी नही मानेगा इस वास्ते सम्यक् दृष्टि जीवको तीन थुइका कदाग्रह अवश्य छोड़ देना योग्य है) इस तरहसें श्रीआत्मारामजी श्रीखरतरगच्छके

श्रीजिनप्रभ सूरिजीके लेखको न मानने वालेको मिथ्या दृष्टि ठहराते हैं तो इस जगह पाठकवर्ग विचार करो कि श्रीजिनप्रभसूरिजीके ही खास परमपूज्य और पूर्वाचार्य्य श्रीजिनपति सूरिजीके सत्य लेखको न मानने वाले तो स्वयं मिथ्या दृष्टि सिद्ध होगये फिर श्रीआत्मारामजी न्यायांभो-निधिजी न्यायके समुद्र हो करके अपने स्वहस्थे जिन्होंके सन्तानिये श्रीजिनप्रभसूरिजीके लेखको न मानने वालेंको मिथ्या दृष्टि लिखते है और श्रीजिनप्रभसूरिजीके ही पूर्वा-चार्य्यजी श्रीजिनपति सूरिजीके सत्य लेखको अप्रमाण मान्यके खास आपही मिथ्या दृष्टि बनते है। हा अतिखेद ! इस बातको पाठकवर्ग निष्पक्षपातसें सत्य बातके ग्राही होकर अच्छी तरहसें विचार लेना ;—

अब चौथा और भी सुनो श्रीआत्मारामजी इन्ही चतुर्थस्तुतिनिर्णयः पुस्तकके पृष्ठ १०१ । १०२ । १०३ में श्री वृहत्खरतरगच्छके श्रीजिनपतिसूरिजी कृत समाचारीका पाठ लिखके उसीको श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत पाठकी तरह प्रमाणिक मानते हैं और श्रीजिनपतिसूरिजी कृत पाठकी श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत पाठके साथ भलामण देते है जिससें श्रीजिनपतिसूरिजीका पाठको भी न मानने वालेंको मिथ्या दृष्टि सिद्ध करते है। और फिर आपही श्रीजिनपतिसूरिजीकृत सत्य पाठको जैनसिद्धान्त समाचारीमें अप्रमाण ठहराकर नही मानते है जिससें (उपरोक्त न्यायानु-सार करके) मिथ्या दृष्टि बननेका कुछ भी भय न करते कितने अन्यायके रस्ते चलते है सो भी आत्मार्थी सज्जन पुरुष विचार लेना ;—

अब पांचमा और भी सुन लिजिये श्रीआत्मारामजीने तत्त्वनिर्णय प्रासादग्रन्थ बनाया है सो छपा हुवा प्रसिद्ध हैं जिसके पृष्ठ १४५ में लिखा है कि—

[अब पक्षपात न होनेमें हेतु कहते है—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।

युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्य्यः परिग्रहः ॥ ३८ ॥

व्याख्या—मेरा कुछ श्रीमहावीरजीके विषे पक्षपात नही है कि जो कुछ महावीरजीने कहा है सोइ मैंने मानना है अन्यका कहा नही ; और कपिलादि मताधिपोंसें द्वेष नही है कि कपिलादिकोंका नही मानना किन्तु जिसका वचन शास्त्र युक्तिमत् अर्थात् युक्तिसें विरुद्ध नही है तिसका वचन ग्रहण करनेका मेरा निश्चय है ॥ ३८ ॥]

और इन्ही तत्त्वनिर्णय प्रासादकी उपोद्घात श्रीवल्लभ विजयजीनें बनाई है जिसके पृष्ठ ३१ वे में लिखा है कि (पक्षपात करना यह बुद्धिका फल नही है परन्तु तत्त्वका विचार करना यह बुद्धिका फल है "बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं चेति वचनात्" और तत्त्वविचार करके भी पक्षपातको छोड़ कर जो यथार्थ तत्त्वका भान होवे उसको अङ्गीकार करना चाहिये किन्तु पक्षपात करके अतत्त्वकाही आग्रह नही करना चाहिये यतः—आगमेन च युक्त्या च, योऽर्थः समभिगम्यते । परिक्ष्य हेमवद्ग्राह्यः, पक्षपाताग्रहेण किम्—

भावार्थः आगम (शास्त्र) और युक्तिके द्वारा जो अर्थ प्राप्त होवे उसको सोनेके समान परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये पक्षपातके आग्रह (हठ)से क्या है)—

अब पाठकवर्ग श्रीआत्मारामजीके और श्रीवल्लभ-

विजयजीके उपरोक्त लेखसें पक्षपात रहित विचारो कि–जिस पुरुषका वचन शास्त्र और युक्ति सहित होवे उसको सोनेके समान जानके सज्जन पुरुषोंको ग्रहण करना ही उचित है, और शास्त्र तथा युक्ति रहित वचनको हठवादसें ग्रहण करना सो निर्बुद्धि पुरुषोंका लक्षण है ऐसा दोनोंका कहना है तो इस पर मेरेको बड़ेही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि श्रीआत्मारामजी न्यायांभोनिधि नाम धारण करते न्याय और बुद्धिके समुद्र होते भी श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञामुजब शास्त्रानुसार युक्ति करके सहित और सत्यवचन शुद्ध समाचारी कारनें श्रीजिनपतिसूरिजी महाराजका लिखा था सो ग्रहण करने योग्य था तथापि उनको गच्छके पक्षपातसें वृथा क्यों निषेध किया होगा क्योंकि श्रीजिनपतिसूरिजीका (श्रावण और भाद्रव मास अधिक होवे तो भी पचासदिने पर्युषणा करना परन्तु ८० में दिन नही करना इतने पर भी ८० दिने पर्युषणा करते है सो शास्त्रविरुद्ध है) यह वाक्य श्रीशुद्धसमाचारी ग्रन्थका और श्रीसंघपट्टक वृहद्वृत्तिका लिखा है सो शास्त्रानुसार सत्य है इसी ही बातका खुलासा इन्ही पुस्तकमें अनेक जगह ठामठाम शास्त्रोंके प्रमाण सहित युक्तिपूर्वक विस्तारसें छप गया है इसलिये उपरकी बातका निषेध करनाही नही बनता है शुद्ध समाचारीकारनें श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज कृत ग्रन्थानुसार ५० दिने पर्युषणा ठहराई और ८० दिन करने वालोंको जिनाज्ञाके बाधक कहे है इसको श्रीआत्मारामजीनें अप्रमाण ठहराया तब इसका तात्पर्य्य यह निकला कि ५० दिने पर्युषणा करनेवालोंकों दूषित ठहराये और ८० दिने पर्युषणा

करनेवालोंकों निदूषण ठहराये (हा अति खेदः) इससें विशेष अन्याय दूसरा श्रीन्यायाम्भोनिधिजीका कौनसा होगा, कि-सूत्र, वृत्ति, भाष्य, चूर्णि, निर्युक्ति, प्रकरणादि अनेक शास्त्रों में श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्व्वधरादि पूर्वाचार्य्य और श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छकेही पूर्वाचार्य्य सवी उत्तम पुरुष ठामठाम कहते हैं कि पर्युषणा पचास दिने करना कल्पे परन्तु पचासमें दिनकी रात्रिको भी उल्लङ्घन करके एकावनमें दिनकी करना न कल्पे इसलिये योग्यक्षेत्र न मिले तो जङ्गलमें वृक्षनीचे भी पर्युषणा करलेना इतने पर भी कोई पचास दिनकी रात्रिको उल्लङ्घन करके एकावनमें दिन पर्युषणा करे तो श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाका लोपी होवें यह बात तो प्रायः जैनमें प्रसिद्ध भी है सो भी मासवृद्धिके अभावकी जैनपञ्चाङ्ग की रीतिसें वर्त्तनेकी थी परन्तु अब लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब मासवृद्धि हो अथवा न हो तो भी पचास दिने पर्युषणा करनी सोभी जिनाज्ञा मुजब है इसीही कारणसें श्रीजिनपतिसूरिजीनें मासवृद्धि हो तोभी पचास दिने पर्युषणा कर लेनेका लिखा है सो सत्य है। और एकावन दिने भी पर्युषणा करने वाला जिनाज्ञाका लोपी होता है तो फिर ८० दिने पर्युषणा करने वाले क्या जिनाज्ञाके आराधक बन सकते हैं सो तो कदापि नही अर्थात् ८० दिने पर्युषणा करने वाले सर्वथा निश्चय करके श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजों की आज्ञाके लोपी है इसलिये ८०दिने पर्युषणा करने वालों को श्रीजिनपतिसूरिजीनें जिनाज्ञाके विराधक ठहराए सो भी सत्य है इसलिये श्रीजिनपतिसूरीजी महाराजका दोनु वाक्य निषेध नही हो सकते हैं इतने परभी

श्रीन्यायांभोनिधिजी निषेध करते हैं सो निःकेवल शास्त्र विरुद्ध उत्सूत्र भाषण करके भोले जीवोंको कदाग्रहका रस्ता दिखाया हैं ।

आगे छठा और भी सुनिये शुद्धसमाचारी कारके सत्य वाक्यको निषेध करनेके लिये अपना पक्षपातके जोरसें श्रीआत्मारामजीनें (तुमने अपने गच्छका मनन दिखाके अपनेही गच्छका प्रमाण पाठ दिखाया है यह तो ऐसा हुवा कि किसी लड़केनें कहा कि मेरी माता सती है साक्षी कौन कि मेरा भाई इसवास्ते यह आपका लेख प्रमाणिक नही हो सकता है) यह वाक्य लिखे हैं इसकी पांच तरहसें तो समीक्षा उपरमें होगई है और भी छठी तरहसें अब सुनाता हुं, कि–उपरोक्त लेखमें श्रीआत्मारामजीनें शुद्ध समाचारी-कारका उपहास करनेके लिये विद्वत्ताके अभिमानसें एक लड़केका दृष्टान्त दिखाया है परन्तु शुद्ध समाचारी कारके पूर्वाचार्य्य श्रीजिनपतिसूरिजीनें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार शास्त्रोंकी मर्य्यादा पूर्वक सत्य वाक्य लिखा हैं इसलिये लड़केका दृष्टान्त शुद्ध समाचारी कारके उपर किञ्चिन्मात्र भी नही घट सकता है तथापि श्रीआत्मारामजीनें लिखा है सो निःकेवल वर्त्तमानिक गच्छके पक्षपातसें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी अवज्ञा कारक है, और जैसे ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नका समयके सूर्य्यको किसीने पत्थर फेंका तो भी सूर्य्य पर न गिरते पीछा लोट कर फेंकने वालेके शिर परही आनके गिर सकता है तैसेही श्रीआत्मारामजीका न्याय हुवा अर्थात् श्रीआत्मारामजीनें लड़केका दृष्टान्त शुद्ध समाचारीकार पर दिया था परन्तु

शुद्धसमाचारी कारके वचन जिनाज्ञा मुजब सत्य होनेसें न गिर सका परन्तु वह लड़केका दृष्टान्त पीछाही फिरके श्री आत्मारामजी तथा उन्होंके परिवार वालोंके उपरही आकर गिरता है क्योंकि खास श्रीआत्मारामजीनेंही जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकमें अपनाही कार्य्यसिद्ध करनेके लिये अपनाही मनन दिखाकर और अपनेही गच्छके अर्वाचीन (थोड़े कालके) पाठ दिखाये हैं सो भी श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाके विरुद्ध उत्सूत्र भाषण रूप हैं और खास श्री-तपगच्छकेही पूर्वाचार्य्योंके विरुद्धार्थमें ग्रन्थकार महाराजका अभिप्रायःके विरुद्ध होकरके आगे पीछेका सम्बन्धको छोड़ कर अधूरे अधूरे पाठ लिखके फिर अर्थ भी उलटे उलटे किये है (इसका नमुना मात्र खुलासा संक्षिप्तसें आगे करनेमें आवेगा) इसलिये उपरोक्त लड़केका दृष्टान्त श्री आत्मारामजी तथा उन्होंके परिवार वालोंके उपर अवश्य ही बरोबर घटता है इसवास्ते श्रीआत्मारामजीनें शास्त्र-कारोंके विरुद्धार्थमें जो जो बाते लिखी है सो तो सर्वही आत्मार्थियोंको त्यागने योग्य होनेसें प्रमाणिक नही हो सकती है ;—और सातमी तरहसें आगे (श्रीवल्लभविजय जीके नामसें समीक्षा होगा उसमें विस्तारसें लिखनेमें आवेगा) वहांसे समझ लेना ;—अब आगेकी भी समीक्षा करते हैं जैन सिद्धान्त समाचारीके पृष्ठ ८८ पंक्ति११ वी सें पृष्ठ ८९ की पंक्ति १९ वी तकका लेख नीचे मुजब जानो—

[और पृष्ठ १५६–१५७ में लिखा है, कि—"श्रावण और भाद्रव मासकी जैन सिद्धान्तकी अपेक्षायें वृद्धिकाही अभाव है। केवल पौष आषाढ़की वृद्धि होती थी, और इस समय

में लौकिक टिप्पणाके अनुसारे हरेक मासोंकी वृद्धि होनेसें श्रावण और भाद्रवकी भी वृद्धि होती है ॥ तिसमें उनोंकी वृद्धि होनेसें भी दशपञ्चक व्यवस्थाके विषे, आषाढ़ चौमासी सें पचाश दिनेही पर्युषणा करना सिद्ध होता है" ॥ आगे इसीकी सिद्धिके वास्ते कल्प सूत्रका और विशेष कल्प भाष्य चूर्णिका पाठ दिखाया है, कि—"जाव सवीसइ राइमासो" इत्यादि (इतना लेख शुद्धसमाचारी प्रकाशकी पुस्तक सम्बन्धी अधूरा लिखके इसका न्यायाम्भोनिधिजी लिखते हैं उत्तर)

हे मित्र! मासवृद्धिका जो जैन टिप्पणादिकका विशेष दिखाया है, यह तो अज्ञजनोंको केवल भरमानेके वास्ते है क्योंकि यद्यपि जैन टिप्पणाके अनुसार श्रावण और भाद्रव मासकी वृद्धिका अभाव है तो भी पौष और आषाढ़मास की तो वृद्धि होती थी, अब हम आपको पूछते है कि—जैन टिप्पणाके अनुसारे जब पौष अथवा आषाढ़मासकी वृद्धि हुई तब संवच्छरीको अप्भुट्ठिओ सूत्रके पाठमें क्या 'तेराणं मासाणं छवीसपखाणं' वैसा पाठ कहोगे ? क्योंकि तिस वर्षमें तेरह मासतो अवश्य होजायगें। और जैनसिद्धान्तो में तो किसी भी स्थानमें वैसा नही लिखा है कि अधिक मास होवे तब तेरहमास और छवीस पक्ख संवछरीकों कहना। तो अब आपका प्रयास क्या काम आया परन्तु यह तो निःशङ्कित मालुम होता है कि—जैनटिप्पणाके अनुसारसें भी अधिक मासकों कालचूलामें ही गिनना पड़ेगा। पूर्वपक्ष—कालचूला क्या होती है ? उत्तर हे परीक्षक। आगे दिखावेंगे और दशपञ्चक व्यवस्था लिखते हो। सो तो कल्पव्यवच्छेद हुवा है, यह सर्वजन प्रसिद्ध है। और लौकिक टिप्पणाके

अनुसारसें हरेक वर्षमें आषाढ़ शुदि चतुर्द्दशीसें लेके भाद्रव शुदि ४ और तुमारे कहनेसें दूसरे श्रावण शुदि ४ तक ५० दिन पूर्ण करने चाहोगें तो भी नही हो सकेगें। क्योंकि तिथियां वध घट होती है तो किसी वर्षमें ४९ दिन आजायगें और किसी वर्षमें ४८ दिन भी आजायगे तब क्या आपकों जिन आज्ञा भङ्गका दूषण नही होगा ?]

अब उपरके न्यायांभोनिधिजीके लेखकी समीक्षा करके आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंसें दिखता हुं, कि—हे भव्यजीवों न्यायांभोनिधिजीके उपरका लेखकोमें देखता हुं तो मेरेको वड़ाही खेदके साथ बहुत आश्चर्य्य उत्पन्न होता है क्योंकि श्रीन्यायाम्भोनिधिजीनें तो शुद्धसमाचारी कारके वचनको खण्डन करना विचारके उपरका लेख लिखा था परन्तु शुद्ध समाचारी कारके सत्यवचन होनेसें खण्डन न हो सके, परन्तु न्यायाम्भोनिधिजी के लिखे वाक्यसें अवश्यही श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी और अपने ही गच्छके पूर्वाचार्य्योंकी अवज्ञा (आशातना) का कारण होनेसें न्यायाम्भोनिधिजी को लिखना सर्वथा उचित नही था क्योंकि देखो शुद्धसमाचारी की पुस्तक के पृष्ठ १५६ के अन्तमें और पृष्ठ १५७ के आदिमें ऐसा लिखा था कि (श्रावण और भाद्रपदमास की जैन सिद्धान्त की अपेक्षायें वृद्धिका ही अभाव है केवल पौष और आषाढ़मासकी ही वृद्धि होती थी और इस समयमें तो लौकिक टीप्पणाके अनुसार हरेक मासोंकी वृद्धि होनेसें श्रावण और भाद्रपद की वृद्धि होती है) इस शुद्ध समाचारी का लेखको खण्डन करने के लिये न्यायाम्भोनिधिजी लिखते हैं कि—(हे मित्र मासवृद्धिका

जो जैन टिप्पणादिकका विशेष दिखाया है यह तो अज्ञ जनकों केवल भ्रमाने के वास्ते है) अब हे पाठकवर्ग सज्जन पुरुषों उपरके न्यायाम्भोनिधिजी के वाक्यको पढ़के अच्छी तरहसें विचार करो कि श्रीतीर्थङ्कर गणधर केवली भगवान् और पूर्वधरादि महान् धुरन्धर प्रभाविक पूर्वाचार्य्य तथा खास न्यायाम्भोनिधिजीके ही पूज्य पूर्वाचार्य्य सबी महाराज जैनसिद्धान्त (शास्त्रों) की अपेक्षायें जैनपञ्चाङ्गमें युगके मध्यमें पौष और अन्तमें आषाढ़ मासकी मर्य्यादा पूर्व वृद्धि होती है ऐसा कहते हैं सो अनेक शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है जिसमें अनुमान पचाश शास्त्रोंके पाठों की तो मुझे भी मालुम है कि जैन शास्त्रोंमें पौष और आषाढ़ की वृद्धि श्रीतीर्थङ्करादिकोनें कही है इसी ही अनुसार शुद्धसमाचारी कारनें भी पौष और आषाढ़ की जैन सिद्धान्तों की अपेक्षायें वृद्धि लिखी हैं जिसको न्यायाम्भोनिधिजी अज्ञ जनोंको भ्रमानेका ठहराते है सो यह तो ऐसा न्याय हुवा कि—

जैसे श्रीअनन्ततीर्थङ्करादि महाराज अनादिकाल हुवा उपदेश करते आये है कि । हे भव्यजीवों तुम्हारी आत्माको सुख चाहो तो द्रव्य भावसें जीवदया पालो इस वाक्यानुसार वर्त्तमानमें भी उपगारी पुरुष उपदेश करते है जिस उपदेशकों कोई भी जैनाभास द्वेषबुद्धिवाला अज्ञजनोंको केवल भ्रमानेका ठहरावें तो उस पुरुषनें श्रीअनन्त तीर्थ-ङ्करादि महाराजोंकी आशातना करके अनन्त संसार वृद्धिका कारण किया यह वात सर्वसज्जन पुरुष जैनशास्त्रोंके जान-कार मंजूर करते है तैसे ही श्रीअनन्त तीर्थङ्करादि महा-राज अनादि काल हुवा जैन सिद्धान्तोंकी अपेक्षायें पौष

और आषाढ़ की वृद्धि कहते है सोही बात शुद्धसमाचारी कारनें भी जैन सिद्धान्तोंकी अपेक्षायें लिखी है सो सत्य है इसलिये निषेध नही हो सकती है। तथापि न्यायाम्भोनिधिजी उपरकी सत्य बातकों अज्ञ जनोंको केवल भ्रमानेका ठहराते हैं हा! हा! अतिव खेदः। उपरोक्त न्यायानुसार न्यायांभोनिधिजीने श्रीअनन्त तीर्थङ्करादि-महाराजोंकी और अपने ही पूर्वजोंकी आशातना कारक अनन्त संसार वृद्धिका कारणरूप वृथा क्योंकिया होगा इसको विशेष पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना ;—

तथा थोड़ासा और भी सुन लिजीये—शुद्ध समाचारी कारनें जैन सिद्धान्तों की अपेक्षायें पौष और आषाढ़ मास की वृद्धि दिखाई और लौकिक टिप्पणा की अपेक्षायें हरेक मासोंकी वृद्धि दिखाई सो सत्य है तथापि न्यायाम्भोनिधिजी (अज्ञजनोंको केवल भ्रमानेका) ठहराते है तो इस लेखसें तो न्यायाम्भोनिधिजीने खास अपने ही पूज्य गुरुजन पूर्वाचार्य्योंको भी अज्ञजनोंको भ्रमाने वाले ठहरा दिये क्योंकि जैसे उपरोक्त शुद्ध समाचारी कारनें अधिकमास सम्बन्धी लिखा है तैसे ही श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्य्योंने भी लिखा है। जब शुद्ध समाचारी कारके लेखको न्यायाम्भोनिधिजी अज्ञजनोंको भ्रमानेका ठहराते है तब तो न्यायाम्भोनिधिजीके पूर्वाचार्य्योंका लेख भी अज्ञजनोंको भ्रमानेवाला ठहर गया जब न्यायाम्भोनिधिजीने अपनें पूर्वाचार्य्योंकी आशातनाका कुछ भी भय न रख्खा तो फिर न्यायाम्भोनिधिजीको न्याययुक्त आत्मार्थी कैसें मान सकते है अपितु नही इस बातको भी पाठकवर्ग विचार लो,—

और आगे लिखा है कि (यद्यपि जैन टिप्पणाके अनुसार श्रावण और भाद्व मासकी वृद्धिका अभाव है तो भी पौष और आषाढ़मास की तो वृद्धि होती थी अब हम आपको पूछते है कि जैन टिप्पणाके अनुसारे जब पौष अथवा आषाढ़मासकी वृद्धि हुई तब संवच्छरीको अब्भुठिओ सूत्रके पाठमें तेराणं मासाणं छवीसं पखाणं वैसा पाठ कहोगें क्योंकि तिस वर्षमें तेरह मास तो अवश्य हो जायगें और जैन सिद्धान्तोंमें तो किसी भी स्थानमें वैसा नही लिखा है कि अधिक मास होवे तब तेरह मास और छवीश पक्ष संवच्छरीको कहना तो अब आपका प्रयास क्या काम आया) इस लेखको देखता हु तो न्यायाम्भोनिधिजीके बुद्धिकी चातुराईका वर्णन में नही कर सकता हु क्योंकि जब शुद्ध समाचारी कारनें जैन सिद्धान्तोंकी अपेक्षायें पौष और आषाढ़मासकी वृद्धि लिखी जिसको तो न्यायांभोनिधिजी (अज्ञ जनोंको केवल भ्रमानेका) ठहराते हैं और फिर आप भी शुद्ध समाचारीके मुजब उसी तरहसें पौष और आषाढ़मासकी वृद्धि इस जगह मंजूर करते हैं यह न्यायांभोनिधिजीके अपूर्व विद्वत्ताका नमुना है क्योंकि दूसरेकी बातका खण्डन करना और उसी बातको आप मंजूर भी करलेना ऐसा अन्याय करना आत्मार्थियोंको उचित नही हैं और क्षामणाके सम्बन्धमें लिखा है सो भी जैनशास्त्रोंके तात्पर्य्यको समझे बिना प्रत्यक्ष मिथ्या लिखके भोले जीवोंको संशयमें गेरे हैं क्योंकि जब जिस संवत्सरमें अवश्य करके तेरह मास और छवीश पक्ष होगये तथा धर्मकर्म और संसारिक सावद्य कार्य्य तेरह मासके

किये जाते हैं जिससें पुण्य और पाप तेरह मासके लगते हैं तो फिर बारह मासकी आलोचना करके एक मासके पुण्यकार्य्योंकी अनुमोदना और पापकार्य्योंकी आलोचना नही करना यह तो प्रत्यक्ष अन्याय अल्पबुद्धिवाला भी कोई मंजूर नही कर सकता है और जिन्होंके ज्ञानमें एक समय मात्र भी धर्म अथवा कर्म बंधके सिवाय वृथा नही जाता है ऐसे श्रीसर्वज्ञ भगवान्‌के शास्त्रोंमें एक मासके धर्म और कर्मका न गिनना यह तो कभी नही हो सकता है इस लिये अधिक मास होनेसें अवश्य करके तेरह मास और छवीश पक्षादिकी आलोचना सांम्वत्सरिमें करनी जैन शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक है इसका विशेष विस्तार सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी आगे समीक्षा होगा उसमें शास्त्रोंके प्रमाण सहित अच्छीतरहसें करनेसें आवेगा सो पढ़के विशेष निर्णय कर लेना और आगे लिखा है कि–अधिकमास होनेसें तेरह मास छवीश पक्षके क्षामणे किसी भी स्थानमें नही लिखा हैं यह वाक्य भी मिथ्या है क्योंकि अनेक जगह अधिकमास होनेसें तेरह मास छवीश पक्षके क्षामणे लिखे हैं जिसका भी वहांही आगे निर्णय होगा ॥—

और (आपका प्रयास क्या काम आया) इस लेखपर तो मेरेकों इतना ही कहना उचित है कि शुद्धसमाचारी कारनें तो सिर्फ अधिकमासको गिनतीमें सिद्ध करके पचास दिने पर्युषणा दिखानेका प्रयास किया था सो शास्त्रानुसार न्याययुक्ति सहित होनेसें उन्हका प्रयास सफल हैं परन्तु न्यायाम्भोनिधिजी हो करके अन्यायसें और शास्त्रोंके

विरुद्ध हो करके अधिकमासकी गिनती निषेध करनेका प्रयास करते है सो बड़ी ही शर्मकी बात है और काल-चूलासम्बन्धी न्यायाम्भोनिधिजीनें आगे लिखा हैं उसकी समीक्षा में भी आगे करूंगा—

और (दशपञ्चक व्यवस्था लिखते हो सो तो कल्पव्यवच्छेद हुवा है यह सर्वजन प्रसिद्ध है) इन अक्षरों कोभी में देखता हुं तो न्यायांभोनिधिजीका अन्याय देखकर मूझे बड़ाही अफसोस आता है क्योंकि शुद्ध समाचारी कारनें जिस अभिप्रायसें लिखा था उसीको समझे विना अन्याय मार्गसें खण्डन करना न्यायांभोनिधिजीको उचित नही हैं क्योंकि शुद्धसमाचारी कारनें तो इस कालमें पचास दिनेही पर्युषणा करनी चाहिये इस बातकी पुष्टिके लिये शुद्ध समाचारीके पृष्ठ १५७ । १५८ में श्रीकल्पसूत्रजीका मूलपाठ, श्रीबृहत्कल्पचूर्णिका पाठ, और श्रीसमवायाङ्गजीका पाठ, लिखके पचास दिनेही पर्युषणा दिखाई थी परन्तु दशपञ्चक लिखके कुछ पाँच पाँच दिने प्राचीन कालकी रीतिसे पर्युषणा नही लिखी थी तथापि न्यायांभोनिधिजी शुद्धसमाचारी कारके अभिप्रायके विरुद्धार्थसें दशपञ्चकका कल्पविच्छेदकी बात लिखके पचास दिनकी पर्युषणाको निषेध करना चाहते हैं सो कदापि नही हो सकेगा और आगे फिर भी लिखा है कि—(लौकिक टिप्पणाके अनुसारसें हरेक वर्षमें आषाढ़ शुदी चतुर्दशीसें लेके भाद्रवा शुदी ४ और तुम्हारे कहनेसें दूसरे श्रावण शुदी ४ तक ५० दिन पूर्ण करने चाहोगें तो भी नही हो सकेगें क्योंकि तिथियां वध घट होती है तो किसी वर्षमें ४९ दिन आजायगें और किसी वर्षमें

४९ दिन भी आजायगे तब क्या आपको जिनाज्ञा भङ्गका दूषण नही होगा) इस उपरके लेखसें तो न्यायांभो निधिजीनें श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्योंकी और अपनेही गच्छके पूर्वाचार्य्योंकी आशातना करके और सबी उत्तम पुरुषोंको दूषित ठहरानेका कार्य्य करके नय गर्भित व्यवहारको और श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठको उत्थापन करके बड़ाही अनर्थ कर दिया है क्योंकि जैसे सूत्र, चूर्णि, भाष्य, वृत्ति, प्रकरण, चरित्रादि अनेक शास्त्रोंमें एक नही किन्तु सैकड़ों बाते व्यवहार नयकी अपेक्षासें श्रीतीर्थङ्करादि महाराज कहते हैं तैसेही शुद्ध समाचारी कारने भी व्यवहार नयसें पचास दिने पर्युषणा कही है और श्रीकल्प सूत्रजीके मूल पाठका (अन्तरा वियसे कप्पई) इस वाक्यसें पचास दिनके अन्दरमें पर्युषणा होवे तो कोई दूषण भी नही कहा है तथापि न्यायांभोनिधिजी न्यायके समुद्र होते भी व्यवहार नयगर्भित श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की व्याख्याका और श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठका उत्थापनके भयका जरा भी विचार न करते विद्वत्ताके अभिमानसें और पक्षपातके जोर सें ४८।४९ दिन होनेका दिखाकर मिथ्या दूषण लगाते हैं सो कदापि नही बनता है,—याने सर्वथा उत्सूत्र भाषणरूप है

और भी दूसरा सुनिये–जो तिथियोंके हानी वृद्धिकी गिनतीसें कोई वर्षमें भाद्रपद शुक्ल चौथ तक ४८ दिन होनेका लिखकर न्यायाम्भोनिधिजी शुद्धसमाचारी कारको दूषित ठहराते हैं इससें मालुम होता है कि तिथियोंके हानी वृद्धिकी गिनतीसें भाद्रपद शुक्ल छठ (६) के दिन पूरे पचास दिन मान्य करके न्यायाम्भोनिधिजी पर्युषणा करते होवेंगे

तब तो अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध है और आप चौथकाही पर्युषणा करते होवेंगे तब तो शुद्धसमाचारी कारको दूषण लगाना वृथा है इसको भी पाठकवर्ग विचार लो ;—

और पर्युषणाके पीछाड़ी जो ७० दिन न्यायाम्भोनिधि जी रखना कहते हैं सो किस हिसाबसें गिनती करके रखते हैं इसका विवेक बुद्धिसें हृदयमें विचार किया होता तो शुद्ध समाचारी कारको दूषण लगानेका लिखनाही भूल जाते क्योंकि तिथियोंकी हानी वृद्धिसें किसी वर्षमें ६९ और किसी वर्षमें ६८ दिन भी होजाते हैं सो पाठकवर्ग बुद्धिजन पुरुष न्याय दृष्टिसें विचार कर लेना ;—

और भी आगे जैन सिद्धान्तसमाचारी पुस्तकके पृष्ठ ८९ की पंक्ति २० वीं सें पृष्ठ ९० की पंक्ति १७ वीं तक ऐसे लिखा है कि [पूर्वपक्ष, आप तो मुखसेंही बाता बनाई जाते हो परन्तु कोई सिद्धान्तके पाठसें भी उत्तर है वा नही—उत्तर—हे समीक्षक दूढ़तर उत्तर देते हैं देखो कि श्रावणमास बढ़नेसें दूसरे श्रावणमें और भाद्रव बढ़नेसें प्रथम भाद्रव मासमें पर्युषणा करना यह तुमने ८० (अशी) दिनकी प्राप्तिके भयसें अङ्गीकार किया परन्तु श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें ऐसा पाठ है, यथा—सवीसइ राइमासे वइक्कंते सत्तरिराइदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइत्ति, भावार्थः—जैसे आषाढ़ चौमासेके प्रतिक्रमण किये बाद एकमास और वीश दिनमें पर्युषणा करें तैसे पर्युषणाके बाद ७० सत्तर दिन क्षेत्रमें ठहरे—हे परीक्षक—अब इस पाठके विचारणेसें तुमको मास की वृद्धि हुये कार्त्तिक सम्बन्धी कृत्य आश्विनमासमें करना पड़ेगा और कार्त्तिक मासमें करोगे तो १०० रात दिनकी

प्राप्ति होनेसें सिद्धान्त विरुद्ध होगा, फिर तो ऐसा हुवा कि एक अङ्गको आच्छादन किया और दूसरा अङ्ग खुल्ला होगया तात्पर्य्य कि तुमनें आज्ञाभङ्ग न हुवे इस वास्ते यह पक्ष अङ्गीकार किया तोभी आज्ञाभङ्गरूप दूषण तो आपके शिर परही रहा—पूर्वपक्ष–इस दूषणरूप यन्त्रमें तो आपको भी यन्त्रित होना पड़ेगा—उत्तर–हे समीक्षक यह आज्ञाभङ्ग-रूप दूषणका लेश भी हमको न समझना क्योंकि हम अधिक मासको कालचूला मानते हैं—]

अब उपरके लेखकी समीक्षा करते है कि हे सत्यग्राही सज्जन पुरुषों उपरके लेखमें न्यायाम्भोनिधिजीनें अपनी चतुराई प्रगट कारक और प्रत्यक्षउत्सूत्र भाषणरूप भोले जीवोंको श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध रस्ता दिखानेके लिये अनु-चित क्यों लिखा है क्योंकि प्रथमतो पूर्वपक्षमें ही [आप तो मुखसें ही बाता बनाइ जाते हो] यह अक्षर लिखे है इससें मालुम होता है कि पहिले जो जो लेख न्यायांभो-निधिजीने लिखा है सो सो शास्त्रोंके प्रमाण बिना अपनी कल्पनासें लिखा है इसलिये न्यायांभोनिधिजीके जैसी दिलमें थी वैसीही पूर्वपक्षके अक्षरोंमें लिख दिखाई है सो, हास्यके हेतुरूप है सो तो बुद्धिजन विद्वान् पुरुष समझ सक्ते है और इसके उत्तरका लेखमें भी सूत्रकार महा-राजके अभिप्राय को जानेबिना उलटा विरुद्धार्थमें तीनों महाशयोंकी तरह चौथे न्यायाम्भोनिधिजीनें भी कर दिया क्योंकि श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ मासवृद्धिके अभावका है। और पर्युषणा के पीछाड़ी १०० दिन होनेसें कोई भी दूषण नही है याने मास वृद्धि होनेसें पर्युषणाके

पीछाड़ी १०० दिन शास्त्रानुसार रहते हैं इस लिये मासवृद्धि होते भी पर्युषणाके पीछाड़ी ७० दिन रहने का और १०० होनेसें दूषण लगाने का न्यायाम्भोनिधिजीका लिखना सर्वथा वृथा है इसका विशेष निर्णय तीनों महाशयोंकी समीक्षामें सूत्रकार वृत्तिकार महाराजके अभिप्राय सहित संपूर्ण पाठसमेत युक्तिपूर्वक विस्तारसे पृष्ठ ११८सें पृष्ठ १२९ तक छपगया है और आगे भी कितनीही जगह छप चुका है सो पढ़नेसें अच्छी तरहसें निर्णय होजावेगा तथापि उपरोक्त लेखमें न्यायाम्भोनिधिजीनें उटपटाङ्ग लिखा है जिसकी समीक्षा करके दिखाता हुं—[श्रावणमास बढ़ने सें दूसरे श्रावणमें और भाद्रव वढ़नेसें प्रथम भाद्रव मासमें पर्युषणा करना यह तुमने अशीदिनका प्राप्तिके भयसें अङ्गीकार किया] इस लेखको लिखके आगे श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका (सवीसइ राइमासे वइक्कन्ते) इस पाठसें पचासदिने पर्युषणा दिखाई ॥ इन अक्षरोंसें तो जैसे शुद्ध समाचारी कारनें ५० दिने पर्युषणा ठहराई थी तैसेही न्यायाम्भोनिधिजीनें भी ठहराई इसमें तो शुद्ध समाचारी कारका लेखको विशेष पुष्टिमिली और न्यायांभोनिधिजीको अपना स्वयं लेख भी बाधक होगया तो फिर दो श्रावण होनेसें भी भाद्रपदमें और दो भाद्रपद होनेसें दूसरे भाद्रपदमें न्यायांभोनिधिजी पर्युषणा करते हैं तब तो प्रत्यक्ष ८० दिन होते है और श्रीसमवायाङ्गजी आदि अनेक शास्त्रोंमें ५० दिने पर्युषणा करनी कही है और अधिकमास भी अनेक शास्त्रोंमें प्रमाण किया है तैसे ही खास न्यायांभोनिधिजी भी क्षामणा के सम्बन्धमें अधिकमास होनेसें [तिसवर्षमें तेरांमास तो

अवश्य होजायगें] यह अक्षर पृष्ठ ८९ की पंक्ति ३।४में लिखें हैं अब पाठकवर्ग विचार करो कि अधिकमास होनेसें तेरह मास अवश्य करके न्यायांभोनिधिजीनें मान्य करलिये जब अधिकमास गिनतीमें मंजूर हो चुका तब दो श्रावण होनेसें भाद्रपद तक ८० दिन न्यायांभोनिधिजीके वाक्यसें भी सिद्ध होगये तो फिर पचास दिने पर्युषणा करनेका पाठ दिखाना और ८० दिने अपनी कल्पनासें पर्युषणा करना यह कोई बुद्धिवाले विवेकी श्रीजिनाज्ञाके आराधक पुरुष का काम नही है सो पाठकवर्ग भी विचार लेना ;—

और भी दूसरा सुनो (श्रावणमास वढ़नेसें दूसरे श्रावण में और भाद्रव वढ़नेसें प्रथम भादव मासमें पर्युषणा करना यह तुमने ८० (अशी) दिनकी प्राप्तिके भयसें अङ्गीकार किया) इन अक्षरोंका तात्पर्य्य ऐसे निकलता है कि शुद्ध समाचारीकारकों तो ८० दिने पर्युषणा करनेसें शास्त्रविरुद्धका भय लगा तब पचास दिने पर्युषणा करनेका अङ्गीकार किया परन्तु न्यायाम्भोनिधिजीको ८० दिने पर्युषणा करनेसें शास्त्र विरुद्धका भय नही लगता है इस लिये दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें और दो भाद्रपद होनेसें दूसरे भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा शास्त्रविरुद्धताको न गिनके करते हैं यह बात सिद्ध होगइ इस बातको पाठकवर्ग भी विशेष करके विचार लो ;—

और श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठको दिखाकर दो श्रावणादि होते भी ७० दिन पर्युषणाके पिछाड़ी रखने का जो न्यायांभोनिधिजी कहते है सो भी सूत्रकार तथा वृत्तिकार महाराजके और युक्ति के भी विरुद्ध है क्योंकि

आषाढ़ चौमासीसें प्रथम पचासदिन जानेसें और पिछाड़ी ७० दिन रहनेसें एवं चार मासके १२० दिनका वर्षाकाल सम्बन्धी श्रीसमवायाङ्गजी का पाठ है सो तो अल्पबुद्धि-वाला भी समझ सकता है तो फिर न्यायांभोनिधिजी न्यायके और बुद्धिके समुद्र इतने विद्वान् होते भी दो श्रावणादि होनेसें पांचमास के १५० दिन का वर्षाकाल में पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रखने का आग्रह करते कुछ भी विचार नही किया बड़ीही शरमकी बातहै और दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करके पिछाड़ी के ७० दिन रखनेका न्यायांभोनिधिजी चाहते होवे तोभी अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध है क्योंकि व्यवहारिक गिनतीसें पचास दिने अवश्य ही निश्चय करके पर्युषणा करनी कही है, और दिनोंकी गिनती में अधिकमास छुट नही सकता है इस लिये ८० दिने पर्युषणा करके पिछाड़ी ७० दिन रक्खेंगे तो भी शास्त्रविरुद्ध है और अधिक मासको गिनती में छोड़ कर पर्युषणा के पिछाड़ी ७० दिन रक्खेंगे तो भी अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध है क्योंकि अधिक मासको अनेक शास्त्रोंमें और खास श्रीसमवायांगजी सूत्र में प्रमाण किया है इस लिये अधिकमास को गिनतीमें निषेध करना भी न्यायांभोनिधिजीका नही बन सकता है और चारमासके सम्बन्धी पाठको पांचमासके सम्बन्धमें न्यायांभोनिधीजी को सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें लिखना भी उचित नही है इस लिये श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ पर अपनी कल्पनासें न्यायांभोनिधिजी अथवा उन्होंके परिवारवाले और उन्होंके पक्षधारी वर्त्तमानिक श्रीतपगच्छके महाशय

औ जो कल्पना मासवृद्धि होते भी पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रखनेके लिये करेंगें सो सो सबीही उत्सूत्र भाषण रूप भोले जीवोंको मिथ्यात्वमें गेरने वाले होवेंमें इसलिये श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक सत्यग्राही सर्व-सज्जन पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें मासवृद्धिके अभावसें ७० दिनके अक्षर देखके मास वृद्धि होते भी आग्रह मत करो और मासवृद्धिको मंजूर करके दूजा श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें पचास दिने पर्युषणा करके पिछाड़ी १०० दिन मान्यकरो जिससें उत्सूत्र भाषक न बनके श्रीजिनाज्ञाके आराधक बनोंगें मेरा तो येही कहना है। मान्य करेंगें जिन्होंकी आत्माका सुधारा है इतने पर भी जो हठग्राही नही मानेंगे जिन्होंकी सम्यक्त्व रत्न बिना आत्माका सुधारा कैसे होगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जानें ;—

और श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठपर न्यायाम्भोनिधि जीनें अपनी चातुराई प्रगट किवी है कि—(हे परीक्षक अब इस पाठके विचारणेसें तुमको मास वृद्धि हुये कार्त्तिक सम्बन्धी कृत्य आश्विन मासमें करना पड़ेगा और कार्त्तिक मासमें करोंगे तो १०० रात दिनकी प्राप्ति होनेसें सिद्धान्तसें विरुद्ध होगा फिर तो ऐसा हुवा कि एक अङ्गको आच्छादन किया और दूसरा अङ्ग खुल्ला होगया तात्पर्य्य कि–तुमने आज्ञाभङ्ग न हुवे इस वास्ते यह पक्ष अङ्गीकार किया तो भी आज्ञा भङ्गरूप दूषण तो आपके शिरपर ही रहा) इस लेखकी समीक्षा अब सुन लीजियें—हे पाठकवर्ग देखो न्यायांभोनिधिजीनें तो शुद्धसमाचारी कारको दूषित ठह-

राने के लिये उपरका लेख लिखाथा परन्तु खास शुद्धसमा-
चारीकारने ही श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका इस ही पाठको
अपनी शुद्धसमाचारीकी पुस्तकमें लिखा है। और इन्ही
श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रकी वृत्तिकारक (शुद्धसमाचारी कारके
परमपूज्य श्रीखरतरगच्छ नायक) श्रीनवांगी वृत्तिकार
श्रीअभयदेव सूरीजी प्रसिद्ध है जिन्होंने इन्ही पाठकी वृत्ति
में चारमासके एकसो वीश (१२०) दिनका वर्षाकाल
सम्बन्धी अच्छी तरहका खुलासाके साथ व्याख्या किवी है।
सो प्रसिद्ध है और मैंनें भी मूलपाठ तथा वृत्ति और भावार्थ
सहित इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १२० । १२१ में छपा दिया है इस
लिये चारमास सम्बन्धी पाठको पांच मासके अधिकारमें
लिखना भी न्यायाम्भोनिधिजी को अन्याय कारक है और
दो श्रावण होनेसें पांचमासके वर्षाकालके १५० दिन होते
हैं यह तो जगत प्रसिद्ध है जिसकों अल्पबुद्धि वाले भी
समझ सकते है जिसमें जैन शास्त्रोंकी आज्ञानुसार वर्त्तमान
काले पचास दिने पर्युषणा करनेसें पर्युषणाके पिछाड़ी १००
दिन तो स्वाभाविक रहते ही है यह बात भी शास्त्रानुसार
तथा प्रसिद्ध है तथापि न्यायाम्भोनिधिजी होकरके अन्याय
के रस्तेमें वर्तके पांचमासके वर्षाकालमें पर्युषणाके पिछाड़ी
१०० दिन स्वभाविक रहते हैं जिसको शास्त्र विरुद्ध कहकर
चारमास सम्बन्धी पाठ लिखके दूषित ठहराते है। यह तो
प्रत्यक्ष उत्सूत्र भाषणरूप वृथा है और वर्तमानमें दो श्राव-
णादि होनेसें पचास दिमे पर्युषणा और पर्युषणाके पिछाड़ी
१०० दिन रहनेका श्रीतपगच्छके ही पूर्वाचार्य्योंने कहा है
जिसका खुलासा इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १४६ में छप गया है

जिसको भी शास्त्र विरुद्ध ठहराकर न्यायाम्भोनिधिजी अपने ही पूर्वाचार्य्योंकी आशातनाके फलविपाकका भय नही करते है सो बड़ीही अफसोसकी बात है और मास-वृद्धि होनेसें कार्त्तिक सम्बन्धीकृत्य आश्विनमासमें करने का न्यायाम्भोनिधिजी लिखते हैं सो भी उन्हकी समझमें फेर है क्योंकि शुद्धसमाचारीकार तथा श्रीखरतरगच्छ वाले मासवृद्धि होनेसें शास्त्रानुसार पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन मान्य करते हैं इस लिये उन्होंको तो कार्त्तिक सम्बन्धीकृत्य आश्विन मासमें करने की कोई जरूरत नही है, और आगे (एक अङ्गका आच्छादन किया और दूसरा अङ्ग खुल्ला होगया) इन अक्षरोंको लिखके न्यायाम्भोनिधि-जीनें अङ्ग याने शरीरका दृष्टान्त दिखाया परन्तु यह दृष्टान्त शुद्धसमाचारीकार तथा श्रीखरतरगच्छवालोंके उपर किञ्चित् भी नही घट सकता हैं क्योंकि मासवृद्धिके अभावसें श्रीसमवायाङ्गजीमें कहे हुवे पर्युषणाके पिछाड़ीका ७० दिन मान्य करके उसी मुजब वर्त्तते हैं और मासवृद्धि दो श्रावणादि होनेसें अनेक शास्त्रोंके प्रमाणसें पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिनको भी मान्य करके उसी मुजब वर्त्तते हैं इसलिये उन्होंका तो शास्त्रानुसार वर्त्तनेका होनेसें श्रीजिनाज्ञारूपी वस्त्रों करके सर्व अङ्ग परिपूर्णतासें (आच्छादन) याने ढका हुवा है इसलिये एक अङ्ग खुल्ला रहनेका दूषण लगाना न्यायांभोनिधिजीका प्रत्यक्ष मिथ्या है परन्तु इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १६४ और १६५ में जो न्याय छपा है इसी न्यायानुसार उपरोक्त खुल्ला अङ्गका दृष्टान्त खास करके दोनों तरहसें न्यायांभोनिधिजीके

तथा उन्होंके परिवारवालोंके उपर बरोबर न्याय युक्त अच्छी तरहसें घटता है सोही दिखाता हुं कि–देखो न्यायांभोनिधिजी तथा इन्होंके परिवारवाले और उन्होंके पक्षधारी वर्त्तमानिक श्रीतपगच्छके सबी महाशय–विशेष करके श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठको पर्युषणा सम्बन्धी सब कोई लिखते हैं मुखसें कहते हैं और उन्ही पर पूर्ण श्रद्धा रखके वड़ाही आग्रह करते हैं उस पाठमें वर्षाकालके पचास दिन जानेसें और पिछाड़ी ७० दिन रहनेसें पर्युषणा करणा कहा है यह पाठ भावार्थः सहित आगे बहुत जगह छप गया हैं इस पर बुद्धिजन सज्जन पुरुष विचार करों कि–वर्त्तमानमें दो श्रावण होनेसें भाद्रपदमें पर्युषणा करने वालोंको ८० दिन होते हैं जिससे पूर्वभागका एक अङ्ग सर्वथा खुल्ला हो जाता है और दो आश्विन मास होनेसें कार्तिक तक १०० दिन होते हैं जिससें उत्तर भागका एक अङ्ग भी सर्वथा खुल्ला हो जाता है इस तरहसें न्यायांभोनिधिजी आदि जो श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठसें दो श्रावण होते भी भाद्रपद तक ५० दिने पर्युषणा और दो आश्विन होते भी कार्त्तिक तक पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रखना चाहनेवाले महाशयोंको श्रावण और आश्विन मास वढ़नेसें दोनों अङ्ग श्रीजिनाज्ञारूपी वस्त्र करके रहित प्रत्यक्ष बनते हैं यह तो ऐसा हुवा कि–दोनों खोईरे जोगटा मुद्रा और आदेश—किं वा–कोई एक संसारिक गृहस्याश्रम छोड़के साधु हुवा परन्तु साधुकी क्रिया न करसका और पीछा गृहस्थ भी न हो सका उसीको उभय भ्रष्ट याने न साधु और न गृहस्थ ऐसे को ‘यतो

भ्रष्टा ततो भ्रष्टा' कहनेमें आता है। अथवा। कोई एकस्त्री थी जिसने डाहीने हाथमें विधवाका चिह्न लम्बी काँचली और वाम हाथमें सधवाका चिह्न चुड़ा धारण किया था उसीनेही थोड़ी देर बाद फिर उससें विपरीत, याने, वाम हाथमें विधवाका चिह्न लम्बी काँचली और डाहीने हाथमें सधवाका चिह्न चुड़ा धारण किर लिया ऐसी पागल स्त्री न तो विधवाकी और न सधवाकी गिनतीमें आसकती है तैसेही दो श्रावण होते भी भाद्रपद तक पचास दिनका और दो आश्विन होते भी कार्त्तिक तक ७० दिन का आग्रह करने वालोंको श्रावण और आश्विन बढ़नेंसें एक तरफ भी श्रीजिनाज्ञाके आराधक नही हो सकते हैं क्योंकि दोनों अङ्ग खुल्ले रहते हैं इसलिये उपरोक्त दृष्टान्तका न्याय उपरके महाशयोंको बरोबर घटता है इसलिये अब उपरकी बातको न्यायांभोनिधिजीके परिवारवालोंको और उन्होंके पक्षधारियोंको अवश्य करके विचारनी चाहिये और पक्षपातको छोड़के सत्य बातको ग्रहण करना सोही उचित है।

और शुद्धसमाचारीकार दो श्रावणादि होनेसें ५० दिने पर्युषणा करके पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन अनेक शास्त्रानुसार न्याययुक्ति सहित मान्य करता है इस लिये एक अंग खुल्लेका दृष्टान्त न्यायाम्भोनिधिजी कों लिखके आज्ञाभङ्ग रूप दूषण शुद्धसमाचारीकार को दिखाना सर्वथा करके उत्सूत्र भाषणरूप वृथा है।

और आगे लिखा है कि—(पूर्वपक्ष इस दूषणरूप यन्त्र में तो आपको भी यन्त्रित होना पड़ेगा उत्तर—हे समीक्षक? यह आज्ञाभङ्गरूप दूषणका लेशभी हमको न

समझना क्योंकि हम अधिक मासको कालचूला मानते है) इन अक्षरोंको लिखके न्यायाम्भोनिधिजी दो श्रावण होनेसें भाद्रपद तक ८० दिन होते हैं जिसमें अधिक मासको गिनती में छोड़कर ८० दिनके ५० दिन और दो आश्विन मास होनेसें पर्युषणाके पिछाड़ी कार्त्तिक तक १०० दिन होते है जिसको भी ७० दिन अपनी कल्पनासें मान्य करके निर्दूषण बनना चाहते है सो कदापि नही हो सकता है क्योंकि अधिक मासको कालचूला की उत्तम ओपमा गिनती करने योग्य शास्त्रकारोने दिवी है जिसका विशेष निर्णय तीनों महाशयोंके नामकी समीक्षामें अच्छी तरहसें छपगया है और आगे फिर भी कालचूला सम्बन्धी श्रीनिशीथ चूर्णिकां अधूरा पाठ और श्रीदशवैकालिक सूत्रके प्रथम चूलिकाकी वृहद्वृत्तिका अधूरा पाठ लिखके भावार्थ लिखे बाद फिर भी अपनी कल्पनासें पूर्वपक्ष उठा कर उसीका उत्तरसें भी पृष्ठ ९१ की पंक्ति १३ तक उत्सूत्र भाषणरूप लिखा है जिसका उतारा इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ५९ और ६० की आदि तक छपाके उसीकी समीक्षा पृष्ठ ६० सें ६५ तक इन्ही पुस्तकमें अच्छी तरहसें खुलासा पूर्वक छपगई है और श्रीनिशीथचूर्णिके प्रथमोद्देशेका काल-चूलासम्बन्धी सम्पूर्ण पाठ और श्रीदशवैकालिककी प्रथम चूलिकाके वृहद्वृत्तिका सम्पूर्ण पाठ भावार्थके साथ खुलासा पूर्वक इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ४९ सें पृष्ठ ५८ तक विस्तारसें छपगया है और तीनों महाशयोंके नामकी समीक्षा में भी इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ७५ सें ७८ तक और आगे भी कितनी ही जगह छप गया है उसीको पढ़नेसें पाठक

वर्गकों अवश्यही निर्णय हो जावेगा कि अधिक मासको कालचूला की उत्तम ओपमा अवश्य ही गिनती करने योग्य शास्त्रकारोंने दिवी है इस लिये अधिकमासकी निश्चय करके गिनती करना ही सम्यक्त्वधारियोंको उचित है तथापि न्यायाम्भोनिधिजी अधिक मासकी गिनती निषेध करते हैं सो कदापि नही हो सकती है इतने पर भी आगे फिर भी पृष्ट ९१ के पंक्ति १४ वीं से पंक्ति १८ वी तक लिखते है कि (इस अधिकमासकों कालचूलामें तुमको भी अवश्य ही मानना पड़ेगा और नही मानोंगे तो किसी तरहसें भी आज्ञा भङ्ग रूप दूषणकी गठड़ीका भार दूर नही होगा क्योंकि पर्युषणाके बाद ७० (सत्तर) दिन रहने का कहा है काल-चूला न मानोंगे तो १०० दिन हो जायगें) इन अक्षरोंको लिखके शुद्धसमाचारी कारको पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन होनेसें दूषण लगाते हैं सो न्यायाम्भोनिधिजीका सर्वथा मिथ्या है क्योंकि मासवृद्धि होते पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन होनेमें कोई दूषण नही है इसका विस्तार उपरमें तथा तीनों महाशयों के नामकी समीक्षामें और भी कितनी ही जगह छप गया है उसीकों पढ़के पाठकवर्ग सत्यासत्यका निर्णय कर लेना ;—

और शुद्धसमाचारीकार तथा श्रीखरतरगच्छवाले अधिक मासको कालचूलाकी उत्तम ओपमा जानके विशेष करके गिनतीमें बरोबर लेते हैं और न्यायांभोनिधिजी अधिक मासको कालचूला कह करके भी शास्त्रकारोंका तात्पर्य्य समझे बिना श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके तथा श्री-निशीथचूर्णिकार और श्रीदशवैकालिकके चूलिकाकी वृहद्-

वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें अधिकमासकी गिनती निषेध करते पर भवका भय कुछ भी नही किया यह बड़ाही अफसोस है ।

और आगे जैन सिद्धान्त समाचारी की पुस्तकके पृष्ठ ९१ की पंक्ति १९ वी सें पृष्ठ ९२ वें की प्रथम पंक्ति तक ऐसे लिखा है कि (पर्युषणा पर्व केवल भाद्रव मासके साथ प्रतिबन्धवाला है क्योंकि जिस किसी शास्त्रमें पर्युषणापर्व का निरूपण किया है तिसमें भाद्रवमासका विशेषणके साथ ही कथन किया है परन्तु अधिक मास होवे तो श्रावण मासमें पर्युषणा करना ऐसा तो तुमारे गच्छवाले भी नही कह गये है देखो, सन्देहविषौषधी ग्रन्थमें भी भाद्रव मास ही के विशेषण करके कहा है परन्तु ऐसा नही कहा कि अधिक मास होवे तो श्रावणमासमें करना ऐसा पर्युषणा पर्वके साथ विशेषण नही दिया है) उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हुं कि हे सज्जन पुरुषो न्यायाम्भोनिधिजीके उपर का लेखको में, देखता हुं तो मेरेकों न्यायाम्भोनिधिजी में मिथ्या भाषणका त्यागरूप दूजा महाव्रतही नही दिखता है क्योंकि उपरके लेखमें तीन जगह प्रत्यक्ष मिथ्या भोले जीवोंको भ्रमाने के लिये उत्सूत्र भाषणरूप लिखा है सोही दिखाता हुं कि प्रथमतो (पर्युषणापर्व केवल भाद्रव मासके साथ प्रतिबन्धवाला है क्योंकि जिस किसी शास्त्रमें पर्युषणा पर्वका निरूपण किया है तिसमें भाद्रवमासका विशेषणके साथही कथन किया है) यह अक्षर लिखके मासवृद्धि होते भी भाद्रपद मासप्रतिबन्ध पर्युषणा न्यायांभोनिधिजी ठहराते है सो मिथ्या है क्योंकि

भाष्य, चूर्णि, वृत्त्यादि अनेक शास्त्रोंमें मासवृद्धि होनेसें श्रावणमासमें पर्युषणा करना लिखा है इसका विशेष निर्णय तीनों महाशयोंकी समीक्षामें शास्त्रोंके प्रमाण सहित न्याययुक्तिके साथ अच्छी तरहसें इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १०७ सें पृष्ठ ११७ तक छप गया है उसीकों पढ़नेसें सर्व निर्णय हो जावेगा और दूसरा (अधिक मास होवे तो श्रावण मासमें पर्युषणा करना ऐसा तो तुमारे गच्छवाले भी नही कहगये है) यह लिखा है सोभी प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि श्रीखरतरगच्छके अनेक पूर्वाचार्य्योंने अनेक ग्रन्थोमें दो श्रावण होनेसें दूसरा श्रावणमें पर्युषणा करनी कही है सोही देखो श्रीजिनपतिसूरिजी कृत श्रीसङ्घपट्टक वृहद्वृत्तिमें १। तथा श्रीसमाचारी ग्रन्थमें। २। श्रीजिनप्रभ सूरिजी कृत श्रीसन्देहविषौषधी वृत्तिमें। ३। तथा श्रीविधिप्रपा ग्रन्थमें। ४। श्रीउपाध्यायजी श्रीसमयसुन्दरजीकृत श्रीकल्पकल्पलता वृत्तिमें।५। तथा श्रीसमाचारी शतकमें। ६। और श्रीलक्ष्मी-वल्लभगणिजी कृत श्रीकल्पद्रुमकलिका वृत्तिमें।७। और श्रीतप गच्छ तथा श्रीखरतरगच्छसम्बन्धी (तपा खरतर प्रश्नोत्तर)नाम ग्रन्थ है उसीमें। ८। और श्रीपर्युषणा सम्बन्धी चर्चापत्रमें। ९। इत्यादि अनेक जगह खुलासापूर्वक दूसरे श्रावणमें पर्यु-षणा करनेका श्रीखरतरगच्छके पूर्वाचार्य्योंनें कहा है तैसें ही श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्य्योंने भी अनेक ग्रन्थोंमें दूसरे श्रावणमें ही पर्युषणा करना कहा है और खास न्याया-म्भोनिधिजी भी शुद्धसमाचारी पुस्तक सम्बन्धी अपनी जैन सिद्धान्त समाचारी की पुस्तकके पृष्ट ८७ की पंक्ति २२ वी सें पृष्ठ ८८ प्रथम पंक्तितक लिखते हैं कि (श्रावण मास बढे

तो दूसरे श्रावण शुदीमें और भाद्रव वढ़े तो प्रथम भाद्रव शुदीमें आषाढ़ चौमासेसें ५० में दिनही पर्युषणा करना परन्तु ८० अशीमें दिन नही करना ऐसा लिखके पृष्ठ १५५ में अपनेही गच्छके श्रीजिनपति सूरिजी रचित समाचारीका प्रमाण दिया है) इन अक्षरोंको न्यायाम्भोनिधिजी लिखते हैं और उपरोक्त श्रीखरतरगच्छके पूर्वाचार्य्योंके ग्रन्थोंका दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने सम्बन्धी पाठोंको भी जानते हैं तथापि (अधिक मास होवे तो श्रावण मासमें पर्युषणा करना ऐसा तो तुमारे गच्छवाले भी नही कह गये हैं) इतना प्रत्यक्ष मिथ्या लिखके अपना महाव्रत भङ्गके सिवाय और क्या लाभ उठाया होगा सो पाठकवर्ग विचार लेना—

और तीसरा (देखो सन्देहविषौषधी ग्रन्थमें भी भाद्रव मासहीके विशेषण करके कहा है परन्तु ऐसा नही कहा है कि अधिक मास होवे तो श्रावण माससें पर्युषणा करना ऐसा पर्युषणापर्वके साथ विशेषण नही दिया है) यह लिखा है सो भी मायावृत्तिसें प्रत्यक्ष मिथ्या लिखा है क्योंकि श्री जिनप्रभसूरिजीनें श्रीसन्देहविषौषधी वृत्तिमें खुलासा पूर्वक दो श्रावण होनेसें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनी कही है जिसका पाठ भव्यजीवोंको निःसन्देह होनेके लिये इस जगह लिख दिखाता हुं श्रीसन्देहविषौषधी वृत्तिके पृष्ठ ३० और ३१ का तथाच तत्पाठः—

साम्प्रतं पर्युषणा समाचारी विवक्षुरादौ पर्युषणा कदा विधेयेति श्रीमहावीरस्तद्गणधरशिष्यादीन् दृष्टान्तेनाह तेणं कालेणमित्यादि । वासाणंति । आषाढ़चतुर्मासकदिनादा-रभ्य सविंशतिरात्रेमासे व्यतिक्रान्ते भगवान् पज्जोसवे

इति। पर्युषणाम्नकार्षीत् सैकेणाट्ठेणमित्यादि। प्रश्नवाक्यं भण्णं इत्यादि। निर्वचनवाक्यं। प्रायेणागारिणां। गृहस्थानामागाराणि गृहाणि। कडियाइं कटयुक्तानि उक्कंपियाइं धवलितानि। छन्नाइं तृणादिभिः लित्ताइं छगणादिभिः क्वचित् गुत्ताइंति पाठस्तत्र गुप्तानि वृत्तिकरद्वारपिधानादिभिः घट्टाइं विषमभूमिभञ्जनात्। मट्ठाइं श्लक्ष्णीकृतानि क्वचित् संमट्ठाइत्ति पाठस्तत्र समंतात् मृष्टानि मसृणीकृतानि संपधूमियाइं सौगन्ध्यापादनार्थं धूपनैर्वासितानि। खातोदगाइं कृतप्रणालीरूपजलमार्गाणि खायनिद्धमणाइं निर्द्धमणं खालं गृहात् सलिलं येन निर्गच्छति अप्पणो अट्ठाए आत्मार्थं स्वार्थं गृहस्थैः कृतानि परिकर्म्मितानि करोति कारइं करोतीत्यादाविव परिकर्म्मार्थत्वात् परिभुक्तानि तैः स्वयं परिभुज्यमानत्वात् अतएव परिणामितानि भवन्ति। ततः सविंशतिरात्रे मासे गते अमी अधिकरणदोषा न भवन्ति। यदि पुनः प्रथममेव साधवः स्थिता स्म। इति ब्रूयुः तदा ते गृहस्था मुनीनां स्थित्या सुभिक्षं संभाव्य तप्तायोगोलकल्पाः दन्तालक्षेत्रकं कुर्युः तथा चाधिकरणदोषाः अतस्तत्परिहाराय पञ्चशतादिनैः स्थिता स्म इति वाच्यं चूर्णिकारस्तु कडियाइं पासेहिंतो कंचियाणि उवरिं इत्याह। स्थविरा स्थविरकल्पिकाः अज्जत्ताएत्ति अद्यकालीनाः आर्य्यतया व्रत स्थविरत्वेन इत्येके अंतरावियसे इत्यादि अंतरापि च अर्वागपि कल्पते, पर्युषितुं न कल्पते तां रजनीं भाद्रपदशुक्लपञ्चमीं उवायणावित्तएत्ति अतिक्रमितुं। उसनिवासे इत्यागमिको धातु। इह हि पर्युषणाद्विधा गृहिज्ञाताऽज्ञातभेदात्। तत्र गृहिणामज्ञाता यस्यां वर्षायोग्यपीठफलकादौ

यत्रे न कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्थापना क्रियते। साषाढ़पौर्णमास्यां पञ्चपञ्चदिनवृद्ध्या यावद्भाद्रपदशितपञ्चम्यां सा चैकादशसु पर्वतिथिषु क्रियते। गृहिज्ञाता तु यस्यां साम्वत्सरिकातिचारालोचनं लुञ्चनं पर्युषणाकल्पसूत्रकर्षणं चैत्य परिपाटी अष्टमं साम्वत्सरिकप्रतिक्रमणं च क्रियते यथाच व्रतपर्य्याय वर्षाणि गण्यन्ते सा नभस्य शुक्लपञ्चम्यां कालिकसूर्य्यादेशाच्चतुर्थ्यामपि जनप्रकटं कार्य्या। यत्पुनरभिवर्द्धितवर्षे दिनविंशत्या पर्युषितव्यमित्युच्यते। तत्सिद्धान्तटिप्पणानामनुसारेण तत्र हि युगमध्ये पौषो युगान्ते चाषाढ़ एव वर्द्धते नान्येमासा स्तानि चाधुना सम्यक् न ज्ञायन्ते ततो दिनपञ्चाशतैव पर्युषणासङ्गतेति वृद्धाः ततश्च कालावग्रहश्चात्र जघन्यतो नभस्य शितपञ्चम्या आरभ्य कार्त्तिकचतुर्मासांतः सप्ततिदिनमानः उत्कर्षतो वर्षायोग्य क्षेत्रान्तराभावादाषाढ़मासकल्पेन सह वृष्टिसद्भावात् मार्गशीर्षेणापि सह षण्मासा इति।

देखिये उपरके पाठमें एकमास और वीश दिने पर्युषणा श्रीतीर्थङ्कर गणधर स्थिविराचार्य्यादि करते थे तैसेही वर्त्तमानमें भी एकमास वीश दिने याने पचास दिने पर्युषणा करनेमें आती है और मासवृद्धि होनेसें वीश दिने पर्युषणा जैन टिप्पणानुसार दिखाई और वर्त्तमानमें जैन टिप्पणाके अभावसें पचास दिनेही पर्युषणा करनी कही इससें दो श्रावण हो तो दूसरे श्रावणमें अथवा दो भाद्रपद हो तो प्रथम भाद्रपदमें पचास दिनेही पर्युषणा सम्यक्त्वधारियोंको करनी योग्य है, तैसेही श्रीखरतरगच्छवाले करते हैं परन्तु हठवादियोंकी वातही जूदी है—

और इन्ही महाराज श्रीजिनप्रभसूरिजीनें श्रीसन्देह-विषौषधी वृत्तिमें श्रीकल्पसूत्रजीके मूलपाठकी व्याख्या किये बाद इन्ही श्रीकल्पसूत्रकी निर्युक्ति जो कि सुप्रसिद्ध श्रीभद्र-बाहु स्वामीजी कृत है उसकी व्याख्या किवी है उसीमें काल ठवणाधिकारे समयादि कालमें आवलिका, मुहूर्त्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सम्वत्सर, युगादिकी व्याख्या करके आगे अधिक मासको अच्छी तरहसें प्रमाण किया है और प्राचीनकालाश्रय जैसे चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिने पर्युषणा तैसेंही अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीश दिने पर्युषणा खुलासा पूर्वक कही है और श्रीनिशीथचूर्णिके दशवे उद्देशेमें जैसे पर्युषणा सम्बन्धी व्याख्या है तैसेही उन्ही महाराजनें भी प्रायः उसीके सदृश अच्छी तरहसें व्याख्या किवी हैं

और इन्ही महाराज श्रीजिनप्रभ सूरिजीनें श्रीविधि-प्रपा नाम ग्रन्थ बनाया है उसीके पृष्ठ ५३ में जैसा पाठ है वैसाही नीचे मुजब जानो ;—

आसाढ चउम्मासियाओ नियमा पन्नासइमे दिणे पज्जो सवणा कायव्वं न इक्कपंचासइमे जयावि लोइय टिप्पणया-णुसारेण दो सावणा दो भद्दवया वा भवंति तयावि पन्ना सइमे दिणे नउण कालचूलाविवक्खाए असीइमे सवीसइ राइमासे वइक्कंते पज्जोसवणंतित्ति वयणाउ जंच अभि-वड्ढियंमि वीसत्तुवुत्तं तं जुगमज्झे दो पोसा जुगअंते दोवी आसाढत्ति सिद्धंतटिप्पणयाणुरोहेणं चेव घडइ ते संपयं नवट्ट तित्ति जहुत्तमेव पज्जोसवणादिणत्ति ॥

अब सत्यग्राही सज्जनपुरुषोंसें मेरा इतनाही कहना है कि उपरमें श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरिजीनें श्रीसन्देह-

विषौषधी वृत्तिमें और श्रीविधिप्रपामें खुलासाके साथ मासवृद्धिकी गिनतीसें वर्त्तमानमें पचास दिने पर्युषणा कही है सो दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करनी यह प्रसिद्ध बात है और न्यायाम्भोनिधिजी खास करके श्रीसन्देहविषौषधी वृत्तिका और श्रीविधिप्रपा ग्रन्थका उपरोक्त पर्युषणा सम्बन्धी पाठको अच्छी तरहसें जानते थे क्योंकि श्रीविधिप्रपा ग्रन्थका पाठ खास आपने चतुर्थ स्तुति निर्णयः पुस्तकके पृष्ठ ८३। ८४। ८५ में लिखा है।

और मैंने जो उपरमें श्रीविधिप्रपा ग्रन्थका पाठ पर्यु-षणा सम्बन्धी लिखा हैं उसी पाठके पहली पंक्तिका पाठ दोनु जगहसें काटकरके अधूरा ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप और श्रीखरतरगच्छके तथा दूसरे भोले श्रावकोंको भ्रममें गेरनेके लिये न्यायाम्भो-निधिजीनें जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ८२ के अन्तमें लिखा है (जिसका खुलासा आगे करनेमें आवेगा) इससें पर्युषणा सम्बन्धी उपरका पाठ न्यायाम्भोनिधिजी जानते थे तथापि अपनी मिथ्या बात रखनेके लिये (अधिकमास होवे तो श्रावण मासमें पर्युषणा करना ऐसा तो तुमारे गच्छवाले भी नही कह गये है) यह वाक्य और सन्देहविषौषधी ग्रन्थमें भी (ऐसा नही कहा कि अधिक मास होवे तो श्रावणमासमें पर्युषणा करना) यह वाक्य न्यायाम्भोनिधिजी माया वृत्तिसें प्रत्यक्ष मिथ्या कैसे लिख गये होंगे सो मेरेकों बड़ाही अफसोस है ;—इस लिये मेरे कों इस जगह लिखना पड़ता है कि श्रीजिनप्रभ सूरिजीनें श्रीसन्देह विषौषधी वृत्तिमें तो कदाग्रही और सन्देहकारी

पुरुषोंका अच्छी तरहसें सन्देहका (पर्युषणा सम्बन्धी और कल्याणक सम्बन्धी भी) निवारण किया है जो स्थिरचितसें वाँचके सत्यग्राही होगा उसीका तो अवश्य करके मिथ्यात्व रूप सन्देह निकलके सम्यक्त्वरूप सत्यबातकी प्राप्ति हो जावेगा इसमें कोई शक नही—

और श्रीखरतरगच्छके तो क्या परन्तु श्रीतपगच्छके ही पूर्वाचार्य्योंनें मासवृद्धिके अभावसें भाद्रपदमें पर्युषणा करनी कही है और दो श्रावण होनेसें पचासदिने दूजा श्रावणमें भी पर्युषणा करनी कही है इसका विस्तार उपरमें अनेक जगह छपगया है। इसलिये श्रीखरतरगच्छके पूर्वाचार्य्यजी कृत ग्रन्थका मासवृद्धि सम्बन्धी पाठको छुपाकर मासवृद्धिके अभावका पाठ मासवृद्धि होते भी भोले जीवोंको दिखा कर सत्य बात परसें श्रद्धाभङ्ग करके अपनी कल्पित बातमें गेरनेका कार्य्य करना न्यायांभोनिधिजीकों उचित नही था;—

और आगे फिर भी न्यायाम्भोनिधिजीनें अपनी जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ९२ की दूसरी पंक्तिसें सोलवी पंक्तितक जो लिखा है सो नीचे मुजब जानो,—

[पृष्ठ १५९ पंक्ति ६ में नारचंद्र ज्योतिष ग्रन्थका प्रमाण दिया है सो तो हीरीके स्थानमें वीरीका विवाह कर दिया है। क्योंकि इसी द्वितीय प्रकरणमें ऐसा श्लोक है। यथा—हरिशयनेऽधिकमासे, गुरुशुक्रास्तेनलग्नमन्वेष्यं ॥ लग्नेशांशाधिपयो,र्नीचास्तगमे च न शुभं स्यात् ॥ १ ॥

भावार्थः अधिक मासादिक जितने स्थान बताये उसमें शुभ कार्य्य नही होते है। तो अब बारामासिक पर्युषणा-

पर्व कैसे करनेकी सङ्गति होगी ? और रत्नकोपाख्य ज्योतिःशास्त्र विषे भी ऐसा कहा है । यथा—'यात्राविवाह-मण्डन, मन्यान्यपि शोभनानि कर्म्माणि ॥ परिहर्त्तव्यानि बुधैः, सर्वाणि नपुंसके मासि ॥ १ ॥

भावार्थः यात्रामण्डन, विवाहमण्डन, और भी शुभ-कार्य्य है सोभी पण्डित पुरुषोंनें सर्व नपुंसके मासि कहनेसें अधिक मासमें त्यागने चाहीये । अब देखीये ! इस लेखसें भी अधिक मासमें अति उत्तम पर्युषणापर्व करनेकी सङ्गति नही होसकती है ।]

ऊपरके न्यायाम्भोनिधिजीका लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गकों दिखाता हुं कि (पृष्ठ १५९ में नारचन्द्र ज्योतिष ग्रन्थका प्रमाण दिया है सो तो हीरीके स्थानमें बीरीका विवाह कर दिया है) इन अक्षरोंको लिखके जो शुद्धसमाचारीके पृष्ठ १५९ में नारचन्द्र ज्योतिषका श्लोक है उसी को न्यायांभोनिधिजी निषेध करना चाहते हैं सो कदापि नही हो सकता है क्योंकि उसी श्लोकका मतलब सत्य है देखो शुद्धसमाचारीके पृष्ठ १५९में नारचन्द्रके दूसरे प्रकरणका ऐसा श्लोक है यथा—रविक्षेत्रगते जीवे, जीव क्षेत्रगते रवौ । दीक्षां स्थापनां चापि, प्रतिष्ठा च न कारयेत् ॥ १ ॥ इस श्लोक लिखनेका तात्पर्य्य ऐसा है कि वादी शङ्का करता है कि अधिकमासमें शुभकार्य्य नही होते हैं तो फ़िर पर्यु-षणापर्व भी शुभकार्य्य अधिकमासमें कैसे होवे इस शङ्काका समाधान शुद्धसमाचारीकार पं० प्र० यतिजी श्री-रायचन्द्रजी ऐसे करते हैं कि अधिक मासके सिवाय भी 'रविक्षेत्रगते जीवे, याने सूर्य्यका क्षेत्रमें गुरुका जाना होवे

अर्थात् सिंहराशि पर गुरुका आना होवे तब सिंहे गुरु सिंहस्थ तेरह मास तक कहा जाता है उसीमें और 'जीवक्षेत्र गते रवौ, याने गुरुका क्षेत्रमें सूर्य्यका जाना होवे अर्थात् गुरुका क्षेत्रमें सूर्य्य धन और मीन राशिपर पौष और चैत्र मासमें आता है तब उसीको मलमास कहे जाते हैं उसीमें अर्थात् सिंहस्थका और मलमासका ऐसा योग बने तब गृहस्थको दीक्षा देना तथा साधुको सूरि वगैरह पदमें स्थापन करना और प्रतिष्ठा करनी ऐसे कार्य्य नही करना चाहिये क्योंकि ऐसे योगमें दीक्षादि कार्य्य करनेसें इच्छित फल-प्राप्त नही हो सकता है इसलिये उपरोक्तादि अनेक कारण-योगे मुहूर्त्तके निमित्त कारणसें जो जो कार्य्य करनेमें आते हैं सो निषेध किये हैं परन्तु आत्मसाधनका धर्मरूपी महान् कार्य्य तो बिना मुहूर्त्तका होनेसें किसी जगह कोई भी कारणयोगे निषेध करनेमें नही आया है और अधिक मासमें धर्मकार्य्य पर्युषणादि करनेका कोई शास्त्रमें निषेध भी नही किया है इसलिये अधिक मासादिमे धर्मकार्य्य अवश्यही करना चाहिये यह तात्पर्य्य शुद्धसमा-चारी कारका जैनशास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक न्यायसम्मत होनेसें मान्य करने योग्य सत्य है इसलिये निषेध नही हो सकता है तथापि न्यायांभोनिधिजी अपनी कल्पित बातको स्थापनेके लिये शुद्धसमाचारीकारकी सत्य बातका निषेध करते हैं सोभी इस पंचमें कालके न्यायके समुद्रका नमुना है और शुद्धसमाचारीकार पं० प्र० यतिजी श्रीराय-चन्द्रजी थे, इसलिये (हीरीके स्थानमें वीरीका विवाह कर दिया है) यह अक्षर न्यायांभोनिधिजीको बिना विचार

किये ऐसे मिथ्या लिखना उचित नही था, इसका विशेष विचार पाठकवर्ग अपनी बुद्धिसें स्वयं कर लेना ;—

और (इसी द्वितीय प्रकरणमें ऐसा श्लोक है यथा—
हरिशयनेऽधिकमासे, गुरुशुक्रास्ते न लग्नमन्वेष्यं ॥ लग्नेशांशाधिपयो,र्नीचास्तगमे च न शुभं स्यात् ॥१॥ भावार्थः अधिक मासादिक जितने स्थान बतायें उसमें शुभकार्य्य नही होते हैं तो अब बारा मासिक पर्युषणापर्व कैसे करनेकी सङ्गति होगी) इस उपरके लेखसें न्यायांभोनिधिजीनें अधिक मासमें पर्युषणा करनेका निषेध किया इस पर मेरेकों प्रथमतो इतनाही लिखना पड़ता है कि उपरके श्लोकका अधूरा भावार्थ लिखके न्यायाम्भोनिधिजीनें भोले जीवोंकों भ्रममें गेरे हैं इसलिये इस जगह उपरके श्लोकका पूरा भावार्थ लिखनेकी जरूरत हुई सो लिखके दिखाता हुं—
हरिशयने, याने, जो श्रीकृष्णजीका शयन (सोना) लौकिकमें आषाढ़शुक्ल एकादशी (११) के दिनसें कार्त्तिकशुक्ल एकादशीके दिन तक चार मासका (परन्तु मासवृद्धि दो श्रावणादि होनेसें पांच मासका) कहा जाता हैं उसीमें १, और वैशाखादि अधिक मासमें २, गुरुका अस्तमें ३, शुक्रका अस्तमें ४, और ज्योतिष शास्त्र मुजब लग्नके नवांशाका अधिपति नीचा हो ५, अथवा अस्त हो ६, इतने योगोंमें पण्डित पुरुषको लग्न नही देखना चाहिये क्योंकि उपरके योगोंमें लग्न देखे तो शुभ फल नही हो सकता है इसलिये ज्योतिषशास्त्रोंमें उपरके योगोंमें लग्न देखनेकी मनाई किवी है इस तरहसें उपरोक्त श्लोकका भावार्थ होता है ॥ १ ॥

अब न्यायाम्भोनिधिजीनें नारचन्द्रके दूसरे प्रकरणका

जो ऊपरमें श्लोक लिखके पर्युषणा पर्वका निषेध किया है उस सम्बन्धी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हुं, जिसमें प्रथमतो शुद्धसमाचारीकारनें इसीही नारचन्द्रके दूसरे प्रकरणका जो श्लोक लिखाथा उसीको भावार्थ सहित में ऊपरमें लिख आया हुं—जिसमें खुलासे लिखा है कि तेरहमास तक सिंहस्थमें और पौष तथा चैत्र ऐसे मलमासमें मुहूर्त्तके निमित्तिक शुभकार्य्य नही होते हैं परन्तु बिना मुहूर्त्त का धर्म कार्य्य करनेमें हरजा नही क्योंकि तेरहमासका सिंहस्थमें पर्युषणादि धर्मकार्य्य तो अवश्य ही करने में आते है और पौषमासमें श्रीपार्श्वनाथस्वामिजीका जन्म और दीक्षा कल्याणकके धर्मकार्य्य और चैत्रमासमें श्रीआदिजिनेश्वर भगवान्का जन्म और दीक्षा कल्याणकके धर्मकार्य्य करनेमें आते हैं और चैत्रमासमें ओलियांकी भी तपश्चर्य्या वगैरह करनेमें आती है और खास अधिकमासमें भी पाक्षिकादि धर्मकार्य्य करनेमें आता है इस लिये मुहूर्त्तके निमित्तिक कार्य्य अधिकमासमें नही हो सकते है परन्तु धर्मकार्य्य तो बिना मुहूर्त्तका होनेसें अवश्यही करनेमें आता है यह तात्पर्य्य शुद्ध समाचारी कारका सत्यथा तथापि न्यायाम्भोनिधिजीनें (पृष्ठ १५९ पंक्ति ६ में नारचन्द्र ज्योतिष ग्रन्थका प्रमाण दिया है सो तो हीरीके स्थानमें वीरीका विवाह कर दिया है) ऐसा उपहासका वाक्य लिखके उपरोक्त सत्यबातका निषेध करदिया और फिर उसी स्थानका 'हरिशयने, इत्यादि श्लोक लिखके हरिशयने श्रीकृष्णजीका शयन (सोना) जो चौमासामें और अधिक मासमें शुभकार्य्य का न होना दिखाकर पर्यु-

षणा पर्वका भी नही होनेका उत्सूत्र भाषणरूप दिखाते कुछ भी विचार न किया क्योंकि चौमासेमें मुहूर्त्त निमित्तिक शुभकार्य्य नही होते है परन्तु विना मुहूर्त्तका श्रीपर्युषणा पर्वतो खासकरके श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने वर्षा ऋतुमें करनेका कहा है जिसका किञ्चिन्मात्र भी न्यायाम्भोनिधिजी विचार न करते श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें और विद्वान् पुरुषोंके आगे अपने नामकी हासी करानेका कारणरूप हरिशयन का चौमासमें और अधिक मासमें शुभकार्य्यका न होनेका दिखाकर पर्युषणापर्व न होनेका भोले जीवोंको दिखाया। हा अतीव खेदः इस उपरकी बातको पाठकवर्गको तथा न्यायाम्भोनिधिजीके परिवारवालोंकों और उन्होंके पक्षधारियोकों (सत्यग्राही हो कर) दीर्घदृष्टिसें विचारनी चाहिये;—

दूसरा औरभी सुनो—जो न्यायांभोनिधिजीके तथा उन्होंके परिवारवालोंके दिलमें ऐसाही होगा कि मुहूर्त्तके निमित्तका शुभकार्य्य न होवे वहां बिना मुहूर्त्तका धर्मकार्य्य भी नही होना चाहिये तब तो उन्होंके आत्माका सुधारा धर्मकार्य्योंके बिना होनाही मुश्किल होगा क्योंकि ज्योतिषशास्त्रोंके आरम्भसिद्धि ग्रन्थमें १, तथा लघु वृत्तिमें २, और वृहद्वृत्तिमें ३, जन्मपत्री पद्धतिमें ४, नारचन्द्र-प्रकरणमें ५, तथा तट्टिप्पणमें ६, लग्नशुद्धिग्रन्थमें ७, तत् वृत्तिमें ८, मुहूर्त्तचिन्तामणिमें ९, वृहत् मुहूर्त्तसिन्धुमें १० दूसरी मुहूर्त्तचिन्तामणिमें ११, तथा पीयूषधारा वृत्तिमें १२, मुहूर्त्तमार्त्तण्डमें १३, विवाह वृन्दावनमें १४, प्रथम और दूसरा विवाहपड़ल ग्रन्थमें १५-१६, चार प्रकरणका नारचन्द्र

में १७, रत्नकोषमें १८, लग्नचन्द्रिकामें १९, ज्योतिषसारमें २०, और ज्योतिर्विदाभरण वृत्तिमें २१, इत्यादि अनेक ज्योतिष शास्त्रोंमें कितनेही मास १, कितनीही संक्रान्ति २, कितनेही वार ३, कितनीही तिथियां ४, कितनेही योग ५, कितनेही नक्षत्र ६, और जन्मका नक्षत्र ७, जन्मका मास ८, अधिक मास ९, क्षयमास १०, अधिक तिथि ११ क्षय तिथि १२, व्यतीपात १३, और कृष्णपक्षकी तेरस चौदश अमावस्या इन क्षीण तिथियोंमें १४, पापग्रहयुक्त चन्द्रमें १५, पापग्रह युक्त लग्नमें १६, गुरुका अस्तमें १७, शुक्रका अस्तमें १८, गुरु शुक्रकी बाल और वृद्धावस्थामें १९, ग्रहणके सात दिनोंमें २०, लग्नका स्वामी नीचामें २१, और अस्तमें २२, सन्मुख योगिनीमें २३, चन्द्रदग्ध तिथिमें २४, सन्मुख राहुमें २५, सिंहस्थ में २६, मलमासमें २७, हरिशयनका चौमासामें २८, भद्रामें २९, और तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, दिशा वगैरह आपसमें अशुभ योगोंमें ३०, इत्यादि अनेक निमित्त कारणोंमें मुहूर्त्त निमित्तिक शुभकार्य्य वर्ज्जन किये हैं इस लिये न्यायां भोनिधिजी तथा उन्होंके परिवारवाले जो ज्योतिषशास्त्रोंके अशुभ योगोंसें शुभकार्य्योंका वर्ज्जन देखके धर्मकार्य्योंका भी वर्ज्जन करेंगे तब तो उन्होंको धर्मकार्य्य कब करनेका वख्त मिलेगा अथवा शुभयोग बिना धर्मकार्य्य न करते किसीका आयुष्यपूर्ण हो जावे तो उन्हकी आत्माका सुधारा कब होगा सो पाठकवर्ग बुद्धिजन पुरुष विचार लेना—और मेरा इसपर आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंको इतनाही कहना है कि न्यायांभोनिधिजी उपरोक्त ज्योतिष शास्त्रोंके शुभाशुभयोगोंको न देखते सिंहस्थमें तथा हरिशयनका

चौमासामें और अधिक मासादिमें धर्मकार्य्य करते होवेंगे तब तो 'हरिशयनेऽधिके मासे' इत्यादि उपरका श्लोक नारचन्द्रके दूसरे प्रकरणका लिखके अधिक मासादि जितने स्थान बताये उसमें शुभकार्य्य नही होता है, ऐसे अक्षर लिखके पर्युषणा पर्व करनेका निषेध भोले जीवोंको वृथा क्यों उत्सूत्र भाषणरूप दिखाया और उत्सूत्र भाषणका भय होता तो उपरकी मिथ्या बातों लिखी जिसका मिथ्या दुष्कृत्य देकरके अपनी आत्माकी शुद्धि करनी उचित थी और न्यायांभोनिधिजीके परिवारवालोंको ऐसा उत्सूत्र भाषणरूप मिथ्या बातोंका अब हठ भी करना उचित नही है— इसलिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंसें मेरा यही कहना है कि ज्योतिषके शुभाशुभ योगोंका और सिंहस्थका, चौमासाका, अधिक मासादिक का विचार न करते, निःशङ्कित होकर श्रीजिनोक्त मुजब धर्मकार्य्योंमें उद्यम करके अपनी आत्माका कल्याण करो आगे इच्छा तुम्हारी ;—

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीमें लिखा है कि [रत्नकोषाख्य ज्योतिःशास्त्र विषे भी ऐसा कहा है यथा यात्रा विवाहमण्डन, मन्यान्यपि शोभनानि कर्म्माणि, परिहर्त्तव्यानि बुद्धैः, सर्वाणि नपुंसके मासि ॥ १ ॥

भावार्थः—यात्रामण्डन, विवाहमण्डन और भी शुभ कार्य्य है सो भी पण्डित पुरुषोंने सर्व नपुंसके मासि कहनेसें अधिक मासमें त्यागने चाहिये अब देखिये इस लेखसे भी अधिक मासमें अत्युत्तम पर्युषणापर्व करनेकी संगति नही हो सकती है]

इस लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्ग को दिखाता हुं-जिसमें प्रथमतो न्यायांभोनिधिजीकों ज्योतिषग्रन्थका विवाहादि कार्य्योंका दृष्टान्त दिखा करके पर्युषणा पर्वका निषेध करनाही उचित नही है इसका उपरमें अच्छी तरहसें खुलासा हो गया है और दूसरा यह है कि श्री तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंनें मासवृद्धिको काल-चूलाकी उत्तम ओपमा दिवी है तथापि न्यायांभोनिधिजीनें तीनों महाशयोंका अनुकरण करके श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें तथा इन महाराजोंकी आशातना का भय न करते मासवृद्धिको नपुंसककी तुच्छ ओपमा लिख करके भोले जीवोंको अपने फन्दमें फसाये हैं सो बड़ाही अफसोस है और तीसरा यह है कि रत्नकोषाख्य (रत्नकोष) ज्योतिष शास्त्रमें तो मुहूर्त्तके निमित्तसें जो जो कार्य्य होते हैं उसीमें अनेक कारण योग वर्ज्जन किये हैं उसीकों सब कों छोड़करके सिर्फ एक अधिक मास सम्बन्धी लिखते हैं सो भी न्यायांभोनिधिजीको अन्याय कारक है इसलिये मुहूर्त्त के कार्य्योंको दिखाकर बिना मुहूर्त्तका पर्युषणापर्व करनेका निषेध करना योग्य नही हैं।

और भी चौथा सुनो—(यात्रामण्डन, विवाहमण्डन और भी शुभकार्य्य है सोभी पण्डित पुरुषोंनें सर्व नपुंसके मासि कहनेसें अधिक मासमें त्यागने चाहिये) इसपर मेरा इतना ही कहना है कि पूर्वोक्त तीनों महाशय और चौथे न्यायाम्भोनिधिजी यह चारों महाशय अधिकमासको नपुंसक कहके जो सर्व शुभकार्य्य त्यागने का ठहराते है। इससे तो यह सिद्ध होता है कि पौषध, प्रतिक्रमण, ब्रह्मचर्य्य,

दान, पुण्य, परोपगार, सात क्षेत्रमें द्रव्यखर्चना, जीव दया, देवपूजा, गुरुवन्दनादि देवगुरुभक्ति, साधर्मिक-वात्सल्य, विनय, वैयावच्च, आत्मसाधनरूप स्वाध्याय, ध्यानादि, श्रावकके और धर्मोपदेशका व्याख्यानादि साधुके उचित जो जो शुभकार्य्य है उन्ही शुभकार्य्योंकों अधिक मासको नपुंसक कहके त्याग देनेका चारों महाशयोंनें उपदेश किया होगा। भक्तजनोंको त्यागनेका नियम भी दिलाया होगा, आपने भी त्यागे होवेंगें और अधिक मासको नपुंसक कहके शुभकार्य्य चारों महाशय त्यागनेका ठहराते है इससें अशुभ कार्य्योंका ग्रहण होता है इसलिये उपरोक्त कार्य्योंसें विरुद्ध याने अधिक मासको नपुंसक जानके सर्व शुभकार्य्य त्यागते हुए—निन्दा, ईर्षा, झगड़ादि अशुभकार्य्य करनेका चारों महाशयोंनें उपदेश किया होगा। दृष्टि रागियोंसें करानेका नियम भी दिलाया होगा और अपने भी ऐसे ही किया होगा। तब तो (अधिक मासमें सर्वशुभकार्य्य त्यागनेका) ज्योतिष-शास्त्रका नामसें चारों महाशयोंका लिखके ठहराना उचित ठीक होसके परन्तु जो अधिक मासमें निन्दा ईर्षादि अशुभकार्य्य त्यागके देवगुरुभक्ति वगैरह शुभकार्य्य चारों महाशयोंने करनेका उपदेश दिया होगा भक्तजनोंसे करानेका नियम भी दिलाया होगा और अपने भी उपरके अशुभ कार्य्योंका त्यागकरके शुभकार्य्योंको किये होवेंगे तबतो अधिक मासमें ज्योतिष शास्त्रका नाम लेकरके सर्व शुभकार्य्य त्यागनेका ठहराना चारों महाशयोंका भोले जीवोंको भ्रममें गेरके मिथ्यात्व बढ़ानेके सिवाय

और क्या होगा सो बुद्धिजन सज्जनपुरुष स्वयं विचार लेना ॥

अब पांचमा और भी सुनो कि जो न्यायाम्भोनिधिजी अधिक मासको नपुंसक कहके यात्रा मण्डनका शुभकार्य्य त्यागनेका ठहराते है परन्तु जैनके और वैष्णवके अनेक तीर्थ स्थान है उसीमें अमुक अधिकमासमें अमुक तीर्थयात्रा बन्ध हुई कोई देशी परदेशी यात्री यात्रा करने को न आया ऐसा देखनेमें तो दूर रहा किन्तु पाठकवर्गके सुननेमें भी नही आया होगा तो फिर न्यायाम्भोनिधिजीनें कैसे लिखा होगा सो पाठक वर्ग विचार लेना।

और छठा यह है कि न्यायाम्भोनिधिजी किसी भी अधिक मासमें कोई भी श्रीशत्रुजय वगैरह तीर्थस्थानमें ठहरे होवे उस अधिक मासमें तीर्थयात्रा खास आपने किवी होगी तो फिर अधिक मासमें यात्राका निषेध भोले जीवोंको वृथा क्यों दिखाया होगा सो निष्पक्षपाती सज्जन पुरुष स्वयं विचार लो ;—

और सातमी वारकी समीक्षामें कदाग्रहियोंका मिथ्यात्व रूप भ्रमको दूर करनेके लिये मेरेकों लिखना पड़ता है कि न्यायाम्भोनिधिजी इतने विद्वान् न्यायके समुद्र होते भी गच्छका मिथ्या हठवादसें संसार व्यवहारमें विवाहादि वड़े ही आरम्भके कराने वाले और अधोगतिका रस्तारूप लौकिक कार्य्य न होनेका दृष्टान्त दिखाकर महान् उत्तमोत्तम निरारम्भी ऊर्द्धगतिका रस्तारूप लोकोत्तर कार्य्यका निषेध करती वख्त न्यायाम्भोनिधिजीके विद्वत्ताकी चातुराई किस जगह चली गईथी सो प्रत्यक्ष असङ्गत और उत्सूत्र भाषणरूप लिखते

जरा भी विचार न आया क्योंकि विवाहादि कार्य्य तो चैमासामें और रिक्तातिथिमें तथा कृष्णचतुर्दशी अमावस्यादि तिथि वगैरह कु वार कु नक्षत्र कु योगादि अनेक कारण योगोंमें निषेध किये हैं और श्रीपर्युषणादि धर्मकार्य्य तो विशेष करके चैमासामें रिक्तातिथिमें तथा कृष्णा चतुर्दशी अमावस्यादि तिथियोंमें कु वार कु नक्षत्र कु योगादि होते भी तिथि नियत पर्व करनेमें आते हैं इस बातका विवेक बुद्धिसें हृदयमें विचार किया होता तो विवाहादि कार्य्योंका दृष्टान्तसें महान् उत्तम पर्युषणा पर्व करनेका निषेधके लिये कदापि लेखनी नही चलाते यह बातपाठकवर्गको अच्छी तरहसें विचारनी चाहिये ;—

और भी आठमी तरहसें सुन लीजिये—कि पूर्वोक्त तीनों महाशयोंनें और चौथे न्यायांभोनिधिजीनें भोले जीवों के आत्मसाधनका धर्मकार्य्योंमें विघ्नकारक, अधिक मासको तुच्छ नपुंसकादिसें लिखा है सो निःकेवल श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषणरूप प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि धर्मकार्य्योंमें अधिक मास उत्तम श्रेष्ठ महान् पुरुषरूप है (इसलिये अधिकमासमें धर्मकार्य्योंका निषेध नही हो सकता है) इस बातका विशेष विस्तार दृष्टान्त सहित युक्तिके साथ अच्छी तरहसें सातमें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें करनेमें आवेगा सो पढ़नेसें सर्व निःसन्देह हो जावेगा ;—

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीनें अधिक मास को निषेध करनेके लिये जैन सिद्धान्तसमाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ९२ की पंक्ति १७ सें पृष्ठ ९३ की आदिमें अर्द्ध पंक्ति तक

लेख लिखके अपनी चातुराई प्रगट किवी हैं उसीका उतारा नीचे मुजब जानो—

[अधिक मासको अचेतन रूप वनस्पति भी नही अङ्गीकार करती है तो औरोंको अङ्गीकार न करना इसमें तो क्याही कहना देखो आवश्यक निर्युक्ति विषे कहा है यथा— जइ फुल्ला कणिआरडा, चूअग अहिमासयंमिघुठंमि। तुहनखमं फुल्लेउ, जइ पच्चंता करिंति डमराई ॥ १ ॥ भावार्थः हे अंब अधिक मासमें कणियरको प्रफुल्लित देखके तेरेको फुलना उचित नही है क्योंकि यह जाति बिनाके आडम्बर दिखाते हैं अब देखिये हे मित्र यह अच्छी जातिकी वनस्पति भी अधिक मासको तुच्छही जानके प्रफुल्लित नही होती है]

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गकों दिखाता हुं—कि हे सज्जन पुरुषों न्यायाम्भोनिधिजीनें प्रथमतो (अधिकमासको अचेतनरूप वनस्पति भी नही अङ्गीकार करती है) यह अक्षर लिखे है सो प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि दशलक्ष प्रत्येक वनस्पति तथा चौदह लक्ष साधारण वनस्पति यह चौवीश लक्ष योनीकी सब वनस्पति अवश्यमेव अधिक मासमें हवा पाणीके संयोगसें यथोचित नवीन पैदाश होती है औरवृद्धि पामती है प्रफुल्लित होती है और निमित्त कारणसें नष्ट भी होजाती है जैसे बारह मासोंमें हानी वृद्धयादि वनस्पतिका स्वभाव है तैसे ही अधिक मास होनेसें तेरह मासोंमें भी बरोबर है यह बात अनादि कालसें चली आती है और प्रत्यक्ष भी दिखती है क्योंकि इस संवत् १९६६ का लौकिक पञ्चाङ्गमें दो

श्रावण मास हुवे है तब भी दोनु श्रावण मासमें वर्षा भी खूब (गहरी) हुई है तथा वनस्पति को भी नवीन पैदा होते वृद्धि होते और हानी होते पाठकवर्गने भी प्रत्यक्ष देखा है और देश परदेशके सब वगीचोंमें भी दोनु मासोंमें फलों करके तथा फूलों करके वृक्ष प्रफुल्लित पाठकवर्गके देखनेमें आये होंगें और हरेक शहरोंमें वनमालि लोग अधिक मासमें शाक, भाजी, फल, फूल, वेचते हुवे सब पाठकवर्गके देखनेमें आते हैं यह बात तो हरेक अधिक मासमें प्रत्यक्ष देखनेमें आती है परन्तु कोई भी अधिक मासमें कोई भी देशमें कोई भी शहरमें शाक, भाजी, फल, फूलादि नवीन पैदा नही होते हैं तथा शहरमें भी वनमालि लोग वेचनेको नही आये हैं वैसा तो कोई भी पाठकवर्गके सुननेमें भी कभी नही आया होगा। यह दुनिया भरकी जगत् प्रसिद्ध बात है इस लिये अधिक मासको वनस्पति अवश्य ही अङ्गीकार करती है तथापि न्यायाम्भोनिधिजीनें (अधिकमासको अचेतनरूप वनस्पति भी नही अङ्गीकार करती है) यह प्रत्यक्ष मिथ्या भोले जीवोंको अपना पक्षमें लानेके लिये लिख दिया—यह वड़ा ही अफसोस है।

और फिर भी न्यायाम्भोनिधिजी (अधिक मासको अचेतनरूप वनस्पति भी नही अङ्गीकार करती है तो औरोको अङ्गीकार न करना इसमें तो क्याही कहना) इस लेखको लिखके मनुष्यादिकोंको अधिक मास अङ्गीकार नही करनेका ठहराते है इस पर तो मेरेंकों इतनाही कहना है कि न्यायाम्भोनिधिजीके कहनेसें तो सब दुनियाके सब लोगोंकें अधिक मासमें खाना, पीना, सोना, बैठना,

लेना, देना, स्त्रियोंको गर्भका होना और वृद्धि पामना, जन्मना, मरणा, और संसारिक व्यवहारमें व्यापारादि कृत्य करना, दुनीयामें रोगी, तथा निरोगी होना, और दान पुण्यादि भी करना, इत्यादि पाप और पुण्यके कार्य्य करना ही नही होता होगा तब तो मनुष्यादिकोंको अधिक मास अङ्गीकार नही करनेका ठहराना न्यायाम्भोनिधिजीका बन सके परन्तु जो ऊपरके कहे, पाप, पुण्यके, कार्य्य दुनियाके लोग अधिक मासमें करते है इस लिये न्यायाम्भोनिधिजी का उपरका लिखना प्रत्यक्ष मिथ्या होनेसें पक्षपाती हठ-ग्राहीके सिवाय आत्मार्थी बुद्धिजन कोई भी पुरुष मान्य नही कर सकते है इसको विशेष पाठकवर्ग विचारलेना ;—

और आगे फिर भी न्यायाम्भोनिधिजीनें श्रीआवश्यक निर्युक्तिकी गाथा लिखी है सो भी निर्युक्तिकार श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामिजीके विरुद्धार्थमें उत्सूत्रभाषणरूप और इस गाथाका सम्बन्ध तथा तात्पर्य्य समझे बिना भोले जीवोंको संशयमें गेरे हैं इसका विशेष विस्तार सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नाम की समीक्षामें अच्छी तरहसें किया जावेगा सो पढ़के सर्वनिर्णय करलेना—और फिर भी न्यायाम्भोनिधिजीनें श्रीआवश्यक निर्युक्तिकी गाथाका भावार्थ लिखा है कि (हे अंब अधिक मासमें कणियरको प्रफुल्लित देखके तेरेको फूलना उचित नही है क्योंकि यह जाति बिनाके आड़म्बर दिखाते हैं) इस लेखसे अधिक मासमें कणियरको फूलना ठहराते अंबको नही फूलना ठहराकर कणियरको तुच्छ जातिकी और अंबको उत्तम जातिका ठहराते हैं सोभी इन्होंकी समझमें फेर है क्योंकि

कणियर तो सबीही मासोंमें फूलती है और आंवे भी सबीही मासोंमें फूलके फलते है सो कलकत्ता, मुबई वगैरह शहरोंके अनेक पुरुष जानते है। और कणियर तो उत्तम जातिकी और अंब तुच्छ जातिका कारण अपेक्षासे ठहरता है इसका विशेष खुलासा सातवे महाशयकी समीक्षामें करने में आवेंगा और आगे फिर भी श्रीआवश्यक निर्युक्ति की गाथा पर न्यायाम्भोनिधिजीनें अपनी चातुराई को प्रगट किवीहै कि (अब देखीये हे मित्र यह अच्छी जातिकी वनस्पति भी अधिक मासको तुच्छही जानके प्रफुल्लित नही होती है)

इस उपरके लेखकी समीक्षा पाठकवर्गकों सुनाता हुं कि न्यायांभोनिधिजी अच्छी जातीकी वनस्पतिको अधिक मासको तुच्छही जानके प्रफुल्लित नही होनेका ठहराते हैं इस न्यायानुसार तो न्यायांभोनिधिजी तथा इन्होंके परिवारवाले भी जो अच्छी जातिकी वनस्पतिका अनुकरण करते होवेंगे तब तो अधिक मासको तुच्छही जानके खाना, पीना, देव दर्शन, गुरु वन्दन, विनय, भक्ति, वृद्धादिककी वैयावच्च, धर्मोपदेशका व्याख्यान, व्रत, प्रत्याख्यान, देवसी, राई, पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कार्य्य करके अपनी आत्माकों पापकृत्योंसें आलोचित देखकरके हर्षसें प्रफुल्लित चित्तवाले नही होते होवेंगे तब तो उपरका लेख वनस्पति सम्बन्धीका लिखना ठीक हैं और उपर कहे सो कृत्योंसे आप हर्षित होते होवेंगे तब तो वनस्पतिकी बातको लिखके भोले जीवोंको श्रीजिनाज्ञारूपी रत्नसें गेरनेका कार्य्य करना सो प्रत्यक्ष मिथ्यात्वका कारण है, और विद्वान् पुरुषोंके आगे हास्यका हेतु है सो बुद्धिजन पुरुष विचार लेना ;—

और भी दूसरा सुनो अचेतनरूप वनस्पतिको यह अधिक मास उत्तम है किंवा तुच्छ है इस रीतिका कोई भी प्रकारका ज्ञान नंही है इसलिये (अच्छी जातिकी वनस्पति भी अधिक मासको तुच्छही जानके प्रफुल्लित नही होती है) यह अक्षर न्यायांभोनिधिजीके प्रत्यक्ष मिथ्या है।

और भी मेरेकों वड़े ही अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि न्यायाम्भोनिधिजीनें उपरमें वनस्पति सम्बन्धी उटपटाङ्ग लेख लिखते कुछ भी पूर्वापरका विचार विवेक बुद्धिसें नही किया मालुम होता है क्योंकि–प्रथम। (अधिकमास को अचेतनरूप वनस्पति भी नहीं अङ्गीकार करती है) यह अक्षर लिखे फिर आगे श्रीआवश्यक निर्युक्ति की गाथा (शास्त्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें) लिखके भी भावार्थसें–दूसरा। (हे अम्ब अधिक मासमें कणियरको प्रफुल्लित देखके तेरेको फुलना उचित नही है) यह लिख दिया है इससें सिद्ध हुवा कि अधिकमासको वनस्पति जो कणियरकी जाति उसीनें अङ्गीकार किया और प्रफुल्लित हुई और वनस्पतिकी जाति अंबा भी अधिक मासको अङ्गीकार करके प्रफुल्लित होताथा तब उसकों कहा कि तेरेकों फूलना उचित नही है।

अब पाठकवर्ग विचार करो कि प्रथमका लेखमें अधिक मासको वनस्पति अङ्गीकार नही करनेका लिखा औ[र] दूसरे लेखमें अधिक माससें वनस्पतिकों फूलना [...] करनेका लिखदिया इसलिये जो न्यायाम्भो[निधिजी] का अपना लेख सत्य ठहरावेंगे तो [...] जावेगा और दूसरा लेखको सत्य

मिथ्या हो जावेगा इसलिये पूर्वापर विरोधी (विसम्वादी) वाक्य लिखनेका जो विपाक श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी वृत्तिमें कहा है (सो पाठ इसी ही पुस्तकके पृष्ठ ८६ । ८७ । ८८ में छप गया है) उसीके अधिकारी न्यायाम्भोनिधिजी ठहर गये सो पाठकवर्ग विचार लेना ;—

और अधिकमासकों तुच्छ न्यायाम्भोनिधिजी ठहराते हैं सो तो निःकेवल श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातनाका कारण करते है क्योंकि श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंने अधिकमासको उत्तम माना है (इसका अधिकार इसी ही पुस्तकमें अनेक जगह वारम्वार छपगया है और आगे भी छपेगा) इस लिये अधिकमासकों तुच्छ न्यायाम्भोनिधिजी को लिखना उचित नही था सो भी पाठकवर्ग विचार लो ;—

और आगे फिर भी जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ९३ की प्रथम पंक्तिसें १२ वी पंक्ति तक ऐसे लिखा है कि (हे परीक्षक और भी युक्तियां आपको दिखाते है कि यह जगतके लोक भी बारामासमें जिस जिस मासके साथ प्रतिवद्धकार्य्य होते है सो तिस तिस मासमें अधिक मासको छोड़के अवश्य ही करते है जैसे कि आसोज मास प्रतिबद्ध दीवालीपर्व अधिक मासको छोड़के आसोज मासमें ही करते है और आम्बलकी ओली छ मासके अन्तरमें करनेकी भी अधिक मासको छोड़के आसोज मासमें और चैत्रमासमें करते है ऐसे अनेक लौकिक कार्य्य भी अपने माने मासमें ही करते है परन्तु आगे पीछे कोई भी नही करते है तो है मित्र भाद्रवमास प्रतिबद्ध ऐसा परम पर्युषणा

पर्व और मासमें करना यह सिद्धान्तसें भी और लौकिक रीतिसें भी विरुद्ध है) यह न्यायाम्भोनिधिजी का उपरोक्त अपनी पुस्तकके पृष्ठ ९३ की पंक्ति १२ वी तकका लेख है;—

इस उपरके लेखकी विशेष समीक्षा खुलासाके साथ लौकिक और लोकोत्तर दूष्टान्त सहित युक्ति पूर्वक पांचवें महाशय न्यायरत्नजी श्रीशान्तिविजयजीके नामसें और सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामसें करनेमें आवेगा तथापि संक्षिप्तसें इस जगह भी करके दिखाता हुं जिसमें प्रथमतो अधिक मासको निषेध करने के लिये न्यायाम्भो-निधिजी तथा इन्होंके परिवारवाले और इन्होंके पक्षधारी एक दो छोड़के हजारों कुयुक्तियां करके बालदृष्टि रागियों को दिखाकर अपने दिलमें खुसी माने परन्तु जैन शास्त्रोंकी स्याद्वादशैलीके जानकार आत्मार्थी विद्वान् पुरुषोंके आगे एक भी कुयुक्ति नही चल सकती है किन्तु कुयुक्तियांके करने वाले उत्सूत्र भाषणका दूषणके अधिकारी तो अवश्यही होते हैं इस लिये उपरके लेखमें न्यायांभोनिधिजीनें युक्तियां के नामसें वास्तविकमें कुयुक्तियां दिखा करके अधिक मासको गिनतीमें निषेध करना चाहा सो कदापि नही हो सकता है क्योंकि दीवाली (दीपोत्सव) और ओलियां यह दोनु कार्य्य जैन शास्त्रोंमें लोकोत्तर पर्वमे माने हैं सो प्रसिद्ध है तथापि न्यायांभोनिधिजी ओलियांकों लौकिक पर्व लिखते कुछ भी मिथ्या भाषणका भय न किया मालुम होता है, और दीवाली शास्त्रकारोंने कार्त्तिक मास प्रतिबद्ध कही है सो जगत् प्रसिद्ध है और मारवाड़ पूर्व पञ्जाबादि देशोंके जैनी अच्छी तरहसें जानते हैं और खास न्यायांभोनिधिजी

पञ्जाब देशके होते भी और अनेक शास्त्रोंमें कार्त्तिकमासका खुलासासें लिखा होते भी भोले जीवोंके आगे अपनी बात जमानेके लिये अपने देशकी और शास्त्रकी बातको छोड़कर अनेक शास्त्रोंका पाठ भी छोड़ते हुए, गुजराती भाषाका प्रमाण लेकरके आसोज मास प्रतिबद्धा दीवाली लिखते हैं सो भी विचारने योग्य बात है और अधिक मास होनेसें अवश्य करके सातमें मासे ओलियां करनेमें आती हैं तथापि न्यायांभोनिधिजीने अधिक मास होते भी छ मासके अन्तर में लिखा हैं सो मिथ्या है और जैन शास्त्रोंमें तथा लौकिक में जो जो मास तिथि नियत पर्व है सो अधिक मास होने से प्रथम मासका प्रथम पक्षमें और दूसरे मासका दूसरा पक्षमें करनेमें आते हैं इस बातका विशेष निर्णय शङ्का समाधान सहित उपरोक्त पांचमें और सातमें महाशयके नामकी समीक्षामें आगे देखके सत्यासत्यका पाठक वर्ग स्वयं विचार करलेना ;—

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीने लिखा है कि (हे मित्र भाद्रव मास प्रतिबद्ध ऐसा परम पर्युषणापर्व और मासमें करना यह सिद्धान्तसें भी और लौकिक रीतिसें भी विरुद्ध है) इस लेखसें न्यायांभोनिधिजी दो श्रावण होते भी भाद्रव मास प्रतिबद्ध पर्युषणा ठहरा करके दो श्रावण होनेसें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालोंको सिद्धान्त सें और लौकिक रीतिसें भी विरुद्ध ठहराते हैं सो निःकेवल आपही उत्सूत्र भाषण करते हैं क्योंकि दो श्रावण होनेसें श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके अनेक पूर्वाचार्य्योंने दूसरे श्रावणमें पर्युषणापर्व करनेका अनेक

शास्त्रोंमें कहा है और प्राचीन कालमें भी मासवृद्धि होने सें श्रावण मास प्रतिबद्ध पर्युषणा थी इसलिये मासवृद्धि दो श्रावण होते भी भाद्रव मास प्रतिबद्ध पर्युषणा ठहराना शास्त्रविरुद्ध है और दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालोंको सिद्धान्तसें और लौकिक रीतिसें विरुद्ध ठहराना सो भी प्रत्यक्ष मिथ्या भाषण कारक हैं इसका उपरमें अनेक जगह विस्तारसें छपगया है और आगे विशेष विस्तार सातमें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें करनेमें आवेगा ;—

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीनें पर्युषणा सम्बन्धी अपना लेख पूर्ण करते अन्तमें पृष्ठ ९३ पंक्ति१३ सें पंक्ति १९ तक ऐसे लिखा है कि [पूर्वपक्ष पृष्ठ १५७ में लिखे हुए पाठका कुछ भी समाधान न किया—

उत्तर—हे परीक्षक अधिक मासको जब कालचूला मान लिया तो शास्त्रके लिखे हुए ५० दिन भी सिद्ध होगये और ७० दिन भी सिद्ध होगये तो फिर काहेको अपने अपने मासमें नियत धर्मकार्य्य छोड़के और और कल्पना करके आग्रह करना चाहिये] यह उपरका लेख न्यायांभोनिधि जीका शास्त्रोंके विरुद्ध और मायावृत्तिका भोले जीवोंकों भ्रमानेके वास्ते है क्योंकि प्रथम तो शुद्धसमाचारीके पृष्ठ १५७ में श्रीकल्पसूत्रका मूल (सवीसइ राइमासे इत्यादि) पाठ लिखा है और दूसरा श्रीवृहत्कल्पचूर्णिका पाठसें प्राचीन-कालकी अपेक्षायें पांच पांच दिनकी वृद्धि करते दशवें पञ्चक में पचास दिने पर्युषणा दिखाई है और उसी श्रीवृह त्कल्पकी चूर्णिमें अधिक मासको निश्चयके साथ अवश्य गिनतीमें लेना कहा है जिसका पाठ आगे छठे महाशय

श्रीवल्लभविजयजीके नामकी समीक्षामें लिखनेमें आवेगा, इसलिये शुद्ध समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ १५७ का पाठ सम्बन्धी पूर्वपक्ष उठाकर उसीका उत्तरमें अधिक मासकी गिनती निषेध करना सो तो प्रत्यक्ष न्यायाम्भोनिधिजीका शास्त्र विरुद्ध उत्सूत्र भाषण रूप है ;—

और दूसरा यह भी सुन लीजीये कि–श्रीनिशीथ चूर्णि कार श्रीजिनदास महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर महाराजने और श्रीदशवैकालिक सूत्रके प्रथम चूलिकाकी वृहद्वृत्तिकार सुप्रसिद्ध श्रीमान् हरिभद्र सूरिजी महाराजनें अधिकमासको कालचूलाकी उत्तम ओपमा गिनती करने योग्य लिखी है तथापि इन महाराजके विरुद्धार्थमें न्यायाम्भोनिधिजी इतने विद्वान् होते भी अधिक मासको कालचूला मानते भी निषेध करते है सो बड़ी ही विचारने योग्य आश्चर्य्य की बात है ;—

और दो श्रावण होनेसें भाद्रपदतक ८० दिन होते है तथा दो आश्विन होनेसें कार्त्तिक तक १०० दिन होते है तथापि ८० दिनके ५० दिन और १०० दिनके ७० दिन न्यायाम्भोनिधिजीनें अपनी कल्पनासें कालचूलाके बहाने बनाये सो कदापि नही बन सकते है इसका विस्तार तीनों महाशयों की और खास न्यायाम्भोनिधिजीकी भी समीक्षा में अच्छी तरहसें उपरमें छप गया है सो पढ़के सर्वनिर्णय कर लेनाः—और दो श्रावण मास होनेसें दूसरे श्रावण मास प्रतिबद्ध पर्युषणा पर्व है इसलिये दो श्रावण होते भी भाद्रव मासकी भ्रान्ति करना शास्त्र विरुद्ध है और अब न्याया-म्भोनिधिजीके नामकी पर्युषणा सम्बन्धी समीक्षाके अन्तमें

श्रीजिनाज्ञाके आराधक सत्यग्राही सज्जन पुरुषोंसें मेरा यही कहना है कि जैसे पूर्वोक्त तीनों महाशयोंने अपने विद्वत्ताकी कल्पित बात जमानेके लिये पूर्वापर विरोधी तथा उटपटाङ्ग और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध और अनेक शास्त्रोंके पाठोंको उत्थापन करके अपना अनन्त संसार वृद्धिका भय नही किया तैसें ही चौथे महाशय न्यायाम्भोनिधिजीनें भी तीनों महाशयोंका अनुकरण करके पूर्वापर विरोधी तथा उटपटाङ्ग और श्रीतीर्थङ्कर-गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषण करनेमें कुछ भी भय नही किया परन्तु मैंने भी भव्यजीवोंके शुद्ध श्रद्धा होनेके उपगारकी बुद्धिसें शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक सत्य बातोंका देखाव करके कल्पित बातोंकी समीक्षाकर दिखाई है उसीको पढ़के सत्य बातका ग्रहण और असत्य बातका त्याग करके अपनी आत्माका कल्याण करने में उद्यम करेंगे और दृष्टिरागका पक्षपातकों न रखेंगे यही मेरा पाठक वर्गको कहना है ;—

और न्यायाम्भोनिधिजीके लेख पर अनेक पुरुष संपूर्ण रीतिसें पूरा भरोसा रखतेथे कि न्यायाम्भोनिधिजी जो लिखेंगे सो शास्त्रानुसार सत्यही लिखेंगे ऐसा मान्यकरके उन्होंसें पूज्यभाव बहोत पुरुषोंका है। और मेरा भी था परन्तु शास्त्रोंका तात्पर्य्य देखनेसें जो जो न्यायांभोनिधिजीनें महान् उत्सूत्र भाषणरूप अनर्थ किया सो सो सब प्रगट होगया जिसका नमुनारूप पर्युषणा सम्बन्धी न्यायाम्भो-निधिजीनें कितनी जगह प्रत्यक्ष मिथ्या और उत्सूत्र भाषण किया है सो तो उपरकी मेरी लिखी हुई समीक्षा पढ़नेसें

पाठकवर्गकों प्रत्यक्ष दिख जावेंगा तथा और भी न्यायाम्भोनिधिजीनें जैनसिद्धान्तसमाचारी नामकी पुस्तकमें अनुमान १५० अथवा १६० शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें अनेक जगह प्रत्यक्ष मिथ्या तथा अनेक जगह मायावृत्तिरूप और अनेक जगह शास्त्रोंके आगे पीछेके पाठ छोड़के अधूरे अधूरे तथा शास्त्रकारके अभिप्रायके विरुद्ध अनेक जगह अन्याय कारक और अनेक सत्यबातोंका निषेध करके अपनी कल्पित बातोंका उत्सूत्र भाषणरूप स्थापन इत्यादि महान् अनर्थ करके भोले दृष्टिरागी गच्छ कदाग्रही बालजीवोंकों श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाका मोक्षरूपी रस्तापरसें गेरके संसाररूपी मिथ्यात्वका रस्तामें फसानेके लिये जैन सिद्धान्त समाचारी, पुस्तकका नाम रखके वास्तविकमें अनन्त संसारकी वृद्धिकारक मिथ्यात्वरूप पाखण्डकी समाचारी न्यायाम्भोनिधिजीनें प्रगट करके अपनी आत्माकों इस संसाररूपी समुद्रमें क्या क्या इनामके योग्य ठहराई होगी तथा अब इन्होंके परिवार वाले और इन्होंके पक्षधारी भी उसी मुजब वर्तते है जिन्होंकों इस संसारमें क्या इनाम प्राप्त होगा सो श्रीज्ञानीजी महाराज जानें ;—इस लिये श्रीसङ्घकों और न्यायाम्भोनिधिजीके पक्षधारी तथा इन्होंके परिवार वालोंको उपर की पुस्तक सम्बन्धी बातोंके लिये मेरा अभिप्राय इस पुस्तकके अन्तमें विनती पूर्वक जाहिर करनेमें आवेगा और पांचवें महाशय न्यायरत्नजी श्रीशान्तिविजयजी तथा छठे महाशय श्रीवल्लभविजयजी और सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षा में प्रसङ्गोपात थोड़ी थोड़ी बातोंका उपर की पस्तक सम्बन्धी दर्शाव भी करनेमें आवेगा ;—

इति चौथें महाशय न्यायाम्भोनिधिजी श्रीआत्मारामजीके नामकी पर्युषणा सम्बन्धी संक्षिप्त समीक्षा समाप्तः॥

अब आगे पांचवें महाशय न्यायरत्नजी श्रीशान्तिविजयजीनें मानवधर्मसंहिता नामा पुस्तकमें जो पर्युषणा सम्बन्धी लेख अधिक मासको निषेध करनेके लिये लिखा है उसकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हुं जिसमें प्रथमतो मानवधर्मसंहिता पुस्तकके पृष्ठ ८०० की पंक्ति १७ वीं सें पृष्ठ ८०१ की पंक्ति २१॥ तक जैसा न्यायरत्नजीका लेख है वैसाही नीचे मुजब जानो ;—

[दो श्रावण होतो भी भादवेमें ही पर्युषणापर्व करना चाहिये, अगर कहा जाय कि—आषाढ़सुदी १४ चतुर्दशीसें ५० रोज लेना कहा यह कैसे सबुत रहेगा ? जबाब—कल्पसूत्रकी टीकामें पाठ है कि—अधिकमास कालपुरुषकी चूलिका यानी चोटी है, जैसे किसी पुरुषका शरीर उचाईमें नापा जाय तो चोटीकी लंबाई नापी नही जाती, इसी तरह कालपुरुषकी चोटी जो अधिकमास कहा सो गिनतीमें नही लिया जाता, कल्पसूत्रकी टीकाका पाठ कालचूलेत्यविवक्षणाद्दिनानां पञ्चाशदेव,—अगर लिया जाता हो तो पर्युषणा पर्व—दूसरे वर्ष श्रावणमें और इस तरह अधिक महिनोंके हिसाबसें हमेशां उक्त पर्व फिरते हुवे चले जायगें, जैसे मुसलमानोंके ताजिये—हर अधिक मासमें बदलते रहते हैं, दूसरा यह भी दूषण आयगा कि—वर्षभरमें जो तीन चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किये जाते हैं उनमें पञ्चमासिक प्रतिक्रमणपाठ बोलना पड़ेगा, शीतकालमें और उष्णकालमें तो अधिक महिना गिनतीमें नही लाना और चौमासेमें गिनतीमें लाकर श्रावणमें पर्युषणा करना किस न्यायकी बात हुई ? अगर कहा जाय कि—पचास दिनकी गिनती

लिइ जाती है तो पिछले ७० दिनकी जगह १०० दिन हो जायगें, उधर दोष आयगा, संवत्सरीके पीछें ७० दिन शेष रखना—यह बात समवायाङ्गसूत्रमें लिखी है—उसका पाठ—वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कंते सत्तरिराइंदिएहिं सेसेहिं, इसलिये वही प्रमाण वाक्य रहेगा कि—अधिकमास कालपुरुषकी चोटी होनेसें गिनतीमें नही लेना, अधिक महिनेकों गिनतीमें लेनेसें तीसरा यह भी दोष आयगा कि—चौईस तीर्थङ्करोंके कल्याणिक जो जिस जिस महिनेकी तिथिमें आते हैं गिनतीमें वे भी वढ़ जायगें, फिर क्या! तीर्थङ्करोंके कल्याणिक १२० से भी ज्यादे गिनना होगा? कभी नही, इस हेतुसें भी अधिकमास नही गिना जाता अधिक महिनेके कारणसें कभी दो भादवे हो तो दूसरे भादवेमें पर्युषणा करना चाहिये जैसें दो आषाढ़महिने होते हैं तब भी दूसरे आषाढ़में चातुर्मासिककृत्य किये जाते हैं वैसे पर्युषणा भी दूसरे भादवेमें करना न्याययुक्त है।]

अब न्यायरत्नजीके उपरका लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हुं जिसमें प्रथमतो (दो श्रावण हो तो भी भाद्रवेंमेंही पर्युषणापर्व करना चाहिये) यह लिखना न्यायरत्नजीका शास्त्रोंसें विरुद्ध है क्योंकि खास न्यायरत्नजी-केही परमपूज्य श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्य्योंनें दो श्रावण होने सें दूसरे श्रावणमें पर्युषणापर्व करनेका कहा है जिसका अधि-कार उपरमें अनेक जगह और खास करके चारों महाशयोंके नामकी समीक्षामें अच्छी तरहसें छपगया है इसलिये दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें अपने पूर्वजोंके विरुद्धार्थमें पर्यु-षणापर्व स्थापन करना न्यायरत्नजीको उचित नही है।

और दूसरा यह है कि श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महान् उत्तम पुरुषोंने सूत्र, चूर्णि, भाष्य, वृत्ति, निर्युक्ति, प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें मासवृद्धिके अभावसें भाद्रपदमें पचास दिने पर्युषणा करनी कही है परन्तु एकावन ५१ में दिने श्रीजिनाज्ञाके आराधक पुरुषोंकों पर्युषणा करना नही कल्पे और एकावन दिने पर्युषणा करने वालोंकों श्री जिनाज्ञाके लोपी कहे है सो प्रसिद्ध है तथापि न्यायरत्नजी इतने विद्वान् हो करके भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके वचनकों प्रमाण न करते हुए अनेक सूत्र, चूर्ण्यादि शास्त्रोंके पाठोंको उत्थापते हुए मासवृद्धि दो श्रावण होसे भी ८० दिने भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करनेका लिखते कुछ भी उत्सूत्र भाषणका भय नही करते हैं यह बड़ाही अफसोस है;—

और दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेसें प्रत्यक्ष ८० दिन होते हैं तथा अधिकमास भी शास्त्रानुसार और न्याययुक्ति सहित अवश्य निश्चय करके गिनतीमें सर्वथा सिद्ध है सो उपरमें अनेक जगह छपगया है इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध करना भी उत्सूत्र भाषणरूप अन्याय कारक है तथापि न्यायरत्नजीनें उत्सूत्र भाषणका विचार न करते अधिक मासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये जो जो विकल्प करके शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें भोले जीवोंकी श्रद्धाभङ्ग होनेके लिये लिखा है उसीकी समीक्षा करता हुं—जिसमें प्रथमतो दो श्रावण होनेसें भाद्रपद तक ८० दिन होते हैं जिसका अपनी कल्पनासें ५० दिन बनानेके लिये न्यायरत्नजी लिखते है कि—

[कल्पसूत्रकी टीकामें पाठ है कि अधिकमास काल-

पुरुषकी चूलिका यानी चोटी है जैसे किसी पुरुषका शरीर उचाईसें नापा जाय तो चोटीकी लंबाई नापी नही जाती है इसी तरह कालपुरुषकी चोटी जो अधिकमास कहा सो गिनतीसें नही लिया जाता कल्पसूत्रकी टीकाका पाठ—कालचूलेत्यविवक्षणाद्दिनानां पञ्चाशदेव]

इस उपरके लेखमें न्यायरत्नजीनें अधिकमासको कालपुरुषकी चोटी लिखकर गिनतीमें नही लेनेका ठहराया है सो निःकेवल श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप है क्योंकि श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंनें अधिक मासको दिनोंमें पक्षोंमें मासोंमें वर्षोंमें अनादिकाल हुवा निश्चय करके गिनतीमें लिया है आगे लेवेंगे और वर्त्तमान कालमें भी श्रीसीमंधर स्वामीजी आदि तीर्थङ्कर गणधरादि महाराज महाविदेह क्षेत्रमें अधिक मासको गिनतीमें लेते हैं तैसेही इस पञ्चमें कालमें भरत क्षेत्रमें भी अनेक आत्मार्थी पुरुष अनेक शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक देशकालानुसार अधिक मासको अवश्यही गिनतीमें लेते हैं इस बातका अनेक जगह उपरमें अधिकार छपगया है और आगे भी छपेगा इसलिये अधिकमासकों गिनतीमें नही लेनेका ठहराना न्यायरत्नजीका उत्सूत्र भाषणरूप होनेसें प्रमाणिक नही हो सकता है।

और न्यायरत्नजी अधिक मासको कालपुरुषकी चूलिका कहकर चोटी अर्थात् घासकी तरह केशांकी चोटीवत् लिखते हैं सो भी शास्त्रोंके विरुद्ध है क्योंकि श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंनें चूलिका याने शिखरकी ओपमा गिनती करने योग्य दिवी है। जैसे। लक्ष योजनका सुमेरु

पर्वतके चालीश योजनका शिखरको तथा अन्य भी हरेक पर्वतोंके शिखरों कों और देव मन्दिरोंके शिखरोंको शास्त्रकारोंने क्षेत्रचूलाकी ओपमा दिवी है नतु केशांकी चोटीवत् घासकी, और श्रीपञ्चपरमेष्ठि मन्त्रके शिखररूप चार पदोंको तथा श्रीआचाराङ्गजी सूत्रके शिखररूप दो अध्ययनकों और श्रीदशवैकालिकजी सूत्रके शिखर-रूप दो अध्ययनकों शास्त्रकारोंनें भावचूलाकी ओपमा दिवी है जिसकी अवश्यही गिनती करनेमें आती हैं। तैसेही। चन्द्रसंवत्सररूप कालपुरुषके शिखररूप अधिक मासकों कालचूलाकी उत्तम ओपमा गिनती करने योग शास्त्रकारोंनें दिवी है और अधिक मास होनेसें तेरह मासोंका अभिवर्द्धितसंवत्सर श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंनें कहा है सो अनेक शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है और खास करके अधिक मासको कालचूलाकी उत्तम ओपमा लिखने वाले श्रीजिनदास महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर महाराज भी निश्चय करके गिनतीमें लेनेका लिखते हैं, और भी दूसरा सुनों कि-जैसे। श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके निज निज अंगुलियोंके प्रमाणसें मस्तक तक शरीरकी लंबाई १०८ अंगुलीकी होती है और मस्तक पर बारह अंगुलीकी उष्णिका (शिखा) कों शिखररूप चूलाकी ओपमा है जिसकों सामिल लेकर १२० अंगुलीका श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके शरीरके गिनतीका प्रमाण सबी शास्त्रकारोंने कहा है। तैसेही। संवत्सररूप कालपुरुष का निज स्वभाविक प्रमाण ३५४ दिन, ११ घटीका और ३६ पलका है तथा संवत्सररूप कालपुरुषका शिखररूप अधिक मासको कालचूलाकी ओपमा है जिसका प्रमाण २९ दिन

३० घटीका और ५८ पलका है जिसको सामिल लेकर ३८३ दिन ४२ घटीका और ३४ पल प्रमाणे तेरह मासोंकी गिनती का हिसाबसें अभिवर्द्धित संवत्सर सबी शास्त्रकारोंनें और खास श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्य्योंनें भी कहा है। और अधिक मासको कालचूला कहनेसें भी गिनतीमें अवश्यही लेना शास्त्रकारोंने कहा है उस सम्बन्धी इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ४८ से ६५ तक तथा और भी अनेक जगह छपगया है सो पढ़नेसें सर्व निःसन्देह हो जावेगा इसलिये न्यायरत्नजी अधिक मासको कालपुरुषकी चोटी लिखकरके गिनतीमें नही लेनेका ठहराते हैं सो वृथा अपनी कल्पनासें भोले जीवोंकी शास्त्रानुसार सत्य बात परसें श्रद्धाभङ्ग कारक उत्सूत्र भाषण करते हैं सो उपरके लेखसें पाठकवर्ग विशेष अपनी बुद्धिसें भी विचार सकते हैं ;—

और श्रीकल्पसूत्रकी टीकाका प्रमाण न्यायरत्नजीनें दिखाया सो तो (अंधेचुये धोयेधान, जैसेगुरु तैसेयजमान) की तरह करके अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषणरूप अन्ध परम्पराका मिथ्यात्वको पुष्ट किया है क्योंकि प्रथम श्रीधर्मसागरजीनें श्रीकल्पकिरणावलीमें श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें अपनी कल्पनासें जैन शास्त्रोंके अतीव गम्भीरार्थके तात्पर्य्यकों समझे बिना उत्सूत्र भाषणरूप जैसे तैसे लिखा है उसीकों देखके दूसरे श्रीजय-विजयजीने श्रीकल्पदीपिकामें तथा तीसरे श्रीविनयविजय जीनें श्रीसुखबोधिकामें भी उसी तरहके उत्सूत्र भाषणके गप्पोंको लिखे हैं और उसीका शरणा लेकरके चौथे न्यायांभो निधिजीनें भी जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकमें अपनी

चातुराईके साथ उत्सूत्र भाषणकी बाते प्रगट किवी है और ऐसेही गाडरीया प्रवाहवत् उसी बातोंकों वर्त्तमानमें न्यायरत्नजी जैसे भी लिखते हैं परन्तु तत्त्वार्थको जरा भी नही विचारते हैं क्योंकि श्रीविनयविजयजी वगैरह चारो महाशयोंने कालचूलाके नामसें अधिक मासकों गिनतीमें नही लेनेका शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमे ठहराया है जिसकी समीक्षा अच्छी तरहसें इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ५८सें यावत् पृष्ठ २१६ तक उपरमें छप चुकी है सो पढ़नेसें सर्व निर्णय हो जावेगा तथापि श्रीविनयविजयजी कृत श्रीसुख-बोधिकाके अनुसार अपनी अपनी चातुराइसें विशेष कुयुक्तियांके विकल्प उठा करके भोले जीवोंकों भ्रममें गेरनेके लिये न्यायरत्नजी वगैरहने वृथा परिश्रम किया है उन कुयुक्तियांका समाधान युक्तिपूर्वक लिखना यहां सरू है जिसमें न्यायरत्नजीनें श्रीकल्पसूत्रकी टीकाका पाठ श्री-विनयविजयजी कृत दिखाया सो उत्सूत्र भाषणरूप होनेसें मैंनें उसीकी समीक्षा तो पहिलेही कर दिखाई है इसलिये श्रीविनयविजयजीकृत उत्सूत्र भाषण रूप उपरके पाठकों न्यायरत्नजीको लिखना भी उचित नही है और पक्ष-ग्राहियोंके सिवाय आत्मार्थी पुरुषोंकों मान्य करना भी उचित नही है याने सर्वथा त्यागने योग्य है सो उपरके लेखसें पाठकवर्ग भी अच्छी तरहसें विचार लेना ;—

और आगे फिर भी अधिक मासको गिनतीमें नही लेनेके लिये न्यायरत्नजीनें अपनी चातुराईको प्रगट करके लिख दिखाई है कि (अगर लिया जाता हो तो पर्युषणा पर्व दूसरे वर्ष श्रावणमें और इस तरह अधिक महिनोंके

हिसाबसें हमेशां उक्त पर्व फिरते हुवे चले जायगें जैसे मुसल्मानोंके ताजिये हर अधिकमासमें बदलते रहते हैं) न्यायरत्नजीका इस लेखपर मेरेको बड़ाही आश्चर्य्य सहित खेद उत्पन्न होता है और न्यायरत्नजीकी बड़ीही अज्ञता प्रगट दिखती है सोही दिखाता हुं—जिसमें प्रथम तो आश्चर्य्य उत्पन्न होनेका तो यह कारण है कि स्याद्वाद, अनेकांत, अविसंवादी, अनन्तगुणी, परमोत्तम ऐसे श्रीसर्वज्ञ भगवान् श्रीजिनेन्द्र महाराजोंके कथन करे हुवे अत्युत्तम अहिंसा धर्मके वृद्धिकारक ऊर्द्ध गतिका रस्तारूप धर्मध्यान, दानपुण्य परोपकारादि उत्तमोत्तम शुभकार्य्योंका निधि शान्त चित्तको करने वाले और पापपङ्क (कर्मरूप मेल) को नष्टकरने वाले श्रीपर्युषणा पर्वके साथ उपरोक्त गुणोसें प्रतिकुल मिथ्यात्वी और चितविटंबक पाखंडरूप अधर्मकी वृद्धिकारक तथा छ (६) कायके जीवोंका विनाश कारक नरकादि अधोगतिका रस्तारूप आर्त्तरौद्रादि युक्त ताजियांका दृष्टान्त न्यायरत्नजीनें दिखाया इसलिये मेरेकों आश्चर्य्य उत्पन्न हुवा कि जो न्यायरत्नजीके अन्तःकरणमें सम्यक्त्व होता तो चिन्तामणिरत्नरूप श्रीपर्युषणापर्वके साथ काचका टुकड़ारूप ताजियांका दृष्टान्त लिखके अपनी कल्पित बातको जमानेके लिये अधिक मासका निषेध कदापि नही दिखाते इस बातकों पाठकवर्ग भी विचार लेना ;—

और बड़ा खेद उत्पन्न होनेका तो कारण यह है कि श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्योंने और खास न्यायरत्नजीके पूज्य अपने श्रीतपगच्छके ही पूर्वा-

चार्य्योंने अनेक शास्त्रोंमें अधिकमासको सर्वथा करके परिपूर्ण रीतिसें विस्तारपूर्वक खुलासाके साथ निश्चय करके अवश्यही गिनतीसें लिया है, जिसमें श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति १ तथा वृत्ति २ श्रीसूर्य्यप्रज्ञप्ति ३ तथा वृत्ति ४ श्रीज्योतिषकरण्ड पयन्ना ५ तथा वृत्ति ६ श्रीप्रवचनसारोद्धार ७ तथा वृत्ति ८ श्रीसमवायाङ्गजीसूत्र ९ तथा वृत्ति १० श्रीजम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति ११ तथा तीनकी दो (२) वृत्ति १३ इत्यादि अनेक शास्त्रोंके पाठ न्यायरत्नजीनें देखे है जिसमें अधिक मासको गिनतीसें लिया है जिसमें भी श्रीज्योतिषकरण्डपयन्नाकी वृत्ति तो न्यायरत्नजीनें एकवार नही किन्तु अनेकवार देखी है उसी में तो विशेष करके समयादि कालकी व्याख्या किवी है कि असंख्याता समय जानेसें एक आवलिका, १, ६७, ७७, २१६, आवलिका जानेसें एकमुहूर्त होता है त्रीश मुहूर्त्तसें एक अहोरात्रि रूप दिवस होता है ऐसे पन्दरह दिवस जानेसें एकपक्ष होता है दो पक्षसें एकमास होता है दो माससें एक ऋतु होता है छ ऋतुयोंसें एक सम्वत्सर होता है इसी ही तरहसें नक्षत्र सम्वत्सरके, चन्द्रसम्वत्सरके, ऋतु सम्वत्सर के, सूर्य्यसम्वत्सरके, और अभिवर्द्धितसम्वत्सरके, मुहूर्त्तोंका जूदा जूदा हिसाब विस्तारपूर्वक दिखाकर पांच सम्वत्सरोंका एक युगके ५४९०० मुहूर्त्त दिखाये हैं जिसमें एक युगके पांच संवत्सरोमें दो अधिक मासके भी मुहूर्त्तोंकी गिनती साथमें लेनेसेंही ५४९०० मुहूर्त्तका हिसाब मिलता है अन्यथा नहीं इस तरहसें कालकी व्याख्या समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिन, पक्ष, मास, वर्ष, युग, पूर्वाङ्ग, पूर्व, पल्योपम, सागरोपम और उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी कालसें अनन्तकालकी

व्याख्याकी गिनतीमें अधिक मासको प्रमाण किया है और अधिक मासकी उत्पत्तिका कारण कार्य्यादि गिणित पूर्वक श्रीमलयगिरिजी महाराजने श्रीज्योतिषकरण्डपयन्नाकी वृत्तिमें विस्तार किया है इस ग्रन्थको न्यायरत्नजीनें अनेक वार देखा है और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि सर्वज्ञ महाराजोंनें अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण किया है सो अनेक शास्त्रोंके पाठ प्रसिद्ध है और खास न्यायरत्नजीनें मानवधर्म्मसंहिता पुस्तकके पृष्ठ २४ की पंक्ति २० वी सें २२॥ पंक्ति तक ऐसे लिखा है कि (उत्सूत्र भाषण समान कोई बड़ा पाप नही सब क्रियाधरी रहेगी उक्त पाप दुर्गतिको ले जायगा जमालिजीनें गौतमगणधर जैसी क्रिया किइ लेकिन देख लो किस गतिको जाना पड़ा) और पृष्ठ ५८ की पंक्ति १४–१५ में फिर भी लिखते हैं कि (सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रके पाठको उत्थापन करेगा उसका निर्वाण होना मुश्किल है) इस लेखपरसें सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि–श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि सर्वज्ञ महाराजोंनें अधिकमास को गिनतीमें प्रमाण किया हुवा है सो अनेक शास्त्रोंके पाठ प्रसिद्ध है तथापि पक्षपातके जोरसें न्यायरत्नजीनें अनन्ततीर्थङ्कर गणधरादि सर्वज्ञ भगवानोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषण करनेके लिये सर्वज्ञ प्रणीत अनेक शास्त्रोंके पाठोंको उत्थापन करके उत्सूत्र भाषणका बड़ा भारी पाप दुर्गतिको देनेवाला तथा संसारमें रुलानेवाला अपना लिखा हुवा उपरका लेखको भी सर्वथा भूल गये इसलिये मेरेकों बड़ा खेद उत्पन्न हुवा कि न्यायरत्नजी जानते हुए भी उत्सूत्र भाषणरूप

संसारकी खाड़में गिरे और अपनी आत्माका बचाव तो करना दूर रहा परन्तु भोले जीवोंको भी उसी रस्ते पहुचाये सो उपरके लेखसें पाठकवर्ग विशेष विचार लेना ;—

और अधिक मासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये न्यायरत्नजीनें मुसल्मानोंके ताजिये हरेक अधिक मासके हिसाबसें फिरनेका दृष्टान्त दिखाके सर्वज्ञकथित पर्युषणा पर्व भी अधिक मासके हिसाबसें फिरते रहनेका न्यायरत्न जीनें लिखा सो वड़ी अज्ञता प्रगट किवी है जिसका कारण यह है कि श्रीसर्वज्ञ भगवानोंनें मासवृद्धि हो अथवा न हो तो भी खास करके विशेष जीवदयादिककेही कारणे वर्षा ऋतुमें आषाढ़ चौमासीसें उपरके लिखे दिनोंके गिनतीकी मर्य्यादा [प्रमाण] सें निश्चय करके श्रावण अथवा भाद्रपद मेंही—कारण, कार्य्य, ऋतु, मास, तिथिका नियमसेंही श्रीपर्युषणापर्वका आराधन करना कहा है तथापि न्यायरत्नजी अधिक मासके हिसाबसें पर्युषणापर्व फिरते हुए चले जानेका लिखकर जैन शास्त्रोंके विरुद्धार्थसें आषाढ़, ज्यैष्ठ, वैशाखादिमें पर्युषणा होनेका दिखाते हैं इसलिये न्यायरत्नजीकी अज्ञतामें कुछ कम हो तो पाठकवर्ग तत्त्वार्थकी बुद्धिसें स्वयं विचार लेना ;—

तथा और भी न्यायरत्नजीके विद्वत्ताकी चातुराईका नमुना सुनिये—कि श्रीजैन शास्त्रोंमें पांच प्रकारके संवत्सरों सें एक युगका प्रमाण कहा हैं जिसमें सूर्य्यकी गतिका हिसाबसें सूर्य्यसंवत्सरकी अपेक्षासें जैनमें मासवृद्धिका अभाव हैं परन्तु चन्द्रकी गतिका हिसाबसें चन्द्रसंवत्सरकी अपेक्षासें एक युगकी पूरतीकेही लिये खास दो अधिकमास

होते हैं जब अधिकमास जिस संवत्सरमें होता है तब उस संवत्सरमें तेरह मास होनेसें संवत्सरका नाम भी अभिवर्द्धित कहा जाता है—अधिक मासको गिनतीमें लिया जिससे संवत्सरका भी प्रमाण वढ़ गया और युगकी पूरतीका भी बरोबर हिसाब मिलगया—अधिक मास अनादिकाल हुए होता रहता है तथा मासवृद्धि हो अथवा न हो तो भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने श्रीपर्युषणापर्वका आराधन वर्षा ऋतुसेंही करना कहा है यह बात आत्मार्थी विवेकी विद्वानोंसें छुपी हुई नही है याने प्रसिद्ध है, इसलिये श्रीपर्युषणापर्व अधिक मास हो तोभी वर्षा ऋतुके सिवाय और ऋतुयोंसें कदापि नही हो सकते हैं और मुसल्मान लोग तो सिर्फ एक चन्द्र दर्शनकी अपेक्षासें २९।३० दिनका महिना मान्यकरके बारह महिनोंके ३५५ दिनका एक वर्ष मानते है और अधिक मासका भिन्न व्यवहारको नही मानते हैं याने चन्द्रके हिसाबसें बारह बारह महिनोंका एक एक वर्ष मानते चले जाते हैं परन्तु अपने माने मास तारीख नियत ताजियें भी करते रहते हैं और जैन तथा दूसरे हिन्दू अधिक मासको मान्य करके तेरह मासोंका वर्ष मानते हैं तथा अपने माने मास, तिथि नियत पर्व भी करते है इसलिये जैन तथा दूसरे हिन्दूयोंके तो ऋतु, मास, तिथि नियत पर्व अधिक मास होतो भी फिरते हुए नही चले जाते है परन्तु मुसल्मान लोग अधिक मासको नही मानते हुए अनुक्रमे सीधा हिसाबसें ही वर्त्तते है इस लिये लौकिकसें अधिक मास होनेसें मुसल्मानोंके ताजिये अमुक ऋतुमें तथा अमुक लौकिक मासमें होते हैं यह

नियम नही रहता है याने हर अधिक मासके हिसाबसें पश्चादानुपूर्वीसें अर्थात् आषाढ़, ज्यैष्ठ, वैशाख, चैत्र, फाल्गुन, माघ, पौषादि हरेक मासोंमें होते है इसलिये मुसल्मानोंके ताजिये फिरनेका दृष्टान्त लिखके श्रीपर्युषणापर्व फिरनेका दिखाना सो पूरी अज्ञताका कारण है—इसलिये श्रीसर्वज्ञ कथित श्रीपर्युषणापर्व फिरनेका और अधिक मासको गिनतीमें निषेध करनेके संबन्धी मुसल्मानोंके ताजियांका दृष्टान्त उत्सूत्र भाषणरूप होनेसें न्यायरत्नजीको लिखना उचित नही है इस बातको सज्जन पुरुष उपरके लेखसें स्वयं विचार सकते है ;—

और आगे फिर भी न्यायरत्नजीनें अपनी कल्पनासें लिखा है कि (दूसरा यह भी दूषण अयगा कि वर्षभरमें जो तीन चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किये जाते है उसमें पञ्चमासिक प्रतिक्रमणका पाठ बोलना पड़ेगा शीतकालमें और उष्ण-कालमें तो अधिक महिना गिनतीमें नही लाना और चौमासेमें गिनतीमें लाकर श्रावणमें पर्युषणा करना किस न्याय की बात हुई) इस लेखसें न्यायरत्नजीनें जैनशास्त्रों का तथा अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करने वालोंका तात्पर्य्यको समझे बिना दूसरा दूषण लगाया सो मिथ्या-भाषण करके वड़ी भूल करी है क्योंकि जिस चौमासेमें अधिक मास होता है उसीको अभिवर्द्धित चौमासा कहा जाता है संवत्सरवत् अर्थात् जिस संवत्सरमें अधिक मास होता है उसीको अभिवर्द्धित संवत्सर कहते है इसी ही न्यायानुसार अधिक मास होवे तब उस चौमासेमें पञ्चमास तथा संवत्सरमें तेरह मासका पाठ सर्वत्र प्रतिक्रमणमें अवश्य

ही बोला जाता है इसका विशेष निर्णय सातमें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें करनेमें आवेगा ;—

और शीतकाल हो तथा उष्णकाल हो अथवा वर्षाकाल हो परन्तु लौकिक पञ्चाङ्गमें जो अधिकमास होगा उसी कालमें अवश्य ही गिनतीमें करके प्रमाण करना यह तो स्वयं सिद्ध न्याययुक्ति की बात है जैसे वर्षाकालमें श्रावण भाद्रपदादि मास वढ़नेसें गिनतीमें लिये जाते है तैसे ही शीतकालमें तथा उष्णकालमें भी जो मास वढ़े सो ही गिनाजाता है इस लिये न्यायरत्नजीनें उपरका लेखमें शीतकालमें और उष्णकालमें अधिक मासको गिनतीमें नही लानेका लिखती वख्त विवेक बुद्धिसें विचार किया होता तो मिथ्या भाषणका दूषण नही लगता सो पाठकवर्ग विचार लेना,—

और इसके अगाड़ी फिर भी न्यायरत्नजीनें अपनी विद्वत्ताकी चातुराई को प्रगट करनेके लिये लिखा है कि [अगर कहा जाय कि पचाशदिनकी गिनती लिइजाती है तो पिछले ७० दिनकी जगह १०० दिन होजायेगे उधर दोष आयगा संवत्सरीके बाद ७० दिन शेष रखना यह बात समवायाङ्ग सूत्रमें लिखी हैं उसका पाठ—वासाणं सवीसइराइ मासे वइक्कन्ते सत्तरिराइंदिएहिं सेसेहिं,—इस लिये वही प्रमाणवाक्य रहेगा कि अधिक मास कालपुरुषकी चोटी होनेसें गिनतीमें नही लेना] इस लेखपर मेरेको बड़े अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि न्यायरत्नजीकों विद्वत्ताकी चातुराई किस जगहमें चली गई होगी सो अपने नामके विद्यासागरादि विशेषणेको अनुचितरूप कार्य्यकरके उपरके

लेखमें दो श्रावण होनेसें भाद्रपद तक ८० दिन होते हैं जिसके ५० दिन बनालिये और दो आश्विन होनेसें कार्त्तिक तक १०० दिन होते हैं जिसके ७० दिन अपनी कल्पनासें बना लिये परन्तु श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके कथित सूत्र सिद्धान्तोंके पाठोंका उत्थापनरूप मिथ्यात्वका कुछ भी भय नही किया क्योंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अनेक सूत्र सिद्धान्तोंमें समयादि सूक्ष्मकालकी गिनतीसें एकयुगके दोनु ही अधिक मासको गिनतीमें लिये है इसका विस्तार उपरमें अनेक जगह छप गया हैं और षट्द्रव्यरूप वस्तुयोंमें एककाल द्रव्यरूप वस्तु भी शाश्वती है जिसके अनन्ते कालचक्र व्यतीत होगय है और आगे भी अनन्ते कालचक्र व्यतीत होवेंगे जिसमें चन्द्र, सूर्य्यके, शाश्वते विमान होनेसें चन्द्रके गतिका हिसाबसें अनन्ते अधिक मास भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके सामने व्यतीत होगये और आगे भी होवेंगे इस लिये सम्यक्त्वधारी मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी प्राणी होगा सो तो कालद्रव्यकी गिनतीके दो अधिक मास तो क्या परन्तु एक समय मात्र भी गिनती में कदापि निषेध नही कर सकता है तथापि न्यायरत्नजी जैनश्वेताम्बर धर्मोपदेष्टा तथा विद्यासागरका विशेषण धारण करते भी श्रीसर्वज्ञ कथित सिद्धान्तोंमें कालद्रव्य रूप शाश्वती वस्तुका एक समयमात्र भी निषेध नही हो सके जिसके बदले एक दम दो मासकी गिनती निषेध करके श्रीजैनश्वेताम्बरमें उत्सूत्र भाषणरूप मिथ्यात्वके उपदेष्टा होनेका कुछ भी भय नही करते है, हा अतीव खेदः,—इस लेखका तात्पर्य्य यह है कि जैन शास्त्रानुसार

एक समय मात्र भी जो काल व्यतीत हो जावे उसकी अवश्यही गिनती करनेमें आती है तो फिर दो अधिक मासको गिनतीमें लेने इसमें तो क्याही कहना याने दो अधिक मासकी निश्चय करके अवश्यही गिनती करना सोही सम्यक्त्व धारियोंको उचित है इसलिये दो अधिक मासकी गिनती निषेध करके ८० दिनके ५० दिन और १०० दिनके ७० दिन न्यायरत्नजीनें उत्सूत्र भाषणरूप अपनी कल्पनासें बनाये सो कदापि नही बन सकते है इसलिये दो श्रावण होनेसें अनेक शास्त्रानुसार पचास दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करना और पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन भी अनेक शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक रहते है जिसको मान्य करनेमें कोई दूषण नही हैं तथापि न्यायरत्नजीनें दूषण लगाया सो मिथ्या है इस उपरके लेखका विशेष विस्तार तीनों महाशयोंके नामकी समीक्षामें इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ११७ से पृष्ठ १२८ तक तथा चौथे महाशयके नामकी समीक्षामें भी पृष्ठ १७४ से पृष्ठ १८५ तक भी अच्छी तरहसें सूत्रकार श्री गणधर महाराजके तथा वृत्तिकार महाराजके अभिप्राय सहित युक्तिपूर्वक छप चुका है सो पढ़नेसे सर्व निर्णय हो जावेगा ;—

तथा थोड़ासा और भी सुन लिजीयें कि, श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें श्रीगणधर महाराजनें तथा वृत्तिकार महाराजनें अनेक जगह खुलासापूर्वक अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण किया है तथापि न्यायरत्नजी हो करके सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें अधिक मासकी गिनती निषेध करके मूलसूत्रके पाठोंको तथा वृत्तिके पाठोंको

उत्थापन करते है और चार मासके १२० दिनका वर्षाकाल सम्बन्धी उपरका पाठ श्रीगणधर महाराजनें कहा है तथापि इसका तात्पर्य्य समझे बिना दो श्रावण होनेसें पांच मासके १५० दिनका वर्षाकालमें उपरका पाठ सूत्रकार तथा वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें न्यायरत्नजी लिखते हैं इसलिये न्यायरत्नजीको श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठोंका तात्पर्य्य समझमें नही आया मालुम होता है तो फिर न्यायरत्न का और विद्यासागरका जो विशेषण श्रीशान्तिविजयजी ने धारण किया है सो कैसे सार्थक हो सकेगा सो पाठक वर्ग सज्जन पुरुष अपनी बुद्धिसें स्वयं विचार लेना ;—

और न्यायरत्नजी कालपुरुषकी चोटीकी भ्रान्तिसें अधिक मासको गिनतीमें निषेध करते हैं सो भी जैन शास्त्रोंके तात्पर्य्यको समझे बिना उत्सूत्र भाषण करते हैं इसका निर्णय इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ४८ सें ६५ तक तथा चारों महाशयोंके नामकी समीक्षामें और खास न्यायरत्नजीकेही नामकी समीक्षामें उपरमें पृष्ठ २२० । २२१ । २२२ तक अच्छी तरहसें खुलासाके साथ छप गया है सो पढ़नेसें सर्व निर्णय हो जावेगा कि शिखररूप चूलाकी उत्तम ओपमा गिनती करने योग्य दिनी है इसलिये चोटी कहके निषेध करनेवाले मिथ्यावादी हैं सो उपरोक्त लेख सें पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना ;—

और इसके अगाड़ी फिर भी न्यायरत्नजीनें लिखा है कि (अधिक महिनेको गिनतीमें लेनेसें तीसरा यह भी दोष आयगा कि चौइस तीर्थङ्करोंके कल्याणिक जो जिस जिस महिनेकी तिथिमें आते हैं गिनतीमें वे भी बढ़ जायगें

फिर क्या तीर्थङ्करोंके कल्याणिक १२० से भी ज्यादे गिनना होगा कभी नही इस हेतुसे भी अधिक मास नही गिना जाता) इस लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हुं जिसमें प्रथमतो उपरके लेखमें न्यायरत्नजीनें अधिकमासको गिनतीमें लेने वालोंको तीसरा दूषण लगाया इस पर तो मेरे कों इतनाही कहना उचित है कि न्यायरत्नजीनें श्री अनन्ततीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना करके खूब मिथ्यात्व वढ़ाया है क्योंकि श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गण-धरादि महाराज अधिक मासको गिनतीमें मान्य करते हैं सो अनेक सिद्धान्तोंमें प्रसिद्ध है और न्यायरत्नजी अधिक मासको गिनतीमें मान्य करने वालोंको दूषण लगाते हैं जिससें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी प्रत्यक्ष आशा-तना होती है इसलिये जो न्यायरत्नजीको श्रीतीर्थङ्कर गण-धरादि महाराजोंकी आशातनासें अनन्त संसार वृद्धिका भय लगता हो तो अधिक मासको गिनतीमें लेने वालोंकों दूषण लगाया जिसकी आलोचना लेकर अपनी आत्माको दुर्गतिसें बचाना चाहिये आगे न्यायरत्नजीकी जैसी इच्छा मेरा तो धर्मबन्धुकी प्रीतिसें लिखना उचित है सो लिख दिखाया है और अधिक मासको श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंनें गिनतीमें मान्य किया है उसीके अनुसार कालानुसार युक्तिपूर्वक वर्त्तमानमें भी अधिक मासको आत्मार्थी पुरुष मान्य करते हैं जिन्होंको एक भी दूषण नही लग सकता है परन्तु कल्पित दूषणोंकों लगाने वालों को तो उत्सूत्र भाषणरूप अनेक दूषणोंके अधिकारी होना पड़ता है सो आत्मार्थी विवेकी सज्जन पुरुष इन्ही पुस्तकके पढ़नेसे स्वयं विचार सकते हैं।

और अनन्ते कालचक्र हुए अधिक मास भी होता रहता है तैसेही अनन्त चौवीशी होगई जिसमें श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके कल्याणक भी होते रहते हैं परन्तु किसीने भी कल्याणक वढ़ जानेके भयसें अधिक मासकी गिनती निषेध नही करी है तथापि इस पञ्चमें कालके विद्यासागर न्याय-रत्नका विशेषण धरानेवाले श्रीशान्तिविजयजी इतने वड़े विद्वान् कहलाते भी जैन शास्त्रोंके गम्भीरार्थको समझे बिना कल्याणक वढ़ जानेके भयसें अधिक मासकी गिनती निषेध करते हैं यह भी एक अलौकिक आश्चर्य्यकी बात है क्योंकि जैन ज्योतिषशास्त्रानुसार मासवृद्धिके कारणसें जब दो पौष अथवा दो आषाढ़ होते थे तब उस समय कोई भव्य जीवोंको श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके कल्याणककी तपश्चर्य्यादि करनेका इरादा होता था तब पहिले श्री-ज्ञानीजी महाराजकों पूछके पीछे करते थे जिसमें दो मासके कारणसें कोई भगवान्का प्रथम माससें कल्याणक होया होवे उसी कल्याणकको प्रथम मासमें आराधन करते थे और कोई भगवान्का दूसरे मासमें कल्याणक होया होवे उसी कल्याणकको दूसरे मासमें आराधन करते थे जिससें जिन जिन भगवान् का जो जो कल्याणक मास वृद्धिके कारणसें प्रथम मासमें अथवा दूसरे माससें होया होवे उसीको उसी मुजब श्रीज्ञानीजी महाराजको पूछके आराधन करते थे, पक्षवत्, अर्थात् अमुक भगवान् का अमुक कल्याणक अमुक मासके प्रथम पक्षमें होया होवे उसीकों प्रथम पक्षमें आराधन करते थे और दूसरे पक्षमें होया होवे उसीको दूसरे पक्षमें आराधन करते थे उसी तरह

दो मासके कारणसें श्रीज्ञानीजी महाराजके कहने मुजब कल्याणक आराधन करनेमें आते थे और अधिक मासको गिनतीमें भी करनेमें आता था इसलिये अधिक मासकी गिनती करनेसें श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके कल्याणक गिनतीमें नही वढ़ सकते है और इस पञ्चमें कालमें भरत क्षेत्रमें श्रीज्ञानीजी महाराजका अभाव होनेसें और लौकिक पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी वृद्धि होनेके कारणसें प्रथम मासका प्रथम कृष्णपक्ष और दूसरे मासका दूसरा शुक्लपक्षमें मास तिथि नियत कल्याणकादि धर्मकार्य्य तथा लौकिक और लोकोत्तर पर्व करनेमें आते है जिसका युक्तिपूर्वक दृष्टान्त सहित सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें लिखनेमें आवेगा सो पढ़नेसें विशेष निर्णय हो जावेगा इस लिये न्यायरत्नजी कल्याणक वढ़ जानेके भयसें अधिक मासकी गिनती निषेध करते है सो जैन शास्त्रोंके विरुद्ध उत्सूत्र-भाषण करते है सो उपरके लेखसें पाठकवर्ग भी विशेष विचार सकते है ।

और इसके अगाड़ी फिर भी न्यायरत्नजीनें लिखा है कि (अधिक महिनोंके कारणसें कभी दो भादवे हो तो दूसरे भाद्रवेसें पर्युषणा करना चाहिये जैसे दो आषाढ़ महिने होते है तब भी दूसरे आषाढ़में चातुर्मासिक कृत्य किये जाते है वैसे पर्युषणा भी दूसरे भाद्रवेमें करना न्याययुक्त है)

उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हुं कि हे सज्जन पुरुषों उपरके लेखमें न्यायरत्नजीनें मासवृद्धि के कारणसें दो आषाढ़ और दो भाद्रपद लिखे जिससें अधिकमास गिनतीमें सिद्ध होगया फिर अधिक मासको

गिनतीमें लेनेवालोंको दूषण लगाना यह तो न्यायरत्नजीका हठवादसें प्रत्यक्ष अन्यायकारक है सो पाठकवर्ग भी विचार सकते है।

और भी दूसरा सुनो—खास न्यायरत्नजीनें संवत् १९६६ की सालका बयान याने शुभाशुभका फल संक्षिप्तसें जैनपत्र के साथमें जूदा हेण्डबिलमें प्रसिद्ध किया है उसीमें [इस वर्षमें श्रावण महिना दो है ऐसा लिखा है तथा अधिक मास के कारणसें दोनुं ही श्रावणकी गिनती सहित तेरह मासों के प्रमाणसें तेरह अमावस्या और तेरह पूर्णिमाकी सब घड़ियोंकी गिनती दिखाइ है और प्रथम श्रावण वदी ११ तथा १२ के दिन और दूसरे श्रावण वदी १० के दिन अच्छा योग्य बताया है और प्रथम श्रावण शुदीमें सप्त नाड़ीचक्रमें सूर्य्य और गुरु जलनाड़ी पर आनेका लिखा है और प्रथम श्रावण शुदी पञ्चमीके दिन सिंह राशि पर शुक्र आनेका लिखा है फिर दूसरे श्रावण शुक्लपक्षमें बुधका उदय होगा वहां दुनियाके लोग सुखी रहनेका लिखा है फिर प्रथम श्रावण वदी ४ बुधवार तक दुर्मति नामा संवत्सर रहनेका लिखा है बाद याने प्रथम श्रावण वदी पञ्चमी गुरुवारका दुन्दुभि नामका संवत्सर लगनेका लिखा है फिर दूसरे श्रावणमें मीन राशि पर शनि और मङ्गल वक्र होनेका लिखा है] इस तरहसें खुलासाके साथ न्यायरत्नजी अपने स्वहस्ते दोनुं श्रावण महिनोंको बरोबर लिखते है गिनतीमें लेते है छपाके प्रसिद्ध करते है (और दोनुं श्रावणके कारण सें तेरह मासोंके ३८३ दिनका वर्ष दुनियामें प्रसिद्ध है) इस पर निष्पक्षपाती आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंको न्याय दृष्टिसें

विचार करना चाहिये कि न्यायरत्नजी आप स्वयं दोनु श्रावण मासकी हकीकत जूदी जूदी लिखते है फिर गिनतीमें निषेध भी करते है यह तो ऐसे हुवा कि ममजननी वन्ध्या अथवा मम वदने जिह्वा नास्ति, इस तरहसें बाललीलावत् न्यायरत्नजी विद्याके सागर हो करके भी कर दिया हाय अफसोस,—

अब इस जगह मेरेको लाचार होकर लिखना पड़ता है कि न्यायरत्नीजीकी विद्वत्ताकी चातुराई किस देशके कोणेमें चली गई होगा सो पूर्वापरका विचार विवेक बुद्धिसें किये बिना श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करके तेरह मासोंका अभिवर्द्धित संवत्सर अनेक सिद्धान्तोंमें कहा है जिसके उत्थापनका भय न करते उलटा अधिक मासको गिनती करने वालोंको माया-वृत्तिसें मिथ्या दूषण लगादिये और फिर आपभी अधिक मासको प्रमाण करके लोगोंमे ज्योतिषशास्त्रके विद्वान् भी प्रसिद्ध होते है परन्तु अधिक मासको गिनतीमें करनेवालोंको मिथ्या दूषण लगानेका और पूर्वापर विरोधी विसंवादी रूप मिथ्या वाक्यके फल विपाकका जरा भी भय नही करते है इसलिये जैन शास्त्रानुसार तो दूसरोंको मिथ्या दूषण लगानेके और विसंवादी भाषणके कर्मबन्धकी आलोचनाके लिये बिना अथवा भावान्तरमें भोगे बिना छूटना बहुत मुश्किल है सो जैन शास्त्रोंका तात्पर्य्यके जानकार विवेकी पुरुष स्वयं विचार सकते है और न्यायरत्नजीको भी उत्सूत्र भाषणका भय हो तो न्याय दृष्टिसें तत्त्वार्थको अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ;—

तथा और भी न्यायरत्नजीको थोड़ासा मेरा यही कहना है कि अधिकमासको आप कालपुरुषकी चोटी जान कर गिनतीमें नही लेनेका ठहराते हो तब तो दो आषाढ़, दो श्रावण दो भादवेका लिखना आपका वृथा हो जावेगा और दो आषाढ़ादि मासोंको लिखते हो तथा उसी मुजब वर्तते हो तब तो कालपुरुषकी चोटी कहके अधिकमासको गिनतीमें निषेध करते हो सो आपका वृथा है और दो आषाढ़, दो श्रावण, दो भादवे लिखना सब धर्म और कर्मका व्यवहार भी दोनु मासका करना फिर गिनतीमें नही लेना यह तो कभी नही हो सकता है इसलिये दोनु मासका धर्म और कर्मका व्यवहारको मान्य करके दोनु मासको गिनतीमें लेना सो ही न्यायपूर्वक युक्तिकी बात है तथापि निषेध करना धर्मशास्त्रोंके और दुनियाके व्यवहारसे भी विरुद्ध है इस लिये इसका मिथ्या दुष्कृत ही देना आपको उचित है नही तो पूर्वापर विरोधी विसंवादी वाक्यका जो विपाक श्रीधर्मरत्नप्रकणकी वृत्तिमें कहा है सो पाठ इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ८६ । ८७ । ८८ में छपगया है उसीके अधिकारी होना पड़ेगा सो आप विद्वान् हो तो विचार लेना ;—

और दो आषाढ़ होनेसे दूसरे आषाढ़में चौमासी कृत्य किये जाते है जिसका मतलब न्यायरत्नजीके समझमें नहीं आया है सो इसका निर्णय सातमें महाशय श्रीधर्मविजयजी के नामकी समीक्षामें करनेमें आवेगा और दो भादवें होनेसें दूसरे भादवेंमें पर्युषणापर्व करना न्याय युक्त न्यायरत्नजी ठहराते है परन्तु शास्त्रसम्मत न्याय युक्त नही है क्योंकि

शास्त्रोंमें आषाढ़ चौमासीसें ५० दिने अवश्यही पर्युषणा करना कहा है और दो भादवें होनेसें दूसरे भादवेमें पर्यु-षणा करनेसें ८० दिन होते हैं जिससें दूसरे भादवेमें ८० दिने पर्युषणा करना और ठहराना शास्त्रोंके और युक्तिके विरुद्ध है इसलिये प्रथम भादवेमें ही ५० दिने पर्युषणा करना शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक न्याय सम्मत है इसका विशेष निर्णय तीनों महाशयोंके नामकी समीक्षामें इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १४० । १४१ । १४२ की आदि तक अच्छी तरहसें छप गया है उसीको पढ़नेसें सर्व निर्णय हो जावेगा ।

और फिर भी न्यायरत्नजीनें अपनी बनाई मानवधर्म संहिता पुस्तकके पृष्ठ ८०० की पंक्ति ४ सें १० तक तिथियाँ की हानी तथा वृद्धिके सम्बन्धमें और पृष्ठ ८०१ की पंक्ति २२॥ सें पृष्ठ ८०२ पंक्ति १० तक पर्युषणामें तिथियांकी हानी तथा वृद्धिके सम्बन्धमें शास्त्रोंके प्रमाण बिना अपनी मति कल्पनासें उत्सूत्र भाषणरूप लिखा है जिसकी समीक्षा आगे तिथि निर्णयका अधिकार सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें करनेंमें आवेगा वहां अच्छी तरहसें न्याय रत्नजीकी कल्पनाका (और न्यायाम्भोनिधिजीनें जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकमें जो तिथियांकी हानी तथा वृद्धि सम्बन्धी उत्सूत्र भाषण किया है उसीका भी) निर्णय साथ साथमेंही करनेमें आवेगा सो पढ़नेंसें तिथियांकी हानी तथा वृद्धि होनेसें धर्मकार्य्योंमें किसी रीतिसें वर्तना चाहिये जिसका अच्छी तरहसें निर्णय हो जावेंगा ;—

इति पाँचवें महाशय न्यायरत्नजी श्रीशान्तिविजयजीके नामकी पर्युषणा सम्बन्धी संक्षिप्त समीक्षा समाप्त ॥

और सप्टेम्बर मासकी २७ मी तारीख सन् १९०८ आश्विन शुक्ल २ वीर संवत् २४३४ के रविवारका मुम्बईसें प्रसिद्ध होनेवाला जैन पत्रके २४ वें अङ्कके पृष्ठ ४ में गत वर्षे न्यायरत्नजीकी तरफसें लेख प्रसिद्ध हुवा हैं जिसमें खास करके श्रीखरतरगच्छ वालोंको श्रीमहावीर स्वामीजीके ६ कल्याणकके सम्बन्धमें पूछा हैं और आपनें श्रीहरिभद्र सूरिजी महाराजके तथा श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके विरुद्धार्थमें श्रीपञ्चाशक मूलसूत्रका तथा तद्वृत्तिका अधूरा पाठ लिखके श्रीमहावीर स्वामीजीके पांच कल्याणक स्थापन करके ६ कल्याणकका निषेध किया है सो उत्सूत्र भाषण करके अनेक सूत्र, चूर्णि, वृत्ति, प्रकरणादि शास्त्रोंके पाठोंका उत्थापन करके श्रीगणधर महाराजके, श्रीश्रुत केवली महाराजके, पूर्वधर महाराजोंके और बुद्धिनिधान पूर्वाचार्य्योंके वचनका अनादर करते पञ्चमकालके अपने हठवादकी विद्वत्ता न्यायरत्नजीनें अनन्त संसारकी वढ़ाने वाली प्रसिद्धकरी हैं जिसकी समीक्षा और आगस्ट मासकी २९ वी तारीख सन् १९०९ दूसरे श्रावण सुदी १३ वीर संवत् २४३५ रविवारका जैन पत्रके २१ वें अङ्कके पृष्ठ १५ वा में जो न्यायरत्नजीकी तरफसें फिर भी लेख प्रसिद्ध हुवा हैं उसीसें ‘खरतरगच्छ मीमांसा, नामकी किताब छपवा कर प्रसिद्ध करके [जैसे न्यायाम्भोनिधिजीनें जैन सिद्धान्तसमाचारी, पुस्तकका नाम रखके वास्तविकमें उत्सूत्र भाषण का मिथ्यात्वरूप पाखण्डको प्रगट किया हैं (जिसका किञ्चिन्मात्र इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १५१ और पृष्ठ २१५ । २१६ में दिखाया हैं, उसीका नमुनारूप पर्युषणा सम्बन्धी समीक्षा भी

इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १५७ सें २१४ तक उपरमें छप चुकी हैं) तैसेही न्यायरत्नजीने भी प्राय उन्ही बातोंको अपनी चातुराईसें कुछ कुछ न्यूनाधिक करके] मिथ्यात्वका पीष्ट-पेषणरूप मानु अपनी और अपने गच्छवासी हठग्राही भक्तजनोंकी संसार वृद्धिका कारणरूप. शास्त्रानुसार सत्य बातोंका निषेध और शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें कल्पित बातोंका स्थापनकर पुस्तक प्रगटकरके अविसंवादी अत्युत्तम जैनमें विसंवादरूप मिथ्यात्वका झगड़ा फैलाना न्यायरत्नजी चाहते हैं, जिसकी और गत वर्षके लेखकी समालोचनारूप समीक्षा इस जगह लिखके न्यायरत्नजीके उत्सूत्र भाषणकी तथा कुतर्कोंकी चातुराईका दर्शाव प्रगट करना चाहुं तो जरूर करके २५० अथवा ३०० पृष्ठका यहां विस्तार वढ़ जावें जिससें आठों महाशयोंके नामकी पर्युषणा सम्बन्धी अबी जो समीक्षा सरू हैं उसीमें अन्तर पड़ जावें और यह ग्रन्थ भी बहुत वड़ा हो जावें इसलिये अबी यहां न्याय रत्नजी सम्बन्धी विशेष न लिखते पर्युषणा सम्बन्धी विषय पूरा होये बाद अन्तमें थोड़ासा संक्षिप्तसें लिखनेमें आवेगा जिससें श्रीजिनाज्ञा इच्छक आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंको सत्यासत्यका निर्णय स्वयं मालुम हो सकेगा ;—

और अब छठे महाशय श्रीवल्लभविजयजीकी तरफसें पर्युषणा सम्बन्धी जो लेख जैन पत्रमें प्रगट हुवा है उसीकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हुं—जिसमें प्रथमही आगष्ट मासकी ८ वी तारीख संवत् १९०९ गुजराती प्रथम श्रावण वदी ७ रविवारका मुम्बईसें प्रसिद्ध होने वाला जैनपत्रके १८ वें अङ्कके पृष्ठ १० विषे गुजराती भाषामें

प्रश्नोत्तर छपे हैं जिसमें किसी मुम्बईवाले श्रावकनें प्रश्न किया हैं कि (पर्युषणपर्व पेला श्रावणमां करिये तो दोष लागेके केन) इस प्रश्नका श्रीपालणपुरसें श्रीवल्लभ-विजयजीनें यह जवाब दिया कि (पर्युषणपर्व पेला श्रावणमां नज थाय आज्ञाभङ्ग दोष लागे) इस लेखका मतलब ऐसे निकलता हैं कि गुजराती प्रथम श्रावण वदी हिन्दी दूसरे श्रावण वदीसें लेकर दूसरे श्रावण शुदीमें अर्थात् आषाढ़ चतुर्मासीसें पचास दिने पर्युषणा करने वालोंको जिनाज्ञा भङ्गके दूषित ठहराये तब श्रीलश्करसें श्रीबुद्धिसागरजीनें श्रीपालणपुर श्रीवल्लभविजयजीको सुन्दर ओपमा सहित वन्दनापूर्वक विनय भक्तिसें एक पोष्टकार्ड लिख भेजा उसीमें लिखा था कि—आगष्ट मास की-८ वीं तारीखका जैन पत्रके १८ वें अङ्कमें (पर्युषणपर्व पेला श्रावणमां नजथाय आज्ञाभङ्ग दोष लागे) यह अक्षर जिस सूत्र अथवा वृत्तिके आधारसें आपने छपवाये होवें उसी सूत्र अथवा वृत्तिके पाठ लिखकर भेजनेकी कृपा करना आपको मध्यस्थ और विद्वान् सुनते हैं इस लिये आपने शास्त्रके प्रमाण बिना अपनी कल्पनासें झूठ नही छपवाया होगा तो जरूर शास्त्रपाठके अक्षर लिख कर भेजेंगें इत्यादि—इस तरहका पोष्टकार्डमें मतलब लिख कर खानगीमें भेजाथा सो कार्ड श्रीवल्लभविजयजीको श्रीपा-लणपुरमें खास हाथोहाथ पहुंच गया परन्तु श्रीवल्लभविजय-जीनें उस कार्डका कुछ भी पीछा जवाब लिखकर नहीं भेजा जब कितनेही दिन तक तो जवाब आनेकी राह देखी तथापि कुछ भी जवाब नही आया तब फिर भी

दूसरा पत्र श्रीवल्लभविजयजीको, उपर लिखे मतलबके लिये भेजनेमें आया तोभी श्रीवल्लभविजयजीनें कुछ भी जबाब नही दिया तब श्रीपालणपुरके प्रसिद्ध आदमी पीताम्बर भाई हाथी भाई महताके नामसें एक पत्र लिखा उसीमें भी विशेष समाचार पर्युषणा सम्बन्धी श्रीवल्लभविजयजीनें दूसरे श्रावणमें आषाढ़ चौमासीसें ५० दिने पर्युषणा करने वालोंको आज्ञाभङ्गका दूषण लगाया जिसका खुलासे उत्तर पूछाया था और उसी पत्रमें ५० दिने पर्युषणा शास्त्रकारोंने करनेका कहा हैं उसी सम्बन्धी पाठ भी लिख भेजे थे वह पत्र श्रीवल्लभविजयजीको पीताम्बर भाईनें पहुंचाया और जबाब भी पूछा इतने पर भी श्रीवल्लभविजयजीनें अपनी बातका जबाब नही दिया और शास्त्रोंके पाठोंको प्रमाण भी नही किये परन्तु स्वपक्षपातका पण्डिताभिमानके जोरसें अन्याय कारक विशेष झगड़ा फैलानेका कारण करके माया वृत्तिसें आप निर्दूषण बन कर श्रीबुद्धिसागरजीकों दूषित ठहरानेके लिये अक्टोबर मासकी ३१ वी तारीख सन् १९०९ आसोज वदी ३ वीर संवत् २४३५ का अङ्क २९ वा के पृष्ठ ४-५ में अपनी चातुराईकों प्रगट करी हैं जिसको इस जगह लिख दिखाता हुं ;—

[खबरदार ! होवो होशियार ! ! करो विचार ! निकालो सार ! ! ! लेखक—मुनि–वल्लभविजय-पालणपुर,

इसमें शक नहीं कि, अंग्रेज सरकारके राज्यमें, कला-कौशल्यकी अधिकता हो चुकी है, हो रही है और होती रहेगी ! परंतु गाम वसे वहां भङ्गी चमारादि अवश्य होते हैं । तद्वत् अच्छी अच्छी बातोंकी होशियारीके साथमें बुरी

बुरी बातोंकी होशियारी भी आगे ही आगे बढती हुई नजर आती है। इस वास्ते खबरदार होकर होशियारीके साथ विचार कर सार निकालनेका ख्याल रखना योग्य है— ताकि पीछेसे पश्चात्ताप करनेकी जरूरत न रहे !

राज्य अंग्रेज सरकारका हैं कानून (कायदे) सबके लिये तैयार है ! चाहे अमीर हो, चाहे गरीबहो ; चाहे राजा हो, चाहे रंक हो ! चाहे शहरी हो, चाहे गँवार हो ! जो एक कहेगा दो सुनेगा !

थोडे समयकी बात है, लश्कर से बुद्धि सागर नामा खरतर गच्छीय मुनिके नामका पत्र हमारे पास आया, जिसमें पर्युषणाकी बाबत कुछ लिखा था, हमने मुनासिब नहीं समजा कि' वृथा समय खोकर परस्पर ईर्षाकी वृद्धि करनेवाला काम किया जावे ! कितनेही समयसे गच्छ संबंधी टंटा प्रायः दबा हुवा है, तपगच्छ खरतरगच्छ दोनो ही गच्छ प्रायः परस्पर संपसे मिले जुलेसे मालुम होते है' उनमें फरक पड़नेसे कुछ दबे हुए जैन शासनके वेरिओंका जोर हो जानेका सम्भव है। यह तो प्रसिद्धही है कि दोनोंकी लड़ाईमें तीसरेका काम हो जाता है। यद्यपि महात्मा मोहनलालजी महाराज खरतर गच्छके थे, तथापि तपगच्छ-वाले उनको अधिकसे अधिक मान देते थे ! यही गच्छ पक्षकी कुछक शांति लोकोंके देखनेमें आती थी। मरहूम महात्मा भी तपगच्छकी बाबत अपना जुदा ख्याल नहीं जाहिर करते थे ! बलकि खुद आप भी तपगच्छकी समा-चारी करते थे जो कि प्रायः प्रसिद्ध ही है परन्तु सूर्पनखा समान जीव उभय पक्षको दुःखदायी होते हैं तद्वत् बुद्धिसागर

खरतर गच्छीय मुनि नाम धारकने भी अपनी मनःकामना पूर्ण न होनेसे, रावणके समान ढुंढियांका सरणा लेकर युद्धारंभ करना चाहा है।]

पाठकवर्गकों छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीके उपर का लेखकी समालोचनारूप समीक्षा करके दिखाता हुं जिसमें प्रथमतो मेरेकों इतना ही कहना उचित हैं कि छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजी साधु नाम धारक होकर खास आप झगड़ेका मूल खड़ा करके दूसरेको दूषित करना और अन्याय कारक माया वृत्तिका मिथ्या भाषणसें आप निर्दूषण बनना चाहते है सो सर्वथा अनुचित हैं क्योंकि प्रथम ही आपने (शास्त्रकारोंकी रीति मूजब श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार आषाढ़ चौमासीसें पचास दिने श्रावणवृद्धिके कारणसें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेवालोंकों) आज्ञाभङ्ग का दूषण लगा के जैन पत्रमें छपवा कर प्रगट कराया तब श्रीलश्करसें श्रीबुद्धिसागरजीनें आपकों खानगीमें शास्त्रका प्रमाण पूछा था उन्हीकों शास्त्रका प्रमाण आप खानगीमें पीछा नही लिख सके और अन्यायकी रीतिसें उलटा रस्ता पकड़के खानगीकी वार्त्ताको प्रसिद्धीमें लाकर वृथा निष्प्रयोजनकी अन्यान्य बातोंको और भङ्गी चमार सूर्पनखा वगैरह अनुचित शब्दोंको लिखके विशेष झगड़ेका मूल खड़ा करके भी आप निर्दूषण बनकर अपने अन्यायको न देखते हुए और शास्त्रके पाठकी बात न्याय रीतिसें पूछने वाले को दूषित ठहराते हुए अपने योग्यता माफक शब्द प्रगट किये याने लौकिकमें कहते हैं कि—जैसी होवे कोठे, वैसी

निकले होठे,—अर्थात् जिस आदमीके जैसी बात दिलमें होवे उस आदमीसें वैसेही अन्तरकी बातके सूचकरूप शब्द करके सहित भाषा निकलती है तैसेही छठे महाशयजीने भी मानु अपनी आत्मामें रहनेवाले गुणोंके सूचक शब्द लिखके प्रसिद्ध किये है सो वह द्रव्य शब्दके भाव गुण छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीमें अवश्य ही दिखते हैं सोही पाठकवर्गकों दिखाता हुं और साथ साथमें छठे महाशयजीकी अन्याय कारक अन्यान्य बातोंकी समीक्षा भी करता हुं ;—

छठे महाशयजीनें (गाम वसे वहाँ भङ्गी चमारादि अवश्य होते हैं) यह अक्षर लिखे हैं इस पर मेरेकों इतना ही कहना उचित हैं कि श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाके आराधन करनेवाले जो सज्जन है सोही मानों गाम वसता है उसी गामरूपी श्रीजिनशासनमें उत्सूत्र भाषक निन्दकादि भङ्गी चमारोंकी तरह उक्त महाशयजी आदि वसते हैं सो उस गामकी निन्दारूप मलिनताकों उठाते हुए भी आप पवित्र बनना चाहते है सो कदापि नही बन सकते हैं और आगे फिर भी लिखा हैं कि (अच्छी अच्छी बातोंकी होशियारीके साथमें बुरी बुरी बातोंकी होशियारी भी आगे ही आगे बढ़ती हुई नजर आती हैं) छठे महाशयजीके इन अक्षरों पर मेरेको यही कहना पड़ता है कि इस अंग्रेजी राज्यमें कलाकौशल्यता और न्यायशीलताके कारणसें श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञारूपी अच्छी अच्छी होशियारीकी वृद्धिके साथ साथमें बुरी बुरी होशियारीकी तरह प्रथम कदाग्रहके बीज लगानेवाले

तथा अन्यायमें चलनेवाले और दूसरोंको मिथ्या दूषण लगानेवाले छठे महाशयजी वगैरह अनेक पक्षपाती पुरुष बुरी बुरी, होशियारीकी बातोंका सरणा लेते हैं सो बड़ी ही अफसोसकी बात हैं ;—

और आगे फिर भी छठे महाशयजीनें लिखा है कि (खबरदार होकर होशियारीके साथ विचारकर सार निकालनेका ख्याल रखना योग्य हैं ताकि, पीछेसें पश्चात्ताप करनेकी जरूर न रहैं) इन अक्षरोंको लिखके छठे महाशयजी दूसरेकों होशियार होनेका बताते हैं परन्तु अपनी आत्माकी तरफ कुछ भी होशियारी न दिखाते हुए विन विचारा काम करके इन भव तथा पर भव और भवो भवमें पश्चात्ताप करनेका कुछ भी भय नही रखते हैं क्योंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महान् उत्तम धुरन्धराचार्य्योंने और खास छठे महाशयजीके ही पूर्वज पूज्यपुरुषोंने अनेक सूत्र, वृत्ति, चूर्णि, प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें आषाढ़ चौमासीसें एक मास और वीश दिने याने पचास दिने श्रीपर्युषणापर्वका आराधन करना कहा है और इस वर्त्तमान कालमें लौकिक पञ्चाङ्गमें श्रावणादि मासोंकी वृद्धि होनेके कारणसें आषाढ़ चौमासीसें पचास दिन दूसरे श्रावणमें पूरे होते हैं तब शास्त्रानुसार पचास दिनकी गिनतीसें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेवाले श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाके आराधक ठहरे और जैन शासनके प्रभावक तथा युगप्रधान और बुद्धिनिधान उत्तमाचार्य्योंकी श्रीजिनाज्ञा मुजब दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेकी अनुक्रमें अखण्डित महत परम्परा (अनुमान १४०० वर्ष हुए जैनपञ्चाङ्गके अभाव

सें आत्मार्थी पुरुषोंकी) चली आती है उसी मुजब मोक्षाभि-
लाषी सज्जन वर्त्तते हैं जिन्होंको छठे महाशयजीनें अपनी
क्षुद्रबुद्धिकी तुच्छ विद्वत्ताके अभिमानसें उत्सूत्र भाषणका
भय न करते एकदम आज्ञाभङ्गका दूषण लगाके छापामें
छपानेकी आज्ञा करी और शास्त्रानुसार चलने वालोंको
मिथ्या दूषण लगानेके कारणसें झगड़ा फैलानेके कारण
का जरा भी विचार नही किया और जब श्रीतीर्थङ्कर
गणधरादि महाराजोंनें पचास दिने पर्युषणा करनेका कहा
है उसीके अनुसारे आत्मार्थी सज्जन पुरुष दूसरे श्रावणमें
पचास दिने पर्युषणा करते है जिन्होंको छठे महाशयजी
आज्ञाभङ्गका दूषण लगाते है जिससें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि
महाराजोंके वचनका अनादर होकर उन महाराजोंकी महान्
आशातना होती है तथा अनेक सूत्र, चूर्णि, वृत्ति, प्रकर-
णादि शास्त्रोंके पाठोंके मुजब नही वर्त्तनेसें उत्थापन होता
है और उन महाराजोंकी आशातना तथा अनेक शास्त्रोंके
पाठोंका उत्थापन और उन महाराजोंकी आज्ञानुसार
अनेक शास्त्रोंके प्रमाणयुक्त वर्त्तने वालोंको स्वपक्षपातके
पंडिताभिमानसें मिथ्या दूषण लगाना सो निःकेवल उत्सूत्र-
भाषणरूप है और उत्सूत्र भाषणके लिये ;—

श्रीभगवतीजी सूत्रमें १ तथा तद्वृत्तिमें २ श्रीउत्तरा-
ध्ययनजी सूत्रमें ३ तथा तीनकी छ (६) व्याख्यायोंमें ९
श्रीदशवैकालिक सूत्रमें १० तथा तीनकी चार व्याख्यायोंमें १४
श्रीसूयगडाङ्गजी (सूत्रकृताङ्गजी) सूत्रकी निर्युक्तिमें १५ तथा
तद्वृत्तिमें १६ श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें १७ तथा तद्वृत्तिमें १८
श्रीआवश्यकजी सूत्रकी चूर्णिमें १९ श्रीआवश्यकजी सूत्रकी

बृहद्वृत्तिमें २० तथा प्रथम लघु वृत्तिमें २१ और दूसरी लघु वृत्तिमें २२ श्रीविशेषावश्यकमें २३ तथा तद्वृत्तिमें २४ श्रीसाधुप्रतिक्रमणसूत्रकी वृत्तिमें २५ श्रीमूलशुद्धिप्रकरणमें २६ श्रीमहानिशीथ सूत्रमें २७ श्रीधर्मरत्नप्रकरणमें २८ तथा तद्-वृत्तिमें २९ श्रीसङ्घपट्टक बृहद्वृत्तिमें ३० श्रीश्राद्धविधि वृत्तिमें ३१ श्रीआगम अष्टोत्तरीमें ३२ तथा तद्वृत्तिमें ३३ श्रीसन्देह-दोलावलीवृत्तिमें ३४ श्रीसम्बोधसत्तरीमें ३५ तथा तद्वृत्तिमें ३६ श्रीवैराग्यकल्पलतामें ३७ श्रीत्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्रमें ३८ और श्रीकल्पसूत्रकी सात व्याख्यायोंमें ४५ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें और भाषाके स्तवन, पद, ढाल वगैरहमें भी अनेक जगह लिखा है कि शास्त्रपाठ तथा एकाक्षरमात्रभी प्रमाण नही करनेवाला निन्हव उत्सूत्र भाषककों श्रीतीर्थ-ङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्य परम गुरुजन महाराजोंकी आशातना करने वाला और उन्हीं महाराजोंके वाक्यकों न मानता हुवा उत्थापन करने वाला बहुलकर्मी, माया सहित मिथ्या भाषण करने वाला, संयमसे भ्रष्ट, घोर नरक में गिरने वाला, चतुरगतिरूप संसारमें कटुक विपाक दारुण (भयङ्कर) फलको भोगने वाला, सम्यग्दर्शनसें भ्रष्ट, मिथ्यात्वी, दुर्लभबोधि, अनन्त संसारी, मोहन्यादि आठ कर्मोंके चीकणे बन्धको बाँधने वाला, पापकारी इत्यादि अनेक विशेषण शास्त्रोंमें कहे हैं जिसके सब पाठ इस जगह लिखनेसें बहुत विस्तार हो जावे तथापि भव्यजीवोंको निःसन्देह होनेके लिये थोड़ेसें पाठ भी लिख दिखाता हुं ;

श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत श्रीउत्तराध्ययनवृत्तौ अष्टा-दशाध्ययने—संयतराजर्षिं क्षत्रियमुनिर्वदति हे महामुने

ये पापकारिणो नराः पापं असत् परूपणं कुर्वन्तीत्येवं शीलाः पापकारिणो ये नराः भवन्ति ते नराः घोरे भीषणे (भयङ्करे) नरके पतन्ति च पुनः धर्मं सत् परूपणरूप चरित्राराध्यदित्थं दिवः सम्बन्धीनीं उत्तमां गतिं गच्छन्ति इत्यादि ॥ इस पाठमें उत्सूत्र परूपणा करने वालेकों भयङ्कर नरक और सत्य परूपणा करने वालेकों देव लोगकी गति कही हैं । और श्रीशान्तिसूरिजीकृत श्रीधर्मरत्नप्रकरण मूल तथा तद्वृत्ति श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत भाषा सहित श्री पालीताणासें श्रीजैनधर्म विद्याप्रसारकवर्गकी तरफसें छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके तीसरे भागके पृष्ठ ८२ । ८३ । ८४ का पाठ गुजराती भाषा सहित नीचे मुजब जानो ;–

यथा—अइ साहस मेयं जं, उस्सुत्त-परूवणा कडुविवागा ॥
जाणतेहिवि दिज्जइ, निद्दे सो सुत्तबज्झत्थे ॥१०१॥

मूलनो अर्थ—उत्सूत्रपरूपणा कडवां फल आपनारी छे एवुं जाणतांछतां पण जेओ सूत्रबाह्य अर्थमां निश्चयआपी देछे ते अति साहसछे ॥ १०१ ॥

टीका—ज्वलज्ज्वालानल प्रवेशकारिनर साहसादप्यधिकमतिसाहसमेतद्वर्त्तते यदुत्सूत्रपरूपणा सूत्रनिरपेक्ष देशना कटुविपाका दारुणफला जानानैरवबुध्यमानैरपि दीयते वितीर्य्यते निर्देश्यो निश्चयः सूत्रबाह्यै जिनेन्द्रागमानुक्तेऽर्थे वस्तु विचारे किमुक्तं भवति—

दुब्भासिएण इक्केण, मरीईदुक्खसागरं पत्तो ।
भमिओ कोडाकोडिं, सागरसिरिनामधिज्जाणं ॥१॥

उस्सुत्तमायरन्तो–बंधइकम्मं सुचिक्कणं जीवो । संसारञ्च पवड्ढइ, मायामोसं च कुव्वइय ॥ २ ॥ उम्मग्गदेनओसग्ग–नास

ओ गूढहियमाइल्लो । सढसीलोयससल्यो—तिरियाउं बंधए जीवो ॥३॥ उम्मगदेसणाए—चरणं नासन्ति जिणवरिंदाणं। वावन्नदंसणा खलु—नहुलब्भालारिसादट्ठुं ॥४॥ इत्याद्यागम वचनानि श्रुत्वापि स्वाग्रहग्रहग्रस्त चेतसो यदन्यथान्यथा व्याचक्षते विदधति च—तन्महासाहसमेवा नवोकूपारासार· संसार पारावारोदरविवरभावि भूरिदुःखभाराङ्गीकारादिति ।

टीकानो अर्थ—बलती आगमां पेमनारमाणसनासाहस-करतां पण अधिक आ अतिसाहसछे के सूत्रनिरपेक्ष देशना कडवां एटले भयङ्कर फल आपनारीछे एम जाणनारा होइने पण सूत्रबाह्य एटले जिनागममां नही कहेल अर्थमां एटले वस्तु विचारमां निर्देश एटले निश्चय आपीदेछे—एटले-शुंकह्यु तेकहेछे—मरीचि एकदुर्भाषितथी दु.खनादरियामां पडी क्रोडाक्रोडसागरोपम भम्यो । १ । उत्सूत्र आचरतां जीव चीकणा कर्म बांधेछे संसारवधारेछे अने मायामृषा करेछे । २ । उन्मार्गनी देशना करनार मार्गनो नाशकरनार गूढ-हृदयथी मायावी शठ अने सशल्य जीव तिर्यंचनो आयुष्य बांधेछे ।३। जेओ उन्मार्गनी देशनाथी जिनेश्वरना चारित्रनो नाशकरेछे तेवा दर्शनभ्रष्ट लोकोने जोवा पणसारा नहीं ।४। आवगेरे आगमना वचनो सांभलीने पण पोताना आग्रहमां ग्रस्त बनी जे कांइ आडुं अवलुं बोलेछे तथा करेछे ते महा साहसजछे केमके एतो अपार अने असार संसाररूप दरि याना पेटमां थनार अनेक दुःखनुंभार एकदम अङ्गीकार करवा तुल्य छे ।

और फिर भी तीसरा भागके पृष्ठ २४२ का पाठ भाषा सहित नीचे मुजब जानो यथा—

अयमत्राशयः—सम्यक्त्वं ज्ञानचरणयोः कारणं यतएवमागमः—

ता दंसणिस्सनाणं, नाणेण विणा णहुंति चरणगुणा ॥
अगुणस्स नत्थि मुक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं ॥१॥ इति तच्च गुरुबहुमानिन एव भवत्यतो दुःकरकारकोऽपि तस्मिन्नवज्ञानविदध्यात् तदाज्ञाकारि च भूयाद्यत उक्त—

छट्ठट्ठम दसमदुवालसेहिं, मासद्ध मास खमणेहिं ॥
अकरंतो गुरुवयणं, अणंत संसारिओ भणिओ ॥१॥इत्यादि

इहां आशय एछे के सम्यक्त्व ए ज्ञान अने चारित्रनुं कारणछे जे माटे आगममां आरीते कहेलुंछे—सम्यक्त्व वंतनेज ज्ञान होयछे अने ज्ञान विना चारित्रना गुण होता नथी अगुणीने मोक्ष नथी अने मोक्ष वगरनाने निर्वाण नथी; हवे ते सम्यक्त्व तो गुरुनो बहुमान करनारनेज होयछे एथी करीने दुःकरकारी थईने पण तेनी अवज्ञा नहीं करतां तेना आज्ञाकारी थवुं जे माटे कहेलुंछे के छठ, अठम, दशम, द्वादश तथा अर्द्धमासखमण अने मासखमण करतो थको पण जो गुरुनो वचन नही माने तो अनंत संसारी थायछे।

और श्रीरत्नशेखरसूरिजी कृत श्रीश्राद्धविधिवृत्तिका गुजरातीभाषान्तर शाः—चीमनलाल शांकलचंद मारफतीयाने श्रीमुंबईमें छपवा कर प्रसिद्ध किया है जिसके पृष्ठ १८८ का लेख नीचे मुजब जानो;—

आशातनाना विषयमां उत्सूत्र [सूत्रमां कहेला आशयथी विरुद्ध] भाषणकरवाथी अरिहंतनी के गुरुनी अवहेलना करवी ए मोटी आशातनाओ अनन्तसंसारनी हेतुछे जेमके उत्सूत्र प्ररूपणाथी सावद्याचार्य्य, मरीची, जमाली, कुल

बालुओसाधु विगेरे घणाक जीवो अनन्त संसारी थयाछे. कह्युं छे के—उत्सूत्तभासगाणं, बोहिनासो अणंतसंसारो। पाण च्चए वि धिरा उस्सुत्तं ता न भासंति॥ १॥ तित्थयर पवयण सूअं, आयरिअं गणहरं महट्ठीअं। आसायंतो बहुसो, अणंत संसारिओ होई॥ २॥ उत्सूत्रना भाषकने बोधिबीजनो नाश थायछे अने अनन्त संसारनी वृद्धिथायछे माटे प्राणजतां पण धीरपुरुषो उत्सूत्र वचन बोलता नथी तीर्थङ्कर, प्रवचन [जैनशासन] ज्ञान, आचार्य्य, गणधर, उपाध्याय, ज्ञानादिकथी महर्द्धिकसाधु, साधु ए ओनी आशातना करतां प्राणी घणुकरी अनन्त संसारी थायछे।

और सुप्रसिद्ध युगप्रधान श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी महाराजनें श्रीआवश्यकभाष्य [विशेषावश्यक] में कहा है यथा—जे जिनवयणु तिन्ने, वयणं भासन्ति जे उ मन्नति। सम्मदिठीणं तं, दंसणपि संसार बुद्ढि करंति॥ १॥

भावार्थः—जो प्राणी श्रीजिनेश्वर भगवान् का वचनके विरुद्धवचन [उत्सूत्र] भाषण करता होवे और उसीको जो मानता होवे उस प्राणीका मुख देखना भी सम्यक्त्वधारियोंको संसार वृद्धि करता है॥ १॥

अब आत्मार्थी विवेकी सज्जन पुरुषोंको निष्पक्षपातकी दीर्घदृष्टिसें विचार करना चाहिये कि उत्सूत्र भाषण करने वाला तो संसारमें रुले परन्तु उत्सूत्र भाषकका मुख देखने-वाले अर्थात् उस उत्सूत्र भाषक सम्यग्दर्शनसें भ्रष्ट, दुष्टाचारीको श्रद्धापूर्वक वन्दनादि करने वालोंको भी संसार की वृद्धिका कारण होता है तो फिर इस वर्त्तमान पञ्चम कालमें उत्सूत्र भाषकोंको परमपूज्यमानके उन्हीके कहने

मुजब वर्तने वाले गच्छपक्षी दृष्टिरागी विचारे भोले जीवोंके कैसे कैसे हाल होवेंगे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जानें—

उपरमें उत्सूत्र भाषक सम्बन्धी इतना लेख लिखनेका कारण यही है कि उत्सूत्रभाषक पुरुष श्रीतीर्थपती श्री तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी और अपने पूर्वजोंकी आशातना करने वाला और भोले जीवोंको भी उसी रस्ते पहुंचानेके कारणसें संसारकी वृद्धि करता है जिससें उसीकों पर भवमें तथा भवो भवमें नरकादि अनेक विडम्बना भोगनी पड़ती है इसलिये महान् पश्चात्तापका कारण बनता है और इस भवमें भी उत्सूत्र भाषकको अनेक उपद्रव भोगने पड़ते है, तैसे ही छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीने भी उत्सूत्र भाषण करके श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाके आराधक पुरुषोंको मिथ्या आज्ञा-भङ्गका दूषण लगाकर जैनपत्रमें प्रसिद्ध कराके झगड़ेका मूल खड़ा किया और बड़े जोरके साथ पुनः जैनपत्रमें फैलाया जिससें आत्मार्थी निष्पक्षपाती सज्जन-पुरुष तथा अपने [छठे महाशयजीके] पक्षधारी श्रीतप-गच्छके सज्जन पुरुष और खास छठे महाशयजीके मण्डलीके याने श्रीन्यायाम्भोनिधिजीके परिवार वाले भी कितने ही पुरुष छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीपर पूरा अभाव करते है कि ना हक वृथा जो संपसे कार्य्य होतेथे जिसमें विघ्नकारक झगड़ा खड़ा किया है इसलिये छठे महाशय-जीको इन भवमें भी पूरे पूरा पश्चात्ताप करनेका कारण होगया है तथा करते भी है।

और उत्सूत्र भाषण करके दूसरोंको मिथ्या दूषण लगा-

नेके कारणसें उपरोक्त शास्त्रोंके प्रमाणानुसार पर भवमें तथा भवोभवमें छठे महाशयजीको पूरे पूरा पश्चात्ताप करना पड़ेगा इस लिये प्रथमही पूर्वापरका विचार किये विना पश्चात्ताप करनेका कार्य्य करना छठे महाशयजी को योग्य नही था तथापि किया तो अब मेरेको धर्मबन्धु की प्रीतिसें छठे महाशयजीको यही कहना उचित है कि आपको उपरोक्त कार्य्योंसें संसार वृद्धिके कारणसें यावत् भवोभवमें पश्चात्ताप करनेका भय लगता होवे तो गच्छका पक्षपात और पण्डिताभिमान को दूरकरके सरलतापूर्वक मन वचन कायासें श्रीचतुर्विध संघसमक्ष उपर कहे सो आपके कार्य्योंका मिथ्या दुष्कृत देकर तथा आलोचना लेकर और अपनी भूल पीछी ही जैनपत्र द्वारा प्रगट करके उपरोक्त उत्सूत्रभाषणके फल विपाकोंसें अपनी आत्माको बचा लेना चाहिये नही तो बड़ी ही मुश्किलीके साथ उपर कहे सो विपाकोंको भवान्तरमें भोगते हुए जरूर ही पश्चात्ताप करनाही पड़ेगा वहां किसीका भी पक्षपात नही है इस लिये आप विवेक बुद्धिवाले विद्वान् हो तो हृदयमें विचार करके चेत जावो मैंने तो आपका हितके लिये इतना लिखा है सो मान्य करोगे तो बहुत ही अच्छी बात है आगे इच्छा आपकी ;—

और आगे फिर भी छठे महाशयजी—अंग्रेज सरकारके कायदे कानून दिखाकर एक कहेगा दो सुनेगा—ऐसा लिखते हैं इस पर मेरेको बड़ेही अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि छठे महाशयजी साधु हो करके भी इतना मिथ्यात्वको वृथा क्यों फैलाते हैं क्योंकि सम्यक्त्वधारी

आत्मार्थी सज्जन पुरुष होते हैं सो तो अपनी भूलको मंजूर कर दूसरेकी हितशिक्षारूप सत्य बातको प्रमाण करके उपकार मानते हुए सुख शान्तिसें संप करके वर्त्तते हैं और मिथ्यात्वी होते है सो सत्य बातकी हितशिक्षाको कहनेवाले पर क्रोध-युक्त हो कर अपनी भूलको न देखते हुए अन्यायसें झगड़े का मूल खड़ा करनेके लिये (हितशिक्षाको ग्रहण नही करते हुए) एककी दो सुनाकर रागद्वेषसें विसंवाद करते हैं तैसेही छठे महाशयजीने भी एककी दो सुनानेका दिखाया परन्तु शास्त्रार्थसें न्याय पूर्वक सत्य बातको ग्रहण करने की तो इच्छा भी न रक्खी, इस बातको दीर्घ दृष्टिसें सज्जन पुरुष अच्छी तरहसें विशेष विचार सकते हैं,––

और सरकारी कानून कायदेका छठे महाशयजीनें लिखा है इस पर भी मेरेको यही कहना पड़ता है कि प्रथम झगड़ा खड़ा करनेवाले और दूसरोंको मिथ्या दूषण लगानेवाले तथा मायावृत्तिकी धूर्त्ताचारीसें वक्रोक्तिकरके–पण्डिताभिमानसें अनुचित शब्द लिखनेवाले और खानगी में न्याय रीतिसें पूछने वालेकी प्रसिद्धीमें लाकर उसीको अयोग्य ओपमा लगाके अवहेलना करने वाले आप जैसोंको हितशिक्षा देनेके लिये तो जरूर करके सरकारी कानून तैयार हैं परन्तु आप साधुपदके भेषधारी हो इसलिये सज्जन पुरुष ऐसा करना उचित नही समझते हैं तथापि आप तो उसीके योग्य हो–महाशयजी याद रक्खो–सरकारके विरुद्ध चलनेसें इसीही भवमें जलदि शिक्षा मिलती है तैसेही श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाके विरुद्ध चलने वाले उत्सूत्र भाषकको भी इस भवमें लौकिकमें तिर-

त्कारादि तथा परभवमें और भवो भवमें खूब गहरी वारं-
वार नरकादिमें शिक्षा मिलती है इस बातका विचार
सज्जन पुरुष जब करते हैं तब तो आपके गुरुजन न्यायांभो-
निधिजी वगैरहको और आपके गच्छवासी हठग्राही जो
जो पूर्वे उत्सूत्र भाषक हुए है तथा वर्त्तमानमें आप जैसे
है और भी आगे होवेंगे उन्होंको क्या क्या शिक्षा मिलेगा
सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने क्योंकि आप लोग
उत्सूत्र भाषणकी अनेक बातें कर रहे हो जिसमेंसें थोड़ीसी
बाते नमुना रूप इस जगह लिख दिखाता हूं ;—

१ प्रथम—अधिकमासको गिनतीमें निषेध करते हो
सो उत्सूत्रभाषण है ।

२ दूसरा—अधिकमास होनेसें तेरह मासोंके पुण्यपापादि
कार्य्य करके भी तेरह मासोंके पापकृत्योंकी आलोचना
नही करते हो और दूसरे तेरह मासोंके पापकृत्योंकी आलो-
चना करते है जिन्होंकों दूषण लगाके निषेध करते हो
सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

३ तीसरा—श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी
आज्ञानुसार अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करनेवा-
लोंको मिथ्या दूषण लगाते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

४ चौथा—जैन ज्योतिषाधिकारे सर्वत्र शास्त्रोंमें अधिक
मासको गिनतीमें अच्छी तरहसें खुलासेके साथ प्रमाण
करा है तथापि आप लोग जैन शास्त्रोंमें अधिक मासको
गिनतीमें प्रमाण नही करा है ऐसा प्रत्यक्ष महा मिथ्या
बोलते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

५ पांचमा—पर्युषणाधिकारे सर्वत्र जैन शास्त्रोंमें आषाढ़

चौमासीसे दिनोंकी गिनती करके पचास दिनेही निश्चय करके पर्युषणा करनेका कहा है तथापि आप लोग दो श्रावण अथवा दो भाद्रपद होनेसे ८० दिने पर्युषणाकरते हो और ८० दिनके ५० दिन भोले जीवोंको दिखाते हो सो भी माया सहित उत्सूत्र भाषण हैं ।

६ छठा—मासवृद्धिके अभावसे भाद्रपदमें पर्युषणा करनी कही है तथापि आप लोग मासवृद्धि दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा ठहराते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

७ सातमा—श्रीनिशीथ भाष्यमें १ तथा चूर्णिमें २ श्रीवृहत्कल्पभाष्यमें ३ तथा चूर्णिमें ४ और वृत्तिमें ५ श्रीसमवायाङ्गजीमें ६ तथा तद्वृत्तिमें ७ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें मासवृद्धिके अभावसे चार मासके १२० दिनका वर्षाकालमें पचासदिने पर्युषणा करनेसे पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन स्वभाविक रहते हैं जिसको भी आप लोग वर्त्तमानमें दो श्रावणादि होनेसे पांच मासके १५० दिनका वर्षाकालमें भी पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रहनेका ठहराते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

८ आठमा—अधिक मास होनेसे प्राचीन कालमें भी पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन रहते थे तथा वर्त्तमानमें भी श्रावणादि अधिक मास होनेसे पर्युषणाके पिछाड़ी १००दिन शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक रहते हैं जिसको निषेध करते हो और १०० दिन मानने वालेको दूषण लगाते हो सो भी उत्सूत्र भाषण हैं ।

९ नवमा—अधिक मासके ३० दिनोंका शुभाशुभकृत्य तथा धर्मकर्म और सर्व व्यवहारको गिनतीमें लेकर मान्य करते हो

इस न्यायानुसार दो आश्विनमास होनेसें पर्युषणाके पिछाड़ी कार्त्तिक तक १०० दिन होते हैं जिसके ७० दिन अपनी कल्पनासें कहते हो सो भी प्रत्यक्ष अन्यायकारक उत्सूत्र भाषण है।

१० दशमा–जैन शास्त्रोंमें मास वृद्धिको बारह मासोंके ऊपर शिखररूप अधिक मासको कहा है और लौकिकमें भी पुरुषोत्तम अधिक मास कहा हैं इसलिये धर्म्मव्यवहारमें अधिक मास बारह मासोंसें विशेष उत्तम महान् पुरुषरूप है जिसको भी आप लोग नपुंसक निःसत्व तुच्छादि कहके भोले जीवोंके धर्म्मकार्य्योंमें हानी पहुंचानेका कारण करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण हैं।

११ इग्यारमा–अधिक मासको कालचूलाकी उत्तम ओपमा गिनती करने योग्य शास्त्रकारोंने दिनी हैं तथापि आप लोग कालचूला कहनेसें अधिक मास गिनतीमें नही आता है ऐसा कहते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है।

१२ बारहमा–अधिक माससें प्रत्यक्ष वनस्पति फल-फूलादिसें प्रफुल्लित होती है तथापि आप लोग नही फूलनेका कहते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है।

१३ तेरहमा–अधिक मासके कारणसें श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अभिवर्द्धितसंवत्सर तेरह मासोंका कहा है तथापि आप लोग अधिक मासको गिनतीमें निषेध करके श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंका कहा हुवा अभिवर्द्धित संवत्सरका प्रमाणको तथा अभिवर्द्धित संवत्सरकी संज्ञाको नष्ट कर देते हो इसलिये श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना कारक

अनन्त संसारकी वृद्धिरूप यह भी महान् उत्सूत्र भाषण है।

१४ चौदहमा–श्रीजैनशास्त्रोंमें षट्द्रव्यरूप शाश्वती वस्तुयोंमेंसें कालद्रव्य रूपभी एक शाश्वती वस्तु है जिसका एक समयमात्र भी जो कालव्यतीत होजावें उसीका गिनती में कदापि निषेध नही हो सकता है यह अनादि स्वयं सिद्ध मर्यादा है तथापि आपलोग समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिन, पक्षसें, दो पक्षका जो एकमास बनता हैं उसी को गिनतीमें निषेध करके अनादि स्वयं सिद्ध मर्य्यादाको अपनी कल्पनासें तोड़मोड़करके ३० मासें–एकमासका गिनतीमें निषेध करनेके हिसाबसें, ३० वर्षे–एकवर्ष, ३०युगे–एकयुग, इसी तरहसें, ३० कोड़ा कोड़ी सागरोपमें–एक कोड़ाकोड़ी सागरोपमके कालको–उड़ा कर गिनतीमें निषेध करनेका वृथा प्रयास करते हो सो भी यह महान् उत्सूत्र भाषण है।

और १५ पंदरहमा–जैनपञ्चाङ्ग का अबी वर्त्तमानकालमें विच्छेद है तथापि आपलोगोंकी तरफसें मिथ्यात्वकी वृद्धिकारक मनमानी अपनी कल्पनाका पञ्चाङ्गको जैन-पञ्चाङ्ग ठहराकर प्रसिद्ध करवाते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है

१६ सोलहमा–श्रीनिशीथसूत्रके भाष्यादि शास्त्रोंमें सूर्य्योदयकी पर्व तिथिको न माननेवालेको मिथ्यात्वी कहा है और लौकिक पञ्चाङ्गमें दो चतुर्दशी वगैरह तिथियां होती है उसीमें पर्वरूप प्रथम चतुर्दशी सूर्य्योदयसें लेकर अहोरात्रि ६० घड़ी तक संपूर्ण चतुर्दशीका ही वर्ताव रहता है उसीमें अपर्व रूप त्रयोदशीके वर्तावका गन्ध भी नही है तथापि आप लोग अपने पक्षपातके जोरसें और पण्डिताभिमानका

फन्दसें जबरदस्ति सूर्य्योदयकी पर्वरूप प्रथम चतुर्दशीको पर्वरूप नही मानते हुए, अपर्वरूप त्रयोदशी बनाकरके संख्याते, असंख्याते, अनन्ते जीवोंकी हानी तथा अब्रह्मचर्य्यादि पञ्चाश्रव सेवनका और सब संसार व्यवहारके कार्य्योंसें आरम्भादि होनेका कारणमें अधोगतिके रस्ता की खर्चीरूप कार्य्योंमें आपलोग कटीबद्ध तैयार हो और अपने संयमरूप जीवितव्यके नष्ठ होनेका और मिथ्यात्वी बननेका कुछ भी भय नही करतेहो इस लिये यह भी उत्सूत्र भाषण है ।

१७ सतरहमा—भी इसीही तरहसें लौकिक पञ्चाङ्गमें दो दूज, दो पञ्चमी, दो अष्टमी, दो एकादशी, वगैरह सूर्य्योदयकी पर्वतिथियां होती है जिसको बदल कर, अपर्वकी—दो एकम, दो चतुर्थी, दो सप्तमी, दो दशमी वगैरह करके मानते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

१८ अठारहमा—भी इसीही तरहसे विशेष करके लौकिक पञ्चाङ्गमें संपूर्ण चतुर्दशी पर्वरूप तिथि होती है और दो पूर्णिमा तथा दो अमावस्या भी होती है जिसको तोड़मोड़ करके संपूर्ण चतुर्दशीकी, त्रयोदशी और दो पूर्णिमाकी तथा दो अमावस्याकी भी दो त्रयोदशी कोइ भी जैनशास्त्रोंके प्रमाण बिना अपनी कपोल कल्पनासें बना लेते हो सो भी उत्सूत्र भाषण हैं ।

१९ एगुनवीशमा—लौकिक पञ्चाङ्गमें जब कोई कोई वख्त दो पूर्णिमा अथवा दो अमावस्या होती है उसीमें चन्द्र अथवा सुर्य्यका ग्रहण प्रथम पूर्णिमाको अथवा प्रथम अमावस्याको होता है जिसको सब दुनिया मानती है और

शास्त्रोंमें भी पूर्णिमा अथवा अमावस्याके दिन ग्रहण होने का कहा है तथापि आप लोग सब दुनियाके तथा शास्त्रों के भी विरुद्ध होकरके प्रगट पने ग्रहणयुक्त पूर्णिमा अथवा अमावस्याको चतुर्दशी ठहराकर चतुर्दशीकाही ग्रहण मानते हो यह तो प्रत्यक्ष अन्याय कारक उत्सूत्र भाषण है।

२० वीशमा—चतुर्दशी का क्षय होनेसें पाक्षिककृत्य पूर्णिमा अथवा अमावस्याको करनेका जैनशास्त्रोंमें कहा है तथापि आप लोग नही करते हो और दूसरे करने वालोंको दूषण लगाके निषेध करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है।

२१ एकवीशमा—आप लोग एकान्त आग्रहसें सूर्य्योदयके बिनाकी तिथिको पर्वतिथिमें नही मानना, ऐसा कहते हो परन्तु जब चतुर्दशीका क्षय होता है तब सूर्य्योदयकी त्रयो- दशीको चतुर्दशी कहते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है।

२२ बावीशमा—श्रीजैनज्योतिषकी गिनती मुजब, चन्द्र के गतिकी अपेक्षासें श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति तथा श्रीसूर्य्यप्रज्ञप्ति वृत्ति वगैरह अनेक जैनशास्त्रोंमें पर्वकी तिथियांके क्षय होनेका लिखा है और लौकिक पञ्चाङ्गमें भी कालानुसार पर्वकी तिथियांका क्षय होता है और जैन पञ्चाङ्गके अभावसें लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब वर्त्तनेकी पूर्वाचार्य्योंकी खास आज्ञा है, तैसेही आप लोग—दीक्षा, प्रतिष्ठा वगैरह धर्म्म व्यवहारके कार्य्योंमें घड़ी, पल, तिथि, वार, नक्षत्र, योग राशिचन्द्र, शुभाशुभ मुहूर्त्त, दिन, पक्ष, मास वगैरह सब व्यवहार लौकिक पञ्चाङ्गानुसार करते हो तथापि आप लोग, लौकिक पञ्चाङ्गमें जो पर्वतिथियांका क्षय होता है उसीको नही मानते हो और माननेवालोंको दूषण लगाके निषेध करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है।

२३ तेवीशमा—लौकिक पञ्चाङ्गमें दो चतुर्दशी होती है उन्हीके मुजब आप लोगोंके पूर्वजोंने भी दो चतुर्दशी लिखी है जिसको आप लोग नही मानते हो और लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब युक्तिपूर्वक कालानुसार और पूर्वाचार्य्योंकी परम्परासें दो चतुर्दशी वगैरह पर्व तिथियांको माननेवालोंको दूषण लगाके निषेध करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है।

२४ चौवीशमा—आपके पूर्वज कृत ग्रन्थमें तिथिका शुद्धाशुद्ध सम्बन्धी जो प्रमाण बताया है उसी मुजब आप लोग नही मानते हो और स्वच्छन्दाचारीसें (अपनी मति की कल्पना करके) संपूर्ण प्रथम पर्वतिथिको अपर्व ठहरा करके दूसरी—दो अथवा तीन पल (एक मिनिट) मात्र की अल्पतर तिथिमें जाते हो और दूसरे—कालानुसार युक्ति पूर्वक तथा विशेष धर्म्मवृद्धिके लाभका कारण जानके प्रथम संपूर्ण ६० घड़ी की पर्वतिथिको मानते हैं तैसेही दूसरी पर्वतिथिको भी यथायोग्य मानते हैं जिन्होको दूषण लगाके निषेध करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है।

इस तरहकी अनेक बातें आपलोगोंमें उत्सूत्र भाषणकी हो रही है जिसका तथा आपके गुरुजी श्रीन्यायाम्भोनिधिजीनें भी जैनसिद्धान्त समाचारी पुस्तकका नाम रखके अनुमान ५० जगह उत्सूत्र भाषण करा है जिसका भी नमुनारूप थोड़ीसी बातें आगे लिखनेमें आवेंगे और उपरकी सब बातोंका निर्णय शास्त्रोंके प्रमाणसें और युक्तिपूर्वक मेरे लिखीत इन्ही ग्रन्थको आदिसें अन्त तक स्थिरचित्तसें सत्यग्राही होकर निष्पक्षपातसें मध्यस्थ दृष्टि रखकर विशुद्धभावसें पढ़नेवाले आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंको अच्छी तरहसें मालूम हो सकेगा;—

और उत्सूत्र भाषणके फलविपाक सम्बन्धी उपरमें ही पृष्ठ २४९ से २५६ तक लिखनेमें आया है उसीका भय लगता हो, तथा श्रीजिनेश्वर भगवान् के वचन पर आपलोगोंकी कुछ भी श्रद्धा हो, और अपनेही श्रीतपगच्छके नायक श्रीदेवेन्द्र सूरिजी तथा श्रीरत्नशेखर सूरिजीके उत्सूत्र भाषक सम्बन्धी उपरोक्त वाक्योंको आपलोग सत्यमानतेहो, और श्रीदेवेन्द्र सूरीजी कृत श्रीधर्मरत्नप्रकरण वृत्ति आपलोगोंके समुदाय में विशेष करके व्याख्यानाधिकारे तथा पठन पाठनमें भी वारंवार आती है उन्हीके वाक्यार्थको आपके हृदयमें धारणा हो, तो ऊपरका लेखको परमहितशिक्षारूप समझके उत्सूत्र भाषण करते हो जिसको छोड़ो, तथा उत्सूत्र भाषण करा होवे उसीका मिथ्या दुष्कृत देवो, और गच्छके पक्षपात को तथा पण्डिताभिमानको छोड़के श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञा मुजब शास्त्रोंके महत् प्रमाणानुसार आषाढ़ चौमासी सें ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेका और अधिक मासको गिनतीमें प्रमाणादि अनेक सत्य बातोंकों ग्रहण करो, और भक्तजनोंकों करावो जिससें आपकी और आपके भक्तजनोंकी आत्मसिद्धिका रस्तापावो—श्रीजिनाज्ञारूपी सम्यक्त्वरत्नके सिवाय मोक्ष साधनमें गच्छका पक्षपात तथा पण्डिताभिमान कुछ भी काम नही आता है इसलिये गच्छ पक्षको छोड़के श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्यबातको ग्रहण करना सोही आत्मार्थी विवेकी विद्वान् सज्जन पुरूषोंको परम उचित है ।

और आगे फिर भी छठे महाशयजीनें लिखा है कि (थोड़े समयकी बात हैं बुद्धिसागर नामा खरतरगच्छीय

धुनिके नामका पत्र हमारे पास आया जिसमें पर्युषणाकी आबत कुछ लिखाथा हमने मुनासिब नही समजा कि वृथा समय खोकर परस्पर ईर्षाकी वृद्धि करनेवाला काम किया जावे) इस लेखपर मेरेको बड़ाही आश्चर्य्य उत्पन्न होता है कि श्रीवल्लभविजयजीनें अपनी मायावृत्तिकी चातुराईको खूब प्रगट करी है क्योंकि प्रथम आपनेंही दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालोंको आज्ञाभङ्गका दूषण लगाया था उसी सम्बन्धी आपको श्रीबुद्धिसागरजीनें शास्त्रका प्रमाण खानगीमें ही पत्र भेजके पूछा था जिसका जबाब पीछा खानगीमें ही लिख भेजनेमें तो छठे महाशयजी आपको बहुत समय वृथा खोनेका और परस्पर ईर्षाकी वृद्धि होनेका बड़ा ही भय लगा परन्तु लम्बा चौड़ा लेख जैनपत्रमें भङ्गी चमारादि शब्दोंसें तथा निष्प्रयोजनकी अन्यान्य बातोंको और श्रीबुद्धिसागरजीको सूर्पनखाकी वृथा अनुचित ओपमा लगाके उन्हकी खानगीकी पूछी हुई बातको (पीछा ही खानगीमें जबाब न देते हुए) प्रसिद्धमें लाकर अन्यायके रस्तेसें उन्हकी अवहेलना करनेमें और श्रीखरतरगच्छवालोंके परमपूज्य प्रभावकाचार्य्यजी श्रीजिनपतिसूरिजी महाराजका श्रीजिनाज्ञा मुजब अनेक शास्त्रोंके प्रमाणयुक्त सत्यवाक्यको पक्षपातके जोरसें अप्रमाण ठहरा कर श्रीखरतरगच्छवालोंके दिलमें पूरे पूरा रंज उत्पन्न करके—और दूसरे गुजराती भाषाके लेखमें भी—सर्व संघको, कान्फरन्सको, शेठियोंको, वकीलको, बेरिस्टरको, नाणाकोथली (रुपैयोंकी थेली) वगैरहको सावधान सावधान करके श्रीसंघके आपसमें और

कोर्ट कचेरीमें बड़ेही भारी झगड़ेके कारण करनेका लेख लिखनेमें तथा प्रसिद्ध करानेमें तो छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजी आपको खूब लम्बा चौड़ा समय भी मिल गया, और परस्पर आपसमें ईर्षाकी वृद्धि होनेका किञ्चित् भी भय न लगा परन्तु श्रीबुद्धिसागरजीके पत्रका जवाब खानगीमें लिखनेसें छठे महाशयजीको वृथा समय खोनेका तथा परस्पर ईर्षाकी वृद्धि करनेवाला काम करनेका भय लगा, यह कैसी अलौकिक विद्वत्ताकी चातुराई (सज्जन पुरुषोंको आश्चर्य्य उत्पन्नकारक) छठे महाशयजी आपनें गच्छ पक्षी दृष्टिरागी बालजीवोंको दिखाकर अपनी बातको जमाई सो आत्मार्थी विवेकी विद्वान् पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ।

और आगे फिर भी छठे महाशयजीनें लिखा है कि (कितनेही समयसें गच्छ सम्बन्धी टंटा प्राय दबा हुआ है तपगच्छ खरतरगच्छ दोनोंही पक्ष प्रायः परस्पर संपसें मिले जुलेसें मालूम होते हैं) इस लेख पर भी मेरेको यही कहना उचित है कि गच्छ सम्बन्धी टंटा दबाकरके शान्त करनेका और संपसें वर्त्तनेका श्रीखरतगच्छवालोंकी महान् सरलताका कारण है क्योंकि श्रीतपगच्छके तो आप जैसे अनेक महाशय संपके मूलमें अग्नी लगाके श्री खरतरगच्छवालोंकी सत्य बातका निषेध करनेके लिये उत्सूत्र भाषण करके अपनी मति कल्पनाकी मिथ्या बातका स्थापन करनेके लिये विशेष करके हर वर्षे गांम गांममें पर्युषणाके व्याख्यानाधिकारे श्रीजिनेश्वर भगवानूकी आज्ञानुसार अनेक शास्त्रोंके महत प्रमाण मुजब अधिक मासकी

गिनती अनादि स्वयं सिद्ध है जिसका खण्डन करके और श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महान् धुरन्धराचार्य्योंनें और श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छके भी पूर्वाचार्य्योंनें श्रीवीर-प्रभुके, छ कल्याणक अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक कहे हैं तथापि आप लोग श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी और अपने पूर्वजोंकी आशातनाका भय न करते उन्ही महाराजोंके विरुद्ध हो करके, छ कल्याणकका निषेध करते हो और श्रीखरतरगच्छवालोंके ऊपर मिथ्या कटाक्ष करते हुए अनेक बातोंका टंटा खड़ा करनेका कारण करनेवाले आप जैसे अनेक कटीबद्ध तैयार है और अपने संसार वृद्धिका भय नही रखते है इस बातको इसीही ग्रन्थको संपूर्ण पढ़नेवाले विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे और इसका विशेष विस्तार इसीही ग्रन्थके अन्तमें भी करनेमें आवेगा वहां श्रीखरतरगच्छवालोंकी कैसी सरलता है और श्रीतपगच्छवाले आप जैसोंकी कैसी वक्रता है जिसका भी अच्छी तरहसें निर्णय हो जावेंगा ।

और आगे फिरभी छठे महाशयजीनें लिखा है कि (उनमें—अर्थात्, तपगच्छके खरतरगच्छके आपसमें—फरक पड़नेसें कुछक दवे हुए जैनशासनके वेरियोंका जोर हो जानेका सम्भव है) इस लेख पर भी मेरेको इतनाही कहना पड़ता है कि—छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजी आप श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छके आपसमें विरोध वढ़ाकर संपको नष्ट करना नही चाहते हो और दोनुं गच्छको संपसें मिले जुलेसें रहनेकी जो आप अन्तर भावसें इच्छा रखते हो तवतो श्रीजिनाज्ञा मुजब अनेक महत शास्त्रोंके प्रमाण

युक्त श्रीखरतरगच्छवालोंकी सत्य बातोंको प्रमाण करके अपनी कल्पित बातोंको छोड़ दो और श्रीखरतरगच्छवालों पर मिथ्या आक्षेप जो आपने उत्सूत्र भाषण करके करा है तथा श्रीबुद्धिसागरजी पर जो जो अन्यायसें अनुचित लेख लिखके जैनपत्रमें प्रसिद्ध कराया है जिसकी क्षमा मांगकर उत्सूत्र भाषणका मिथ्या दुष्कृत दो और अपनी भूलको पिछीही जैन पत्रमें प्रगट करके सुखशान्तिसें संप करके वर्त्तों तब दोनुं गच्छके संप रखने सम्बन्धी आपका लिखना सत्य हो सकेगा परन्तु जब तक छठे महाशयजी आपके बिना विचारके करे हुए अनुचित कार्य्योंकी आप क्षमा नही मांगोंगे और सत्य बातोंका ग्रहण भी नही करते हुए अपनी कल्पित बातोंके स्थापन करनेके लिये जो वार्त्ताका प्रकरण चलता होवे उसीको छोड़के अन्यायके रस्तेसें अन्यान्य अनुचित बातोंको लिखके विशेष झगड़ा वढ़ाते रहोंगे तब तो दोनुं गच्छके संप रखने सम्बन्धी आपका लिखना प्रत्यक्ष मायावृत्तिका मिथ्या है और भोले जीवोंको दिखाने मात्रही है अथवा लिखने मात्रही है सो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे और दोनुं गच्छके आपसमें वादविवादके कारणसें दबे हुए जैनशासनके वेरियोंका जोर होनेसें मिथ्यात्व वढ़नेका छठे महाशयजी जो आपको भय लगता होवे तो आपनेही प्रथम जैनपत्रमें शास्त्रानुसार चलनेवालोंको मिथ्या दूषण लगाके उत्सूत्र भाषणसें झगड़ा खड़ा करा और पुनःपुनः (दीर्घकाल चलने रूप) जैन पत्रमें फैलाया है जिसको पिछीही अपने हाथसें मिथ्या दुष्कृतसें क्षमाके साथ अपनी भूलको जैन-

पत्रमेंही सुधार लो जिससें दोनुं गच्छवालोंके आपसमें संप बना रहेगा और दोनुं गच्छके आपसमें संपको नष्ट करनेवाले आप लोगोंकी तरफसें पर्युषणाके व्याख्यानमें तथा छापे द्वारा जो जो कार्य्य करनेमें आते हैं उसको भी बंध कर दीजिये जिससें दोनुं गच्छवालोंके आपसमें जो संप है उसीसें भी खूब गहरा विशेष संप हो जावेगा; तब जैन शासनके वेरियोंका कुछ भी जोर नही हो सकेगा, इतने पर भी आप जैसे शास्त्रानुसार तथा युक्तिपूर्वक सत्य बात को ग्रहण नही करते हुए, अन्यायसें वाद विवाद करके झगड़ेको वढ़ाते रहोंगे जिस पर जो जो जैनशासनके निन्दक शत्रुयोंका जोर वढ़नेका कारण होगा तो जिसके दोषाधिकारी खास आप लोगही होवोंगे सो विवेकबुद्धिसें हृदयमें विचार लेना, और आगे श्रीमोहनलालजीके सम्बन्ध में लिखकर तपगच्छकी समाचारीके बाबत जो आपने लिखा है इसका जबाब—अबी नवमें महाशय श्रीमाणक-मुनिजी प्रगट हुवे हैं जिसने अपनी अकलका नमुना जैन पत्रमें प्रगट करा है उसीका जबाब आगे लिखनेंमें आवेगा वहां श्रीमोहनलालजी सम्बन्धी भी लिखनेमें आवेगा ;—

और छठे महाशयजीनें फिर भी अपनी विद्वत्ता की चातुराईका दर्शाव दिखाया है कि—(सूर्पनखा समान जीव उभय पक्षको दुःखदायी होते है तद्वत् बुद्धिसागर खरतरगच्छीय मुनि नाम धारकने भी अपनी मनःकामना पूर्ण न होनेसें रावणके समान ढूंढियोंका सरणा लेकर युद्धारम्भ करना चाहा है) इस लेख पर मेरेको इनताही कहना है कि—जैसे किसी पण्डितको किसी आदमीनें कोई

बातका खुलासा पूछा तब उस पण्डितको उसी बातका खुलासा करनेकी बुद्धि नही होनेसें अपने विद्वत्ताकी इज़्जत रखनेके लिये उस बातका सम्बन्धको छोड़के निष्प्रयोजन की वृथा अन्यान्य बातोंको लाकर अनुचित शब्दोंसे यावत् क्रोधका सरणा ले करके अपनी विद्वत्ताकी बातको जमाता है परन्तु विवेकी विद्वान् पुरुष उस पण्डितका मिथ्या पण्डिताभिमानको और अन्यायके पाखण्डको अच्छी तरह सें समझ लेते हैं—तैसेही छठे महाशयजी आपनें भी करा अर्थात् आषाढ़ चौमासीसें ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेवालोंको आज्ञाभङ्गका दूषण लगाने सम्बन्धी श्रीबुद्धि-सागरजीनें आपको शास्त्रका प्रमाण पूछा उसीको शास्त्रका प्रमाण बतानेकी आपकी बुद्धि नही होनेसें और शास्त्रका प्रमाण भी आपको नही मिलनेसें ऊपर कहे सो नामधारी पण्डितवत् आपने भी अपनी विद्वत्ताकी इज्जत रखनेके लिये शास्त्रका प्रमाण बतानेके सम्बन्धको छोड़ करके निष्प्रयो-जनकी वृथा अन्यान्य बातेंकों लिखकर अनुचित शब्दसें यावत् क्रोधका सरणा लेकर अपनी विद्वत्ताको जमानी चाही परन्तु निष्पक्षपाती विद्वान् पुरुषोंके आगे आपका मिथ्या पण्डिताभिमानका और अन्यायके पाखण्डका दर्शाव अच्छी तरहसें खुल गया हैं कि—छठे महाशयजीके पास शास्त्रका प्रमाण न होनेसें श्रीबुद्धिसागरजीको सूर्प-नखाकी ओपमा वगैरह प्रत्यक्ष मिथ्या वाक्य लिखके अपने नामकी हासी कराई है क्योंकि श्रीबुद्धिसागरजीनें सूर्प-नखाकी तरह दोनु पक्षको दुःखदाई होनेका कोई भी कार्य्य नही करा है तथा न ढूंढियांका सरणा लिया है

और न युद्धारम्भ करना चाहा है—तथापि श्रीवल्लभविजयजीनें मिथ्या लिखा यह बड़ाही अफसोस है परन्तु 'सतीको' भी—वेश्या अपने जैसी समझती है तद्वत् तैसेही छठे महाशयजीनें भी निर्दोषी श्रीबुद्धिसागरजीको दोषित ठहरानेके लिये अपने कृत्य मुजब सूर्पनखाके समानका तथा ढूंढियांका सरणा लेनेका और युद्धारम्भ करनेका मिथ्या आक्षेप करा मालूम होता है क्योंकि उपरके कृत्य छठे महाशयजीमेंही प्रत्यक्ष है सोही दिखाता हूं ;—

जैसे—सूर्पनखा दोनुं पक्षवालोंको दुःखदाई हुई तैसेही छठे महाशयजी (श्रीवल्लभविजयजी) भी दोनुं गच्छवालोंके आपसका संपको नष्ट करनेके लिये वाद विवादसें झगड़ेका मूल लगाके दोनुं गच्छवालोंको तथा अपने गुरुजनोंके नामको और अपने सम्प्रदायवालोंको भी दुःखदाई हुवे है इस लिये मेरेको भी इस ग्रन्थकी रचना करके आठों महाशयोंके उत्सूत्र भाषणके कुतर्कोंकी (शास्त्रानुसार और युक्तिपूर्वक) समीक्षा करके मोक्षाभिलाषी सज्जनोंको सत्यासत्यका निर्णय दिखानेके लिये इतना परिश्रम करना पड़ा है सो इस ग्रन्थको पढ़नेवाले विवेकी मध्यस्थ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और छठे महाशयजी आप लोग अनेक बातोंमें ढूंढियां का सरणा ले कर उन्होंकाही अनुकरण करते हो जिसमेंसें थोड़ीसी बातें इस जगह दिखाता हूं ;—

१ प्रथम—श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की प्रतिमाजीको मानने पूजनेका निषेध करनेके लिये ढूंढिये लोग अनेक प्रकारकी श्रीजिनमूर्त्तिकी निन्दा करते हुए अनेक कुतर्कों करके भोले

जीवोंके सत्यबातकी श्रद्धारूपी सम्यक्त्व रत्नको, हरण करके मिथ्यात्व बढ़ाते है तैसेही श्रीअनन्त जिनेश्वर भगवानोंका कहा हुवा तथा प्रमाण भी करा हुवा अधिकमासकी गिनतीमें निषेध करनेके लिये, आप लोग भी अधिकमासकी अनेक प्रकारसें निन्दा करते हुए अनेक कुतर्को करके भोले जीवोंके सत्य बातकी श्रद्धारूपी सम्यक्त्व रत्नको हरण करके मिथ्यात्व बढ़ाते हो इसलिये श्रीजैनशासनके निन्दक मिथ्यात्वी ढूंढियांका सरणा आपही लेते हो।

२ दूसरा--श्रीजैनशास्त्रोंमें नाम, स्थापना, द्रव्य, और भाव, यह चारोंही निक्षेपे मान्य करने योग्य, उपयोगी कहे हैं तथापि ढूंढिये लोग उत्सूत्र भाषणका भय न करते अनन्त संसारकी वृद्धि कारक, स्थापनादि निक्षेपोंको निषेध करके बिना उपयोगके ठहराते हैं तैसेही श्रीजैनशास्त्रोंमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भावसें, चारोंही प्रकारकी चूलाका प्रमाण गिनती करने योग्य, उपयोगी कहा है और गिनतीमें भी लिया है तथापि आप लोग उत्सूत्र भाषणका भय न करते कालचूलादिका प्रमाणको गिनतीमें निषेध करके प्रमाण नही करते हो सो भी ढूंढियांका सरणा आपही लेते हो।

३ तीसरा–ढूंढिये लोग 'मूलसूत्र मानते हैं मूलसूत्र मानते हैं' ऐसा पुकारते हैं परन्तु अपनी मति कल्पनासें अनेक जगह शास्त्रोंके पाठोंका उलटा अर्थ करते हैं और अनेक शास्त्रोंके पाठोंको तथा अर्थको भी छुपाते हैं और शास्त्रोंके प्रमाण बिना भी अनेक कल्पित बातोंको करके मिथ्यात्वमें फसते हैं और भोले जीवोंको फसाते हैं तैसेही आपलोग भी 'पञ्चाङ्गी मानते हैं पञ्चाङ्गी मानते हैं' ऐसा

पुकारते हो परन्तु अपनी मति कल्पनासें अनेक जगह शास्त्रोंके पाठोंका उलटा अर्थ करते हो और अनेक शास्त्रोंके पाठोंको तथा अर्थको भी छुपाते हो और शास्त्रोंके प्रमाण बिना भी अनेक कल्पित बातों करके मिथ्यात्वमें फसते हो और भोले जीवोंको फसाते हो (इसका विशेष खुलासा आगे करनेमें आवेगा) इस लिये भी ढूंढियांका सरणा आपही लेते हो।

४ चौथा—जैसे ढूंढिये लोगोंकी गांम गांममें वारम्वार श्रीजिन प्रतिमाजीकी और श्रीजैनाचार्य्योंकी निन्दा अवहेलना करनेकी आदत है जिससें अपने संसार वृद्धिका भय नही रखते हैं तैसेही आप लोगोंकी भी गांम गांममें श्रीपर्युषणापर्वका व्याख्यान वगैरहमें श्रीवीरप्रभुके छ (६) कल्याणककी और श्रीजिनेन्द्रभगवान् का तथा पूर्वाचार्य्योंका प्रमाण करा हुवा अधिक मासकी निन्दा अवहेलना करनेकी आदत है जिससें आप लोग भी उत्सूत्र भाषणका भय न करते हुए संसार वृद्धिसें कुछ भी डरते नही हो इस लिये भी ढूंढियांका सरणा आपही लेते हो।

५ पाँचमा—जैसे ढूंढिये लोग चर्चा करो चर्चा करो ऐसा पुकारते हैं परन्तु चर्चाका समय आनेसें मुख छिपाते हैं और जो बातकी चर्चा करनेकी होवे जिसकी शास्त्रार्थसें न्यायपूर्वक चर्चा करनी छोड़कर अन्यायसें निष्प्रयोजनकी अन्य अन्य बातोंका झगड़ा खड़ा करके यावत् क्रोधका सरणा लेकर—रांड़ नपुती जैसी वृथा लड़ाई करके निन्दा ईर्षासें संसार वृद्धिका कारण करते है परन्तु शास्त्रोक्त चर्चा वार्त्ताकी रीतिसें एक भी बातके सत्यअसत्यका निर्णय करके

असत्यको छोड़कर सत्यको ग्रहण करनेकी इच्छाही नही रखते हैं तैसेही आप लोगोंके भी कृत्य है (इस बातका इस ग्रन्थके अन्तमें खुलासा करनेमें आवेगा) इस लिये ऊपरकी बातमें भी ढूंढियांका सरणा आप लोगही लेते हो।

६ छठा—जैसे कितनेही ढूंढिये लोग शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक श्रीजिनमूर्त्तिको मानने पूजने वगैरहकी सत्य बातोंको जानते हुए भी अपने मत कदा ग्रहकी झालमें फस करके इस लोककी मानता पूजनाके लिये अपने दृष्टि-रागी भक्तजनोंके आगे मिथ्यात्वके उदयसें सत्य बातोंका निषेध करके अपने अन्ध परम्पराकी उत्सूत्र भाषणरूप कल्पित बातोंका स्थापन करके संसार वृद्धिका कार्य्य करते हैं तैसेही कितनीही बातोंमें आपके गुरुजी न्याया-म्भोनिधिजी (श्रीआत्मारामजी) नें भी किया है और आप लोग भी करते हो (जिसका खुलासा आगे करनेमें आता है) इस लिये भी ढूंढियांका सरणा आप लोगही लेते हो।

७ सातमा—जैसे कितनेही ढूंढिये श्रीजैन तीर्थोंको छोड़के अन्य मतियोंके मिथ्यात्वी तीर्थोंमें जाते हैं तैसेही खास श्रीवल्लभविजयजीनें भी कराया अर्थात् घासीराम और जुगलराम इन दोनुं ढूंढक साधुयोंने (श्रीजिनेश्वर भग-वान् तुल्य श्रीजिनमूर्त्तिकी तथा श्रीजैनशासनके प्रभाविक महान् उत्तम श्रीजैनाचार्य्योंकी) द्वेष बुद्धिसें वृथा निन्दा करनेका और शास्त्रोंके विरुद्ध होकरके उत्सूत्र भाषणका तथा अपनी मति कल्पना मुजब मिथ्या बातोंमें वर्त्तनेका मिथ्यात्वरूप ढूंढक मतका पाखण्डको संसार वृद्धिका कारण

जानकर छोड़ दिया और शास्त्रानुसार सत्य बातोंको ग्रहण करनेकी इच्छासें श्रीवल्लभविजयजीके पास जैन दीक्षा लेने को आये तब श्रीवल्लभविजयजीनें तथा उन्होंके दृष्टिरागी श्रावकोंनें विचार किया कि--घासीराम और जुगलरामनें ढूंढक मतके साधु भेषमें अनुचित कार्य्यों (असूचीकी क्रियायों) सें अपने शरीरको अपवित्र किया है इसलिये इन दोनुंका शरीर प्रथम पवित्र कराके पीछे दीक्षा देनी चाहिये ऐसा विचार करके दोनुंको पवित्र करनेके लिये जैन तीर्थोंमें न भेजते हुए अन्य मतियोंके मिथ्यात्वी तीर्थ में काशी गङ्गाजी भेजकरके पवित्र कराये (इसका विशेष आगे लिखनेमें आवेगा) इसलिये भी ढूंढियांका सरणा आपही लेते हो।

इत्यादि अनेक बातोंमें छठे महाशयजी आप लोगही ढूंढियांका सरणा लेकर उन्होंकाही अनुकरण करते हो, तथापि आपने श्रीबुद्धिसागरजीको ढूंढियांका सरण लेनेका लिखा है सो प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि श्रीबुद्धिसागरजीनें ढूंढियांका सरणा लेनेका कोई भी कार्य्य नही करा है इतने पर भी आपके दिलमें यह होगा कि श्रीबुद्धिसागर-जीनें ढूंढियाकी मारफत पत्र हमको पहुंचाया इसलिये ढूंढियांका सरणा लेनेका हमने लिखा है तो भी महा-शयजी यह आपका लिखना सर्वथा अनुचित है क्योंकि दुनियामें यह तो प्रसिद्ध व्यवहार है कि--कोई गांममें किसी आदमीको एक पत्र भेजा जिसका जबाब नहीं आया तो थोड़े दिनोंके बाद दूसरा भी पत्र भेजनेमें आता है, दूसरे पत्रका भी जबाब नहीं आनेसें तीसरी

बेर उसी गांमका प्रतिष्ठित आदमी मारफत अथवा अपना जानकार संवेगी तथा ढूंढिया तो क्या परन्तु ब्राह्मण, सेवग, वगैरह हरेक जातिका हरेक धर्मवाला पुरुषकी मारफत उसीका निर्णय करनेमें आता है तैसेही श्रीबुद्धिसागरजीनें भी किया अर्थात् दो पत्र आपको शास्त्रका प्रमाण पूछनेके लिये भेजे तथापि आपका कुछ भी जबाब नहीं आया तब तीसरी बेर प्रसिद्ध आदमी अपना जानकारके मारफत, आपको भेजे हुए पूर्वोक्त पत्रोंका जबाब पूछाया उसमें सरणा लेनेका कदापि नहीं हो सकता है परन्तु आप लोग अनेक बातोंमें ढूंढियांका सरणा लेते हो सो ऊपरमेंही लिख आया हूं सो विचार लेना;—

और दोनु गच्छवालोंके आपसमें वादविवाद तथा कोर्ट कचेरीमें झगड़ा टंटा रूप वृथा युद्ध करनेको तथा करानेको आपही तैयार हो सो तो आपके लेखसें प्रत्यक्ष दीखता है।

महाशयजी अब--किसकी मनः कामना पूर्ण न होनेसें किसीने ढूंढियांका सरणा लेकर युद्धारम्भ करना चाहा है और सूर्पनखाकी तरह दोनु पक्षको दुःखदाई भी कौन हुवा है सो ऊपरका लेखको तथा आगेका लेखको और इन्ही ग्रन्थको पढ़कर हृदयमें विवेक बुद्धि लाकर विचार कर लीजिये,---

और भी आगे छठे महाशयजी अपने और अपने गुरुजी न्यायाम्भोनिधिजीके उत्सूत्र भाषणके कृत्योंको तथा उन कृत्योंके फल विपाकोंको न देखते हुए श्रीबुद्धिसागरजी ने शास्त्रोंके पाठोंका प्रमाण सहित पत्र लिखकर पालणपुर

निवासी महता पीताम्बरदास हाथीभाईको भेजा था उस पत्रके शास्त्रोंके पाठोंको छोड़करके और छिद्रग्राही हो करके उस पत्रपर द्वेषबुद्धिसें छठे महाशयजीनें वृथाही आक्षेप किया है और उनके साथ कितनीही निष्प्रयोजनकी बातें लिखी है उसीका जबाब आगे (छठे महाशयजीके दूसरे गुजराती भाषाके लेखका जबाब छपेगा) वहां लिखनेमें आवेंगा ;—

और आगे फिर भी छठे महाशयजीनें लिखा है कि (बनारससें प्रसिद्ध हुवा मुनि धर्म्मविजयजीके शिष्य मुनि विद्याविजयजीका, पर्युषणा विचार नामा लेख देख लेना) इसपर भी मेरेको प्रथम इतनाही कहना है कि तीसरे महाशयजी श्रीविनयविजयजीनें श्रीसुखबोधिका वृत्तिमें पर्युषणा सम्बन्धी प्रथम अपने लिखे वाक्यार्थको छोड़ करके गच्छ कदाग्रहके हठवादसें उत्सूत्र भाषणका भय न करते अनेक कुतर्कों करी है (जिसका निर्णय इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ६८ सें १५० तक उपरमेंही छप चुका है) उन्ही कुतर्कोंको देखके सातमें महाशयजी श्रीधर्म्मविजयजी तथा उन्हके शिष्य विद्याविजयजी भी कदाग्रहकी परम्परामें पड़के उत्सूत्र भाषणकेही कुतर्कोंका संग्रह करके, शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायके विरुद्ध होकरके अधूरे अधूरे पाठ लिखकर भोले जीवोंकों मिथ्यात्वमें गेरनेंके लिये अपना लेख प्रगट करा है (इसका जवाब आगे छपेगा) उसीकोही गुजराती भाषामें जैन पत्रवालेनेभी अपना संसार वढ़ानेके लिये अपने जैन पत्रमें प्रगट करा है और उसी उत्सूत्र भाषणकी कुतर्कोंको छठे महाशयजी आप भी देखनेका लिखकर उन्हीको पुष्ट

करके उसी तरहके उत्सूत्र भाषणके फलप्राप्त करनेके लिये आप भी उसीमें फसे, हाय अफसोस—गच्छ कदाग्रहके वस होकरके अपना पक्ष जमानेके लिये सत्य असत्यका निर्णय किये बिना अपनी मतिकल्पनासें इतने विद्वान् कहलाते भी स्वच्छन्दाचारीसें लिखते कुछ भी विचार नही किया यह तो इस कलियुगकाही प्रभाव है,—

और दूसरा यह है कि न्याय अन्यायको न देखने वाले तथा दृष्टिरागके झूठे पक्षग्राही और कदाग्रहके कार्य्यमें आगेवान ऐसे श्रीकलकत्तानिवासी श्रीतपगच्छके लक्ष्मीचंदजी सीपाणीको पालणपुरसें श्रीवल्लभविजयजीकी तरफका पत्र आया था उसी पत्रमें ६–७ जगह मिथ्या बातें लिखी है उसी पत्रके अक्षर अक्षरका उतारा, मेरे (इस ग्रन्थकारके) पास है उसी उतारेकी नकलको यहाँ लिखकर उसीकी समीक्षा करनेका मेरा पूरा इरादा था परन्तु विस्तारके कारणसें सब न लिखते नमुनारूप एक बात लिख दिखाता हूं—

छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजी लक्ष्मीचन्दजी सीपाणीको लिखते हैं कि [बनारससें पर्युषणा विचार नामा ट्रेकट निकला है उसीकाही भाषान्तर छापेवालेने छापा है इसमें हमारा कोई मतलब नही है ना हम इस बातको मन वचन काया करके अच्छी समझते हैं] इस जगह सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि सीपाणीजीके पत्रमें पर्युषणा विचारको तथा उसीका भाषान्तर छापेवालेनें छापेमें प्रसिद्ध करा है उसीको छठे महाशयजी मन, वचन, कायासें अच्छा नही समझते हैं

तो फिर उसी बातको याने पर्युषणा विचारको देख लेनेका लिख करके उसीको छापामें पुष्ट किया, यह तो प्रत्यक्ष मायावृत्तिका कारण है इसलिये जो सीपाणीजीके पत्रका वाक्य छठे महाशयजी सत्य मानेंगे तो छापेमें पर्युषणा विचारको पुष्ट करनेका जो वाक्य लिखा है सो वृथा हो जावेंगा और छापेका वाक्य सत्य मानेंगे तो सीपाणीजीके पत्रका वाक्य मिथ्या हो जावेंगा और पूर्वा-पर विरोधी विसंवादी दोनुं तरहके वाक्य कदापि सत्य नही हो सकते हैं इसलिये दोनुंमेंसें एक सत्य और दूसरा मिथ्या माननाही प्रसिद्ध न्यायकी बात है, जिससें सीपाणी जीके पत्रका वाक्यको सत्य मानोंगे तो छापेका लेख विसं-वादीरूप मिथ्या होनेकी आलोचना छठे महाशयजी आप को लेनी पड़ेगी और छापेका वाक्यको सत्य मानोंगे तो सीपाणीजीके पत्रका वाक्य विसंवादीरूप मिथ्या होनेकी आलोचना लेनी पड़ेगी और पर्युषणा विचारमें उत्सूत्र वाक्य लिखे हैं उसीके अनुमोदनके फलाधिकारी होना पड़ेगा सो विवेक बुद्धि हो तो अच्छी तरह विचार लेना ;—

और छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीके खबरदारका इस लेखमें तथा सावधान सावधानका दूसरा गुजराती भाषाका लेखमें और सीपाणिजीके पत्रका लेखमें इन तीनों लेखोंका वाक्यमें कितनीही जगह मायावृत्ति (कपट) का संग्रह है इससें श्रीवल्लभविजयजीको कपट विशेष प्रिय मालूम होता है और चर्चाचन्द्रोदय की पुस्तकमें भी श्री-वल्लभविजयजीको 'दम्भप्रिय' लिखा है सोही नाम उपरके कृत्योंसें सत्य कर दिखाया है,—

और इसके आगे दम्भप्रियजी श्रीवल्लभविजयजीनें अपने लेखके अन्तमें जो लिखा है उसीको यहां लिखके (पीछे उसीकी समीक्षा कर) दिखाता हूं ;—

[बुद्धिसागर मुनिजी ! याद रखना वो प्रमाण माना जावेगा, जो कि—तुम्हारे गच्छके आचार्योंसें पहिलेका होगा मगर तुम्हारेही गच्छके आचार्यका लेख प्रमाण न किया जावगा ! जैसा कि तुमने श्रीजिनपति सूरिजीकी समाचारीका पाठ लिखा है कि, दो श्रावण होवे तो पीछले श्रावणमें और दो भाद्रपद होवे तो पहिले भाद्रपदमें पर्युषणापर्व— सांवत्सरिक कृत्य—करना ! क्योंकि, यही तो विवादास्पद है कि, श्रीजिनपतिसूरिजीने समाचारीमें जो यह पूर्वोक्त हुकम जारी किया है कौनसे सूत्रके कौनसे दफे मुजिब किया है हां यदि ऐसा खुलासा पाठ पञ्चाङ्गीमें आप कही भी दिखा देवें कि, दो श्रावण होवे तो पीछले श्रावणमें और दो भाद्रपद होवे तो पहिले भाद्रपदमें--सांवत्सरिक प्रतिक्रमण, केशलुञ्चन, अष्टमतपः, चैत्यपरिपाटी, और सर्वसंघके साथ खामणारव्य पर्युषणा वार्षिक पर्व करना, तो हम माननेको तैयार है !]

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि—हे सज्जन पुरुषों छठे महाशयजी दम्भप्रियेजीके अन्तरमें कपट भरा हुवा होनेसें ऊपरका लेख भी कपटयुक्त लिखा हैं क्योंकि (बुद्धिसागर मुनिजी याद रखना वो प्रमाण माना जावेंगा जो कि तुम्हारे गच्छके आचार्य्योंसें पहिले का होगा) यह अक्षर छठे महाशयजीके मायावृत्तिसें दृष्टिरागी भोले जीवोंको दिखाने मात्रही है नतु प्रमाण

करनेके लिये यदि ऊपरके अक्षर प्रमाण करनेके लिये होवें तो–अधिक मासकी गिनती, तथा पचास(५०) दिने पर्युषणा और श्रीवीरप्रभुके छ (६) कल्याणक, सामयिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही वगैरह अनेक बातें श्री तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंनें और पूर्वधरादि श्रीजैन शासनके प्रभाविक पूर्वाचार्य्योंने पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने खुलासेके साथ कही है जिस पर छठे महाशयजी की श्रद्धा नही जिससें प्रमाण नही करते हुए उलटा निषेध करके उत्सूत्र भाषणसें संसार वृद्धिका भय नही रखते हैं।

वड़ीही आश्चर्य्यकी बात है कि श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी तथा पूर्वाचार्य्योंकी कथन करी हुई अनेक बातें प्रमाण न करते हुए उत्सूत्र भाषणरूप अपनी मति-कल्प नासें चाहे वैसा वर्त्ताव करना और पूर्वाचार्य्योंका प्रमाण मंजूर करनेका दिखाकर आप भले बनना यह तो प्रत्यक्ष मायावृत्तिसें छठे महाशयजीनें अपने दम्भप्रिये नामको सार्थक करके विशेष पुष्ट करनेके सिवाय और क्या लाभ उठाया होगा सो इन्ही ग्रन्थको पढ़नेवाले सज्जन पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ;–

और आगे फिर भी दम्भप्रियेजीनें लिखा है कि (तुम्हारेही गच्छके आचार्य्यका लेख प्रमाण न किया जावेंगा) यह लिखना छठे महाशयजी दम्भप्रियेजीको श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना कारक पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंका उत्थापनरूप मिथ्यात्वको वढ़ाने वाला संसार वृद्धिका कारणभूत हैं क्योंकि–

१ प्रथमतो–श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी परम्

परानुसार पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाणयुक्त श्रीखरतरगच्छके बुद्धि निधान प्रभाविकाचार्य्योंनें अनेक शास्त्रोंकी रचना भव्य जीवोंके उपगारके लिये करी है जिसको न माननेवाले दम्भप्रियेजी जैसे प्रत्यक्ष श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना करनेवाले पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके उत्थापक श्रद्धारहित जैनाभास मिथ्यात्वी बनते हैं इस बातको विशेष सज्जन पुरुष अपनी बुद्धिसें स्वयं विचार लेवेंगे,—

२ दूसरा यह है कि--श्रीखरतरगच्छ प्रसिद्ध करनेवाले श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजकृत श्रीअष्टकजी सूत्रकी वृत्ति तथा श्रीपञ्चलिङ्गी प्रकरण मूल और तद्वृत्ति श्रीखरतरगच्छ के श्रीजिनपति सूरीजी कृत और श्रीखरतरगच्छ नायक सुप्रसिद्ध बुद्धिनिधान महान् प्रभाविक श्रीमदभयदेवसूरिजी महाराजनें श्रीनवाङ्गी वृत्ति उपरान्त श्रीउवाइजी श्रीपञ्चाशक जी श्रीषोड़षकजी वगैरहकी अनेक वृत्ति और प्रकरणस्तोत्रादि बहुतही शास्त्रोंकी रचना करी है तथा और भी श्रीखरतरगच्छके अनेक आचार्य्योंनें सैकड़ो शास्त्रोंकी रचना करी है जिन्हकोमानते हैं व्याख्यानमें वांचते हैं तथापि दम्भप्रियेजी (तुम्हारे गच्छके आचार्य्यका लेख प्रमाण न किया जावेंगा) ऐसा लिखते हैं सो कितनी मायावृत्तिसें अन्याय कारक है इसको भी निष्पक्षपाती सज्जन स्वयं विचार सकते हैं ;—

और श्रीजिनेश्वर सूरिजीसें निश्चय करके श्रीखरतरगच्छ प्रसिद्ध हुवा है इसलिये श्रीनवाङ्गीवृत्तिकार श्रीमदभयदेव सूरिजी भी श्रीखरतरगच्छमें हुवे हैं तथापि श्रीजिनवल्लभ सूरजीसें अथवा श्रीजिनदत्त सूरिजीसें १२०४ में खरतर हुवा

ऐसा कहते हैं सो मिथ्यावादी है इसका विशेष विस्तार शास्त्रोंके प्रमाण सहित इस ग्रन्थके अन्तमें करनेमें आवेगा,—

३ तीसरा यह है कि—खास दम्भप्रियेजीके गुरुजी श्रीन्यायाम्भोनिधिजीनें चतुर्थ स्तुतिनिर्णयः पुस्तकमें श्रीखरतरगच्छके श्रीअभयदेव सूरिजी श्रीजिनवल्लभ सूरिजी श्रीजिनपतिसूरिजी वगैरह आचार्य्योंकी समाचारियोंके पाठ लिखे हैं और श्रीखरतरगच्छके आचार्य्यका वचनको नही माननेवालोंको पृष्ठ ८८ के मध्यमें मिथ्यात्वी ठहराये हैं (इसका खुलासा इन्ही ग्रन्थके पृष्ठ १५९ । १६० में छपगया है) और दम्भप्रियेजी श्रीखरतरगच्छके आचार्य्यजीका लेख प्रमाण नही करके अपने गुरुजीके लेखसें ही आप मिथ्यात्वी बनते हैं सो भी बड़ीही आश्चर्य्यकी बात है ;—

४ चौथा यह है कि—दम्भप्रियेजी श्रीखरतरगच्छके आचार्य्यजीका लेख प्रमाण नही करते हैं इसको देखके और भी कितनेही अज्ञानी तथा गच्छ कदाग्रही अपने अपने गच्छके आचार्य्योंका लेखको प्रमाण मान करके और सब गच्छवालोंके आचार्य्योंका लेखको प्रमाण नही मानेंगे जिससें श्रीजिनवाणीरूपी पञ्चाङ्गीके सैकड़ो शास्त्रोंका उत्थापन होगा और अपनी अपनी मतिकल्पना करके चाहे जैसा वर्त्ताव करना सरू करेंगे तो श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की अति उत्तम, अविसंवादी, श्रीजैनशासनकी अखण्डित मर्य्यादा भी नही रहेगी और कदाग्रही लोग अपने अपने पक्षका आग्रह में फसके मिथ्यात्व बढ़ाते हुवे संसार वृद्धि करेंगे जिसके दोषाधिकारी दम्भप्रियेजी वगैरह होवेंगे और आप दूसरे गच्छके आचार्य्यका लेख प्रमाण नही करोंगे तो दूसरे गच्छवाले

आपके गच्छके आचार्य्यका लेख प्रमाण नही करेंगे जिससें भी वृथा वाद विवादसें मिथ्यात्व वढ़ता रहेगा और सत्य असत्यका निर्णय भी नही हो सकेगा और दम्भप्रियजी अनेक गच्छोंके आचार्य्योंका लेखको प्रमाण करते हैं परन्तु श्रीखरतरगच्छके आचार्य्यका लेख प्रमाण नहीं करते हैं यह भी तो प्रत्यक्ष अन्यायकारक हठवादका लक्षण है इसलिये दम्भप्रियेजी वगैरह महाशयोंसें मेरा यही कहना है कि–

श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महारजोंकी परम्परा मुजब, पञ्चाङ्गीके प्रमाण पूर्वक कालानुसार, न्यायकी युक्ति करके सहित श्रीखरतरगच्छके आचार्य्योंका तो क्या परन्तु सब गच्छके आचार्य्योंका लेखको प्रमाण करना सोही आत्मार्थी मोक्षाभिलाषी सज्जनोंको परम उचित है।

वैसेही इस ग्रन्थकारने भी श्रीतपगच्छके श्रीधर्म्मसागर जी तथा श्रीजयविजयजी और श्रीविनयविजयजी इन तीनों महाशयोंके शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक लिखित पाठोंको इसीही ग्रन्थके आदिका भागमें पृष्ठ ९।१०।११ में लिखे है और उसीका भावार्थः भी पृष्ठ १२ सें १५ तक लिखके उसीका तात्पर्य्यको पृष्ठ १६ में प्रमाण किया हैं (और इन तीनों महाशयोंनें प्रथम अपने लिखे वाक्यार्थको छोड़के गच्छ कदाग्रहका मिथ्या पक्षको स्थापन करनेके लिये उत्सूत्र भाषणरूप अनेक बातें लिखी है जिसकी समीक्षा भी शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ६८ सें १५० तक उपरमें छप गई है) और भी श्रीतपगच्छके अनेक आचार्य्यों के लेख प्रमाण करनेमें आते हैं जैसे इस ग्रन्थकारनें श्रीतप-गच्छके आचार्य्योंके शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक लेखोंको

प्रमाण किये हैं—तैसेही छठे महाशयजी आप भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी वाणीरूप पञ्चाङ्गीको श्रद्धापूर्वक प्रमाण करनेवाले आत्मार्थी मोक्षाभिलाषी होवोंगे तो श्रीखरतरगच्छके आचार्य्योंके शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक लेखों को अवश्यही प्रमाण करके अपने मिथ्या हठवादको जलदी ही छोड़ देवोंगे तो ऊपर कहे सो दूषणोंका बचाव होनेसें बहुत लाभका कारण होगा आगे इच्छा आपकी ;—

और आगे फिर भी दम्भप्रियेजीनें लिखा है कि (तुमने श्रीजिनपति सूरिजीकी समाचारीका पाठ लिखा है कि दो श्रावण होवे तो पीछले श्रावणमें और दो भाद्रपद होवे तो पहिले भाद्रपदमें पर्युषणापर्व—सांवत्सरिक कृत्य करना) यह लिखना भी छठे महाशयजी आपका कपटयुक्त है क्योंकि श्रीबुद्धिसागरजीनें पूर्वधरादि महाराजकृत तीन शास्त्रोंके पाठ लिखके भेजे थे जिसमेंके पूर्वधराचार्य्यजी महाराजके मूलसूत्रके तथा चूर्णिके दोनु पाठोंको छुपाते हो सोही छठे महाशयजी आपका कपट है इसलिये में इस जगह प्रथम आपका कपटको खोलकरके पाठक वर्गको दिखाता हूं—

१ प्रथम श्रीचौदह पूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामीजी कृत श्रीकल्पसूत्रका मूलपाठ लिखा था उसी पाठमें आषाढ़ चौमासीसें एकमास और वीशदिने पर्युषणा करना कहा है श्रावण अथवा भाद्रपदका नियम नही कहा है परन्तु ५० दिनका नियम है सोही दिनोंकी गिनतीसें ५० दिने पर्युषणा करना चाहिये श्रीकल्पसूत्रका मूलपाठ भावार्थ सहित इसीही ग्रन्थके आदिमें पृष्ठ ४।५।६में छप गया है सोही पाठ इस वर्त्तमान कालमें आत्मार्थियोंको प्रमाण करने योग्य है ;

२ दूसरा श्रीपूर्वधर पूर्वाचार्य्यजी कृत श्रीवृहत्कल्पचूर्णिका पाठ लिख भेजा था सोही श्रीवृहत्कल्पचूर्णिके तीसरे उद्देशके पृष्ठ २६४ से २६५ तकका पर्युषणा सम्बन्धी पाठको यहां लिख दिखाता हूं तथाच तत्पाठः—

इदाणिं जंमि काले वासावासं ठाइतव्वं, जच्चिरं वा जाए वा विहीए तं भणन्ति, आसाढ़ गाथा बाहिं ठिया गाथा, उस्सग्गेण जाव आसाढ़पुण्णिमाए चेव पज्जोसवेंति, असत्ति खेत्तस्स बाहिंठाइत्ता, वसभा खेत्तं अतिगन्तुं वासावासजोग्गाणि, संथारग खेल्लमल्लगादीणि गिण्हन्ति, काइयउच्चारणा भूमिओ बंधन्ति, ताहे आसाढ़पुण्णिमाए अतिगन्तुं,पञ्चेहिं दिवसेहिं पज्जोसवणा कप्पं कथित्ता, सावणबहुलपक्खस्स पञ्चमीए पज्जोसवेंति पज्जोसवित्ता, उक्कोसेणं मग्गसिरबहुलदसमीओ जाव, तत्थ अत्थितव्वं, किंकारणं पच्चिरकालं वसति जतिचिक्खल्लो वासं वा पडति, तेण इच्चिरं इधरा कत्तियपुण्णिमाए चेव णिग्गन्तव्वं, एत्थतु गाथा अस्मिन्नत्र पज्जोसवेइ इत्यर्थः॥ अणभिग्गहितं णाम, गिहत्था जति पुच्छन्ति, ठितत्थं वासावासं एवं, पुच्छितेहिं, भणियव्वं, ण ताव ठामो केच्चिरंकालं एवं, वीसतिरायं वा मासं, कथं, जति अधिमासतो पडितो तो वीसतिरायं, गिहिणातं ण कज्जति, किंकारणं, एत्थ अधिमासओ चेव मासो गणिज्जति, सो वीसाए समं, वीसतिराती भस्रति चेव, अथ ण पडितो अधिमास तो वीसतिरातं मासं, गिहिणातं ण कज्जति, किं पुण एवं उच्यते। असिवादि गाथार्द्धं, असिवादीणि कारणाणि जाताणि, अथवा ण णिरातं वासं आरद्धं, ताधे लोगो चिंतेज्जा अणावुठित्ति तेण धस्स संगहे करेंति,

असंथरंताणं णिग्गमणं दो तेहियभणियं ठियामोत्ति, पच्छा लोगो भणेज्जा एत्तिल्लयंपि एते ण याणन्ति एवं पवयणोवघातो भवति, ठियामोतिय भणि ते लोगो चिंतेइ जाणंते अवस्स वरिसइ ताधे लोगो धरछंदेण हलकुलियादी करेंति, तम्हा सवीसति राते मासे अभिग्रहीतं गृहीज्ञातमित्यर्थः । एत्थउगाथा एत्थेति, आसाढ चउम्मासिए पडिक्कंते, पञ्चेहिं पञ्चेहिं दिवसेहिं गतेहिं, जत्थ जत्थ वासावासयोग्गं खेत्तं पडिपुस्सं तत्थ तत्थ पज्जोसवेयव्वं, जाव सवीसइ रातो मासो, उस्सग्गेण पुण आसाढ़सुद्धदसमि पच्छद्धं, इयसत्तरी गाथा, एवं सत्तरी भवति, सवीसति राते मासे पज्जोसवेत्ता, कत्तिय पुण्णिमाए पडिकमित्ता, बितियदिवसे णिग्गयाणं, पञ्चसत्तरी भद्दवयअमावसाए पज्जोसवेताणं, भद्दवयबहुलदसमीए असीत्ति, भद्दवयबहुलपञ्चमीए पञ्चासीति सावणपुण्णिमाए णउत्ति, सावणसुद्धदसमीए पञ्चणउत्ति, सावण सुद्धपञ्चमीए सतं, सावण अमावसाए पंचुत्तरं सयं, सावणबहुलदसमीए दसुत्तरं सतं, सावणबहुलपञ्चमीए पणरसुत्तरं सतं,आसाढ़पुण्णिमाए वीसुत्तरं सतं, कारणे पुण छम्मासितो जेठोत्ति उक्कोसो उग्गहो भवन्ति, कथं जति वा पच्छद्धं अस्य व्याख्या, कत्तिएण गाथा उवट्ठिए, आसाढ मासकप्पए कते वासावासपाउग्ग खेत्तासती, तत्थेव वासो कातव्वो, पञ्चहिं दिवसेहिं पज्जोसवणा कप्पं कथिता, चाउम्मासिए चेव पज्जोसवेंति, तं पुण इमेण कारणेण मग्गसिरं अत्थिज्जइ जति वासति पच्छद्धं आलम्बणं मासं पडेति, चिरकल्लो, आसाढ़े वासा रत्तिया चत्तारि मग्गसिरोय एते छम्मासिओ जेट्ठोग्गहो, पत्थाणेहिं पवत्तेहिंपि णिग्गतव्वं ।

देखिये ऊपरके पाठमें पर्युषणाधिकारे चेव निश्चय करके अधिकमासको गिनतीमें कहा है और पूर्वधरादि उग्रविहारी महानुभावोंके लिये निवासरूप पर्युषणा (योग्यक्षेत्र तथा उपयोगी वस्तुयोंका योग होनेसें) उत्सर्गसें आषाढ़पूर्णिमाकोही करनी कही परन्तु योग्यक्षेत्रादिके अभावसें अपवादसें पांच पांच दिनकी वृद्धि करते अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीश दिन (श्रावण शुक्लपञ्चमी) तक तथा चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिन (भाद्रपदशुक्लपञ्चमी) तक पर्युषणा करनी कही–आषाढ़पूर्णिमाकी तथा पांच पांच दिन की वृद्धिकी पर्युषणाको अधिकरणदोषोंकी उत्पत्ति न होनेके कारण गृहस्थी लोगोंके न जानी हुई अज्ञात पर्युषणा कही है इसका विशेष खुलासा इन्ही ग्रन्थमें अनेक जगह छपगया है और वीशदिने तथा पचास दिने गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई ज्ञातपर्युषणा कही उसीमें वार्षिक कृत्य वगैरह करनेमें आतेथे इसकाभी खुलासा इन्ही ग्रन्थमें अनेक जगह छप गया है जिसमें भी विशेष विस्तार पूर्वक पृष्ठ १०१ से ११७ तक अच्छी तरहसें निर्णय करनेमें आया है। और मासवृद्धिके अभावसें पर्युषणाके पिछाड़ी कार्त्तिक तक ७० दिन रहते हैं तैसेंही मासवृद्धि होनेसें पर्युषणाके पिछाड़ी कार्त्तिक तक १०० दिन रहते हैं इसका भी विस्तार अनेक जगह छपगया है जिसमें भी विशेष करके पृष्ठ १२७ से १२९ तक और १७४ से १८३ तक अच्छी तरहसें निर्णयके साथ छपगया है और उत्कृष्टसें १८० दिन का कल्प कहा है ;—

और तीसरा श्रीजिनपतिसूरिजी कृत श्रीसमाचारी ग्रन्थकापाठलिखभेजाथा सोहीपाठ यहां दिखाताहूं यथा :—

सावणे भद्दवएवा, अहिगमासे चाउमासीओ ॥ पन्नास इमे दिणे, पज्जोसवणा कायव्वा न असीमे, इति—

भावार्थः—श्रावण और भाद्रपद मास अधिक होतो भी आषाढ़ चौमासीसें पचासमें दिन पर्युषणा करना चाहिये परन्तु अशीमें दिन नही करना । इस जगह सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि ऊपरोक्त तीनों शास्त्रोंके पाठ आगमानुसार तथा युक्तिपूर्वक होनेसें छठे महाशयजीको प्रमाण करने योग्य थे तथापि गच्छका पक्षपातके और पण्डिताभिमानके जोरसें ऊपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंको प्रमाण न करते हुवे श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठको तथा श्रीवृहत्कल्पचूर्णिके पाठको छुपाकरके मायावृत्तिसें श्रीजिनपति सूरिजी की समाचारीके पाठ पर अपने विद्वत्ताकी चातुराई दिखाई है कि (यही तो विवादास्पद है कि श्रीजिनपति सूरिजीनें समाचारीमें जो यह पूर्वोक्त हुकमजारी किया है कौनसे सूत्रके कौनसें दफे मुजिब किया है) छठे महाशयजीके इस लेख पर मेरेको वड़ाही आश्चर्य्य सहित खेदके साथ लिखना पड़ता है कि श्रीवल्लभविजयजीको अनुमान २२। २३ वर्ष दीक्षा लिये हुए है तथा कुछ व्याकरणादि भी पढ़े हुए सुनते हैं परन्तु इस जगह तो श्रीवल्लभविजयजीनें अपनी खूब अज्ञता प्रगट करी हैं क्योंकि श्रीनिशीथसूत्रके लघु भाष्यमें, १ तथा वृहद्भाष्यमें २ और चूर्णिमें ३ श्रीवृहत्कल्पसूत्रके लघु भाष्यमें ४ तथा वृहत्भाष्यमें ५ और चूर्णिमें ६ श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रमें ७ तथा चूर्णिमें ८ श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें ९ तथा तद्वृत्तिमें १० और श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रकी वृत्तिमें ११ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें कहा है कि पचास दिने अवश्यही पर्युषणा

करनी चाहिये । तथापि पर्य्युषणा करने योग्यक्षेत्र नही मिले तो विजन (जङ्गल) में भी वृक्ष नीचे पचास वें दिन जरूर पर्युषणा करनी परन्तु पचासमें दिनकी रात्रिको उल्लङ्घन नही करना यह बात तो प्रसिद्ध है इसीके सम्बन्धमें इन्ही ग्रन्थके आदिमें श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रकी वृत्तिका पाठ पृष्ठ १८।१९ में और श्रीवृहत्कल्पवृत्तिका पाठ पृष्ठ २१ से २५ तक, और श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रकी चूर्णिका पाठ पृष्ठ ९१ से ९४ तक, और श्रीनिशीथसूत्रकी चूर्णिका पाठ पृष्ठ ९५ से ९९ तक, तथा तद्भावार्थ पृष्ठ १०० से १०५ तक छप गया है,—

ऊपरोक्त शास्त्रोंमें आषाढ़ चौमासीसे पांच पांच दिनोंकी वृद्धि करते (दशवें पञ्चकमें) पचासवें दिने प्रसिद्ध पर्युषणा मासवृद्धिके अभावसें चन्द्रसंवत्सरमें करनी कही है और मासवृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सरमें पांच पांच दिनोंकी वृद्धि करते (चौथे पञ्चकमें) वीशवें दिने प्रसिद्ध पर्युषणा कही सो प्राचीनकालाश्रय पूर्वधरादि उग्रविहारी महाराजोंके लिये श्रीजैनज्योतिषके पञ्चाङ्ग मुजब वर्त्तनेके सम्बन्धमें कही परन्तु अबी इस वर्त्तमानकालमें जैन पञ्चाङ्गके अभावसें और पड़ते कालके कारणसें ऊपरका व्यवहार श्रीसन्घकी आज्ञासें विच्छेद हुवा है सोही दिखाता हूं ।

श्रीतीत्थोगालिय (तीर्थोद्धार) पयन्नामें कहा है-यथा ;—

वीसदिणेहिं कप्पो, पंचगहाणीय कप्पठवणाय,
नवसय तेणउएहिं, वुच्छिन्ना संघआणाए ॥ १ ॥

देखिये ऊपरकी गाथामें वीश दिनका कल्प, तथा पांच पांच दिनकी वृद्धि करके अज्ञातपर्युषणास्थापन करनेसें पिछाड़ी कालावग्रह संबंधी श्रीवृहत्कल्पवृत्ति, श्रीदशाश्रुतचूर्णि,

श्रीनिशीथचूर्णि,श्रीवृहत्कल्पचूर्णिके, पाठ खुलासापूर्वक छप गये हैं सोही पंचकपरिहानीका कल्प, और कल्प स्थापना याने—योग्य क्षेत्रके अभावसें पांच पांच दिनकी वृद्धिसें अज्ञातपर्युषणा स्थापन करे उसी रात्रिको वहां श्रीकल्पसूत्र के पठन करनेका कल्प, यह तीनों बातें वीर संम्वत् ९९३ (विक्रम संम्वत् ५२३) में श्रीसंघकी आज्ञासें विच्छेद हुई। तब चन्द्रसंवत्सरमें और अभिवर्द्धितसंवत्सरमें भी आषाढ़ चौमासीसें ५० दिने पर्युषणा करनेके कल्पकी मर्य्यादा रही तथा पचासवें दिनही श्रीकल्पसूत्रके पठन करनेके कल्पकी मर्यादा भी रही और उसी वर्षे श्रीमान् परम उपगारी श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी महाराजनें श्रीजैन-शास्त्रोंको पुस्तका रूढमें किये उसी समय श्रीदशाश्रुत-स्कन्धसूत्रके आठमें अध्ययनको लिखती वख्त, जिन चरित्र तथा स्थिरावली और साधुसमाचारीका संग्रह करके अष्टम अध्ययनको संपूर्ण किया तब पांच पांच दिनकी वृद्धिसें अभिवर्द्धित सम्वत्सरमें चार पञ्चक वीश दिनका तथा चन्द्र-सम्वत्सरमें दशपञ्चकका (कल्प) व्यवहारको न लिखा और चन्द्रसं० अभिवर्द्धितसं० इन दोनु सम्वत्सरोंमें ५० दिनका एकही नियम होनेसें पचास दिनेही प्रसिद्ध पर्युषणा करनेका नियम दिखाया है यह श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रका अष्टमाध्य-यन श्रीकल्पसूत्रजीके नामसें जूदा भी प्रसिद्ध है उसी श्री-कल्पसूत्रका पर्युषणा सम्बन्धी पाठ भावार्थ सहित इन्ही ग्रन्थकी आदिमें पृष्ठ ४।५।६ तक छप चुका है सोही पाठार्थ सूर्य्यकी तरह प्रकाश करता है कि इस वर्त्तमानकालमें आ-षाढ़ चौमासीसें पचास दिन जहां पूरे होवे वहांही पर्यु-

षणा करनी चाहिये इसीही श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठादिके अनुसार श्रीजिनपतिसूरीजीनें समाचारीमें लिखाहै कि-अधिक मास हो तो भी पचास दिने पर्युषणा करना परन्तु असी दिने नही करना चाहिये-इस लेखको देखके छठे महाशयजी लिखते हैं कि (यहीतो विवादास्पद है श्रीजिन पति सूरिजीने समाचारीमें जो यह पूर्वोक्त हुकम जारी किया है कौनसे सूत्रके कौनसें दफे मुजब किया है) इस पर मेरेको इतनाही कहना है कि श्रीकल्पसूत्रके पर्युषणा सम्बन्धी साधुसमाचारीका मूलपाठ इन्ही ग्रन्थके पृष्ठ ४।५में छपा है उसी मूलपाठके अनेक दफों मुजब श्रीजिनपति सूरिजीनें समाचारीमें पूर्वोक्त हुकम जारी किया है सो श्रीजैन आगमानुसार है इसका निर्णय ऊपरमेंही कर दिखाया हैं इसलिये छठे महाशयजी आपको श्रीजिनपति सूरिजीके वाक्यमें जो शङ्कारूपी मिथ्यात्वका भ्रम पड़ा है सो उपरका लेखको पढ़के निकालदो और मिथ्या पक्षको छोड़कर सत्य बातको ग्रहण करके, निःसन्देहरूपी सम्यक्त्व रत्नको प्राप्तकरो क्योंकि आपके विवादास्पदका निर्णय उपरमेंही होगया है। और पृष्ठ १५७ सें १६५ तक भी पहिले छपगया है।

बड़ेही आश्चर्य्यकी बात है कि-श्रीवल्लभविजयजीको २२।२३ वर्ष दीक्षा लिये हुवे और हर वर्ष गांम गांममें श्रीपर्युषणापर्वके व्याख्यानमें खुलासा पूर्वक व्याख्या सहित वंचाता हुवा श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठका तथा मूलपाठके व्याख्याका अर्थ भी उन्हकी समझमें नही आया होगा इसलिये ५० दिने पर्युषणा करनेका श्रीजिनपति सूरिजीका लेख पर शङ्का करी इससें मालूम होता है कि पर्युषणा सम्बन्धी

श्रीकल्पसूत्रके पाठसें तथा तद्पाठकी व्याख्यासें आप अज्ञ होवेंगे अथवा तो भोले जीवोंको गच्छ कदाग्रहका भ्रममें गेरनेके लिये जानते हुवे भी तीसरे अभिनिवेश मिथ्यात्वके आधिन हो करके मायावृत्तिसें लिखा होगा सो विवेकी विद्वान् स्वयं विचार लेवेंगे :—

और आगे छठे महाशयजी दम्भप्रियजीनें फिरभी लिखा है कि (हाँ यदि ऐसा खुलासा पाठ पञ्चाङ्गीमें आप कहीं भी दिखा देवें कि दो श्रावण होवे तो पीछले श्रावणमें और दो भाद्रपद होवें तो पहिले भाद्रपदमें सांवत्सरिक प्रतिक्रमण, केश लुञ्चन, अष्टमतपः, चैत्यपरिपाटी, और सर्व सङ्घके साथ खामणारूप पर्युषणा वार्षिकपर्व करना तो हम माननेको तैयार है)

श्रीवल्लभविजयजीके इस लेखपर मेरेको प्रथमतो इतना ही कहना है कि ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेवालोंको आपने आज्ञा भंगका दूषण लगाया तब श्रीबुद्धिसागरजीनें आपको पत्र द्वारा पूछा कि कौनसे शास्त्रोंके पाठ मुजब ५० दिने पर्युषणा करनेवालोंको आपने आज्ञा भङ्गका दूषण लगाया है सो बतावो इस तरहसें शास्त्रका प्रमाण पूछा उसीको आप शास्त्रका प्रमाणतो बता सके नहीं तब पंडिताभिमानके जोर की मायावृत्तिसें निष्प्रयोजनकी अन्य अन्य बातें लिखके उलटा उन्हीसें ही शास्त्रका प्रमाण पूछने लगे सो दंभप्रियजी यह आपका पूछना अन्यायकारक है क्योंकि प्रथम आपने ही आज्ञा भंगका दूषण लगाया है इसलिये प्रथम आपको ही शास्त्रका प्रमाण बताना न्याययुक्त उचित है तथापि जब तक आप

अपनी बात संबन्धी शास्त्रका प्रमाण नही बतावोगे तब तक आपका दूसरोंको पूछना है सो निकेवल बाललीलावत् विवेकशून्यतासें अपने नामकी हासी करनेका कारण है सो विद्वान् पुरुष स्वयं विचार सकते है ;—

दूसरा—श्रीवल्लभविजयजी सें मेरा (इस ग्रन्थकारका) बड़ेही आग्रहके साथ यही कहना है कि आपने ५० दिने पर्युषणा करनेवालोंको आज्ञा भंगका दूषण लगाया सो शास्त्रप्रमाण मुजब और न्यायकी युक्ति करके सहित सिद्ध कर दिखावो अथवा नहीं सिद्धकरसकोतो श्रीचतुर्विध संघ समक्ष मन बचन कायासें अपनी उत्सूत्रभाषणके भूलकी क्षमा मांगकर मिथ्या दुष्कृतसें अपनी आत्माको भवान्तर में उत्सूत्रभाषण की शिक्षा भोगनेसें बचालेवो ;—

और आप इन दोनु मेसें एक भी नही करोगे और इस बातको छोड़ कर निष्प्रयोजनकी अन्य अन्य बातोंसें वृथा वाद् विवाद् खण्डन मण्डन तथा दूसरेकी निन्दा अवहेलनासें झगड़ा टंटा करके आपसमें जो जो संपसें शासन उन्नतिके और भव्य जीवोंके उद्धारके कार्य होते है जिसमें विघ्न कारक राग द्वेष निन्दा ईर्षासें कर्म्म बन्धके हेतु करोगे करावोगे और मिथ्यात्वको बढावोगे जिसके दोषाधिकारी निमित्त भूत दम्भप्रियजी श्रीवल्लभविजयजी खास आपही होवोगे इस लिये निष्प्रयोजनकी अन्याय कारक वृथा अन्य अन्य बातों को छोड़कर अपनी बात संबन्धी शास्त्रका प्रमाण दिखावो अथवा अपनी भूल समझके क्षमाके साथ मिथ्या दुष्कृतदेवो नहीं तो आप आत्मार्थी मोक्षाभिलाषी हो ऐसा कोईभी सज्जन नहीं मान सकेंगे किन्तु इस लौकिकमें दृष्टिरागि-

योंसे पूजता मानताके लिये पण्डिताभिमानके जोरसे उत्सूत्रभाषणसे संसार वृद्धिका भय न करते बालजीवोंको कदाग्रहमें गेरके मिथ्यात्वको वढानेवाले आप हो सोतो श्रीजैनशास्त्रोंके तात्पर्यको जाननेवाले विवेकी सज्जन अवश्यही मानेंगे यह तो प्रसिद्धही न्यायकी बात है;—

तीसरा यह है कि दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करने संबन्धी पञ्चाङ्गीका पाठ पूछके मानने को छठे महाशयजी आप तैयार हुए हो परन्तु अपनी तरफसें पंचांगीका पाठ बता सकते नहीं हो इससें यह भी सिद्ध होगया कि इस वर्तमान कालमें दो श्रावण अथवा दो भाद्रपद होनेसें पर्युषणापर्व कबकरना जिसकी आपको अबीतक शास्त्रोंके प्रमाण मुजब पूरे पूरी मालूम नहीं है तो फिर दूसरोंको आज्ञा भंगका दूषण लगाके निषेध करना यहतो प्रत्यक्ष आपका महामिथ्या उत्सूत्रभाषणरूप वृथा ही झगड़ेको वढानेवाला हुवा सो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे ;—

चौथा औरभी सुनो यहतो प्रसिद्ध बात है कि आषाढ चौमासीसें ५० दिने श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन वार्षिक कृत्यादिसें करना कहा है इस न्यायके अनुसार दूसरे श्रावण में अथवा प्रथम भाद्रपदमें ५० दिने पर्युषणा करना सोतो अल्प बुद्धिवाले भी समझ सक्ते है। तो फिर क्या छठे महाशयजीको इतनी भी बुद्धिनहींहै सो ५० दिने दूसरे श्रावण में अथवा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करने संबंधी पञ्चाङ्गी का पाठ पूछते है। इसपर कोई कहेगा कि छठे महाशयजी की ५० दिने पर्युषणा करनेकी बुद्धि तो हैं। इसपर मेरेको

इतनाही कहना है कि ५० दिने पर्युषणा करनेकी बुद्धि हैं सो फिर जानते हुवे भी तीसरे अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके अधिकारी क्यों बनके पञ्चाङ्गीका प्रमाण पूछकरके भोलेजीवों को संशयरूपी मिथ्यात्वका भ्रममें गेरे है और अधिकमास की गिनती निश्चय करके स्वयं सिद्ध है सो कदापि निषेध नहीं हो सकती है जिसका खुलासा इस ग्रन्थमें अनेक जगह छपगया है इसलिये दो श्रावण होतेभी ८० दिने भाद्रपदमें अथवा दो भाद्रपद होनेसे भी ८० दिने दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणा अपनी मति कल्पनासें श्रीजिनाज्ञाविरुद्ध क्यों करते है क्योंकि पचासवें दिनकी रात्रिको भी उल्लङ्घन करनेवालेको शास्त्रोंमें आज्ञा विराधक कहा है इसलिये ८० दिने पर्युषणा करनेवाले अवश्यही आज्ञाके विराधक हैं यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है और ८० दिने पर्युषणा करनेका कोईभी श्रीजैनशास्त्रोंमें नहीं लिखा है परन्तु ५०दिने पर्युषणा करनेका तो पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें लिखा है सो इसीही ग्रन्थमें अनेक जगह छपगया है तथापि दंभप्रियजीने अभि-निवेशिक मिथ्यात्वसें दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें ५० दिने पांच कृत्योंसें पर्युषणा वार्षिक पर्व करने संबंधी पंचांगीका पाठ पूछके भोले जीवोंको भ्रममें गेरे है सो दंभ-प्रियेजीके मिथ्यात्वका भ्रमको दूर करनेके लिये और मोक्षा-भिलाषी सत्यग्राही भव्यजीवोंको निःसन्देह होनेके लिये इस जगह मेरेको इतनाही कहना है कि—श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठसें ५०दिने पर्युषणा करनी कही है इसलिये श्रावणमासकी वृद्धि होनेसें दूसरे श्रावणमें अथवा भाद्रपदमासकी वृद्धि होनेसें प्रथम भाद्रपदमें जहां ५०दिन पूरे होवे वहांही प्रसिद्ध पर्युषणामें

साम्वत्सरिक प्रतिक्रमणादि पांच कृत्योंसें वार्षिकपर्व कर-
नेका समझना चाहिये क्योंकि जहां प्रसिद्ध पर्युषणा वहांही
वार्षिक कृत्यादि करनेका नियम है सो तो श्रीकल्पसूत्रकी
नव (९) व्याख्यार्थोंमें श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छा
दिके सबी टीकाकारोंनें खुलासा पूर्वक लिखा है इसका
विस्तार इसीही ग्रन्थकी आदिसें लेकर पृष्ठ २० तक छप
गया है और उन्ही टीकाओंमें पचास दिने भाद्रपद शुक्ल-
पञ्चमीको सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि पांच कृत्योंसें वार्षिक
पर्वरूप प्रसिद्ध पर्युषणा करनी कही है सो तो मास
वृद्धिके अभावसें चन्द्रसंवत्सरमें नतु मासवृद्धि होते भी
अभिवर्द्धित संवत्सरमें क्योंकि प्राचीनकालमें भी पौष
अथवा आषाढ़ मासकी वृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सरमें
वीश दिने श्रावणशुक्ल पञ्चमीको सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि
पाँच कृत्योंसें प्रसिद्ध पर्युषणा जैनपञ्चाङ्गानुसार करनेमें
आती थी इस बातका निर्णय श्रीकल्पसूत्रकी टीकाओंमें
तथा इसीही ग्रन्थमें अनेक जगह और विशेष करके पृष्ठ
१०७ सें ११७ तक छप गया है परन्तु इस वर्त्तमान कालमें
वीश दिने पर्युषणा करनेका कल्पविच्छेद होनेसें तथा जैन
पञ्चाङ्गके अभावसें और लौकिक पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी
वृद्धि होनेके कारणसें ५० दिनेही प्रसिद्ध पर्युषणा वार्षिक
कृत्यादिसें करनेकी शास्त्रोंकी तथा श्रीखरतरगच्छके और
श्रीतपगच्छादिके पूर्वज पूर्वाचार्य्योंकी मर्य्यादा है सो तो इस
ग्रन्थकी आदिसेंही लेकर ऊपर तकमें अनेक जगह छप गया
है और सातमें महाशयजी श्रीधर्म्मविजयजीके नामकी सभी
क्षामें भी छपेगा (और वर्षाकालमें जीवदयादिके लियेही

खास करके दिनोंकी गिनतीसें पर्युषणा करनेका श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक कहा है) इस लिये इस वर्त्तमान कालमें दूसरे श्रावण में अथवा प्रथम भाद्रपदमें ५० दिनेही प्रसिद्ध पर्युषणा सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि पांच कृत्यों सहित अवश्यही निश्चय करके करनी चाहिये सो पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके प्रमाणानुसार तथा युक्तिपूर्वक स्वयं सिद्ध है सो तो ऊपरके लेखको तथा इस ग्रन्थको आदिसें अन्ततक आठों महाशयोंके लेखकी समीक्षाको पढ़नेवाले मोक्षाभिलाषी सत्यग्राही सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे तथा छठे महाशयजी आप भी हृदयमें विवेक बुद्धि लाकरके न्याय दृष्टिसें पढ़कर अच्छी तरहसें विचारो और आप सत्यवादी महाव्रतधारी आत्मार्थी होवो तो पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाणानुसार और खास आपके गच्छके भी पूर्वाचार्य्योंकी मर्य्यादानुसार ५० दिने दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि पाँच कृत्योंसे प्रसिद्ध पर्युषणा वार्षिकपर्व करनेका ऊपरोक्त प्रत्यक्ष न्यायानुसार तथा युक्तिपूर्वक शास्त्रोंके प्रमाणको ग्रहण करो और शास्त्रोंके प्रमाण विना तथा युक्तिके विरुद्धका मिथ्या कदाग्रहको छोड़ो और ५० दिने पर्युषणापर्व करनेका निषेध करने सम्बन्धी जितनी कुतर्का करनी है सो सबीही संसारवृद्धिकी हेतुरूप तथा भोले जीवोंकी सत्यबात परसें श्रद्धा भ्रष्ट करके गच्छ कदाग्रहके मिथ्यात्वका भ्रममें गेरनेके लिये अपने विद्वत्ताकी हासी करानेवाली है सो भवभीरू मोक्षाभिलाषी आत्मार्थियोंको करनी उचित नही है तो फिर छठे

महाशयजीने शास्त्रानुसार ५० दिने पर्युषणा पर्व करने वालोंको मिथ्या आज्ञाभङ्गका दूषण लगाके उत्सूत्र भाषण-रूप ८० दिने पर्युषणा करनेका पुष्टकिया जिसकी आलो-चना लिये विना कैसे आत्मका सुधारा होगा सो न्यायदृष्टि वाले सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे ;—

अब छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीनें दूसरे गुज-राती भाषाके लेखमें मिथ्यात्वके झगड़ेको वढ़ानेके लिये जो लेख लिखा है उसीका नमूना यहाँ लिख दिखा करके पीछे उसीकी समीक्षा करता हूं—नवेम्बर मासकी ७वीं तारीख सन् १९०९ गुजराती आश्विन वदी १ हिन्दी कार्त्तिक वदी १ वीर संवत् २४३५ का जैनपत्रके ३० वा अङ्कके पृष्ठ पांचमा की आदिमें ही लिखा है कि,—

[वन्दे वीरम्—लेखक मुनि वल्लभविजय मु० पालणपुर

सावधान ! सावधान !! सावधान !!!

आचार्य्य सावधान ! उपाध्याय सावधान ! पन्यास सावधान ! गणी सावधान ! साधुसाध्वी सावधान ! यतीवर्ग सावधान ! श्रावक श्राविका सावधान ! शेठी-याओ सावधान ! कोन्फरन्स सावधान ! वकील प्लीडर सावधान ! बेरिस्टअेटलो सावधान ! नाणा कोथली सावधान ! लागता वलगता सावधान ! कागज कलम सावधान ! खड़ीओ रुशनाई सावधान ! सावधान ! साव-धान !! सावधान !!! तपगच्छमान धरावनार सावधान ! खरतरगच्छीय सावधान !]

छठे महाशयजीके इन अक्षरों पर मेरेको बड़ाही आश्चर्य्य उत्पन्न होता है कि श्रीवल्लभविजयजीकी विवेक

बुद्धि कैसी शून्य होगई है सो अपनी हासी करानेवाले बिना विचारे शब्द लिखते कुछ भी लज्जा नही आई क्योंकि श्रीवल्लभविजयजी आत्मार्थी महाव्रतधारी साधु होते तो वकील, बेरिस्टर, और नाणा कोथली, वगैरहको सावधान! सावधान!! पुकारके कोर्ट कचेरीमें झगड़ा वढ़ानेकी तैयारी कदापि नही करते तथापि करी इससे विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे कि–श्रीवल्लभविजयजीनें भेष धारण करके साधु नाम धराया परन्तु अन्तरमें श्रद्धारहित होनेसें शास्त्रार्थ पूर्वक सत्य असत्यका निर्णय करना छोड़ करके श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छके आपसमें कोर्ट कचेरीमें झगड़ेको वढ़ानेके लिये श्रीजैनशासनकी निन्दा करानेवाले तथा मिथ्यात्वको वढ़ानेवाले और अपने नामको लज्जनीय शब्द लिखते पूर्वापरका कुछ भी विचार न किया और शक्त दिवाने वड़ेही पागलकी तरह—नाणा कोथली (रुपैयोंकी थेली) तथा कागद कलम और खड़ीओ रुशनाई (द्वात शाही) अचेतन अजीव वस्तुयोंको सावधान! सावधान!! पुकारा–वाह क्या विद्वत्ताकी चातुराईका नमूना छठे महाशयजीने प्रकाशित किया है सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे,–

और दूसरा यह है कि खास छठे महाशयजीकी सम्मति पूर्वक पञ्जाब अमृतशहरसें, घासीराम और जुगलरामको गङ्गाजी भेजकर पवित्र करवाये जिसका कारण संक्षिप्तसें इसीही ग्रन्थके पृष्ट १७५–१७६ में छपगया है और विशेष विस्तार पूर्वक पञ्जाब लाहोरसें जसवन्तराय जैनीकी मारफत श्रीआत्मानन्द जैन पत्रिका मासिक पत्र प्रसिद्ध

होता है उसीमें सन् १९०८ के २–३ अङ्कमें छप चुका है उसी घासीराम और जुगलरामको गङ्गाजी भेजकर पवित्र कराने सम्बन्धी ढूंढकसाधुनामधारक कुंदनमल्लने १४ पृष्ठकी छोटीसी एक पुस्तक बनाकरके प्रगट कराई है सो पुस्तक छठे महाशयजीनें वांची है और उन्हके पास भी है उसी पुस्तकमें छठे महाशयजीके गुरुजी न्यायाम्भोनिधिजी श्रीआत्मारामजी सम्बन्धी तथा श्रीजैनश्वेताम्बर मूर्त्तिपूजने वालों सम्बन्धी और श्रीसिद्धाचलजी श्रीगीरनारजी श्रीआबूजी श्रीसमेतशिखरजी वगैरह श्रीजैनतीर्थों सम्बन्धी अनेकतरहके अनुचित शब्द लिखके निन्दा करी है उसीके निमित्त भूत छठे महाशयजी वगैर हुवे हैं और उसी पुस्तकके पृष्ठ ३–४में घासीराम और जुगलरामको गङ्गाजीके जलसें पवित्र कराये तैसेही छठे महाशयजीके गुरुजी श्रीआत्मारामजीको गङ्गाजीके जलसें पवित्र न करानेके कारण अपने गुरुजीको और अपने गुरुजीकी सम्प्रदायमें दीक्षा लेनेवालोंको अपवित्र ठहरनेका कलङ्क लगवाया और पृष्ठ ११ में घासीराम, जुगल रामको गङ्गाजी भेजने वालोंको तथा भेजाने वालोंको और सम्मती देकर अच्छा समझने वाले छठे महाशयजी आदिको मिथ्यात्वी, पाखण्डी, वगैरह शब्दोंका इनाम देकर फिर पृष्ठ १३ के अन्तमें गङ्गाजी भेजने वालोंको श्रीजैनशासनको लांछन (कलङ्क) लगानेवाले ठहराकरके तीन वार धीक्कारका इनाम दिया है ।

इस जगह निष्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि श्रीजैनतीर्थोंकी तथा श्रीजैनतीर्थोंकों मानने वालोंकी द्वेष बुद्धिसें बड़ेही अनुचित शब्दोंसें निन्दा करके

भारी कर्मोंके बंध किये हैं और श्रीजैनशासनके निन्दकोंको भी उसी रस्ते पहुंचानेके लिये नरकादि अधोगतिका सार्थवाह (कुंदनमल्ल ढूंढक) बना है और पुस्तक प्रगट कराई हैं जिसमें छठे महाशयजीके गुरुजीकी तथा उन्होंके सम्प्रदाय वालोंकी भी निन्दा करी हैं तथा खास छठे महाशयजी वगैरहको भी अनेक शब्द लिखते तीनवार धीक्कार भी लिख दिया हैं और श्रीजैनशासनकी निन्दा करके मिथ्यात्व बढ़ानेका कारण किया—उसीको तो छठे महाशयजीनें कुछ जबाब भी न दिया और सर्व श्रीसङ्घको तथा वकील, बेरिस्टर वगैरहको सावधान करके कोर्ट कचेरीमें श्रीजैनशासनके निन्दक कुंदनमल्लको शिक्षा दिलानेकी किञ्चिन्मात्र भी बहादुरी न दिखाई परन्तु श्री खरतरगच्छके और श्रीतपगच्छके आपसमें वृथाही कोर्ट कचेरीमें झगड़ा फैलानेके लिये और मिथ्यात्व बढ़ानेके लिये, वकील, बेरिस्टर, वगैरको सावधान करके बड़ीही बहादुरी दिखाई हैं सो बड़ीही आश्चर्य्यकी बात है कि श्रीजैनशासनके दुशमन निन्दको से तो मुख छिपाते हैं और आपसमें झगड़ा करनेकी बहादुरी दिखाते कुछ लज्जा भी नही पाते है,—

अब छठे महाशयजीको मेरा (इस ग्रन्थकारका) इतनाही कहना है कि—आप सम्यक्त्वी और श्रीजैनशासनके प्रेमी होवो तो प्रथम श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छके आपसमें न्यायानुसार शास्त्रार्थ पूर्वक अन्तरका पक्षपात छोड़कर सत्य असत्यका निर्णय करके असत्यको छोड़के सत्यको ग्रहण करो और श्रीजैनशासनके निन्दक कुंदनमल्लके

मिथ्यात्वका पाखण्डको च्छेदन करनेके लिये अपनी बही दुरी प्रगट करो—जबतक कुंदनमल्लके मिथ्यात्व वढ़ानेवाले लेखका जबाव आप नही देवोगे तबतक आपकी विद्वत्ता वृथाही समझनेमें आवेगी और ढूंढकोंके मुखपर शाही फिरानेके इरादेसें कार्य्य करनेकी अक्कल आपने दोडाई थी परन्तु पूर्वापरका विचार किये बिना कार्य्य कराया जिससें आपकेही मुखपर शाही फिरने जैसा कारण बनगया और श्रीजैनतीर्थोंकी तथा अपने गुरुजी वगैरहकी निन्दा करानेके निमित्त भूत दोषाधिकारी भी आपकोही बनना पड़ा है और अपने बड़ोको अपवित्र ठहरानेका कलङ्क भी लगवाया है इसलिये कुंदनमल्ल ढूंढकके निन्दारूपी मिथ्या गप्पोंका जबाव देना आपकोही उचित है तथापि उन्हका जबाव देना आपको मुश्किल होवे तो आपके मण्डलीमें विद्वत्ता का अभिमान धारण करनेवाले बहुतसें साधुजी है उन्हके पास उसीका जबाब दिलाना चाहिये इतने पर भी आप की तथा आपके मण्डलीके साधुओंकी कुंदनमल्लके लेखका जबाब देनेकी बुद्धि नही होवे तो मेरी तरफसें इस ग्रन्थको संपूर्ण हुए बाद "कुंदनमल्लके मिथ्यात्वका पाखण्डच्छेदन कुठार" नामा ग्रन्थ आप लिखो तो बनाकर प्रगट करू जिसमें श्रीजैनतीर्थों पर तथा श्रीजैनतीर्थोंको माननेवालों पर और आपके गुरुजी वगैरह पर जो जो आक्षेप करके दूषण लगाया है जिसका न्यायानुसार युक्तिपूर्वक अच्छी तरहसें जबाब लिखके सबके आक्षेपको दूर करनेमें आवेगा और कुंदनमल्लने अपने अन्तर गुण युक्त जो जो शब्द लिखे हैं उसीकाही न्याय युक्तिपूर्वक खास कुंदनमल्लकेही ऊपर घटानेमें आवेगा,—

और आगे फिर भी छठे महाशयजीनें लिखा है कि (अमो नहोता धारताके महात्मा मुनि मोहनलालजीना काल पछी अेहवो पण काल आवशे के जे आपसमां जंजाल फेलावी फालमारी पायमालकरी हाल बेहाल करी देशे पण भवितव्यताने कोण रोके) इत्यादि अनेक तरहके अनुचित शब्द लिखके श्रीमोहनलालजी पर तथा उन्होंके समुदाय वालोंपर द्वेषबुद्धिसें खूबही कटाक्ष करके नाटकरूपसें कितनीही बातोंमें उन्होंको कलङ्क लगाया है उसीका भी युक्ति पूर्वक जबाब यहां लिखनेसें बहुतही विस्तार होजावे इस लिये श्रीमोहनलालजीके तथा उन्होंके संप्रदायके पूर्णप्रेमी और गुरुभक्त (पन्यासजी श्रीजशमुनिजी, पन्यासजी श्रीहर्ष-मुनिजी, और पन्यासजी श्रीकेशरमुनिजी वगैरह मंडली के साधुओंमेंसें) जो महाशय होवेंगे सो दंभप्रियजीके लेखका जबाब लिखके श्रीमोहनलालजीका तथा उन्होंकी समुदाय वालोंका कलङ्कको दूर करेगा।

और इसके आगे फिर भी लिखा है कि (प्रश्नोत्तर-मालिका नामे अेक चोपड़ी रतलाममां वीरसंवत् २४३५ नाकारतक सुदीपाँचमें बेरिस्टरनुंखोटुं नाम लखी छपा-ववामां आवेल छे जेमां तपगच्छ उपर हुमलोकर्या सिवाय बीजुं कांई पण मालम पड़तु नथी कारणके जेजे सवालो लख्याछे प्रायःसर्वना उत्तरो कलकत्ता थी प्रगट थयेल चोप-ड़ीना उत्तर रूपे जैनसिद्धान्त समाचारी नामे भावनगरनी जइन धर्म्मप्रसारक सभा तरफ थी छपायेल चोपड़ीमां आवी गयेल छे) छठे महाशयजीके ऊपरका लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हुं जिसमें प्रथमतो—प्रश्नोत्तरमालिका,

नामा छोटीसी पुस्तकको देख करके छठे महाशयजी श्रीवल्लभ विजयजी और श्रीकलकत्तानिवासी लक्ष्मीचन्दजी सीपाणी वगैरह महाशय कहते फिरते हैं कि—देखो प्रथम वाद विवाद का कारण खरतरगच्छवालोंकी तरफसें होता है जिसका नमूनारूप प्रश्नोत्तरमालिका नामा पुस्तक लोगोंको दिखाते हैं परन्तु प्रश्नोत्तरमालिका पुस्तक बननेका कारण समझे बिना द्वेष बुद्धिसें मिथ्या भाषण करके प्रथम वाद विवादके कारण करनेका श्रीखरतरगच्छवालोंको झूठा दूषण लगाते हैं क्योंकि प्रथम रतलामसें श्रीतपगच्छके श्रावक वृद्धिचन्दजी छोगालालजी गांधीनें श्रीहेदराबादमें चौमासा ठहरे हुवे न्यायरत्नजी श्रीशान्तिविजयजीको पत्र द्वारा, पांच-छ कल्याणकादि सम्बन्धी कितने ही सवाल पूछे जिसके जबाब सप्टेम्बर मासकी २७ वी तारीख सन् १९०८ आश्विन शुदी २ वीर संवत् २४३४ के जैनपत्रका २४ वां अङ्कके पृष्ट ४ में छपे हैं उसीमें श्रीखरतरगच्छवालोंको श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सम्बन्धी पूछा तब उसीके निमित्त कारणसें उसीका जबाब रूपमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकसम्बन्धी शास्त्रोंके पाठों सहित कितनेही शास्त्रानुसार सवालों पूर्वक—प्रश्नोत्तर-मालिका नामा पुस्तक छपी है इसलिये प्रश्नोत्तरमालिका छपनेके निमित्त कारण श्रीशान्तिविजयजी है जो श्रीशान्ति विजयजी श्रीखरतरगच्छवालोंको श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सम्बन्धी नही पूछते तो श्रीखरतरगच्छवालोंको उसीका जबावरूपमें प्रश्नोत्तरमालिका छपा करके प्रगट करनेकी कोई जरूरत नही थी परन्तु प्रथम जो कोई सवाल पूछेगा उसीका जवाब तो शास्त्रानुसार अवश्यही देना सो न्याय

युक्त बात हैं इसलिये प्रथम वाद विवादका कारण श्रीखर-तरगच्छवालोंकी तरफसे नही किन्तु श्रीतपगच्छवालोंकीही तरफसें होता है ;—

और (बेरिस्टरनुं खोटुंनाम लखी छपावामां आवेलछे) छठे महाशयजीका यह भी लिखना द्वेष बुद्धिका मिथ्या है क्योंकि यह तो दुनियामें प्रसिद्ध व्यवहार है कि—ऋषभ, महावीर, वर्द्धमान, गौतम, इन्द्र, लक्ष्मीपति, अमर, राजा, महाराज, सिंहजी, इत्यादि अपने संसारिक सम्बन्धियोंमें अनेक तरहके व्यवहारिक नाम होतें हैं उसी नामको बोलनेमें अथवा लिखनेमें कोई दूषण नही है और श्रीजैन-शास्त्रोंमें भी व्यवहारिक नामसें अनेक बातें लिखनेमें आती है तैसेही उन्हको भी अपने संसारिक सम्बन्धियोंमें व्यवहारिक नामसें बेरिस्टर कहते हैं सोही नाम लिखा है उसीको छठे महाशयजी झूठा ठहराते हैं सो तो प्रत्यक्ष द्वेष बुद्धिका कारण है ;—

और छठे महाशयजीनें लिखा है कि (तपगच्छ उपर हुमलो कर्या सिवाय बीजुं कांई पण मालम पड़तु नथी) इन अक्षरों पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि सत्ययुग चौथे कालमें भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके अमृत समान धर्मोपदेशको सुन करके भी—भारी कर्मे मिथ्यात्वी प्राणी उन्हीमहाराजोंके अवर्णवाद बोलकर संसार वृद्धिका का-रण करते थे तो अब इस कलियुग पञ्चमकालमें गच्छकदाग्रही, हठवादी, पण्डिताभिमानी, दुःखगर्भित, मोहगर्भित वैराग्य वाले, अन्तरमें श्रद्धारहित, मिथ्याभाषक, कलयुगी भारी कर्मेप्राणी—श्रीजैनशास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणोंका अवर्णवाद

बोलके, संसार वृद्धिका कारण करे तो कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है तैसेही छठे महाशयजी दम्भप्रियजी श्रीवल्लभविजयजीने भी किया, अर्थात्–प्रश्नोत्तरमालिका पुस्तकमें शास्त्रोंके पाठ दिखाये और शास्त्रानुसार कितनीही बातें भी लिखी है उसको प्रमाण करना तो दूर रहा परन्तु तपगच्छ उपर हुमलो (जुलम) करनेका ठहरा करके श्रीजैनशास्त्रोंकी बातोंके अवर्णवाद लिखे सो तो उन्होंकेही कर्मोंका दोष है ;—

और आगे फिर भी प्रश्नोत्तरमालिका सम्बन्धी छठे महाशयजी लिखते हैं कि (जे जे सवालो लख्या छे प्रायः सर्वना उत्तरो कलकत्ता थी प्रगट थयेल चोपड़ीना उत्तररूपे जैनसिद्धान्त समाचारी नामे भावनगरनी जइनधर्मप्रसारक सभा तरफ थी छपायेल चोपड़ीमां आवी गयेल छे) इस लेख पर भी प्रथमतो मेरेको इतनाही कहना है कि–कलकत्तेसें चोपड़ी (पुस्तक) प्रगट होनेका जो छठे महाशयजी लिखते हैं सो तो भूलसें मिथ्या है क्योंकि कलकत्तेसें पुस्तक प्रगट नही हुई थी किन्तु (न्यायाम्भोनिधिजीकेही उत्सूत्र भाषणके अन्यायपर) मकसूदाबादके श्रावकने मुंबईमें छपवाकर 'शुद्ध समाचारी प्रकाश' नामा पुस्तक प्रगट किई है उसीमें श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्यजी महाराजोंकी आज्ञानुसार पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके पाठार्थों सहित जो जो बाते लिखनेमें आई है उसीका और प्रश्नोत्तरमालिकामें भी जो जो शास्त्रोंकी बातें लिखके सवाल पूछनेमें आये हैं। उसीके एक सवालका भी जवाबमें उत्सूत्र भाषणके सिवाय शास्त्रार्थ पूर्वक कुछ भी जवाब जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकमें नही लिखा है।

और (ढूंढ़िओए पण याद राखवुं सामायिक लेतां प्रथम इरियावहिया केहवी अने पछी करेमिभंतेनो पाठ केहवो १, श्रीमहावीर स्वामिना पांच कल्याणक २, वगेरे बातोमां तो तमोने पण बाधाज आवशे माटे तपगच्छ उपरथयेल आक्षेप जोई फुलीने फालका न थाशो आबाबतमां तो तमो पण जवाब दारजछो) इन अक्षरों करके छठे महाशयजी अपना मन्तव्य स्थापन करनेके लिये इस जगह ढूंढियोंको भी अपने सामिल मिलाते हुवे उन्होंकाही सरणा लेकरके सामायिक सम्बन्धी तथा कल्याणक सम्बन्धी श्रीखरतरगच्छवालोंके साथ वाद विवादरूप युद्ध करना चाहते हैं और बहुत वर्षोंका गच्छसम्बन्धी विवाद दबा हुवा था, उसीको भी पीछाही सरू करके शुद्धसमाचारी प्रकाशकी सत्य बातोंका उत्तररूपमें जैनसिद्धान्तसमाचारी नामक, परन्तु वासत्विकमें उत्सूत्र भाषणके संग्रहकी-पुस्तकको आगे करके अपना मन्तव्यको पुष्ट किया इसलिये इस जगह— ऊपरकी दोनुं पुस्तकोकी सब बातोंके सत्य असत्यका निर्णय करके मोक्षाभिलाषी सत्यग्राही भव्यजीवोंको दिखाना मेरेको उचित है परन्तु बहुत विस्तार हो जानेके कारणसें नमूनारूप थोड़ीसी बातोंका निर्णय करके संक्षिप्तसें दिखाता हुं, जिसमें प्रथम शुद्धसमाचारी प्रकाशमें सामायिकका अधिकार है तथा जैनसिद्धान्तसमाचारी नामक पुस्तकमें भी प्रथम सामायिकका अधिकार है और छठे महाशयजी भी ढूंढियोंका साथ करके प्रथम सामायिक सम्बन्धी लिखते हैं इसलिये मेंभी इस जगह प्रथम सामायिक सम्बन्धी शास्त्रार्थ पूर्वक थोड़ासा लिखता हुं :—

श्रावकके सामायिक करनेकी विधिमें सामायिकाधिकारे प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंतेका उच्चारण करना ऐसे कोई भी शास्त्रोंमें नहीं कहा है किन्तु प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसें इरियावही करना श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंकी परम्परानुसार है और पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें भी कहा है सोही दिखाता हुं :—

श्रीजिनदास महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर महाराजकृत श्री आवश्यकजी सूत्रकी चूर्णिमें १, श्रीमान् महान् विद्वान् सुप्रसिद्ध १४४४ ग्रन्थकार श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीआवश्यकजी सूत्रकी वृहद्वृत्तिमें २, श्रीचन्द्रगच्छके श्रीतिलकाचार्य्यजी कृत श्रीआवश्यकजीसूत्रकी लघुवृत्तिमें ३, श्रीयशोदेव उपाध्यायजी कृत श्रीनवपदप्रकरणकी विवरणरूप वृत्तिमें ४, श्रीपार्श्वनाथस्वामिजी की परम्परामें श्रीउकेशगच्छके श्रीदेवगुप्तसूरिजी कृत श्रीनवपदप्रकरणकी वृत्तिमें ५, पुनः श्रीपूर्वाचार्य्यजी कृत श्रीनवपदप्रकरणकी वृत्तिमें ६, श्रीलक्ष्मीतिलकसूरिजीकृत श्रीश्रावकधर्म प्रकरणकी वृत्तिमें ७, श्रीखरतरगच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीनवाङ्गीवृत्तिकार श्रीमदभयदेवसूरिजी कृत श्रीपञ्चाशकजी सूत्रकी वृत्तिमें ८, श्रीवड़गच्छके श्रीयशोदेवसूरिजी कृत श्रीपञ्चाशकजी सूत्रकी चूर्णिमें ९, श्रीचन्द्रगच्छके श्रीविजयसिंहाचार्य्यजीकृत श्री श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रकी चूर्णिमें १०, श्रीपूर्णपल्लीयगच्छके कलिकाल सर्वज्ञ विरुदधारक महान्विद्वान् सुप्रसिद्ध तीन करोड़ स्लोकोंकी रचनासें अनेक ग्रन्थकर्त्ता श्रीहेमचन्द्राचार्य्यजी कृत श्रीयोगशास्त्रकी वृत्तिमें ११, श्रीखरतरगच्छके श्रीवर्द्धमानसूरिजी कृत श्रीकथाकोश ग्रन्थमें १२, श्रीपूर्वाचार्य्यजी कृत

श्रीश्राद्धदिन कृत्य मूलसूत्रमें १३, श्रीतपगच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीमान् देवेन्द्रसूरिजी कृत श्रीश्राद्धदिनकृत्यसूत्रकी वृत्तिमें १४, श्रीयशोदेवसूरिजी कृत श्रीवन्दनकचूर्णिमें १५, श्रीखरतरगच्छके श्रीअभयदेवसूरिजी कृत श्रीसमाचारी ग्रन्थमें १६, तथा श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत श्रीविधिप्रपा नामा समाचारी ग्रन्थमें १७, और श्रीखरतरगच्छके दूसरे श्रीवर्द्धमानसूरिजी कृत श्रीआचारदिनकर ग्रन्थमें १८, श्रीतपगच्छके श्रीकुलमण्डनसूरिजी कृत श्रीविचारामृत संग्रह ग्रन्थमें १९, तथा श्रीतपगच्छके सुप्रसिद्ध श्रीरत्नशेखरसूरिजी कृत श्रीश्राद्ध प्रतिक्रमणसूत्रकी वृत्ति (वन्दित्तासूत्रकी अर्थदीपिकानामा टीका) में २०, और सुप्रसिद्ध श्रीहीरविजयसूरिजीके सन्तानिये श्रीमानविजयजी उपाध्यायजी कृत श्रीधर्मसंग्रह ग्रन्थकी वृत्ति–जो कि सुप्रसिद्ध श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्यायजीनें शुद्ध करी है उसीमें २१, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें श्रीपूर्वधरादि पूर्वाचार्य्योंनें और श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादि अनेक गच्छोंके अनेक पूर्वाचार्य्योंनें श्रावकके सामायिक विधिमें (सामायिकाधिकारे) प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसें इरियावहीका प्रतिक्रमण करना खुलासापूर्वक कहा है जिसके विषयमें सब पाठ यहां लिखनेसें बहुत विस्तार होजावे तथापि श्रीतपगच्छके वर्त्तमानिक सत्यग्राही आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंको निःसन्देह होनेके लिये अपनेही पूर्वजोंके बनाये ग्रन्थोंके पाठ इस जगह लिख दिखाता हुं—

श्रीतपगच्छनायक सुप्रसिद्ध विद्वान् अनेक ग्रन्थकार श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत श्रीश्राद्धदिनकृत्य सूत्रकी वृत्तिका पाठ नीचे मुजब जानो :—

साम्प्रतमष्टादशं सत्कार द्वारमाह ॥ ततो वैकालिकानन्तरं विकालवेलायामन्तर्मुहूर्त्तरूपायां तामेवव्यनक्ति अस्तमिते दिवाकरे अर्द्धबिम्बादर्वाक् इत्यर्थः ॥ पूर्वोक्तेन विधानेन पूजाकृत्वेति शेषः । पुनर्वन्दते जिनोत्तमान् । प्रसिद्ध चैत्यवन्दनविधिनेति ॥२२८॥ अथैकोनविंशतिवन्दनकोपलक्षितमावश्यकद्वारमाह ॥ ततस्तृतीयपूजानन्तरं श्रावकः पोषधशालाङ्गत्वा यतनया प्रमार्ष्टि ततो नमस्कारपूर्वकं व्यवहित तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात । स्थापयित्वैव तत्र सूरिं स्थापनाचार्य्यं । ततो विधिना सामायिकं करोति ॥ २२९ ॥ अथ तत्र साधवोऽपि सन्ति । श्रावकेण गृहे सामायिकं कृतं । ततोऽसौ साधुसमीपे गत्वा किं करोति इत्याह । साधुसाक्षिकं, पुनः सामायिकं कृत्वा । ईर्य्या प्रतिक्रम्यागमनमालोचयेत् । तत आचार्य्यादिन् वन्दित्वा। स्वाध्यायं काले चावश्यकं करोति ॥२३०॥

देखिये ऊपरके पाठमें सांसको पूर्वोक्त विधिसें श्री जिनराजकी पूजा करके प्रसिद्ध विधिसें चैत्यवन्दन करे बाद पौषधशालामें जाकर यतना पूर्वक प्रमार्जना करके गुरु अभावसें नमस्कार पूर्वक स्थापनाचार्य्यजीकी स्थापना करके तिस विधिसें अर्थात् श्रीआवश्यकादि शास्त्रोक्त विधिसें सामायिक करे और पौषधशालामें श्रीगुरुजी महाराज होवे और अपने घरसें सामायिक करके पौषधशालामें गया होवे तो फिर भी गुरु साक्षि करेमिभंतेका उच्चारण करके पीछे इरियावही पड़िक्कमके आचार्य्यादि महाराजोंको वन्दना करे और स्वाध्याय करे पीछे अवसर होनेसें प्रतिक्रमण करे—

और श्रीतपगच्छके प्रभाविक श्रीहीरविजयजीसूरिजीके सन्तानिये श्रीमानविजयजी कृत श्रीधर्म्मसंग्रहकी वृत्तिको सुप्रसिद्ध श्रीयशोविजयजीने शुद्ध करी है उसीका पाठ यहां दिखाता हुं :—

यथा—आवश्यकसूत्रमपि सामायिअं नाम सावज्ज-जोगपरिवज्जणं णिरवज्जजोगपडिसेवणं चेत्ति, तत्रायमावश्यकचूर्णि,पञ्चाशकचूर्णि,योगशास्त्रवृत्त्याद्युक्तो विधिर्यथा-श्रावकः सामायिककर्त्ता द्विधा भवति ऋद्धिमानन्‌र्धिकश्च योऽसावनृद्धिकः स चतुर्षु स्थानेषु सामायिकं करोति जिन-गृहे, साध्वन्तिके, पोषधशालायां, स्वगृहे वा यत्र वा, विश्राम्यति निर्व्यापारो वा आस्ते तत्र च यदा साधुसमीपे करोति तदायंविधिः यदि कस्माच्चिदपि भयं नास्ति केन-चिद्विवादो नास्ति, ऋणं वा न धारयति माभूत्तत् कृता-कर्षणापकर्षणनिमित्तसंक्लेशः, तदा स्वगृहेऽपि सामायिकं कृत्वा ईर्यां शोधयन् सावद्यां भाषां परिहरन्, काष्ठ-लोष्ठ्वादिना यदि कार्य्यं, तदा तत्स्वामिनमनुज्ञाप्य प्रति लिख्य प्रमार्ज्यंच गृह्णन्, खेलसिंघाणकादीन् विवेचयंश्च स्थंडिलं प्रत्यवेक्ष्य, प्रमृज्य पञ्चसमितिसमितस्त्रिगुप्तिगुप्तः साध्वाश्रयं गत्वा, साधून्नमस्कृत्य सामायिकं करोति, तत्सूत्रं यथा करेमिभंते सामाइअं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव साहू पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्सभंते पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि त्ति ॥ एवं कृतसामायिक, ईर्यापथिक्याः प्रतिक्रामति पश्चादागमनमालोच्य,यथाज्येष्ठ-माचार्य्यादीन्वन्दते, पुनरपि गुरुं वन्दित्वा प्रत्युपेक्षितासने

निविष्टः, शृणोति, पठति, पृच्छति वा, एवं चैत्यभवनेऽपि द्रष्टव्यं,यदा तु पोषधशालायां स्वगृहे वा सामायिकं गृहीत्वा तत्रैवास्ते तदागमनं नास्ति यस्तु राजादि महर्द्धिकः स गन्धसिन्धुरस्कन्धाधिरूढ़ श्छत्रचामरादिराज्यालंकृतो हास्तिकाश्वीयपादातिकरथकाद्या परिकरितो भेरीभांकारभरिताम्बरतलो वन्दिवृन्दकोलाहलाकुलीकृतनभस्तलोऽनेकसामन्तमण्डलेश्वराहमहमिकासंप्रेक्ष्यमाणपादकमलः पौरजनैः सश्रद्धमङ्गुल्योपदर्श्यमानो मनोरथैरुपस्पृश्यमानस्तेषामेवाञ्जलिबन्धान् लाजाञ्जलिपातान् शिरःप्रणामाननुमोदमानः अहो धन्यो धर्मो य एवंविधैरुपसेव्यते इति प्राकृतजनैरपि श्लाघ्यमानोऽकृतसामायिक एव जिनालयं साधुवसतिं वा गच्छति तत्र गतो राजककुदानि छत्रचामरोपानन्मुकुटखड्गरूपाणि परिहरति आवश्यकचूर्णौ तु मउडं न अवणेइ कुंडलाणि णाम मुद्दं च पुप्फतंबोलपावारगमादि वोसिरइत्ति भणितं जिनार्चनं साधुवन्दनं वा करोति यदि त्वसौ कृतसामायिक एव गच्छे त्तदा गजाश्वादिभिरधिकरणं स्यात्तच्च न युज्यते कर्त्तुं तथा सामायिकेन पादाभ्यामेव गन्तव्यं तच्चानुचितं भूपतीनां आगतस्य च यद्यसौ श्रावकस्तदा न कोऽप्यभ्युत्थानादि करोति अथ यथा भद्रकस्तदा पूजा कृतास्तु इति पूर्वमेवासनं मुञ्चति आचार्य्याश्च पूर्वमेवोत्थिता आसते मा उत्थानानुत्थानकृता दोषा भूवन्निति आगतश्चासौ सामायिकं करोतीति पूर्ववत्,—

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीजिनदास महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर महाराजकृत श्रीआवश्यकजी सूत्रकी चूर्णि १, श्री यशोदेवसूरिजी कृत श्रीपञ्चाशकजी सूत्रकी चूर्णि २, तथा

कलिकालसर्वज्ञ विरुद-धारक श्रीहेमचन्द्राचार्य्यजी कृत श्री योगशास्त्रकी वृत्ति ३, और आदिशब्दसें श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीआवश्यकजी सूत्रकी बृहद्वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रानुसार—सामायिक करने वाले दो प्रकारके श्रावककी विधिमें खुलासा पूर्वक प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसें इरियावहीका प्रतिक्रमण करना अच्छीतरहसें स्पष्ट करके लिखा है। और श्रावक अपने घरमें वा गुरु अभावसें पौषधशालामें सामायिक करे वहां 'जाव नियमं पज्जुवासामि' ऐसा पाठ उच्चारण करे और श्रीगुरुजी महाराजके सामने सामायिक करे वहां 'जावसाहू पज्जुवासामि' ऐसा पाठ उच्चारण करे और श्रीजिनमन्दिरमें सामायिक करे वहां 'जावचेईय पज्जुवासामि' ऐसा पाठ उच्चारण करे—इसका ऊपरोक्त शास्त्रोंमें खुलासे पाठ है ।

और भी श्रीतपगच्छके श्रीरत्नशेखरसूरिजी कृत श्रीश्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति (श्रीवन्दीत्ता सूत्रकी अर्थदीपिका टीका) में भी श्रावकके नवमा सामायिक व्रताधिकारे ऊपर मुजब ही पाठ है और उसीका भाषान्तर श्रीमुम्बईवाले श्रावक-भीमसिंह माणकनें निर्णयसागर प्रेसमें श्रीजैनकथा रत्नकोष भाग चौथा (४) में छपवाया है जिसके पृष्ठ ३३७ सें ३३८ तक देख लेना :—

और ऊपरोक्त अनेक शास्त्रोंके पाठ भावार्थ सहित एक दूसरा और भी ग्रन्थ छपता है उसीमें विस्तार पूर्वक अनेक पाठ छपगये है जिसका भेद आगे खोलुंगा—

अब मोक्षाभिलाषी सत्यग्राही सज्जन पुरुषोंको इस जगह विचार करना चाहिये कि—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि

महाराजोंकी आज्ञानुसार पूर्वधरादि श्रीप्राचीनाचार्य्योंने तथा सबीही गच्छोंके पूर्वाचार्य्योंने और श्रीतपगच्छके भी प्रभाविक पुरुषोंने अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसें इरियावही कही है सो आत्मार्थियोंको प्रमाण करने योग्य है तथापि श्रीतपगच्छके वर्त्तमानिक प्रायः करके सबीही श्रावक महाशयोंको ऊपर मुजब वर्तना तो दूर रहा परन्तु ऊपर मुजब श्रद्धा भी नहीं रखते है और उलटे उन शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें अपनी मतिकल्पनासें वर्त्तते हैं उन्होंको श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक तथा खास अपनेही गच्छके प्रभाविक पुरुषोंकी आज्ञाके आराधक और पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंपर श्रद्धारखनेवाले कैसे कहे जावें और अनेक शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणकी विधिको छोड़ करके अन्ध परम्परासें गड्डुरीह प्रवाहवत् उन्ही शास्त्रोंके विरुद्ध वर्त्तने वालोंकी क्रिया भी कैसे सफल होगा—और श्रीजैनशास्त्रोंके एक पद पर अथवा एक अक्षर पर भी जो पुरुष श्रद्धा नही रक्खे वह प्राणी जमालिकी तरह निन्हव, मिथ्यादृष्टि कहा जाता है सो तो अनेक शास्त्रोंमें प्रसिद्ध बात है तथापि श्रीतपगच्छके वर्त्तमानिक जो जो मुनि महाशय और श्रावक महाशय ऊपरोक्त अनेक शास्त्रों पर तथा उन शास्त्रोंके कर्त्ता श्रीजैनशासनके प्रभाविक पुरुषोंके वचनों पर और खास अपनेही गच्छके पूर्वज पुरुषोंके वचनों पर श्रद्धानहींरखते हैं उन्होंको–पक्षग्राही, दृष्टिरागी, शास्त्रोंकी श्रद्धा रहितके सिवाय और सम्यक्त्वी कौन कहेगा सो तत्त्वग्राही पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और इस वर्त्तमान कालमें सुप्रसिद्ध न्यायाम्भोनिधिजी श्रीआत्मारामजी अनेक शास्त्रोंके अवलोकन करनेवाले गीतार्थ कहलाते थे इसलिये श्रीपूर्वधर महाराज कृत श्री आवश्यक चूर्णि वगैरह २१ शास्त्रोंके प्रमाण सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही सम्बन्धी ऊपरमेंही पृष्ठ ३१०–३११ में छपे है उन्ही शास्त्रोंके पाठोंको सामायिक सम्बन्धी न्यायाम्भोनिधिजीनें वांचे है लोगोंको सुनाये है और उन्ही शास्त्रकार महाराजोंको श्रीजैनशास्त्रोंके अतीव गहनाशयको समझनेवाले, बुद्धिनिधान, प्रभाविक, श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक, सत्यवादी, पर उपगारी, मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी, और भव्य जीवोंको मोक्षसाधनका श्रीजिनाज्ञाके आराधनरूप रस्ताको दिखाने वाले गीतार्थ उत्तमपुरुष मानते थे लोगोंको भी कहते थे और उन्ही महाराजोंके बनाये ऊपरोक्त पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंको नही माननेवालोंको मिथ्यात्वी ठहरा करके उन्ही महाराजोंकी आशातना करनेवाले पञ्चाङ्गीकी श्रद्धारहित जैनाभास संसारगामी कहते थे और शास्त्रोंके पाठोंको छुपा करके अथवा आगे पीछेके सम्बन्धको छोड़ करके शास्त्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें अधूरे अधूरे पाठ लिखके उलटे तात्पर्य्य भोले जीवोंको दिखाने वालोंको संसारमें परिभ्रमण करनेवाले ठहराते थे सोही खास न्यायाम्भोनिधिजीके बनाये 'चतुर्थस्तुतिनिर्णयः' वगैरह ग्रन्थोंसें प्रत्यक्ष दिखता है तथापि बड़ेही अफसोसकी बात है कि दूरभवि बहुलकर्मी मिथ्यात्वीकी तरह पञ्चाङ्गीके ऊपरोक्तादि अनेक शास्त्रोंके पाठोंपर श्रीआत्मारामजीकी अन्तरमें श्रद्धा नही

थी इसलिये श्रीपूर्वधरादि महाराजोंके बनाये श्रीआवश्यक-चूर्णि वगैरह पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके पाठोंपर उन्होंको संशयरूपी मिथ्यात्वका भ्रम रहा अथवा अपनी विद्वत्ताके अभिमानसें संसार वृद्धिका भय नही करते अभिनिवेशिकमिथ्यात्वके अधिकारी बनके ऊपरोक्तशास्त्रोंके पाठोंके तात्पर्य्यको जानते हुवे भी प्रमाण नही करे और भोले जीवोंको भी पञ्चाङ्गीके ऊपरोक्तादि शास्त्रोंके पाठोंकी शुद्ध श्रद्धा रहित बनानेके लिये 'जैनसिद्धान्त समाचारी' नामक पुस्तकमें पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें अन्य अन्य विषयोंके अधिकारवाले अधूरे अधूरे पाठ लिखके उसीका भी उलटा तात्पर्य्य बालजीवोंको दिखा करके (उत्सूत्र भाषणरूप अनेक जगह लिखके) अपनी समुदायवालोंको तथा अपने गच्छ-वालोंको संशयरूपी मिथ्यात्वके भ्रममें गेरे हैं और श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाका आराधनरूपी मोक्षसाधनका रस्ताकी सत्यबातोंका निषेध करके संसार वृद्धिके कारणरूप मिथ्यात्वको फैलानेवाली अपनी मतिकल्पनाकी मिथ्या बातोंको स्थापन करी है जिसका विस्तारसें शास्त्रार्थ पूर्वक इस जगह निर्णय करनेसें वडाही विस्तार होजावे तथापि न्यायाम्भोनिधिजी का (अपनी समुदायवालों पर तथा अपने गच्छवालों पर) गेरा हुवा मिथ्यात्वका भ्रमको अवश्यही दूर करके मोक्षा-भिलाषी सत्यग्राही भव्यजीवोंकी शुद्ध श्रद्धारूपी सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्तिके उपगारके लिये सत्य बातोंका दर्शाव भी जरूरही होना चाहिये इसलिये जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकके उत्तररूपमें 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' नामा ग्रन्थ छपना भी सरू होगया है उसीमें न्यायाम्भोनिधि-

जीने जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकमें जो जो उत्सूत्र भाषण किये है जिसका अच्छीतरहसें विस्तार पूर्वक निर्णय छप रहा है परन्तु इस जगह भी न्यायदृष्टिवाले आत्मार्थी भव्यजीवोंको निःसन्देह होनेकेलिये सामायिकाधिकार-सम्बन्धी न्यायाम्भोनिधिजीनें जो जो उत्सूत्र भाषण किये हैं उसीका निर्णयके साथ संक्षिप्तसें दिखाता हुं—

१ प्रथम—सामायिकाधिकारे पहिले करेमिभंतेका उच्चारण कियेपीछे इरियावहीका प्रतिक्रमण करना अनेक शास्त्रोंमें कहा है सो ऊपरमेंही छपगया है और सामायिकाधिकार सम्बन्धी कोई भी शास्त्रोंमें पूर्वापर विरोधी विसंवादी वाक्य नही है याने कोई भी शास्त्रमें सामायिकाधिकारे प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंतेका उच्चारण किसी भी पूर्वाचार्य्यजीनें नहीं कहा है तथापि न्यायाम्भोनिधिजी 'जैनसिद्धान्त समाचारी' नामक पुस्तकके पृष्ठ ३० के मध्यमें सामायिकविधि सम्बन्धी अनेक शास्त्रोंके आपसमें पूर्वापर विरोध विसंवाद ठहराते हैं सो उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' नामा ग्रन्थके पृष्ट ३ सें ७ तक छप गया है और सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही सभी शास्त्रोंमें कही है जिसके विषयमें श्रीपूर्वधरादि प्रभाविक पुरुषोंके बनाये ग्रन्थोंमें तथा श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छादिके पूर्वजोंने भी ऊपर मुजबही कहा है उसीके अनेक पाठ अर्थ सहित 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' के पृष्ठ ७ सें २६ तक खुलासा पूर्वक छपगये है परन्तु सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते किसी भी शास्त्रमें नही लिखी है सोही दिखाता हुं :—

२ दूसरा—श्रीगणधर महाराज श्रीसुधर्म स्वामीजी कृत श्रीमहानिशीथ सूत्रके तीसरे अध्ययनमें उपधानके अधिकारमें चैत्यवन्दनादि सम्बन्धी विस्तार पूर्वक खुलासे पाठ है जिसके सम्बन्धवाले आगे पीछेके सब पाठको छोड़ करके थोड़ासा अधूरा पाठ न्यायाम्भोनिधिजीने जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकके पृष्ठ ३० वामें लिख करके गणधर महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार पूर्वक निर्णय संपूर्ण पाठार्थ सहित 'आत्माभ्रमोच्छेदनभानुः' नामा ग्रन्थके पृष्ठ २१ के अन्तसें पृष्ठ ३७ तक अच्छी तरहसें छपगया है।

३ तीसरा—श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीदशवैकालिकजी सूत्रके चूलिकाकी ७वीं गाथाकी बृहद्वृत्तिमें साधुके उपदेशाधिकारमें गमनागमनादि कारणसें इरियावही करके स्वाध्यायादि करने सम्बन्धी विस्तार पूर्वक खुलासे पाठ है (श्रीदशवैकालिकजी मूलसूत्र, अवचूरि, भाषार्थ, दीपिका, और बृहद्वृत्ति सहित छपी हुई प्रसिद्ध है जिसके पृष्ठ ६७९। ६८०। ६८१ में छपगया है) जिसके सम्बन्धवाले सब पाठको छोड़ करके सिर्फ एकपद मात्रही न्यायाम्भोनिधिजीने जैन० नामक, पुस्तकके, पृष्ठ ३१ की आदिमें लिखके वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामयिकाधिकारे प्रथम इरियावही स्थापी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार पूर्वक निर्णय 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' के पृष्ठ ३८ सें ४८ तक छपगया है।

४ चौथा—श्रीतपगच्छके श्रीधर्मघोषसूरिजी कृत श्री

संघाचारभाष्य वृत्तिमें दशत्रिक सहित श्रावकके चैत्य-वन्दनकीविधि कथाओं सहित कही है जिसमें सातमीत्रिकमें यतनापूर्वक तीनवार भूमि प्रमार्जन करके इरियावही पूर्वक चैत्यवन्दन करने सम्बन्धी पुष्कली श्रावककी कथा कही है उसीके भी आगे पीछेके सब पाठको छोड़ करके थोड़ासा अधूरा पाठ न्यायां० नें 'जैन० ना० पुस्तकके' पृष्ठ ३१ में लिखके ग्रन्थकार महाराजको गुरुविरोधीका दूषणके अधिकारी ठहरा करके ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी निर्णय संपूर्ण पाठ सहित ग्रन्थकार महाराजके अभिप्राय पूर्वक 'आत्मभ्रमो०के' पृष्ठ ४८ सें ६८ तक छपगया है।

५ पांचमा—श्रीतपगच्छनायक श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी वृत्तिमें स्वाध्याय करने सम्बन्धी विस्तारसें पाठ है जिसकी भी एक गाथा न्यायां० ने 'जैन० ना० पुस्तकके' पृष्ठ ३३ के मध्यमें लिखके उसी गाथामें दो जगह दो मात्रा भी जादा लगाके अर्थ भी उलटा करा और अपने पूर्वजकोही विसंवादीका दूषण लगा करके वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापी सो भी महान् उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तारसें निर्णय 'आत्म० के' पृष्ठ ६९ सें ७७ तक छपगया है।

६ छठा—श्रीरत्नशेखरसूरिजी कृत श्रीश्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रकी वृत्तिमें आवश्यकचूर्णि वगैरह अनेक शास्त्रोंके प्रमाणानुसार सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही खुलासे कही है उसी शास्त्रोंकी विधि मुजब श्रावक

अपने घरसें सामायिक करके पौषधशालामें गुरुमहाराजके पास प्रतिक्रमण करनेके लिये आवे वहां इरियावही पूर्वक षड़ावश्यकरूप प्रतिक्रमण करनेके सम्बन्धमें पाठ है जिसका सम्बन्ध छोड़कर ग्रन्थकार महाराजको भी विसंवादके दूषित ठहरानेके लिये उलट पुलट अधूरा पाठ, न्यायां० ने 'जैन० ना० पुस्तकके' पृष्ठ ३४ के आदिमें लिखके ग्रन्थकार महाराजकेविरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापनकरी सो भी उत्सूत्र भाषणरूप है इसका निर्णय, 'आत्म०के' पृष्ठ ७७ सें ८३ तक छपगया है ।

७ सातमा—श्रीयशोदेवसूरिजी कृत श्रीपञ्चाशकजीकी चूर्णिमें सामायिक विधिके विषे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसें इरियावहीका प्रतिक्रमण करना खुलासे लिखा है उसी पाठको तो छुपा दिया और पौषधविधि सम्बन्धी पाठको न्या०ने 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ ३४ के अन्तमें लिखके चूर्णिकार महाराजको विसंवादीका दूषण लगाके उन्ही महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिककी विधिमें प्रथम इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी निर्णय 'आत्म० के' पृष्ठ ८४।८५।८६ में छपगया है ।

८ आठमा—श्रीपूर्वाचार्य्यजी कृत श्रीविवाहचूलिया सूत्रमें सिंहनामा श्रावकने इरियावही पूर्वक चार प्रकारका पौषधकरा उसी सम्बन्धी खुलासे पाठ है तथापि न्यायांभोनिधिजीनें पौषध सम्बन्धी पाठको तोड़ करके अधूरा पाठ 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ ३५ की आदिमें लिखके सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका निर्णय 'आत्म०' के पृष्ठ ८७।८८।८९ तक छपगया है ।

९ नवमा--श्रीतपगच्छके श्रीजयचन्द्रसूरिजी जो कि श्री आवश्यकवृहद्वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रानुसार तथा अपने ही गच्छके नायक श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत श्रीश्राद्धदिनकृत्य सूत्रकी वृत्तिके और खास अपने काका गुरुजी श्रीकुल-मण्डनसूरिजी कृत श्रीविचारामृतसंग्रहनामा ग्रन्थके अनुसार सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही श्रद्धापूर्वक मान्य करने वाले थे उन्ही महाराजकृत श्रीप्रति-क्रमणगर्भहेतुनामा ग्रन्थमें साधु और पौषधवाला श्रावक दोनोंके वास्ते इरियावही पूर्वक राई प्रतिक्रमण करनेका खुलासा पाठ है जिसमें भी प्रतिक्रमणके सम्बन्धी सब पाठको छोड़ करके ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें न्या०ने 'जैन०ना० पु०के' पृष्ठ ३५ वा के मध्यमें थोड़ासा अधूरा पाठ लिखके फिर भी मूल पाठके बिना भाषार्थमें सामायिक शब्दका ज्यादा प्रयोग करके सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ ९०।९१।९२ तक छपगया है।

१० दशमा--श्रीपञ्चम गणधर महाराजकृत श्रीभगवतीजी मूलसूत्रके तथा श्रीखरतरगच्छनायक श्रीअभयदेवसूरीजी कृत तद्वृत्तिके बारहवें शतकके प्रथम उद्देशमें पौषधके अधिकारमें पुष्कली नामा श्रावक सम्बन्धी इरियावही कही है (सो छपी हुई श्रीभगवतीजीके पृष्ठ ९८१।९८२ में अधिकार है) जिसके भी आगे पीछेके पौषध अधिकार-वाले पाठको छोड़ करके न्या०ने 'जैन० ना० पु०' के पृष्ठ ३५ के अन्तमें थोड़ासा अधूरा पाठ लिखके श्रीसूत्रकार तथा वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम

इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषणरूप है इसका भी विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ ९३ सें ९६ के मध्य तक छपगया है।

११ इग्यारहमा—श्रीखरतरगच्छके श्रीअभयदेवसूरिजी कृत श्रीसमाचारी ग्रन्थमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीका खुलासा पूर्वक पाठ है तथापि उस पाठको छुपा करके अथवा लुप्त करके ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें मिथ्यात्वरूप रोगके उदयसें किसी भारी कर्मै प्राणीने अपनी मति कल्पना मुजब नवीन पाठ बना करके समाचारी ग्रन्थमें लिख दिया है उसीकोही न्यायाम्भोनिधि जीनें जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकके पृष्ठ ३६ में लिखके सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करी है सो भी महान् उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार पूर्वक निर्णय 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' नामा ग्रन्थके पृष्ठ ९६ के अन्तसें पृष्ठ १०४ तक छपगया है।

१२ बारहमा--श्रीखरतरगच्छवाले सामान्य विशेष पाठ को, तथा श्रीआवश्यक वृहद्वृत्तिके, और चूर्णिके, पाठको मान्य करते हैं तथापि न्या० ने 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ ३८ में सामान्य पाठको तथा श्रीआवश्यक वृहद्वृत्तिके और चूर्णिके पाठको तुम मान्य नही करते हो ऐसें लिखके श्रीखरतर गच्छवालोंको मिथ्या दूषण लगाया सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ १०७ सें १११ तक छपगया है।

१३ तेरहमा--खास न्यायाम्भोनिधिजी अपनी बनाई 'चतुर्थ स्तुतिनिर्णय' नामा पुस्तकके पृष्ठ ८८ के मध्यमें श्री-

जिनप्रभसूरिजी कृत श्रीविधिप्रपा समाचारी ग्रन्थके पाठ को नही माननेवालोंको मिथ्या दृष्टि ठहराते हैं परन्तु आप 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ३८ में इन्ही महाराज कृत उन्ही ग्रन्थके पाठको नही मानते हुये द्वेषबुद्धिसें आक्षेप करके शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक सत्य बात परसें भोले जीवोंकी श्रद्धाभङ्ग करनेका कारण किया हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ १११ के अन्तसें पृष्ठ ११५ तक छपगया है।

१४ चौदहमा—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी परम्परानुसार श्रीजिनदास महत्तराचार्य्यजी पूर्वधर महाराजनें श्रीआवश्यकजी सूत्रकी चूर्णिमें श्रावकके नवमा सामायिक व्रतमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण कियें बाद पीछेसें इरियावही खुलासे लिखी हैं जिसको श्रीजिनाज्ञाके आराधक सबी आत्मार्थी श्रीजैनाचार्य्यादि महाराजोंने श्रद्धापूर्वक प्रमाणकरी है और श्रीहरिभद्रसूरिजी, श्रीदेवगुप्तसूरिजी, श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीयशोदेवसूरिजी, श्रीहेमचन्द्राचार्य्यजी, श्रीविजयसिंहाचार्य्यजी, श्रीदेवेन्द्रसूरिजी, श्रीतिलकाचार्य्यजी, श्रीलक्ष्मीतिलकसूरिजी, श्रीकुलमण्डनसूरिजी, श्रीरत्नशेखरसूरिजी, श्रीमानविजयजी (कृत वृत्ति शुद्धकर्त्ता श्रीयशोविजयजी) आदि महाराजोंनें अपने अपने बनाये ग्रन्थोंमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही खुलासे लिखी है उसी मुजब मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी प्राणियोंको श्रद्धापूर्वक मन्जूर करनी चाहिये तथापि न्यायाम्भोनिधिजी 'जैन० ना०' पु० के पृष्ठ ४१-४२में पूर्वधर महाराजकृत श्रीआवश्यक चूर्णिके पाठ पर और

उत्तमपुरुषोंके बनाये ग्रन्थों पर श्रद्धा नही रखते हुवे अपने अन्तरके मिथ्यात्वको प्रगट करके भोले जीवोंको भी शुद्ध-श्रद्धारूपी सम्यक्त्व रत्नसें भ्रष्ट करनेका कार्य्य किया सो भी महान् उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तारसें निर्णय 'आत्म० के' पृष्ठ १३८ सें पृष्ठ १५५ तक छपगया है।

१५ पंदरहमा—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने चैत्य-वन्दनादिके सूत्रोंके उपधान कहे है तथा खास न्यायां-भोनिधिजी भी अपना बनाया 'तत्त्वनिर्णय प्रासाद' नामा ग्रन्थके पृष्ठ ४५७ सें ४६४ तक उपधानकी व्याख्या उपर मुजबही करी है और श्रीभगवतीजीमें सामायिकको स्वयं आत्मा कहा है इसलिये आत्माके उपधान नही होते हैं और किसी भी शास्त्रमें सामायिकके उपधान नही लिखे है तथापि 'जैन० ना०' पु० के पृष्ठ ४३ में सामायिकके उप-धान ठहराते हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ १५६सें १६९ तक छपगया है।

१६ सोलहमा—श्रीदशवैकालिकजी सूत्रकी चूलिकामें श्री-सीमंधरस्वामीजी महाराजने साधुकेही अधिकारका वर्णन किया है सो प्रसिद्ध है तथापि न्या०ने 'जैन० ना० पु०के' पृष्ठ ४४-४५ में श्रीहरिभद्रसूरिजीकृत वृहद्वृत्तिके पाठको अगाड़ीका पिछाड़ी और पिछाड़ीका अगाड़ी उलट पुलट करके भी अधूरा लिखके फिर पृष्ठ ४५ के अन्तमें साधुके अधिकार वाले पाठको श्रावकके अधिकारमें स्थापन करनेके लिये खूबही परिश्रम किया है सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ १७० सें १९५ तक छपगया है।

१७ सतरहमा—श्रीजैनधर्माचार्य्यजी पूर्वापर विरोध

रहित अविसंवादीपने ग्रन्थ रचना करते हैं तथापि न्या०ने जैन० ना० पु० के पृष्ठ ४७ में श्रीखरतरगच्छनायक श्रीनवाङ्गी वृत्तिकार सुप्रसिद्ध श्रीमदभयदेव सूरिजी महाराजको और श्रीतपगच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीमद्देवेन्द्रसूरिजी महाराजको विसंवादी पूर्वापर विरोधि लिखनेवाले ठहराये हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तारसें निर्णय 'आत्म० के' पृष्ठ १९७ सें २१६ तक छपगया हैं ।

१८ अठारहमा—श्रीखरतरगच्छके श्रीवर्द्धमानसूरिजीने आचारदिनकर नामा ग्रन्थमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभते पीछे इरियावही खुलासा पूर्वक लिखी है जिसका तात्पर्य्य समझे विना न्या०ने 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ ४८ के आदिमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करने के लिये परिश्रम करके लिखा है सो भी उत्सूत्र भाषणरूप है इसका निर्णय 'आत्म० के' पृष्ठ २१९।२२०।२२१ तक छप गया है ।

१९ एकोनवीशहमा—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी महान् परम्परानुसार श्रीखरतरगच्छमें प्रथम करेमिभतेके उच्चारण करनेका अखण्डित व्यवहार आज तक चला आता है तथापि न्या० ने 'जैन० ना० पु०' के पृष्ठ ४८ के मध्यमें प्रथम इरियावहीकी परम्परा ठहराई हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका निर्णय 'आत्म० के पृष्ठ' २२३—२२४ में छपगया है ।

२० वीशहमा—श्रीआवश्यकचूर्णि, वृहद्वृत्ति, लघुवृत्ति, श्रीपञ्चाशकवृत्ति, चूर्णि, श्रीयोगशास्त्रवृत्ति, वगैरह अनेक शास्त्रोंकी सामायिक विधिको न्या०ने 'जैन० ना० पु० के'

पृष्ठ ४८ के मध्यमें तुच्छ शब्दसें लिखके (शास्त्रों की तथा शास्त्रकार श्रीपूर्वधरादि महाराजोंकी आशातना करके) निषेध करी हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार 'आत्म०के' पृष्ठ २२५ से छपना सरू है।

२१ एकवीशहमा–श्रीजैनशास्त्रोंमे सर्व जगह सामायिक सम्बन्धी प्रथम करेमिभंते करनेकी एकही विधि है तथापि न्या० ने जैन० ना० पु० के पृष्ठ ४८ अन्तमें सामायिक सम्बन्धी पूर्वापर विरोधी दो विधि स्थापन करी हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है उसका निर्णय 'आत्मभ्रमोच्छेदन-भानुः' नामा ग्रन्थमें छपना सरू है।

ऊपर मुजब २१ प्रकारके उत्सूत्र भाषण न्यायाम्भोनिधि जीनें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करनेके लिये लिखे हैं और कितनी जगह मायावृत्तिरूप, कितनीही जगह प्रत्यक्ष मिथ्या, कितनीही जगह अन्याय कारक, कितनीही जगह श्रीजैनशास्त्रोंके अतीव गहनाशयको समझे बिना उलटा भी लिख दिया है इत्यादि अनेक तरहके अनुचित लेखों करके सामायिकमें प्रथम इरियावही (श्रीजैनशास्त्रोंके तथा श्रीजैनाचार्य्योंके विरुद्ध) स्थापनेके लिये अपने तथा अपने पक्षधारियोंके संसार वृद्धिके निमित्तभूत खूबही परिश्रम किया है उसीके सबका निर्णय देखनेकी इच्छा होवे तो 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' में शास्त्रार्थपूर्वक युक्ति सहित अच्छी तरहसें होगया है सो पढ़नेसें सर्व खुलासा हो जावेगा–और पर्युषणासम्बन्धी यह ग्रन्थ प्रसिद्ध होये बाद थोड़ेही दिनोंमें 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' भी प्रगट होनेका सम्भव है।

अब सत्यग्राही सज्जनपुरुषोंका निष्पक्षपाती हो करके विचार करना चाहिये कि—एक सामायिक विषयमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही सम्बन्धी २१ शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको न्यायके समुद्र हो करके भी श्रीआत्मारामजीने छोड़ दिये और आप उन्ही शास्त्रोंके पाठोंकी श्रद्धा रहित बनकरके उन्ही शास्त्रोंके तथा उन्ही शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें प्रथम इरियावही स्थापन करनेके लिये ऊपरोक्त कैसा अनर्थ करके—कहीं उपधानसम्बन्धी, कहीं साधुके जाने आने सम्बन्धी, कहीं चैत्यवन्दनसम्बन्धी, कहीं स्वाध्यायसम्बन्धी, कहीं षड़ावश्यकरूप प्रतिक्रमणसम्बन्धी, कहीं पौषधसम्बन्धी, इत्यादि अनेक तरहके अन्य अन्य विषयोंके सम्बन्धमें शास्त्रकार महाराजोंने इरियावही कही है जिसके बदले उन्हीं शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करनेके लिये आगे पीछेके पाठोंकों छोड़ करके अधूरे अधूरे पाठ लिखते न्यायाम्भोनिधिजीको पर भवका कुछ भी भय नही लगा और इस लौकिकमें भी अपनी विद्वत्ताकी हासी करानेके कारणरूप इतना अन्याय करते कुछ शर्म भी नहीं आई इसलिये सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही सबी गच्छोंके प्रभाविक पुरुषोंने अनेक शास्त्रोंमें प्रत्यक्ष पने अविसंवादरूप खुलासा पूर्वक लिखी है जिसको जानते हुवे भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके जोरसें श्रीहरिभद्रसूरिजी, श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीदेवेन्द्रसूरिजी वगैरह प्रभाविक पुरुषोंको विसंवादीका मिथ्या दूषण लगा करके सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापनेका विसंवाद-

रूपी मिथ्यात्वको बढ़ाने वाला झगड़ा (अविसंवादी श्रीजैनशासनमें इस वर्त्तमान कालके बालजीवोंकी श्रद्धाभ्रष्ट करनेके लिये) श्रीआत्मारामजीने अपनी विद्वत्ताके अभिमानसें खूबही फैलाया है ;—

और सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण करनेका निषेध करके प्रथम इरियावही स्थापन करने सम्बन्धी ऊपरोक्त जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकमें जैसे उत्सूत्र भाषणोंसें मिथ्यात्व फैलाया है तैसेही श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक निषेध करके पाँच कल्याणक स्थापन करने वगैरह कितनी बातोंमें भी खूबही उत्सूत्र भाषणोंसे मिथ्यात्व फैलाया है जिसका खुलासा आगे लिखुंगा—

और श्रीआत्मारामजीको अपने पूर्व भवके पापोदयसें पहिले ढूंढियोंके मिथ्या कल्पित मतमें दीक्षा लेनी पड़ी थी वहाँ भी अपने कल्पित मतके कदाग्रहकी बात जमानेके लिये अनेक शास्त्रोंके उलटे अर्थ करते थे तथा अनेक शास्त्रोंके पाठोंको छोड़के अनेक जगह उत्सूत्र भाषण करके संसार वृद्धिका भय न करते हुवे भोले दृष्टिरागियोंको मिथ्यात्वकी भ्रमजालमें गेरते थे और मिथ्यात्वरूप रोगके उदयसें श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञा मुजब सत्य बातोंको कल्पित समझते थे और श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञा विरुद्ध अपने मत पक्षकी कल्पित मिथ्या बातोंको सत्य समझते थे और हजारों श्रीजैन शास्त्रोंको उत्थापन करके सत्य बातोंके निन्दक शत्रु बनते थे इत्यादि अनेक तरहके कार्य्योंसें अपने ढूंढक मतकी मिथ्या कल्पित बातोंको पुष्ट करके अपने मतको फैलाते थे परन्तु कितनेही वर्षोंके बाद अपने पूर्व भवके महान् पुण्योदय होनेसें ढूंढकमतके पाख-

ढकीसबपोल दिनदिनप्रति खुलतीगई जिससे कल्पित ढूंढकमत को श्रीजैनशास्त्रोंकेविरुद्ध और संसारवृद्धिका हेतु भूत जानकर छोड़दिया और श्रीजैनशास्त्रोंके प्रमाणानुसार सत्यबातोंको ग्रहण करनेके लिये संवेगपक्ष अङ्गीकारकरके अनेकशास्त्रोंका अवलोकनकिया और श्रीजैनतत्त्वादर्श, अज्ञानतिमिरभास्कर, तत्त्वनिर्णयप्रासाद वगैरह भाषाके ग्रन्थोंका संग्रह करके प्रसिद्धभी कराये जिससे विद्वान्‌भी कहलाये तथा ढूंढकमतकी मिथ्यात्वरूप पाखण्डके भ्रमजालसे कितनेही भव्यजीवोंका उद्धार भी किया और अनेक भक्तजनोंसे खूबही पूजाये-शिष्य-वर्गका समुदाय भी बहुत हुवा तथा शुद्ध प्ररूपक, उत्कृष्टक्रिया करने वाले भी कहलाये और श्रीमद्विजयानन्दसूरि-न्यायाम्भो-निधिजीवगैरह पदवियोंकोभी प्राप्तभये जिससे दुनियामें प्रसिद्ध भी हुवे परन्तु यह तो दुनियामें प्रसिद्ध बात है, कि-जिस आदमीका जो स्वभाव पहिलेसे पड़ा होवे उस आदमीको कितनेही अच्छे संयोगोंसे चाहे जितना उत्तम गिनो अथवा श्रेष्ठ पदमें स्थापनकरो तो भी अपना पहिलेका पड़ा हुवा स्वभाव नहीं छुटता है सोही बात नीति शास्त्रोंके 'सुभाषितरत्न भाण्डागारम्' नामा ग्रन्थके पृष्ठ १०६ में कही है। तैसाही वर्ताव न्यायाम्भोनिधिजी नामधारक श्रीआत्मारामजीने भी किया हैं, अर्थात्-पूर्वोक्त ढूंढकमतके साधुपनेमें अनेक शास्त्रोंके विरुद्धार्थ-में अनेक जगह उत्सूत्र भाषणकरने वगैरहके कार्य्योंका जो पहिले स्वभाव था सो नहींजानेके कारणसे उसीमुजबही संवेगपक्षमें भी अपने विद्वत्ताके अभिमानसे कल्पितबातोंको स्थापन करनेके लिये पर भवका भय न करके एक 'जैनसिद्धान्त समाचारी' परन्तु वास्तवमें "उत्सूत्रोंके कुयुक्तियोंकी भ्रमखाड" नामक पुस्तकमें अनुमान १६० शास्त्रोंकेविरुद्ध लिखके, ६० जगह अन्दाज उत्सूत्र

भाषण भी लिखे हैं जिसके नमूनारूप एक सामायिक विषय सम्बन्धी संक्षिप्तसे ऊपरमेंही लिखनेमें आया है, और पर्युषणाके विषयमें भी अनेक जगह उत्सूत्र भाषण किये है उसकी भी समीक्षा इसही ग्रन्थके पृष्ट १५१ से २१६ तक छप गई है सो पढ़नेसे निष्पक्षपाती सत्यग्राही सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और 'शुद्धसमाचारी'की पुस्तकमें पौषधाधिकारे, विधिमार्गमें उत्सर्गसे-अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या इनच्यारों पर्वतिथियोंमें पौषध करनेसम्बन्धी श्रीसूयगडांगजी, उत्तराध्ययन जी,उववाईजी, धर्मरत्नप्रकरण वृत्ति, योगशास्त्र वृत्ति, धर्मबिन्दु वृत्ति, नवपद प्रकरण वृत्ति, समवायांग वृत्ति, पंचाशक वृत्ति, आवश्यक चूर्णि, तथा वृहद् वृत्ति, और श्रीभगवतीजीसूत्र वृत्ति, वगैरह शास्त्रोंके पाठ दिखाये थे जिसका तात्पर्यार्थको समझे बिना शास्त्रोंके विरुद्ध होकर हमेशां पौषधकरनेका ठहरानेके लिये श्रीआवश्यकसूत्रकी चूर्णिमें तथा वृहद्वृत्तिमें और लघुवृत्तिमें और श्रीप्रवचनसारोद्धार वृत्तिमें, श्रीसमवायांगजीसूत्रकी वृत्तिमें श्रीपंचाशकजीकी चूर्णिमें तथा वृत्तिमें और श्रीउपाशकदशांग वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रोंमें श्रावककी ११ पडिमाके अधिकारमें पांचवी पडिमाकी विधिमें "श्रावक दीनमें ब्रह्मचर्य व्रत पाले और रात्रिको नियम करे" ऐसे खुलासे पाठ हैं तिसपरभी न्यायांभोनिधिजीने अन्धपरंपरासे विवेक शून्यहोकर शास्त्रकार महाराजोंकेविरुद्धार्थमें अपनीमतिकल्पनासे श्रीआवश्यकवृत्ति वगैरहके पाठका "दिवसका ब्रह्मचर्यपाले रात्रिको कुशीलसेवे" ऐसा वीपरीत अर्थ करके मैथुन सेवनकी हिंसाका उपदेश करनेका शास्त्रकारोंको झूठा दूषण लगाके बडाभारी अनर्थ करके जैनसिद्धांत

इमक पुस्तकमें दुर्लभबोधिका कारण किया है

इत्यादि, इसी तरहसे अनेक बातोंमें बहुत उत्सूत्रोंसे बडा अनर्थ किया है उसके सबका निर्णयतो "आत्मभ्रमोच्छेदन भानुः" के अवलोकनसे अच्छी तरहसे हो जावेगा।

और न्यायाम्भोनिधिजीने 'जैनसिद्धान्त समाचारी' पुस्तकका नाम रक्खा परन्तु वास्तवमें उत्सूत्र भाषणोंके और कुयुक्तियोंके संग्रहकी पुस्तक होनेसे आत्मार्थी भव्यजीवोंके मोक्षसाधन में विघ्नकारक और श्रीजिनाज्ञासे बालजीवोंकी श्रद्धाभ्रष्ट करनेवाली मिथ्यात्वके पाखन्डकी भ्रमजालरूप हैं सो इसके बनानेवालोंको, तथा ऐसी जाल बनानेमें संसारवृद्धिकी हेतु भूत खूबही दलाली कौशिस करनेवालोंकों, और मिथ्यात्वको वढ़ा करके संसारमें भ्रमानेवाली ऐसीजाल प्रगट करनेमें श्रीभावनगरकी श्रीजैनधर्मप्रसारकसभाके मेम्बरलोग उस समय आगेवान् हुए जिन्होंको, और इसके बनानेको खुसीमानकर अनुमोदना करनेवालोंको और इसी मुजब अन्धपरंपराके गड्डरीह प्रवाहकी तरह चलकर श्रीजिनाज्ञानुसार सत्यबातोंकी निन्दा करनेवालोंको, श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक सम्यक्त्वी आत्मार्थी जैनी कैसे कहे जावे इस बातको तत्त्वग्राही मध्यस्थ सज्जनस्वयं विचारलेवेंगे—

और शास्त्रोंकेविरुद्ध उत्सूत्रप्ररूपणा करनेवालेको मिथ्यात्वी अनन्त संसारी अनेकशास्त्रोंमें कहाहै और न्यायाम्भोनिधिजी नाम धारक श्रीआत्मारामजीने तो एक 'जैनसिद्धान्त समाचारी' नामक पुस्तकमें इतने शास्त्रोंके विरुद्ध लिखके इतने उत्सूत्र भाषण किये हैं तो फिर पहिले ढूंढकमतकी दीक्षामें और अन्यकार्योंमें कितने उत्सूत्रभाषण करकेकितने शास्त्रोंकेविरुद्ध प्ररूपणाकरी होगी जिसके फल विपाकका कितना अनन्त संसार बढ़ाया होगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने।

और न्यायाम्भोनिधिजीने श्रीजैनतत्त्वादर्शमें, अज्ञान तिमिर भास्करमें, और श्रीजैनधर्म्मविषयिक प्रश्नोत्तर,नामा पुस्तकमेंजो उत्सूत्रभाषणरूपलिखाहै ज़िसकेसम्बन्धमें आगे लिखनेमें आवेगा

और इस तरहसे अनेक शास्त्रोंकेपाठोंकी श्रद्धारहित तथा शास्त्रोंके आगेपीछेके सम्बन्धवालेपाठोंको छोड़करके शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें अधूरे अधूरे पाठलिखके उलटे वीपरीत अर्थ करनेवाले और शास्त्रकारमहाराजोंको विसंवादीका-मिथ्या दूषण लगानेवाले और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार सत्यबातोंका उत्थापन करके अपनी मतिकल्पनासे अन्धपरम्पराकी मिथ्या बातोंको स्थापन करते हुवे। अविधिरूप उन्मार्गके पाखण्डको फैलानेमें सार्थवाहकी तरह आगेवान बननेवाले और अपनेही गच्छके प्रभावक पुरुषों-को दूषित ठहरानेवाले और बाल जीवोंको सत्य बातोंके निन्दक बना करके दुर्लभबोधिके कारणसे संसारकीखाड़मे गेरनेवाले ऐसे ऐसे महान् अनर्थ करनेवालेको गच्छपक्षकादृष्टिरागसे–गीतार्थ, न्यायाम्भोनिधिजी (न्यायके समुद्र) और युगप्रधान, कलिकाल सर्वज्ञ समान जैनाचार्य्य वगैरहकी लम्बी लम्बी ओपमालगाके ऐसे उत्सूत्री गाढ़कदाग्रहियोंकी महिमा बढ़ा करके आडंबरसे भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें फँसानेके लिये उत्सूत्रभाषणोंके महान् अनर्थका विचार न करके उपरोक्त मिथ्या गुण लिखने-वालोंकी क्यागतिहोगी तथा कितनासंसारबढ़ावेंगे औरसम्यक्त्व रत्न कैसे प्राप्तकर सकेंगे सो तो श्रीज्ञानीजीमहाराज जाने।

अब श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाके आराधक सज्जन पुरुषोंको मेरा इतनाही कहना है कि ऊपरके लेखको पढ़के दृष्टिरागके पक्षपातको न रखते हुये संसार वृद्धिकी

हेतुभूत मिथ्या बातको छोड़ करके आत्मकल्याणके लिये सत्य बातोंके तत्त्वग्राही होना चाहिये और छठे महाशय जीनें ढूंढियांको भी अपने सामिल करके सामायिकसम्बन्धी तथा कल्याणक सम्बन्धी और जैनसिद्धान्त समाचारी सम्बन्धी लिखके अपने पक्षकी वात जमानेका परिश्रम किया इसलिये मेने भी सामायिक सम्बन्धी और जैनसिद्धान्त समाचारी सम्बन्धी ऊपरमें इतना लिखके सत्यग्राही भव्यजीवोंको संक्षिप्तसे शास्त्रार्थ दिखाया है और कल्याणक सम्बन्धी पर्युषणका विषय पूरा हुवे बाद पीछेसे लिखनेमें आवेगा सो पढ़नेसें सर्व निर्णय हो जावेंगा ;—

अब छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीको मेरा (इस ग्रन्थकारका) इतनाही कहना है कि आषाढ़चौमासीसें पचास दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेवालोंको आपने आज्ञा भङ्गका दूषण लगाया तब श्रीलश्करसे श्रीबुद्धिसागरजीनें आपको पत्रद्वारा शास्त्रका प्रमाण पूछा उन्हको शास्त्रका प्रमाण आपने बताया नही और छापेमे भी पर्युषणा विषयसम्बन्धी शास्त्रार्थ पूर्वक निर्णय करना छोड़ करके अपनी बात जमानेके लिये निष्प्रयोजनकी अन्य अन्य बातोंको लिखके प्रगट करी और अन्यायसें विशेष झगड़ा फैलानेका कारण किया इसलिये मेने भी आपके अन्यायको निवारण करनेके लिये मुख्य मुख्य बातोंका संक्षिप्तसें खुलासा करके सत्य तत्त्वग्राही सज्जन पुरुषोंको दिखाया हैं जिसको पढ़नेसे न्याय अन्यायका तथा श्रीजिनाज्ञाके आराधक विराधकका निर्णय निष्पक्षपाती पाठकवर्ग स्वय कर लेवेंगे और मरिचिनें एक उत्सूत्र भाषणसें एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम जितना

संसार वढ़ाया इस न्यायानुसार आपके गुरुजी न्यायाम्भो-निधिजीने इतने उत्सूत्र भाषणोंसें कितना संसार वढ़ाया होगा सो तो आप लोगोंको भी न्याय दृष्टिसें हृदयमें विचार करना उचित है और अब आप लोग भी उसी तरहके उत्सूत्र भाषणोंसें मिथ्या झगड़ा करते हुए श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञानुसार मोक्षमार्गको हेतुरूप सत्य-बातोंका निषेध करके श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध संसार वृद्धिकी हेतु-भूत मिथ्या कल्पित बातोंको स्थापन करके बाल जीवोंकी सत्यबात परसे श्रद्धाभ्रष्ट करते हो और मिथ्यात्वको वढ़ाते हो सो कितना संसार वढ़ावोगे सो तो श्रीज्ञानीजी महा-राज जाने–यदि आपको संसार वृद्धिका भय होवे और श्रीजिनाज्ञाके आराधन करनेकी इच्छा होवे तो जमालिके शिष्योंकी तरह आपभी करों तथा न्यायाम्भोनिधिजीके समुदायवालोंको भी ऐसेही करना चाहिये क्योंकि जमा-लिके उत्सूत्र परूपनाको उन्हके शिष्योंको जबतक मालूम नही थी तबतक तो जमालिके करने मुजबकी सत्य माना परन्तु जब अपने गुरुकी श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध उत्सूत्र परू-पनाकी मालूम होगई तब उसीको छोड़ करके श्रीवीर-प्रभुजीके पास आकर सत्यग्राही होगये तैसेही न्यायाम्भो-निधिजीके शिष्यवर्गमें भी जो जो महाशय आत्मार्थी सत्य ग्राही होवेंगे सो तो दृष्टिरागका पक्षको न रखके अपने गुरुकी उत्सूत्र भाषणकी बातोंको छोड़कर शास्त्रानुसार सत्य बातोंको ग्रहण करके अपनी आत्माका कल्याण करेंगे और भव्यजनोंको करावेंगे ।

इति छठे महाशयजीके लेखकी संक्षिप्त समीक्षा समाप्ता ।

और सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजीकी तरफसें 'पर्युषणा विचार'नामा छोटीसी १० पृष्ठकी पुस्तक प्रगट हुई है जिसमें पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध तथा श्रीतीर्थंङ्कर गणधरादि महाराजोंकी और खास अपनेही गच्छके पूर्वाचार्य्योंकी आशातना कारक और सत्य बातका निषेध करके अपने गच्छ कदाग्रहकी मिथ्या कल्पित बातको स्थापन करनेके लिये श्रीजैनशास्त्रोंके अतीव गहनाशयको समझे बिना शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें बिना सम्बन्धके और अधूरे अधूरे पाठ दिखाके उलटे तात्पर्य्यसें उत्सूत्र भाषण रूप अनेक कुतर्कों करके अपने पक्षके एकान्त आग्रहसें दूसरोंको मिथ्या दूषण लगाके भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरे है और अपनी विद्वत्ताकी हासी कराई है इसलिये अब में इस जगह भव्य जीवोंके मिथ्यात्वका भ्रम दूर होनेसें शुद्ध श्रद्धानरूपी सम्यक्त्वकी प्राप्तिके उपगारके लिये और विद्वत्ताके अभिमानसें उत्सूत्र भाषण करनेवालोंको हित शिक्षाके लिये पर्युषणा विचारके लेखकी समीक्षा करके दिखाता हूं ;—

यद्यपि पर्युषणा विचारकी पुस्तकमें लेखक नाम विद्याविजयजीका छपा है परन्तु यह ग्रन्थकार उसीकी समीक्षा उन्होंके गुरुजी श्रीधर्मविजयजीके नामसें लिखता हैं जिसका कारण इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ६७।६८ में छपगया है और आगे भी छपेगा इसलिये इस ग्रन्थकारको सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजीके नामसेही समीक्षा लिखनी युक्त है सोही लिखता है जिसमें प्रथमही पर्युषणा विचारके लेखकी आदिमें लिखा है कि (आत्मकल्याणाभिलाषी भव्यजीव

निर्मूलता समूलताका विचार छोड़ अपनी परम्परा पर आरूढ़ होकर धर्मकृत्योंको करते हैं) इस लेखको देखतेही मेरेको बड़ाही विचार उत्पन्न हुवा कि–सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजी और उन्होंकी समुदायवाले साधुजी बहुत वर्षोंसें काशीमें रह करके अभ्यास करते हैं इसलिये विद्वान् कहलाते हैं परन्तु श्रीजैनशास्त्रोंका तात्पर्य्य उन्होंकी समझमें नही आया मालूम होता हैं क्योंकि आत्मार्थी प्राणियोंको निर्मूलता समूलता इन दोनुंका विचार अवश्यमेव करना उचित है और निर्मूलता, याने–शास्त्रोंके प्रमाण बिना गच्छ कदाग्रहके परम्पराकी जो मिथ्या बात होवे उसीको छोड़ देना चाहिये और समूलता, याने शास्त्रोंके प्रमाणयुक्त कदाग्रह रहित गच्छ परम्पराकी जो सत्य बात होवे उसीको ग्रहण करना चाहिये और हेय, ज्ञेय, उपादेय, इन तीनो बातोंकी खास करके प्रथमही विचारनेकी आवश्यकता श्रीजैनशास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक दर्शाई है. इसलिये निर्मूलता, हेय त्यागने योग्य होनेसें और समूलता, उपादेय ग्रहण करने योग्यहोनेसें दोनुं का विचार छोड़ देना कदापि नही हो सकता है और आत्मकल्याणाभिलाषी निर्मूलता त्यागने योग्यका तथा समूलता ग्रहण करने योग्यका विचार जबतक नही करेगा तबतक उसीको श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध वर्त्तनेका अथवा श्रीजिनाज्ञा मुजब वर्त्तनेका, बन्धका अथवा मोक्षका, मिथ्यात्वका अथवा सम्यक्त्वका, संसार वृद्धिका अथवा आत्मकल्याणके कार्य्योंका, भेदभावके निर्णयको प्राप्त नही हो सकेगा और जबतक ऊपरकी बातोंकी भिन्नताको नही

समझे गा तबतक उसीको आत्म कल्याणकारस्ता भी नही मिले गा तो फिर भाव करके श्रीजिनाज्ञा मुजब श्रावकधर्म और साधुधर्म कैसे बनेगा याने-निर्मूलता समूलताका विचार छोड़ करके धर्मकृत्योंके करनेवालोंको मोक्ष साधन नही हो सकेगा है क्योंकि उन्होंका धर्मकृत्य तो तत्वा-तत्वका उपयोगशून्य होजाता है इसलिये आत्मार्थी प्राणि-योंको निर्मूलता समूलताका विचार करना अवश्यही युक्त है तथापि सातवे महाशयजीने दोनुंका विचार छोड़नेका लिखा हैं सो जैनशास्त्रोंके विरुद्ध होनेसें मिथ्यात्वका कारणरूप उत्सूत्र भाषण है इस बातको तत्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और (अपनी परम्परा पर आरूढ़ होकर धर्मकृत्योंको करते हैं) सातवें महाशयजीके इन अक्षरों पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि-अपनी परम्परापर आरूढ होकर धर्मकृत्योंको करनेका जो आप कहते हो तब तो पर्युषणा विचारके लेखमें आपको दूसरोंका खण्डन करके अपना मण्डन करना भी नही बनेगा क्योंकि सबी गच्छवाले अपनी अपनी परम्परापर आरूढ़ होकर धर्मकृत्य करते हैं जिन्होंका खण्डन करके अपना मण्डन करना सो तो प्रत्यक्ष अन्याय कारक वृथा है और परम्परा द्रव्य और भावसें दो प्रकारकी शास्त्रकारोंने कही है जिसमें पञ्चाङ्गीके प्रमाण रहित वर्त्ताव सो तो गच्छ कदाग्रहकी द्रव्य परम्परा संसार वृद्धिकी हेतु भूत होनेसें आत्मार्थियोंको त्यागने योग्य है और पञ्चाङ्गीके प्रमाण सहित वर्त्ताव सो भाव परम्परा मोक्षकी कारण होनेसें आत्मार्थियोंको प्रमाण करने योग्य हैं

और द्रव्य भाव परम्पराका विशेष विस्तार देखनेकी इच्छा होवे तो श्रीखरतरगच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीनवाङ्गी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजीकृत श्रीआगम-अष्टोत्तरी नामा ग्रन्थ 'आत्म-हितोपदेश-नामा पुस्तकमें' गुजराती भाषा सहित श्रीअहमदाबादसें छपके प्रसिद्ध होगया है सो पढ़नेसें अच्छी तरहसें मालूम हो जावेंगा।

और श्री सर्वज्ञ कथित श्रीजैनशासन अविसंवादी होनेसें श्रीतीर्थङ्कर भगवानोंके जितने गणधर महाराज होते हैं उतनेही गच्छ कहे जाते हैं उन्ह सबीही गच्छवाले महानुभावोंकी ऐकही परूपना तथा एकही वर्ताव होता है और इस वर्त्तमान कालमें तो बहुतही गच्छवालोंके आपसमें अनेक तरहके विसंवाद होनेसें जुदी जुदी परूपना तथा जुदा जुदा वर्ताव है और बहुतही गच्छवाले अपने अपने गच्छकी परम्परा मुजब धर्मकृत्य करते हुवे आप श्रीजिनाज्ञाके आराधक बनते हैं और दूसरे गच्छवालोंको झूठे ठहरा करके निषेध करनेके लिये-राग, द्वेष, निन्दा, ईर्षासें खण्डन मण्डन करके, आपसमें बड़ाही भारी विसंवादसें मिथ्यात्वको वढ़ानेवाला झगड़ा करते हैं इसलिये वर्तमान कालमें अपनी अपनी परम्परापर दृढ़ रहने सम्बन्धी सातवें महाशयजीका लिखना मिथ्यात्वका कारणरूप उत्सूत्र भाषण है क्योंकि अपनी अपनी परम्परा पर आरूढ़ होकर धर्मकृत्य करने वाले सबी गच्छवाले श्री जिनाज्ञाके आराधक हो जावेंगे तो फिर अविसंवादी श्री जैनशासनकी मर्य्यादा कैसें रहेगा इसलिये वर्त्तमान कालमें अपने अपने गच्छपरम्पराही वालोंका पक्षपात न रखते

हुवे श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध पञ्चाङ्गीके प्रमाण रहित कल्पित बातोंको छोड़ करके श्रीजिनाज्ञा मुजब पञ्चाङ्गीके प्रत्यक्ष प्रमाण पूर्वक सत्यबातोंको ग्रहण करके अपनी आत्माका कल्याण करनेके कार्य्योंमें उद्यम करना चाहिये जिससें आत्मकल्याण होगा नतु तत्वातत्वका विचारशून्य अन्धपरम्परामें—जैसे कि, ८० दिने पर्युषणा करना १, फिर मायावृत्तिसें अधिक मासका निषेध भी करना २, तथा श्री वीरप्रभुके छ कल्याणकोंका निषेध करना ३, और सामायिक करते पहिलेही इरियावही करना ४, और आंबीलमें अनेक द्रव्य भक्षण करने कराने ५, इत्यादि अनेक बातें शास्त्रोंके प्रमाण बिना गड्डरीह प्रवाहकी तरह आत्मार्थियोंको त्यागने योग्य गच्छ कदाग्रहकी द्रव्य परम्परासें प्रचलित है नतु शास्त्रोंके प्रमाणानुसार भावपरम्परासें क्योंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें दिनोंकी गिनतीसें ५० दिने पर्युषणा कही है १, और अधिकमासको भी खुलासा पूर्वक गिनतीमें लिया है २, तथा श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंको भी अच्छी तरहसें खुलासा पूर्वक कहे हैं ३, और सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण करना कहा है ४, और आंबीलमें भी दो द्रव्योंका भक्षण करना कहा है ५, सोही ऊपरोक्त बातें शास्त्रानुसार भावपरम्परामें होनेसें आत्मार्थियोंको ग्रहण करने योग्य है इन ऊपरकी बातोंका निर्णय आठोंही महाशयोंके उत्सूत्र भाषणके लेखोंकी समीक्षा सहित इस ग्रन्थको संपूर्ण पढ़नेवाले निष्पक्षपाती तत्वग्राही सज्जन पुरुषोंको स्वयं मालूम हो जावेगा।

देखिये सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजीने शास्त्र-विशारदकी पदवीको अङ्गीकार करी है तथापि पर्युषणा विचारके लेखकी आदिमेंही श्रीजैनशास्त्रोंके तात्पर्य्यको समझे बिना निर्मूलता समूलताका विचार छोड़ने सम्बन्धी और अपनी२ परम्परा पर आरूढ़ होकर धर्मकार्य कहने सम्बन्धी दो उत्सूत्रभाषण प्रथमही बालजीवोंको मिथ्यात्वमें फँसानेवाले लिख दिये और पूर्वापरका कुछ भी विचार विवेक बुद्धिसें हृदयमें नही किया इसलिये शास्त्रविशारद पदवीको भी लजाया—यह भी एक अलौकिक आश्चर्य्य-कारक विद्वत्ताका नमूना है, खैर—अब पर्युषणा विचारके आगेका लेखकी समीक्षा करके पाठक वर्गको दिखाता हूं—

पर्युषणा विचारका प्रथम पृष्ठके मध्यमें लिखा है कि—(पक्षपाती जन परस्पर निन्दादि अकृत्योंमें प्रवर्तमान होकर सत्यधर्मकी अवहेलना करते हैं) इस लेखपर भी मेरेको इतनाही कहना है कि सातवें महाशयजीनें अपने कृत्य मुजब तथा अपने अन्तरगुण युक्तही ऊपरका लेख में सत्यही दर्शाया है क्योंकि खास आपही अपने पक्षकी कल्पित बातोंको स्थापन करनेके लिये श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्यबातोंको निषेध करके सत्यबातोंकी तथा सत्यबातोंको मानने वालोंकी निन्दा करते हुवे कुयुक्तियोंसें बालजीवों को मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लियेही पर्युषणा विचारके लेखमें उत्सूत्र भाषणोंका संग्रह करके अविसंवादी श्रीजैन-शासनमें, विसंवादका झगड़ा बढ़ानेसें श्रीजैनशासनरूपी सत्यधर्मकी अवहेलना करनेमें कुछ कम नही किया है सो

तो पर्युषणाविचारके लेखकी मेरी लिखी हुई सब समीक्षाको पढ़नेवाले सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और आगे फिरभी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके प्रथम पृष्ठकी पंक्ति १५वीं सें पंक्ति१८ वीं तक लिखा है कि (क्षयोपशमिक मतिज्ञानवान् और श्रुतज्ञानवान् पुरुष वे युक्ति प्रयुक्ति द्वारा अपने अपने मन्तव्यके स्थापन करनेके लिये अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करते हुए मालूम पड़ते हैं) सातवें महाशयजीका यह लिखना उपयोगशून्यताके कारणसें है क्योंकि क्षयोपशमिक मतिज्ञानवान् और श्रुतज्ञानवान् पुरुष वे युक्तिप्रयुक्ति द्वारा अपने अपने मन्तव्यको स्थापन करनेके लिये अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करनेवाले सातवें महाशयजी ठहराते है तो क्या वर्त्तमान कालमें साधु और श्रावक श्रीजिनाज्ञाकी सत्यबातरूपी अपना मन्तव्य स्थापन करनेके लिये और श्रीजैनशासनके निन्दक ढूंढिये और तेरहा पन्थी लोगोंको तथा अन्यमतियोंको भी समझानेके लिये युक्ति प्रयुक्ति करनेवाले सबीही अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करनेवाले ठहर जावेंगे सो कदापि नहीं इसलिये सातवें महाशयजीका ऊपरका लिखना उत्सूत्र भाषणरूप भूलका भरा हुवा है क्योंकि जो जो कल्पित बातोंको स्थापन करनेके लिये जानते हुवे भी कुयुक्तियों करके बालजीवोंको मिथ्यात्वमें गेरेंगे सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करनेवाले ठहरेंगे किन्तु सब नही ठहर सकते हैं परन्तु यह बात तो सत्य है कि 'जैसा खावे अन्न—तैसा होवे मन्न' इस कहावतानुसार अपने पक्षकी कल्पित बातें जमानेके लिये खास आप अनेक बातोंमें

अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करनेवाले हैं सो आगे लिखनेमें आवेगा ;—

और पर्युषणा विचारके प्रथम पृष्ठकी १९ वीं पंक्तिसें दूसरे पृष्ठकी पंक्ति दूसरी तक लिखाहै कि (सिद्धान्तका रहस्य ज्ञात होने पर भी एकांशको आगे करके असत्य पक्षका स्थापन और सत्य पक्षका निरादर करनेके लिये कटिबद्ध होकर प्रयत्न करते दिखाई पड़ते हैं) इस लेख पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि सातवें महाशय-जीनें अपने कृत्य मुजबही जैसा अपना वर्ताव था वैसा ही उपरके लेखमें लिख दिखया है इसका खुलासा मेरा आगेका लेख पढ़नेसें पाठकवर्ग स्वयं विचार कर लेवेंगे ;—

और पर्युषणा विचारके दूसरे पृष्ठ की पंक्ति ३सें ६ तक लिखाहैं कि (तत्र वार्षिकंपर्व भाद्रपदसितपञ्चम्यां कालिकसूरेरनन्तरं चतुर्थ्यामेवेति—अर्थात् भाद्रपद सुदी पञ्चमीका साम्वत्सरिक पर्व था पर युगप्रधान कालिकाचार्य्यके समयसे चतुर्थीमें वह पर्व होता है) इस लेख पर भी मेरेको इतना ही कहना है कि—सातवें महाशयजीनें उपरके लेखसें वर्त्त-मान कालमें दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करनेके लिये परिश्रम किया सो भी उत्सूत्र भाषण है क्योंकि आषाढ़ चौमासीसें पचास दिने पर्युषणा करनेकी श्रीजैनशास्त्रोंमें मर्य्यादा पूर्वक अनेक जगह व्याख्या है इसलिये दो श्रावण होनेसें ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्यु-षणा करना शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक है तथापि मासवृद्धि दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करते हैं सो मिथ्या हठवादसें उत्सूत्र भाषण करते हैं क्योंकि

मासवृद्धिके अभावसें पचास दिने भाद्रपदमें पर्युषणा कही है नतु मासवृद्धि दो श्रावण होते भी।

ओर आगे फिर भी पर्युषणा विचारके दूसरे पृष्टकी ७ वी पंक्तिसें १८॥ वीं पंक्ति तक लिखा है कि (वासाणं सवीसइराइ मासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं इत्यादि समवायाङ्गसूत्रके पाठका पूर्वभाग 'सवीसइ राइमासे वइक्कंते' पकड़कर उत्तर पाठकी क्या गति होगी इसका विचार न रख मूलमन्त्रको अलग छोड़कर दूसरे श्रावण के सुदीमें पर्युषणापर्वके पाँचकृत्य 'संवत्सरप्रतिक्रान्ति र्लुञ्चनंचाष्टमं तपः। सर्वार्हद्भक्तिपूजा च सङ्घस्य क्षामणं मिथः' ॥ १ ॥ अर्थात् १ सांवत्सरिकप्रतिक्रमण, २ केशलुञ्चन, ३ अष्टमतपः, ४ सर्वमन्दिरमें चैत्यवन्दन पूजादि, ५ चतुर्विध सङ्घके साथ क्षामणा करते हैं और भक्तोंको कराते हैं)।

सातवें महाशयजीनें ऊपरके लेखमें दूसरे श्रावण शुदी में पांचकृत्यों सहित पर्युषणा करनेवालोंको श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठका उत्तर भागको छोड़ करके पूर्वभागको पकड़ने वाले ठहराये है सो अज्ञातपनेसें मिथ्या है क्योंकि श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ मासवृद्धिके अभावसें श्रीजैनपञ्चाङ्गानुसार चार मासके १२० दिनका वर्षाकालमें चन्द्रसंवत्सरसम्बन्धी प्राचीनकालाश्रयी है और वर्त्तमानकालमें श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठानुसार तथा उन्हीकी अनेक व्याख्यायोंके अनुसार आषाढ चौमासीसें ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेमें आती हैं इसलिये श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठका उत्तरभागको छोड़कर पूर्वभागको पकड़ने सम्बन्धी सातवें महाशयजीका लिखना मिथ्या है।

और (उत्तरपाठकी क्या गति होगी) सातवें महाशयजीका यह लिखना भी विद्वत्ताके अजीर्णताका है क्योंकि श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ चार मासके वर्षाकाल सम्बन्धी होनेसें चार मासके वर्षाकालमें उसी मुजब वर्त्ताव होता है परन्तु सातिवें महाशयजी श्रीगणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामी जी कृत श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठका तथा श्रीअभयदेव सूरिजी कृत तद्वृत्तिके पाठका अभिप्रायः जाने बिना सूत्रकार तथा वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें दो श्रावणादि होनेसें पाँच मासके १५० दिनका वर्षाकालमें उसी पाठको आगे करके बालजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरते हुवे उत्सूत्र भाषणरूप कदाग्रह जमाते हैं सो क्या गति होगी सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने ।

देखिये बड़ेही आश्चर्य्यकी बात है कि—अपना कदाग्रहकी उत्सूत्र भाषणरूप कल्पित बातको जमानेके लिये (उत्तरपाठकी क्या गति होगी) ऐसा तुच्छ शब्द लिखके श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठ पर आक्षेप करते कुछ लज्जा भी नही पाते हैं यह भी एक कलयुगी विद्वत्ताका नमूना है ।

और (मूलमन्त्रको अलग छोड़कर) यह लिखना भी 'चोर डंडे-कोटवालको' इस न्यायानुसार खास-सातवें महाशयजी आप अनेक बातोंमें मूलमन्त्ररूप अनेक शास्त्रोंके मूलपाठोंको अलग छोड़ते हैं फिर दूसरोंको मिथ्या दूषण लगाते हैं सो उचित नहीं है क्योंकि दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेवाले श्रीकल्पसूत्रका मूलमन्त्ररूपी पाठके अनुसारही करते हैं और श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ चार मासके वर्षाकाल-सम्बन्धी होनेसें उसी मुजबही वर्त्तते हैं इसलिये दूसरे

श्रावणमें पर्युषणा करने वालोंको मूलमन्त्रको अलग छोड़ने सम्बन्धी सातवें महाशयजीका लिखना मिथ्या है और सातवें महाशयजी अनेक बातोंमें मूलमन्त्ररूपी अनेक शास्त्रोंके मूलपाठोंको जानते हुवे भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके अधिकारी बन करके अलग छोड़ते हैं सोही दिखाता हूं ;—

१ प्रथम—हर वर्ष गांम गांममें वंचाता हुवा सुप्रसिद्ध श्रीकल्पसूत्रमें पर्युषणा सम्बन्धी मूलमन्त्ररूपी विस्तारसें पाठ है उसीके अनुसार इस वर्तमान कालमें श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी प्राणियोंको पर्युषणा करनी चाहिये तथापि सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेवन करते हुवे (श्रीकल्पसूत्रका मूलमन्त्ररूपी पाठ इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ४।५ में छप गया है) उसीको जानते हुवे भी अलग छोड़ते हैं और श्रीकल्पसूत्रके पाठानुसार दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालोंको झूठे ठहराकर मिथ्या दूषण लगाते हुवे निषेध करते हैं इसलिये शास्त्रानुसार वर्त्तने वालोंकी वृथा निन्दा करके श्रीजिनाज्ञारूपी सत्यधर्मकी अवहेलना। (तिरस्कार) करने वाले काशीनिवासी सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजी है।

२ दूसरा—श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अनन्त काल हुवे अधिकमासको गिनतीमें खुलासा पूर्वक प्रमाण किया है तथा आगे करेंगे और सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें अधिक मासको गिनतीमें लेने सम्बन्धी विस्तार पूर्वक पाठ है सो कितनेही तो इसीही ग्रन्थके पृष्ठ २७ सें ६५ तक छप गये हैं

और भी अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करने सम्बन्धी अनेक शास्त्रोंके प्रमाण आगे भी लिखनेमें आवेंगे उसीके अनुसार और कालानुसार युक्तिपूर्वक श्रीजिनाज्ञाके आराधन करने वाले आत्मार्थियोंको अधिकमासकी गिनती निश्चय करके प्रमाण करनी चाहिये तथापि सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेवन करते हुवे श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उत्थापन करके पञ्चाङ्गीके मूलमन्त्ररूपी प्रत्यक्ष पाठोंको जानते हुवे भी अलग छोड़ते हैं और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार पञ्चाङ्गीके प्रत्यक्ष प्रमाणों सहित कालानुसार और सत्य युक्तिपूर्वक अधिकमासकी गिनती प्रमाण करते हैं जिन्होंको झूठे ठहराकर मिथ्या दूषण लगा करके निषेध करते हैं इसलिये शास्त्रानुसार अधिक मासको प्रमाण करने वालोंकी वृथाही निन्दा करके श्रीजिनाज्ञारूपी सत्यधर्मकी अवहेलना करनेवाले भी सातवें महाशयजी है।

३ तीसरा—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने (श्री आचाराङ्गजी सूत्रकी चूलिकाके मूलपाठमें तथा श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रके पांचवें ठाणेके मूलपाठमें और श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठ वगैरह) पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके मूलमन्त्ररूपी पाठोंमें चरम तीर्थङ्कर श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकों को खुलासापूर्वक कहे हैं (इसका विशेष निर्णय शास्त्रोंके पाठों सहित आगे लिखनेमें आवेगा) इसलिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंकी श्रद्धावाले आत्मार्थी पुरुषोंको प्रमाण करने योग्य है तथापि सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करते हुवे ऊपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंकी मूलमन्त्ररूपी

जानते हुवे भी अलग छोड़ते हैं और पञ्चाङ्गीके ऊपरोक्तादि अनेक शास्त्रोंके अनुसार श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकों को मानने वालोंको झूठे ठहराकर मिथ्या दूषण लगा करके निषेध करते हैं इसलिये भी शास्त्रानुसार श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंको माननेवालोंकी वृथाही निन्दा करके श्री जिनाज्ञारूपी सत्यधर्मकी अवहेलना करने वाले भी सातवें महाशयजी है ।

४ चौथा–श्रीआवश्यकजी सूत्रकी चूर्णि और वृहद्वृत्ति वगैरह पञ्चांगीके अनेक शास्त्रोंमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये पीछे इरियावहीका प्रतिक्रमण खुलासापूर्वक कहा है सोही श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी पुरुषोंको प्रमाण करने योग्य है तथापि सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करते हुवे ऊपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंको मूलमन्त्ररूपी जानते हुवे भी अलग छोड़ करके उसीके विरुद्ध बालजीवोंको कराते हैं–देखिये षड़ावश्यक करनेके लिये मूलमन्त्ररूपी श्रीआवश्यकजी है उसीकी चूर्णि और वृहद्वृत्तिके अनुसार उभयकाल (सांम और सवेर दोनुं वख्त) षडावश्यकरूपी प्रतिक्रमण करनेका मंजूर करते हैं तथापि उसी शास्त्रोंमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये पीछे इरियावही करना कहा है उसीको मंजूर नही करते हैं जिन्होंको मूलमन्त्र रूपी श्रीआवश्यकादि पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंकी श्रद्धावाले श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी कैसे कहे जावे और उन्होंके षड़ाश्यवक भी कैसे सार्थक होवेंगे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने और विशेष आश्चर्य्यकी बात तो यह

है कि—खास सातवें महाशयजीकेही परमपूज्य श्रीतपगच्छके ही प्रभाविक श्रीदेवेन्द्रसूरिजीने श्रीश्राद्धदिनकृत्य सूत्रकी वृत्तिमें, श्रीकुलमण्डनसूरिजीने श्रीविचारामृतसंग्रहनामा ग्रन्थमें, श्रीरत्नशेखरसूरिजीने श्रीवन्दीता सूत्रकी वृत्तिमें, और श्रीहीरविजय सूरिजीके सन्तानीये श्रीमानविजयजीने तथा श्रीयशोविजयजीने श्रीधर्मसंग्रहकी वृत्तिमें खुलासा पूर्वक सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करना कहा है इन महाराजोंको सातवें महाशयजी शुद्ध-परूपक आत्मार्थी श्रीजिनाज्ञाके आराधक बुद्धि निधान कहते हैं जिसमें भी विशेष करके श्रीयशोविजयजीके नाम सें श्रीकाशी (वनारसी) नगरीमें पाठशाला स्थापन करी है तथापि उन महाराजोंके कहने मुजब सामायिकाधि-कारे प्रथम करेमिभंतेको प्रमाण नही करते हैं फिर उन महाराजोंको पूज्य भी कहते हैं यह तो प्रत्यक्ष उन महा-राजोंके कहने पर तथा पञ्चाङ्गीके शास्त्रों पर श्रद्धा रहितका नमूना है। यदि सातवें महाशयजी अपने गच्छके प्रभाविक पुरुषोंके कहने मुजब तथा श्रीयशोविजयजीके नामसें पाठ-शाला स्थापन करी है उन महाराजके कहने मुजब वर्त्तने-वाले, तथा उन महाराजोंके पूर्णभक्त, और पञ्चाङ्गीके शास्त्रों पर श्रद्धा रखने वाले होवेंगे, तव तो सामायिकाधिकारे प्रथम करे-मिभंतेको प्रमाण करके अपने भक्तोंसें जरूरही करावेंगे तो सातवें महाशयजीको आत्मार्थी समझनेमें आवेंगा। सामा-यिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते २१ शास्त्रोंमें लिखी है परन्तु प्रथम इरियावही किसी भी शास्त्रमें नही लिखी है इसका खुलासा पूर्वक निर्णय इसीही ग्रन्थके पृष्ट ३१० सें ३२९ तक

उपरमेंही छपगया है उसीको पढ़ करके भी सातवें महाशय जी अपने कदाग्रहके वस होकरके शास्त्रानुसार सत्यबात को प्रमाण नही करेंगे तो अपने गच्छके प्रभाविक पुरुषोंके वाक्य पर तथा श्रीयशोविजयजीके नामसे पाठशाला स्थापन करी है उन महाराजके वाक्य पर और पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके पाठों पर श्रद्धा रखनेवाले आत्मार्थी है ऐसा कोई भी विवेकी तत्त्वज्ञ पाठकवर्ग नही मान सकेगा जिसके नामसें पाठशाला स्थापन करी है उसी महाराजके वाक्य मुजब प्रमाण नही करना यह तो विशेष लज्जाका कारणहै

इत्यादि अनेक बातोंमें सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करते हुवे मूलमन्त्ररूपी पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके पाठोंको जानते हुवे भी अलग छोड़ करके शास्त्रोंके प्रमाण बिना अपनी मतिकल्पनासें कुयुक्तियोंका सहारासे करके उत्सूत्र भाषणमें वर्त्तते हैं और पञ्चाङ्गीके प्रमाण सहित शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक ऊपरोक्तादि अनेक बातोंको प्रमाण करने वालोंको झूठे ठहरा करके मिथ्या दूषण लगा कर ऊपरोक्त बातोंको निषेध करते हैं इसलिये श्रीजिनेश्वरभगवान्की आज्ञानुसार वर्त्तने वालोंकी वृथा निन्दा करके शास्त्रानुसार ऊपरोक्तादि बातोंके विरुद्ध अविसंवादी श्रीजैनशासनमें विसंवादरूपी मिथ्यात्वका झगड़ा बढ़ानेसें अविसंवादी श्रीजैनशासनरूपी सत्यधर्मकी अवहेलना करने वाले भी सातवें महाशयजीही है। और पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके पाठोंको प्रत्यक्ष देखते हुवे भी प्रमाण नही करते है और अपना कदाग्रहकी कल्पित कुयुक्तियोंको आगे करके दृष्टिरागी झूठे पक्षग्राही बालजीवोंको मिथ्यात्वमें गेरते हैं

इसलिये सत्यपक्षका निरादर करके असत्य पक्षका स्थापन करनेवाले भी सातवें महाशयजी है इस बातको निष्पक्ष पाती आत्मार्थी विवेकी पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठानुसार तथा उन्हीकी अनेक व्याख्यानुसार आषाढ चौमासीसें ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेवालों पर द्वेष बुद्धि करके आक्षेपरूप सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके दूसरे पृष्ठकी १८॥ वीं पंक्ति सें २० वीं पंक्ति तक लिखा है कि (वस्तुतः तो भगवान्‌की आज्ञाके आराधक भव्यजीवों पर कल्पित दोषोंका आरोप करके अपने भक्तोंको भ्रमजालमें फँसाकर संसार बढ़ाते हैं)

सातवें महाशयजीका इस लेखको देखकर मेरेको बड़ाही आश्चर्य्य सहित खेद उत्पन्न होता है कि जैसे ढूंढिये तेरहा पन्थी लोग अपने कदाग्रहकी कल्पित बातोंको स्थापन करनेके लिये श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञानुसार वर्त्तने वाले पुरुषोंकी झूठी निन्दा करके संसार वृद्धिका कारण करते हैं तैसेही सातवें महाशयजी भी इतने विद्वान् कहलाते हुवे भी अपने कदाग्रहकी कल्पित बातको स्थापन करनेके लिये श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञानुसार वर्तनेवाले पुरुषोंकी जूठी निन्दा करके संसार वृद्धिका कारण करते हैं क्योंकि—श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति और प्रकरणादि अनेक शास्त्रमें प्रगटपने आषाढ़ चौमासीसें दिनोंकी गिनतीके हिसाबसें ५० दिने निश्चय करके श्रीपर्युषणापर्वका आराधन करना कहा है उसीके अनुसार श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठ

मुजब तथा उन्हींकी अनेक व्याख्यायोंके पाठ मुजब वर्त्त-मान कालमें दो श्रावण होनेसें दूसरे श्रावणमें आषाढ़ चौमासीसें ५० दिने श्रीपर्युषणापर्वका आराधन आत्मार्थी प्राणी करते हैं और दूसरे भव्यजीवोंकों कराते हैं जिन्होंको तो मिथ्या दूषण लगा करके संसार वढ़ाने वाले ठहराना और आप श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा विरुद्ध तथा पञ्चाङ्गीके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको छोड़ करके अपनी मति-कल्पनासें यावत् ८० दिने पर्युषणा करते हैं और बाल-जीवोंकों भी कुयुक्तियोंसें भ्रमा करके कराते हैं इसलिये श्रीजिनाज्ञाकी सत्यबातका निषेध करके भी शुद्ध परूपक बनते हुवे संसार वृद्धिका भय नही करना सो मिथ्यात्वीके सिवाय और कौन होगा ।

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीनें पर्युषणा विचारके दूसरे पृष्ठके अन्ते २१ । २२ वीं पंक्तिमें लिखा है कि (उन जीवों पर भावदया लाकर सिद्धान्तानुसार परोपकार दृष्टिसें पर्युषणा विचार लिखा जाता है) इस लेखसें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालों पर और करानेवालों पर भावदया लाकर सिद्धान्तानुसार परोपकार दृष्टिसें पर्युषणा विचार लिखनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो निः-केवल बालजीवोंको कदाग्रहमें फँसाकरके मिथ्यात्ववढ़ानेके लिये संसार वृद्धिके निमित्तभूत उत्सूत्र भाषण करते है क्योंकि प्रथमतो दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वाले पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रानुसार करते हैं जिसके सम्बन्धमें इसीही ग्रन्थकी आदिसें २१ पृष्ठ तक अनेक शास्त्रोंके प्रमाण पाठार्थ सहित छप गये हैं इसलिये शास्त्रानुसार वर्तने वालोंको

झूठे ठहरा करके भावदया दिखाना सो तो प्रत्यक्ष महा मिथ्या है। और भावदयाका स्वरूप जाने बिना सातवें महाशयजी भावदया वाले बनते हैं सो भी तोतेकी तरह तात्पर्य्य समझे विना रामराम पुकारने जैसा है क्योंकि सातवें महाशयजी भावदयाका स्वरूपही नही जानते हैं इसलिये अबमें पाठकवर्गकों भावदयाका स्वरूप संक्षिप्तसें दिखाता हूं—

श्रीजैनशास्त्रोंमें भावदया उसीको कहते हैं कि—प्रथमतो चतुर्गतिरूप संसारमें अनन्तकालसें नरकादिमें परिभ्रमणकी वेदना वगैरह स्वरूपको जान करके संसारकी निवृत्तिके लिये श्रीजिनेन्द्र भगवानोंका कहा हुवा आत्महितकारी धर्मको श्रद्धापूर्वक अङ्गीकार करके श्रीजिनेन्द्र भगवानोंके कहने मुजबही धर्म्मकी परूपना करे और मोक्षकी इच्छासें उसी मुजबही प्रवर्त्ते तथा दूसरोंको प्रवर्त्तावे और सब संसारी प्राणियोंको भी ऐसेही होनेकी इच्छा करे सोही उत्तम पुरुष भावदया कर सकता है, परन्तु सातवें महाशयजी तो उत्सूत्र भाषणोंसें संसार वृद्धिका भय नहीं करने वाले दिखते हैं क्योंकि श्रीजिनेन्द्र भगवानोंने तो अधिक मासको गिनतीमें लेनेका कहा है तथापि सातवें महाशयजी अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करनेकी श्रद्धा रहित होनेसें उत्सूत्रभाषणरूप अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करते हैं इसलिये सातवें महाशयजी काशीनिवासी श्रीधर्मविजयजी श्रीजिनेन्द्र भगवानोंके कहने मुजब वर्त्तने वाले नहीं है किन्तु श्रीजिनेन्द्र भगवानोंके विरुद्ध अपनी मतिकल्पनासें कुयुक्तियें करके बालजीवोंको मिथ्यात्वके

भ्रममें फँसाने वाले होनेसें उन्होंमें भावदयाका तो सम्भवही नही हो सकता है किन्तु संसार वृद्धिकी हेतुभूत भावहिंसाका कारण तो प्रत्यक्ष दिखता है ।

और सातवें महाशयजीने सिद्धान्तानुसार परोपकार दृष्टिसें पर्युषणा विचार नहीं लिखा है किन्तु पञ्चाङ्गीके सिद्धान्तोंके विरुद्ध बालजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी शुद्ध श्रद्धारूप सम्यक्त्वरत्नसें भ्रष्ट करनेको उत्सूत्र भाषणोंका संग्रह करके अपने कदाग्रहकी कल्पित बात जमानेके आग्रह सें पर्युषणा विचारके लेखमें पर्युषणा सम्बन्धी श्रीजैन-शास्त्रोंके तात्पर्य्यकों समझे बिना अज्ञताके कारणसें कुतर्कों-काही प्रकाश किया है सो तो मेरा सब लेख पढ़नेसें निष्प-क्षपाती सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीनें पर्युषणा विचारके तीसरे पृष्ठकी आदिसे ७ वीं पंक्ति तक लिखा है कि (उत्तम रीतिसें उपदेश करते हुए यदि किसीको राग द्वेषकी प्रणति हो तो लेखक दोषका भागी नही है क्योंकि उत्तम रीतिसें दवा करने पर भी यदि रोगीके रोगकी शान्ति नहो और मृत्यु हो जाय तो वैद्यके सिर हत्याका पाप नहीं है परिणाममें बन्ध, क्रियासें कर्म, उपयोगमें धर्म, इस न्यायानुसार लेखकका आशय शुभ है तो फल शुभ है)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि हे सज्जन पुरुषों सातवें महाशयजीकी बालजीवों को मिथ्यात्वमें फँसाने वाली मायावृत्तिकी चातुराईका नमूना तो देखो—आप अपने कदाग्रहके पक्षपातसें श्रीजैन-शासनकी उन्नतिके कार्य्योंमें विघ्नकारक संघको नष्ट करके

वृथाही आपसमें झगड़ा बढ़ानेके लिये 'पर्युषणा विचारनामा' पुस्तक प्रगट कराई जिसमें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालों पर खूबही आक्षेपरूप अनुचित शब्द लिख करके भी आप निर्दूषण बनना चाहते हैं सो कदापि नहीं हो सकते है क्योंकि पर्युषणा विचारके लेखमें सत्यबातको मानने वालोंकी झूठी निन्दा करके वृथाही अपनी मतिकल्पनासें मिथ्या दूषण लगाये है और उत्सूत्र भाषणोंसें बालजीवों को भी मिथ्यात्वमें फँसाये हैं इसलिये ऊपरकी इन बातों के दोषाधिकारी तो सातवें महाशयजी प्रत्यक्षही दिखते हैं यदि सातवें महाशयजीको ऊपरकी बातोंके दूषणोंसें संसार वृद्धिका भय होवे और आत्मकल्याणकी इच्छा होवे तो अबसें भी झगड़ेके कार्य्योंमें न फँसके इस ग्रन्थको संपूर्ण पढ़ करके सत्यबातको ग्रहण करें और पर्युषणा विचारके लेखकी अपनी भूलोंकी क्षमापूर्वक मिथ्या दुष्कृत सहित आलोचना लेवें तो सातवें महाशयजीको शुभ इरादेसें उत्तम रीतिका उपदेश करनेवाले तथा उत्सूत्र भाषणका भय रखनेवाले समझनेमें आवेंगे इतने पर भी सातवें महाशयजी पर्युषणा विचारके लेखोंको अपने दिलमें सत्य समझते होवें तो श्रीकाशीमें मध्यस्थ विद्वानोंके समक्ष (पर्युषणा विचारके लेखोंको) शास्त्रोंके प्रमाण सहित युक्तिपूर्वक सत्य करके दिखावे अन्यथा कदाग्रहसें सत्य-बातोंको छोड़ करके कल्पित बातोंको स्थापन करनेमें तो संसार वृद्धिके सिवाय और क्या लाभ होगा सो सज्जन पुरुष स्वयं विचार लेवें ;—

और उत्तम रीतिसें दवा करनेके भरोसें विश्वासघात

करके विष मिश्रित दवा देकर रोगीको मृत्युके सरण प्राप्त करने वाला वैद्य नाम धारक पुरुष महापापी होता है तैसेही कर्मरूपी रोगसें पीड़ित भव्यजीवोंको उत्तम रीतिका उपदेश देनेके भरोसें विश्वासघातसे उत्सूत्र भाषणरूप कल्पित कुयुक्तियोंका विष मिश्रित उपदेश करके भव्य-जीवोंको श्रीजिनाज्ञारूप सम्यक्त्वरत्न जीवतव्यसें भ्रष्ट करके मिथ्यात्वरूप मरणके सरण प्राप्त करनेवाला वेष-धारी साधु नाम धारक पुरुष महापापी होता है तैसेही सातवेंमहाशयजीने भी पर्युषणा विचारके लेखमें भव्यजीवोंको उत्तम रीतिका उपदेश करनेके बहाने उत्सूत्र भाषणरूप कुतर्कोंका विष मिश्रित उपदेश करके भव्यजीवोंको मिथ्यात्वरूप मृत्युके सरण प्राप्त किये हैं इसलिये भव्य जीवोंको मिथ्यात्वरूप मृत्युके सरण प्राप्त कर-नेके दोषाधिकारी सातवें महाशयजी है यदि सातवें महा-शयजीको ऊपरोक्त दूषणके फल विपाकका भय होवे तो अपने कृत्यकी आलोचना लेवेंगे ;—

और अपने कदाग्रहकी कल्पित बातको जमानेके लिये उत्सूत्र भाषणकी और कुयुक्तियोंकी बातें लिखनेवालेका परिणाम भी अच्छा नही होता है तथा क्रिया भी अच्छी नहीं होती है और उपयोग भी अच्छा नही होता है इसलिये पर्युषणा विचारके लेखक अपनेको अच्छा इस फलकी चाहना करते हैंसो कदापि नही हो सकेगा किन्तु पर्युषणा विचारके लेखमें शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणोंकी तथा कुयुक्तियोंकी और शास्त्रानुसार वर्त्तने वालोंकी झूठी निन्दा करके मिथ्या दूषण लगानेकी कल्पना भरी होनेसें

संसारवृद्धिके फल तो मिलनेका दिखता हैं इस बातको श्रीजैनशास्त्रोंके तत्त्वज्ञ पुरुष अच्छी तरहसे विचार लेवें ;—

और भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके तीसरे पृष्ठकी ८।९।१० पंक्तियोंमें लिखा है कि (अधिक मासको लेखामें गिनकर पर्युषणा पर्व करनेवाले महानुभावोंको नीचे लिखे हुए दोषों पर पक्षपात रहित विचार करनेकी सूचना दी जाती है)।

इस लेखको देखकर मेरेको बड़ेही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजीने श्रीजैन-शास्त्रोंके तात्पर्य्यको बिना समझे ऊपरके लेखमें इन्होंने श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्योंकी और खास अपनेही गच्छके पूर्वाचार्य्योंकी आशातनाका कारण रूप संसार वृद्धिके हेतुभूत खूबही अज्ञतासें अनुचित लिखा है क्योंकि अनन्ते काल हुवे श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्योंने अधिकमासको लेखामें गिन करही पर्युषणा करते आये हैं तथा वर्त्तमान इस पञ्चम कालमें भी श्रीजिनाज्ञाके आराधक सबीही आत्मार्थी जैनाचा-र्य्योंने अधिक मासको लेखामें गिन करही पर्युषणा करी है और आगे भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराज जो जो होवेंगे सो सबीही अधिक मासको गिनतीमें ले करही पर्युषणा करेंगे और अनेक शास्त्रोंमें अधिकमासको गिनतीमें लेकरही पर्युषणा करनी लिखी है इसलिये अधिक मासको गिनतीमें लेकरके जो पर्युषणा करते हैं सोही श्रीजिनाज्ञाके आराधक है और अधिक मासको गिनतीमें छोड़ करके पर्युषणा करते हैं सोही श्रीजिनाज्ञाके विराधक

उत्सूत्र भाषण करने वाले हैं तैसेही सातवें महाशय जी आप अधिक मासको गिनतीमें नही लेते हुवे अधिक मासको गिनतीमें ले करके पर्युषणा करने वालोंको मिथ्या दूषण लगाके उत्सूत्रभाषणसें ऊपरोक्त महाराजोंकी आशातना करके संसार वृद्धिका कुछ भी भय नही करते हैं। हा अति खेदः ?

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके तीसरे पृष्ठकी ११ वीं पंक्तिसें १९ वीं पंक्ति तक लिखा है (प्रथम दोष—आषाढ़ चौमासी बाद पचास दिनके भीतर पर्युषणापर्व करे इस नियमकी रक्षा करते हुए तत्तुल्य दूसरे नियमका सर्वथा भङ्ग होता है क्योंकि पचासवें दिवस संवत्सरी और उसके पीछे सत्तरवें दिन चौमासी प्रतिक्रमण करके पीछे मुनिराजोंको विहार करना चाहिये यदि दूसरे श्रावणमें सांवत्सरिक कृत्य करोगे तो सौ दिन बाकी रहेंगे तब सत्तर दिनका नियम कैसे पालन किया जायगा इसका विचार करो)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि-ऊपरके लेखमें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालों को सातवें महाशयजीने प्रथम दोष लगाया सो निःकेवल अज्ञताके कारणसें मिथ्या लिखके उत्सूत्र भाषण किया है क्योंकि श्रीनिशीथभाष्यमें १, तथा चूर्णिमें २, श्रीवृहत्कल्पभाष्यमें ३, तथा चूर्णिमें ४, और वृत्तिमें ५, श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें ६, तथा वृत्तिमें ७, श्रीस्थानाङ्गजीकी वृत्तिमें ८, श्रीकल्पसूत्रकी निर्युक्तिकी वृत्तिमें ९, श्रीकल्पसूत्रकी पाँच व्याख्यायोंमें १४ श्रीपर्युषणा कल्पचूर्णिमें १५

श्रीगच्छाचारपयन्नाकी वृत्तिमें १६ इत्यादि शास्त्रोंमें मासवृद्धिके अभावसें चन्द्रसम्वत्सरमें चारमासके १२० दिन का वर्षाकालमें ५० दिने पर्युषणा करनेसें पर्युषणाके पिछाड़ी कार्त्तिक तक ७० दिन रहते है जिसके सम्बन्धमें इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ९४ तथा ९९ और १२० । १२१ वगैरहमें कितनीही जगह पाठ भी छप गये हैं और मासवृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सरमें जैनपञ्चाङ्गानुसार आषाढ़ चौमासीसें वीश दिने पर्युषणा करनेमें आती थी तब भी पर्युषणा के पिछाड़ी कार्तिक तक १०० दिन रहते थे इसका भी विशेष खुलासा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ १०७ से १२३ तक छप गया है और वर्तमान कालमें जैनपञ्चाङ्गके अभावसें लौकिक पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी वृद्धि हो तो भी ५० दिनेही पर्युषणा करनेकी मर्य्यादा है सो भी इसीही ग्रन्थकी आदिसें पृष्ठ २७ तक और छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीके लेख की समीक्षामें पृष्ठ २८६ से २९९ तक छप गया है इसलिये वर्तमानकालमें दो श्रावणादि होनेसें पाँच मासके १५० दिनका वर्षाकालमें ५० दिने पर्युषणा करनेसें पर्युषणाके पिछाड़ी कार्त्तिक तक १०० दिन रहते हैं सो भी शास्त्रानुसार और युक्तिपूर्वक होनेसें कोई भी दूषण नही है इसका भी विशेष निर्णय इसीही ग्रन्थके पृष्ठ १२० से १२९ तक और पृष्ठ १७७ के अन्तसें १८५ तक छप गया है इसलिये दो श्रावण होनेसें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालोंको पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रखने सम्बन्धी और १०० दिन होनेसें दूषण लगाने सम्बन्धी सातवें महाशयजी लिखना अज्ञात सूचक और उत्सूत्र भाषण है। सो पाठकवर्ग विचारलेवेंगे,—

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके तीसरे पृष्ठकी २०वीं पंक्तिसें चौथे पृष्ठकी दूसरी पंक्ति तक लिखा है कि (दूसरा दोष—भाद्रसुदीमें पर्युषणा पर्व कहा हुवा है तत्सम्बन्धी पाठ आगे कहेंगे अधिक-मास मानने वाले श्रावण सुदीमें पर्युषणा करते हैं शास्त्रानु-कूल न होनेसें आज्ञाभङ्ग दोष है) इस लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि हे सज्जनपुरुषों मास वृद्धिके अभावसें चन्द्रसंवत्सरमें भाद्रपदमें पर्युषणा होनेका दोनुं चूर्णिकार महाराजोंने कहा है तथापि सातवें महा-शयजीनें वर्त्तमानकालमें मासवृद्धि दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करनेके लिये आगे पीछेके सम्बन्ध वाले पाठोंको छोड करके दोनुं चूर्णिकार महाराजोंके विरुद्ध थोड़ासा अधूरा पाठ मायावृत्तिसें आगे लिखा है जिसकी समीक्षा मैंभी आगेही करूंगा। परन्तु इस जगह तो दो श्रावण होनेसें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालों को सातवें महाशयजीने शास्त्र विरुद्ध ठहरा करके आज्ञा भङ्गका दूसरा दूषण लगाया है सो शास्त्रोंके प्रमाणपूर्वक वर्त्तने वालोंको झूठे ठहरा करके मिथ्यादूषण लगाया है तथा उत्सूत्र भाषणसें सत्य बातका निषेध करके मिथ्यात्व बढ़ाया है और अपने विद्वत्ताकी हासी भी कराई है क्योंकि अधिकमासको गिनतीमें लेनेका श्रीजैनशास्त्रानुसार तथा कालानुसार लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब और युक्तिपूर्वक निश्चय करके स्वयं सिद्ध है इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध नही हो सकती है इसका विशेष विस्तार छहों महाशयोंके लेखोंकी समीक्षामें अच्छी तरहसें छप गया है

और आषाढ़ चौमासीसें पचास दिने अवश्यही पर्युषणा पर्व करनेका सर्वत्र शास्त्रोंमें कहा है जिसका भी विशेष विस्तार इसीही ग्रन्थकी आदिसें लेकर ऊपर तकमें अनेक जगह छप गया है इसलिये वर्तमान कालमें ५० दिनके हिसाबसें दूसरे श्रावणमें पर्युषणापर्व करना सो शास्त्रानुसार और युक्तिपूर्वक सत्य होनेसें उसी मुजब वर्तनेवालोंको जो सातवें महाशयजीने दूषण लगाया हैं सो निःकेवल संसार वृद्धिके हेतुभूत उत्सूत्र भाषण किया हैं इस बातको निष्पक्षपाती पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे। और देखिये बड़ेही आश्चर्यकी बात है कि सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजी इतने विद्वान् कहलाते हैं और हरवर्षे गांव गांवमें श्रीकल्पसूत्रका मूल पाठको तथा उन्होंकी वृत्तिको व्याख्यानमें वाँचते हैं उसी में ५० दिने पर्युषणा करनेका लिखा है उसी मुजबही दूसरे श्रावणमें ५० दिने पर्युषणा करते हैं जिन्होंको अपनी मति कल्पनासें आज्ञाभङ्गका दूषण लगाना सो विवेकशून्य कदाग्रही अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी और अपनी विद्वत्ताकी हासी करानेवालेके सिवाय दूसरा कौन होगा सो भी पाठकवर्ग विचार लेवेंगे ;—

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीनें पर्युषणा विचारके चौथे पृष्ठकी तीसरी पंक्तिसें चौदह वीं पंक्ति तक लिखा है कि (अधिक मासके मानने वालोंको चौमासी क्षमापनाके समय 'पंचण्हं मासाणं दसण्हं पक्खाणं पञ्चासुत्तरसयराइंदिआणमित्यादि' और सांवत्सरिक क्षमापनाके समय 'तेरसण्हं मासाणं छव्वीसण्हं पक्खाणं' पाठकी कल्पना करनी पड़ेगी। यदि ऐसा करोगे तो कल्पित आचार

होनेसे फलसे वञ्चित रहोगे, क्योंकि शास्त्रमें तो 'चहुरहं मासाणं अट्ठरहं पक्खाणं' इत्यादि तथा 'बारसरहं मासाणं चउवीसरहं पक्खाणं' इत्यादि पाठ है इसके अतिरिक्त पाठ नहीं है उसके रहने पर यदि नई कल्पना करोगे तो कल्पना-कुशल, आज्ञाका पालन करनेवाला है या नहीं, यह पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि हे सज्जन पुरुषों सातवें महाशयजीके ऊपरका लेखको देखकर मेरेको बड़ाही आश्चर्य्य उत्पन्न होता है कि सातवें महाशयजीके विद्वत्ताकी विवेक बुद्धि (ऊपरका लेख लिखते समय) किस जगह चली गई होगी सो मासवृद्धिके अभावकी बातको मासवृद्धि होतेभी बाल जीवोंको लिख दिखाकरके अपनी बात जमानेके लिये दूसरोंको मिथ्या दूषण लगाते हुवे उत्सूत्र भाषणसें संसार वृद्धिका भय हृदयमें क्यों नहीं लाते हैं क्योंकि जिस जिस शास्त्रमें सांवत्सरिक क्षामणाधिकारे बारह मास, चौबीश पक्ष लिखे हैं सो तो निश्चय करके मासवृद्धिके अभावसे चन्द्र संवत्सर संबंधी है नतु मास वृद्धि होतेभी अभिवर्द्धित संवत्सर में क्योंकि मास-वृद्धि होनेसें तेरह मास और छब्बीश पक्ष व्यतीत होने पर भी बारह मास और चौबीश पक्षके क्षामणा करना ऐसा कोई भी शास्त्रमें नहीं लिखा है ।

और श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्रमें १, तथा तद्वृत्तिमें २, श्रीसूर्य्य-प्रज्ञप्ति सूत्रमे ३, तथा तद्वृत्तिमें ४, श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें ५, तथा तद्वृत्तिमें ६, श्रीनिशीथचूर्णिमें ७, श्रीजंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्रमें ८, तथा तीनकी पांच वृत्तियोंमें १३, श्रीप्रवचन-

सारोद्धारमें १४, तथा तद्वृत्तिमें १५, श्रीज्योतिष्करण्ड-पयन्नामें १६, तथा तद्वृत्तिमें १७, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें मास वृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सरके १३ मास, २६ पक्ष खुलासा पूर्वक लिखे हैं और लौकिकपञ्चाङ्गमें भी अधिक मास होनेसें तेरह मास छवीश पक्षका वर्ष लिखा जाता है और सब दुनिया भी धर्मकर्मके व्यवहारमें अधिकमासके कारणसें तेरह मास छवीश पक्षको मान्य करती है उसी मुजबही सब जैनी लोग भी वर्त्तते हैं इसलिये अधिक मासके होनेसें तेरह मास, छवीश पक्षका धर्म्म, पापको गिनतीमें लेकर उतनेही महिनोंके धर्म्मकार्य्योंकी अनुमोदना और पाप कार्योंकी आलोचना लेनी शास्त्रानुसार और युक्तिपूर्वक है क्योंकि अधिक मास होनेसे तेरह मास छवीश पक्षमें धर्म्म, और अधर्म्म, करके धर्मकार्य्योंकी गिनती नहीं करना और पापकार्य्योंकी आलोचना नहीं करना ऐसातो कदापि नहीं हो सकता है।

और जब श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अधिकमासको गिनतीमें प्रमाण किया है और अभिवर्द्धित संवत्सर तेरह मास छवीश पक्षका कहा हैं तो फिर श्री तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध अपनी मतिकल्पनासें वारह मास चौवीश पक्ष कहके एक मासके दो पक्षोंको छोड़ देना और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंका कहा हुवा अभिवर्द्धित संवत्सरके नामका खंडन करना बुद्धिमान कैसे करेंगे अपितु कदापि नहीं। और श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण किया है तथापि सातवें महाशयजी उत्सूत्र भाषक होकरके उसीका

निषेध करनेके लिये कटिबद्ध तैयार है तो फिर तेरह मास छवीस पक्ष कहेंगे ऐसा तो संभव ही नहीं हो सकता है। जब अधिक मासको गिनतीमें लेनेको ही जिन्हको लज्जा आती है तो फिर तेरह मास छवीश पक्ष कहना तो विशेष उन्हको लज्जाकी बात होवे तो कोई आश्चर्य्य नहीं है।

और सातवें महाशयजी शास्त्रोंके पाठ मंजूर करने वाले होवें तो फिर अधिक मासको श्रीअनंत तीर्थङ्कर गण-धरादि महाराजोंने प्रमाण किया है जिसका अधिकार इसी ही ग्रन्थके पृष्ठ ३२ सें ४८ तक वगैरह कितनी ही जगह छप गया है और सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते का उच्चारण किये पीछे इरियावही करनी वगैरह अनेक बातें शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक कही है जिसको तो प्रमाण न करते हुवे उलटा उत्थापन करते हैं फिर शास्त्रके पाठकी बात करना सो कैसी विद्वत्ता कही जावे इस बातको पाठक-वर्ग भी विचार सकते हैं।

शंका—अजी आप ऊपरमें अनेक शास्त्रोंके प्रमाणोंसें और युक्तियों सें तेरह मास छवीश पक्षकी गिनती करके उतनीही आलोचना लेकर उतनेही क्षामणे सांवत्सरिक प्रतिक्रमणमें करनेका दिखाते हो परन्तु सांवत्सरिक प्रति क्रमणकी विधिमें १३ मास, २६ पक्षके, क्षामणे करके उतने ही मासोंकी आलोचना लेनी किसी शास्त्रमें क्यों नहीं लिखी है।

समाधान—भो देवानुप्रिय! सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी विधि में १३ मास, २६ पक्ष के क्षामणे करके उतने ही मास पक्षोंकी आलोचना लेनी किसी भी शास्त्र में नहीं लिखी है यह तेरा कहना अज्ञात सूचक है क्योंकि श्रीआव-

श्यक चूर्णि में १ तथा वृहद्वृत्ति में २, और लघुवृत्ति में ३ श्रीप्रवचन सारोद्धार में ४, तथा वृहद्वृत्ति में ५, और लघुवृत्तिमें ६, श्रीधर्मरत्न प्रकरणकी वृत्तिमें ७, श्रीअभयदेव सूरिजीकृत समाचारी ग्रन्थ में ८, श्रीजिनप्रभसूरिजीकृत विधि प्रपा समाचारी में ९, श्रीजिनपति सूरिजीकृत समाचारी में १०, श्रीसमाचारी शतकनामा ग्रन्थ में ११, श्रीषडावश्यक ग्रंथ में १२, श्रीतपगच्छ के श्रीजयचन्द्र सूरिजीकृत प्रतिक्रमण गर्भहेतुनामा ग्रंथ में १३; श्रीरत्नशेखरसूरिजीकृत श्रीश्राद्धविद्धि वृत्ति में १४, प्राचीन प्रतिक्रमण गर्भहेतुनामा ग्रंथमें १५, और श्रीपूर्वाचार्योंके बनाये समाचारियोंके चार ग्रंथोंमें १९, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें देवसी और राइ प्रतिक्रमणके अनंतर पाक्षिक प्रतिक्रमणके मुजबही चौमासी और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की विधि कही है और चौमासी सांवत्सरिक शब्दका नामांतर कहके चौमासी में २०, लोगस्स का कायोत्सर्ग तथा पांच साधुओंको क्षमानेकी और सांवत्सरिक में ४० लोगस्सका कायोत्सर्ग तथा ७ वा ९ वगैरह साधुओंको क्षमाणेकी भिन्नता दिखाई है और क्षमाणा के अवसर में संवच्छर शब्द का ग्रहण करने में आता है। संवत्सर कहो। सांवत्सरी कहो। संवच्छरी कहो। वार्षिक कहो। सबका तात्पर्य एक है और संवत्सर शब्द यद्यपि-नक्षत्र संवत्सर १। ऋतु संवत्सर २। सूर्य संवत्सर ३. चंद्र संवत्सर ४. और अभिवर्द्धित संवत्सर ५ इन पांच प्रकार के अर्थों में ग्रहण होता है परन्तु क्षामणा के अवसर में तो दो अर्थ ग्रहण करने में आते हैं जिसमें प्रथम मास वृद्धि के अभावसें चन्द्र संवत्सर के बारह मास और चौवीश पक्ष अनेक शास्त्रों में कहे हैं और दूसरा मास

वृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सरके तेरह मास और छबीश पक्ष भी अनेक शास्त्रोंमें कहे हैं इसलिये सांवत्सरिक क्षामणेमें मास वृद्धिके अभावसें चंद्रसंवत्सर संबन्धी बारह मास चौबीस पक्ष कहने चाहिये और मास वृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सर सम्बन्धी तेरह मास छबीश पक्ष कहने चाहियें और जिस शास्त्रमें बारह मास चौबीश पक्ष लिखे होवें सो चन्द्रसंवत्सर सम्बन्धी समझने चाहिये। इतने पर भी मासवृद्धि होनेसें तेरह मास छबीश पक्ष व्यतीत होने पर भी बारह मास चौबीश पक्ष जो बोलते हैं सो कोई भी शास्त्र के प्रमाण बिना अपनी मति कल्पनाका बर्ताव करके श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंका कहा हुवा अभिवर्द्धित संवत्सरके नामको खंडन करके उत्सूत्र भाषणसें संसार वृद्धिका कारण करते हुवे गुरुगम रहित श्रीजैनशास्त्रों के तात्पर्यको नहीं जाननेवाले हैं क्योंकि देखो सर्वत्र शास्त्रों में साधुके बिहारकी व्याख्यामें नव कल्पि विहार साधुको करनेका कहा है सो मासवृद्धि के अभावसें होता है परन्तु शीतकालमें अथवा उष्णकालमें मासवृद्धि होनेसें अवश्य करके १० कल्पिविहार करनेका प्रत्यक्ष बनता हैं तथापि कोई हठवादी शीतकालमें अथवा उष्णकालमें मास वृद्धि होतेभी नवकल्पि विहार कहनेवालेको माया मिथ्या का दूषण लगता है क्योंकि जैसे कार्त्तिक पीछे साधुने विहार किया और मास कल्पके नियम मुजब विचरता है उसी समय शीतकाल में अथवा उष्णकाल में अधिक मास होगया तो उस अधिक मास में अवश्य करके दूसरे गांव विहार करेगा परन्तु एकही गांव में दो मास तक कदापि

नहीं ठहरेगा जब अधिक मास में विहार करके दूसरे गांव जावेगा तब उसीको दश कल्पि विहार हो जावेगा क्योंकि चारमास शीतकालके चारमास उष्णकालके तथा एक अधिक मासका और एक वर्षाऋतुके चारमासका इस तरहसें अवश्य करके दसकल्पि विहार होता है तथापि नव कल्पि कहने-वाला तो प्रत्यक्ष माया सहित मिथ्याभाषण करनेवाला ठहरेगा सो पाठकवर्ग भी विचार सकते हैं और जैसे मास वृद्धि होनेसे दसकल्पि विहार करने में आता है तैसेही मा-सवृद्धि होनेसें तेरह मास छबीश पक्षोंकी गिनती करके उतनेही क्षामणे करने में आते हैं सो आत्मार्थी श्रीजिने-श्वर भगवान् की आज्ञाके आराधक सत्यग्राही भव्यजीव तो मंजूर करते हैं परन्तु उत्सूत्र भाषक कदाग्रही विद्वत्ता के अभिमानको धारण करनेवालोंकी तो बातही जुदी है। और अधिक मासकी गिनती श्रीतीर्थंकर गणधरादि महा-राजोंकी कहीहुई है जिसको संसारगामी मिथ्यात्वी श्रीजि-नाज्ञाका विराधकके सिवाय कौन निषेध करेगा और अधिक मासको माननेवालों को दूषण लगाकरके फिर आप निर्दूषण भी बनेगा। सो विवेकी पाठकवर्ग विचार लेवेंगे। और अधिक मासके कारणसे ही तेरह मास छबीश पक्षका अभिवर्द्धित संवत्सर श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महा-राजोंने कहा है इस लिये अवश्य करके पांच मासका एक अभिवर्द्धित चौमासा भी मानना चाहिये।

(शङ्का) अधिक मासके कारणसें पांच मासका अभि-वर्द्धित चौमासा किस शास्त्रमें लिखा है।

(समाधान) भो देवानुप्रिय! ऊपर ही ३६३, ३६५ पृष्ठ में

१७ शास्त्रोंके प्रमाण अधिक मासके कारणसें तेरह मास छवीश पक्षका अभिवर्द्धित संवत्सर संबंधी छपे हैं उसी शास्त्रोंसे तथा युक्तियोंसें और प्रत्यक्ष अनुभवसें भी अधिक मासके कारणसें पांच मासका अभिवर्द्धित चौमासा प्रत्यक्ष सिद्ध होता है क्योंकि शीतकालके, उष्णकालके, और वर्षा-कालके चार चार मासका प्रमाण है परन्तु जैन पंचांगा-नुसार और लौकिक पंचांगानुसार जिस ऋतुमें अधिक मास होवे उसी ऋतुका अभिवर्द्धित चौमासा पांच मासके प्रमाणका मानना स्वयं सिद्ध है इस लिये अधिकमासके कार-णसें चौमासामें पांचमास दशपक्षका और सांवत्सरीमें तेरह मास छवीशपक्षका अवश्य करके व्यवहार करना चाहिये।

शङ्का—अजी आप अधिक मासके कारणसें चौमासामें पांच मास, दशपक्षका और सांवत्सरीमें तेरह मास छवीश पक्षका व्यवहार करना कहते हो सो क्षामणाके अवसरमें तो हो सकता है, परन्तु मुहपत्ती (मुखवस्त्रिका)की प्रतिलेखना करते, वांदणा देते, अतिचारोंकी आलोचना करते वगैरह कार्योंमें चौमासीमें पांच मास, दश पक्षका और सांवत्सरीमें तेरह मास छवीश पक्षका व्यवहार कैसे हो सकेगा।

समाधान—भो देवानुप्रिय—जैसे मास वृद्धिके अभावसें चौमासीमें चार मास, आठ पक्षका और सांवत्सरीमें बारह मास, चौवीश पक्षका, अर्थ ग्रहण करनेमें आता है और मुख-वस्त्रिकाकी प्रतिलेखनामें, वांदणा देनेमें, अतिचारोंकी आलोचना वगैरह कार्योंमें उतने ही मास पक्षोंकी भावना होती है,तैसे ही मास वृद्धि होनेके कारणसें चौमासीमें पांच मास,दश पक्षका और सांवत्सरीमें तेरह मास छवीस पक्षका

अर्थ ग्रहण होता है इसलिये चौमासीमें और सांवत्सरिक कार्यौंमें भी उतने ही मास पक्षोंकी भावना करनेमें आती है,

और जैसे चंद्रसंवत्सरमें-सांवत्सरिक प्रतिक्रमणमें क्षामणाधिकारे 'बारसण्हं मासाणं चउव्वीसण्हं पक्खाणं तिन्निसयसट्ठी राइदियाणं' इत्यादि पाठ बोलके बारह मास, चौवीश पक्ष, तीन सौ साठ (३६०) रात्रि दिनोंकी आलोचना करनेमें आती है और चौमासी प्रतिक्रमणमें 'चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं वीसुत्तरसय राइंदियाणं' इत्यादि पाठ बोलके चार मास, आठ पक्ष, एक सौ वीश रात्रि दिनोंकी आलोचना करनेमें आती है, तैसे ही अभिवर्द्धित संवत्सरमें भी सांवत्सरिक क्षामणाधिकारे 'तेरसण्हं मासाणं छव्वीसण्हं पक्खाणं तिन्निसयणउ राइंदियाणं' इत्यादि पाठ बोलके तेरह मास,छवीश पक्ष, तीन सौ नव्वे (३९०) रात्रि दिनोंकी आलोचना करनेमें आती है और अभिवर्द्धित चौमासेमें भी 'पंचण्हं मासाणं दसण्हं पक्खाणं पंचासुत्तरसय राइंदियाणं' इत्यादि पाठ बोलके पांच मास, दश पक्ष एक सौ पचास (१५०) रात्रि दिनोंकी आलोचना करनेमें आती है।

ऊपरमें श्रीआवश्यकचूर्णि, श्रीप्रवचनसारोद्धार, श्रीधर्मरत्न प्रकरणवृत्ति और श्रीअभयदेवसूरिजीकृत समाचारी वगैरह शास्त्रोंके प्रमाण प्रतिक्रमण संबंधी लिखनेमें आये हैं, उन्हीं शास्त्रोंके अनुसार (संवच्छर) संवत्सर शब्दके ऊपरोक्त न्यायानुसार चंद्र,अभिवर्द्धित इन दोनुं संवत्सरोंका अर्थ ग्रहण होनेसें क्षामणा संबंधी ऊपरका पाठ ऊपरोक्त शास्त्रोंके अनुसार ही समझना।

पूर्व पक्ष—अजी आप ऊपरोक्त शास्त्रोंके अनुसार चन्द्र संवत्सरका और अभिवर्द्धित संवत्सरका अर्थ ग्रहण करके चंद्रमें बारह मासादिसें और अभिवर्द्धितसें तेरह मासादिसें सांवत्सरीमें क्षामणा करनेका लिखतेहो परन्तु किसी भी पूर्वाचार्यजीने कोई भी शास्त्रमें ऐसा खुलासा क्यों नहीं लिखा हैं।

उत्तर पक्ष—भो देवानुप्रिय। तेरेसें श्रीजैनशास्त्रोंके तात्पर्यार्थको समझनेकी गुरुगम बिना विवेक बुद्धि नहीं है इसलिये बालजीवोंको मिथ्यात्वमें फँसानेके लिये वृथा ही ऐसी कुतर्क करता है क्योंकि जब श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजों ने संवत्सर शब्दके चंद्र और अभिवर्द्धितादि जुदे जुदे अर्थ कहे हैं जिसमें चन्द्रके बारह मास,चौबीस पक्ष और अभिवर्द्धितके तेरह मास,छवीश पक्ष खुलासे कह दिये है,इसलिये पूर्वाचार्योंने संवत्सर शब्दको ही ग्रहण करके व्याख्या करी है और यह तो अल्पबुद्धिवाला भी समझ सकता है कि जब अधिक मासकी गिनती शास्त्रोंमें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने प्रमाण करी है और प्रत्यक्षमें वर्तते हैं इसलिये पापकृत्योंकी आलोचनामें तो जरूर ही अधिक मास गिनतीमें लेना सो तो न्यायकी बात है परन्तु विवेकशून्य हठवादी होगा सो ऐसी कुतर्क करेगा कि—अधिक मासकी आलोचना कहां लिखी है जिसको यही कहना चाहिये कि अधिक मासको गिनतीमें लेकर फिर आलोचना नहीं करनी कहां लिखी है इसलिये ऐसी वृथा कुतर्कोंके करनेसें मिथ्यात्व बढ़ानेके सिवाय और कुछ भी लाभ नहीं उठा-सकेगा, क्योंकि जब अधिक मासकी गिनती मंजूर है तो फिर

आलोचना तो स्वयं मंजूर हो चुकी और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंका कहा हुवा तथा प्रमाण भी करा हुवा अधिक मासको उत्सूत्र भाषण करके निषेध करते हैं और प्रमाण करने वालोंको दूषण लगाते हैं सो पुरुष अधिक मासकी आलोचना नहीं करे तो उन्होंके मति कल्पनाकी बातही जुदी है परन्तु श्रीतीर्थङ्करगणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार अधिक मासकी गिनती प्रमाण करने वालोंको तो अवश्य ही अधिक मासकी आलोचना करना उचित है। इतने पर भी जो नहीं करने वाले हैं सो श्रीजिनाज्ञाके उत्थापक हैं।

और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी भाव परंपरानुसार चंद्रसंवत्सरका और अभिवर्द्धित संवत्सरका यथोचित अवसर पर जुदा जुदा अर्थ ग्रहण करके सांवत्सरीमें क्षामणा करनेकी अनुक्रमे अखंडित मर्यादा चली आती है इसलिये पूर्वाचार्योंने अधिक मासकी गिनती करनेकी तो सभी जगह ,व्याख्या करी है परन्तु क्षामणा सम्बन्धी संवत्सरशब्द लिखा है जिसका कारण यही है कि अधिक मास प्रमाण हुआ तो क्षामणे करनेका तो स्वयं प्रमाण हो चुका, जब सम्वेगी साधु मान लिया, तब महाव्रतधारी तो स्वयं सिद्ध हो चुका। जब श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की मूर्त्तिको श्रीजिन सदृश मान्य करी तब उसीको वंदना पूजना तो स्वयं सिद्ध होगया ; जब व्याख्यान वांचना मंजूर कर लिया, तब जानकार तो स्वयं सिद्ध होगया। ऐसे ऐसे अनेक दृष्टान्त प्रत्यक्ष हैं सो विशेष पाठकवर्गभी विचार सकते हैं।

और श्रीजैनशास्त्रोंके तात्पर्यको नहीं जानने वाले

हठवादी पुरुषोंको तो श्रीप्रवचनसारोद्धार, तथा वृत्ति, और श्रीधर्मरत्नप्रकरण वृत्ति, और श्रीअभयदेवसूरिजी वगैरह पूर्वाचार्योंके बनाये समाचारियोंके ग्रन्थ और प्रतिक्रमण गर्भ हेतु, श्रीश्राद्धविधिवृत्ति, वगैरह शास्त्रोंके अनुसार सांवत्सरीमें बारह मास चौवीश पक्षके क्षामणा करनेका ही नहीं बनेगा क्योंकि इन शास्त्रोंमें तो बारह मास चौवीश पक्ष भी नहीं लिखे हैं तो फिर बारह मासादिका अर्थ ऊपरके शास्त्रोंके अनुसार कैसे मान्य करेंगे और पांचोंही प्रतिक्रमणोंकी विधि ऊपरके शास्त्रोंमें कही है इसलिये ऊपर कहे सो शास्त्रोंके अनुसार पांच प्रतिक्रमणोंकी विधिको तो मान्य करनीही पड़ेगी और संवत्सर शब्दसें बारह मासका अर्थ ग्रहण करोंगे तो मासवृद्धि होनेसें तेरह मासका भी अर्थ ग्रहण करनाही पड़ेगा सो तो न्यायकी बात हैं और पहिलेके कालमें ऐसी कुतर्कें करनेवाले विवेकशून्य कदाग्रही पुरुष भी नहीं थे नहीं तो पूर्वाचार्य्यजी जरूर करके विस्तारसें खुलासा लिख देते क्योंकि जिस जिस समयमें जैसी जैसी कुतर्कें करनेवाले पूर्वाचार्य्योंके समयमें जो जो हठवादी पुरुष थे जिन्होंको समझानेके लिये वैसे वैसेही खुलासा पूर्वाचार्य्योंने विस्तारसे किया है जैसे कि ईश्वरवादी, नास्तिक, वगैरहोके लिये और श्रीजिनमूर्त्तिको तथा जिनमूर्त्तिकी पूजा सम्बन्धी शास्त्रोक्त विधिको वर्णन करी हैं, परन्तु मूर्तिके और पूजाके सम्बन्धमें वर्त्तमान समय जैसी युक्तियां लिखनेकी जरूरत नहीं थी जिसका कारण कि—उस समय श्रीजिनमूर्तिके तथा उसीकी पूजाके निषेधक ढूंढिये, तेरहपन्थी, वगैरह

कुयुक्तियां करने वाले पुरुष नहीं थे परन्तु वर्तमान समयमें श्रीजिनमूर्तिके निन्दक विशेष कुयुक्तियां करने लगे तो वर्तमान कालमें उसीके स्थापनेके लिये विशेष युक्तियां भी होती है।

तैसेही इस वर्तमान कालमें तेरह मास छवीश पक्षके निषेध करने वाले सातवें महाशयजी जैसे शास्त्रोंके तात्पर्य्यको नहीं जानने वाले पैदा हुवे तो उसीको स्थापन करनेके लिये इतनी व्याख्या भी मेरेको इस जगह करनी पड़ी नहीं तो क्या प्रयोजन था, अब न्यायदृष्टिवाले सत्यग्राही भव्यजीवोंको मेरा इतनाही कहना है कि जैसे श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने श्रीसूयगड़ाङ्गजी, श्रीदशवैकालिकजी, श्रीउत्तराध्ययनजी वगैरह शास्त्रोंमें साधुके उद्देश करके व्याख्या करी है उसीको ही यथोचित साध्वीके लिये भी समझना चाहिये और श्रीवन्दीतासूत्रकी—“चउत्थे अणुव्वयंसि, निच्चं परदारगमण विरइओ॥ आयरियमप्पसत्थे, इत्थपमायप्पसंगेणं॥ १५॥ अपरिगहिआ इत्तर” इत्यादि गाथायोंमें और अतिचारोंकी आलोचना वगैरहमें श्रावकका नाम उद्देश करके व्याख्या करी है उसीकोही यथोचित श्राविकाके लियेही समझना चाहिये इतने पर भी कोई विवेक शून्य कुतर्क करे कि— असुक असुक बातें साधुके और श्रावकके लिये तो कही है परन्तु साध्वी और श्राविकाके लिये तो नहीं कही है ऐसी कुतर्क करनेवालेको अज्ञानीके सिवाय, तत्त्वज्ञ पुरुष और क्या कहेंगे। तैसेही जिस जिस शास्त्रमें चन्द्रसंवत्सरकी अपेक्षासें जो जो बातें कही है उसीकेही अनुसार यथोचित अवसरमें अभिवर्द्धित संवत्सरसम्बन्धी भी समझनी चाहिये

तथापि विवेकशून्य हठवादी कोई ऐसी कुतर्क करे कि— अमुक शास्त्रमें मासवृद्धिके अभावसें चन्द्रसम्वत्सरके लिये बारह मासके क्षामणे कहे हैं परन्तु मासवृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित सम्वत्सरके लिये तो कुछ नही कहा है, ऐसी कुतर्क करने वालेको अज्ञानीके सिवाय, तत्त्वज्ञ पुरुष और क्या कहेगे क्योंकि एकके उद्देश्यसें जो व्याख्या करी होवे उसीके ही अनुसार दूसरेके लियेही यथोचित समझनेकी श्रीजैनशास्त्रोंमें मर्य्यादा है इसलिये जूदे नाम उद्देश्य करके जूदी जूदी व्याख्या शास्त्रकार नहीं करते हैं परन्तु जो सत्यग्राही विवेकी आत्मार्थी होवेंगे सो तो सद्गुरुकी सेवासें श्रीजैनशास्त्रोंके तात्पर्य्यको समझके सत्यबात ग्रहण करेंगे और विवेक रहित हठवादी होगें जिसके कर्मोंका दोष नतु शास्त्रकारोंका, जैसे—श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्यायोंमें प्रसिद्ध बात है कि–कोई साधु स्थण्डिले जङ्गलमें गयाथा सो कुछ ज्यादा देरीसें गुरु पास आया तब उस साधुको गुरु महाराजने देरीसें आनेका कारण पूछा तब उस साधुने रस्तेमें नाटकीये लोगोंका नाटक देखनेके कारण देरीसें आना हुवा सो कहा, तब गुरु महाराजने नाटकीये लोगोंका नाटक देखनेकी साधुको मनाई करी तब विवेकी बुद्धिवाले चतुर थे वे तो नाटकणी लुगाइयोंका नाटक वर्जनेका भी स्वयं समझ गये, और विवेक बिनाके थे सो तो नाटकणी लुगाइयोंका नाटक देखनेको खड़े रहे, तब गुरु महाराजके कहने पर विवेक रहित होनेसें बोलेकी आपने नाटकीये लोगोंका नाटक देखनेकी मनाई करीथी परन्तु नाटकणी लुगाईयोंका नाटक देखनेकी तो मनाई नही करी थी तब गुरु महा-

राजने कहा कि जब नाटककीयें लोगोंका नाटक वर्जन किया तब नाटकणी लुगाइयोंका नाटक तो विशेष रागका कारण होनेसें स्वयं वर्जन समझना चाहिये तब उन्होंने गुरु महाराजके कहने मुजबही मंजूर किया—और हठवादी मूर्ख थे सो तो गुरु महाराजकोही दूषित ठहराने लगे कि आपने नाटकीये लोगोंका नाटक वर्जन किया तो फिर नाटकणी लुगाइयोंका नाटक क्यों वर्जन नहीं किया—

ऊपरके लेखका क्षामणाके सम्बन्धमें तात्पर्य्य ऐसा है जब श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने संवत्सर शब्दके चन्द्र, अभिवर्द्धितादि जूदे जूदे भेद प्रमाण सहित कहे हैं और सांवत्सरिक क्षामणाके अधिकारमें संवत्सर शब्दसें व्याख्या करी है जिसमें मासवृद्धिके अभावसें चन्द्रसंवत्सरमें बारह मासादिसें क्षामणा करनेमें आते हैं उसीकेही अनुसार विवेक बुद्धिवाले चतुर होवेंगे सो तो मासवृद्धि होनेसें तेरह मासादिसें क्षामणा करनेका स्वयं समझ लेवेंगे और विवेक रहित होवेंगे सो शास्त्रोंके अनुसार युक्तिपूर्वक गुरु-महाराजके समझानेसें मान्य करेंगे और विवेक रहित हठवादी होवेंगे सो तो शास्त्रोंका प्रमाण और युक्ति होने पर भी शास्त्रकार महाराजोंकोही उलटे दूषित ठहरावेंगे कि अधिक मासकी गिनतीको प्रमाण करके तेरह मास छवीश पक्षका अभिवर्द्धित संवत्सरको शास्त्र-कार लिख गये तो फिर अधिकमास होनेसें तेरह मास छवीश पक्षके क्षामणे करनेका क्यों नहीं लिख गये, इस तरहसें अपनी वक्र जड़ता प्रगट करके बालजीवोंको भी मिथ्यात्वमें फँसावेंगे, पर भवका भय नहीं रक्खेंगे,

और शास्त्रकारोंको मिथ्या दूषण लगाके, फिर आप निर्दूषण भी बनेंगे, सो तो कलियुगकाही प्रभावके सिवाय और क्या होगा सो तत्त्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे।

प्रश्नः—श्रीजैनशास्त्रोंमें चन्द्रसंवत्सरके ३५४ दिनका और अभिवर्द्धित संवत्सरके ३८३ दिनका प्रमाणकहा है फिर सांवत्सरी सम्बन्धी चन्द्रसंवत्सरमें ३६० दिनके और अभिवर्द्धित संवत्सर में ३९० दिनके क्षामणे करनेका आप कैसे लिखते हो।

उत्तरः—भो देवानुप्रिय, श्रीजिनेन्द्र भगवानोंका कहा हुआ नयगर्भित श्रीजिन प्रवचनकी शैली गुरुगम और अनु· भव बिना प्राप्त नहीं हो सकती है क्योंकि यद्यपि श्रीजैन-शास्त्रोंमें चन्द्रसंवत्सरके ३५४ दिन, ११ घटीका, और ३६ पलका प्रमाण कहा है और अभिवर्द्धित संवत्सरके ३८३ दिन, ४२ घटीका, और ३४ पलका प्रमाण कहा है सो चन्द्रके विमानकी गतिके हिसाबसें निश्चय नय संबन्धी समझना चाहिये और जो चन्द्रसंवत्सरमें ३६० दिनके और अभिवर्द्धितमें ३९० दिनके क्षामणे करनेमें आते हैं सो दुनियाकी रीतिसें, व्यवहार नय करके, लोगोंको मुखसें उच्चारण हो सके इसलिये बहुत अपेक्षासें समझना चाहिये। और व्यवहार नयसें चन्द्रसंवत्सरमें ३६० दिनका और अभिवर्द्धित संवत्सरमें ३९० दिनका उच्चारण करके क्षामणे करनेमें आते हैं परन्तु निश्चय नय करके तो जितने समयसें सांवत्सरीमें क्षामणे करनेमें आवेंगे उतनेही समय तकके पापकृत्योंकी आलोचना हो सकेगी सो विशेष पाठकवर्ग भी स्वयं विचार लेवेंगे और चौमासी पाक्षिक देवसीराइ प्रतिक्रमण सम्बन्धी भी निश्चय नयकी और व्यवहार

नयकी अपेक्षा केलिये आगे लिखुंगा—

अब सत्यग्राही तत्त्वज्ञ पुरुषोंको न्यायदृष्टिसें विचार करना चाहिये कि अधिक मासके कारणसें चौमासीमें पांच मासादिसें और सांवत्सरिमें १३ मासादिसें क्षामणे करनेका अनेक शास्त्रोंके प्रमाणानुसार युक्तिपूर्वक और प्रत्यक्ष अनुभवसें स्वयं सिद्ध है सो तो मैंने ऊपरसें ही लिख दिखाया है परन्तु सातवें महाशयजी कोई भी शास्त्रके प्रमाण बिना पांच मास होते भी चार मासके क्षामण करने का और तेरह मास होते भी १२ मासके क्षामणे करनेका लिख दिखाके फिर शास्त्रानुसार पांच मासके और तेरह मासके क्षामणे करने वालोंको दूषण लगाते हैं सो अपने विद्वत्ताकी हांसी करा करके, संसार वृद्धिके हेतुभूत उत्सूत्र भाषणके सिवाय और क्या होगा सो पाठकवर्गको विचार करना चाहिये।

और भी आगे पर्युषणा विचारके चौथे पृष्ठकी १५ वीं पंक्तिसें २१वीं पंक्ति तक लिखा है कि–(दूसरी बात यह है किसी समय सोलह (१६) दिनका पक्ष होता है और कभी चौदह दिनका पक्ष होता है उस समय 'एक पक्खाणं पन्नरसण्हं दिवसाणं' इस पाठको छोड़कर क्या दूसरी पाठकी कल्पना करते हो यदि नही करते तो एक दिनका प्रायश्चित्त बाकी रह जायगा जैसे तुम्हारे मतमें 'चउण्हं मासाणं' इत्यादि पाठ कहनेसें अधिकमासका प्रायश्चित्त रह जाता है)—

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि हे सज्जन पुरुषों सातवें महाशयजीके ऊपरका लेखको देखकर मेरेकों बड़ाही विचार उत्पन्न होता है कि—सातवें

महाशयजी इतने विद्वान् कहलाते हैं तथापि श्रीजैन शास्त्रों के तात्पर्य समझे बिना अपने कदाग्रहके कल्पित पक्षको स्थापन करनेके लिये वृथाही क्यों उत्सूत्र भाषण करके अपनी अज्ञता प्रगट करी है क्योंकि लौकिक ज्योतिषके गणित मुजब वर्तमानिक पञ्चाङ्गमें तिथियांकी हानी और वृद्धि होनेका अनुक्रमे नियम है और अधिकमासकी तो सर्वथा करके वृद्धि ही होनेका नियम है परन्तु तिथिकी हानी होनेसें १४ दिन का पक्षकी तरह, मासकी हानी होकर ११ मासका वर्ष कदापि नहीं होता है इसलिये तिथिकी हानी अथवा वृद्धि होवे तो भी दुनियाके व्यवहारमें १५ दिनका पक्ष कहा जाता है जिससे क्षामणे भी १५ दिनके करनेमें आते हैं और मासकी तो हानी न होते, सर्वथा वृद्धिही होती है इसलिये दुनियाके व्यवहारमें भी तेरह मासका वर्ष कहा जाता है परन्तु मासवृद्धि होते भी बारह मासका वर्ष कोई भी बुद्धिमान विवेकी पुरुष नहीं कहते हैं जिससे मासवृद्धि होनेसें क्षामणे भी १३ मासकेही करनेमें आते हैं, परन्तु मासवृद्धि होते भी बारह मासके क्षामणे करनेका कोई भी बुद्धिवाले विवेकी पुरुष नहीं मान्य कर सकते हैं। इसलिये तिथियांकी हानि वृद्धि होनेका नियम होनेसें और मासकेसदा वृद्धि होनेका नियम होनेसे दोनुंका एक सदृश व्यवहार होनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो कदापि नहीं हो सकता है।

और निश्चय व्यवहारादि नय करके श्रीजिन प्रवचन चलता है इसलिये लौकिक पञ्चाङ्गमें १६ दिनका अथवा १४ दिनका पक्ष होते भी व्यवहार नयकी अपेक्षासें १५ दिनके क्षामणे करनेमें आते हैं परन्तु निश्चय नयकी अपेक्षासे तो

१६ दिनके अथवा १४ दिनके जितने समय तक जितने पुण्य पापादि कार्य करनेमें आये होवे उतनेही पुण्य कार्योंकी अनुमोदना और पापकार्योंकी आलोचना करनेमें आवेगी, देवसी राइ प्रतिक्रमणवत् अर्थात् देवसी और राइप्रतिक्रमणका सांम और सवेरमें चार चार पहरका काल कहा है परन्तु कोई कारण योग संध्या समय देवसी प्रतिक्रमण न होसके तो रात्रिका बारह बजे (मध्यानरात्रि) के समय तक भी प्रतिक्रमण करनेका अवसर मिलनेसे करनेमें आसके तब निश्चय नय करके तो छ पहरके पाप कार्योंकी आलोचना होगी परन्तु व्यवहार नयकी अपेक्षासें चार पहरके अर्थवाला देवसी शब्द ग्रहण करके देवसी क्षामणे करनेमें आवेंगे अब देखिये अर्द्धरात्रि तक छ पहरमें प्रतिक्रमण करके भी व्यवहार नयसे चार पहरके अर्थवाला देवसी शब्द ग्रहण करनेमें आवे और पुनः कारण योगे पहर रात्रि शेष रहते ३ बजेसेंही दूसरीबार राइ (रात्रि) प्रतिक्रमणकरनेका कारण पड़ गया तो एक पहर अथवा सवा पहरमें रात्रि प्रतिक्रमण करती समय निश्चय नय करके तो उतनेही समय तकके पापकार्योंकी आलोचना होगी परन्तु व्यवहार नयसे चार पहरके अर्थवाला राइ शब्दही ग्रहण करनेमेंआवेगा तैसेही लौकिक पंचाङ्ग मुजब १४ दिने किंवा १५ दिने अथवा १६ दिने पाक्षिक प्रतिक्रमण करनेमें आवे तो निश्चय नय करके तो उतनेही दिनोंके पापकार्योंकी आलोचना करनेमें आवेगी परन्तु व्यवहार नयकी अपेक्षासें १५ दिनका पक्ष कहनेमें आता है इसलिये१५ दिनके अर्थवाला पाक्षिक शब्द ग्रहण करके क्षामणे भी करनेमें आते हैं, परन्तु व्यवहार नयका

भङ्गके दूषणसें डरनेवाले अन्य कल्पना कदापि नहीं करेंगे सो विवेकी सज्जन स्वयंविचार लेवेंगे।

और सातवें महाशयजी १६ दिनका पक्षमें १५ दिनके क्षामणे करनेसें एक दिनका प्रायश्चित बाकी रहने संबंधी और १४ दिनका पक्षमें भी १५ दिनके क्षामणे करनेसें एकदिन का बिना पाप किये भी प्रायश्चित ज्यादा लेने सम्बन्धी ऊपरके लेखसे ठहराते हैं सो निःकेवल अज्ञातपनसे व्यवहार नयका भङ्ग करते हैं जिससे श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उल्लंघन रूप उत्सूत्र भाषक बनते हैं सो भी पाठकवर्ग विचार लेवेंगे।

और यद्यपि श्रीजैनपञ्चाङ्ग की गिनतीसें तिथि की वृद्धि होनेका अभाव था तथा पौष और आषाढ़ मासकी वृद्धि होनेका नियम था परन्तु लौकिक पञ्चाङ्गमें तिथि की वृद्धि होनेका गिनती मुजब नियम है और हरेक मासोंकी वृद्धि होनेका भी नियम है। जब जैन पञ्चाङ्गके बिना लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब तिथिकी वृद्धिको सातवें महाशयजी मान्य करके सोलह (१६) दिनका पक्षको मंजूर करते हैं तो फिर लौकिक पञ्चाङ्गानुसार श्रावण भाद्रपदादि मासोंकी वृद्धि होती है जिसको मान्य नहीं करते हुवे उलटा निषेध करनेके लिये पर्युषणा विचारके लेखमें वृथा क्यों परिश्रम करके निष्पक्षपाती विवेकी पुरुषोंसे अपनी हांसी करानेमें क्या लाभ उठाया होगा सो मध्यस्थ दृष्टिवाले सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और (जैसे तुम्हारे मतमें 'चउण्हं मासाणं' इत्यादि पाठ कहनेसें अधिक मासका प्रायश्चित्त रह जाता है) सातवें महाशयजीके ऊपरके लेखपर मेरेको इतनाही कहना है कि—

अधिक मासको मानने वालोंके मतमें तो अधिक मास होने से पांच मासहोते भी चार मास कहनेसें पांचवा अधिक मासका प्रायश्चित्त बाकी रह जाता है इसलिये अधिकमास होनेसें पाँच मास जरूर बोलने चाहिये सो तो बोलतेही हैं इसका विशेष निर्णय ऊपरमें हो गया है, परन्तु पाँच मास होते भी चार मास बोलनेसें पाँचवा अधिक मासका प्रायश्चित्त उसीके अन्तर्गत आजानेका ऊपरके अक्षरोंसें सातवें महाशयजीने अपने मतमें ठहरानेका परिश्रम किया है सो कोई भी शास्त्रके प्रमाण बिना प्रत्यक्ष मायावृत्तिसें मिथ्यात्व बढ़ानेके लिये अज्ञ जीवोंको कदाग्रहमें गेरनेका कार्य्य किया है क्योंकि अधिक मास होनेसें पांचमासके दश पक्ष प्रत्यक्ष में होते हैं और खास सातवें महाशयजी वगैरह भी सब कोई अधिक मासके कारणसें पाँच मासके दश पाक्षिकप्रतिक्रमण भी करते हैं फिर पांचमास दश पक्ष नहीं बोलते हैं सो यह तो 'मम वदने जिह्वा नास्ति' की तरह बाललीलाके सिवाय और क्या होगा सो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे;—

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके पाँचवें पृष्ठकी प्रथम पंक्तिसें छट्ठी पंक्तितक लिखा हैं कि (अब लौकिक व्यवहार पर चलिए लौकिक जन अधिक मासमें नित्यकृत्य छोड़कर नैमित्तिककृत्य नहीं करते जैसे यज्ञोपवीतादि अक्षयतृतीया दीपालिका इत्यादि, दिगम्बर लोग भी अधिक मासको तुच्छ मानकर भाद्रपद शुक्लपञ्चमी से पूर्णिमा तक दश लाक्षणिक पर्व मानते है)—

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि हे सज्जन पुरुषों—श्रीजिनेन्द्र भगवानोंने तो अधिक

मासको गिनतीमें ले करकेही पर्युषणा करनेका कहा है तथापि सातवें महाशयजी पर्युषणा सम्बन्धी श्रीजैनशास्त्रों के तात्पर्य्यको समझे बिना अज्ञात पनेसें उत्सूत्र भाषक हो करके अधिक मासका निषेध करनेके लिये गच्छपक्षी बाल-जीवोंको मिथ्यात्वमें फँसाने वाली अनेक कुतर्कोंका संग्रह करते भी अपने मंतव्यको सिद्ध न कर सके तब लौकिक व्यव-हारका सरणा लिया तथापि लौकिक व्यवहारसें भी उलटे वर्त्तते हैं क्योंकि लौकिक जन (वैष्णवादि लोग) तो अधिक मासमें विवाहादि संसारिक कार्य्य छोड़कर संपूर्ण अधिक मासको बारहमासोसें विशेष उत्तम जान करके 'पुरुषोत्तम अधिक मास' नाम रखके दान पुण्यादि धर्मकार्य्य विशेष करते हैं और अधिक मासके महात्मकी कथा अपने अपने घर घरमें ब्राह्मणोंसें वंचाकर सुनते हैं। अब पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि—लौकिकजन भी जैसे बारह मासोंमें संसारिक व्यवहारमें वर्त्तते हैं तैसेही अधिक मास होनेसें तेरह मासोंमें भी वर्तते हैं और बारह मासोंसे भी विशेष करके दानपुण्यादि धर्मकार्य्य अधिक मासमें ज्यादा करते हैं और विवाहादि मुहूर्त्त निमित्तिक कार्य्य नहीं करते हैं परन्तु बिना मुहूर्त्तके धर्मकार्य्योंकों तो नही छोड़ते हैं और सातवें महाशयजी लौकिक जनकी बातें लिखते हैं परन्तु लौकिक जनसें विरुद्ध हो करके धर्मकार्य्योंमें अधिक मासके गिनती का सर्वथा निषेध करते कुछ भी विवेक बुद्धिसें हृदयमें विचार नहीं करते है क्योंकि लौकिक जन की बात सातवें महाशयजी लिखते हैं तबतो लौकिकजन की तरहही सातवें महाशयजीको भी वर्त्ताव करना चाहिये सो तो नही करते

हुवे उलटेही वर्त्तते हैं सो भी बड़ेही आश्चर्य्यकी बात है।

और यज्ञोपवीत, विवाह वगैरह मुहूर्त्त निमित्तिक कार्य तो चौमासेमें, मलमासमें, सिंहस्थमें, अधिक मासमें, रिक्ता तिथिमें, और ग्रहण वगैरह कितनेही योगोंमें नहीं होते हैं परन्तु बिना मुहूर्त्तका पर्युषणादि धर्म कार्य तो चौमासेमें रिक्ता तिथि होने पर भी करनेमें आते हैं इसलिये मुहूर्त्त निमित्तिक कार्य अधिक मासमें न होनेका दिखाकरके बिना मुहूर्त्त का पर्युषणा पर्वका निषेध करना सो सर्वथा उत्सूत्र भाषण करके भोले जीवोंको मिथ्यात्वमें फंसानेसे संसार वृद्धिका कारण है सो पाठकवर्ग भी विचार सकते हैं।

और यज्ञोपवीत विवाहादि मुहूर्त्त निमित्तिक कार्य्य अधिकमासमें नहीं होनेका सातवें महाशयजी लिख दिखा करके पर्युषणा भी अधिक मासमें नहीं होनेका ठहराते हैं तब तो सिंहस्थ, सिंहराशीपर गुरुका आना होवे तब तेरह मासमें यज्ञोपवीत विवाहादि मुहूर्त्त निमित्त कार्य्य नहीं करनेमें आते हैं उसीकेही अनुसार सातवें महाशयजीको भी तेरह मास में पर्युषणादि धर्म कार्य्य नहीं करना चाहिये। यदि करते होवे तो फिर गच्छ कदाग्रही बाल जीवोंको मिथ्यात्वमें फँसानेका वृथा क्यों परिश्रम किया सो तत्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे—और मुहूर्त्त निमित्तिक संसारिक कार्य्योंके लिये तथा बिना मुहूर्त्तका धर्म कार्य्योंके लिये विशेष विस्तारसे चौथे महाशयजी न्यायांभोनिधिजीके लेखकी समीक्षामें इसीही ग्रन्थके पृष्ठ १९४ से २०४ तक अच्छी तरहसे छप गया है सो पढ़नेसे सर्व निःसंदेह हो जावेगा।

और अक्षयतृतीया दीपालिकादि सम्बन्धी आगे लिख-नेमें आवेगा। और (दिगम्बर लोग भी अधिक मासको तुच्छ मानकर भाद्रपदशुक्ल पञ्चमीसे पूर्णिमा तक दशलाक्ष-णिकपर्व मानते हैं) सातवें महाशयजीका इस लेखपर मेरेको इतनाही कहना है कि–दिगम्बर लोग तो–केवलीको आहार, स्त्रीको मोक्ष, साधुको वस्त्र, श्रीजिनमूर्त्तिको आ-भूषण, नवाङ्गी पूजा वगैरह बातोंको निषेध करते हैं और श्वेताम्बर मान्य करते हैं इसलिये दिगम्बर लोगोंकी अधिक मास सम्बन्धी कल्पनाको श्वेताम्बर लोगोंको मान्य करने योग्य नहीं है क्योंकि श्वेताम्बरमें पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाण अधिक मासको गिनतीमें करने सम्बन्धी मौजूद हैं इसलिये दिगम्बर लोगोंकी बातको लिखके सातवें महाशयजीने अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करनेको उद्यम करके बालजीवोंको कदाग्रहमें गेरे हैं सो उत्सूत्र भाषणरूप है और सातवें महाशयजी दिगम्बर लोगोंका अनुकरण करते होंगे तब तो ऊपरकी दिगम्बर लोगोंकी बातें सातवें महाशयजीको भी मान्य करनी पड़ेगी यदि नहीं मान्य करते होवें तो फिर दिगम्बर लोगोंकी बात लिखके वृथा क्यों कागद काले करके समयको खोया सो पाठकवर्ग विचार लेवेंगे—

और आगे फिर भी पर्युषणा विचारके पाँचवे पृष्ठकी ७ वीं पंक्तिसे छट्ठे पृष्ठकी पाँचवीं पंक्ति तक लिखा है कि– [अधिकमास संज्ञी पञ्चेन्द्रिय नहीं मानते, इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि एकेन्द्रिय वनस्पति भी अधिक मासमें नहीं फलती। जो फल श्रावण मासमें उत्पन्न होने

वाला होगा वह दूसरेही श्रावणमें उत्पन्न होगा न कि पहिलेमें। जैसे दो चैत्र मास होगे तो दूसरे चैत्रमें आम्रादि फलेंगे किन्तु प्रथम चैत्रमें नहीं। इस विषयकी एक गाथा आवश्यकनिर्युक्तिके प्रतिक्रमणाध्ययनमें यह है—

"जइ फुल्ला कणिआरया चूअग अहिमासयंमि घुट्ठंमि।
तुह न खमं फुल्लेउं जइ पच्चंता करिंति डमराइं" ॥ १ ॥

अर्थात् अधिकमासकी उद्घोषणा होनेपर यदि कर्णिकारक फूलता है तो फूले, परन्तु हे आम्रवृक्ष! तुमको फूलना उचित नहीं है, यदि प्रत्यन्तक (नीच) अशोभन कार्य्य करते हैं तो क्या तुम्हें भी करना चाहिये ?, सज्जनोंको ऐसा उचित नहीं है।

इस बातका अनुभव पाठकवर्ग करें यदि अभ्यासकी सफलता हो तो जैसे कुशाग्रबुद्धि आज्ञानिबद्ध हृदय आचार्य्योंने अधिक मासको गिनतीमें नहीं लिया है उसी तरह तुम्हें भी लेखामें नहीं लेना चाहिये। जिससे पूर्वोक्त अनेक दोषोंसे मुक्त होकर आज्ञाके आराधक बनोगे।]

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि—हे सज्जन पुरुषो सातवें महाशयजीने गच्छ पक्षी बालजीवोंको मिथ्यात्वमें फँसानेके लिये ऊपरके लेखमें वृथा क्यों परिश्रम किया है क्योंकि प्रथम तो (अधिक मास संज्ञी पञ्चेन्द्रिय नही मानते) यह लिखनाही प्रत्यक्ष महा मिथ्या है क्योंकि सज्ञी पञ्चेन्द्रिय सब कोई अधिक मासको अवश्य करके मानते हैं सो तो प्रत्यक्ष अनुभवसेही सिद्ध है और 'एकेन्द्रिय वनस्पति अधिकमासमें नही लनेका' सातवें महाशयजी लिखते हैं सो भी

मिथ्या है क्योंकि वनस्पतिका फलना और फूलोंका, फलोंका उत्पन्न होना सो तो समय, हवा, पानी, ऋतुके, कारणसें होता है इसलिये वनस्पतिकी समय (स्थिति) परिपाक न हुई होवे तथा हवा भी अच्छी न होवे जलका संयोग न मिले तो अधिक मासके बिना भी वनस्पति नहीं फूलती है और फल भी उत्पन्न नही होते हैं और अधिक मासमें भी स्थिति परिपक्क होनेसें हवा अच्छी लगनेसें जलका संयोग मिलनेसें फलती है और फूलोंकी, फलोंकी उत्पत्ति भी होती है ।

और जैसे बारह मासोंमें उत्पन्न होना, वृद्धि पामना, फूलना, फलना, नष्ट होना, वगैरह वनस्पतिका स्वभाव है तैसेही अधिक मास होनेसें तेरह मासोंमें भी है सो तो प्रत्यक्ष दिखता है ।

और 'जो फल श्रावण मासमें उत्पन्न होनेवाला होगा सो पहिले श्रावणमें न होते दूसरे श्रावणमें होगा' ऐसा भी सातवें महाशयजीका लिखना अज्ञातसूचक और मिथ्या है क्योंकि जैन पञ्चाङ्गमें और लौकिक पञ्चाङ्गमें अधिक मासका व्यवहार है परन्तु मुसलमानोंमें, बङ्गलामें, अंग्रेजीमें, तो अधिकमासका व्यवहार नहीं है किन्तु अनुक्रमसें मासोंकी तारीख मुजब व्यवहार है जब लौकिकमें अधिक मास होनेसें अधिक मासमें वनस्पतिका फूलना, फलना नही होनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं तो क्या लौकिक अधिकमासमें जो मुसलमानोंकी, बङ्गलाकी और अंग्रेजीकी ३० तारीखोंके ३० दिन व्यतीत होवेंगे उसीमें भी वनस्पतिका फूलना फलना न होनेका सातवें महा-

शयजी ठहरा सकेंगे सो तो कदापि नहीं तो फिर वृथा क्यों कदाग्रही बालजीवोंको मिथ्यात्वकी श्रद्धामें गेरनेके लिये अधिक माससें वनस्पतिको नहीं फलनेका उत्सूत्र भाषणरूप प्रत्यक्ष मिथ्या स्थापन करते हैं सो न्यायदृष्टि वाले विवेकी पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ॥

और अधिक मासको वनस्पति अङ्गीकार नही करती है इत्यादि लेख चौथे महाशयजी न्यायाम्भोनिधिजीने भी बालजीवोंको मिथ्यात्वमें गेरनेके लिये उत्सूत्र भाषणरूप लिखा था जिसकी भी समीक्षा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ २०५ से २१० तक छप गई है सो पढ़नेसें विशेष निर्णय हो जावेगा।

और 'दे। चैत्र मास होंगे तो प्रथम चैत्रमें आम्रादि नहीं फलते दूसरे चैत्रमें फलेगें इस विषय सम्बन्धी आवश्यक निर्युक्तिके प्रतिक्रमण अध्ययनकी एक गाथा' सातवें महाशयजीने लिख दिखाई—सो तो निःकेवल अपने विद्वत्ता की अजीर्णता प्रगट करी है क्योंकि श्रीआवश्यक निर्युक्ति के रचने वाले चौदह पूर्वधरश्रुतकेवली श्रीमान् भद्रबाहु स्वामीजी जैनमें प्रसिद्ध हैं उन्ही महाराजको अनुमान २२७०वर्ष व्यतीत होगये हैं उन्होंके समयमें अठाशी ग्रहोंके गतिकी मर्य्यादा पूर्वक जैनपञ्चाङ्ग सुरूथा उसीमें पौष और आषाढ़ मासके सिवाय चैत्रादि मासोंकी वृद्धिकाही अभाव था तो फिर श्रीआवश्यक निर्युक्तिके गाथाका तात्पर्य्यार्थको गुरु गमसें समझे विना दूसरे चैत्रमें आम्रादि फलनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो विवेकी बुद्धिमान् कैसे मान्य करेंगे अपितु कदापि नहीं।

और श्रीआवश्यक निर्युक्तिकी गाथा लिखके अधिक

मासको गिनतीमें लेनेका सातवें महाशयजीने निषेध किया है सो भी निःकेवल गच्छपक्षके आग्रहसे और अपनी विद्वत्ता के अभिमानसें दृष्टिरागी अज्ञजीवोंको मिथ्यात्वमें फँसाने के लिये निर्युक्तिकार महाराजके अभिप्रायको जाने बिना वृथाही परिश्रम किया है क्योंकि निर्युक्तिकार महाराज चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली थे इसलिये श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंका कहा हुवा और गिनतीमें प्रमाण भी करा हुवा अधिक मासको निषेध करके उत्सूत्र भाषण करने वाले बनेंगे यह तो कोई अल्पबुद्धि वाला भी मान्य नहीं करेगा तथापि सातवें महाशयजीने निर्युक्तिकी गाथासे अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करके चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली महाराजको भी दूषण लगाते कुछ भी पूर्वापरका विचार विवेक बुद्धिसें हृदयमें नहीं किया यह तो बड़ेही अफसोसकी बात है ।

और खास इसीही श्रीआवश्यक निर्युक्तिमें समयादि कालकी व्याख्यासे अधिक मासको प्रमाण किया है उसी निर्युक्तिकी गाथा पर श्रीजिनदासगणि महत्तराचार्य्यजीने चूर्णिमें, श्रीहरिभद्र सूरिजीने वृहद्वृत्तिमें, श्रीतिलकाचार्य्यजीने लघुवृत्तिमें, और मलधारी श्रीहेमचन्द्रसूरिजीने श्रीविशेषावश्यकवृत्तिमें, खुलासा पूर्वक व्याख्या करी है उसीसे प्रगट पने अधिक मासकी गिनती सिद्ध हैं सो इस जगह विस्तारके कारणसें ऊपरके पाठोंको नहीं लिखता हूं परन्तु जिसके देखनेकी इच्छा होवे सो निर्युक्तिके चौवीसथा—अध्ययनके पृष्ठ ५१में, वृहद् वृत्तिके पृष्ठ २०६ में और विशेषावश्यकी वृत्तिके पृष्ठ ४९५ में देख लेना ।

अब इस जगह विवेकी पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि—खास निर्युक्तिकार महाराज अधिकमासको प्रमाण करने वाले थे तथा खास श्रीआवश्यक निर्युक्तिमेंही अधिक मासको प्रमाण किया है सो तो प्रगट पाठ है तथापि सातवें महाशयजीने गच्छपक्षके कदाग्रहसें दृष्टिरागियोंको मिथ्यात्वके झगड़ेमें गेरनेके लिये निर्युक्तिकार चौदह पूर्वधर महाराजके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप अपनी मति कल्पनासें, निर्युक्तिकी गाथा लिखके उसीके तात्पर्य्यको समझे बिनाही अधिक मासको गिनतीमें निषेध करनेका वृथा परिश्रम किया सो कितने संसारकी वृद्धि करी होगी सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने और तत्त्वज्ञ पुरुष भी अपनी बुद्धिसें स्वयं विचार लेवेंगे ।

अब इस जगह पाठकवर्गको निःसन्देह होनेके लिये निर्युक्तिकी गाथाका तात्पर्य्यार्थको दिखाता हूं ।

श्रीनिर्युक्तिकार महाराजने श्रीआवश्यक निर्युक्तिमें छ (६) आवश्यकका वर्णन करते प्रतिक्रमण नामा चौथा आवश्यकमें "पडिक्कमणं १ पडिअरणा २, पडिहरणा ३ वारणा ४ णियत्तिय ५ ॥ णिंदा ६ गरहा ७ सोही ८, पडिक्कमणं अट्ठहा होइ" ॥ ३ ॥ इस गाथासे आठ प्रकारके नाम प्रतिक्रमणके कहे फिर अनुक्रमे आठोंही नामोके निक्षेपोंका वर्णन किया हैं और भव्यजीवोंके उपगारके लिये "अद्धाणे १ पासए २ दुद्धकाय ३ विसभोयणा तलाए ४ ॥ दोकन्ना ५ चितपुत्ति ६ पइमारियाय ७ वत्थेव ८ अट्ठणय" ॥ १२ ॥ इस गाथासे प्रतिक्रमण सम्बन्धी आठ दृष्टांत दिखाये जिसमें पांचवा णियत्ति अर्थात् निवृत्ति सो उन्मार्गसे छुट करके

सन्मार्गमें प्रवर्तने सम्बन्धी दो कन्याका एक दृष्टांत दिखाया है जिसकी चूर्णिकारने, वृहद् वृत्तिकारने और लघुवृत्तिकारने खुलासा पूर्वक, व्याख्या करी है और द्रव्य निवृत्ति पर दृष्टांत दिखाके, फिर भाव निवृत्ति पर उपनय करके दिखाया है, उसीके सब पाठोंको विस्तार के कारणसे इस जगह नहीं लिखता हूं परन्तु जिसके देखनेकी इच्छा होवे सो चूर्णिके २६४ पृष्ठमें, तथा वृहद् वृत्तिके २३३ पृष्ठमें देखलेना। और पाठकवर्गको लघु-वृत्तिका पाठ इस जगह दिखाता हूं श्रीतिलकाचार्यजी कृत श्री आवश्यक लघुवृत्तिके १९६ पृष्ठे यथा—

एकत्र नगरे शाला, पतिः शालासु तस्य च ॥ धूर्त्तावयंति तेष्वेको, धूर्त्तो मधुरगी सदा ॥१॥ कुविदस्य सुता तस्य, तेन सार्द्धमयुज्यत ॥ तेनोचे साथ नश्यामो, यावद्वेत्ति न कश्चनः ॥२॥ तयोचेमे वयस्यास्ति, राजपुत्री तया समं ॥ सकेतो-ऽस्ति यथा द्वाभ्यां, पतिरेक करिष्यते ॥३॥ तामप्यानयतेनोचे, साथ तामप्यचालयत् ॥ तदा प्रत्यूपे महति, गीतं केनाप्यदः स्फुटं ॥ ४ ॥ "जइ फुल्ला कणियारया, चूअगअहि मासयं-मिघुट्ठंमि ॥ तुह न खम फुल्लेउ, जइ पच्चंता करिंति डमरा-इं" ॥ "नखमं नयुक्तं प्रत्यंता नीचकाः डमराणि विप्लव-रूपाणि शेषं स्पष्टं" ॥ श्रुत्वैवं राजकन्या सा दध्यौ चूतं महातरुम् ॥ उपालब्धो वसंतेन, कर्णिकारोऽधमस्तरुः ॥५॥ पुष्पितो यदि किं युक्तं, तवोत्तमतरोस्त्वया ॥ अधिक मास घोषणा, किं न श्रुतेत्यस्यगीः शुभा ॥६॥ चेत्कुविदी करोत्येवं, कर्त्तव्यं किं ममापि तत् ॥ निवृत्तासामिषाद्रत्न, करंडोमेस्ति विस्मृतः ॥ ७ ॥ राजसूः कोपि तत्राह्नि, गोत्रजैस्त्रासितो

निर्जैः ॥ तज्ज्ञातं शरणी चक्रे, प्रदत्ता तेनतस्य सा ॥८॥ तेन श्वशुर साहाय्यान्निर्जित्यनिजगोत्रजान् ॥ पुनर्लेभे निजं राज्यं, पट्टराज्ञी बभूव सा ॥ ९ ॥ निवृत्तिर्द्रव्यतोभाणि, भावे चोपनयः पुनः ॥ कन्यास्थानीया मुनयो, विषया धूर्त्त सन्निभाः ॥१०॥ योगीति गानाचार्योपदेशात्तेभ्यो निवर्त्तते ॥ सुगतेर्भोजनं सस्या, दुर्गतेस्त्वपरः पुनः ॥ ११ ॥

अब विवेकी तत्त्वज्ञपुरुषोंको इस जगह विचार करना चाहिये कि राज्यकन्या उन्मार्गमें प्रवर्तने लगी तब उसी को समझानेके लिये कविने चातुराईसे दूसरेकी अपेक्षा ले कर "जइ फुल्ला" इत्यादि गाथा कही है सो तो व्याख्या-कारोंने प्रगट करके कहा है तथापि सातवें महाशयजी निर्युक्तिकार महाराजके अभिप्रायको समझे बिनाही राज-कन्याके दृष्टान्तका प्रसङ्गको छोड़ करके बिना संबंधकी एक गाथा लिखके अधिक मासमें वनस्पतिको नहीं फूलनेका ठहराया परन्तु दीर्घ दृष्टिसे पूर्वापरका कुछ भी विचार न किया क्योंकि वसन्त ऋतु मुखसे बोलके आम्र को ओलम्भा देती नहीं, तथा आम्र सुनता भी नहीं और जैन ज्योतिषके हिसाबसे वसंत ऋतुमें अधिक मास होता भी नहीं, और अधिक मास होनेसे वनस्पतिको कोई उद्-घोषणा करके सुनाता भी नहीं है। परन्तु यह तो ग्रन्थ-कार महाराजने अपनी उत्प्रेक्षारूप चातुराईसें दूसरेकी अपेक्षा ले करके प्रासङ्गिक उपदेशके लिये कहा है इसलिये वास्तवमें अधिक मासकी उद्घोषणा आम्रको सुना करके वसन्त ऋतुके ओलंभा देने सम्बन्धी नहीं समझना चाहिये क्योंकि वर्त्तमानिक पञ्चाङ्गमें चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़,

श्रावणादि मासोंकी वृद्धि होनेसे उन अधिक मासोंके समयमें देशदेशान्तरे आम्र वृक्षादिका फूलना, फलना और आमोंका उत्पत्ति होना प्रत्यक्ष देखनेमें और सुननेमें आता है और किसी देशमें माघ, फाल्गुन मासमें तो क्या परंतु हरेक मासोंमें भी आम्र फूलते हैं और अधिक मासके विना भी हरेक मासोंमें कणियर भी फूलता रहता है इसलिये शास्त्र-कार महाराजका अभिप्रायके विरुद्ध और कारण कार्य्य तथा आगे पीछेके सम्बन्धकी प्रस्ताविक बातको छोड़ करके अधूरा सम्बन्ध लेकर शब्दार्थ ग्रहण करनेसे तो बड़ेही अनर्थका कारण होजाता है, जैसे कि—श्रीसूयगडाङ्ग-जीमें वादियोंके मत सम्बन्धकी बातको, श्रीरायप्रशेनीमें परदेशी राजाके सम्बन्धकी बातको श्रीआवश्यकजीकी और श्रीउत्तराध्ययनजीकी व्याख्यायोंमें निह्नवोंके सम्बन्धकी बातको, और श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्यायोंमें श्रीआदिजिने-श्वर भगवान्के वार्षिक पारणेके अवसरमें दोनुं हाथोका विवादके सम्बन्धकी बातको इत्यादि पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें सैकड़ो जगह शब्दार्थ और होता है परन्तु शास्त्र कार महाराजका अभिप्राय औरही होता है इसलिये उस जगहकी व्याख्या लिखते पूर्वापरका सम्बन्ध रहित और शास्त्रकार महाराजके अभिप्राय विरुद्ध निःकेवल शब्दार्थको पकड़ करके अन्य प्रसङ्गकी अन्य प्रसङ्गमें अधूरी बातको लिखने वाला अनन्त संसारी मिथ्या दृष्टि निह्नव कहा जावे, तैसेही श्रीआवश्यक निर्युक्तिकार महाराजके अभिप्रायके विरुद्धार्थमें शब्दार्थको पकड़ करके विना सम्बन्धकी और अधूरी बात लिखके जो सातवें महाशयजीने बालजीवों

को मिथ्यात्वमें फँसानेका उद्यम किया है सो निःकेवल उत्सूत्र भाषण रूप होनेसे संसार वृद्धिका हेतुभूत है सो विवेकी तत्त्वज्ञ पुरुष अपनी बुद्धिसे स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और फिर भी श्रीआवश्यकनिर्युक्तिकी गाथाकी बातपर सातवें महाशयजीने अपनी चातुराई भोले जीवोंको दिखाई है कि (कुशाग्र बुद्धि आज्ञा निबद्ध हृदय आचार्योंने अधिक मासको गिनतीमें नहीं लिया है उसी तरह तुम्हे भी लेखामें नहीं लेना चाहिये जिससे पूर्वोक्त अनेक दोषोंसे मुक्त होकर आज्ञाके आराधक बनोगे)

सातवें महाशयजीका यहभी लिखना अपनी विद्वत्ताके अजीर्णतासे संसार वृद्धिका हेतु भूत उत्सूत्र भाषण है क्योंकि निर्युक्तिकी गाथामें तो अकिध मासकी गिनती निषेध करने वाला एक भी शब्द नहीं है परन्तु श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंने अनन्ते कालसे अधिक मासको गिनतीमें लिया है इस लिये तत्त्वज्ञ बुद्धिवाले श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाके आराधक जितने आत्मार्थी उत्तमाचार्य्य हुवे है उन सबी महानुभावोंने अधिक मासको गिनतीमें लिया है और आगे भी लेवेंगे इसलिये इसकलियुगमें जो जो अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करनेवाले हो गये हैं तथा वर्त्तमानमें सातवें महाशयजी वगैरह है सो सबीही पञ्चाङ्गीकी श्रद्धा रहित श्रीजिनाज्ञाके उत्थापक है क्योंकि अधिक मासको गिनतीमें करने सम्बन्धी २२ शास्त्रोंके प्रमाणतो इसीही ग्रन्थके पृष्ठ २७।२८ में छप गये हैं और श्रीभगवतीजीमें २३, तथा तद्वृत्तिमें २४, श्रीअनुयोगद्वारमें २५, तथा

तद्वृत्तिमें २६, श्रीव्यवहारवृत्तिमें २७, श्रीआवश्यकनिर्युक्तिमें २८, तथा चूर्णिमें २९, वृहद्वृत्तिमें ३०, लघुवृत्तिमें ३१, और श्रीविशेषावश्यकवृत्तिमें ३२, श्रीकल्पसूत्रमें ३३, तथा श्रीकल्पसूत्रकी सात व्याख्यायोंमें ४०, श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें ४१, तथा श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिकी पांच व्याख्यायोंमें ४६, श्रीगच्छाचार पयन्नाकी वृत्तिमें ४७, श्रीज्योतिषकरण्डपयन्नामें ४८, तथा तद्वृत्तिमें ४९, श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रकी चूर्णिमें ५०, श्रीविधिप्रपामें ५१, श्रीमण्डलप्रकाशमें ५२, सेन प्रश्नमें ५३, और नवतत्त्वकी चार व्याख्यायोंमें ५७, और श्रीतत्त्वार्थकी वृत्तिमें ५८, इत्यादि पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके प्रमाणोंसे अधिक मासकी गिनती स्वयं सिद्ध है ।

इसलिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक पञ्चाङ्गीकी श्रद्धावाले आत्मार्थी प्राणियोंको तो अधिक मासकी गिनती अवश्यमेव प्रमाण करना चाहिये जिससे कुछ भी दूषण नहीं लग सकता है परन्तु निषेध करने वाले है सो और पञ्चाङ्गी मुजब अधिक मासका प्रमाण करनेवालोंको अपनी कल्पनासे मिथ्या दूषण लगाते हैं सो संसारमें परिभ्रमण करने वाले उत्सूत्र भाषक और अनेक दूषणोंके अधिकारी हो सकते है सो तो पाठकवर्ग भी विचार सकते हैं ।

और पञ्चाङ्गीके एक अक्षरमात्रको भी प्रमाण न करने वालेको तथा पञ्चाङ्गीके विरुद्ध थोड़ीसी बातकी भी परूपना करने वालेको मिथ्या दृष्टि निह्नव कहते है सो तो प्रसिद्ध बात है तो फिर पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रानुसार अधिक मासकी गिनती सिद्ध होते भी, नही मानने वालेको और इतने पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके प्रमाण विरुद्ध परूपना

करने वालेको मिथ्या दृष्टि महानिह्नव कहनेमें कुछ हरजा होवेतो तत्त्वज्ञपुरुषोंको विचार करना चाहिये।

अब अनेक दूषणोंके अधिकारी कौंन हैं और जिनाज्ञाके आराधक कौंन हैं सो विवेकी पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और भी आगे पर्युषणा विचारके छट्ठे पृष्ठकी ६ पंक्ति से १८ वीं पंक्ति तक लिखा है कि (वादीकी शङ्का यहाँ यह है कि अधिक मासमें क्या भूख नहीं लगती, और क्या पापका बन्धन नहीं होता, तथा देवपूजादि तथा प्रतिक्रमणादि कृत्य नहीं करना ? इसका उत्तर यह है कि क्षुधावेदना, और पापबन्धनमें मास कारण नहीं है, यदि मास निमित्त हो तो नारकी जीवोंको तथा अढाईद्वीपके बाहर रहने वाले तिर्यञ्चोंको क्षुधावेदना तथा पापबन्ध नहीं होना चाहिये। वहाँ पर मास पक्षादि कुछ भी कालका व्यवहार नहीं है। देवपूजा तथा प्रतिक्रमणादि दिनसे बद्ध है मासबद्ध नहीं है। नित्यकर्मके प्रति अधिक मास हानिकारक नहीं है, जैसे नपुंसक मनुष्य स्त्रीके प्रति निष्फल है किन्तु लेना ले जाना आदि गृहकार्य्यके प्रति निष्फल नहीं है उसी तरह अधिक मासके प्रति जानों)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि हे सज्जन पुरुषों सातवें महाशयजीने प्रथम वादीकी तरफसें शङ्का उठा करके उसीका उत्तर देनेसें खूबही अपनी अज्ञता प्रगटकरी है क्योंकि क्षुधा लगना सो तो वेदनी कर्मके उदयसें सर्व जीवोंको होता है और वेदनी कर्म अधिक मासमें भी समय समय में बन्धाता है तथा उदय भी

आता है और उसकी निवृत्ति भी होती है इसलिये अधिक मासमें क्षुधा लगती है और उसीकी निवृत्ति भी होती है। और पाप बन्धनमें भी मन, वचन, कायाके योग कारण है उसीसे पाप बन्धन रूप कार्य्य होता है और मन, वचन, कायाके, योग समय समयमें शुभ वा अशुभ होते रहते हैं जिससे समय समयमें पुण्य का अथवा पाप का बन्धन भी होता है और समय समय करकेही आवलिका, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, संवत्सर, युगादिसें यावत् अनन्ते काल व्यतीत होगये हैं तथा आगे भी होवेंगे इसलिये अधिक मासमें पुण्य पापादि कार्य्य भी होते हैं और उसीकी निवृत्ति भी होती है और समयादि कालका व्यतीत होना अढ़ाई द्वीपमें तथा अढ़ाई द्वीपके बाहरमें और ऊर्द्ध लोकमें, अधोलोकमें सर्व जगहमें है इसलिये यहांके अधिक मासका कालमें वहां भी समयादिसें काल व्यतीत होता है इसीही कारणसें यहाँके अधिक मासका कालमें यहांके रहने वाले जीवोंकी तरहही वहांके रहनेवाले जीवोंको वहां भी क्षुधा लगती है और पुण्य पापादिका बन्धन होता है और यद्यपि वहां पक्षमासादिके वर्तावका व्यवहार नहीं है परन्तु यहांभी और वहां भी अधिक मासके प्रमाणका समय व्यतीत होना सर्वत्र जगह एक समान है इसीही लिये चारोंही गतिके जीवोंका आयुष्यादि काल प्रमाण यहांके संवत्सर युगादिके प्रमाणसें गिना जाता है जिससे अधिकमासके गिनतीका प्रमाण-संवत्सर, युग, पूर्वाङ्ग, पूर्व, पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, वगैरह सबी कालमें साथ गिना जाता है तथापि सातवें महाशयजी अधिकमासके

कालमें नारकी जीवोंको तथा अढ़ाई द्वीपके बाहेर रहने वाले जीवोंको क्षुधा वेदना तथा पापबन्धन नहीं होनेका लिखते हैं सो अज्ञताके सिवाय और क्या होगा सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और (देवपूजा प्रतिक्रमणादि दिनसे बद्ध है मास बद्ध नही है नित्य कर्मके प्रति अधिकमास हानिकारक नही है) सातवें महाशयजीका यह भी लिखना मायावृत्तिसे बालजीवोंको भ्रमानेके लिये मिथ्या है क्योंकि देवपूजा प्रतिक्रमणादि जैसे दिनसे प्रतिबद्धवाले है तैसेही पक्ष, मासादिसे भी प्रतिबद्ध वाले है इसलिये पक्ष, मासादिमें जितनी देव पूजा और जितने प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य्य किये जावे उतनाही लाभ मिलेगा और पुण्य अथवा पापकार्य्य से आत्माको जैसे दिवस लाभकारक अथवा हानिकारक होता है तैसेही पक्ष मासादिमें पुण्य अथवा पाप होनेसें पक्ष मासादि भी लाभकारक अथवा हानिकारक होता है इसलिये पक्ष मासादिकके पुण्यकार्य्योंकी अनुमोदना करके उस पक्ष मासादिको अपने लाभकारी माने जाते हैं तैसेही पक्ष मासादिमें पापकार्य्य हुवे होवे उसीका पश्चात्ताप करके उसीकी आलोचना लेनेमें आती है और उसी पक्ष मासादिको अपने हानिकारक समझे जाते हैं और एक पक्षके १५ राइ तथा १५ देवसी और एक पाक्षिक प्रतिक्रमण करनेमें आता है तैसेही एक मासमें ३० राइ तथा ३० देवसी और दो पाक्षिक प्रतिक्रमण करनेमें आते हैं सो तो प्रत्यक्ष अनुभवसे प्रसिद्ध है इसलिये एक मासके ३० दिनोंमें सब संसार व्यवहार और पुण्य पापादि कार्य्य होते भी सातवें

महाशयजी उसीकी गिनतीका निषेध करते हैं सो तो प्रत्यक्ष अन्याय कारक वृथा है इस बातको पाठकवर्ग भी स्वयं विचार सकते हैं और तीनो महाशयोंने भी ऊपरकी बात संबन्धी बाललीलाकी तरह लेख लिखा था जिसकी भी समीक्षा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ १४२।१४३ में छप गई है सो पढ़नेसें विशेष निःसन्देह हो जावेगा ;—

और (जैसे नपुंसक मनुष्य स्त्रीके प्रति निष्फल है किन्तु लेना लेजाना आदि गृहकार्य्यके प्रति निष्फल नहीं है उसी तरह अधिक मासके प्रति जानों) इन अक्षरों करके सातवें महाशयजीने देवपूजा मुनिदान आवश्यकादि ३० दिनोंमें धर्मकार्य्य होते भी पर्युषणादि धर्मकार्य्योंमें ३० दिनोंका एक मासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये अधिक मासको नपुंसक ठहरा करके बालजीवोंको अपनी विद्वत्ताकी चातुराई दिखाई है सो तो निःकेवल उत्सूत्रभाषण करके गाढ़ मिथ्यात्वसे संसार वृद्धिका हेतु किया है क्योंकि श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंने जैसे मन्दिरजीके ऊपर शिखर विशेष शोभाकारी होता है उसी तरह कालका प्रमाणके ऊपर शिखररूप विशेष शोभाकारी कालचूलाकी उत्तम ओपमा अधिक मासको दिई है और अधिकमास को गिनतीमें सामिल ले करकेही तेरह मासोंका अभिवर्द्धित संवत्सर कहा है जिनका विस्तारसें खुलासा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ४८ से ६५ तक छपगया है तथापि सातवें महाशयजीने श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उल्लङ्घनरूप तथा आशातना कारक और पञ्चाङ्गीके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको छोड़ करके अधिक मासको नपुंसककी हलकी

ओपमा लिखके अधिक मासकी हिलना करी और संसार वृद्धिका कुछ भी भय न किया सो बड़ेही अफसोसकी बात है;-

और वैष्णवादि लोग भी अधिकमासको दानपुण्यादि धर्म्मकार्य्योंमें तो बारह मासोंसे भी विशेष उत्तम "पुरुषोत्तम अधिक मास" कहते हैं और उसीकी कथा सुनते हैं और दानपुण्यादि करते हैं और पञ्चाङ्गमें भी तेरह मास, छवीश पक्षका वर्ष लिखते हैं सो तो दुनियामें प्रसिद्ध है तथापि सातवें महाशयजी अधिक मासको नपुंसक कहके उसको गिनतीमें निषेध करते हुवे, तेरहमा अधिक मासको सर्वथाही उड़ा देते हैं और दुनियाके भी विरुद्धका कुछ भी भय नहीं करते हैं सो भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका नमूना है क्योंकि सातवें महाशयजी काशीमें बहुत वर्षोंसे ठहरे हैं और अधिक मास होनेसे पुरुषोत्तम अधिक मासके महात्म की कथा काशीमें और सब शहरोंमें अनेक जगह वंचाती है सो तो प्रसिद्ध है और जैनशास्त्रानुसार तथा लौकिक शास्त्रानुसार धर्मकार्य्योंमें अधिक मास श्रेष्ठ है, तथापि सातवें महाशयजी नपुंसक ठहराते हैं सो तो ऐसा होता है कि—

किसी नगरमें एक शेठ रहता था, सो रूपलावण्य करके युक्त और धर्म्मावलम्बी था इसलिये उसीने परस्त्री गमनका और वेश्याके गमनका वर्जन किया था, सो शेठ किसी अवसरमें बजारके रस्तेसे चला जाता था उसी रस्तेमें कोई व्यभिचारिणी स्त्रीका और वेश्याका मकान आया, तब वह शेठ उसीका मकानके पासमें हो करके आगेको चला गया परन्तु उसीके मकानपर न गया तब उस शेठको देखकर वह

व्यभिचारिणी स्त्री और वेश्या कहने लगी कि, यह तो नपुंसक है इसलिये हमारे पास नहीं आता है ।

अब पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि—जैसे उस व्यभिचारिणी स्त्रीका और वेश्याका मन्तव्य उस शेठसे परिपूर्ण न हुवा तब उसीको नपुंसक कहके उसीकी निन्दा करी परन्तु जो विवेकबुद्धि वाले न्यायवान् धर्मी मनुष्य होवेंगे सो तो उस शेठको नपुंसक न कहते हुवे उत्तमपुरुष ही कहेंगे, तैसेही सातवें महाशयजी भी अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करनेके लिये उत्सूत्र भाषणरूप अनेक कुयुक्तियोंका संग्रह करते भी अपना मन्तव्यको सिद्ध नहीं कर सके तब नपुंसक कहके अधिक मासकी निन्दा करी और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उल्लङ्घन होनेसे संसार वृद्धिका भय न किया परन्तु जो विवेक बुद्धि वाले न्यायवान् धर्मी मनुष्य होवेंगे सो तो अधिक मासको नपुंसक न कहते हुवे श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार विशेष उत्तमही कहेंगे सो तत्त्वज्ञ पाठक वर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और अधिक मासको नपुंसक कहके धर्म कार्योंमें निषेध करनेके लिये चौथे महाशयजीने भी उत्सूत्र भाषण रूप कुयुक्तियोंके संग्रहवाला लेख लिखके बाल जीवोंको मिथ्यात्त्वमें गेरनेका कारण किया था जिसकी भी समीक्षा इसीही ग्रन्थके पृष्ट २००से २०४ तक अच्छी तरहसे खुलासा पूर्वक छप गई है सो पढ़नेसे विशेष निःसन्देह हो जावेगा ;—

और जैसे धर्मी पुरुषोंको पर स्त्री देखनेमें अन्धेकी तरह होना चाहिये परन्तु देव गुरुके दर्शन करनेमें तो

चार आंख वालेकी तरह हो जाना चाहिये तैसेही यह शेठ पुरुष है परन्तु पर स्त्रीके गमनका और वेश्याके गमनका वर्जन करनेवाला धर्मावलम्बी होनेसे उनके साथ मैथुन सेवन करनेमें तो नपुंसककी तरह हैं परन्तु अपने नियमका प्रतिपालन करके ब्रह्मचर्य्य धारण करनेमें तो समर्थ होनेसे उत्तम पुरुषकी तरह है अर्थात् आपही उस गुणसे उत्तम पुरुष हैं इसी न्यायानुसार यद्यपि अधिक मास भी गिनतीके प्रमाणका व्यवहारमें तो बारह मासोंके बरोबरही पुरुष रूप है उसीमें वैष्णव लोग दान पुण्यादि विशेष करते हैं और उसीके महात्म्यकी कथा सुनते हैं इसीलिये उसीको पुरुषोत्तम अधिक मास कहते हैं।

और श्रीजैन शास्त्रोंमें भी मन्दिरके शिखरवत् कालका प्रमाणके शिखर रूप उत्तम ओपमा अधिक मासको है। उसीमें मुहूर्त्त नैमित्तिक विवाहादि आरम्भ वाले संसारिक कार्य्य नहीं होते हैं परन्तु धर्म कार्य्य तो विशेष होते हैं इसलिये उपरोक्त न्यायानुसार मुहूर्त्त नैमित्तिक आरम्भ वाले संसारिक कार्योंमें तो अधिक मास नपुंसककी तरह है परन्तु धर्म कार्योंमें तो विशेष उत्तम होनेसे सबसे अधिक है इसलिये इसका अधिक मास ऐसा नाम भी सार्थक है तथापि धर्म कार्योंमें और गिनतीका प्रमाणमें उसीको नपुंसक ठहरा करके अधिक मासकी निन्दा करते हुए उसीकी गिनती निषेध करते हैं तो वह व्यभिचारिणी स्त्रीका और वेश्याका अनुकरण करनेवालेहैं सो पाठकवर्ग विचार लेवेंगे और अब सातवें महाशयजीके आगेका लेखकी समीक्षा करके पाठक वर्गको दिखाता हूं— पर्युषणा विचारके छट्ठे पृष्टकी १९ वीं पंक्तिसे सातवें पृष्टकी

चौथी पंक्ति तक लिखा है कि-(जैन पञ्चाङ्गानुसार तो एक युगमें दो ही अधिक मास आते हैं अर्थात् युगके मध्यमें आषाढ़ दो होते हैं और युगान्तमें दो पौष होते हैं। दो श्रावण दो भाद्र और दो आश्विन वगैरह नहीं होते। इस भावकी सूचना देने वाली पाठ देखोः—

"जई जुग मज्जे तो दोपोसा जई जुग अन्ते दो आसाढा"

यद्यपि जैन पञ्चाङ्गका विच्छेद हो गया है तथापि युक्ति और शास्त्र लेख विद्यमान है) सातवें महाशयजीका इस लेख पर मेरेको इतनाही कहना है कि—शास्त्रके पाठसे एक युगमें दो अधिक मास होनेका आप लिखते हो सो यह दोनों अधिक मास जैन शास्त्रानुसार गिनतीमें लिये जाते थे तो फिर ऊपरमेंही "कुशाग्रह बुद्धि आज्ञा-निबद्ध हृदय आचार्योंने अधिक मासको गिनतीमें नहीं लिया है" ऐसे अक्षर लिखके पर्युषणा विचारके सब लेखमें अधिक मासकी गिनती निषेध क्यों करते हो क्या आपको शास्त्रकी वाक्य प्रमाण नहीं है, यदि है तो आपका निषेध करना संसार वृद्धिका हेतु भूत उत्सूत्रभाषण होनेसे बाल जीवोंको मिथ्यात्वमें फँसाने वाला है सो विवेकी पाठक वर्ग स्वयं विचार सकते हैं ;—

और शास्त्रके पाठमें तो युगके मध्यमें दो पौष और युगान्तमें दो आषाढ़ खुलासे कहे हैं तथापि सातवें महा-शयजी युगके मध्यमें दो आषाढ और युगान्तमें दो पौष लिखते है सो तो बहुत वर्षोंसे काशीमें अभ्यास करते हैं इसलिये विद्वत्ताके अजीर्णतासे उपयोग शून्यताका कारण है ;—

और श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति, श्रीसूर्य्यप्रज्ञप्ति, श्रीजंबूद्वीप प्रज्ञप्ति और श्रीज्योतिषकरंडपयन्न वगैरह शास्त्रानुसार तथा उन्होंकी व्याख्यायोंके अनुसार अधिक मास होनेका कारण कार्य्य तथा गिनतीका प्रमाणको जो सातवें महाशयजी किसी सद्गुरुसे पढ़के तात्पर्य्यार्थको समझते और श्री भगवतीजी श्रीअनुयोगद्वार वगैरह शास्त्रानुसार समय, आवलिकादि कालकी व्याख्याको विचारते तो अधिक मासकी गिनती निषेध कदापि नहीं करते और दो श्रावण, दो भाद्र, दो आश्विन वगैरह नहीं होनेका लिखनेके लिये लेखनी भी नहीं चलाते सो पाठक वर्ग विचार लेवेंगे :—

और भी आगे पर्युषणा विचारके सातवें पृष्ठमें लिखा है कि (लौकिक पञ्चाङ्गानुसार अधिक मासको लेखामें गिनने वाले महाशयोंसे पूछता हूं कि यदि आश्विन दो होंगे तो साम्वत्सरिक प्रतिक्रमणान्तर सत्तरवें दिनमें चौमासी प्रतिक्रमण करोगे कि नहीं, यदि नहीं करोगे तो समवायाङ्ग सूत्रके पाठकी क्या गति होगी ? अगर चौमासीका प्रतिक्रमण करोगे तो दूसरे आश्विन सुदी पूर्णमासीके पीछे विहार करना पड़ेगा। आश्विन मासको लेखामें न गिनकर सत्तर दिन कायम रक्खोगे तो श्रावण अथवा भाद्रमासको लेखामें न गिनकर पचास दिन कायम रख कर भगवान्की आज्ञाके अनुसार भाद्र सुदी चौथके रोज साम्वत्सरिक प्रतिक्रमण क्यों नहीं करते)

इस लेख पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि–जैन पञ्चाङ्गके अभावसे लौकिक पञ्चाङ्गानुसार वर्ताव करनेकी पूर्वाचार्य्योंकी आज्ञा है इसलिये कालानुसार श्रीजैन

शासनमें लौकिक पञ्चाङ्ग मुजबही तिथि, वार, घड़ी, पल, नक्षत्र, योग, सूर्योदय, दिनमान, तिथिकी हानी, वृद्धि, राशि चन्द्र, पक्ष, मास, मुहूर्त्त वगैरहसे संसार व्यवहारमें और धर्म व्यवहारमें वर्ताव करनेमें आता है इसलिये लौकिक पञ्चाङ्गमें जिस मासकी वृद्धि होवे उसीको मान्य करके उसी मुजब संसार व्यवहारमें और धर्म व्यवहारमें वर्ताव होनेका प्रत्यक्षमें बनता है इसलिये लौकिक पञ्चाङ्गमें दो श्रावण, दो भाद्रपद और दो आश्विन वगैरह होवे उसी के गिनतीको निषेध न करते हुवे प्रमाण करना सो तो पूर्वाचार्योंकी आज्ञानुसार तथा युक्ति पूर्वक और प्रत्यक्ष अनुभवसे स्वयं सिद्ध है इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध करने वाले अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेवन करने वाले प्रत्यक्षमें बनते है सो तो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे;—

और दो आश्विन होनेसे साम्वत्सरिक प्रतिक्रमणके बाद ७० दिने चौमासी प्रतिक्रमण करके दूसरे आश्विनमें विहार करनेकी कोई जरूरत नहीं है क्योंकि अधिक मास होनेसे साम्वत्सरिक प्रतिक्रमणके बाद १०० दिने कार्त्तिकमें चौमासी प्रतिक्रमण करके विहार करनेमें आता है सो शास्त्रानुसार और युक्ति पूर्वक न्यायकी बात है इसलिये कोई भी दूषण नहीं लग सकता है इसका खुलासा इसी ही ग्रन्थके पृष्ठ ३५९।३६० में छप गया है—

और "समवायाङ्ग सूत्रके पाठकी क्या गति होगी" सातवें महाशयजीका यह लिखना अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको प्रगट करने वाला उत्सूत्रभाषण रूप संसार वृद्धिका

हेतुभूत है क्योंकि श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ तो श्रीगण-धर महाराजका कहा हुआ है और चार मासके सम्बन्ध वाला है इसलिये उसीकी तो सदाही अच्छी गति है और चार मासके वर्षाकालमें उसी मुजब वर्तनेमें आता है परन्तु सातवें महाशयजी सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थ में पांच मासके वर्षाकालमें भी उसी पाठको स्थापन करनेके लिये सूत्रके पाठ पर ही आक्षेप करते हैं और बाल जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरते हैं सो क्या गति प्राप्त करेंगे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जानें—

और " आश्विन मासको लेखामें न गिनकर सत्तर दिन कायम रक्खोगे" यह भी सातवें महाशयजीका लि-खना मिथ्या है क्योंकि हम तो आश्विन मासको लेखा में गिन करके १०० दिन कायम रखते हैं इस लिये मिथ्या भाषण करनेसे महाव्रतके भङ्गका सातवें महाशयजीको भय लगता हो तो मिथ्या दुष्कृत देना चाहिये—

और "श्रावण अथवा भाद्रमासको लेखामें न गिनकर पचास दिन कायम रख कर भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार भाद्र सुदी चौथके रोज सम्वत्सरिक प्रतिक्रमण क्यों नहीं करते" सातवें महाशयजीका इस लेख पर मेरेको इतनाही कहना है कि मास वृद्धिके अभावसे आषाढ चौमासीसे पचास दिने भाद्र शुदी चौथको पर्युषणामें सांवत्सरिक प्रतिक्रमण वगैरह करनेकी तो श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञा है परन्तु पचासवें दिनकी रात्रिकोभी उल्लंघन करना नही कल्पता इसलिये दो श्रावण होनेसे श्री कल्पसूत्रके तथा उन्होंकी व्याख्यायोंके अनुसार ५० दिनकी गिनतीसे दूसरे श्रावणमें

अथवा प्रथम भाद्रमें पर्युषणा करना चाहिये परंतु मास वृद्धि दो श्रावण होतेभी ८० दिने भाद्र शुदीमें पर्यूषणा करके भी निर्दूषण बननेके लिये अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीसे छोड़करके ८० दिनके ५० दिन गच्छपक्षी वाल जीवोंके आगे कहके आप आज्ञाके आराधक बनना चाहते हैं सो कदापि नहीं हो सकते है क्योंकि श्रीभगवतीजी श्रीअनुयोगद्वार श्रीज्योतिषकरंडपयन्न और नव तत्व प्रकरणादि शास्त्रानुसार तथा इन्होंकी व्याख्यायोंके अनुसार समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिन, पक्ष, मासादिसे जो काल व्यतीत होवे उसी कालका समय मात्रभी गिनतीमें निषेध नहीं हो सकता है तथापि निषेध करनेवाले पंचांगीकी श्रद्धारहित और श्री जिनाज्ञाके उत्थापक निन्हव, मिथ्या दृष्टि-संसार गामी कहे जावे, तो फिर एक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें निषेध करने वालेको पंचांगीकी श्रद्धा रहित और श्रीजिनाज्ञाके उत्थापक अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी कहनेमें कुछ भी तो दूषण मालूम नही होता है इसलिये अधिक मासके ३० दिनोंकी गिनती निषेध करने वाले मिथ्या पक्षग्राहियोंकी आत्माका कैसे सुधारा होगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने। इसलिये दो आश्विन होनेसे भाद्र शुदी चौथसे कार्तिक तक १०० दिन होते है जिसके ७० दिन अपनी मति कल्पनासे बनाने वाले और दो श्रावण होनेसे भाद्रतक ८० दिन होते हैं जिसके तथा दो भाद्र होनेसे दूसरे भाद्र तक ८० दिन होते हैं जिसके भी ५० दिन अपनी मति कल्पनासे बनाने वाले अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी होनेसे आत्मार्थियोंको उन्होंका पक्ष छोड करके इस ग्रन्थको सम्पूर्ण पढ़

कर सत्य बातको ग्रहण करना चाहिये जिसमें आत्म-कल्याण है नतु अधिक मासके गिनतीका निषेध रूप अंध परपराका मिथ्यात्वमें;—

और इसके आगे फिरभी मासवृद्धि होतेभी भाद्र पदमें पर्युषणा ठहरानेके लिये पर्युषणा विचारके सातवें पृष्ठके अन्तसे आठवें पृष्ठ तक लिखाहै कि—(पर्युषणाकल्पचूर्णि, तथा महानिशीथचूर्णिके दसवें उद्देशेमें इसी तरहका पाठ है,

"अन्नया पज्जोसवणादिवसे आगए अज्जकालगेण सालवाहणो भणिओ, भद्दवयजुण्हपञ्चमीए पज्जोसवणा" इ०

तथा "तत्थ य सालवाहणो राया, सो अ सावगो, सो अ कालगज्जं इंतं सोऊण निग्गओ, अभिमुहो समणसंघो अ, महाविभूईए पविट्ठो कालगज्जो, पविट्ठे हिंअभणिअं भद्दवयसुद्ध पञ्चमीएपज्जोसविज्जई समणसंघेण पडिवण्णं ता रण्णाभणिअं तद्दिवसं मम लोगानुवत्तीए इंदो अणुजाणेयव्वो होहित्ति साहू चेइए अणुपज्जुवासिस्सं, तो छट्ठीए पज्जोसवणा किज्जइ, आयरिएहिं भणिअं, न वट्टिढति अतिक्कमितुं, ताहे रण्णा भणिअं, ता अणागए चउत्थीए पज्जोसविति, आयरिएहि भणिअं, एवं भवउ, ताहे चउत्थीए पज्जोसवियं, एवं जुगप्पहाणेहिं कारणे चउत्थी पवत्तिआ, सा चेवाणुमता सव्वसाहूणमित्यादि"।

ऊपरकी पाठ साक्षात् सूचित करती है कि भाद्र सुदी चौथको साम्बत्सरिक प्रतिक्रमण वगैरह करना चाहिये। किन्तु जब दो श्रावण आवें तो श्रावण सुदी चौथके रोज साम्वत्सरिक कृत्य करे ऐसा तो पाठ कोई सिद्धान्तमें नहीं है तो आग्रह करना क्या ठीक है ? दो भाद्र आवेंतो

किसी तरह पूर्वोक्त पाठका समर्थन करोगे। परञ्चसत्तर दिनमें चौमासी प्रतिक्रमण करना चाहिये)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठक वर्गको दिखाताहूं कि–हे सज्जन पुरुषो सातवें महाशयजीका ऊपरके लेखको मैं देखताहूं तो मेरेकोबड़ेही खेदकेसाथ आश्चर्य्य उत्पन्नहोता है कि, सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीने शास्त्रविशारदजैनाचार्य्यकी पदवीकोधारणकरीहै परंतुअपनेकदाग्रहके कल्पित पक्षकीबातको मायावृत्तिसे स्थापित करके बालजीवोंको श्रीजिनाज्ञासेभ्रष्टकरनेके लिये उन्होंमें अभिनेवेशिक मिथ्यात्वका बहुतही संग्रहहोनेसे उसपदवीको सार्थक न करसके परन्तु शास्त्रविराधकउत्सूत्रभाषणाचार्य्यकी पदवीके गुण तो (सातवें महाशयजीमें) प्रगट दिखते है क्योंकि देखो सातवें महाशयजीने मास वृद्धि दो श्रावण होतेभी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करनेके लिये पर्युषणाकल्पचूर्णिका और महानिशीथके दशवे उद्देशकी चूर्णिका पाठ लिख दिखाया परंतु शास्त्रकार महाराजोके विरुद्धार्थमें अधूरी बात भोले जीवोंको दिखानेसे संसारवृद्धिका कुछभी भय हृदयमेंनलाये मालूम होता है क्योंकि प्रथमतो, महानिशीथकी चूर्णिका नाम लिखा सोतो उपयोग शून्यताके कारणसे मिथ्या है क्योंकि महानिशीथकी चूर्णि नहीं किंतु निशीथसूत्रकी चूर्णि है और पर्युषणाकल्प चूर्णिमें तथा निशीथसूत्रकीचूर्णिमें खास पर्युषणाकेही संबंधकी व्याख्यामें अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण किया है और मास वृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीस दिने पर्युषणाकही है तैसेहीं मास वृद्धिके अभावसे चंद्र संवत्सरमें ५० दिने पर्युषणा कही है और पञ्चक परिहाणीका कालमें

उत्कृष्टसे १८० दिनके छ मासका कल्प कहा है और मास वृद्धिके अभावसे आषाढ़ चौमासीसे पांच पांच दिनकी वृद्धि करते दसवे पञ्चकमें पचासवें दिन भाद्र पद शुक्ल पञ्चमीको पर्युषणा करनेमें आती थी परंतु कारणसे श्रीकालकाचार्य्यजीने एकौन पञ्चाशवें (४९) दिन भाद्र शुदी चौथको पर्युषणा करी है जिसका संबंधभी विस्तार पूर्वक दोनु चूर्णिमें कहा है सो दोनुं चूर्णिके पर्युषणा सम्बन्धी विस्तारवाले दोनु पाठ भावार्थ सहित इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ९२ से लेकर १०४ तक छप गये है सो पढ़नेसे सर्व निर्णय हो जावेगा। परन्तु बड़ेही अफसोसकी बात है कि सातवें महाशयजी दोनु चूर्णिके आगे पीछेके सब पाठोंको छोड़ करके फिर मास वृद्धिके अभावसे ४९ वे दिने पर्युषणा करनेवाले पाठको मास वृद्धि दो श्रावण होते भी लिखके दोनों चूर्णिकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें यावत् ८० दिने पर्युषणा स्थापन करनेके लिये बाल जीवोंको अधूरे पाठ लिख दिखाते कुछ भी लज्जा नहीं पाते हैं सो भी कलयुगि विद्वत्ताका नमूना है इसलिये मास वृद्धिके अभाव के विस्तार वाले सब पाठोंको छोड़ करके मास वृद्धि होते भी उसीमेंसे अधूरेपाठ सातवेंमहाशयजीने लिखे है सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे शास्त्रविराधक उत्सूत्र भाषणाचार्यके गुण प्रगट दिखाये है सो तो विवेकी पाठक वर्ग स्वयं विचार लेवेंगे,—और सुप्रसिद्ध विद्वान् तीसरे महाशयजी श्रीविनय विजयजीने भी, पण्डितहर्षभूषणजीकी और धर्मसागरजीकी धूर्तोईमें पड़कर अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे ऊपरकी दोनों चूर्णिके अधूरे पाठ श्रीसुखबोधिका वृत्तिमें लिखे है उसी तरहसे वर्त्तमानमें सातवें महाशयजीने भी किया परन्तु

पर भवका और विद्वानोंके आगे अपने नामकी हासी करानेका कुछ भी पूर्वापरका विचार न किया, अन्यथा अन्ध परम्पराके मिथ्यात्वको पुष्टीकारक शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें ऐसे अधूरे पाठ लिखके और कुयुक्तियोंका संग्रह करके बाल जीवोंको सत्य बात परसे श्रद्धा भ्रष्ट करनेके लिये कदापि परिश्रम नहीं करते, सो तो निष्पक्षपाती सज्जनोंको विचार करना चाहिये;—

और "जब दो श्रावण आवे तो श्रावण सुदी चौथके रोज सांवत्सरिक कृत्य करे ऐसा तो पाठ कोई सिद्धान्तमें नहीं है तो क्या आग्रह करना ठीक है" यह भी सातवें महाशयजीका लिखना गच्छपक्षी बाल जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये अज्ञताका अथवा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका सूचक है क्योंकि दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करना ऐसा तो किसी भी शास्त्रमें नहीं लिखा है तो फिर दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका वृथा क्यों पुकारते है और दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करना सो तो श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठानुसार तथा उन्हींकी अनेक व्याख्यायोंके अनुसार और युक्तिपूर्वक स्वयं सिद्ध है सो तो इसी ग्रन्थकी आदिमेंही विस्तारसे लिखनेमें आया है और खास सातवें महाशयजी भी श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठको तथा उसीकी वृत्तिको हर वर्ष पर्युषणामें बांचते हैं उसीमें जैन पञ्चाङ्गके अभावसे "जैनटिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगान्ते च आषाढ एव वर्द्धते नान्येमासास्तट्टिप्पनकंतु अधुना सम्यग् न ज्ञायतेऽतः पञ्चाशद्भिर्दिनैः पर्युषणा सङ्गते-युक्तेति वृद्धाः—" ऐसे अक्षर किरणावली वृत्तिमें

तथा दीपिका वृत्तिमें और सुखबोधिका वृत्तिमें अपने ही गच्छके विद्वानोंने खुलासा पूर्वक लिखे हैं सो सातवें महाशयजी अच्छी तरहसे जानते हैं और दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणमें ५० दिन पूरे होते हैं इसलिये "जब दो श्रावण आवे तो श्रावण सुदी चौथके रोज सांवत्सरिक कृत्य करे ऐसा तो पाठ कोई सिद्धान्तमें नहीं है तो आग्रह करना क्या ठीक है" सातवें महाशयजीका यह लिखना मायावृत्तिसे अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको प्रगट करनेवाला प्रत्यक्ष सिद्ध होगया सो पाठकवर्ग भी विचार लेवेंगे,—

और (दो भाद्र आवे तो किसी तरह पूर्वोक्त पाठका समर्थन करोगे परन्तुसत्तर दिनमें चौमासी प्रतिक्रमण करना चाहिये) सातवें महाशयजीके इस लेखपर भी मेरेको इतनाही कहना है कि–दो भाद्रआवे तब पूर्वोक्त पाठके अभिप्रायसे ५० दिनकी गिनती करके प्रथम भाद्रपदमे पर्युषणा करना सो तो न्यायकी बात है परन्तु दो भाद्र होते भी पिछाड़ीके ७० दिन रखनेके लिये दूसरे भाद्रमें पर्युषणा करनेवालोंकी बड़ी भूल है क्योंकि पूर्वोक्त पाठमें कारण योगे ४९ वें दिन पर्युषणा करी है परन्तु ५१ वें दिन भी नहीं करी है इस लिये दो भाद्र होनेसे दूसरे भाद्रमें पर्युषणा करने वालोंको ८० दिन होते हैं इसलिये श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध बनता है और चार मासके १२० दिनका वर्षाकालमें ५० दिने पर्युषणा करनेसे पिछाड़ी ७० दिन रहनेका दोनु चूर्णिके पाठमें खुलासा पूर्वक कहा है सो तो इसीही ग्रन्थके पृष्ट ९४ और ९९ वेंमें पाठ छप गये हैं इसलिये मास वृद्धि होते भी पिछाड़ीके ७० दिन रखनेका आग्रह करने वाले अज्ञानियोंकी

पंक्तिमें गिनने योग्य है सो तो इस ग्रन्थको संपूर्ण पढ़नेवाले विवेकी सज्जन स्वय विचार सकते हैं :—

और दो श्रावण तथा दो भाद्रपद और दो आश्विन हो तोभी आषाढ चौमासीसे ५० दिने दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रमें पर्युषणा करनी चाहिये जिससे पिछाडी १०० दिने चौमासी प्रतिक्रमण करनेमें आवे तो कोई दूषण नहीं है किन्तु शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक है इसका विशेष विस्तार पहिलेही छप चुका है । और नवमे पृष्ठके मध्यमें तिथिसंबंधी लिखा है जिसकी तो समीक्षा आगे लिखुंगा परन्तु आठवें पृष्ठके अन्तमें तथा नवमे पृष्ठके आदि अन्तमें और दशवे पृष्ठकी आदिमें छट्ठी पंक्ति तक लिखा है कि— (जैसे फाल्गुन और आषाढकी वृद्धि होनेपर दूसरे फाल्गुनमें और दूसरे आषाढमें चौमासी प्रतिक्रमणादि करते हो, उसी तरह अन्य अधिक मासमें भी दूसरेहीमें करना वाजिब है । वैसा नहीं करोगे तो विरोधके परिहार करनेमें भाग्यशाली नहीं बनोगे । एक अधिकमासमाननेमें अनेक उपद्रव खड़े होते हैं और अधिकमासको गिनतीमें न लेनेवालेको कोई दोष नहीं है । उसी तरह तुम भी अधिक मासको निःसत्त्व मानकर अनेक उपद्रव रहित बनो ।

इस रीतिकी व्यवस्था रहते हुए कदाग्रह न छूटे तो भले स्वपरम्परा पालो परन्तु स्वमन्तव्यमें विरोध न आवे ऐसा वर्त्तावकरना बुद्धिमानपुरुषोंका काम है । जैसे फाल्गुनके अधिक होनेपर दूसरे फाल्गुनमें नैमित्तिक कृत्य करते हो उसी तरह अन्य अधिकमास आनेपर दूसरे महीनेमें नैमित्तिक कृत्योंके करनेका उपयोग रक्खो कि जिसमें कोई वि-

रोध न रहे । दो श्रावण हो,अथवा भाद्र हो तथा दो आश्विन होतेभी कोईविरोध नहीं रहेगा । तीर्थंकर महाराजकी आज्ञा सम्यक् प्रकारसे पलेगी)

ऊपरके लेखमें सातवें महाशयजीने अधिक मासको निःसत्व मान कर गिनतीमें निषेध किया तथा गिनतीमें लेनेवालोंको अनेक उपद्रव दिखाये और गिनतीमें नहीं लेनेवालोंको दूषण रहित ठहराये फिर मास वृद्धि होनेसे दूसरे मासमें नैमित्तिक कृत्य करनेका भी ठहराया इसपर मेरेको बड़ेही आश्चर्य्य सहित खेदके साथ लिखना पड़ता है कि सातवें महाशयजीके विद्वत्ताकी विवेक बुद्धि किस खाड़में चली गई होगी सो ऊपरके लेखमें विवेक शून्य होकर पूर्वापरका विचार किये बिनाही उटपटांग लिख दिया क्योंकि देखो सातवें महाशयजी यदि अधिक मासको निःसत्व मान करके गिनतीमें नहीं लेते होवे तबतो दो श्रावण, दो भाद्र, दो आश्विन, दो फाल्गुण और दो आषाढ़ मासोंका उन्होंका लिखनाही वन्ध्याके पुत्र समान हो जाता है और मास वृद्धि होनेसे दो श्रावणादि लिखते हैं तथा उसी मुजबही वर्त्ताव करते हैं तब तो अधिक मासको निःसत्व मान करके गिनतीमें निषेध करना (गिनतीमें नहीं लेना) सो ममजननीवंध्या समान बाल लीलाकी तरह होजाता है क्योंकि दो श्रावणादि लिखके उसी मुजब वर्त्ताव करना फिर मास वृद्धिकी गिनती निषेध करना यहतो विवेक शून्यके सिवाय और कौन होगा क्योंकि दो श्रावणादि लेखके उसी मुजब वर्त्ताव करते हैं इसलिये उसीकी गिनतीका निषेध करना तथा गिनतीमें लेने

वालोंको अनेक उपद्रव दिखाने और आप दोनुं मासों को लिखके उसी मुजब वर्त्ताव करते भी, उसीको गिनतीमें न लेते हुये प्रत्यक्ष माया वृत्तिसे दूषण रहित बनना सो सब बाल जीवोंको कदाग्रहमें फंसाकर उत्सूत्र भाषणसे संसार परिभ्रमणका हेतु है सो तो निष्पक्षपाती तत्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और मास वृद्धि होनेसे मास तिथि नियत सब नैमित्तिक कृत्योंको दूसरे मासमें करनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो भी अज्ञताका सूचक है क्योंकि वर्त्तमानमें मास वृद्धि होनेसे मास तिथि नियत कृत्य, आगे पीछे दोनें मासमें करनेमें आते हैं याने कृष्ण पक्षके तिथि नियत कृत्य प्रथम मासके प्रथम कृष्ण पक्षमें करनेमें आते हैं और शुक्ल पक्षके तिथि नियत कृत्य दूसरे मासके दूसरे शुक्ल पक्षके करनेमें आते हैं :—

मित्रवत् न्यायसे अर्थात्—एक नगरमें सज्जनादि गुनयुक्त व्यवहारिया रहता था उसीने अपने भोजनकी तैयारी करी उसी समय उसीके मित्रका आगमन हुआ तब दूसरा भोजन बनानेका अवसर न होनेसे अपने भोजनमेंसे आधा मित्रको दिया और आधा आपने ग्रहण किया,उसी दृष्टान्तके न्यायसे एक नगर रूपी संवत्सर उसीमें सज्जनादि गुनयुक्त व्यवहारियावत् मास उसीके भोजन रूपी नैमित्तिक कृत्य और अधिक मास रूपी मित्रका आगमन होनेसे आधे आधे नैमित्तिक कार्य बांट लिये समजो जैसे दो कार्त्तिक होवेंगे तब श्रीसंभवनाथस्वामीके केवल ज्ञान कल्याणकके श्रीपद्मप्रभुजीके जन्मकल्याणकके तथा दीक्षाकल्याणकके, श्रीने-

मिनाथजीके च्यवन कल्याणकके और श्रीमहावीरस्वामीके मोक्षकल्याणकके उच्छव तपश्चर्यादिकार्य, तथा दीपमालिका (दीवाली) और उसीके सम्बन्धीकार्य प्रथम कार्तिक मासके प्रथम कृष्णपक्षमें करनेमें आवेंगे, दो चैत्र होनेसे श्रीपार्श्वनाथजीके केवल ज्ञानादि कार्य प्रथम चैत्रमें तथा श्रीवर्द्धमानस्वामीके जन्मादिके तथा ओलियों वगैरह दूसरे चैत्रमें और दो आषाढ होनेसे श्रीआदिनाथजीके च्यवनादिके कार्य प्रथम आषाढमें और श्रीवर्द्धमानस्वामीके च्यवनादिके कार्य तथा चौमासी वगैरह दूसरे आषाढमें इसी तरहसे सब अधिक मासोंमें समझना चाहिये।

और इस बातका विशेष खुलासा पांचवें महाशयजी न्यायरत्नजीके लेखकी समीक्षामें भी लिखनेमें आया है सो इसीही ग्रन्थके पृष्ठ २३४।२३५।२३६ में छप गया है सो पढ़नेसे विशेष निर्णय हो जावेंगा ;—और मासवृद्धि होनेसे ऊपर मुजबही कल्याणकादि तपश्चर्या करनेके लिये खास सातवें महाशयजीकेही पूर्वज श्रीतपगच्छमें सुप्रसिद्ध श्रीविजयसेनसूरिजीने भी कहा है तथाहि श्रीसेनप्रश्ने सप्तसप्तति (७७) पृष्ठे यथा :—

प्रश्नः—चैत्रमास वृद्धौ कल्याणकादि तपः प्रथमेद्वितीये वा मासिकार्या।

उत्तरम्—प्रथमचैत्रासित द्वितीयचैत्रसित पक्षाभ्यां चैत्रमास सम्बन्धी कल्याणकादि तपः श्रीतातपादैरपि कार्यमाणं दृष्टमस्ति तेन तथैवकार्यमित्यादि।

और लौकिकजन भी दो भाद्रपद होनेसे श्रीकृष्णजीकी जन्माष्टमी प्रथम भाद्रपदके प्रथमपक्षमें मानते हैं तथा दो

आश्विन होनेसे श्राद्धपक्ष प्रथम आश्विनमें और दशहरा दूसरे आश्विनमें, इसी तरहसे सब अधिक मासोंके कारणसे मास नैमित्तिक कार्य आगे पीछे दोनोंमें मानते हैं। परन्तु सातवें महाशयजी नैमित्तिक कार्य केवल दूसरे मासमें ही करनेका लिख करके दो कार्त्तिक होवे तब दिवाली वगैरह कृष्णपक्षके नैमित्तिक कार्य दूसरे कार्त्तिकमें तथा दो पौष होवें तब श्रीचन्द्रप्रभुजीके, श्रीपार्श्वनाथजीके जन्म, दीक्षादि कल्याणक दूसरेपौषमें और दो चैत्रहोनेसे श्रीपार्श्वनाथजीके केवल ज्ञान कल्याणकको दूसरे चैत्रमें इसी तरहसे कृष्णपक्षके नैमित्तिक कार्य भी दूसरे मासमें ठहराते हैं सो शास्त्रविरुद्ध होनेसे अज्ञताका कारण है क्योंकि ऊपरोक्त लेखानुसार ऊपर के कार्य प्रथम मासके प्रथम कृष्णपक्षमें होने चाहिये सो तो न्याय दृष्टि वाले विवेकी पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे;—

और उपरोक्त नैमित्तिक कार्योंके लेखसे दो भाद्रपद होनेसे पर्युषणा भी दूसरे भाद्रपदके दूसरे शुक्लपक्षमें सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो भी निष्केवल अपनी अज्ञानता को प्रगट करते हैं क्योंकि मास नैमित्तिक कार्य अधिक मास होनेसे आगे पीछे दोनों मासमें करनेमें आते हैं परन्तु पर्युषणा वैसे नहीं हो सकती है क्योंकि पर्युषणा तो दिनोंके प्रतिबद्ध होनेसे अषाढ़ चौमासीसे ५० दिनकी गिनतीसे अवश्य करके करनेका अनेक शास्त्रोंमें प्रगट पाठ है इसलिये दो भाद्रपद होनेसे पर्युषणा दूसरे भाद्रपदमें नहीं किन्तु प्रथम भाद्रपदमें ५० दिनकी गिनतीसे शास्त्रोंको प्रमाण करने वाले [illegible] करनी चाहिये और प्राचीन कालमें जैन [illegible] द्धि होनेसे श्रावणमें पर्य-

षणा करनेसे आतीथी तथा वर्तमानकालमें दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेमें आती है इसलिये मासवृद्धि होतेभी भाद्रपद प्रतिबद्ध पर्युषणा नही ठहर सकती है किन्तु दिनोंके प्रतिबद्धही गिननेसे जहां व्यवहार से ५० दिन पूरे होवे वहांही करनी उचित है इतने परभी सातवें महाशयजी अपने कदाग्रहके हठवादसे शास्त्रोंके प्रमाणोंको छोड़ करके नैमित्तिक कार्यों की तरह दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका ठहराते हैं तोभी उन्होंको प्रत्यक्ष विरोध आता है सोही दिखावते हैं कि–खास सातवें महाशयजीके पूर्वजने अधिक मास होनेसे कृष्णपक्षके नैमित्तिक कार्य प्रथम मासके प्रथम कृष्णपक्षमें करनेका कहा है उसी मुजब सातवें महाशयजी पर्युषणाकरें तब तो पर्युषणाके आठदिनोंके उच्छव का भङ्ग हो जावेगा और पर्युषणासे पहिले कृष्णपक्षके चार दिनोंके कार्य प्रथम भाद्रपदमें करने पड़ेगे फिर एक मास पर्यन्त मौन धारण करके पर्युषणामें पिछाड़ीके चार दिनोंके कार्य दूसरे भाद्रपदमे करें तब तो सातवें महाशयजीकी खूब विटंबना होजावे सो तत्वज्ञ विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे;–

और ओलियें छठे महीने करनेमें आती है परन्तु अधिक मास होनेसे सातवें महीने करनेमें आती है तथा चौमासी चौथे महीने करनेमें आता है परन्तु अधिक मास होनेसे पांचवें महीने करनेमें आता है सो तो न्यायपूर्वक युक्ति की बात है परन्तु पर्युषणा तो आषाढ चौमासीसे ५० दिने अवश्य करके करनेका कहा है, इसलिये अधिक मास हो तो भी ५० वें दिनकी रात्रिको भी उल्लंघनकरनेसे मिथ्या-

त्वकी प्राप्ति होती है तो फिर दूसरे भाद्रपदमें ८० दिने पर्यु-षणा करना सो तो कदापि श्रीजिनाज्ञामें नहीं आ सकता है सा भी विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे;—

और शास्त्रानुसार भावपरंपरा करके तथा युक्तिपूर्वक और लौकिक व्यवहार मुजब अधिक मास होनेसे नैमित्तिक कार्य आगे पीछे दोनों मासमे करनेमें आते हैं सोता सातवें महाशयजीके पूर्वजने भी लिखा है जिसका पाठ ऊपरही लिखनेमें आया है तथापि सातवें महाशयजी प्रथम मासको छोडकरके दूसरे मासमें नैमित्तिक कार्य करनेके लिये "वैसा नहीं करोगे तो विरोधके परिहार करनेमें भाग्य-शाली नहीं बनोगे" ऐसे अक्षर लिखके प्रथम माससे नैमित्तिक कार्य करने वालोंका विरोध दिखाते हैं सो कोई भी शास्त्रके प्रमाण बिना अपनी मति कल्पनासे भोले जीवोंको भ्रममे गेरनेंके लिये अपने पूर्वजके वचनको भी विरोध दिखाने वाले सातवें महाशयजी जैसे कलियुगि विनीत प्रगट हुवे है सो तो अपने पूर्वजोंको खोटे कहके आप भले बनते हैं इसलिये आत्मार्थियोंको इन्हकी कल्पित बात प्रमाण करने योग्य नही है,—

और (कदाग्रह न छूटे तो भले स्वपरंपरा पालो) सातवें महाशयजीका यह भी लिखना भोले जीवोंको कदाग्रहमें फंसाकर मिथ्यात्वको वढ़ानेवाला है सो तो इसीही ग्रंथके पृष्ठ ३३९ से ३४२ तकका लेख पढनेसे मालूम हो सकेगा परंतु सातवें महाशयजीने ऊपरके लेखमें अपने अन्तरके भावका सूचन किया मालूम होता है क्योंकि सातवें महाशयजी बहुत वर्षोंसे काशीमें ठहर कर अपनी विद्वत्ता प्रगट कर रहे हैं

इसलिये भोले जीव जानते है कि सातवें महाशयजीकी तरफसे पर्युषणा विचारका लेख प्रगट हुवा है सो शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वकही होगा परन्तु उसी लेखको तत्वज्ञ पुरुषों ने देखा तो निष्केवल शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें तथा उत्सूत्रभाषणोंके संग्रह वाला और कुयुक्तियोंके संग्रह वाला होनेसे अज्ञानी जीवोंको मिथ्यात्वमें फंसाने वाला मालूम हुवा तब उसीकी शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक समीक्षा मेरेको भव्यजीवोंके उपकारके लिये इतनी लिखनी पड़ी है इसको बांचकर सातवें महाशयजीको अपनी विद्वत्ताके अभिमानसे और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके कारणसे अपना मिथ्यापक्षके कल्पित कदाग्रहको छोड़कर सत्य बात ग्रहण करनी बहुतही मुश्किल होनेसे (कदाग्रह न छूटेतो भले स्व परंपरा पाले) ऐसे अक्षर लिखके कदाग्रहको तथा शास्त्रों के प्रमाण बिना कल्पित बातोंकी अंध परम्पराको पुष्ट करके भोले जीवोंको उसीमें फंसाये और आपनेभी उसीका शरणालेकरके अपना अन्तर मिथ्यात्वको प्रगट किया इस-लिये इस ग्रंथकारका सब सज्जन पुरुषोंको यही कहना है कि जो अल्पकर्मी मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी होगा सोतो शास्त्रों के प्रमाण विरुद्ध अपने अपने कदाग्रहकी अन्ध परंपराके पक्षका आग्रहमें तत्पर न बनके इस ग्रंथको सम्पूर्ण पढ़ करके पंचांगी प्रमाण पूर्वक युक्ति सहित सत्य बातोंको ग्रहण करेगा दुसरोंसे करावेगा और बहुल कर्मी मिथ्यात्वी होगा सोतो शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक सत्य बातोंको जानकरकेभी उसीको ग्रहण न करता हुआ अपने कदाग्रहकी अन्ध परम्परामे रहकर उसीको पुष्ट करने

के लिये और सत्य बातोंका निषेध करनेके लिये नवीनवी कुयुक्तियोंके विकल्प खड़े करके विशेष मिथ्यात्त्व फैलावेगा और दूसरे भोले जीवोंकोभी उसीमें फंसावेगा सोतो उसीकेही निवीड़ कर्मोंका उदय समझना परन्तु उसीमें शास्त्र कारका कोई दोष नहीं है इसलिये यहां मेरा खुलासा पूर्वक यही कहना है कि अधिकमासकी गिनती निषेध करनेवाले और गिनतीप्रमाण करनेवालोंको अनेक कुयुक्तियोंसे कल्पित दूषण लगानेवाले सातवें महाशयजी जैसे विद्वान् कहलाते भी निःकेवल अन्ध परम्पराके कदाग्रहमें पड़के बालजीवोंको भी उसीमें फंसानेके लिये अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेवन करके श्रीतीर्थंकरगणधरादि महाराजोंकी और अपने पूर्वजोंकी आशातना करते हुवे पञ्चांगीके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको छोड़कर फिर शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणों करके खूब पाखन्ड फैलायाहै और फैलारहेहैं जिससे श्रीतीर्थंकर महाराजकी आज्ञाको उत्थापन करते हैं इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध करनेवाले कदाग्राहियोंको मिथ्यादृष्टि निन्हवोंकी गिनतीमें गिनने चाहिये। यदि श्रीतीर्थंकर महाराजकी आज्ञाको अराधन करके आत्म कल्याणकी इच्छा होवे तो अधिक मासके निषेध करनेसम्बन्धी कार्योंका मिथ्या दुष्कृत देकर उसीकी गिनतीके प्रमाण मुजब वर्तो नहीं तो उत्सूत्र भाषणोंके विपाकतो भोगे बिना छूटने मुशकिल है;—

और फिरभी स्वपरम्परा पालने सम्बन्धी सातवें महाशयजीने लिखा है कि (स्वसंतव्यमे विरोध न आवे ऐसा वर्ताव करना बुद्धिमान पुरुषोंका काम है) इस लेखपर

भी मेरेको इतनाही कहना है कि–यह भी सातवें महाशयजीका लिखना अज्ञताका सूचक है क्योंकि श्रीजिनेश्वर भगवान्‌का कथन करा हुआ श्रीजिन प्रवचन अविसंवादी होनेसे सब गणधरोंके सबगच्छोंकी एकही समाचारी होती है परन्तु इस वर्तमान कालमें तो सब गच्छ वालोंकी भिन्न भिन्न समाचारी है और शास्त्रों के प्रमाण विनाही अन्ध परम्परासे कितनीही बातें चल रही है इसलिये शास्त्र प्रमाण बिनाकी द्रव्य परम्परा पालने वालोंको तो श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध महान् विरोध प्रत्यक्ष दिखता है तथापि अपने अन्ध परम्परा के कदाग्रहको नही छोड़ते हैं फिर कुयुक्तियोंसे अपना कदाग्रहके मंतव्यको पुष्ट करके विरोध रहित (सातवें महाशयजीकी तरह) बनना चाहते है सो तो बुद्धिमान पुरुष नहीं किन्तु अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी पक्के कदाग्रही कहे जाते हैं इसलिये अपने आत्म साधनमें विरोध नही चाहनेवाले तत्वज्ञ पुरुषों को तो शास्त्र विरुद्ध अपनी परम्पराको छोड़ करके शास्त्रानुसार सत्य बातको ग्रहण करनाही परम उचित है;–

और पर्युषणा विचारके दशवें पृष्ठकी सातवीं पंक्तिसें दशवीं पंक्ति तक लिखा है कि (हित बुद्धिसे लिखे हुए विषय पर समालोचना करना हो तो भले करो किन्तु शास्त्र मार्गसे विपरीत न चलनेके लिये सावधानी रखना समालोचनाकी समालोचना शास्त्र मर्यादा पूर्वक करनेको लेखक तैयार है) सातवें महाशयजीके इस लेखपर भी मेरेको इतना ही कहना है कि—जैसे कितनेही ढूंढ़िये तेरहा पंथी वगैरह कदाग्रही मायावृत्तिवाले धूर्त लोग अपने कदाग्रहके पक्षको

बढ़ानेके लिये शास्त्रोंके आगे पीछेके सब पाठोंको छोड़ करके उसीके बीचमेंसे बिना सम्बन्धके अधूरे पाठके फिर उलट अर्थ करके उत्सूत्र भाषणोंसे तथा कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंकी सत्य बातों परसे श्रद्धा भ्रष्ट करके अपने मिथ्यात्वके पाखण्डमें गेरके संसार वृद्धिका कारण करते हैं तो भी हितोपदेशसे अच्छा किया ऐसा अज्ञताके कारणसे वृथा पुकार करते हैं।

तैसेही पर्युषणा विचारके लेखकने भी किया, अर्थात्— अपने कदाग्रहमें मुग्ध जीवोंको फंसानेके लिये श्रीनिशीथ चूर्णि वगैरह शास्त्रोंके आगे पीछेके सब पाठोंको छोड़ करके उसीके बीचमेंसे शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें बिना सम्बन्धके अधूरे पाठ लिखके उलटे अर्थ करके उत्सूत्र भाषणोंकी तथा कुयुक्तियोंकी कल्पनायोका पर्युषणा विचारके लेखमें संग्रह करके भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे हित बुद्धिसे विषय लिखनेका ठहराते हैं सो कदापि नहीं ठहर सकता है क्योंकि हितबुद्धिकेबहानेमिथ्यात्वकेपाखण्डकी वृद्धिका कारण किया है इसलिये भव्यजीवोंके उपकारके लिये पर्युषणा विचारके लेखकीशास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक समालोचना करनी मेरेको उचित थी सो करी है जिसपर भी शास्त्रमार्गसे विपरीत न चलनेके लिये सावधानी रखनेका सातवें महाशयजी लिखते हैं इसपर भी मेरेको इतनाही कहना है कि— खास आपही अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे(शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक अधिक मासकी गिनती प्रमाण तथा श्रावण वृद्धिसे ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा और मासवृद्धिसे १३ मासके क्षामणे वगैरह) सत्य बातोंको ग्रहण नहीं करते हुए अपने

कदाग्रहकी कल्पनाको स्थापन करनेके लियेऔर सत्यबातों को निषेध करनेके लिये पर्युषणा विचारके लेखमें उत्सूत्र भाषणोंको और कुयुक्तियोंके विकल्पोंके प्रत्यक्ष मिथ्या गप्पोंको लिखके भी शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक लिखनेवालेको शास्त्र मार्गसे विपरीत न चलनेके लिये सावधानी दिखाते हैं सो तो प्रत्यक्ष धूर्ताचारीका लक्षण है इसको पाठक वर्ग स्वयं विचार लेवेंगे;—

और (समालोचनाकी समालोचना शास्त्र मर्यादा पूर्वक करनेको लेखक तैयार है) सातवें महाशयजीके इस लेख पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि—पञ्चांगीकी श्रद्धा रहित कदाग्रहमें आगेवान, अनिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेवन करने वाले तथा अन्यायमें प्रवर्तने वाले होकरकेभी शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक मेरे सत्य लेखोंकी समालोचना आप कैसे कर सकोगे क्योंकि जो आप पञ्चांगीकी श्रद्धा वाले आत्मार्थी तथा न्यायमें प्रवर्तने वाले होवो तबतो जो जो मैंने पर्युषणा विचारके लेखकी पंक्ति पंक्तिकी शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक समालोचना करके आपके लेखोंको उत्सूत्र भाषण रूप प्रत्यक्ष मिथ्या ठहराये है और सत्य बातोंको प्रगट करी है उसीको आद्यन्त पर्यंत पढ़के अपनी उत्सूत्र भाषणोंकी और प्रत्यक्ष मिथ्या लेखोंके भूलोंकी श्रीचतुर्विध संघ समक्ष आलोचना लेकर शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक सत्य बातोंको ग्रहण करो पीछे मेरे लेखकी समालोचना करनेकी आपमें योग्यता प्राप्त होवे तब मेरे लेखकी समालोचना करनेको तैयार होना चाहिये। इतने परभी पर्युषणा विचार के सब लेखोंको आप सत्य समझते होवें तो पंक्ति पंक्तिके

सब लेखोँको शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक सिद्धकर दिखावो नहीं दिखाओ तो उसीकी आलोचना लेकर सत्य बातोंको ग्रहण करो और अपने सब लेखोंको शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक सिद्ध नहीं करोंगे तथा अपनी भूलोंकी आलोचना भी नहीं लेवोंगे औरसत्य बातोंको ग्रहण भी नहीं करोंगे तबतक मैंरे लेखकी समालोचना करनेकी आपमें योग्यता प्राप्त नहीं हो सकेगी तथापि आप केवल अपनी विद्वत्ताकी शर्म-केमारे, लौकिक लज्जासे अपनी उत्सूत्र भाषणोंकी तथा प्रत्यक्ष मिथ्या (पर्युषणा विचारके) लेखोंकी भूलोंको छुपा करके शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक सत्य बातोंके सम्बन्धका सब लेखको छोड़ करके बिना सम्बन्धका अधूरा लेखकी कुयुक्तियोंके विकल्पों से समालोचना करके शास्त्र मर्य्यादा पूर्वकके बहाने मुग्ध जीवोंको मिथ्यात्वमें फंसानेके लिये पर्युषणा विचार के लेखकी तरह फिर भी उद्यम करोंगे तो उसीके भी सबकी समालोचना करके आपके अन्यायके पाषग्रहको शांत करनेके लिये मैंरेको जलदीसे लेखनी चलानी ही पड़ेगी इसमें फरक नहीं समझना ;—

और पर्युषणा विचारके दशवें पृष्ठकी ११ वीं पङ्क्तिसे दशवें पृष्ठके अन्त तक लिखा है कि (पाठक महाशयोंको पक्षपात शून्य होकर निबन्ध देखने की सूचना दी जाती है स्नेहरागके वस होकर असत्यको सत्य नहीं मानना और गतानुगतिक नहीं बनना तत्त्वान्वेषी बनकर जल्दी शुद्ध व्यवहारको स्वीकार करके भगवान्की आज्ञानुसार भाद्र सुदी चौथके दिन सांवत्सरिक वगैरह पांच कृत्योंका आराधनकरके थोड़ेभवमें पञ्चमज्ञानके भागीबनो इसतरह

का धर्मलाभ पाठकवर्गके प्रति लेखकदेताहै) इस रीतिसे सातवें महाशयजीने पर्युषणाविचारके लेखको पूर्ण किया है। अब ऊपरके लेखकी समीक्षा करते हैं कि—गच्छके पक्षपातका स्नेहरागसे असत्यको सत्यमान करके गतानुगतिक गड्डरीह प्रवाहवत् अन्ध परम्पराकोही मानने वाले मिथ्या दृष्टि कहे जाते हैं इसलिये तत्वान्वेषी बन करके शास्त्रानुसार युक्ति सम्मत सत्य बातोंका निर्णयपूर्वक ग्रहण करना सोआत्मार्थियोंका काम है इसलिये पक्षपात रहित पर्युषणा विचारके निबन्धको पढ़ा तों साफ मालूम हुआ कि पर्युषणा विचारके लेखकने अपनी अज्ञानताके कारणसे अपने गच्छका पक्षपात करके अन्ध परम्पराका मिथ्यात्वको बढ़ानेके लिये पं० हर्षभूषणजीकी धर्मसागरजीकी और विनयविजयजी वगैरहोंकी, उत्सूत्र भाषणोंकी कल्पनायोंको सत्य मानकर श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञाको उत्थापन करके पर्युषणा विचारके लेखमें केवल शास्त्रोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषणोंकी कल्पनायें भरी हुई होनेसे गच्छ पक्षके मिथ्या आग्रह करनेवाले बालजीवोंको श्रीजिनाज्ञासे भ्रष्टकरके मिथ्यात्वमें फंसाने वाला और खास पर्युषणा विचारके लेखकको संसार वृद्धिका हेतु भूत प्रत्यक्ष देखनेमें आया इसलिये पर्युषणा विचारके लेखकके तथा अन्य आत्मार्थियोंके उपकारके लिये उसीकी समालोचना करके निष्पक्षपाती पाठक गणको सत्यबात दिखाई है सो इसको पढ़कर पर्युषणा विचारके लेखक वगैरह यदि आत्मार्थि होवेंगे तब तो गच्छके पक्षपातका आग्रहको न रखके असत्यको छोड़कर सत्यको ग्रहण करके अपनी भूलोंको सुधारेंगे और अपनी विद्वत्ताके

अभिमानी मिथ्यात्वी होवेंगे तो विशेष कदाग्रह बढ़ानेके लिये उद्यम करेंगे (उसीका उत्तर तो देनाही होगा) परन्तु इस ग्रन्थके प्रगट होनेसे सम्यक्त्वी अथवा मिथ्यात्वी की तो परिक्षा अच्छी तरहसे हो जावेगी :—

और सातवें महाशयजी अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें छोड़ करके दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करना सो शुद्ध व्यवहारसे भगवानकी आज्ञामे ठहराते हैं सो तो सोनेकी भ्रांतिसे केवल पीतल ग्रहण करने जैसा करके अपनी पूर्ण अज्ञता प्रगट करते हैं क्योंकि अधिक मासकी गिनती छोड़नेसे तो अनन्त संसारकी वृद्धिका हेतुभूत मिथ्यात्वकी प्राप्ति होती है इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध करने वाले कदापि आज्ञाके आराधक नहीं बन सकते हैं किन्तु शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक और प्रत्यक्ष वर्तावसे अधिकमासके ३० दिनोंको गिनतीमे लेनेसे ही भगवानकी आज्ञाका आराधन हो सकता है इसलिये अधिकमासकी गिनती प्रमाण करना सोही तत्वान्वेषी शुद्ध व्यवहारको ग्रहण करनेवाले भगवानकी आज्ञाके आराधक हो सकेंगे इसलिये मासवृद्धि दो श्रावण होनेसे ५० दिनकी गिनतीसे दूसरे श्रावणमें पर्युषण पर्वमें सांवत्सरिक वगैरह कृत्योंका आराधन करनेवाले आत्मार्थी होनेसे पञ्चम केवलज्ञानके भागी हो सकेंगे।

और अन्तमें पाठकवर्गको धर्म्मलाभ लेखकने लिखा है सो भी बुद्धिकी अजीर्णता प्रगट करी मालूम होती है क्योंकि पाठकवर्गमें तो पर्युषणा विचारके लेखको बाचनेवाले आचार्य, उपाध्याय, गणी, पन्यास तथा साधु, साध्वी और लेखकसे दीक्षा

पर्यायमें अधिक मुनिमगडली वगैरह सब कोई आजाते हैं इसलिये सबको धर्मलाभ देनेकी पर्युषणा विचारके लेखककी ताकत नहीं होते भी देता है तो बुद्धिकी अजीर्णतामें क्या न्यूनता रही है सो विवेकीजन स्वयंविचारसकतेहैं; और सातवें महाशयजीने पर्युषणाविचारकेलेखमें अधिक मासकी गिनती निषेध करनेके लिये इतना परिश्रम किया है परन्तु अधिक मास किसको कहते हैं जिसकी भी तो उनकों मालूम नहीं है क्योंकि, देखो दुनियाके व्यवहारमें तिथि वृद्धिकी तरह दूसरेको अधिक मास कहते हैं। तथा जैनशास्त्रोंमें भी दूसरेकोंही अधिकमास कहा है॥ और लौकिक पञ्चाङ्गमें दोनों मासके मध्यमें संक्रान्ति रहितकों अधिकमास कहते है परन्तु दिनोंकी गिनतीमें दोनों मासके ६0 दिनोंकों बराबर सब कोई लेते हैं इसलिये अधिक मासके दिनोंकी गिनती निषेध नहीं हो सकती है।

और सातवें महाशयजी अधिक मासके ३0 दिनोंकों गिनतीमें नहीं लेनेका लिख करके भोले जीवोंको बहकाते हैं परन्तु खास आपही अधिक मासके ३0दिनोंको गिनतीमें ले करके सर्व व्यवहार करते हैं सो तो प्रत्यक्ष दीखता है तथापि अधिक मासके ३0 दिनोंको गिनतीमें नहीं लेनेका लिख करके भोले जीवोंको बहकाते हैं सो तो 'ममजननी वन्ध्या'की तरह प्रत्यक्ष धूर्त्तताका नमूना है सो तो विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और सातवें महाशयजीने अधिकमासको नपुसक निःसत्व ठहराकर उसीको गिनतीमें छोड़देनेका लिखा है परंतु जब दो भाद्रपद होते हैं तब अधिक मास रूप दूसरे भाद्र-

पदमें खास आप पर्युषणा करते हैं और ८।१०।१५।२०।३०।४०।४५ दिनके उपवासोंकी तपस्याकी गिनतीमें अधिक मासके ३० दिनको बराबर गिनते हैं। तो अब पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि खास आप अधिक मासके दिनोंको तपश्चर्याकी गिनतीमें लेते हैं तथा अधिक मासमेंही पर्युषणा करते हैं तथापि उसीको नपुसक निःसत्व ठहराकर दृष्टि-रागी भोले भाले जीवोंको श्रीजिनाज्ञासे भ्रष्ट करते हैं सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्व से कितने संसार वृद्धिका हेतु है सो तत्वज्ञ स्वयं विचार लेवेंगे,—

और पर्युषणा विचारका छपाई खर्चा और टपाल खर्चा श्रीयशोविजयजीकी पाठशालाके सम्बन्धसे लगा है सो तो यहांके दलीपसिंहजी जौहरीके पास काशी की पाठशालासे उदयराज कोचरका पोष्टकार्ड आया है उसी से तथा और भी कितनेही कारणोंसे सिद्ध होता है उसका विशेष विस्तार अवसर होनेसे पुनरावृत्तिमें लिखने में आवेगा और पर्युषणा विचारका लेख काशीमें उसी पाठ-शालेसें प्रगट भी हुवा है तथापि सातवें महाशयजी अपनी निन्दाकेभयसे श्री यशोविजयजी की पाठशालाके नामसे पर्युषणा विचारके लेखको प्रगट न कराते उदयराज कोचरके नामसे प्रगट कराया और श्रीकाशी (वाणारसी) का नाम भी न लिखाते प्रत्यक्ष मिथ्या फलोधीका नाम लिखाके मायावृत्ति से फलोधीके नामसे प्रगट कराया तो फिर अनुमान २० जगह उत्सूत्र भाषणोंवाला तथा १० जगह प्रत्यक्ष मिथ्यालेखवाला और सत्य बात का निषेध करके अपनी कल्पनाकी मिथ्या बातको स्थापने

की कुयुक्तियें वाला और श्रीजिनाज्ञा मुजब वर्त्तने-वालेंको जूठी कल्पनासे दूषण लगाके अनन्त संसारका हेतु भूत मिथ्यात्यको बढ़ानेवाला पर्युषणा विचारके लेखमें अपना नाम प्रगट करते लज्जा आवे तो निज शिष्यविद्या विजयजीका नाम लिख देवें तोभी कुछ विशेष आश्चर्य नहीं है सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे,—

और काशीनिवासी सातवें महाशयजी जैनतत्वदिग्दर्शन, आत्मोन्नति दिग्दर्शन, जैनशिक्षादिग्दर्शन वगैरह छोटे छोटे लेखोंको तो अपने नामसे प्रगट करते हैं तथा विद्या-विजयजीभी अपने गुरुजीका लम्बा चौड़ा नाम समेत जैन-पत्रमें अपना लेख प्रगट करते हैं और छोटी छोटी पुस्तकें भी श्रीयशोविजयीकी पाठशालाके नामसे प्रगट करनेमें आती है परन्तु पर्युषणा विचारके लेखमें न तो सातवें महाशयजीका नाम लिखा तथा विद्याविजयजीनेभी अपने गुरुजीका नाम भी नहीं लिखा और अपना निवास ठिकाना भी नहीं लिखा और श्रीयशोविजयजीकी पाठशालाका नाम भी नहीं लिखा इसपर भी बुद्धिजन विचार करें तो स्वयं मालूम हो सकेगा कि सातवें महाशयजीने दुनियामें अपनी निन्दाकी शर्मके मारे गुपचुप प्रगट कराया है क्योंकि इतने विद्वान् ऐसे प्रसिद्ध आदमी होकरके भी गच्छके पक्षपातसे ऐसा अनर्थ क्यों किया इसका भेद न खुलनेके वास्ते पाठशालाका तथा पाठशालाके उत्पादकका नाम नहीं लिखा है परन्तु विवेकी बुद्धिजनोंके आगे तो ऐसी धूर्तता नहीं छुप सकती है,—

और जैनपत्रका अधिपति आठवा महाशय श्रावकनाम धारक भगुभाई फतेचन्दने सेप्टेम्बर मासकी २२वीं तारीख सन् १९०९ दूसरे श्रावण वदी १३, परन्तु हिन्दी भाद्रपद कृष्ण १३ वीर संवत् २४३५ के जैनपत्रका २३ वा अङ्ककी आदिमेंही 'पर्युषणा विषे विचार' नामसे जो लेख प्रगट करा है सो ते सातवें महाशयजीके पर्युषणा विचारके लेखको ही गुजराती भाषामें लिखकी प्रगट किया है इसलिये जैनपत्रवालेके लेखकी तो सातवें महाशयजीके लेखकी तरह ऊपर मुजबही समीक्षा समझ लेना और जैनपत्रवाला संप संप पुकारता है परन्तु एकएककी निन्दा करके कुसंपकी वृद्धि करता है तथा गच्छके पक्षपातसे सत्य बातोंका निषेध करके अपना मिथ्यापक्षको स्थापन करनेके लिये उत्सूत्रभाषणोंसे दुर्गतिका रस्ता लेता है और अज्ञानी जीवोंकोभी वहांही पहुंचानेके लिये उत्सूत्र भाषणोंका संग्रह जैनपत्रमें प्रगट करता है और कान्फरन्स सुकृत भण्डारादिसे शासनोन्नतिके कार्यों में विघ्नकारक गच्छोंके खण्डनमण्डनका झगड़ा एकवार नहीं किन्तु अनेकवार जैनपत्रमें उठाया है क्योंकि देखो पर्युषणा सम्बन्धी भी प्रथमही छठे महाशयजीकी मिथ्या कल्पनाका उत्सूत्र भाषणका लेखको जैनपत्रमें प्रगट करके झगड़ेकी नीव रोपन करी तथा सातवें महाशयजीके भी उत्सूत्र भाषणोंके संग्रहवाला लेखका भाषान्तर प्रगट करके उत्सूत्रभाषणोंके भयङ्कर विपाक लेनेके लिये दुर्गतिका रस्ता लिया और फिर भी छठे महाशयजी की तरफके श्रीखरतरगच्छ वालोंकी निन्दावाले तथा कोर्ट कचेरीमें झगड़ा लड़ाके दीर्घकाल पर्य्यन्त कुसंपकी वृद्धि करनेवाले दे।

लेखोंको प्रगट करके अपनी पूर्ण मूर्खता प्रगट करी और पर्युषणा, सामायिक, कल्याणक, वगैरह बातोंका झगड़ा बढ़ाया है (जिसका निर्णय तो इस ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम हो सकेगा) इसलिये जैनपत्रवाले आठवें महाशयको जो संसारवृद्धिसे दुर्गतिमें परिभ्रमणका भय होवे तो उत्सूत्र भाषणोंका मिथ्या दुष्कृत देकर श्रीचतुर्विध संघ समक्ष उसीकी आलोचन लेवे तथा फिर कभी खण्डन मण्डन करके दूसरोंकी निन्दासे गच्छका झगड़ा न उठावे और असत्यको छोड़कर सत्यको ग्रहण करे नहीं तो पक्षपातसे उत्सूत्रभाषणके विपाक तो भोगे बिना कदापि नहीं छुटेंगे ।

और मेरेको बड़ेही खेदके साथ बहुतही लाचार हो करके लिखना पड़ता है कि—अधिक मासके ३० दिनोंकी गिनती निषेध करनेवाले उत्सूत्र भाषक मिथ्या हठग्राही अभिनिवेशिक मिथ्यात्वियोंकी विवेक बुद्धि कैसी नष्ट हो गई है सो पूर्वापरका विचार किये बिनाही अधिक मासके ३० दिनोंमें सर्वकार्य्य करते भी पक्षपातके आग्रहसे गड्डरीह प्रवाहकी तरह मिथ्यात्वकी अन्ध परम्परासे एक एककी देखादेखी तात्पर्य्यार्थके उपयोग शून्य होकरके उसीकोही पकड़कर उसीकी पुष्टि करते हैं परन्तु श्रीजिनाज्ञाका उत्थापन करके बाल जीवोंको मिथ्यात्वमें फंसानेसे अपनी आत्मघातका कुछ भी भय नहीं करते हैं क्योंकि पञ्चाङ्गी प्रमाण पूर्वक और युक्ति सहित श्रीजिनेश्वर भगवानकी आज्ञाके आराधक सबी आत्मार्थी जैनाचार्य्य वगैरह अधिक मासके दिनोंकी गिनती प्रमाण करकेही प्राचीन कालमें पूर्वधरादि महाराज भी पर्युषणा करते थे तथा वर्तमानमेंभी

सब कोई आत्मार्थि जन अधिक मासकी गिनती प्रमाण करकेही पर्युषणा करते हैं और आगे भी ऐसेही करेंगे परन्तु शासननायक श्रीवर्द्धमानस्वामीके मोक्ष पधारे बाद अनुमान एक हजार वर्ष व्यतीत हुए पीछे उत्सूत्र भाषणोंमें आगेवान गच्छ कदाग्रही शिथिलाचारी धर्मधूर्त्त जैनाभास पाखण्डी चैत्य वासियोंने पञ्चाङ्गी प्रमाणपूर्वक प्रत्यक्षसिद्ध होते भी कितनीही सत्य बातोंको निषेध करके अपनी मति कल्पनासे उत्सूत्र भाषणरूप कुयुक्तियों करके श्रीजिनाज्ञाविरुद्ध कल्पित बातोंकी प्ररूपणा करी और अविसंवादी श्रीजैन शासनमें विसंवादके मिथ्यात्वको बढ़ाया था जिसमें शास्त्रानुसार तथा युक्ति पूर्वक अधिक मासकी गिनती तथा आषाढ़ चौमासीसे ५०दिने श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन करनेका प्रत्यक्ष दिखते हुए भी लौकिक पञ्चाङ्गमें मासवृद्धि दो श्रावणादि होनेसे प्रत्यक्ष शास्त्रोंके तथा युक्तिके भी विरुद्ध होकर यावत् ८० दिने श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन करनेका सरू करके श्रीजिनाज्ञाका उत्थापनसे मिथ्यात्व फैला या और निर्दूषण बननेके लिये अधिक मासकी गिनती निषेध करके उत्सूत्र भाषणोंकी कुयुक्तियोंसे अज्ञानीजीवोंको अपने मिथ्यात्वकी भ्रमजालमें फसानेके लिये धर्मधूर्ताई करनेमें कुछ कम नहीं किया था सो तो श्रीसंघपट्टककीव्याख्याओंके अवलोकनकरनेसे अच्छी तरहसे मालूम हो सकताहै ।

और कितनेही भारी कर्मि प्राणी तो उपरोक्त मिथ्यात्वकी भ्रमजालमें फसकर अन्धपरम्परासे उसीकोही पुष्ट करते हुए बाल जीवोंको अपने फंदमें फसाते रहते थे उसी मिथ्यात्वकी अन्धपरम्पराकेही अनुसार पं० श्रीहर्षभूषणजी

और धर्मसागरजी वगैरह जो जो लेख लिख गये हैं और वर्त्त-मानमें 'शास्त्र विशारद जैनाचार्य्य' की उपाधिधारक सातवें महाशयजी श्रीधर्म विजयजी जैसे प्रसिद्ध विद्वान् कहलाते भी उसी अन्धपरम्परासे मिथ्यात्वके कदाग्रहको पकड़कर अज्ञ जीवोंको उसीमें फसानेके लिये उसीको विशेष पुष्ट करनेका उद्यम करते हैं परन्तु श्रीजिनेश्वर भगवानकी आज्ञाका उत्थापन करके प्रत्यक्ष पञ्चाङ्गी प्रमाण विरुद्ध प्ररूपणा करते हुए अभिनिवेशिकमिथ्यात्वसे सज्जन पुरुषोंके आगे हास्य काहेतु करनेका कारण करते भी कुछ लज्जा नहीं पाते हैं सो तो इस कलियुगमें पाखण्ड पूजा नामक अच्छेरेका प्रभावही मालूम पड़ता है। इसलिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी पुरुषोंको ऐसे उत्सूत्र भाषकोंकी कुयुक्तियोंके भ्रममें न पड़ना चाहिये और निष्पक्षपातसे इस ग्रन्थको आदिसे अन्त तक बांचकर असत्यको छोड़के सत्यको ग्रहण भी करना चाहिये परन्तु गच्छके आग्रहसे उत्सूत्र भाषणकी बातोंको पकड़कर उसीमें नहीं रहना चाहिये।

और भी श्रीधर्मसागरजीकी तथा श्रीविनयविजयजी-की धर्मधूर्ताई का नमूना पाठक वर्गको दिखाहूं, कि देखो श्रीविनयविजयजीने श्रीलोकप्रकाश नामा ग्रन्थ बनाया है सो प्रसिद्ध है उसीमें अधिक मासकी गिनती प्रमाण करी है अर्थात् समयादि सुक्ष्मकालसे आव-लिका मुहूर्तादिककी व्याख्या करके ३० मुहूर्तोंका एक अहो-रात्रि रूप दिवस, सो १५ दिवसोंसे एकपक्ष, दो पक्षोंसे एकमास बारह मासोंसे चन्द्रसंवत्सर और अधिक मास होनेसे तेरह मासोंका अभिवर्द्धित संवत्सर इन पांचों संवत्सरोंसे

एक युगके १८३० दिनोंके ५४९०० (चौपन हजार नौ सौ) मूहूर्तोंकी व्याख्या श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रके अनुसार श्रीवि-नय विजयजी लोकप्रकाशमें स्वयं लिखते हैं तैसेही श्रीधर्म-सागरजीने भी श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्तिकी वृत्तिमें ऊपर मुजबही पांचवर्षोंके दो अधिकमासोंके दिनोंकी तथा पक्षोंकी और मुहूर्त्तोंकी गिनती पूर्वक एक युगके १८३० दिनोंके ५४९०० मुहूर्त्त खुलासा पूर्वक लिखे हैं। तथापि वडेही खेदकी बात है कि इन दोनों महाशयोंने गच्छकदाग्रह का पक्ष करके उत्सूत्र-भाषणसे संसार वृद्धिका भय न रक्खा और बालजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी सत्य बात परसे श्रद्धाभ्रष्ट करनेके लिये श्रीक-ल्पसूत्रकी कल्पकिरणावलीवृत्तिमें तथा सुखबोधिका वृत्तिमें काल चूलाके बहानेसे दोनों अधिक मासके ६० दिनोंकी गिनती निषेध करके अपने स्वहस्थे एक युगके दो अधिक मासोंके दिनोंकी मुहूर्त्तोंकी गिनती पूर्वक १८३० दिनोंके ५४९०० मुहूर्त्तोंको श्रीतीर्थंकर गणधर महाराजकी आज्ञानुसार लिखे हैं उसीका भङ्गकारक दो अधिक मासके ६० दिनोंके अनुमान १८०० मुहूर्त्तोंके कालका व्यतीत होना प्रत्यक्ष होते भी उसीको गिनती में से सर्वथा उड़ादेकर श्रीतीर्थंकरगण-धर महाराजके कथनका प्रमाणमें भङ्ग डालने वाले लेख लिखते पूर्वापरका विवेकबुद्धिसे कुछ भी विचार न किया और उत्सूत्र भाषणोंका संग्रह करके कुयुक्तियोंसे अज्ञानीजी-वोंको भ्रमाने का कारण किया इसलिये इन दोनों महाशयोंकी धर्मधूर्त्ताईमें कुछ कम होवे तो न्यायदृष्टिवाले विवेकीसज्जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और इन दोनों महाशयोंके अधिक मासके निषेध

सम्बन्धी पूर्वापरविरोधि (विषमवादी) तथा उत्सूत्र भाष-णोंकी कुयुक्तियोंवाले और सम्यक्त्वसे भ्रष्ट करके मिथ्या-त्वमें गेरनेवाले लेखोंको दीर्घ संसारीके सिवाय और कौन मान्य करके श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आशातना-कारक उलटा बर्ताव करेगा सो भी तत्वज्ञ पुरुष न्याय दृष्टि वाले सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और अधिक मासके निषेधक श्रीधर्मसागरजी श्रीजय विजयजी श्रीविनयविजयजी और पं० श्रीहर्षभूषणजी वगै-रहोंने जो जो गच्छकदाग्रही दृष्टिरागी मुग्ध जीवोंको मिथ्या-त्वके भ्रममें गेरनेके लिये उत्सूत्र भाषणोंका और कुयुक्ति-योंका संग्रह करके अपना संसार वृद्धिका कारण करते हुए अपने ऐसे कल्पित लेखोंको सत्य माननेवाले अपने पक्ष-ग्राहियोंका भी संसार वृद्धिका कारण कर गये हैं सो इन सब उत्सूत्र भाषणरूप कल्पित कुयुक्तियोंके लेखोंका निर्णय तो इस ग्रन्थमें अनुक्रमसे सातों महाशयोंके लेखोंकी समी-क्षामें होगया है सो इस ग्रन्थको आदिसे अन्त तक पक्षपात रहित होकर न्याय दृष्टिसे पढ़नेसे सब बातोंका अच्छी तरहसे निर्णय मालूम होजावेगा। तथापि जो पं० श्रीहर्ष-भूषणजीने पर्युषणास्थिति नामक लेख में जो जो उत्सूत्र भाषणोंका और कुयुक्तियोंका संग्रह करके मिथ्यात्वका कारण किया है उसीका दिग्दर्शनमात्र थोड़ासा नमूना इस जगह पाठकगणको दिखाता हूं यथा—

श्रीसीमंधरमर्हंतं नत्वापर्युषणास्थितिं ब्रुवेवर्तितभा-द्रस्य व्यक्तं युक्त्यागमक्रमैः॥ नन्वशीत्यादिनैः पर्युषणापर्व-सिद्धान्ते क्व प्रोक्तमस्तीत्येवंचेत्तर्हि पंच मासात्मकं वर्षा

चतुर्मासिकमपि सिद्धांते कुर्वर्व्वर्त्ति सत्यं परमधिकमासोऽस्मा भिर्नगण्यमानोस्ति एवं चेत्तर्हि अस्माभिरपि यदाधिकः श्रावणो भाद्रपदोवावर्द्धते तदा नगण्यते तेनाशीतिदिनानि पञ्चाशद्दिनान्येवेतीत्यादि।

अब पं० हर्षभूषणजीके ऊपरका लेखको तत्वज्ञ पुरुष निष्पक्षपातसे विचारेंगेतो प्रत्यक्षपने उनके भ्रमजालका परदा खुल जावेगा क्योंकि युक्ति और आगम कमके बहाने उत्सूत्र भाषणाका संग्रह करके कुयुक्तियोंकी भ्रमजालमें बालजी-वोंको गेरनेका कारण किया है सो तो प्रत्यक्ष दिखता है क्योंकि ८० दिने पर्युषणा करनेका किसी भी शास्त्रमें नहीं कहा है परन्तु श्रावण भाद्रपदादि अधिक होनेसे पंचमासके १० पक्षोंके १५० दिनका अभिवर्द्धित चौमासा तो प्रत्यक्षपने अनुभवसे देखनेमें आता है इसलिये निषेध नहीं हो सकता है और अधिक मासको गिनतीमें निषेध करके दूसरे श्रावण के ३० दिनोंको गिनतीमें छोड़कर ८० दिनके ५० दिन अपनी मतिकल्पनासे बनाते हैं सो निष्केवल उत्सूत्र भाषण है क्यों कि शास्त्रानुसार तथा युक्तिपूर्वकसे तो ८० दिनके ५० दिन कदापि नहीं हो सकते हैं सो तो इस ग्रन्थको पढ़नेवाले स्वयं विचार लेवेंगे।

और फिर आगे। ननु 'अभिवढ्ढियंमि वीसा इयरेसु सवीसइमासो' निशीथभाष्ये इत्यत्राधिकमासोगणितो-ऽस्ति। इस तरहसे अधिक मासकी गिनती सम्बन्धी पूर्वपक्ष उठाकर उसीका उत्तरमें—'आसाढ़ पुण्णिमाएपविठा' इत्यादि निशीथ चूर्णिका अधूरा पाठसे अज्ञात पर्युषणाकी और 'वीसदिणेहिंकप्पो' इत्यादि बिनाही प्रसङ्गकी विच्छेद

कल्पसम्बन्धीबातलिखके बालजीवोंको भ्रममेंगेरें और अधिक मासकी गिनती निषेध दिखा कर अपनी विद्वत्ताकी चातुराई विवेकी तत्वज्ञ पुरुषोंके आगे हास्यकी हेतु रूप प्रगट करी है क्योंकि निशीथचूर्णिमेंही खास अधिक मासकी गिनती प्रमाण करीहै और अज्ञात तथा ज्ञात पर्युषणा सम्बन्धी विस्तारसे व्याख्या की है सो पाठ भावार्थ सहित तीनों महाशयों के लेखों की समीक्षामें इसही ग्रन्थके पृष्ठ ९५ से १०४ तक छपगयाहै इसीलिये आगे पीछेके प्रसंग वाले सब पाठको छोड़कर विना सम्बन्धके अधूरे पाठसें बाल जीवोंको भ्रममें गेरने सोभी उत्सूत्र भाषण है।

और आगे फिर भी अधिक मासमें क्या क्षुधा नहीं लगतीहै तथा सूर्योदय नही होताहै और देवसिक पाक्षिक प्रतिक्रमण, देवपूजा मुनिदानादि क्रिया शुद्ध नहीं होतीहै सो गिनतीमें नहीं लेतेहो इस तरहका पूर्वपक्ष उठाकर उसीका उत्तरमें पांचमासके चौमासेमें तुमभी चारमास कहतेहो इत्यादि अज्ञानतासे प्रत्यक्ष मिथ्या और उटपटांग लिखाहै सोतो वृथाही हास्य का हेतु कियाहै। और श्रीउत्तराध्ययनजीके २६ अध्ययनका पौरूष्याधिकारे मासवृद्धिके अभाव सम्बन्धी सविस्तर पाठको छोड़कर "असाढमासे दुप्पया" सिर्फ इतनाही अधूरा पाठ लिखके उत्सूत्र भाषणसे भोले जीवोंको भ्रमानेका कारण कियाहै इसका निर्णयतो तीनों महाशयों के लेखोंको समीक्षामें इसही ग्रन्थके पृष्ठ १३६। १३७ में छपगयाहै।

और श्रीआवश्यक निर्युक्तिकी गाथाका तात्पर्यार्थको समझे बिना तथा प्रसंगकी बातको छोड़कर 'जइफुल्ला'

इत्यादि गाथा लिखके उत्सूत्र भाषणसे मिथ्यात्वका कारण कियाहै जिस का निर्णयतो चौथे और सातवें महाराजजी के लेखकी समीक्षामें इसही ग्रन्थके पृष्ठ २०५ से २१० तक और ३८५ से ३९५ तक सविस्तार छपगयाहै सो पढ़नेसे हर्षभूषणजी की शास्त्रार्थ शून्य विद्वत्ताका दर्शन अच्छीतरहसे होजावेगा ।

और श्रीनिशीथ तथा श्रीदशवैकालिकवृत्तिके नामसे चलासंबंधीकल्पित अधूरा पाठ लिखके उसीपर अपनी मतिसे कुविकल्प उठाकर कालचूलाके बहाने अधिक मासकी गिनती उत्सूत्र भाषणरूप निषेध करके बाल जीवोंके आगे धर्म ठगाई फैलाईहै जिसका निर्णयतो 'जैनसिद्धांत समाचारी'के लेखकी समीक्षामें इसही ग्रन्थ के पृष्ठ ५८ से ६५ तक और पांचवें महाशयजी के लेखकी समीक्षामें पृष्ठ २० से २२३ तक छपगयाहै सो पढनेसे मालूम होजावेगा। और रत्नकोष ज्योतिष् ग्रन्थका १ श्लोक लिखके अधिक मासमें मुहूर्त नैमित्तिक बिवाहादि संसारिक कार्य नहीं होनेका दिखाकर विनामुहूर्तका पर्युषणादि धर्म कार्यभी अधिकमासमें नहोने का दिखाया सोभी उत्सूत्र भाषणहै इस बातका निर्णय चौथे महाशयके लेखकी समीक्षामें पृष्ठ १९४ से २०४ तक छप गयाहै ।

और भी इसीही तरहसे अधिक मासके ३० दिनों को गिनतीमें निषेध करके ८० दिनके ५० दिन बालजीवोंके आगे सिद्ध करनेके लिये कुयुक्तियोंके विकल्पोंका और उत्सूत्र भाषणोंका संग्रह करके भी फिर जोजो मासवृद्धिके अभाव सम्बन्धीश्रीपर्युषणा कल्पचूर्णि, निशीथचूर्णि, पर्युषणा कल्पटिप्पण और संदेहविषौषधिवृत्तिके सविस्तार वाले सब पाठों को छोड़करके उसीके पूर्वापरका संबंध विनाके और

शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध अधूरे अधूरे पाठोंको लिखके दृष्टिरागी गच्छकदाग्रही विवेकशून्य मुग्ध जीवों के आगे मास वृद्धि दो श्रावण होतेभी भाद्रपदमें पर्युषणा ठहराकर दिखानेका प्रयास किया जिसका निर्णय तो इस ग्रन्थमें अच्छीतरहसे सविस्तार शास्त्रकार महाराजोंके अभि-प्राय सहित शास्त्रोंके संपूर्ण पाठार्थों पूर्वक लिखनेमें आयाहै सो पढनेसे निष्पक्षपाती सज्जन स्वयं विचार करलेवेंगे ।

औरभी सुप्रसिद्ध श्रीकुलमंडनसूरिजीने विचारामृत संग्रह नामा प्रकरणमें पर्युषणाधिकारे पृष्ठ १३ में अधिक मासकी गिनती निषेध करनेके लिये जो लेख लिखाहै उसीका भी नमूना यहां दिखाताहूं । यथा—

युगतृतीय पंचम वर्ष संभावीयोऽधिकमासः स्यात् नासौलोके लोकोत्तरेच चतुर्मास सांवत्सरिकादि प्रमाण चिंतायांक्वाप्युपयुज्यते, लोके दीपोत्सवाक्षयतृतीया भूमिदोहादिषु शुद्ध द्वादश मासांतर्भाविषु लोकोत्तरेच-चतुर्मासिकेषु 'आसाढमासे दुप्पया' इत्यादि पौरुषी प्रमाण चिंतायां षण्यासायण प्रमाणयां वर्षांतर्भावि जिनजन्मादि कल्याणकेषु वृद्धावासस्थित स्थविर नवविभागक्षेत्र कल्प-नायांच नायंगण्यते कालचूलत्वादस्य । तथाहि । निशीथे दशवैकालिकवृत्तौच, चूला चातुर्विध्यं द्रव्यादिभेदात् तत्र द्रव्य चूला ताम्रचूलादि क्षेत्रचूला मेरोश्चत्वारिंशद्योजन प्रमाण चूलिका कालचूला युगेतृतीय पंचमवर्षयोरधिक मासकः भावचूलातु दशवैकालिकस्यचूलिकाद्वयं । नच चूलाचूलावतः प्रमाण चिंतायां पृथक् व्याप्रियते । यथा । लक्ष-योजन प्रमाणस्यमेरोः प्रमाणचिंतायां चूलिका प्रमाणमिति

यश्चाधिक मासको जनशास्त्रे पौषाषाढरूपः लौकिक शास्त्रे-षु चैत्राद्यश्विनमासांत सप्तमासव्यवस्थित मासरूपोऽभिवर्द्धित नासौक्व चित्कृत्येप्रयुज्यते । यदुक्तं रत्नकोशाख्य ज्योतिष्-शास्त्रे । यात्राविवाहमंडलमन्यान्यपि शोभनानि कर्म्माणि परिहर्त्तव्यानिबुधैः सर्वाणिनपुंसकेमासि ॥ जति अहिमासओ पडितो तो वीसतीरायं गिहिणायं न कज्जति किं कारणं अथ अहिमासओ चेव मासो गणिज्जति तोवीसाएसमं सवीसति रातो मासोभसतिचेव इति वृहत्कल्प चू० पत्र २९५ व ०३ । पुनः । जम्हा अभिवढ्ढिय वरिसे गिम्हेचेवसोमासो अइक्कन्तो तम्हावीस दिणा अणभिग्गहियंकीरइ निशी० चू०उ० १० पत्र ३१७ इहकल्प निशीथ चूर्णिकृद्भ्यामपिस्वाभिगृहीतगृहस्थ ज्ञातावस्थान व्यतिरिक्तेषु कार्येषु क्वाप्यधिकमासको नामग्रहणं प्रमाणीकृतो न दृश्यते-इति ।

अब श्रीकुलमंडनसूरिजी कृत उपरके लेखको देखकर मेरेको वडेही अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि—ऐसे सुप्रसिद्ध विद्वान् पुरुष आचार्यपदकेधारक होकरके भी स्वगच्छा ग्रहका पक्षपात करके उत्सूत्र भाषणोंसे संसारवृद्धिकाभय न करते हुवे कुयुक्तियोंकासंग्रहसे बालजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका उद्यम किया है सो श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके वचनका उत्थापनरूप है क्योंकि पांच वर्षोंके एकयुगमें तीसरे तथा पांचवे वर्ष जो पौष तथा आषाढको अधिकमास जैनशास्त्रोंमेंकहाहै उसीकोही मंदिरोंके शिखर वत् तथा मेरुचूलिकावत् और दशवैकालिकजी आचा॰ रांगजी की चूलिकावत् कालचूलाकी उत्तम श्रेष्ठ ओपमा देकर दिनोंमें पक्षोंमें मासोंमें गिनती करके वर्ष तथा युगादि

कका प्रमाणश्रीअनन्ततीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने कहाहै तथा श्रीवृहत्कल्पचूर्णि श्रीनिशीथचर्णिमें निश्चय अधिक मासको गिन करके वीशदिने ज्ञात पर्युषणा कहीहै तथापि श्रीकुलमण्डनसूरिजीने पर्युषणाधिकारे कालचूलाके वहाने अधिक मासको गिनतीमें निषेध किया सो श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजों की आज्ञा उत्थापन रूप उत्सूत्र भाषण है ।

और 'आसाढमासे दुप्पया, संबंधी तो उपरमेंही हर्षभूषणजीके लेखका उत्तर में सूचना करनेमें आगईहै । और स्थिवीर कल्पियोंके अधिकमासहोतेभी नवविभागक्षेत्रयाने नवकल्पि विहारका लिखासोभी प्रत्यक्षमिथ्या है क्योंकि १० कल्पिविहारप्रत्यक्षपने होताहै इसका निर्णय तथादीवाली अक्षय तृतीयादि लौकिक संबंधी लिखाहै जिसका निर्णय और श्रीजिनेश्वर भगवानूके कल्याणक संबंधी लिखा है जिसका भी निर्णय तोसातवें महाशयजीके लेखकी समीक्षामें होगया है ।

और एक युगके दोनों अधिक मासोंके दिनोंकी गिनती पूर्वक १८३० दिनोंमें सूर्यचारके दश [१०] अयण श्रीतीर्थंकरगणधरादि महाराजोंने कहेहैं सो श्रीचंद्रपन्नति श्रीसूर्यपन्नति श्रीजंबूद्वीपपन्नति श्रीज्योतिषकरंडपयन्न तथा इनही शास्त्रोंकी व्याख्यओंमें और श्रीवृहत्कल्पवृत्ति, मंडल प्रकरणादि अनेकशास्त्रमें प्रगटपाठहै और लौकिकमेंभी अधिकमासहोनेसे उसीकेदिनोंकीगिनतीपूर्वक १८३ दिने दक्षिणायणसे उत्तरायणमें सूर्यमंडलहोनेका प्रत्यक्षदेखनेमें आता है इसलिये ६ मासके अयणकाप्रमाणमें अधिकमास नही गिनने

संबंधी श्रीकुलमंडनसूरिजीका लिखना प्रत्यक्ष मिथ्या है।

और जैन पंचांगानुसार पौष तथा आषाढ की वृद्धि होतीथी तबभी उसीके दिनोंको पर्युषणादि सब धर्म कार्यों में गिनती करतेथे सोतो उपरमेंही श्रीवृहत्कल्पचूर्णि श्रीनिशीथचूर्णिके पाठसे प्रत्यक्षदिखता है परन्तु वर्तमानकाले जैन पंचांगके अभावसे लौकिक पंचांगानुसार वर्ताव करने में आताहै उसीमें चैत्रादि मासोंकी वृद्धि होतीहै उसी के ३० दिनोंमें दुनियांका सब व्यवहार तथा धर्म व्यवहार प्रत्यक्षपनेहोताहै इसलिये उसीके दिनोंकी गिनती निषेध नहीं होसकती है तथापि जो संक्रांति रहित मलमास केभरोसे अधिक मासके दिनोंकी गिनती निषेध करतेहै सो अपनी पूर्ण अज्ञानतासे भोले जीवोंको गच्छकदाग्रहमें गेरनेका कार्य करतेहैं क्योंकि संक्रांति रहित अधिक मास को मलमास कहा है तैसेही दो संक्रांति वाले क्षय मासको भी मलमास कहा है परन्तु अधिक मासके तथा क्षय मास के दिनोंकी गिनती बरोबर करतेहैं। तथाहि कमलाकर भट विरचित (लौकिक धर्मशास्त्र) निर्णय सिंधौनामा ग्रंथे ।

तत्र संक्षेपतःकालः षोढा—अब्दोयनमृतुर्मासः पक्षदिवस इति॥ पुनस्तत्र वक्षमाणैः श्रावणादि द्वादश मासैस्तद्वर्द्धं। मलमासेतुसति षष्ठिदिनात्मकः एको मासो द्वादश मासत्वमविरुद्धमिति॥ तथाच व्यासः षष्ट्यातु दिवसैर्मासैःकथितो बादरायणैः—इति॥ अथ मलमास क्षयमास निर्णय। अथ मल मासः तत्रैकमात्र संक्रांति रहितःसितादिश्चांद्रो मासो मल मासः एकमात्र संक्रांति राहित्यमसंक्रांतित्वेन संक्रांति द्वयत्वेनच भवतिश्चति। मल मासो द्विधा

अधिक मासः क्षयमासश्चेति । तदुक्तं काठक गृह्ये । यस्मिन् मासे न सक्राति । संक्रांति द्वयमेववामलमासः। सविज्ञेयो मासः स्यात्तु त्रयोदशः॥ तथा चोक्तं हेमाद्रि नागर खंडे । नभो वा नभस्योवा मलमासो यदा भवेत् सप्तमःपितृ पक्षस्यादन्यत्रैवतु पंचमः ॥

अब देखिये उपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंसे लौकिक शास्त्रों में अधिक मासके दिनोंकी गिनती करीहै इसलिये निषेध करने वाले गच्छकदाग्रहसे अज्ञानता करके प्रत्यक्ष मिथ्या भाषण करने वाले बनतेहैं सोतो पाठक वर्ग स्वयं विचार सकतेहैं ।

और अधिक मासको बारह मासोंसे जूदा गिनके तेरह मासोका वर्ष कहे तथा अधिक मासको जूदा न गिनके संयोगिक मासके साथ गिने तो ६० दिवसका महिना मान के बारह मासका वर्ष कहे तोभी तात्पर्यार्थसेतो दोनों तरह करके अधिक मासके दिनोंकी गिनती लौकिक शास्त्रोंमें प्रगटपने कही है इस लिये निषेध नही होसकतीहै ।

और संक्रांति रहित अधिक मासको मलमास कहा तैसेही दो सक्रांति वाले क्षयमासको भी मलमास कहाहै सो चैत्रसे आश्विन तक सात मासोंमें से हरेक अधिक मास होतेहैं तैसेही कार्तिकसे पौष तक तीनमासोंमें से हरेक मास क्षयभी होतेहै और जैसे तीसरे वर्ष अधिक मास होताहै सो प्रसिद्धहै तैसेही कालांतरमें क्षय मासभी होताहै सो लौकिक शास्त्रोंमें प्रसिद्धहै ।

औरमासवृद्धिकेअभावमें आषाढ़चौमासीसेपंचम पितृपक्ष होताहै परंतु श्रावण भाद्रपद मासकी वृद्धि होनेसे अधिक मासके दोनोंपक्षोंकी गिनती पूर्वक सप्तम पितृपक्ष लिखा है ।

और अधिक तथा क्षय संज्ञा वाले मास समुच्चयके व्यवहारमें तो संयोगिक मासके सामिल गिनेजातेहैं परंतु भिन्न भिन्न व्यवहारमें तो दोनों मासोंके दिनोंकी गिनती जूदी जूदी करनेमें आतीहै सो अधिक मास संबधी तो उपरमें तथा इसग्रन्थमें लिखनेमें आगयाहै परंतु क्षयमास संबंधी थोड़ासा लिखदिखाताहूं कि जब कार्तिक मासका क्षय होवे तब उसीके दिनोंकी गिमतीपूर्वक ओलियोंकी आश्विन पूर्णिमासे १५ दिने दीवाली तथा श्रीवीरप्रभुके निर्वाण कल्याणक तथा २० वे दिन ज्ञानपचमो और ३० वें दिन कार्तिक पूर्णिमा सो चौमासा पूरा होनेसे मुनि विहार होताहै इस तरहसे मार्गशीर्ष पौषका भी क्षय होवे तब मौन एकादशी, पौष दशमी वगैरह पर्व तथा और श्रीजिनेश्वर भगवान् के जन्मादि कल्याणकोंकी तपश्चर्यादि कार्य करनेमें आतेहैं।

अब श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक सज्जन पुरुषोंको न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि—क्षयमासके दिनोंमें दीवाली वगैरह वार्षिक पर्व किये जातेहै उसी मुजबही श्रीतपगच्छके सबी महाशय करतेहैं इसलिये क्षय मासके दिनोंकी गिनती निषेधकरनेकातो किसीभी महाशयोंने कुछभी परिश्रम न किया। और पर्युषणामें तथा पर्युषणासंबंधी मासिक डेढमासिक तपश्चर्यादि कार्योंमें अधिक मासके दिनोंकी गिनती प्रत्यक्षपने करते हुवेभी दूसरे गच्छवालोंसे द्वेषबुद्धि रखके अधिक मासकी गिनती निषेध करनेके लिये उत्सूत्र भाषणोंसे कुयुक्तियोंका संग्रह करनेका श्रीतपगच्छके अनेक महाशयोंने खूबही परिश्रम कियाहै सो तो प्रत्यक्षपने स्वगच्छाग्रहके हठवाद का नमूनाहै सो इस

बातको इस ग्रन्थके पढनेवाले सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और अधिक मासको कालचूला कहते हुए भी नपुंसक लिखते हैं सोभी श्रीअनन्ततीर्थंकरगणधरादि महाराजोंकी आशातना करनेके बरोबरहै तथा विवाहादि मुहूर्तनैमित्तिक संसारिककार्यों के लियेभी उपरमेंही हर्षभूषणजीके लेखमेंसूचना करनेमें आगई हैं।

और वीशदिनकी बात पर्युषणाके सिवाय और कार्यों में अधिकमासको प्रमाण करनेका नही दिखता है यह लिखना भी श्रीकुलमंडनसूरिजी का प्रत्यक्षमिथ्या है क्योंकि दिनों की पक्षोंकी मासोंकी गिनतीका कार्यमें, चौमासेके वर्षके युगके प्रमाणकी गिनतीका कार्यमें, क्षामणोंके कार्यमें, सामायिक प्रतिक्रमण पौषध देवपूजा उपवास शीलव्रतादि नियमोंका प्रत्याख्यानोंके गिनतीका कार्यों में चौमासी छमासी वर्षी तथा वीसस्थानकजीके और पर्युषणादि तप केदिनों की गिनतीके कार्यों में और आगमोके योग वहनादि कार्यों में, अधिक मासके दिनोंकी गिनती को प्रमाण गिननेमें आतीहै सो तो प्रत्यक्ष अनुभव की प्रसिद्ध बात है। और एकजगह अधिकमासको कालचूलालिखते हैं दूसरी जगह नपुंसक लिखते हैं तथा एक-जगह श्रीवृहत्कल्पचूर्णि श्रीनिशीथचूर्णिकेपाठोंसे 'चेव' निश्चय अधिकमासको गिनतोकरनेका लिखते हैं दूसरी जगह नही गिननेका लिखते हैं इसतरहसे बालजीवोंको भ्रममें गेरनेवाले पूर्वापरविरोधि (विसंवादी) लेखलिखते कुछभीविचार न किया सोभी कलयुगीविद्वत्ताका नमूना हैं।

और आगे फिरभी जो जैन पंचाङ्गानुसार प्राचीन कालमें अभिवर्द्धितसम्बत्सरमें वीशदिने अर्थात् श्रावणशुदी

पंचमीको ज्ञात पर्युषणा वार्षिककृत्यादिपूर्वक करनेमें आती थी, उसीको वर्षाकालकी स्थितिरूप गृहस्थी लोगोंके आगे कहने मात्रही वार्षिककृत्योंरहित ठहरानेके लिये और अभिवर्द्धितमेंभी ५० दिने भाद्रपदमें वार्षिक कृत्यों सहित पर्युषणाको ठहरानेकेलिये चूर्णिकारादि महाराजोंके अभिप्रायको समझे बिनाही उलटा विरुद्धार्थमें और अधिक मास संबंधी पूर्वापरकी सब व्याख्याके पाठोंको छोड़करके अधिकरण दोषोके तथा उपद्रवादिके संबंध वालेअधूरेपाठ लिखके फिर चंद्रसम्बत्सर में ५० दिन की तरह अभिवर्द्धितसंबत्सर में २० दिने ज्ञात पर्युषणा दिखाकरके ५० दिनकी ज्ञात पर्युषणामें ता वार्षिक कृत्य करनेको सिद्ध करतेहैं परंतु २० दिनकी ज्ञात पर्युषणाको अपनीमतिकल्पनासे गृहस्थी लोगोंके आगे वर्षास्थितिरूप ठहराकर वार्षिक कृत्योंको निषेध करतेहैं सो कदापि नहीं होसकताहै क्योंकि ५० दिनकी ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्योंकी तरह २० दिनकी ज्ञात पर्युषणामें भी वार्षिक कृत्य शास्त्रानुसार तथा युक्तिपूर्वक स्वयं सिद्ध है इसका सविस्तार निर्णय तीनों महाशयोंके लेखोंकी समीक्षामें इसही ग्रन्थके पृष्ठ १०७ से ११७ तक अच्छी तरहसे छपगया है इस लिये जो श्रीकुलमंडन सूरिजीने २० दिनकी पर्युषणाको वार्षिक कृत्यों रहित ठहरानेके लिये मास वृद्धिके अभाव संबधी पाठोंको मास वृद्धिहोती भी अधूरे अधूरे लिखके बाल जीवोंको दिखायेहै सो आत्मार्थिपनेका लक्षण नहींहै। सोता न्यायदृष्टिवाले सज्जन स्वयंविचार लेवेंगे।

और अभिवर्द्धितमें वीश दिने ज्ञात पर्युषणा वार्षिक कृत्यों पूर्वक करनेसे। प्रथम चौथे वर्ष ११। ११ मासे तथा

दूसरे पंचम वर्षे १३ । १३ मासे और तीसरे वर्षे १२ मासे वार्षिक कृत्य होनेका दिखाकर पांच वर्षोंके ६० मास श्रीकुलमंडन सूरिजी लिखतेहै सोतो श्रीअनंत तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञाकोप्रत्यक्षपने उत्थापनकरके उत्सूत्रभाषण करनेवाले बनते हैं क्योंकि अभिवर्द्धितमें वीशदिने श्रावणमें पर्युषणा करनेसे जैनशास्त्रानुसारतो प्रथम चौथे वर्षे १३ । १३ मासे और दूसरे तीसरे पंचमें वर्षे १२।१२ मासे वार्षिक कृत्य होनेका बनताहै और पांच वर्षोंके ६२ मास श्रीअनंत तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार जैनशास्त्रोंमें प्रसिद्धहै ।

और मासवृद्धिसे तेरहमासहोतेभी १२ मासके क्षामणे लिखतेहै सोभी अज्ञानताका सूचकहै क्योंकि मासवृद्धि होनेसे तेरहमास छवीशपक्षकेक्षामणे कियेजातेहै इसका निर्णय सातवे म० ले० समीक्षामें इसही ग्रन्थ के पृष्ठ ३६३ से ३७८ तक छपगयाहै सो पढनेसे सब निर्णय होजावेगा ।

और जैनशास्त्रोंमें मुख्य करके एकबातकी व्याख्या करतेहै उसीकेही अनुसार यथोचित दूसरी बातोंके लियेभी समझा जाताहै इसलिये जिन जिन शास्त्रोंमें चंद्रसंवत्सरमें ५० दिने तथा अभिवर्द्धित संवत्सरमें २० दिने ज्ञात पर्युषणा कही सो यावत् कार्तिक तक खुलासा लिखाहै जिसपर विवेक बुद्धिसे विचार किया जावेतो जैसे चंद्रसंवत्सरमें ५० दिन जहां पूरे होवे वहां स्वभावसेही भाद्रपद समजतेहैं तैसेही अभिवर्द्धित संवत्सरमें २० दिन जहां पूरे होवे वहां भी स्वभाविक रीतिसे श्रावण समजना चाहिये । और चार मासके १२० दिनका वर्षा कालमें ५० द्रिने पर्युषणा करनेसे

पिछाडी कार्तिक तक ७० दिन स्वभावसेही रहतेहै तैसेंही २० दिने पर्युषणा करनेसे भी पिछाडी कार्तिक तक १०० दिनभी स्वयं समझना चाहिये तथापि चंद्र संवत्सरमें भाद्रपदकी तरह अभिवर्द्धित संवत्सरमें श्रावणमें पर्युषणा करनेका तथा पर्युषणाके पिछाडी ७० दिनकी तरह १०० दिन रहनेका कहां कहा है, ऐसी प्रत्यक्ष अज्ञानताकी सूचक कुयुक्ति करके बाल जीवोंको भ्रमानेसे कर्म बंधके सिवाय और कुछभी लाभ नहीं होने वालाहै । क्योंकि जिन जिन शास्त्रों में चंद्रसंवत्सरमें५० दिने भाद्रपदमें पर्युषणाकरके पिछाडी ७० दिन कार्तिक तकका लिखाहै और अभिवर्द्धितमें २० दिने पर्युषणा करनेका भी लिखदियाहै उसी शास्त्र पाठोंके भावार्थ से अभिवर्द्धितमें २० दिने श्रावणमें पर्युषणा करनेका और पर्युषणा के पिछाडी १०० दिन रहनेका स्वयं सिद्धहै सोतो अल्प मतिवालेभी समझसकते हैं ।

और फिरभी २० दिनकी ज्ञात तथा निश्चय और प्रसिद्ध पर्युषणामें वार्षिक कृत्यों का निषेध करनेके लिये आषाढ पूर्णिमाकी अज्ञात तथा अनिश्चय और अप्रसिद्ध पर्युषणामें वार्षिककृत्यकरनेका दिखातेहै सोभी अज्ञानताकासूचकहै क्यों कि वर्षकी पूर्तीहुये बिना तथा अज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य कदापि नहीं होसकते हैं किन्तु वर्षकी पूर्तिहोनेसे ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य होते हैं और अधिक मास होनेसे श्रावणमें १२ मासिक वर्ष पूरा होजाता है इसीलिये श्रावणमें ज्ञातपर्युषणा करके वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादिक कार्य करनेमें आते हैं ।

और मासवृद्धि होतेभी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करने के लिये श्रीजीवाभिगमजी सूत्रका एकपदमात्र लिखदिखाया

सोतो अपनी विद्वात्ताकी हासी कराने जैसा कियाहै क्योंकि वहांतो श्रीनन्दीश्वरद्वीपाधिकारे जिन चैत्योंकी व्याख्या करके वहां चौमासीमें तथा संवत्सरीमें और श्रीजिनेश्वर भगवान्के जन्मादि कल्याणकोंमें भुवनपति वगैरह बहुत देवोंको अठाईउच्छव करनेका लिखाहै परन्तु वहां भाद्रपदकातो नाममात्र भी नहींहै सो सूत्र वृत्ति सहित छपाहुवा श्रीजीवाभिगमजीके पृष्ठ ८४३ में खुलासा पूर्वक अधिकारहै इस लिये ऐसे ऐसे पाठोंको लिखके बाल जीवोंको भ्रममें गेरनेसे तो अपने कल्पित बातकी पुष्टि कदापि नहीं हो सकतीहै सो विवेकी पाठक गणभी स्वयं विचार सकतेहैं।

और श्रीकुलमंडन सूरिजीके उपरोक्त लेखके अनुसार ही धर्मसागरजीनेभी तस्करवृत्ति करके धर्म धूर्ताईसे निजको तथा गच्छ कदाग्रही बालजीवोंको दुर्लभबोधिका कारण करनेके लिये 'तत्वतरंगिणी' ग्रन्थका नाम रखके वास्तविक में 'कुयुक्तियोंकी भ्रमजाल' बनाकर उसीमें पर्युषणा संबंधी मिथ्यात्वका कारणरूप जो लेख लिखा है जिसका निर्णय तथा 'प्रवचनपरिक्षा' नामक ग्रन्थमेंभी उत्सूत्र भाषणोंके संग्रहसे कुयुक्तियों करके पर्युषणा संबंधीजो लेख लिखा है जिसका निर्णय तो ऊपरके लेखको तथा इस ग्रन्थको विवेक बुद्धिसे पढ़नेवाले तत्वज्ञ पुरुष स्वयंही समझ लेवेंगे:—

अब पाठकगणको मेरा इतनाही कहना है कि—श्रीजैन शास्त्रोंमें अधिक मासको कालचूलाकी जो उत्तम ओपमा देते हैं उसीके दिनोंकी गिनती करनेमें आती है तथा लौकिक शास्त्रानुसार और प्रत्यक्ष पने बर्तावकी सत्ययुक्तियोंके अनुसार करकेभी अधिकमासके दिनोंकी गिनती क-

रनेमें आतीहै जिसका विस्तार पूर्वक इस ग्रन्थमें छपगया है इसलिये कालचूला वगैरहके बहाने करके कुयुक्तियों से अधिकके दिनों की गिनती निषेध करने वाले श्रीजिनेश्वर भगवानकी आज्ञाके लोपी उत्सूत्रभाषक बनते हैं, सो तो इस ग्रन्थको पढ़ने वाले सत्वज्ञ स्वयं विचार सकते हैं इसलिये श्रीजिनेश्वरभगवान्की आज्ञाके आराधन करनेकी इच्छावाले जो आत्मार्थी सज्जन होवेंगे सो तो अधिकमासके दिनोंकी गिनती निषेध करनेका संसारवृद्धिका हेतुभूत उत्सूत्र भाषणका साहस कदापि नहीं करेंगे, और भव्यजीवोंको इस ग्रन्थको पढ़ करके भी अधिकमासके निषेध करने वालोंका पक्ष ग्रहण करके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे बालजीवोंको कुयुक्तियोंके भ्रममें गेरनेका कार्य करनाभी उचित नही है और गच्छका पक्षपात छोड़कर न्याय दृष्टिसे इस ग्रन्थका अवलोकन करके अधिकमासके दिनोकी गिनती पूर्वकही पर्युषणादि धर्म व्यवहारमें वर्ताव करना सोही सम्यक्त्वधारी आत्मार्थियोंको परम उचित है इतनेपरभी जो कोई अपने अन्तर मिथ्यात्व के जोरसे अज्ञ जीवोंको भ्रमानेके लिये अधिक मासकी गिनती निषेध संबंधी कुयुक्तियोंका संग्रह करके पूर्वापरका विचार किये विनाही मिथ्यात्वका कार्य करेगा तो उसीका निवारण करनेके लिये और भव्य जीवोंके उपकारके लिये इस ग्रन्थ कारकी लेखनी तैयारही समझना।

अब पर्युषणासंबंधी लेखकी समाप्तिके अवसरमें पाठक गणको मेरा इतनाही कहना है कि-श्रीतपगच्छके विद्वान् कहलाते जोजोमहाशय-श्री श्रीअनंततीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके सिद्धान्तमें पंचांगीके अनेक प्रमाणोंका प्रत्यक्षपने

उत्थापनकरके उत्सूत्रभाषणोंसे कुयुक्तियोंके संग्रह पूर्वक अधिकमासको कालचूला वगैरहके बहानेसे निषेधकरने संबंधी-कल्पकिरणावली तथा सुखबोधिकावृत्तिवगैरहके लेखों को हरवर्षे श्रीपर्युषणापर्वके दिनोंमें बांचतेहैं जिसको गच्छकदाग्रही पक्षपाती अज्ञजीव श्रद्धापूर्वक सत्यमानतेहैं ऐसे उपदेशक तथा श्रोता श्रीजिनाज्ञाके आराधक पंचांगीकी श्रद्धावाले सम्यक्त्वी आत्मार्थी हैं ऐसा कोइभी विवेकीतत्वज्ञ तो नही कहसकेगे। क्योंकि श्रीअनंत तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंका प्रमाण कियाहुवा कालचूलाकी श्रेष्ट ओपमा वाला अधिकमासको निषेधकरने वालोंमें प्रत्यक्षपने श्रीजिनज्ञाका विराधकपना होनेसे मिथ्यात्वसिद्ध होताहै सो तत्वज्ञ स्वयं विचार सकतेहैं। इसलिये मिथ्यात्वसे संसारमें परिभ्रमण करनेका भय करने वाले तथा श्रीजिनाज्ञामुजब वर्तने की इच्छा करने वाले विवेकियोंको तो श्रीजिनज्ञा विरुद्ध उपरोक्त कार्य करना तथा उसी मुजब श्रद्धा रखना उचित नही है किंतु श्रीजिनाज्ञामुजब पर्युषणाके व्याख्यान सुनने वाले भव्यजीवोंके आगे अधिक मासकी गिनती करनेका शास्त्र प्रमाणपूर्वक सिद्धकरके दूसरे श्रावणमें वा प्रथम भाद्रपदमें श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन करना तथा दूसरोंसे करना सोही आत्महितकारीहै सो तत्वदृष्टिसे विचारना चाहियेः—

इति अधिक मासके निषेधक उत्सूत्र भाषी कुयुक्तियों करनेवाले सातवें महाशयजी वगैरहोंके पर्युषणा सम्बन्धि अज्ञ जीवोंको मिथ्यात्वमें गेरनेके लेखोंकी संक्षिप्त समीक्षा समाप्ता ॥



॥ओम्॥

॥ नमः श्रीवर्द्धमानाय ॥

॥ अथ षट् कल्याणक निर्णयः ॥

अब श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंका निर्णय करके तत्वाभिलाषी पुरुषोंकोदिखाताहूं सो जैसे हरवर्षपर्युषणाके व्याख्यान में वर्तमानिक श्रीतपगच्छके अनेक महाशय अधिकमासकी गिनती निषेध करनेकेलिये उत्सूत्रभाषणोंसे कुयुक्तियों करके भोलेजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका परिश्रम करतेहुवे संसारवृद्धिका भय नही रखतेहैं और मिथ्या बातको सत्य ठहरानेके लिये खंडन मंडन करके वादविवादसे धर्मकार्योंमें विघ्नकारक झगडा बढ़ाकर कर्मबंधकेहेतु करतेहै तैसेही श्री वीरप्रभुके छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लियेभी पंचांगीके अनेक शास्त्रोंके पाठोंको प्रत्यक्षपने उत्थापन करके उत्सूत्र भाषणोंसे कुयुक्तियोंका संग्रहकरके बालजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका कार्यकरके संसारवृद्धिकाहेतुभूत महान् अनर्थ करतेहैं और धर्मकार्योंमें विघ्नकारक खंडनमंडन करके अपनी कल्पित बातकोजमानेकेलिये पर्युषणाके व्याख्यानमें शासन नायकश्रीवीरप्रभुकीखास अवज्ञाकरके शासनप्रेमियोंकेदिलमें बड़ा रंज उत्पन्नकरतेहुये अपना तथा अपने गच्छकदाग्रहियोंका सम्यक्त्वको नष्टकरनेका उद्यमकरतेहैं जिन्होंके उपगारकेलिये तथा भव्यजीवोंको सत्यबातमें निःसंदेह होनेके लिये और श्रीजिनाज्ञा इच्छुक तत्वाभिलाषी पुरुषोंको सत्या सत्यका निर्णय दिखानेके लिये पंचांगीके अनेक शास्त्रप्रमाणपूर्वक न्यायकी युक्तियोंके अनुसार श्रीवीरप्रभुके छ

कल्याणकों संबंधी संक्षिप्तसे इसजगह लिखके दिखाताहूं जिसमें प्रथमतो इसीहीग्रन्थके पृष्ठ २४१ वेमें न्यायरत्नजीको तरफके (श्रीवीरप्रभुके कल्यणकोंके) लेख संबंधो जो सूचना करीथी जिसका निर्णय यहां दिखाताहू सो न्यायरत्न विद्यासागरका विशेषणको धारणकरनेवाले श्रोशांतिविजयजीने अपनेगच्छका पक्षपातसे शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें सन् १९०८ के सप्टेम्बरमासकी२७ वीं तारीख वीरसंवत् २४३४ आश्विनशुदी २ का जैनपत्रके २४ वा अंकके चौथेपृष्ठमें कल्याणक संबंधी जो लेख लिखा है सो नीचेंमुजब जानो:—

[पंचाशक सूत्रके मूलपाठमें पांच कल्याणक तीर्थंकर महावीर स्वामीके फरमाये है, पंचाशक सूत्र पूर्वधारी हरिभद्रसूरिजीका बनाया हुवा है और अभयदेव–सूरिजीने उसपर टीका किइ है खरतर गछवालोंको पुछना चाहिये, गर्भापहारको अगर कल्याणिक मानते हो अछेरा किसको मानते हो ? दश अछेरेमें गर्भापहारको एकतरहका अछेरा कहा फिर कल्याणक कैसे हो सकता है:=पांच कल्याणककी रुबुसीका पाठ पंचाशक सूत्रका नीचे मुजब है।

आसाढ सुद्धछठी–चेतहसुद्धतेरसीचेव, मगसिरकिन्हदसमी वइसाहेसुद्ध दसमीय, कत्तियकिन्हे चरिमा-गब्भाइदिणा जहक्कमंएते, हत्थुतर जोएणं-चउरोतहसातिणाचरिमो ॥ यहपाठपूवधारी आचार्यमहाराज हरिभद्रसूरिजीका फरमाया हुवा है। अब अभयदेव सूरिजीकी फरमाई हुई टीक का पाठ सुनिये (व्याख्या) आषाढमासे शुक्लपक्षस्य षष्टि तिथिरेकं दिनंएवचैत्रमासेतथेति समुच्चये शुक्ल त्रयोदश्येवेति द्वितीय, चेत्य वधारणे-तथा मार्गशीर्षकृष्ण दशमीति-तृती-

यं, वैशाख शुद्ध दशमीति चतुर्थ च शब्दश्चसमुच्चयार्थः—कार्तिक कृष्णेचर्मो पंचदशीति पंचमं-एतानि इति आह-गर्भादिदिनानि १ गर्भ २ जन्म ३ निःक्रमण ४ ज्ञान ५ निर्वाणदिवना यथाक्रमं क्रमेणैव-त.न्यनंतरोक्ता न्येषां च मध्ये हस्तोत्तर-योगेम हस्तश्त्तरोयामां हस्तोपलक्षिता वा उत्तरा हस्तो-त्तरा फाल्गुनन्येताभिःयोगःसंबधश्चेति हस्तोत्तरा योगस्तेन कणंभुत्तेन चत्वारि आद्यानिदिनानि भवंति तथेतिसमुच्चये स्वातिना स्वातिनक्षत्रेणयुक्तश्चरमोति चरमकल्याणिकं दिनं, इति गाथा द्वयार्थः—देखिये ! इसमें अभयदेवसूरिजीने खास तीर्थंकर महावीरस्वामी पांच कल्याणक फरमाये अगर जैन शास्त्रोंमें छ कल्याणक होते तो नव अगशास्त्रको टीका करने वाले महाराज अभयदेवसूरिजी खुद पांच कल्याणक क्यों बयान करते]

न्यायरत्नजी श्रीशांतिविजयजी के उपरकेलेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाताहू कि-हेसज्जन पुरुषोदेखो न्याय रत्नजीने उपरकेलेखमें सूत्रकार तथा वृत्तिकार महाराजके अ-भिप्रायके विरुद्धार्थमें बालजीवोंको भ्रममें गेरनेके लिये पूर्वा परके सविस्तारवाले पाठको छोड़कर विनासंबधका अधूरा पाठ भोलेजीवोको दिखाकर श्रीवीरप्रभुके पांचकल्याणकोंको स्थापन करके अच्छेरेकी भांतिसे छ कल्याणकों का निषेध किया सो उत्सूत्रभाषणरूपहै क्योंकि अच्छेरा है तोभी कल्याणक-त्वमें गिनकरके श्री.वीरप्रभुके छ कल्याणक श्रीतीर्थंकर गणधर-पूर्वधरादि महाराजोंने अनेकशास्त्रोंमें खुलासापूर्वक कहेहैं सोही दिखाताहू-यथा;—

श्रीसीमन्धरस्वामीजी भगवान्ने श्रीआचारांगजी सूत्रकी

चूलिकामें १, श्रीशीलांगाचार्यजी कृत श्रीआचारांगजी सूत्रके चूलिकाकी बृहद्वृत्तिमें २, श्रीजिनहंस सूरिजीकृत तद् दीपिका वृत्तिमें ३, श्रीगणधर महाराजकृत श्रीस्थानांगजीसूत्रमें ४, श्रीखरतरगच्छनायक श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजीकृत श्रीस्थानांगजीकीवृत्तिमें ५, तथा श्रीपूर्वाचार्यजीकृत दूसरी वृत्तिमें ६, श्रीभद्रबाहुस्वामीजीकृत श्रीदशाश्रुतस्कंधमें ७, श्रीपूर्वधर पूर्वाचार्यजीकृत श्रीदशाश्रुतस्कंधकी (पर्युषणाकल्प की) चूर्णमें ८, श्रीब्रह्मर्षिजीकृत उपरोक्त सूत्र की वृत्तिमें ९ श्रीभद्रबाहुस्वामीजी कृत श्रीआवश्यकसूत्रकी निर्युक्तिमें १०, श्रीजिनदासगणिमहत्तराचार्यजी कृत श्रीआवश्यक चूर्णिमें ११, श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत तत्सूत्रकी बृहद्वृत्तिमें १२ तथा श्रीतिलकाचार्यजीकृत लघुवृत्तिमें १३, श्री भद्रबाहुस्वामीजी कृत श्रीकल्पसूत्रमें १४, श्रीजैनतत्वादर्शके बारहवें परिच्छेदमें श्रीतपगच्छकी पट्टावली लिखी है जिसमें ४० वें पट्टमें श्रीनेमिचंद्रसूरिजीको लिखे हैं जिन्होंके शिष्य श्रीमुनिचंद्रसूरिजीहुए इनकेशिष्य श्रीरत्नसिंहसूरिजी हुवे और इनके शिष्य श्रीविनयचंद्रजी कृत श्रीकल्पसूत्रके निरुक्तमें १५, श्रीचद्रगच्छके श्रीदेवसेनगणिजीके शिष्य श्रीपृथ्वीचंद्रजीकृत श्रीकल्पसूत्रके टिप्पणमें १६, श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरिजीकृत श्रीकल्पसूत्रकी संदेह विषौषधि वृत्ति में १७, तथा श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत श्रीकल्पद्रुम कलिका वृत्तिमें १८, और श्रीसमयसुन्दरजी कृत श्रीकल्पकल्पलता वृत्तिमें १९, मल्लधारी श्रीहेमचंद्रसूरिजीके शिष्य श्री विजय सिंहसूरिजी कृत श्रीकल्पावबोधिनी वृत्तिमें २१, श्री तपगच्छके श्रीकुलमंडनसूरिजीकृत श्रीकल्पावचूरिमें २२, तथा

श्रीसोमसुंदर सूरिजीकृत श्रीकल्पांतर वाच्यमें २३-तथा प्रसिद्ध तीनो महाशयोंकृत (श्रीकल्पकिरणावली दीपिका सुखबोधिका रून) तीनोंवृत्तिओंमें २६, श्रीअंचलगच्छके श्रीउदयसागरजी कृत श्रीकल्पावचूरिरूप वृत्तिमें २७, कलिकाल सर्वज्ञ विरुद्धारक श्रीहेमचंद्राचार्यजी कृत श्रीत्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रके दशवा पर्व श्रीवीरचरित्रमें २८, श्रीचद्रतिलकोपाध्यायजी कृत श्रीअभयकुमार चरित्रमें २९, श्रीपूर्वाचार्योंके-बमाये श्रीवीरप्रभुके प्राकृत तीनों चरित्रोंमें ३२, श्रीजयतिलक सूरिजी कृत श्रीसुलसाचरित्रमें ३३, श्रीजिनपति सूरिजी कृत श्रीसंघपट्टक बृहद्वृत्तिमें ३४, तथा श्रीसमाचारीमें ३५, श्रीसमयसुंदरजी कृत श्रीसमाचारीशतकमें ३६, श्रीतपगच्छ के श्रीपूर्वाचार्यों के बनाये श्रीकल्पसूत्रके चारों बालावबोधोंमें ४०, श्रीसंघविजयजी कृत श्रीकल्पप्रदीपिका नामा वृत्ति में ४१, श्रीसहजकीर्तिजीकृत श्रीकल्पमंजरीवृत्ति में ४२, श्री हीरविजय सूरिजी के संतानिय श्री शांतिचंद्रगणिजी कृत श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र की वृत्ति में ४३, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने तथा श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छादिके पूर्वाचार्योंने श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकों की खुलासा पूर्वक व्याख्याकरी हैं सो छ कल्याणक संबंधी सब पाठ यहां लिखनेसे बहुत विस्तार हो जावेगा इसलिये थोड़ेसे शास्त्रोंके पाठ इस जगह पाठक गणको निःसंदेह होनेके लिये लिखकर दिखाताहूं ।

१-श्रीचौदहपूर्वधर श्रुत केवलि श्रीभद्रबाहुस्वामीजीने श्रीकल्पसूत्रकी आदिमेंही श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंकी व्याख्याकी है जिसको श्रीखरतरगच्छ वाले तथा श्रीतपग-

च्छादि वाले सब कोई वार्षिक पर्व श्रीपर्युषणामें वांचते हैं सो पाठ नीचे मुजब जानो यथा—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे होत्था, तंजहा; हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भंवक्कते ॥१॥ हत्थुत्तराहिं गब्भाओगब्भ साहरिए ॥२॥ हत्थुत्तराहिं जाए ॥३॥ हत्थुत्तराहिं मुंडेभवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥४॥ हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवर नाण दंसणे समुपन्ने ॥५॥ साइणा परिनिव्वुडे भयवं ॥६॥

भावार्थः—तिसकाल तिस समयके विषे श्रमण भगवान् श्री महावीरस्वामीके पांच कल्याणक हस्तोतरा (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्रमें हुवे वही दिखाते है—दशमें देवलोकके पुष्पोतर नामा विमानसे चवकरके जंबूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें माहण कुंड ग्रामके ऋषभदत ब्राह्मणकी देवानंदानामा स्त्रीकीकूक्षिमें हस्तोतरा नक्षत्रमें आषाढशुदी ६ को उत्पन्न हुवे सो प्रथम च्यवन कल्याणक ॥ तथा हस्तोत्तरानक्षत्रमें इंद्रकी आज्ञासे हरिनैगमेंषिदेवने देवानंदाकी कूक्षिसे संहरण करके क्षत्रियकुंड नगरके सिद्धार्थराजाकी त्रिशला देवीपट्टराणीकी कूक्षिमें आश्विन वदी १३ को स्थापित किये सो गर्भापहार रूप दूसरा च्यवन कल्याणक॥ तथा हस्तोतरा नक्षत्रमें चैत्रसुदी १३ को त्रिशला देवीकी कुक्षिसे जन्महुवा सो तीसरा जन्म कल्याणक ॥ तथा हस्तोत्तरा नक्षत्रमें मार्गशीर्ष सुदी १० के दिन गृहस्थावास छोड़कर द्रव्यभावसे मुंडहुवे अणगार पणा-पाये अर्थात् श्रीवीरप्रभूने दीक्षाली सो चौथा दीक्षा कल्याणक ॥ तथा हस्तोत्तरा नक्षत्रमें वैशाख शुदी १३ के दिन अनन्त

अर्थके विषयरूप अनुत्तर प्रधान निर्व्याघात सर्वप्रकारके आव-रण रहित संपूर्ण वर (प्रधान) केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्तहुआ सो पंचम ज्ञान कल्याणक ॥ और स्वाति नक्षत्रमें कार्तिक अमावस्याको श्रीवीरप्रभु निर्वाण पाये अर्थात् मोक्ष पधारे सो छठा मोक्ष कल्याणक ॥

अब देखिये चौदहपूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामीजीने श्रीवीरप्रभुके छः कल्याणक खुलासा पूर्वक कहे हैं जिसको नही मानने तथा माननेवालोंको दूषित ठहराना-सोतो मिथ्यात्वके कारणसे भोलेजीवोंको सत्यबातपरसे श्रद्धा भ्रष्टकरके मूलसूत्ररूपशास्त्र पाठको प्रत्यक्ष उत्थापन करना सो उत्सूत्र भाषण करनेवालोंहीका काम है ।

२—तथा श्रीवडगच्छके श्रीविनयचंद्रसूरिजी कृत श्रीकल्प-सूत्रके निरुक्तका छ कल्याणक सम्बन्धी पाठ नीचे मुजब है यथा—

तेणं कालेणं मित्यादि, ते णंत्ति प्राकृत शैलीवशात् तस्मिन् काले, तस्मिन् समये, यः पूर्व तीर्थंकरैः श्री वीरस्य च्यवनादि हेतुर्ज्ञातः कथितश्च, यस्मिन् समये तीर्थंकर च्यवनं स एव समय उच्यते । समयः कालनिर्द्धारणार्थो यतः कालो वर्णोपि, तथा हस्तउत्तरो यासां ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यो, बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्षं तस्यां विभोश्च्यवनं, गर्भाद्गर्भे संक्रांतिः, जन्म, व्रतं, केवलं, चाभवत्, निर्वृतिः स्वातौ, इति ॥

३—और श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत श्रीकल्प-सूत्रकी संदेहविषौषधि वृत्तिका पाठ नीचे मुजब जानो यथा;—

वर्त्तमान तीर्थाधिपतित्वेनासन्नोपकारित्वात् प्रथमं श्रीवर्द्धमानस्वामिनश्चरितमाहुः ॥ श्रीभद्रबाहु स्वामी पादाः ॥

तेणं कालेणमित्यादि । तेणंति प्राकृत शैली वशात् तस्मिन-काले वर्त्तमानावसर्पिण्या श्चतुर्थारक लक्षणे, एवं तस्मिन् समये तद्विशेषे, यत्रासौ भगवान् देवानंदायाः कुक्षौदशम देवलोकगत पुष्पोत्तर विमानादवतीर्णः,णंशब्दो वाक्यालंकारे, अथवा सप्तम्यर्थे आर्षत्वात् तृतीया एवं हेतौवा । ततस्तेन कालेन तेनच समयेन हेतुभूतेनेतिव्याख्येयं, अथ तच्छब्दस्य पूर्वपरामर्शित्वादत्र किं परा मृश्यते, इतिचेत् उच्यते । यौका-लसमयौ भगवता श्रीऋषभस्वामिनाऽन्यैश्च तीर्थंकरैः श्रीवर्द्ध-मानस्य षण्णां च्यवनादिनां कल्याणकानां हेतुत्वेन कथितौ तावेवेतिब्रूमः । श्रमणस्तपस्वी भगवान् समग्रैश्वर्ययुक्तःमहावीरः कर्म्म शत्रुविजयादन्वर्थनामा चरमजिनः पच हत्थुत्तरेति,हस्त-स्यैवोत्तरस्यांदिशिवर्त्तमानत्वात् हस्तोत्तरा, हस्तउत्तरोयासां ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः । बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्षं, पंचसु चयवन,गर्भापहार,जन्म,दीक्षा,ज्ञानकल्याणकेषु,हस्ता-त्तरा यस्य स,तथा च्यवनादीनि पंचोत्तराफाल्गुनी जातानि, निर्वाणस्य स्वाती संभूतत्वादिति भावः, होत्थत्ति अभवन्

४–और श्रीतपगच्छके श्रीकुलमंडनसूरिजी कृत श्रीकल्पा-वचूरिकापाठ नीचे मुजब जानो यथा–

वर्त्तमान तीर्थाधिपतित्वेनासन्नोपकारित्वात्प्रथमं श्रीवर्द्ध-मानस्वामिनश्चरितमूचुःश्रीभद्रबाहुस्वामिपादाः । तेणंकाले-णमित्यादि तेणति प्राकृतशैलीवशात् तस्मिन्काले वर्त्तमाना-वसर्पिण्या श्चतुर्थारक लक्षणे, एव, तस्मिन् समये तद्विशेषे, यत्रासौ भगवान् देवानन्दायाःकुक्षौदशमदेवलोकगतपुष्पोत्तर-विमानादवतीर्णः । ण शब्दोवाक्यालंकारे । अथवा सप्तम्यर्थे आर्षत्वात् तृतीया एव हेतौवा, ततस्तेन कालेन तेनच समये

न हेतुभूतेनेति व्याख्येयं। अथ तच्छब्दस्य पूर्वपरामर्शित्वादत्र किं परामृश्यते, इतिचेत् उच्यते। यौकालसमयौ भगवताश्रीऋषभदेवस्वामीना अन्यैश्च तीर्थंकरैः श्रीवर्द्धमानस्य षसां च्यवनादीनां कल्याणकानां हेतुत्वेन कथितौ तावेवेति ब्रूमः। श्रमणस्तपस्वी समग्रैश्वर्ययुक्तः भगवान् महावीरः कर्म्मशत्रु विजयादन्वर्थनामा चरमजिनः। पंचहत्थुत्तरेत्ति, हस्तस्यैवोत्तरस्यां दिशिवर्त्तमानत्वात् हस्तोत्तरा, हस्तउत्तरो यासां ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः । बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्षं, पंचसु च्यवन १, गर्भापहार २, जन्म ३, दीक्षा ४, ज्ञान ५ कल्याणकेषु, हस्तोत्तरा यस्य स । तथा च्यवनादीनि पंचोत्तराफाल्गुनीषु जातानि । निर्वाणस्य स्वातौ। स जातत्वादिति भावः होत्थत्ति अभवन् ॥

५—औरभी श्रीतपगच्छके श्रीसोमसुंदरसूरिजी वा अन्याचार्यजी कृत श्रीकल्पांतरवाच्यका पाठ नीचे मुजब जानो यथा—

तेणकालेणमित्यादि, तेणंति—प्राकृत शैलीवशात् तस्मिन् काले चतुर्थारकलक्षणे, तस्मिन् समये,यत्रासौ श्रमणो भगवान् महावीरः देवानंदायाः कुक्षौ दशमदेवलोकगत प्रधान पुष्पोत्तर विमानादवतीर्णः ॥ पंचकल्याणकानि उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्रे जातानि, तद्यथा,श्रीवर्द्धमानस्वामी हस्तोत्तरायां उत्तरा फाल्गुन्यां च्युतः आगतः समुत्पन्नः ।१। हस्तोत्तरायां उत्तरा फाल्गुन्यां देवानन्दायाः गर्भात् कुक्षेः शक्रादेशात् त्रिशला कुक्षौ संक्रामितः ।२। हस्तोत्तरायां उत्तरा फाल्गुन्यां भगवान् जातः, ।३। हस्तोत्तरायां उत्तराफाल्गुन्यां द्रव्यभाव मुंडितो भूत्वा, आगारात् गृहवासात् निष्क्रम्य अनगारितां

साधुनां प्रव्रजितः प्रकर्षेणगतः ।४। हस्तोत्तरायां उत्तरा फाल्गुन्यां अनतं अनंतार्थ विषयत्वात्, अनुत्तमं सर्वोत्तमत्वात्, निर्व्याघातं कटकुड्यादिष्वप्रतिहततत्वात्, निरावरणं क्षायिकत्वात्, कृत्स्नं सकलार्थग्राहकत्वात्, प्रतिपूर्ण सकलं स्वांश समन्वितं पूर्णचंद्रमंडलमिव, केवलमसहायं, अतएव वर ज्ञान दर्शनं चेति । तत्र ज्ञानं विशेषावबोधकरूप, दर्शनं सामान्यावबोधकरूपं, समुत्पन्नं, समुत्पन्ने ।५। स्वाति नक्षत्रेण परिनिर्वृतः निर्वाण प्राप्तो भगवान् मोक्षंगत इत्यर्थः ।६। एतानि भगवतो वर्द्धमानस्य षट् कल्याणकानि कथितानि ॥

६—औरभी श्रीतपगच्छके श्रीविनयविजयजीकृत श्रीकल्पसूत्र की सुखबोधिका वृत्तिका पाठ नीचे मुजबहै—यथा,—

तत्र प्रथमाधिकारे जिनचरित्रेषु आसन्नोपकारितया प्रथमं श्रीवीरचरितं वर्णयन्तः, श्रीभद्रबाहु स्वामिनो जघन्य मध्यम वाचनात्मक प्रथमं सूत्रंरचयंति,'तेणंकालेणमित्यादितः परिनिव्वुडे भयवमिति पर्यन्त' तेण कालेणंति, तस्मिन्काले अवसर्पिणी चतुर्थारक पर्यंत लक्षणे, णइति सर्वत्र वाक्यालंकारार्थः । तेण समयेणंति,विशिष्टः कालविभागः समयो यः श्रीवर्द्धमानस्वामिनः षण्णां च्यवनादि वस्तूनां कारणं बभूव, तस्मिन् समये, समणे भगवं महावीरेत्ति, श्रमणस्तपोनिरतः भगवंति भगवान्, अर्कयोनि वर्जित द्वादश भगशब्दार्थवान्, यदाहुः ॥ भगोर्क ज्ञान महात्म्यं, यशो वैराग्य मुक्तिषु ॥ रूप वीर्य प्रयत्नेच्छा, श्रीधर्म्मैश्वर्ययोनिषु ॥ १ ॥

अत्र आद्यंत्यौ अर्थौ वर्जनीयौ, ननु अंत्योर्थस्तु वर्ज्य एव, परं अर्कःकथं वर्ज्यः सत्यं उपमानतयाअर्को भवति परं मत्प्रत्ययांतत्वेन अर्कवान् इत्यर्थो न लगतीति वर्जितः ।

महावीरेत्ति, कर्मवैरि पराभव समर्थः, श्रीवर्द्धमान स्वामीत्यर्थः स, पंचहत्थुत्तरेत्ति, हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः गणनया ताभ्यो हस्तस्य उत्तरत्वात् ताः, पंचसु स्थानेषु यस्य स पंच हस्तोत्तरो भगवान् होत्थत्ति अभवत् ॥

पंच हस्तोत्तरत्व भगवतो मध्यम वाचनया दर्शयति ॥ हत्थुत्तराहिं चुएत्ति, उत्तरा फाल्गुनीषु च्युतः प्राणताभिधान दशम देवलोकात्, चइत्तागब्भं वक्कंतेत्ति, च्युत्वागर्भे उत्पन्नः । १ । हत्थुत्तराहिं गब्भाओगब्भंसाहरिएत्ति, उत्तरा फाल्गुनीषु गर्भात् गर्भे संहृतः, देवा नंदागर्भात्त्रिशलागर्भे मुक्त इत्यर्थः ।२। हत्थुत्तराहिं जाएत्ति, उत्तराफाल्गुनीषु जातः ।३। हत्थुत्तराहिं मुंडेभविता अगाराओ अणगारिअं पव्वइएत्ति, उत्तराफाल्गुनीषु मुंडोभूत्वा, तत्रद्रव्यतो मुंडः केशलुंचनेन, भावतो मुंडो रागद्वेषाभावेन, आगारात् गृहात् निष्क्रम्येति शेषः अनगारित्तां साधुतां, पव्वइएत्ति, प्रतिपन्नः ।४। तथा उत्तराफाल्गुनीषु अणंतेत्ति, अनंतवस्तू विषयं, अनुत्तरेत्ति, अनुपमं, निव्वाघाएति, निर्व्याघातं भित्तिकटादिभिरस्खलितं, निरावरणेत्ति, समस्तावरणरहितं, कसिणेत्ति, कृत्स्नं सर्वपर्यायोपेत, सर्ववस्तू ज्ञापकं, पडिपुणेति, परिपूर्णं सर्वावयव संपन्नं, एवं विधं यत् वरं प्रधानं केवलज्ञानं केवल दर्शनं च तत् समुपन्नेत्ति, उत्पन्नं उत्तरा फाल्गुनीषु प्राप्तं ।५। साइणापरिनिव्वुडे भयवं इति स्वाति नक्षत्रे मोक्षंगतो भगवान् ।६।

७—औरभी श्रीपार्श्वचंद्रगच्छके श्रीब्रह्मर्षिजी कृत श्रीदशाश्रुत स्कंध सूत्रकी वृत्तिका पाठ नीचे मुजब है:—

वर्तमान तीर्थाधिपतित्वेनासन्नोपकारित्वात् आदौ

श्रीवीरचरितमुच्यते तच्चसूत्रानुगमेसति भवति तच्चेदं, तेणं कालेणं इत्यादि, तेणत्ति प्राकृत शैली वशात् तस्मिन् काले वर्तमानावसर्पिण्याश्चतुर्थारकलक्षणे, एवं तस्मिन् समये तद्विशेषे, यत्रासौ भगवान् देवानंदायाः कुक्षौ दशमदेवलोकागत पुष्पोत्तर नाम्नो विमानादवतीर्णः, णमिति शब्दो वाक्यालंकारार्थो, यथा इमाणं पुढवी इत्यादा विति द्वितीयोपिण शब्दो एवमेव, अथवा सप्तम्यर्थे आर्षत्वात् तृतीया एव हेतौवा, ततस्तेन कालेन तेन च समयेन हेतु भूते नेतिव्याख्येयम्, अथतच्छब्दस्य पूर्वपरामर्शितत्वादत्र किं परामृश्यते, इतिचेत्, उच्यते, यौकालसमयौ भगवता श्रीऋषभस्वामिना अन्यैश्च तीर्थंकरैः श्रीवर्द्धमानस्य षण्णां च्यवनादीना हेतुत्वेन कथितौ तावेवेतिक्रमः, श्रमणस्तपस्वी भगवान् समग्रैश्वर्यादिगुणयुक्तो महावीरः कर्मशत्रु जयाद न्वर्थनामा चरम जिनः, पंच हत्थुत्तरेत्ति हस्तस्यैवोत्तरस्यां दिशिवर्तमानत्वात् हस्तोत्तरा,हस्तउत्तरोयासां ता हस्तोत्तरा उत्तराफलगुन्यः, बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्षं, पंचसु च्यवन, गर्भा पहार, जन्म, दीक्षा, ज्ञान कल्याणकेषु, हस्तोत्तरायस्य स तथा च्यवनादीनि पंचोत्तरा फाल्गुनीषु जातानि,निर्वाणस्यच स्वातौ संभूतत्वा दितिभावः होत्थति अभवत् ॥

अब उपरोक्त चारोंही गच्छोंके विद्वानों कृत ६ पाठों का संक्षिप्त भावार्थः—कहतेहैं सो पर्वाधिराज श्रीपर्युषण पर्वमें मांगलिक के लिये श्रीजिनेश्वर महाराजोंके चरित्र कथन करने में आते हैं जिसमें प्रथम वर्तमान शासन नायक नजीक उपकारी जानकर श्रीभद्रबाहुस्वामीजीने श्रीकल्पसूत्रकी आदिमेंही, तेणं कालेणं तेणं समयेणं इत्यादि,

व्याख्यासे जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट वाचना पूर्वक श्रीवर्द्ध-मान स्वामिका चरित्र कथन कियाहै सोही यहां दिखाते हैं कि—तिसकालके विषे, याने—वर्त्तमान अवसर्पिणीके चोथे आरेमें, ऐसेही तिस समयके विषे सो समय कालमें विशेष भेद नहीं है और इसमें 'तेणं' शब्दके णं शब्द को प्राकृत शैली मुजब वाक्यालङ्कारमें शोभा रूप समझना अथवा सप्तमीके अर्थमें, या—आर्षत्वात् तृतीया, अर्थात् चौदह पूर्वधरश्रुतके-वलि महाराजकी सूत्र रचना होनेसे तृतीयाका भी अर्थ किया जाता है इसलिये तिसकाल और तिस समयको कहा है सो हेतु भूत करके है ऐसा समझना और 'तत्' 'यत्' इन दोनों शब्दोंका पूर्वापरमें अनेका नित्य नियम है सो 'तत्, शब्दकी तो उपरमें व्याख्या होगइहै इसलिये अब यहां 'यत्' शब्दकी व्याख्या करते हु कि जिसकाल और जिस समयको भगवान् श्रीऋषभदेवस्वामि आदि तीर्थंकर महाराजोंने श्रीवर्द्धमान स्वामीके च्यवनादि छ कल्याणकोंके होनेका हेतु रूप कहा है उसीकाल और उसी समयको यहां भी कहाहै सो उसीकाल और उसी समयमें 'समणे भगव महावीरे' सो श्रमण भगवान् महावीर, याने-सर्वप्रकारके कर्मोंको क्षय करनेके लिये हमेशा तपश्चर्या करने वाले, तथा सर्व प्रकारके ऐश्वर्यसें युक्त, और भगवान् सो 'भग' शब्दके ज्ञान महात्म्यादि उपरके श्लोकमें कहे हुये १२ अर्थ गुणयुक्त भगवान् श्रीमहावीर-स्वामी सो कर्मरूपी शत्रुओंके विजय करने वाले होनेसे गुण निष्पन्न सार्थक नामके चरम तीर्थंकर हुएहैं इनहीं महा-राजके पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमे हुए हैं, याने हस्त नक्षत्रहीहै उत्तरमें जिसके ऐसा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र समझना

क्योंकि चौथे आरेमें जैनपञ्चाङ्ग की रीति मुजब युगका ३७ वा महिना अर्थात् तीसरा अभिवर्द्धितसंवत्सरमें आषाढ़ सुदी ६ के दिन सूर्यके उदयमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था सो सूर्योदयसे ३२। घटीका पर्यंत व्यतीत होजाने बाद रात्रिको भगवान्के च्यवन समय हस्तनक्षत्र आगया था इसलिये हस्तोत्तरा कहा गया परन्तु सूर्योदयके व्यवहारसे उत्तराफाल्गुनी कहा जाता है इसलिये व्याख्याकारोंने हस्तोत्तराके तात्पर्यार्थसे उत्तराफाल्गुनीके नामसे खुलासा पूर्वक व्याख्या करी है सो 'उत्तराफाल्गुन्यः' इसमें बहुवचन है सो बहुत कल्याणकोंकी अपेक्षासे दिया गया है, सोही बहुत कल्याणक दिखातेहै–प्रथम च्यवन, तथा गर्भापहाररूप दूसरा च्यवन, तीसरा जन्म, चौथा दीक्षा, पांचवा ज्ञान इन, पांचों कल्याणकोंमें हस्तोत्तरा (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्र समझना और छठा स्वातिनक्षत्रमें भगवान्का मोक्ष पधारना हुआ यही श्रीवर्द्धमान स्वामिजीके छ कल्याणक कहेजातेहै सो विवेक बुद्धिसे समझने चाहिये।

और उपरकी व्याख्याओंके पाठोंमें श्रीवीरप्रभुके च्यवनादि छः कल्याणकोंकी खुलासा पूर्वकव्याख्याकरीहै जिसमें श्रीविनय विजयजीने च्यवनादि छःकल्याणकोंके शब्दकी जगह पर च्यवनादि छः वस्तु लिखी, तथा उपरकी व्याख्याओंमें च्यवन गर्भापहारादिसे केवल पर्यंत पांच कल्याणकों को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें कहेहैं उसी जगह परभी विनय विजयजीने च्यवन गर्भापहारादिसे केवल पर्यंत पांच कल्याणकोंके शब्दकी जगह पर पांच स्थान लिखेहैं सो उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें श्रीवीरप्रभुके पांच वस्तु हुइ कहो, या,

पांच स्थान हुये कहो अथवा पांच कल्याणक हुये कहो, इन तीनों शब्दों का तात्पर्यार्थ एकही होताहै इस बातका विशेष निर्णय आगे करनेमें आवेगा ॥

और स्वाति नक्षत्रमें भगवान् का मोक्षहुवा इस तरह से गिनती मुजब श्रीवीरप्रभु के छः कल्याणक पंचांगीके अनेक शास्त्रानुसार प्रत्यक्षपने सिद्धहै इस लिये छः कल्याणकों को निषेध करने वाले गच्छकदाग्रही उत्सूत्र भाषणसे और कुयुक्तियोंसे बाल जीवों की सत्य बातपरसे श्रद्धाभ्रष्ट करके मिथ्यात्व बढ़ाते हुये संसार वृद्धिका हेतु करतेहै सो न्याय दृष्टि से विवेकी पुरुषों को विचार करना चाहिये, तथा गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेके लिये कुयुक्तियों करके भोले जीवोंको भ्रमानेमें आतेहै जिसका भी निर्णय आगे करनेमें आवेगा।

और गणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामीजीने श्रीस्थानांगजी सूत्रके पंचमें स्थानांग के प्रथम उद्देशमें श्रीपद्म प्रभुजी श्रीसुविधिनाथजी श्रीशीतलनाथजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजों के च्यवनादि पांच पांच कल्याणकों की व्याख्या करीहै उसीमें भी श्रीवीरप्रभुके कल्याणकाधिकारे गर्भापहार को कल्याणकत्वपनेमें खुलासा पूर्वक गिनाहै जिसका भी पाठ यहां पाठक वर्गको निःसंदेह होने के लिये दिखाताहूं, सो सूत्र वृत्ति सहित (जैनागम संग्रह के भाग तीसरेमें) छपाहुवा श्रीस्थानांगजी सूत्र के पृष्ठ ३६३ । ३६४ का पाठ नीचे मुजब जानो यथा;—

पउमप्पभेणं अरहा पंचचित्ते होत्था, तंजहा, चित्ताहिं चुए चइत्ता गब्भंवक्कंते, चित्ताहिं जाए, चित्ताहिं मुंडे

भवि१ अगाराओ अणगारियं पव्वइए, चित्ताहिं अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवल वर नाण दंसणे समुप्पन्ने, चित्ताहिं परिनिव्वुए।१। पुप्फदंतेणं अरहा पंच मूले होत्था, मूलेणं चुए चइत्ता गब्भंवक्कंते, एवं चेव एएणं अभिलावेणं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ पउमप्पभस्स चित्ता, मूले पुणहोइ पुप्फदंतस्स। पुव्वासाढा सीयलस्स, उत्तरा विमलस्स भद्दवया।।१।। रेवइय अणंतजिणो, पूसो धम्मस्स-संतिणो भरणी। कुंथुस्स कत्तियाओ, अरस्स तहा रेवईओय।।२।। मुणिसुव्वयस्स सवणो, आसिणि नमिणो तह नेमिणो चित्ता। पासस्स विसाहाओ, पंच हत्थुत्तरे वीरो।।३।। समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे होत्था, तंजहा-हत्थुत्तराहिं चुएचइत्ता गब्भंवक्कंते, हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरइए, हत्थुत्तराहिं जाए, हत्थुत्तराहिं मुंडेभवित्ता जाव पव्वइए, हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे जाव केवल वर नाण दंसणे समुप्पन्ने, ।।इति।।

भावार्थः—छठे श्रीपद्मप्रभुजी अरिहंतके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए सो कहतेहैं। चित्रा नक्षत्रमें देवलोकसे च्यव करके माताकी कुक्षिमें उत्पन्नहुवे, चित्रा नत्रमें जन्म लिया, चित्रा नक्षत्रमें गृहस्थावास त्यागके अणगार पणापाये दीक्षाली, चित्रा नक्षत्रमें अनन्त, सर्वसे उत्तम उत्कृष्ट, व्याघात रहित, आवरणरहित, कृत्स्न-सर्वअर्थके जानने वाला, प्रतिपूर्ण सम्पूर्ण चंद्रमंडलकीतरह प्रकाशमान, प्रधान केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुवा, चित्रा नक्षत्रमें मोक्ष पधारे १, तथा नवमें श्रीसुविधिनाथजी अरिहंतके पांच कल्याणक मूल नक्षत्र में हुए, सो मूल नक्षत्रमें देवलोकसे च्यव करके माताकी कुक्षिमें

उत्पन्न हुए ॥ इसी तरहसे श्रीपद्मप्रभुजीके पांच कल्याणकों के सूत्र मुजबही श्रीसुविधनाथजी आदि सबी तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंकी खुलासा पूर्वक व्याख्या समझ लेना सो श्रीतीर्थंकर महाराजोंके नाम पूर्वक कल्याणकोंके नक्षत्र मात्रही यहां दिखातेहैं। छठे श्रीपद्म प्रभुजी महाराजके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए १, और श्रीसुविधीनाथजीके पांच कल्याणक मूल नक्षत्रमें हुए २, श्रीशीतलनाथजीके पांच कल्याणक पूर्वाषाढा नक्षत्रमें हुए ३, श्रीविमलनाथजीके पांच कल्याणक उत्तराभाद्रपदमें हुए ४, श्रीअनंत नाथजीके पांच कल्याणक रेवती नक्षत्रमें हुए ५, श्रीधर्मनाथजीके पांच कल्याणक पुष्य नक्षत्रमें हुए ६, श्रीशांतिनाथजीके पांच कल्याणक भरणी नक्षत्रमें हुए ७, श्रीकुंथुनाथजीके पांच कल्याणक कृतिका नक्षत्रमेंहुए ८, श्रीअरनाथजीके पांच कल्याणकरेवती नक्षत्रमें हुए ९, श्रीमुनि सुव्रत स्वामीजीके पांचकल्याणक श्रवणनक्षत्रमेंहुए १०, श्रीनमिनाथजीके पांच कल्याणक अश्विनी नक्षत्रमें हुए ११, श्रीनेमनाथजीके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए १२, श्रीपार्श्वनाथजीके पांच कल्याणक विशाखा नक्षत्रमें हुए १३, श्रीमहावीर स्वामीजीके पांच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें हुए १४, सो फिरभी मत्रकार खुलासे कहतेहैं कि, श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामीके पांच कल्याणक उत्तरा फाल्गुनीमें हुए सो उत्तराफाल्गुनी में देवलोकसे च्यव करके देवानंदा माताकी कुक्षिमें उत्पन्न हुए १, उत्तराफाल्गुनीमें त्रिशला माताकी कुक्षिमें स्थापन हुवा २, उसी नक्षत्रमें जन्महुवा ३, उसी नक्षत्रमें दीक्षा ली ४, उसी नक्षत्रमें अनंत सबसे उत्तम उत्कृष्ट यावत् केवल वर ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुवा ५,

और श्रीअभयदेवसूरिजी कृत उपरोक्त सूत्रकी वृत्तिका पाठ नीचे मुजब है, यथा,—

केवल्यधिकारात्तीर्थंकर सूत्राणि चतुर्दश कण्ठ्यानि चैतानि, नवरं पद्मप्रभ ऋषभादिषु षट्सु पंचसु च्यवनादि दिनेषु चित्रा नक्षत्र विशेषो यस्य स पचचित्र श्चित्रा-भिरिति रूढ्या बहुवचनं च्यूतोऽवतीर्णः, उपरिमोप-रिमग्रैवेयकादेकत्रिंशत् सागरोपमस्थितिकात् च्युतः च्युत्वा च 'गब्भंति' गर्भे कूक्षौव्युत्क्रांत उत्पन्नः, कौशांब्यां धराभिधान महाराज भार्यायाः सुसीमा नामिकायाः माघमासबहुल षष्ट्यां, जातो गर्भ निर्गमनं कार्तिक बहुलद्वादश्यां चेति, तथा मूंडो भूत्वा केश कषायाद्यपेक्षया आगारान्निष्क्रम्यानगारितां श्रमणतां प्रव्रजितो गतोऽनगारतया च प्रव्रजितः कार्तिक शुद्ध त्रयोदश्यां, तथा अनंतं पर्यायानंतत्वादनुत्तरं, सर्वज्ञा नोत्तमत्वात्, निर्व्याघातमप्रतिपातितत्वान्निरावरणं सर्वथा स्वावरणक्षयात्, कटकुड्याद्यावरणाभावाद्वा, कृत्स्नं सकल पदार्थ विषयत्वात्, परिपूर्णं स्वावयवापेक्षयाऽखंडपौर्णमासी चंद्रबिम्बवत्, किमित्याह केवल ज्ञानांतर सहायत्वात् संशु-द्धत्वाद्वा, अतएव वर प्रधानं केवलवरं ज्ञानं च विशेषाव भासं, दर्शनं च सामान्यावभासं, ज्ञानदर्शनं तच्चतच्चेति के-वलवर ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नं जातं चैत्रशुद्ध पंचदश्यां, तथा परिनिर्वृतो निर्वाणं गतः मार्गशीर्षबहुलैकादश्यां, आदेशांतरेण फाल्गुन बहुल चतुर्थ्यामिति। एवं चेवेति पद्म-प्रभसूत्रमिव पुष्पदंतसूत्रमप्यध्येतव्यमेवमनंतरोक्त स्वरूपेण एतेनानंतरत्वात्प्रत्यक्षेणाभिलापेन सूत्रपाठेनेसाविति अः सूत्र संग्रहणिगाथा अनुगंतव्या, अनुसर्तव्याः, शेष सूत्राभि-

लाप निष्पादनार्थं ॥ पउमप्पभस्सेत्यादि ॥ तत्र पद्म
प्रभस्य चित्रा नक्षत्रे च्यवनादिषु पंचसुस्थानकेषु भवतीत्यादि
गाथाक्षरार्थो वक्तव्यः सूत्राभिलापस्त्वाद्य सूत्रद्वयस्य साक्षाद्द-
र्शितएव इतरेषांत्वेवं। सीयलेणं अरहा पंच पुव्वा साढे होत्था,
तंजहा,पुव्वासाढाहिंचुएचइत्ता गब्भं वक्कंते,पुव्वासाढाहिं जाए,
इत्यादि ॥ एवं सर्वाण्यपीति, व्याख्यात्वेवं, पुष्पदंतो नवम
तीर्थंकर आनतकल्पादेकोनविंशति सागरोपम स्थितिकात् फा-
ल्गुन बहुलनवम्यां मूलनक्षत्रे च्युतः च्युत्वा च काकंदीनगर्यां सु-
ग्रीवराजभार्यायाः रामाभिधानायाः गर्भे व्युत्क्रांतो, मूल नक्षत्रे
मार्गशीर्ष बहुल पंचम्यां जात स्तथा मूलएव ज्येष्टशुद्धप्रतिपदि
म तांतरेण मार्गशीर्षबहुलषष्ट्यांनिष्क्रांतःतथा मूलएव कार्तिक
शुद्धतृतीयायां केवलज्ञानं उत्पन्न,तथाऽश्वयूजःशुद्ध नवम्यामादे-
शांतरेण वैशाख बहुलषष्ट्यां निर्वृतइति, तथा शीतलो दशम
जिनः प्राणतकल्पाद्विंशति सागरोपमस्थितिकात् वैशाख बहुल
षष्ट्यां पूर्वाषाढानक्षत्रे च्युतः च्युत्वाच भद्दिलपुरे दृढरथनर-
पति भार्यायानन्दायाः गर्भतया व्युत्क्रांत तथा पूर्वाषाढा स्वेव-
माघ बहुलद्वादश्यांजातः तथा पूर्वाषाढा स्वेवमाघ बहुल द्वाद-
श्यां निष्क्रांतः तथा पूर्वाषाढा स्वेव पौषस्य शुद्धे मतांतरेण
बहुलपक्षे चतुर्दश्यां ज्ञानमुत्पन्नं तथा तत्रैव नक्षत्रे श्रावणशुद्ध
पंचम्यां मतांतरेण श्रावण बहुल द्वितीयायां निर्वृत इति, एवं
गाथ त्रयोक्तानां शेषाणा मपि सूत्राणां प्रथमानुयोगपदानुसा
सरेणोपयुज्य व्याख्याकार्या नवरं चतुर्दश सूत्रेऽभिलाप विशेषो-
स्तीति तद्दर्शनार्थमाह ॥ समणे इत्यादि ॥ हस्तोपलक्षिता उत्तरा
हस्तोत्तरा हस्तो वा उत्तरो यासां ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः
पंचसु च्यवन गर्भहरणादिषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा गर्भात्

गर्भस्थानात् 'गभ्भं'ति' गर्भे गर्भ स्थानांतरे संहृतो नीतो, निर्वृतस्तु स्वाति नक्षत्रे कार्तिकामावास्यामिति ॥

अब देखिये उपरके पाठमें वृत्तिकार महाराजने केवली के अधिकारमें १४ तीर्थंकर महाराजों के कल्याणोंको संबधी जो सूत्रहैं सो सरलता पूर्वक खुलासा कहदिये है, जिसमें विशेष करके श्रीऋषभदेवस्वामि आदि तीर्थंकर महाराजोंमें छठे श्रीपद्मप्रभुजीहै सो इन्ही महाराजके च्यवनादि पांच कल्याणक चित्रानक्षत्रमें हुवे हैं सो चित्रानक्षत्रमें उपरके ९ ग्रैवकसे, ३१ सागरोपमका देव संम्बन्धी आयुपूर्ण करके वहांसे च्यवे और च्यवकरके कौशंबी नगरीके धरनामा राजाकी सुसीमा नामा पट्टराणीकी कुक्षिमें माघवदी ६ को उत्पन्नहुवे १, और कार्तिक वदी १२ को चित्रानक्षत्रमें जन्मलिया २, तथा इसके बाद कार्तिक शुदी १३ के दिन चित्रानक्षत्रमें दीक्षाली ३, तथा चैत्रीपूर्णिमाको चित्रानक्षत्रमें केवलज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्नहुवा ४, और मार्गशीर्ष वदी ११ को वा मतांतर करके फाल्गुन वदी ४ को चित्रानक्षत्रमें मोक्षहुवा ५, इसही तरह से श्रीपद्मप्रभुजीके पांच कल्याणकोंकी व्याख्याके अनुसार ही उपरोक्त मूलपाठकी तीन गाथाओंमें कहे मुजब सबी (१४) तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकों संबंधी भिन्न भिन्न तिथि मास नक्षत्र पूर्वक खुलासा व्याख्या समझ लेना सो उपरमें सूत्रके मूलपाठका भावार्थमें सबी तीर्थंकर महाराजोंके नाम कल्याणक नक्षत्र पूर्वक लिखेगयेहै इस लिये यहां दूसरी वेर नही लिखतेहै परन्तु चौदहवें सूत्रमें इतना विशेष है कि श्री वीरप्रभुके पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें कहे हैं सो हस्तके उपलक्षित, याने उत्तरा फाल्गुनी

नक्षत्रके हस्त नक्षत्र उपलक्षित नजीक समीपमें है इस लिये हस्तोत्तरा अथवा हस्त नक्षत्र उत्तरमें है जिसके एसा हस्तोत्तरा सो उतराफाल्गुनी नक्षत्र समझना सो च्यवन गर्भापहारादि श्रीवीरप्रभुके पांचोंकल्याणकोंमें हस्तोत्तरा उतराफाल्गुनी नक्ष आयाहै और छठा मोक्ष कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें कार्तिक अमावस्याको हुआ है।

उपरोक्त पाठमें चौदह (१४) तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंकी व्याख्या करते श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजने श्रीतीर्थंकर महाराजोंके पूर्व भवका देव लोकस्थान, आयुस्थिति, तथा च्यवनादि कल्याणकोंके मास तिथि नक्षत्र और नगरीस्थान मातापिताके नामादि विस्तार पूर्वक खुलासा करके दिखाया है, तैसेही श्रीमहावीरस्वामीके पांचों कल्याणकोंकी खुलासा पूर्वक व्याख्याके साथ छठा मोक्ष कल्याणक भी कार्त्तिक अमावस्याको स्वातिनक्षत्रमें होने का खुलासा लिख दिया है, और 'कल्याणक, तथा 'स्थान, यह दोनों शब्द पर्यायवाची एकार्थके सूचक है इसका विशेष निर्णय शास्त्रोंके प्रमाण पूर्वक तथा युक्तिसहित आगे करनेमें आवेगा।

और भी श्रीसीमंदर स्वामिजी भगवान्ने भी खास श्रीमहावीर प्रभुके केवल ज्ञान पर्यंत पांच कल्याणक हस्तोत्तरामें तथा छठा मोक्ष कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें खुलासा पूर्वक कहा है जिसका पाठ भी तो छपा हुआ श्रीआचारांगजी सूत्रकी चूलिकामें प्रसिद्ध है सो श्रीकल्पसूत्रका मूलपाठ ऊपरमें छपा है उसीतरहका श्रीसीमंधर स्वामिजीका भी कथन करा हुआ पाठ समझ लेना।

अब इस जगह श्रीजिनाज्ञाके इच्छक सत्यबातको ग्रहण करनेवाले निष्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंको न्याय पूर्वक विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि उपरोक्त शास्त्रोंके पाठों मुजब श्रीऋषभदेवस्वामि आदि तीर्थंकर महाराज तथा वर्तमान कालें विद्यमान श्रीसीमंधरस्वामिजी महाराज और गणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामिजी तथा चौदह पूर्वधर श्रीभद्रबाहुस्वामिजी आदि पूर्वधर महाराज और श्रीवडगच्छ, श्रीचन्द्रगच्छ, श्रीखरतरगच्छ श्रीतपगच्छादि सबीगच्छोंके विद्वान् पुरुषोंने अनेक शास्त्रोंमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकों की खुलासा पूर्वक व्याख्या करी हैं सोतो उपरोक्त शास्त्रोंके प्रमाणोंसे प्रगट दिखती है तथापि बड़ेही अफसोसकी बात है कि विद्यासागर जैनश्वेतांबर धर्मोपदेष्टाकी उपाधि धारण करने वाले न्यायरत्नजी श्रीशांतिविजयजी तथा और भी वर्तमानिक गच्छकदाग्रही विद्वान् नाम धराते भी श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणकोंका निषेध करते हैं सोतो पंचांगी के अनेक शास्त्रोंके पाठोंको प्रत्यक्षपने उत्थापन करके गच्छ कदाग्रही दृष्टिरागी तथा विवेक शून्यहोकर अंध परंपरामें चलनेवाले बालजीवोंकी श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंकी कही हुई छ कल्याणकोंकी सत्य बात परसे श्रद्धा भृष्ट करनेका कारण करते हुए उपरोक्त महाराजोंकी आज्ञा उत्थापनरूप उत्सूत्रभाषणसे कितना संसार बढ़ावेंगे सोतो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने ।

और अनेकशास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक छ कल्याणक लिखे हैं तिसपर भी उसीका न्यायरत्नजी निषेध करते हैं सोभी कलयुगी विद्वत्ताका नमूना मालूम होता है सोविवेकी पाठक गण स्वयं विचार लेवेगें,—

और फिर न्यायरत्नजीने छ कल्याणकोंका निषेध करके पांच कल्याणकोंको स्थापन करनेके लिये श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीपंचाशकजी सूत्रके मूलपाठका तथा श्रीखरतरगच्छ नायक सुप्रसिद्ध श्रीअभयदेव सूरिजी कृत तद्वृत्तिके पाठका पूर्वापरके संबंध वाला सविस्तार युक्त सब पाठको छोड़ करके दोनों शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायके विरुद्धार्थमें तथा पूर्वापरके संबंध रहित बिचमें का अधूरा पाठ लिखकर बाल जीवों कोदिखाके अभिनिवेशिक मिथ्यात्ववाली अपनीविद्वत्ता की चातुराईसे मुग्धजीवोंको भ्रममें गेरे है, और शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें बिना संबंधका अधूरा पाठ भोलेजीवों को दिखानेसे उत्सूत्रभाषणरूप मिथ्यात्वका कारण किया है उसीका निवारण करनेके लिये दोनों शास्त्रकार महाराजों के अभिप्राय सहित पूर्वापरके संबंधवाले सब पाठोंको इस जगह दिखाता हूं सो श्रीहरिभद्रसूरिजीकृत उपरोक्त श्रीपंचाशकजी सूत्रमें तीर्थ यात्राधिकार संबंधीपृष्ठ १३५।१३६ का पाठ नीचे मुजब है. यथा—

पंच महाकल्लाणा सव्वेसिं जिणाणं होंति णियमेण। भुवणच्छेरय भूया, कल्लाण फलाय जीवाणं॥३०॥ गब्भे जम्मेय तहा णिक्खमणेचेव णाण णिव्वाणे। भुवण गुरूण जिणाणं, कल्लाणा होंति णायव्वा॥३१॥ तेसुय दिणेसुधण्णा देविंदाइ करिंति भत्तिणया। जिण जत्ताइ विहाणा कल्लाणं अप्पणो चेव॥३२॥ इयते दिणा पसत्था ता सेसेहिंपि तेसु कायव्वं। जिण जत्ताइ सहरिसं तेय इमेण वद्धमाणस्स ॥३३॥ आसाढसुद्धछट्ठीचेत्ते तहसुद्धतेरसी चेव। मग्गसिर किण्ह दशमी वइसाहे सुद्धदसमीय ॥३४॥ कत्तियकिण्हे चरिमा गब्भाइदिणा जहाक्कमं एते हत्थुत्तरजोगेणं

चउरो तह सातिणा ऋरिमो॥ ३५ ॥ अहिगय तित्थ विहाया भवंति णिदंसिया इमे तस्स । सेसाणवि एवंविय णियणिय ति त्थेसु विण्णेया ॥३६॥ तित्थगरे बहुमाणे अब्भासो तहय जीय क- प्पस्स। देविं दाइ अणुगिती गंभीर परूवणालोए ॥३७॥ व ण्णोय पवयणस्स इयजत्ताएजिणाण णियमेण । मग्गाणुसारि भावो जायइ एत्तोच्चिय विसुद्धो ॥ ३८ ॥

अब श्रीअभयदेव सूरिजी कृत उपरोक्त सूत्रकी वृत्तिका पाठ दिखाता हूं सो पृष्ठ १३५ से १३६ तक का पाठ नीचे मुजबहै, यथा,—

निज समये स्वकीयावसरे रूढिगम्ये अनुरूपम् औचित्येन कर्तव्या विधेयाः कदेत्याह जिनानामर्हतां कल्याण दिवसेषु, पंच महाकल्याणी प्रतिबद्ध दिनेष्वपीति ॥ कल्याणान्येव स्वरूपतः फलत श्राह, पंच गाहा, गब्भेगाहा, व्याख्या-पंचेति पंचैव महा कल्याणानि परमश्रेयांसि सर्वेषां सकल काल- निखिल नर लोक भाविनां जिनानामर्हतां भवंति नियमे- नावश्यं भावेन, तथा वस्तु स्वभाव त्वात्, भुवनाश्चर्य भूतानि निखिल भुवनाद्भुत भूतानि त्रिभुवनजनानंदहेतुत्वात्, तथा कल्याणफलानि च निश्रेयस साधनानि, च समुच्चये, जीवा- नांप्राणिनामिति,गर्भे,गर्भाधाने, जन्म,उत्पत्तौ, च शब्दः समु- च्चये, तथेति वाक्योपक्षेपे निष्क्रमणे अगारवासान्निर्गमे, चेवेति समुच्चयावधारणार्थावुत्तरत्र सम्भंत्स्येते ज्ञान निर्वाणे समाहारद्वंद्वत्वात् केवलज्ञान निर्वृत्योरेवच, केषां गर्भादिष्वीत्याह, भुवनगुरूणां जगज्ज्येष्ठानां जिनानामर्हतां किमित्याह, कल्याणानि स्वनिःश्रेयांसि भवन्ति वर्त्तन्ते ज्ञात- व्यानि ज्ञेयानीति गाथाद्वयार्थः। ३०।३१। ततश्चतेसु गाहा,

व्याख्या-तेसुयत्ति तेषुच, तेषुपुनर्दिनेषुदिवसेषु येषु गर्भादयो बभूवुर्धन्या, धर्मधनलब्धारः पुण्यभाज इत्यर्थः । देवेन्द्रादयः सुराः सुरेन्द्र प्रभृतयः कुर्वंति विदधति भक्तिमंतो बहुमान-नम्राः किमित्याह, जिनयात्राद्यर्हदुत्सवपूजास्नात्रप्रभृतीनि, कुत इत्याह विधानाद्विधिना वा जिनयात्रादि विधानानि किं भूतानि जिनयात्रादीनीत्याह, कल्याणं स्वश्रेयस कस्ये-त्याह, आत्मनः स्वस्य चैव शब्दस्य समुच्चयार्थत्वेनपरेषां चेति गाथार्थः ।३२। यत एवं इयंगाहा, व्याख्या-इत्यतो हेतोः पूर्वोक्तजीवानां कल्याण फलत्वादि लक्षणात्तेयइति येषुजिन गर्भाधानादयो भवन्ति, दिना दिवसाः दिनशब्दः पुल्लिंगो-स्ति प्रशस्तः श्रेयांस्ततः, किमित्याह, ता इति यस्मादेवं तस्मात् शेषैरपि देवेन्द्रादि व्यतिरिक्तैर्मनुष्यैरपि न केवल-मिन्द्रादिभिरेवेत्यपि शब्दार्थः, तेषु गर्भादि कल्याणक दिनेषु कर्त्तव्यं विधेयं जिनयात्रादि वीतरागोत्सव पूजाप्र-भृतिकं वस्तु सहर्षं सप्रमोदं यथा भवति, कानि च तानि दिनानीत्यस्यां जिज्ञासायां, सर्वजिन सम्बन्धिनां तेषां वक्तु मशक्यत्वाद्वर्त्तमान तीर्थाधिपतित्वेन प्रत्यासन्नत्वादेकस्यैव महावीरस्य तानि विवक्षुराह, तेयत्ति तानि पुनर्गर्भादि दिनानिइमानि, इमानिवक्षमाणानि वर्द्धमानस्य महावीर जिनस्य भवन्तीति गाथार्थः ॥ ३३ ॥ तान्येवाह, आसाढ़ गाहा, कत्तिय गाहा, व्याख्या-आषाढ़ शुद्धषष्ठी आषाढ़मासे शुक्लपक्षस्यषष्ठीतिथिरित्येकं दिनमेवचैत्रमासे तथेति समुच्चये, शुद्धत्रयोदश्यामेवेति द्वितीयं, चैवेत्यऽवधारणे, तथा मार्गशीर्ष कृष्ण दशमीति तृतीयं, वैशाखशुद्धदशमीति चतुर्थं, च शब्दः समुच्चयार्थः, कार्त्तिक कृष्णेचरमापंचदशीति पंचमं, एतानि

किमित्याह गर्भादि दिनानि । गर्भ, जन्म, निष्क्रमण, ज्ञान, निर्वाण दिवसा, यथाक्रमं क्रमेणैवेतान्यन्तरोक्ता न्येषांच· मध्ये हस्तोत्तर योगेन हस्त उत्तरोयासां हस्तोप लक्षिता वा उत्तरा हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः ताभिर्योगः सम्बन्धश्चेति हस्तोत्तरा योगस्तेनकरणभुतेन चत्वार्याद्यानि दिनानि भवंति, तथेति समुच्चये, स्वातिना स्वाति नक्षत्रेण युक्तश्चरमोत्ति चरम कल्याणक दिनमिति प्राकृतत्वादिति गाथाद्वयार्थः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अथ किमिति महावीरस्यैवैतानि दर्शितानी त्यत्राह, अहिगय गाहा, व्याख्या–अधिकृत तीर्थ विधाता वर्द्धमान प्रवचन कर्ता भगवान्महावीर इति हेतो र्निदर्शिता न्युक्तानि इमानि कल्याणक दिनानि तस्यवर्द्धमान जिनस्य, अथ शेषाणांतान्यतिदिशन्नाह, शेषाणामपि वर्द्धमानस्यैवऋष- भादीनामपि वर्तमानावसर्पिणी भरत क्षेत्रापेक्षया एवमेवेह तीर्थे वर्द्धमानस्येव निज निज तीर्थेषु स्वकीय स्वकीय प्रवचना वसरेषु विज्ञेयानि ज्ञातव्यानि, मुख्यवृत्या विधेयतयेति, इह च यान्येव गर्भादि दिनानि जिनानां, तान्येव सर्व जम्बूद्वीप भारतानामृषभादिजिनानां तान्येव सर्व भार- तानां सर्वैरावतानांच यान्येवच एतेषामस्यामपसर्पिण्याम् तान्येवच व्यत्ययेनोत्सर्पिण्यामपीति गाथार्थः । ।३६ ॥ अथ किमेवं कल्याणकेषु जिनयात्राविधीयते, इत्याह, तित्थ गाहा, वण्णेय गाहा, व्याख्या–तीर्थकरे जिनविषये बहुमानं पक्षपातस्तदिदं दिनं यत्र भगवान् अजनीत्यादिविकल्पतः कृतोभवतीत्ति, सर्वत्र गम्य इति यात्रये इत्यनेन योगः, तथेति वाक्योपक्षेपार्थोऽत्रद्रष्टव्य अभ्यासोभ्यसनं चशब्दः समुच्चये, जीतकल्पस्य पूर्व पुरुषाचरित्रलक्षणाचारस्य, तथा देवेन्द्रा-

द्युकृति देवाधिप देवदानवविभव प्रभृत्याचारानुकरणं, तथा गंभीर प्ररूपणा, गंभीरंसाभिप्रायमिदं यात्राविधानं तथा विध मित्यस्यार्थस्य प्ररूपणा प्रकासना गंभीर प्ररूपणा कृता भवतीति तथा लोकेजनमध्ये वर्णःप्रसिद्धिर्जायतइतियोगः, चशब्दः समुच्चये कस्य प्रवचनस्य जिनशासनस्य दीर्घत्वं प्राकृतत्वादिति यात्रया अनंतरोक्तविधानोत्सवेन क्रियमाणयेति गम्यं, केषां जिनानां वीतरागाणां नियमेन नियोगेन एत्तोच्चियत्ति यतएव कल्याणक यात्राया तीर्थंकर बहुमानादिकं कृतं भवत्यत एव हेतोः मार्गानुसारिभावो मोक्षपथानुकुलाध्यवसाय आगमानुसारी वा जायते भवत्यसन् किंभूतो विशुद्धोऽनवद्यः सत्वाविसुद्धोऽसौ जायते विशुद्ध्यतीत्यर्थः । इति गाथा द्वयार्थः ॥३७ ॥ ३८ ॥

ऊपरके दोनों पाठों का संक्षिप्त भावार्थ कहते हैं कि—सब १५ कर्मभूमी मनुष्य क्षेत्रमें सर्व कालमें होनेवाले सर्व श्रीतीर्थंकर महाराजों के परम मंगलकारी पांच पांच महाकल्याणक होतेहैं सो अनादि कालसे श्रीतीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच वस्तु, याने—कल्याणक होनेका स्वभाव होनेसे नियम करके अवश्य होतेहैं सो सर्व भुवने, याने—१४ राज लोकमें सबको अद्भुत आश्चर्य उत्पन्न करने वाले तथा तीन जगतके सर्वजीवोंको सुखरूप आनंद उत्पन्न कारक होनेसे विशेष श्रेयके साधनरूप कल्याण फलके देनेवालेहैं सो तीन भुवनके गुरु जगत् पूज्य श्रीजिनेश्वर भगवान् तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति, और निर्वाण इस तरहसे पांच पांच कल्याणक होतेहैं सो अपने आराधन करनेवाले जनोंको श्रेय कारीहै ऐसा जानना

और अपनी आत्माको पुण्यके भंडाररूप धन्य माननेवाले तथा धर्मरूप धनको प्राप्त करनेवाले और भक्तिवंत बहुमान पूर्वक नम्रहुएहै शरीर जिन्होंके ऐसे देवता मनुष्य और इंद्रादिकोंके जैसे बढते भावहोवे वैसे हर्ष सहित विधिपूर्वक श्रीजिनेश्वर भगवानोंके च्यवनादि होनेवाले पांचों कल्याणकोंके दिनोंमें जिन यात्रा सो श्रीवीतराग भगवान् का उत्सव तथा पूजाआदि कार्य अपनी तथा दूसरोंकीआत्मा कल्याणके लिये करतेहैं उन्हीकल्याणकोंके दिनोंको जाननेकी इच्छा वालोंके लिये सबी श्रीजिनेश्वर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंके दिनोंको यहां दिखानेका महान् कार्य करनेमें तो ग्रन्थकार समर्थ नहीं होनेसे उसीका नमूनारूप वर्तमान शासनके नायक तथा नजीक उपगारी तीर्थंकर होनेसे इन्हीं एक श्रीवर्द्धमान स्वामीजीके पांच कल्याणकोंके दिनोंको दिखातेहै यथा—प्रथम आषाढ शुदी ६ को च्यवन, दूसरा चैत्रशुदी १३ को जन्म, तीसरा मार्गशीर्ष वदी १० को दीक्षा, चौथा वैशाखशुदी १३ को केवल, और पांचमा कार्तिक अमावश्याको मोक्ष सो इसही तरहके श्रीमहावीर स्वामीके पांच कल्याणकोंके मुजबही वर्तमान अवसर्पिणी की अपेक्षासे श्रीऋषभदेव स्वामि आदि २३ श्रीतीर्थंकर महाराजोंके भी पांच पांच कल्याणक समझलेना सो मुख्य वृत्ति करके एक तीर्थंकर महाराजके च्यवनादि पांच कल्याणक दिखायेहैं उसी मुजबही पांचों भरतक्षेत्रोंमें तथा पांचों ऐरावर्त क्षेत्रोंमें और पांचों महाविदेह क्षेत्रोंमें सर्व तीर्थंकर महाराजोंके निज निज तीर्थ, याने अपने अपने शासनमें पांच पांच कल्याणक समझलेना औरऐसाही उत्सर्पिणिमें अवस-

र्पिणीमें होनेवाले सबी तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणक समझ लेने और उन्हीं कल्याणकोंके दिनोंमें विशेष करके तीर्थयात्रा करनी उसीमें जिन दिने भगवान् के जन्मादि कल्याणक हुए होवे उसीकी भावनासे अनुराग पूर्वक निजको हितकारी होनेसे वारंवार स्तुति वगैरह करना सो इन्द्रादिकोंकी तरह आत्मार्थियोंका मुख्य कर्तव्य है और उसी यात्रा विधानका उपदेश करना तथा पूर्वोक्त कल्याणकोंको यात्रामें श्रीतीर्थंकर महाराजोंकी भक्ति करनेसे मोक्ष प्राप्तिका कारण रूप सम्यक्त्व निर्मल होता है ।

अब इस जगह नयगर्भित जैन शास्त्रोंके तात्पर्यार्थको जानने वाले तत्वज्ञ पुरुषोंको न्याय पूर्वक विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि सबी कर्मभूमी १५ मनुष्य क्षेत्रोंमें सब कालके सबी तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंके दिनोंकी अपेक्षा संबंधी व्यवहारनय करके श्रीमहावीर स्वामीके पांच कल्याणक दिखाकरके उसी मूजब ही व्यवहार नयसे सबी तीर्थंकरोंके पांच पांच कल्याणकोंको समझ लेनेकी ऊपरके पाठमें सूचना दी है इसलिये सबी तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंके बहुत अपेक्षा संबन्धी व्यवहारनयके आगे पीछेके सब पाठको छोड़ करके शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायके विरुद्धार्थमें पूर्वापरके सम्बन्ध बिनाके अधूरे पाठसे बाल जीवोंको श्रीमहावीर स्वामीके पांच कल्याणक दिखा करके निश्चयनयके छ कल्याणकोंका निषेध किया सो कदापि नहीं हो सकता है तथापि न्यायरत्नजीने किया सो अज्ञानता या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वताका कारण मालूम होता है क्योंकि श्रीजैन शास्त्रोंमें बहुत अपेक्षा संबंधी व्यवहार नयकी

बातें लिखनेके समय उसीमें निश्चय नय करके अल्प बातकी भिन्नता होवे उसीको नहीं लिखते हैं इसलिये बहुत अपेक्षा संबंधी व्यवहार नयकी बातको पकड़ करके कदाग्रहसे अन्य शास्त्रोंमें अल्प भिन्नता वाली निश्चय नयकी बातको खुलासे लिखी होते भी उसीका निषेध करनेसे उत्सूत्र भाषणरूप मिथ्यात्वके दूषणकी प्राप्ति होती है, जैसे कि श्रीतीर्थंकर भगवान्की माता प्रथम स्वप्नमें हस्थी देखे १,पुरुष तीर्थंकर होवे २, श्रीतीर्थंकर महाराजका ९ मास और ७॥ दिने जन्म होवे ३, मनुष्य गतिसे फिर मनुष्य होकर चक्रवर्ती नहीं होवे ४, तथा चक्रवर्तीसे तीर्थंकर के सिवाय अधिक बल अन्य मनुष्यमें नहीं होवे ५, दीक्षा समय तीर्थंकर महाराज पांच मुष्टी लोच करे ६,पांच सौ धनुष्यके शरीरवाले दोमुनिओंसे अधिक १ समयमें मोक्ष नहीं जावे ७, श्रीतीर्थंकर महाराजके केवल ज्ञानकी प्राप्तिके समय प्रथम देशनामें चतुर्विध संघकी स्थापना होवे ८, तथा सुमेरु कदापि चलायमान नहीं होवे ९, और पर्याप्ता अपर्याप्ता एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्वी होवे १० इत्यादि अनेक बातें बहुत अपेक्षा संबंधी व्यवहार नयसे शास्त्रकारोंने लिखी हैं परन्तु श्रीमहावीर स्वामीकी माताने प्रथम स्वप्नमें सिंहको देखा तथा श्रीआदिनाथस्वामिकी माताने प्रथम स्वप्ने वृषभको देखा १, श्रीमल्लीनाथजी स्त्री पने तीर्थंकर हुए २, बारहवे भगवान्का ८ मास और २० दिने तथा सातवें भगवान्का ९ मास और १९ दिने जन्म हुआ ३,श्रीवीर प्रभुका जीव २२ वें भवे मनुष्य होकर फिर २३ वें भवे महाविदेह क्षेत्रे मनुष्यपनमें चक्रवर्ति हुआ ४,श्रीबाहुबलजीमें भरत चक्रवर्तिसे अधिक बल हुआ ५, श्रीआदिनाथ स्वामिजीने दीक्षा समय

चार मुष्टी लोच किया ६, श्रीआदिनाथ स्वामी पांचसौ धनुष्यके शरीर वाले १ समयमें १०८ मुनिओंके साथ मोक्ष पधारे ७, श्रीवीर प्रभुकी दूसरी देशनामें संघस्थापना हुई ८, तथा जन्म समय श्रीमहावीर स्वामीने मेरुको कंपाया ९, और अपर्याप्तएकेंद्रिय जीवोंको श्रीकर्मग्रंथमें सम्यक्त्वी कहे १० इत्यादि अनेक बातें अल्प अपेक्षा संबंधी भी निश्चय नय करके शास्त्रोंमें प्रगट पने देखनेमें आती हैं जिस पर भी कोई अज्ञानी कदाग्रहसे बहुल अपेक्षा वाली व्यवहार नयकी बातोंके पाठोंको बाल जीवोंके आगे दिखाकर अल्प अपेक्षा वाली निश्चय नयकी उपरोक्त बातोंको निषेध करके भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेका उद्यम करे तो उसीको श्रीजिनाज्ञा भंगके दूषण की प्राप्ति अवश्यमेव होगी तैसेही श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंने और सबीगच्छोंके पूर्वाचार्योंने अनेक शास्त्रोंमें श्रीवीरप्रभुके निश्चय नय करके छ कल्याणकोंको खुलासे कथन किये हैं सो प्रत्यक्ष दिखता है तो भी न्यायरत्नजी सबी तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंके बहुत अपेक्षा वाले व्यवहार नयके पाठसे निश्चय नयके श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंको निषेध करते हैं सो श्रीजिनाज्ञाके भंगका दूषणकी प्राप्तिके सिवाय और क्या लाभ संपादन करेंगे सो विवेकी पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं,——

और (अगर जैन शास्त्रोंमें छ कल्याणक होते तो नव अंग शास्त्रकी टीका करने वाले महाराज अभयदेवसूरिजी खुद पांच कल्याणक क्यों बयान करते) यह अक्षर भी न्यायरत्नजीके विद्यासागरादि विशषणोंको लज्जाके कराने

वाले प्रत्यक्ष अज्ञानताके सूचक हैं क्योंकि श्रीअभयदेव-सूरिजी (इन्हीं) महाराजने श्रीस्थानांगजी सूत्रकी वृत्तिमें तथा और भी अनेक महाराजोंने श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणकोंको खुलासे लिखे हैं सो तो मैंने उपरमें ही अनेक शास्त्रोंके प्रमाण लिख दिखाये हैं और पांच कल्याणकोंका कारण भी उपरमें लिख दिखाया है इस लिये छ कल्याणक निषेध नहीं हो सकते हैं और श्रीपंचाशकजीके सूत्र तथा वृत्तिमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक लिखनेसें सभी तीर्थंकर महाराजोंके छ छ कल्याणक ठहर जावे सो तो होते नहीं इस लिये वहां छ कल्याणक न लिखते बहुत अपेक्षासे पांच ही लिखे सो सबी तीर्थंकर महाराजोंके होते हैं इसलिये व्यवहार नयके उपरके पाठसे अनेक शास्त्रोंके प्रमाणयुक्त निश्चय नय वाले छ कल्याणक निषेध नहीं हो सकते हैं—

और न्यायरत्नजीको शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषण रूप प्ररूपणा करनेसे संसार वृद्धिका भय लगता होवे तथा शास्त्रकार महाराजोंके वचनोंपर श्रद्धा रखने वाले सम्यक्त्वधारी होवे तब तो सबी तीर्थंकर महाराजोंके संबंधवाले व्यवहार नयके पूर्वापरके सब पाठको छोड़ करके गच्छ कदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे मध्यका अधूरा पाठ लिखके भोले जीवोंको भ्रमानेका कारण किया तथा अनेक शास्त्रोंमें खुलासे छ कल्याणक लिखे हैं जिसपर से बाल जीवोंकी श्रद्धा भ्रष्ठ करनेका उद्यम किया जिसका मिच्छामि दुक्कडं देना चाहिये।

और इन्हीं श्रीपंचाशकजी सूत्रकी वृत्तिमें श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने तथा चूर्णिमें श्रीयशोदेवसूरिजी महाराजने सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही

खुलासे लिखी है जिसको तो मंजूर न करते हुए इन्हीं महाराजके विरुद्धार्थमें इन बातका निषेध करके मुग्ध जीवोंको अपने गच्छ कदाग्रहकी भ्रमजालमें फसानेका उद्यम करते हैं और इन्हीं महाराजके अभिप्राय विरुद्ध कल्याणकाधिकारे अधूरा पाठ लिखके फिर इन्हीं महाराजके वचनोंको सत्य मानने वाले बनते हैं सो भी न्याय रत्नजीकी कलयुगी विद्यासागरादि विशेषणोंकी अपूर्व विद्वत्ताकी चतुराईका नमूना मालूम होता है सो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और (खरतर गच्छवालोंको पूछना चाहिये गर्भापहारको अगर कल्याणिक मानते हो तो अच्छेरा किसको मानते हो दश अच्छेरेमें गर्भापहारको एक तरहका अच्छेरा कहा फिर कल्याणक कैसे हो सकता है) न्याय रत्नजीके इस लेख पर भी मेरेको इतना ही कहना है कि जैसे श्री आदिनाथ स्वामी १०८ मुनिओंके साथ मोक्ष पधारें उसीको अच्छेरा कहते हैं और उसीकोही मोक्ष कल्याणक भी मानते हैं तथा श्रीमल्लीनाथ स्वामीके स्त्रीत्व पनेमें उत्पन्न होनेको अच्छेरा कहते हैं और स्त्रीत्वपनेमें ही जन्म दीक्षादि कार्य्य हुए उन्होंको स्त्रीत्वपने सहित तीर्थंकरके कल्याणकभी मानते हैं तैसे ही श्रीमहावीर स्वामीके गर्भापहारको अच्छेरा कहते हैं और उसी गर्भापहारसे त्रिशला माताकी कूक्षिमें अवतार लेनेको दूसरा च्यवनरूप कल्याणक भी मानते हैं सो खरतर गच्छवालोंका कल्याणक मानना श्रीस्थानांगजी श्रीसमवायांगजी श्रीआचारांगजी और श्रीकल्पसूत्रादि पंचांगीके अनेक शास्त्रानुसार और युक्ति सहित होनेसे उसीका निषेध कदापि नहीं हो सकता है

तथापि आपने किया सो उत्सूत्र भाषणसे संसार वृद्धिका हेतु भूत मिथ्यात्वका कारण है और आप जैसे तपगच्छवालोंसे इस अवसरपर हम भी पूछते हैं कि श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक खुलासे कहे है तिसपर भी आपलोग निषेध करनेके लिये शास्त्रोंके उलटे अर्थ करके उत्सूत्रभाषणोंसे बाल जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका कार्य्य करते हो और नय गर्भित श्रीजैन शास्त्रोंके तात्पर्यार्थको गुरुगम्यसे बिना समझे गच्छ कदाग्रहकी विद्वताके अभिमानसे श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणके फल बिपाकसे संसारमें परिभ्रमण का किंचित् मात्र भी हृदयमें भय लाते नहीं हो जिसका क्या कारण है सो प्रगट करना चाहिये,

और श्री महावीर स्वामीके अच्छेरेको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करते हो तो श्रीआदिनाथ स्वामीके तथा श्रीमल्लीनाथ स्वामीके अच्छेरोंको भी कल्याणकत्वपनेसे आपको निषेध करना चाहिये सो तो करते नहीं हो और उन अच्छेरोको कल्याणकत्वपनेमें मानते हो फिर श्रीमहावीरस्वामीके अच्छेरेको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करते हो सो तो प्रत्यक्षपने गच्छ कदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे भोले जीवोंको भ्रमानेका कारण ही मालूम होता है इस बातको विवेकी पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे ।

और न्याय रत्नजी श्रीशांति विजयजीको धर्म्मबन्धुकी प्रीतिसे मेरा तो यही कहना है कि-आप निज गच्छके हठवादसे अनेक शास्त्रोंके प्रमाण युक्त श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंकी सत्य बातका निषेध करनेके लिये शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणाका परिश्रम करके कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे

अपने विद्यासागर न्यायरत्नादि विशेषणोंको लज्जनीय करनेका कारण न करते यदि आप जिनाज्ञा प्रतिपालनके अभिलाषी, आत्मार्थी, विवेकी, तत्त्वज्ञ, भवभीरू हो तो आपके लेखकी मेरी लिखी हुई उपरकी समीक्षाके लेखको परम हितकारी समझके आपने श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणको का निषेध किया जिसका प्रगटपने श्रीसंघ समक्ष या जैन पत्रमें मिथ्यादुष्कृत देकरके उपरकी छ कल्याणकोंकी सत्य बात को अंगीकार करोंगे और अन्य भव्यजनोंको भी कराओगे वोही श्रीमद्भगवत् आज्ञाके आराधनका कारण होनेसे निजपरके आत्म हितका कारण तथा आपके विशेषणोंकी सफलता है नतु सत्य बातका निषेध करनेके लिये गच्छ पक्षके पण्डिताभिमानसे उत्सूत्र प्ररूपणामें आगे इच्छा आपकी ॥

इति श्रीशांतिविजयाख्यन्यायरत्नोपाधिधारकस्य कल्याणकसंबन्धिनीलेख समीक्षा समाप्ता जाता ॥

और अब श्रीतपगच्छके सबकोई मुनिमण्डल वगैरह प्राय करके श्रीपर्युषणा पर्वके धर्म ध्यानके दिनोंमें श्रीकल्प सूत्रके व्याख्यानाधिकारे श्रीविनयविजयजी कृत सुखबोधिका वृत्तिको वांचते हैं उसीमें छ कल्याणककोंका निषेध सम्बंधी वृत्तिकारने निज तथा परको दुःखका कारण उत्सूत्र भाषण रूप जो व्याख्याकरी है उसीको वर्त्तमानकाले गच्छ कदाग्रही लोग हर वर्षे वांचकर आपसमें खंडन मंडनका झगड़ा पर्युषणामें ले कर बैठते हैं तथा गच्छ कदाग्रहके कुसंपको बढ़ाकरके उत्सूत्र भाषणोंसे निज परको संसार वृद्धिका तथा दुर्लभ बोधीका कारण करते हैं उसीका निवारण करनेके लिये और सत्यग्राही आत्मार्थी पुरुषोंके आगे श्रीजिनाज्ञाकी शास्त्रानुसार सत्य बातका प्रकाश करनेके लिये श्री-

विनय विजयजी कृत सुखबोधिकावृत्तिके छ कल्याणकोंका निषेध सम्बन्धी लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं—सो प्रथम तो उनका पाठ नीचे मुजब है यथा—

[अथ षट् कल्याणक वादीआह ननु "पंच हत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे" इति बचनेन महावीरस्य षट्कल्याणकत्वं संपन्नमेव, मैवं एवं उच्यमाने "उसभेणं अरहा कोसलिए पंच उत्तरासाढे अभिइ छठे होत्यत्ति" जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति बचनात् श्रीऋषभस्यापि षट्कल्याणकानि वक्तव्यानिस्युः नच तानि त्वयापि तथोच्यते तस्माद्यथा 'पंच उत्तरासाढे' इत्यत्र नक्षत्र साम्यात् राज्याभिषेको मध्ये गणितः परं कल्याणकानि तु अभिइ छठे इत्यनेन सहपचैव, तथात्रापि 'पंचहत्थुत्तरे' इत्यत्र नक्षत्र साम्यात् गर्भापहारो मध्ये गणितः परं कल्याणकानितु "साइणा परिणिव्वुडे" इत्यनेन सह पंचैव, तथा श्रीआचारांग टीका प्रभृतिषु पंचहत्थुत्तरे इत्यत्र पंच वस्तून्येव व्याख्यातानि नतु कल्याणकानि। किंच श्रीहरिभद्रसूरि कृत यात्रा पंचाशकस्य श्रीअभयदेवसूरिकृतायां टीकायामपि 'आषाढशुद्धषष्ठ्यां गर्भसंक्रमः १ चैत्रशुद्धत्रयोदश्यां जन्म २ मार्गशीर्षसितदशम्यां दीक्षा ३ वैशाखशुद्धदशम्यां केवल ४ कर्तिकामावस्यां मोक्षः ५, एवं श्रीवीरस्य पंच कल्याणकानि उक्तानि, अथ यदिषष्टं स्यात्तदा तस्यापि दिनं उक्तं स्यात् अन्यच्च नीचैर्गोत्र विपाकरूपस्य अतिनिंद्यस्य आश्चर्यरूपस्य गर्भापहारस्यापि कल्याणकत्व कथनं अनुचितं। अथ पंच हत्थुत्तरे इत्यत्र गर्भापहरणं कथं उक्तं इतिचेत्सत्यं अत्रहि भगवान् देवानन्दा कुक्षौ अवतीर्णः प्रसूतवतीचत्रिशलेति असंगतिः स्यात्तन्निवारणाय पंच हत्थुत्तरेत्ति वचनं इत्यलं प्रसंगेन।]

उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठक वर्गको दिखाता हूं कि—हे सज्जन पुरुषों उपरके लेखको देख कर मेरेको बड़े ही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि—उपरके लेखमें श्रीविनयविजयजीने अपने संसार वृद्धिका हृदयमें कुछ भी भय न करके कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे उत्सूत्रभाषणोंका संग्रह करके भोले जीवोंको भी संसार वृद्धिका हेतुभूत हरवर्षे श्री-पर्युषणापर्वमें बांचनेके लिये दुर्लभबोधिका कारण रूप महान् अनर्थ कारक गाढ मिथ्यात्वका कारण किया है क्योंकि उपर के लेखकी आदिमें ही "अथ षट् कल्याणक वादी आह" इन अक्षरों करके श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणकोंको मान-नेवाले श्रीखरतरगच्छवालोंको शास्त्रविरुद्धवादी ठहरा कर उसीको निषेध करनेके लिये आप शास्त्रानुसार शुद्ध प्र-रूपक प्रतिवादी बने सो निःकेवल उत्सूत्र भाषण है क्यों कि श्रीतीर्थंकर, गणधर, पूर्वधरादि, महाराजोंने खुलासा पूर्वक छ कल्याणकोंका वर्णन किया है उसीके ही अनुसार श्रीखरतर गच्छवाले (छ कल्याणक) मानते हैं इस लिये उनको शास्त्र विरुद्ध वादी ठहरा करके छ कल्याणकोंका नि-षेध करनेका श्रीविनयविजयजीने उद्यम किया सो तो श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंको ही शास्त्र विरुद्ध वादी ठहराने जैसा महान् अनर्थ कारक उत्सूत्र भाषण हो गया सो विवेकी पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे।

और ननु शब्दसे प्रश्न उठाकर 'पंचहत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुड़े' इस श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठका वचन करके श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहार सहित पाँच कल्यानक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें तथा छठा कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें यह छ कल्याणक

विनय विजयजीने सिद्ध किये और फिर उसीका निषेध करनेके लिखे 'उसभेणं अरहा कोसलीए पंच उत्तरासाढ़े अभीइ छठे होत्थत्ति' इस श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्रके वचनसे श्री आदिनाथ स्वामीके भी राज्याभिषेक सहित पांच कल्याणक उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें तथा अभीजितमें छठा यह छ कल्याणक कहनेका दिखा करके फिर नक्षत्र सामान्यतासे राज्याभिषेककी तरह गर्भापहारको भी नक्षत्र सामान्यतासे अन्दर गिननेका ठहराकर श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकका अभाव सिद्ध किया हैं सो तो शास्त्रकार महाराजोंका अभिप्रायको समझे विना भोले जीवोंको गच्छ कदाग्रहमें फसानेके छिये उत्सूत्र भाषण रूप संसार वृद्धिका हेतु है क्योंकि प्रथमतो श्रीआदिनाथ स्वामीके राज्याभिषेकको कल्याणकत्व पनेमें कोई भी पूर्व-धरादि महाराजने मान्य करके किसीभी शास्त्रमें नहीं लिखा है और श्रीमहावीर स्वामीके गर्भापहारको तो कल्याणकत्व पनेमें श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने मान्य करके अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने कथन किया है इसलिये श्रीआदिनाथ स्वामीके राज्याभिषेकके पाठसे श्रीवीर प्रभुके छठे कल्या-णकका निषेध कदापि नहीं हो सकता है

तथा दूसरा यहहै कि-श्रीआदिनाथ स्वामीके राज्याभिषेकके मास, पक्ष, तिथिका नाम मात्रभी कोई शास्त्रमें देखनेमें नहीं आता है इसलिये राज्याभिषेकको कल्याणकत्वपनमें मास, पक्ष, तिथि पूर्वक आराधन भी नहीं हो सकता है परन्तु श्री वीरप्रभुके गर्भापहारके तो मास, पक्ष, तिथिका, नाम पूर्वक खुलासा अधिकार अनेक शास्त्रोंमें देखनेमें आता है इसलिये गर्भापहारको तो कल्याणकत्वपनेमें-मास, पक्ष, तिथि, पूर्वक

आराधन हो सकता है इसलिये भी राज्याभिषेकके बहाने गर्भापहारका छठा कल्याणक निषेध नहीं हो सकता है

और तीसरा यह है कि-राज्याभिषेक तो श्रीअजित-नाथ स्वामी आदि बहुत तीर्थंकर महाराजोंका हुआ है इसलिये जो राज्याभिषेकको कल्याणकत्वपना प्राप्त हो सकता तो शास्त्रकार महाराज लिखनेमें कदापि विलम्ब नहीं करते और गर्भापहारको तो श्रीसमवायांगजी सूत्र वृत्तिके अनुसार पूर्वभवोंकी गिनतीसे तथा त्रिशला माताने चौदह स्वप्न देखे और शास्त्रकारोंने भी स्वप्नोंके अर्थ तथा फल वगैरहका वहांही वर्णन किया है तथा देवताओंनेऋद्धि समृद्धिकी भी वृद्धि करी इत्यादि कारणोंसे उसीको तो दूसरा च्यवन रूप कल्याणकत्वपना प्रगटपने प्राप्त होता है इसलिये सर्व जगह शास्त्रकारोंने श्रीवीर प्रभुके गर्भापहार पूर्वक छ कल्याणकोंकी व्याख्या लिखनेमें किसी जगह भी प्रमाद नहीं किया है जिससे राज्याभिषेकके सहारे गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे विनयविजयजीने निषेध किया सो अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे उत्सूत्र भाषणही मालूम होता है

और चौथा यह है कि-राज्याभिषेक तथा राज्य व्यवहार संसारिक कार्य्य होनेसे और उसीकी भावना भी संसारिक कार्योंकी होनेसे इसीको कल्याणकत्वपना प्राप्त नहीं हो सकता है परन्तु गर्भापहार तथा अनन्तबली चरम तीर्थंकर मोक्ष सार्थवाहीका भी गर्भापहार व्यवहार आत्मार्थी भव्यजीवोंको कुलमद हटानेवाला और उसीकी भावना भी निर्ज्जराकी हेतु होनेसे उसीको तो प्रगटपने

कल्याणकत्वपना प्राप्त हो सकता है तथापि विनयविजयजीने राज्याभिषेककी तरह नक्षत्रकी गिनतीके बहाने गर्भापहारके छठे कल्याणकको निषेध करनेका परिश्रम किया सो तो गच्छकदाग्रहके मिथ्यात्वको बढ़ाकर बालजीवोंको उसीके भ्रममें गेरनेके सिवाय और क्या लाभ उठाया होगा सो न्याय दृष्टिवाले विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

और पांचवां यह है कि-श्री आदिनाथ स्वामीका तो युगलाधर्म निवारण रूप भारतमें प्रथम राज्याभिषेक उसी नक्षत्रमें होनेसे तथा राज्यव्यवहारके प्रसङ्गसे नक्षत्रका नाम मात्रही गिनाया है और श्रीकल्प सूत्रके 'चउ उत्तरासाढ़े अभीइ पंचमें' इस पाठसे श्रीआदिनाथ स्वामीके पांच कल्याणकों की व्याख्या भी प्रगटपने है तैसेही 'चउ हत्थुत्तरे साइणा पंचमें' ऐसा पाठसे श्रीवीरप्रभुके चरित्राधिकारे पांच कल्याणकोंकी व्याख्या किसी भी शास्त्रमें नहीं है किन्तु 'पंच हत्थुत्तरे साइणा परि निव्वुडे' इस तरहके पाठसे छ कल्याणक तो अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने कहे हैं इसलिये राज्याभिषेकके नक्षत्रका नाम ले करके श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंका निषेध विनयविजयजीने किया सो तो गच्छ ममत्वके आग्रहका कारणके सिवाय और क्या होगा सो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे;—

और अब छठा यह है कि—श्रीस्थानांगजी सूत्रमें जिन भगवानोंके जिस जिस एक नक्षत्रमें पांच पांच कल्याणक हुए थे उन्ही भगवानोंमें श्रीपद्मप्रभुजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजोंके नाम तथा नक्षत्रपूर्वक पांचपांच कल्याणकोंकी गिनती दिखाई है वहां जैसे श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारकी गिनती

सहित पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें कहे हैं वैसेही जो श्रीआदिनाथ स्वामीका राज्याभिषेक कल्याणकरवपनेमें होता तो श्रीस्थानांगजीसूत्रमें भी श्रीगणधर महाराजको राज्याभिषेक सहित श्रीआदिनाथ स्वामीके भी पांच कल्याणक उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें होनेका दिखाना पड़ता सो तो दिखाया नहीं है और गर्भापहारको तो खुलासापूर्वक दो वैर दिखाया है इसलिये भी राज्याभिषेकके पाठका तात्पर्यार्थको समझे बिना बालजीवोंके आगे राज्याभिषेकका पाठ दिखाकरके अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने गर्भापहारके कल्याणकको कथन किया होते भी उसीका निषेधकरना सो हठवादकी अज्ञानताके कारण उत्सूत्रभाषणके विपाक तो भवांतरमें भोगे बिना नहीं छुट सकेंगे इसको भी निष्पक्षपाती पाठकगण स्वयं विचार लेना

और अब सातवी वैरमें तत्वाभिलाषी सत्यग्राही सज्जन पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि-विनय विजयजीने (पंचउत्तरा साढ़े इत्यत्र नक्षत्र साम्यत् राज्याभिषेको मध्येगणितः परं कल्याणकानितु अभिइ छठे इत्यनेन सहपंचैव, तथात्रापि पंचहत्युत्तरे इत्यत्र नक्षत्र साम्यात् गर्भापहारो मध्येगणितः परं कल्याणकानितु साइणा परि निव्वुडे इत्यनेन सहपंचैव) इन अक्षरोंको लिखके इसका मतलब ऐसे लाये हैं कि-'पंचउत्तरा साढ़े इस शब्दसे यहां नक्षत्रके सामान्यतासे राज्याभिषेकको अन्दर गिना है परंतु 'अभिइ छठे' इस शब्दसे श्रीआदिनाथ स्वामीके कल्याणक तो पांचही कहने तैसेही 'पंचहत्युत्तरे' इसशब्दसे यहांभी नक्षत्र सामान्यतासे गर्भापहारको अन्दर गिना है-परंतु 'साइणा परिनिव्वुडे' इस शब्दसे श्री

महावीरस्वामीके भी कल्याणक तो पांचही कहने इसतरहका लेख विवेकशून्य मुग्धजीवोंको दिखाकर श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठसे श्रीवीरप्रभुके पांच कल्याणक स्थापन करके छठे कल्याणकका निषेध किया सोतो निष्केवल मायाचारीकी धूर्त्ततासे अथवा विद्वत्ताकी अजीर्णतासे विवेकी तत्वज्ञ विद्वानोंके सामने अपनीहासी करनेका विनय विजयजीने वृथाही परिश्रम किया है क्योंकि राज्याभिषेकके पाठकी तरहसे श्रीवीर प्रभुके गर्भापहाररूप दूसराच्यवन कल्याणककी गिनतीपूर्वक शासनपतिके छ कल्याणक कदापि निषेध नहीं हो सकते हैं जिसका खुलासा तो उपरमेंही लिखा गया है परंतु यहां तो विनय विजयजीकी विद्वत्ताकी उत्कंठाईको प्रगट करके पाठकगणको दिखाता हूं कि-देखो 'पंचहत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे' इस शब्दसे पांचका अर्थ विनय विजयजीने किया सो कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि 'पंचहत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे' इस शब्दसे पांचकाही अर्थ किया जावे तो यह शब्दही शास्त्रकारका लिखना वृथा होजावे इसलिये जो विनय विजयजी तथा उन्होंके पक्षको ग्रहण करनेवाले वर्तमानिक तपगच्छके विद्वान् लोग जो शास्त्रकार महाराजके लिखनेको वृथा ठहराकरके अपनी इच्छानुसार अर्थ बनालेवे तबतो ढूंढक तथा तेरहापंथियोंकी तरह प्रत्यक्ष उलंठाई सिद्ध होनेमें कोई बाकी नही है क्योंकि ढूंढिये तथा तेरहापंथी लोग गणधर महाराज कृतमूलसूत्रोंको माननेका पुकार पुकारके लोगोंके आगे कहते हैं परंतु जगह जगह पर गणधर महाराजके विरुद्धार्थमें अपनी मति कल्पनासे प्रत्यक्ष असंगत अर्थकरके बालजीवोंको अपने कदाग्रहकी भ्रमजालमें

फंसानेके लिये उलंठाई करनेमें कुछ कमती नहीं करते हैं तैसेही 'पंचहत्थुत्तरे साइणा परि निव्वुडे' इस पदका गण-धरमहाराजके विरुद्धार्थमें विनय विजयजीने अपनीमति कल्पनासे प्रत्यक्ष असंगत पांचका अर्थकरके बालजीवोंको अपने कदाग्रहकी भ्रम जालमें फंसानेके लिये खूबही उलंठा-इकरी है तथा वर्तमानिक तपगच्छवाले विद्वान् नाम धराते भी ऐसी उलंठाइसे प्रत्यक्ष असंगत अर्थकरते कुछ लज्जाभी नही पातेहैं यहभी पाखंडपूजा नामक अच्छेरेका कलयुगी प्रभाव ही मालूम होता है क्योंकि विवेकी विद्वान् तो उपरके शब्द से पांचका अर्थ कदापि नही करेंगे और न कोई मान्य करे परंतु अंध परंपराका हठवादकी तो अलौकिक आश्चर्य कारक महिमा जुदीही होतीहै इसमें कोई विशेषता नही है,

और बड़ेही खेदकी बात है कि-उपरके शब्दमें (पाँच हस्तोत्तरामें तथा छठा स्वातिमें यह) छहों कल्याणकोंका प्रगटपने खुलासा अर्थ होते भी विद्वताके अभिमानसे अपनी कल्पनामुजब पांचका अर्थ करके भोले लोगोंमें दिखानेवाले विनयविजयजीको तथा वर्तमानिक तपगच्छके विद्वानोंको इतने वर्षोंमें कोई भी समझाने वाला नहीं मिला या तप-गच्छके उन्होंकी समुदायमें कोईभी विवेकी, तत्त्वज्ञ, आत्मार्थी, इस अनर्थको हठाने वाला बुद्धिमान नहीं हुआ जिससे वर्तमानमें हरवर्ष गांवगांवमें इतना अनर्थ कारक अंध परंपराके मिथ्यात्वको पुष्ट करते परभवका किंचित्मात्र भी हृदयमें भय कोईभी नही लाते हैं, क्याबड़ी आश्चर्यकी बात है कि-श्रीकल्पसूत्रकी पूर्वाचार्योंने अनेक टीकाओं बनाइ है उसीमें उपरके पदकी भी व्याख्या

करी है जिसमें छ के पाठका पांचका अर्थ तो किसी जगह देखनेमें नहीं आया तथापि विनय विजयजीने तथा वर्तमानिक तपगच्छवाले विद्वान कहलाते हुए भी सूत्रकार महाराजके तथा वृत्तिकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें प्रत्यक्षपने उलटा अर्थ किया तथा करते हैं सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके अथवा विध्वताकी अजीर्णताके सिवाय और क्या होगा क्योंकि उपरके शब्दसे पांचका अर्थ किसी भी पूर्वाचार्य्यने किसी जगहपर भी नहीं लिखा है तथा प्रत्यक्ष युक्तिके विरुद्ध होनेसे होभी नहीं सकताहै और 'पंच हत्युत्तरे साइणा परि निव्वुडे' इससे पांचका अर्थ करके सूत्रकार महाराजका वाक्यार्थ भंग भी नहीं हो सकता है इसलिये सूत्रकार महाराजके अपेक्षा सम्बन्धी अभिप्रायको समझे बिना अपनी कल्पना मुजब अर्थ मान लेना या लिख देना संसार वृद्धिका हेतु है सो ही करनेका कारण उपरके विद्वानोंने किया मालूम होता इसलिये जो ऊपरके पदको सूत्रकार महाराजका वाक्यार्थपूक वर्तमानिक तप गच्छके विद्वान लोग सत्य मानते होवे तबतो पांचका अर्थ करें जिसका मिच्छामिदुक्कडं देना चाहिये क्योंकि जब छहों कल्याणकोंकी पृथक् पृथक् व्याख्याकरके सूत्राकारनेखुलासा दिखा दी तो फिर पांचका अर्थ करके सूत्राकारके वाक्यार्थका भंग करना कौन बुद्धिमान मान्य करेगा अपितु कोई भी नहीं और राज्याभिषेकको कल्याणकत्वपना प्राप्त नहीं हो सकता है जिसके कारण भी उपरमें लिखे गये है तथा खास विनयविजयजीके ही परम पूज्य श्रीतपगच्छीय श्रीहीरविजयसूरिजीके सन्तानीय श्रीशांतिचन्द्रगणिजीने श्रीवीर प्रभुके

गर्भापहारके कल्याणककी तरह राज्याभिषेक कल्याणक नहीं हो सकता है इसका खुलासाके साथ श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रकी वृत्तिमें व्याख्या करीहै जिसका सब पाठ भी न्यायांभोनिधि-जीके छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी लेखकी समीक्षा आगे लिखुंगा वहां दिखानेमें आवेगा।

और (श्रीआचारांग टीका प्रभृतिषु पंच हत्थुत्तरे इत्यत्र पंच वस्तून्येव व्याख्यातानि नतु कल्याणकानि) इन अक्षरों करके श्रीआचारांगजी सूत्रकी वृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें 'पंच हत्थुत्तरे' शब्दकी व्याख्या करते वृत्तिकारने पांच वस्तु कही हैं परन्तु पांच कल्याणक नहीं कहे। इस तरहका लिखके विनयविजयजीने श्रीवीर प्रभुके चरित्रकी आदिमें ही कल्याणकाधिकारे पांचों कल्याणकोंका अभाव दिखाया सो तो अपने गच्छ कदाग्रहका हठवाद स्थापन करनेके लिये अभिनिवेशिक मिथ्यात्व करके भोले जीवोंको भी उसीके भ्रममें गेरनेके लिये विचित्र मायाचारीका नमूना प्रगटपने मालूम होता है क्योंकि देखो खास आपनेही श्रीकल्पसूत्रकी सुबोधिकावृत्तिमें वर्तमानिक शासनमें मंगलिकके लिये जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक श्रीवीरप्रभुका चरित्र कथन करते उसीकी आदिमेंही "तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे हुत्था ॥ तथा ॥ साइणा परिनिव्वुडे भयवं" इस मूल सूत्रके पंक्तिकी व्याख्या करते "श्री-वर्द्धमानस्वामिनः षण्णां च्यवनादि वस्तूनां कारणं बभूव" इत्यादि ॥ तथा ॥ पंच हत्थुत्तरेत्ति, हस्तोत्तरा उत्तरा फाल्गुन्यः गणन्या तास्यो हस्तस्य उत्तरत्वात् ताः पंचसु स्थानेषु यस्य स पंच हस्तोत्तरो भगवान्, होत्थत्ति, अभवत् ॥ और ॥

'साइणा परिनिव्वुडे भयवंत्ति' स्वाति नक्षत्रे मोक्ष गतो भगवान् ॥ इस तरहकी व्याख्या करी है और इसो तरहसे मध्यम वाचनामेंभी-च्यवन, गर्भापहार, जन्म, दीक्षा, ज्ञान, मोक्ष, इन छहों वस्तु तथा स्थानोंके छहों नक्षत्रोंका खुलासा लिखा है जिसका सब पाठ तो इसी ग्रन्थके पृष्ठ ४६२।४६३ में छप गया है और उत्कृष्ट वाचनामें तो-च्यवन, गर्भापहार, जन्मादिकके मास, पक्ष, तिथिपूर्वक विस्तारसे व्याख्याकरी है सो च्यवनादि पांच हस्तोत्तरा नक्षत्रमें और छठा मोक्ष स्वाति नक्षत्रमें यह छ वस्तु तथा स्थान शब्दका श्रीतीर्थकर महाराजके चरित्रकी आदिमेंही प्रसंगसे तथा तात्पर्यार्थसे कल्याणकका ही अर्थ निकलनेसे तो श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सिद्ध होगये जिससे अपने मंतव्यमें विरोध आने लगा तब विनयविजयजीने (ननु पंच हत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे इत्यनेन श्रीमहावीरस्य षट् कल्याणकत्व सम्पन्नमेव) इस तरहका प्रश्न बनाकरके उसीका निषेध करनेके लिये 'मैवं एवं उच्चानाने उसभेणं अरहा इत्यादि' वाक्य लिखके शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणोंका तथा कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रह करके श्रीवीरप्रभुकी अवज्ञा करते हुए निजपरको दुर्लभबोधिका कारणरूप अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे भोले जीवोंको गच्छ कदाग्रहका भ्रममें फसानेके लिये इतना परिश्रम किया क्योंकि वस्तु तथा स्थान शब्द कल्याणकका अर्थवाला जो विनयविजयजी मान्य नहीं करते तो छ कल्याणकोंकी सिद्धिसे उसीके निषेध करनेकी चर्चाका प्रसंग कदापि नहीं लाते परन्तु लाये इसीसे ही विवेकी तत्वज्ञ तो स्वयं विचार सकते है कि

खास विनयविजयजीने ही वस्तु तथा स्थान शब्दका कल्याणक अर्थ अपने दिलमें मंजूर करलिया तबही तो अपने मंतव्यमें विरोधके भयसे उसीके निषेधकी चर्चामें "पंच हत्थुत्तरे, इत्यत्र पंच वस्तून्येव व्याख्यातानि नतु कल्याणकानि" इस तरहके अक्षर लिखके गच्छ कदाग्रहकी मायाचारीसे उत्सूत्र भाषण करके भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका उद्यम करते संसार वृद्धिका कुछभी अपने हृदयमें भय न किया सो बड़ा ही आश्चर्य्य सहित अफसोस है

और अब फिर भी सत्यग्राही पाठक वर्गसे मेरा यही कहना है कि-वस्तु शब्दका तथा स्थान शब्दकाभी संबन्ध से कल्याणक अर्थ खुलासा पूर्वक सिद्ध होता है इसलिये इसमें कोई तरहका सन्देह नहीं करना क्योंकि देखो वस्तु शब्दका (उत्तममें मध्यममें अधममें इष्टमें अनीष्टमें धर्म्ममें अधर्म्ममें लोकमें अलोकमें और जीव अजीवादि) सब पदार्थोंमें तथा सर्वलिङ्गोंमें और सर्व अर्थोंमें व्यवहार किया जाता है इसलिये जैसे-ज्ञान दर्शन चारित्र वस्तु, धर्म्म वस्तु, साश्वत चैत्य प्रतिमा वस्तु, और मोक्ष देवलोक आदि सबको वस्तु शब्दसे व्यवहार करते हैं तैसे ही मंगलिकके लिये श्रीतीर्थंकर महाराजके चरित्रका वर्णन करते श्रीवीरप्रभुके च्यवन गर्भापहार जन्मादिकोंकोभी वस्तु शब्दसे व्यवहार करके श्रीदशाश्रुतस्कन्धकी चूर्णि वगैरह शास्त्रोंमें व्याख्या करी सोही च्यवन गर्भापहार जन्मादिकोंको कल्याणक समझने चाहिये क्योंकि यद्यपि वस्तु शब्दका अर्थ सम्बन्धपूर्वक प्रसंगसे किया जाता है सो यहां च्यवनादि कल्याणकोंका सम्बन्ध होनेसे श्रीवीरप्रभुके चरित्रकी

आदिमें च्यवनादिकोंको वस्तु कही वही च्यवनादिकोंको कल्याणकही माने गये क्योंकि वस्तु शब्द पर्यायवाची गुण युक्त भावनावाला होता है और श्रीवीरप्रभुके च्यवनादि छहों वस्तुओंमें पर्यायवाचीत्वसे तथा गुण युक्त पनेसे और भावनासे भी छहों कल्याणकोंका अर्थके सिवाय दूसरा कोई भी अर्थकी सङ्गति कदापि नहीं हो सकती है इसलिये यहां च्यवनादिक कल्याणक शब्दके च्यवनादिक वस्तु शब्द पर्यायवाची एकार्थ सूचक सिद्ध होगया सो विवेकी तत्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

और 'वत्थु सहावो धम्मो' याने 'वस्तु स्वभावो धर्मः'॥ इस शब्दके न्यायानुसारभी जैसे च्यवनादि वस्तुओंमें श्री-तीर्थंकर महाराजकी माताके चौदह स्वप्न देखने वगैरहका तथा छप्पनदिक्कुमारी चौसठइन्द्रोंके जन्ममहोत्सव करने वगैरहका नियमीत अनादि मर्यादा रूप धर्म हैं तैसेही च्यवनादि वस्तुओंमें कल्याणकत्वपनेकाही अनादि धर्म होनेसे च्यवनादि वस्तुओंका च्यवनादि कल्याणकही अर्थ सिद्ध होता है इसमेंकोई बाधानहींहोसकतीहै इसबातकोभी निष्पक्ष-पाती विवेकी तत्वज्ञ पाठकजन अपनीबुद्धिसे विचार लेना,

देखिये बड़ेही आश्चर्यकी बात है कि-शासन नायक परमउपकारी श्रीवर्द्धमान स्वामीका चरित्र वर्णन करते भग-वान्के च्यवनादिकोंको वस्तु कहके कल्याणकका अभाव दिखानेवाले विनयविजयजीको तो अपने गच्छकदाग्रहके हठवादकी कल्पित बातको जमानेके लिये शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें उलटा अर्थ करके बालजीवोंको दिखाते उत्सू-त्रभाषणसे आत्मविराधनाका कुछभी विचार नहींआया-

होगा परन्तु वर्तमानिक तपगच्छके विद्वानोंको भगवान्के च्यवनादिकोंको वस्तुकहके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करते अपनी आत्मविराधनाका कुछभी भय क्यों नहीं आता है क्योंकि च्यवनादिकोंको ही शास्त्रकारोंने कल्याणककहे हैं तथा च्यवनादिकोकों ही वस्तु भी कही है और वस्तु शब्द कल्याणकका अर्थवाला है जिसका निर्णयतो उपर-मेंही लिखा गया है इसलिये वस्तु कहके कल्याणकका निषेध करना सो अंधपरंपराके हठवादका आग्रहसे अपने तथा दूसरे भोलेजीवोंके सम्यक्त्वरत्नको हाणी पहुंचानेवाला उत्सूत्र भाषण करना आत्मार्थियोंको उचित नहीं है

और आत्मार्थीभव्यजीवोंके उपकारके लिये श्रीतीर्थंकर महाराजका चरित्र वर्णन करते च्यवनादिकोंको वस्तु कहके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेवाले च्यवनादिकोंके बिना अन्य कल्याणक किसको बतलाते होवेंगे क्योंकि च्यवनादिक वस्तु सोही कल्याणकोंके सिवाय अन्य कल्याणक तो किसी भी शास्त्रमें देखनेमें नहीं आते हैं तथा सुननेमें भी नहीं आये हैं और च्यवनादिकोंके बिना दूसरे कल्याणक होभी नहीं सकते हैं इसलिये जो च्यवनादिकोंको ही कल्याणक कहने तथा उन्हीं च्यवनादिकोंको वस्तु भी कहना और फिर च्यवनादिकोंको वस्तु कहके कल्याणकत्वपनेसे निषेध भी करनेका परिश्रम करना सो यह तो बाल लीलावत् युक्ति विरुद्ध होतेभी इसका हठ नहीं छोड़नेवालोंको दीर्घसंसारी अन्तरमिथ्यात्वी कहनेमें कोई हाणी होती होवे तो विवेकी तत्वज्ञोंको अच्छीतहरसे विचार करना चाहिये

और इसी तरहसे पांच स्थान शब्दकाभी पांच

कल्याणक अर्थ होता है, जैसे-किसीको, तीन आदमियोंमेंसे पहिलेने पूछा—श्रीआदिनाथ स्वामीका मोक्ष स्थान किस जगह पर तथा दूसरेने पूछा-मोक्ष कल्याणक किस जगह पर और तीसरेने पूछा-मोक्ष गमन किस जगह पर इस तरहके तीनों प्रश्नोंके तीनों शब्दोंका तात्पर्यार्थ एक होनेसे सबके उत्तरमें श्रीअष्टापदजी पर कहना होगा सो इसी मुजब ही सबी तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांच स्थान कहो अथवा पांच पांच कल्याणक कहो दोनों शब्द पर्यायवाची एकार्थ सूचक है 'यति मुनि साधू वत्' इसी कारणसे श्रीस्थानांगजी सूत्रके पञ्चम स्थानके प्रथम उद्देशमें श्रीगणधर महाराजने श्रीतीर्थंकर महाराजोंके कल्याणकाधिकारे १४ भगवानोंके पांच पांच कल्याणकोंके नक्षत्र गिनाये हैं उसीकी व्याख्या करते श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने श्रीपद्मप्रभुजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि कल्याणकोंके मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, नगरीस्थान, वगैरहका खुलासाकी व्याख्यामें च्यवनादि पांच पांच स्थान कहके यहां स्थान शब्दका व्यवहार किया सो उपरके न्यायानुसार कल्याणकका ही कथन समझना चाहिये और इस बातका विशेष निर्णय न्यायांभोनिधिजीके लेखकी समीक्षामें आगे लिखनेमें आवेगा

और श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीपंचाशकजी सूत्रके तथा श्रीअभयदेवसूरिजी कृत तद्वृत्तिके अभिप्रायको समझे बिना ही श्रीवीरप्रभुके पांच कल्याणकोंके दिन दिखाकर जो छठा कल्याणक होता तो उसीका भी दिन कहते, इस तरहका लिखा सोभी अज्ञानताका कारण है क्योंकि वहां तो भरत क्षेत्रकी तथा ऐरवर्त क्षेत्रकी उत्सर्पिणी और

अवसर्पिणीमें हो गई तथा होनेवाली सबी चौबीसीओंके सबी तीर्थंकर महाराजोंकी बहुत अपेक्षा सम्बंधी लिखनेमें आया है और सबी तीर्थंकर महाराजोंके छ छ कल्याणक नहीं होते हैं इसलिये उस प्रसंगमें छठे कल्याणकका दिन नहीं कहा है परन्तु खास श्रीमहावीर स्वामीके चरित्राधिकारे तो अनेक शास्त्रोंमें छठे कल्याणकका दिन खुलासे लिखा हैं तथा उपरकी बातका विशेष विस्तार पहिलेही न्यायरत्नजीके लेखकी समीक्षामें लिखनेमें आगया है।

और उपरोक्त सुखबोधिकामें खास विनयविजयजीने ही चौदह स्वप्नाधिकारे [त्रिशला क्षत्रियाणी 'तप्पढमया एत्ति,तत्प्रथनतया प्रथमं इत्यर्थः। इभं स्वप्ने पश्यतीति संबंधः, अत्र प्रथम इभ पश्यतीति बहुभिर्जिनजननीभिस्तथा दृष्टत्वात्पाठानुक्रममपेक्ष्योक्तं अन्यथा ऋषभदेव माता प्रथम वृषभं वीर माता च सिंहं ददर्शेति] इस तरहका पाठ लिखा है इसका मतलब यह है कि-त्रिशला माताने प्रथम स्वप्नमें हस्थी देखा ऐसा सूत्रकारने लिखा सो बहुत तीर्थंकरोंके माताकी अपेक्षासे लिखा है, नहींतो श्रीआदिनाथ स्वामीकी मरुदेवी माताने तो प्रथम स्वप्ने वृषभको और श्रीवीरप्रभुकी त्रिशला माताने प्रथम स्वप्ने सिंहको देखा है परन्तु शेष बहुत तीर्थंकर महाराजोंकी माताने प्रथम स्वप्नमें हस्तीको देखा इसलिये बहुत अपेक्षासे श्रीवीर प्रभुकी माताके सम्बन्धमें भी प्रथम स्वप्नमें हस्ती देखनेका सूत्रकारने लिखा है—

अब इस जगह भी विवेकी पाठकगणको विचार करना चाहिये कि—जैसे श्रीवीरप्रभुको माताने प्रथम स्वप्नमें सि-

हूंको देखा तिसपरभी बहुत अपेक्षासे शास्त्रकारने इस्ती लिखा, तैसेही श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणोंके दिवसोंको अनेक शास्त्रोंमें खुलासे लिखे होतेभी श्रीपंचाशकजीमें तथा उसीकी वृत्तिमें बहुत तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंकी अपेक्षासे श्रीवीर प्रभुकेभी पांच कल्याणक लिखे उससे छठा कल्याणक कदापि निषेध नहीं हो सकता है सोतो निष्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञ पुरुषोंको अच्छी तरहसे विचार लेना चाहिये ।

तथा औरभी पाठक वर्गको विनयविजयजीकी प्रत्यक्ष मायाचारीका नमूना दिखाता हूं कि-देखो विनयविजयजी बड़े विद्वान् तथा विशेष करके श्रीजैन शास्त्रोंके जानकार प्रसिद्ध कहलाते थे इसलिये श्रीआवश्यक निर्युक्तिमें १ तथाचूर्णिमें २, श्रीअभयकुमार चरित्रमें ३, श्रीसुलसा चरित्रमें ४, श्रीदशाश्रुतस्कंध सूत्रमें ५, तथा तद्वृत्तिमें ६, श्रीत्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्रमें ७, तथा श्रीवीरप्रभुके तीनों चरित्रोंमें १०, और श्रीकल्पसूत्रमें ११, तथा इन्हीं सूत्रकी ९ (नौ) व्याख्याओंमें २०, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकके दिवसको प्रगटपने लिखा हुआहै जिसको जानते होतेभी बाल जीवोंको अपने गच्छ कदाग्रहके भ्रममें गेरनेके लिये श्रीपंचाशकजी सूत्र वृत्तिके अभिप्रायको समझे बिना 'यदि षष्ठं स्यात्तदा तस्यापि दिनमुक्तं स्यात्' 'जो छठा कल्याणक होता तो उसीकाभी दिवस कहते' इसतरहका लिखके भोलेजीवोंको दिखाया सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी मायाचारीके सिवाय और क्या होगा सो विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं—

और अब इस जगह पाठक वर्गको विशेष निःसन्देह होनेके लिये श्रीवीरप्रभुके छठेकल्याणके दिवसको दिखानेके लिये यहां श्रीआवश्यकचूर्णिका पाठ दिखाता हूं सो पृष्ट९४वे में प्रथम च्यवन कल्याणकका पाठ नीचे मुजब है यथा—

तेणंकालेणं तेणंसमएणं समणे भगवं महावीरे जेसे गिम्हाणं चउत्थेमासे अट्ठमेपक्खे आसाढ़सुद्धे तस्सणं आसाढ़ सुद्धस्स छठी दिवसेण महाविजय पुप्फुत्तर पवर पुंडरीयातो महाविमाणातो वीसंसागरोवम ठितीयातो अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबूद्दीवेदीवे भारहे वासे इमीसे उसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए, एवं सुसमाए, सुसम दुसमाए, दुसम सुसमाए, वहु वितिक्कंताए सागरोवमकोड़ा कोड़ीए बायालीस वास सहस्सेहिं ऊणिआये पंचहत्तरिवासेहिं अद्धन-वमेहिय मासेहिं सेसाएहिं एक्कवीसाए तित्थगरेहिं इक्खाग कुल समुपन्नेहिं कासवगुत्तेहिं दोहिय हरिवंस कुलसमुपन्नेहिं गोतमस्स गोत्तेहिं तेवीसाए तित्थगरेहिं वितिक्कतेहिं समणे भगवंमहावीरे चरमतित्थगरे पुव्वतित्थगर निदिट्ठे माहण कुंडग्गामे णगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालस गोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए महाणीए जालंधरस गोत्ताए पुव्वरत्ता वरत्तकाल समयंसि हत्थुत्तराए णक्खतेणं जोगमुवागतेणं आहार वक्कतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भ-ताए वक्कते समणेभगवमहावीरे त्तिणाणोवगते आविहुत्था— चइस्सामित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ चुएमित्ति जाणइ,

और इसके आगे चौदह स्वप्न तथा नमुत्थुणं वगैरहका अधिकार है फिर आगे पृष्ठ ९६ वेमें गर्भहरणसे गर्भसंक्रमणरूप दूसरा च्यवन कल्याणकका पाठ नीचे मुजब है यथा—

तेणंकालेणं तेणंसमएणं समणे भगवं महावीरे तिणाणोव गते आविहोत्था साहरिज्जस्सामिति जाणाति साहरिज्ज माणे ण जाणति साहरितेमिति जाणाति ॥ तेणं कालेणं २ समणे भगवं महावीरे जेसे वासाण तच्चे मासे पंचमेपक्खे आस्सोय बहुले तेरसीय पक्खेण वासीतिराइन्दिएहिं वितिक्कंतेहिं तेसीतिमस्स रातिदिवस्स अंतरावट्टमाणेहिं आणुकंपएणं देवेण महाण कुंडगामाओ । जाव । अड्डरत्तकाल समयंसि हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेण अव्वाबाहं अव्वा बाहेण देवाणंदा-ए कुच्छीउति तिसलाए कुच्छिंसि साहरिते ॥इत्यादि॥ इसके आगे फिर चौदह स्वप्नादिकका और जन्मादिका वर्णन है—

और अब हरवर्ष बंचाता हुआ सुप्रसिद्ध श्रीकल्प-सूत्रका पाठ दिखाता हूं सो नीचे मुजब है यथा—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जेसे गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढ़सुद्धे तस्सणं आसाढ़सुद्धस्स छट्ठी पक्खेणं महाविजय पुप्फुत्तर पवर पुंडरी याओ महा विमाणाओ वीससागरोवम ट्ठिइयाओ आउक्ख एणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयंचइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे दाहिणड्ढ भरहे इमीसे उसप्पि णीए, सुसम सुसमाए समाए विइक्कंताए, सुसमाए समाए विइक्कंताए, सुसम दुसमाए समाए विइक्कंताए, दूसम सुसमाए समाए बहु विइक्कंताए, सागरोवम कोडा कोडीए बाया-लीस वास सहस्सेहिं ऊणिआए पंचहत्तरि वासेहिं अद्ध नवमेहिय मासेहिं सेसेहिं -इक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खाग कुल समुप्पन्नेहिं कासव गुत्तेहिं, दोहिय हरिवंसकुल समुप्पन्नेहिं गोयमस्सगुत्तेहिं तेवीसाए तित्थयरेहिं विइ-

कुलेहिं, समणे भगवं महावीरे चरम तित्थयरे पुव्वतित्थयर निद्दिट्ठे, माहण कुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालस गुत्तस्स भारिआए देवाणंदाए माहणीए जालं-धरसगुत्ताए पुव्वरत्ता वरत्तकाल समयंसि हत्थुत्तराहिं णक्ख-त्तेणं जोग मुवागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीर वक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥ समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोव गए आविहुत्था—चइस्सामित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ चुएमित्ति जाणइ,

इसके आगे चौदह स्वप्न नमुत्थुणं वगैरहकी व्याख्या है और फिर देवानंदाकी कुक्षिसे त्रिशलाकी कुक्षिमें स्थापन करनेको गर्भ हरणसे गर्भसंक्रमण रूप दूसरा च्यवन कल्या-णकका पाठ नीचे मुजब हैं यथा—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तिन्ना-णोवगए आविहुत्था-साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ, संहरिज्ज माणे न जाणइ, साहरिएमित्ति जाणइ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जेसे वासाणं तच्चेमासे पंचमे पक्खे आसोअ बहुले, तस्सणं आस्सोय बहुलस्स तेरसीपक्खेणं बातीइराइन्दिएहिं विइक्कंतेहिं तेसी-इमस्स राइंदिअस्स अंतरावट्टमाणेहिं, आणुकंपएणं देवेणं हरिणेगमेसिणा सक्कवयण संदिट्ठेणं माहण कुंडग्गा-माओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालस गुत्तस्स भारिआए देवाणंदाए माहणीए जालंधरस गुत्ताए कुच्छीओ खत्तिय कुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स कासव गुत्तस्स भारिआए तिसलाए खत्तिआणीए वासिट्ठस गुत्ताए पुव्वरत्ता वरत्तकाल समयंसि हत्थुत्तराहिं

नक्खत्तेण जोग मुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए, ॥ इत्यादि ॥ इसके आगे चौदह स्वप्न वगैरहका तथा जन्मादिका वर्णन है

उपरके दोनों पाठोंका संक्षिप्त भवार्थः—तिसकाल और तिससमये श्रमण भगवन् श्रीमहावीर स्वामी आषाढ़ शुदी ६ को दशम देवलोकके सबसे श्रेष्ठ पुष्पोत्तर नामा विमानसे देवत्वपनेके परिपूर्ण वीससागरोपमका आयुष्यकी स्थितिको तथा देवसम्बन्धी भवको क्षयकरके सरलगतिसे इसी जम्बूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रे इसी अवसर्पिणीमें दुःखम सुखमा नामा एककोडाकोडी सागरोपमसें ४२ हजार वर्ष न्युनके प्रमाणवाला चौथा आराके अन्तमें उसीके ७५ वर्ष और ८। महिने शेष रहते तथा २३ तीर्थंकर हुए बाद चरम तीर्थंकर श्रमण भगवन् श्रीमहावीर स्वामी माहणकुंड ग्रामनगरमें कोडाल गौत्रके ऋषभदत्तनामा ब्राह्मणकी जालंधरनामा गौत्राकी देवानन्दा नामा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रे चन्द्रके योगमें गर्भपने उत्पन्न हुए सो देवसम्बन्धी आहारका शरीरका और भवका त्यागकरके जब उत्पन्न हुए तब भगवान्को मति श्रुति और अवधि यह तीन ज्ञानथे इसलिये ज्ञानसें मैं यहां देवलोकसें च्यवकरके माताकी कुक्षिमें उत्पन्न होऊंगा ऐसा जानते थे परन्तु च्यवनका काल १ समय मात्रका होनेसें उसी वख्तको नहीं जाना और उत्पन्न हुए बाद फिर ज्ञानसें जान लिया

और इसीतरह तिसकाल तिस समय वहांसें आश्विन वदी १३ को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें इन्द्रके कथनानुसार हरिणेगमेषिदेवने देवानन्दाकी कुक्षिसें संहरणकरके क्षत्रिय

कुंडग्राम नगरके काश्यप गौत्रके सिद्धार्थराजाकी वासीष्ट गौत्रकी त्रिशलाराणीकी कुक्षिमें बाधा रहित भक्तिपूर्वक देवशक्तीसे स्थापित किये उसी समयमेंभी भगवानूको तीन ज्ञानथे इसलिये देवानन्दा माताकी कुक्षिसे संहरण होकरके मेरा त्रिशला माताकी कुक्षिमें आना होगा ऐसा जानतेथे परन्तु उसी समयको अल्पकालके कारणसे नहीं जान सके और त्रिशलामाताकी कुक्षिमें आये बाद फिर जान लिया

यहां पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि उपरके श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठकी नौ (९) टीकाओंमें ही उपरके भावार्थ वाली ही विस्तारपूर्वक व्याख्या है परन्तु सबके पाठ इहां लिखनेसे बहुत विस्तार होजावे तथा कितनीही टीकायेंतो हरवर्ष श्रीपर्युषणपर्वमें गांव गाँवमें वांचनेमें आतीभी है इसलिये उन्होंके पाठ और भावार्थ प्रसिद्ध होनेसे यहां नहीं लिखता हूं और उपर मुजबही खास विनय विजय जीने ही अपनी बनाई सुबोधिकावृत्तिमें भी विस्तारसे व्याख्या करीहै जिसमें ब्राह्मण कुलमें देवानन्दा माताकी कुक्षिसे क्षत्रिय कुलमें त्रिशला माताकी कुक्षिमें आनेकी व्याख्या करते १ श्लोक विशेष करके कहा है उसीकोही यहां दिखाता हूं यथा—

सिद्धार्थ पार्थिव कुलास गृहप्रवेश, मौहूर्त्त मागमयमान इवक्षणं यः॥ रात्रिर्दिवान्युषितवान् द्व्यशीतिं जिनानाम् विप्रालये स चरमो जिनराट् पुनातु ॥१॥

इस श्लोकका मतलब ऐसा है कि भगवान् भव्यजीवोंके उपकारके लिये मानो सिद्धार्थ राजाके उत्तम कुलमें प्रवेश करनेके लिये अच्छा मुहूर्त्त देखनेके लिये ८२ दिवसतक ऋष-

भद्दत्त ब्राह्मणके घरमें ठहर गये ऐसे वो भगवान् चरम जिनेश्वर महाराज श्रीवीरप्रभु भव्यजीवोंका कल्याण करो

अब देखिये उपर्युक्त शास्त्र प्रमाणानुसार श्रीवीरप्रभुके देवलोकका च्यवनसे देवानन्दा माताकी कुक्षिमें उत्पन्न होना सो आषाढ़ सुदी ६ के प्रथम च्यवन कल्याणककी तरह ही देवानन्दामाताकी कुक्षिसे गर्भ संहरणसे त्रिशला माताकी कुक्षमें संक्रमण हुआ सो आश्विनबदी १३ को गर्भापहाररूप दूसरा च्यवन कल्याणकका भी खुलासा पूर्वक वर्णन है और जन्म, दीक्षा, ज्ञान, मोक्ष, तो प्रगट है इसलिये अपने गच्छ पक्षका आग्रह छोड़करके श्रीवीरप्रभुके छहों कल्याणकोंको आत्मार्थियोंको मान्य करने चाहिये क्योंकि 'समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आविहुत्था चइस्सामित्ति जाणइ चयमाणे न जाणइ चुएमित्तिजाणइ' इस पाठकी तरह ही 'समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आविहुत्था साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ संहरिज्ज माणे न जाणइ साहरिएमित्ति जाणइ' यहभी पाठ समान होनेसे तथा मास पक्ष तिथि नक्षत्रका और चौदहस्वप्न देखने वगैरहका खुलासाभी दोनों वैर प्रगटपने होते भी एकको कल्याणक मानना और दूसरेको कल्याणक नहीं मानना यह तो प्रत्यक्ष करके अन्यायकी बात झूठे पक्षके हठवादियोंके सिवाय आत्मार्थी न्यायवान् पुरुषतो कदापि मान्य नहीं कर सकते हैं तथा न कर सकेंगे इस बातको विवेकी तत्वज्ञजनतो स्वयं विचार लेवेंगे,—

और अब फिरभी पाठकगणको विशेष निःसन्देह होनेके लिये श्रीवीरप्रभुके छहों कल्याणकोंकी पृथक् पृथक्

व्याख्या सम्बन्धी शास्त्र पाठ दिखाताहूं श्रीचन्द्रतिलकोपाध्यायजी कृत श्रीअभयकुमार चरित्रके पृष्ठ १८९ में षट् कल्याणक विषयिक खुलासा पूर्वक पाठ है सो नीचे मुजब है यथा—

नाथ प्राणत कल्पीय, पुष्पोत्तरविमानतः ॥ देवानन्दोदरांभोजे, राजहंसइवस्वयं १ ॥ यदीयप्रवेतषष्ठ्यांत्वा मवतारोसदाशुचिः ॥ तस्यांषाढस्यमासस्य, शुचितासङ्गतैवहि ॥ २ ॥ आश्विनाद्यत्रयोदश्यां, देवानन्दो दरात्तथा॥ त्रिशलायाःश्रितेकुक्षौ, त्वयिचित्तविधायिनी ॥ ३ ॥ यद्बभूवतरामेषा,सिद्धसर्वमनोरथा। तन्मन्ये तद्दिनाज्जज्ञे, सर्वसिद्धाश्रयोदशी ॥४॥ यस्यशुक्लत्रयोदश्यां, जातमात्रोपिसन्प्रभो ॥ स्तानक्षणेसुराधीश, शङ्कोद्धरणहेतवे ॥५॥ लीलयाचालयेन्मेरुं, यश्चित्रमकृथास्तरां मासोयमभवच्चैत्रो, मन्महेतस्ययोगतः ॥६॥ जिननाथयदीयार्यं माद्यायांदशमीतिथौ ॥ निर्वाणमार्गमूर्द्धानं, सर्वचारित्रलक्षण ॥७॥ दुर्गमप्यसहायोऽपि, त्वमुच्चैः प्रतिपन्नवान्। तस्यमासस्य युक्तैव, विद्यतेमार्गशीर्षता ॥ ८ ॥ दशम्यांयस्यशुक्लायां, घातिकर्म्ममहोदधि ॥ विलोड्य शुक्लध्यानेन, वैशाखेनगरीयसा ॥ ९ ॥ केवलज्ञानपीयूषं, जरामरणहारकं ॥ अग्रहीस्तस्यमासस्य, युक्तावैशाखताप्रभो ॥ १० ॥ कल्याणकानिपञ्चापि,समजायन्ततेप्रभो ॥ उत्तराफाल्गुनीष्वेव, लभ्ययेनलभेतमः ॥ ११ ॥ तव निर्वाणकल्याणं, यत्पवित्रयिता प्रभो। त त्तिथ्यादि नजानामि, मादृशोध्यक्षवेदिनः ॥ १२ ॥ षड्भिःकल्याणकैरेवं, स्तुतश्रीरजिनेश्वरः यथाजयामिमावारि षट्कं सद्यस्तथाकुरू ॥ १३ ॥

और श्रीजयतिलकसूरिजीकृत श्रीसुलसाचरित्रमें छ कल्याणक सम्बन्धी व्याख्याहै उसीका पाठ नीचे मुजब है यथा—

देवानन्दोदरे श्रीमान् श्वेतषष्ठ्यां सदा शुचिः ॥ अवतीर्णोऽसिमासस्या षाढस्य शुचिता ततः ॥ १ ॥ त्रिशाला सर्व सिद्धेच्छा, त्रयोदश्यांमभूद्यतः ॥ तवावतारस्तेनैषा, सर्व सिद्धा त्रयोदशी ॥ २ ॥ शुक्लत्रयोदश्यांयश्चा चलमेरु प्रचालयन् ॥ चित्रं कृतवांस्तद्योगा च्चैत्रमासोऽपि कथ्यते ॥ ३ ॥ यस्याद्य दशम्यांदुर्ग मोक्षमार्गस्यशीर्षकं ॥ चारित्रमादृतं युक्ता, मासोऽस्यमार्गशीर्षता ॥ ४ ॥ दशम्यांयस्यशुक्लायां, केवल श्रीरहोत्वया॥ त्वादत्तातेनमासोऽस्य, युक्तामाधवता प्रभो ॥५॥ तवनिर्वाणकल्याण, यद्दिनंपावयिष्यति ॥ तन्नवेद्मियतोनाथ, मादृशोऽध्यक्षवेदिनः ॥ ६ ॥ सिद्धार्थ राजांगज देवराज, कल्याणकैषड्भिरितिस्तुतस्त्वम् ॥ तथाविधेत्वांतरवैरिषट्कं यथा जयाम्याशु तवप्रसादात् ॥७॥

ऊपरके दोनों पाठोंका भावार्थ कहते हैं कि, हे–नाथ प्राणत कल्पनामा दशवें देवलोकके पुष्पोत्तर विमानसे देवानन्दा माताके उदर रूपी कमलमें राजहंसकी तरह जिस आषाढ़ मासकी शुक्ल षष्ठीको तीर्थंकरत्व पनेकी लक्ष्मी करके युक्त आपने अवतार लिया सो आप सदा (हमेसां) पवित्र है वो आपके पवित्र अवतारसे भव्य जीवोंको पवित्रता प्राप्त होवे इसमें तो कोई आश्चर्य्य नहीं है परन्तु आपके अवतारसे मासको भी पवित्रता प्राप्त हो गई यह बड़ा आश्चर्य्य हुआ इसीही कारणसे आषाढ़को शास्त्रोंमें शुचि नाम पवित्र कहाहै सो युक्तही है, तथा आश्विन कृष्णत्रयोदशीको देवानन्दा माताके उदरसे मनको आनन्दके उत्पन्न करनेवाले ऐसे आप त्रिशला माताके उदर में विराजमान हुए सो आपके यहां पधारनेके कारणसे ही

उसी दिन त्रिशला माता सर्व प्रकारके मनोर्थ वांच्छित कार्यों को पूर्ण करने वाले महामङ्गलीक कल्याणकारी चौदह स्वप्नोंसे आनन्दित हुई उसीसे उसीका सर्व सिद्धा त्रयोदशी ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ सोही मैं भी मानता हूं ॥ और हे प्रभो जिस चैत्र महिनेकी शुक्ल त्रयोदशीमें आपका जन्म हुआ तिस समये याने मेरुपर जन्म महोत्सवके अवसरमें इन्द्रकी शङ्का दूर करनेके लिये आपने लीलारूपसे मेरुको कंपाय मान किया उसीमें तो चित्र नाम कोई आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि तीर्थंकरत्वपनेकी अनन्त शक्तिको दिखानेके लिये बायें पैरके अंगुठेको नीचा करके उसीको दबायाथा इसलिये उसीमें तो आश्चर्य्य नहीं परन्तु आपके जन्म योगसे मासको चित्रता आश्चर्य्यता प्राप्त हुई उसीसे मासका नाम भी चैत्र हो गया। अथवा। अचल मेरुको चलाया उसीसे पृथव्यादि कंपने लगे जिससे लोगोंको आश्चर्य्य उत्पन्न हुआ तिससे उसी मासको चैत्र कहते है ॥ और हे परमोत्तम श्रीजिनेश्वर जिस मार्गशीर्ष मासकी कृष्ण दशमीके दिन सम्पूर्ण चारित्रके लक्षणोवाला तथा अति कठिण और उत्तम मोक्ष मार्गको किसीकीभी साह्यताबिना आपने उच्चत्वपने करके प्राप्तकिया अर्थात् अनेक तरहके बड़े बड़े उपसर्गों को सहन करनेके लिये बहुत ही कठिण वृत्तिको आपने अंगीकार करी उसीके कारणसे महिनेकी कठिणता (मार्गशीर्षता) दुनियामें कही जातीहै सो युक्तहीहै ॥ और हे प्रभो अहो इति आश्चर्य्य जिस उत्तम वैशाख महिनेकी शुक्ल दशमीके दिन आपने शुक्ल ध्यानरूपी वज्रदण्ड करके घाति कर्मरूपी समुद्रको मथन किया और जन्म जरा मरणरूपी रोगको नष्ट करनेवाला केवलज्ञान रूपी उत्तम अमृतको आपने प्राप्त किया, याने शुक्ल ध्यानसे घाति कर्मोंका नाश करके केवल ज्ञान पाये इसलिये तिस

महिनेकी वैशाखता याने श्रेष्ठतायुक्तही हैं ॥ और हे स्वामी आपके पांच कल्याणक तो हस्तोत्तरा नक्षत्रमें जिन जिन मास पक्ष तिथिको हुए उन उन मास पक्ष तिथियोंको तो आपके पांचों कल्याणकोंने पवित्र किये जिससे उन्होंके नामभी सार्थक हो गये परन्तु आपका छठा निर्वाण कल्याणक किस मास पक्ष तिथि नक्षत्रको कब पवित्र करके उसीका गुणयुक्त सार्थक नाम क्या रक्खेगा सोतो परोक्ष तथा भावी वस्तुके जानने वाला ज्ञान रहित और चरमचक्षुसे प्रत्यक्ष वस्तुके जानने वाला ऐसा मैं नहीं जान सकता हूं तथापि इतना तो जानता हूं कि आपके पांच कल्याणकतो होगये और छठा मोक्ष कल्याणक होगा इसलिये इन छहों कल्याणकों करके सिद्धार्थ राजाके पुत्र, हे जगत पूज्य मैंने आपकी भक्ति पूर्वक स्तुति करी है सो अब आप मेरेपर ऐसी जलदिसे कृपा करो कि जिससे आपके प्रसादसे मैं, मेरे अन्तरके छ भाव शत्रुओंको तत्काल जीत लेऊं अर्थात् आपके छहों कल्याणकोंकी मैंने स्तुति करी है उसीसे मेरे अन्तरके (पांच इन्द्रिय तथा छठा मन, या-पांच प्रमाद और छठा मन ॥ अथवा ॥ क्रोध मान माया लोभ और राग द्वेष यह) ६ वैरियोंका शीघ्र नाश हो ॥

अब देखिये उपर्युक्त शास्त्रानुसार भगवान्‌के विद्यमान समय समोवसरणमेंही छहों कल्याणकोंकी स्तुति होती थी तथा वर्तमानमें भी अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने लिखे है तिस परभी विनयविजयजीने उसीका निषेध किया तथा वर्तमानिक तपगच्छीय विद्वान् नाम धरातेभी उसीका निषेध करते हैं सो वृथाही कदाग्रहसे उत्सूत्र भाषण करके मिथ्यात्वके कितने विपाक भवान्तरमें भोगेंगे जिसकोतो श्रीज्ञानीजी महाराजके सिवाय कोईभी कहनेको समर्थ नहीं है

और इतने परभी श्रीपंचाशकजीमें छठे कल्याणकको न लिखनेसे न माननेके आग्रह करनेवाले विद्वत्ताभास विवेक शून्योंकों तो श्रीस्थानांगजी सूत्रके पाठानुसार मोक्ष कल्याणक भी नहीं मानना पड़ेगा क्योंकि वहां पंचम उद्देशेके पाठमें तो केवलज्ञान पर्यन्त पांचकल्याणक लिखकर मोक्षको नहीं लिखा है तो क्या तपगच्छीय विद्वान् लोग केवलज्ञान पर्यन्त श्रीवीर प्रभुके पांच कल्याणक मान्यकरके छठे मोक्षको नहीं मानेगे तो क्या अभीतक वीर प्रभुको विद्यमान, तपगच्छवाले मानते हैं यदि विद्यमान मानते होवे तबतो हम लोगोंकोभी प्रभुके दर्शन कराने चाहिये और दूसरे शास्त्रोंमें चौथे आरेके अन्तमें श्रीवीर प्रभुका मोक्ष लिखा है सो वृथा हो जावेगा और यदि श्रीस्थानांगजी सूत्रके बिना दूसरे शास्त्रानुसार श्रीवीर प्रभुका मोक्ष कल्याणकका लिखना तपगच्छीय लोग सत्य मानते होवे तब तो श्रीपंचाशकजीके बिना दूसरे शास्त्रानुसार छठे कल्याणक कोभी मानना पड़ेगा और दूसरे शास्त्रोंके प्रमाण मुजब छठे कल्याणकको मान्य करेंगे तो श्रीपंचाशकजीके नामसे छठे कल्याणकका निषेध किया सो प्रत्यक्ष मायाचारीकी धर्मधूर्त्ताई सिद्ध हो जावेगी इसलिये तपगच्छीय आत्मार्थी विवेकी पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि पक्षपातका मिथ्या हठवाद छोड़करके न्यायकी सत्य बातको प्रमाण करनेमें तत्पर होना चाहिये और नयगर्भित अपेक्षा सम्बन्धी शास्त्रकारोंके वाक्योंका तात्पर्यार्थ गुरुगम्यसे बिना समझे वा समझते हुए भी अपने पक्षमें भोले जीवोंको गेरनेके लिये हठवादसे बातको विपरीत खेंचना सोतो संसारपरिभ्रमणका हेतु भवभीरुओंको करना उचित नहीं है क्योंकि जैसे श्रीस्थानांगजी सूत्रमें छठे मोक्ष कल्याणक के लिखनेका पंचमस्थानमें सम्बन्ध नहीं होनेसे नहीं लिखा

तोभी अन्य शास्त्रानुसार मोक्ष माननेमें आता है तैसेही श्री पंचाशकजीमें बहुत तीर्थंकर महाराजोंके सम्बन्धसे छठे कल्याणकको नहीं लिखा तोभी उपर्युक्त शास्त्रानुसार जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थियोंको तो छठा कल्याणक अवश्यमेव मानना पड़ेगा परन्तु जिनाज्ञाके विराधक दीर्घसंसारी दुर्ल्लभबोधिकी तो बातही जूदी है इसको विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे,--

और आगे फिर भी विनय विजयजीने लिखा है कि (अन्यच्च नीचैर्गोत्र विपाकरूपस्य अतिनिंद्यस्य आश्चर्यरूपस्य गर्भापहारस्यापि कल्याणकत्व कथनं अनुचितं) इन अक्षरों करके श्रीवीरप्रभुके गर्भापहाररूप छठे कल्याणकको निषेध करनेके लिये विनयविजयजीने नीच गौत्रका विपाकरूप अतिनिंदनीक आश्चर्यरूप गर्भापहारको कल्याणक कहना भी अनुचित है॥ इस तरहका दिखाया सो इस तरहका उनका लेखको देखकर मूझे बड़ेही खेदके साथ बहुतही लाचारीसे लिखना पड़ता है कि विनयविजयजीने गुरुगम्यसे श्रीजैनशास्त्रोंका तात्पर्यार्थको समझे बिनाही श्रीवीरप्रभुके गर्भापहाररूप छठे कल्याणकको निषेध करनेके लिये ऊपरके शब्द लिखके वृथाही अनन्त भव भ्रमणका हेतुभूत तथा अपने और दूसरोंके सम्यक्त्वरत्नरूपी कल्पवृक्षके मूलमें दावानल लगाने जैसा महान् अनर्थकारक गाढ़ मिथ्यात्वका कारण करनेको और शासनपति श्रीवीर प्रभुकी निन्दा करनेको ही मानों विद्वान् नाम धरा करके श्रीपर्युषणा पर्वमें वांचनेके लिये ऊपरके शब्द लिखके सुबोधिका बनानेका परिश्रम किया मालूम होता है क्योंकि देखो प्रथम तो श्रीतीर्थकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकको खुलासा पूर्वक कथन किया हैं तथापि विनयविजयजीने उपरके अनुचित शब्दोंसे निषेध किया सो प्रत्यक्ष दीर्घसंसा-

रीपनेका लक्षण है क्योंकि दीर्घसंसारीके सिवाय तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनका आत्मार्थी कोईभी उपरके अनुचीत शब्दोंसे कदापि निषेध नहीं करेगा इस बातको विशेष करके पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे

और दूसरा यह है कि-चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामीजीने श्रीकल्पसूत्रमें माहणकुंडनगरके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी देवानन्दा ब्राह्मणीकी कूक्षिमें श्रीवीरप्रभु आकर उत्पन्न हुए उसीकोही कुल मदके कारणसे अच्छेरा कहा है और उसीकोही आषाढ़ शुदी ६का चयवन कल्याणकभी शास्त्रकारोंने माना है तथा सब कोई मानते भी हैं इसलिये नीच गौत्रका विपाक रूप कह करके अच्छेरेके बहाने गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे विनय विजयजीने निषेध किया सो भोले जीवोंको भ्रमानेके लिये अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे उत्सूत्रभाषण करके अपनी विद्वत्ताकी वृथा ही हासी कराई है सो विवेकी तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे

और अब पाठक वर्गको निःसन्देह होनेके लिये उपरकी बात सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रका पाठभी दिखाता हूं—तथाहि ॥

तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो, अयमेआरूवे अभत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—न एयंभूअं,नएयंभव्वं,नएयंभविस्संति,जंन्नं अरिहन्ता वा,चक्कवट्टी वा,बलदेवावा,वासुदेवावा। अंतकुलेसुवा,पंतकुलेसुवा, तुच्छकुलेसुवा, दरिद्दकुलेसुवा, किविण कुलेसुवा, भिक्खाग कुलेसुवा माहणकुलेसुवा, आयाइंसुवा,आयाइंतिवा,आयाइस्सन्तिवा, एवं खलु। अरिहंतावा, चक्कवट्टीवा, बलदेवावा, वासुदेवावा, उग्ग कुलेसुवा, भोग कुलेसुवा, राइन्न कुलेसुवा, इक्खागु कुलेसुवा, खत्तिय कुलेसुवा, हरिवंस कुलेसुवा, अन्नयरेसुवा,

तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसुवा, आयाइंसुवा (३) अत्थिपुण एसेविभावे लोगच्छेरयभूए, अणंताहिं उस्सप्पिणी ओसप्पिणीहिं विइक्कंताहिं समुप्पज्यइ, नामगुत्तस्स कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइअस्स अणिज्जिन्नस्स उदएणं, जंन्नं॥ अरिहन्तावा चक्कवट्टीवा बलदेवावा वासुदेवावा, अंत-कुलेसुवा पंतकुलेसुवा तुच्छकु० दरिद्द० भिक्खाग० किविण० माहण० आयाइंसुवा (३) कुच्छिंसि गब्भत्ताए। वक्कमिंसुवा, वक्कमंतिवा, वक्कमिस्संत्तिवा, नो चेवणं जोणी जम्मण निक्ख मणेणं-निक्खमंसुवा, निक्खमिंतिवा, निक्खमिस्संतिवा॥ अयंचणं समणे भगवं महावीरे जम्बूद्दीवे दीवे भारहे वासे माहण कुंडग्गामे नयरे उस्सभदत्तस्स माहणस्स कोडालस गुत्तस्स भारियाए देवाणंदा माहणीए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कन्ते। तं जीअमेयं तीअपच्चुपन्न मणा-गयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं, अरिहन्ते भगवन्ते तहप्पगारेहिन्तो अंत कुलेहिंतो पंतकुलेहितो तुच्छकु० दरिद्द० भिक्खाग० किविण कुलेहितो माहणकु० तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसुवा रायन्न० नाय खत्तिय० हरिवंस कुलेसुवा अन्नयरेसुवा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइ कुल वंसेसुवा साहरा-वित्तए। तं सेयं खलु ममवि समणं भगवं महावीरं चरम तित्थयरं पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं माहण कुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्त स्समाहणस्स कोडालस्स गुत्तस्स भारियाए देवानंदाए माहणीए जालंधरस्सगुत्ताए कुच्छीओ खत्तिअ कुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तिआणं सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिठस्सगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरावित्तए॥ इत्यादि॥

और यद्यपि श्रीकल्पसूत्रका उपरके पाठकी अनेक व्याख्या-

ओंके पाठ मौजूद हैं तथापि इस अवसरपरतो खास विनय विजयजीकी बनाई सुबोधिका वृत्तिमेंसे उपरके पाठकी टीका पाठकवर्गको दिखाता हूं तथाच तत्पाठः ॥

तएणमित्यादि ततः शक्रस्य देवेंद्रस्य देवानां राज्ञः । अय मेयारूवेत्ति, अयं एतद्रूपः । अभ्भतिथएत्ति, आत्मविषय इत्यर्थः । चिंतिएत्ति, चिंतात्मकः । पत्थिएत्ति, प्रार्थतोऽभिलाषरूपः । मणोगएत्ति, मनोगतो नतु वचनेन प्रकाशितः ईदृशः । संकप्पेति, संकल्पो विचारः । समुप्पजिजत्थात्ति, समुत्पन्नः कोऽसौ इत्याह ॥ नखलित्यादि, एतत् न भूतं अतीतकाले । न एयं भव्वंत्ति, न भवति एतत् वर्त्तमानकाले । न एयंभविस्संत्ति, एतत् न भविष्यति आगामिनिकाले । किंतदित्याह । जंन्नंति, यत् अर्हंतश्चक्रवर्तिनो बलदेवा वासुदेवाश्च । अन्तकुलेसुवति, अन्तकुलेषु शूद्र कुलेषु इत्यर्थः । पंतकुलेसुवत्ति, प्रान्त कुलेषु अधम कुलेषु । तुच्छ कुलेसुवत्ति, अलपकुटम्बेषु । दरिद्द कुलेसुवत्ति, निर्द्धनकुलेषु । किविणकुलेसुवत्ति, कृपण कुलेषु अदातृ कुलेषु इत्यर्थः । भिख्खागु कुलेसुवत्ति, भिक्षाकास्तालाचरास्तेषां कुलेषु ॥ तथा ॥ माहण कुलेसुवत्ति, ब्राह्मण कुलेषु तेषां भिक्षुकत्वात्, एतेषु कुलेषु । आयाइंसुवत्ति, आयाता अतीतकाले । आयाइंतिवात्ति, आगच्छंति वर्त्तमानकाले । आयाइस्सन्तिवत्ति, आगमिष्यन्ति अनागत काले । एतन्नभूत मित्यादि, योगः तर्हि अर्हदादयः केषु कुलेषु उत्पद्यन्ते, इत्याह एवं खलित्यादि, एवं अनेन प्रकारेण खलु निश्चय अर्हदादयः । उग्गकुलेसुवत्ति, उग्राः श्रीआदिनाथेन आरक्षकत्तयास्थापिताजनाःतेषां कुलेषु । भोगकुले सुवत्ति, भोगा गुरुतया स्थापिताः तेषां कुलेषु । रायन्नकुलेसुवत्ति, राजन्याः श्रीऋषभ देवेन मित्रस्थाने स्थापिताःतेषां कुलेषु । इख्खागत्ति, इक्ष्वाकाः श्रीऋषभ देव वंशोद्भवा स्तेषां कुलेषु । खत्तिअत्ति, क्षत्रियाः श्री-

आदिदेवेन प्रजालोकतया स्थापिता स्तेषां कुलेषु। हरिवंसत्ति, तत्र हरिति पूर्वभव वैरि सुरानीत हरिवर्षक्षेत्र युगलं तस्य वंशो हरि वंश एतत् कुलेषु। अन्नयरे सुवत्ति, अन्यतरेषु विशुद्ध जाति कुलेषु यत्र एवं विधेषु वंशेषु तत्र जाति मातृपक्ष कुलं पितृपक्षः ईदृशेषु कुलेषु आगता आगच्छन्ति आगमिष्यन्तिच नतु पूर्वोक्तेषु तर्हि भगवान् कथं उत्पन्न इत्याह। अत्थिपुणेत्यादि, अस्ति पुनः एषोपिभावो भवितव्यतास्य लोके आश्चार्य्यभूत। अणंताहिंति,अनन्तासु उत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु व्यतिक्रांतासु ईदृशः कश्चित् पदार्थ उत्पद्यते तत्रास्यां अवसर्पिण्यां ईदृशानि (यहां दश अछरोंका वर्णन है सो ग्रन्थसे देखो) अश्चार्याणि जात्तानि॥ नाम गुतस्सेत्यादि, एकंतावत् आश्चर्यमिदं। नामगुत्तस्स, नाम्ना गोत्रं इति प्रसिद्धं यत् कर्म्म गोत्राभिधान कर्म्मेत्यर्थः। तस्य किंविशिष्टस्य। अखीणस्सत्ति, अक्षीणस्थिते अक्षयेण। अवेइयस्सत्ति,अवेदितस्य रसस्य अपरि भोगेन। अणिजिणस्सत्ति, अनिर्जीर्णस्य जीव प्रदेशेभ्यो अपरि शटितस्य। ईदृशस्य गोत्रस्य नीचस्य नीचैर्गोत्रस्य उदयेन भगवान् ब्राह्मणी कुक्षौ उत्पन्न इति योगः (यहां नीच गोत्रके कर्म बंधका कारण और २७ भवोंका वर्णन है सो ग्रन्थसे देखो) ततः शक्र एवं चिंतयति यत् एवं नीचैर्गोत्रोदयेन अर्हदादयः ४ अन्तादिकुलेषु आगता आगच्छंति आगमिष्यन्तिच परं नो चेवणंत्ति नैव, जोणी जन्मण निक्खमणेणंत्ति, योन्या यत् जन्मार्थ निष्क्रमणं तेन निष्क्रान्ता निष्क्रामन्ति निष्क्रमिष्यन्तिच। अयमर्थः। यद्यपि कदाचित् कर्मोदयेन आश्चर्य्यभूत तुच्छादि कुलेषु अर्हदादिनां अवतारो भवति परं जन्मत कदाचिन्नभूतं न भवति न भविष्यति च। अयचणमित्यादितः गब्भाताएवक्कंतेत्ति, यावत् शुगुनं। तंजीअमेयंन्ति, तत्तस्मात्

जीत एतत् आचार एषः । इत्यर्थः । केषां इत्याह । सक्काणन्ति, शक्राणां देवेन्द्राणां देवराजानां, किं विशिष्टानां । तीअपच्चु-प्पन्नमणागयाणन्ति,अतीत वर्तमानानागतानां । कोऽसौ इत्याह यत् अरिहंतेत्ति, अर्हतो भगवंतः । तहप्पगारेहिंतोत्ति, तथा प्रकारेभ्यः पूर्वोक्त स्वरूपेभ्य अंतादि कुलेभ्यस्तथा प्रकारेषु, उग्रादीनां अन्यतरेषु कुलेषु । सहाराविित्तएत्ति, मोचयितुं ॥ तं सेयं खलवत्ति, तत्श्रेयः खलु निश्चय युक्तमेतन्ममापि श्रमण भगवंतं श्रीमहावीरं देवानंदाकुक्षाः । नायाणंत्ति, राज्ञां श्रीऋषभदेव स्वामि वश्यानां क्षत्रिय विशेषाणां मध्ये सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य भार्याऽस्त्रिशला क्षत्रियाण्याः कुक्षौगर्भतयामोचयितुं ॥इत्यादि॥

उपरके पाठका संक्षिप्त भावार्थः कहते हैं कि-सौधर्मइन्द्रने भगवान्‌को नमस्कार करके सिंहासनपर बैठे बाद मनमें विचारा कि-अरिहंत, चक्रवर्त्ती, बलदेव और वासुदेव यह चारों ही तरहके उत्तम पुरुष होते हैं सो क्षुद्रके कुलमें, अधर्मीके कुलमें, अल्प कुटम्बवालेके कुलमें,कृपणके कुलमें, निर्द्धनकेकुलमें,भिक्षा-रीकेकुलमें और ब्राह्मणके कुलमें, पहिले आये होवें, अबी आते होवे, और आगे आवेंगे, ऐसा हुआ नहीं, होगा नहीं, और हो सकताभी नहीं, परन्तु उग्रकुलमें, भोग कुलमें, राज्यकुलमें, आदिनाथस्वामीके कुलमें, क्षत्रियकुलमें, हरिवंस कुलमें, इस तरहसे उत्तमजाति और उत्तमकुल दोनों तरहकी शुद्धतावाले कुलोंमें अरिहंतादि चारोंही तरहके उत्तम पुरुष पहिले उत्पन्न हो गये, आगे होवेंगे, वर्तमानकाले होते हैं, तथापि अनन्ती उतसर्पिणी और अनन्ती अवसर्पिणी व्यतीत हो जानेसे भवि-तव्यताके योगसे कुलमदादि कारणसे अरिहंतादिकोंके क्षुद्रादि-कुलोंमें उत्पन्न होने वगैरहकी लोकमें आश्चर्य्यभूत ऐसी बातें आगे बनी है फिर बनेंगे और वर्तमानमें बनती भी हैं परन्तु

निश्चय करके अरिहंतादिकोका क्षुद्रादिकुलोंमें जन्मतो हुआ नहीं होगानहीं और होताभी नहीं क्योंकि पहिले होगये, आगे होवेगे और वर्त्तमानमें है उन सब इन्द्रोंका यह आचाररूप धर्महै, कि अरिहंतादि अशुभकर्मयोगसे क्षुद्रादिकुलोंमें आकर उत्पन्न होवे उन्होंको उग्रादि उत्तमकुलोंमें स्थापन करावे इसलिये सौधर्म इन्द्रने विचारा कि मेरेकोभी श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामीको ब्राह्मण कुलसे देवानंदाके उदरसे क्षत्रिय कुलमें त्रिशलाकेउदरमें स्थापन कराना सोकल्याणकारी निश्चय करके योग्यही है इसतरहका विचारके अपना आज्ञाकारी हरिणेगमेषिदेवको बुलाकर, उपर मुजब कहकरके समझाया और श्रीवीरप्रभुको ब्राह्मणकुलसे क्षत्रियकुलमें पधराये

अब इस जगह आत्मार्थी विवेकी पुरुषोंको पक्षपात रहित होकरके न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि, सूत्रकार महाराजके कथनानुसार खास आप विनयविजयजीने ही श्रीवीर प्रभु ब्राह्मण कुलमें आषाढ़ शुदी ६ को देवानंदा माताके उदरमें उत्पन्न हुए उसीकोही नीचगौत्रका विपाक और आश्चर्य कहा तथा उसीकोही च्यवन कल्याणक आप भी मानते हैं और नीच गौत्रका विपाक तथा आश्चर्य यह दोनों ऊपरके विशेषण भी ब्राह्मण कुलमें भगवान्‌के उत्पन्न होनेको लगते हैं इसलिये ब्राह्मण कुलसे क्षत्रिय कुलमें सिद्धार्थ राजाके यहां भगवान् गये उसीसे गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याणकको विनय विजयजीने ऊपरके विशेषण लगाके कल्याणकत्वपनेसे निषेध किया सो कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि यद्यपि कारणकार्य भावसे ऊपरके विशेषण ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होनेरूप देवलोकसे आनेके प्रथम च्यवन कल्याणकको तथा उत्तम कुलमें प्रवेश करने रूप गर्भापहारके दूसरे च्यवन कल्याणकको भी

लगते हैं परन्तु कल्याणकत्वपनेसे तो कोई भी निषेध नहीं हो सकता है क्योंकि कारण भावसे ब्राह्मण कुलमें भगवान्‌के उत्पन्न होनेमें उपरके विशेषण लगते भी प्रथम च्यवन कल्याणकत्वपना माना जाता है तैसे ही कार्य भावसे त्रिशलामाताके उदरमें पधारने रूप गर्भापहारको भी ऊपरके विशेषण लगते भी दूसरा च्यवन कल्याणकत्वपना माननेमें कुछ भी वितंडावाद नहीं चल सकता है तथापि गच्छकदाग्रहके हठवादसे ऊपरके विशेषण त्रिशलामाताके उदरमें पधारनेको लगाके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेसे तो ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होनेको भी उपरके विशेषण लगके कल्याणकत्वपना निषेध हो जावेगा तबतो प्रथम च्यवन और गर्भापहार रूप दूसरा च्यवन यह दोनों कल्याणक निषेध होनेसे बाकी श्रीवीरप्रभुके च्यारही कल्याणक रह जानेका तपगच्छीय विद्वत्ताभास कदाग्रहियोंकी कल्पनाका ११ वा एक अपूर्व आश्चर्य पंचमकालमें भी होजावेगा उसीको श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाके आराधक विवेकीतत्वज्ञ तो (ऐसी कदाग्रहकी कल्पित बातको) कदापि नहीं मान सकते हैं परन्तु श्रीजिन आज्ञा विराधक गड्डरीह प्रवाही विवेक शून्योंकी तो बात ही जूदी है और उपरके विशेषणोंका कारण कार्यभाव दोनोंमें विद्यमान होते भी एकको कल्याणक मानना और दूसरेको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करना सो गच्छ कदाग्रहका प्रत्यक्ष अन्याय अंध परंपरा वालोंके सिवाय विवेकी तत्त्वज्ञोंका तो कदापि न होगा सो भी पाठकगण स्वयं विचार लेना

और तीसरा यह है कि-मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी भव्य जीवोंको कुल मदादि कर्मविटंबनासे छोड़ा करके प्रमाद रहित तासे मोक्ष मार्गमें प्रवर्तानेवाला गर्भापहाररूप श्रीवीरप्रभुका

अतिउत्तम दूसरा चयवन कल्याणकको अतिनिंदनीक लिख करके और कहकरके श्रीजिन आज्ञाके विराधक गड्डरीहप्रवाही विवेकशून्य साध्वाभासोंसे हरवर्षे पर्युषणामें वंचानेका कारण करके भोले जीवोंको शासनपति तीर्थंकर महाराज श्रीवर्द्धमान स्वामिकी निन्दा करने करानेके कार्यमें फसाकर संसारमें परिभ्रमणका रस्ता दिखाना सोतो मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी प्राणियोंके आत्मसाधनमें विघ्न कारक प्रत्यक्ष अनन्त संसारीपनेका लक्षण है क्योंकि-देखो-श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारको दूसरा चयवन कल्याणक मान्य करके तपश्चर्यादि धर्मकृत्यों करके आराधन करनेसे मरीचिके भवमें नीचगोत्र बांधनेकी तथा अनेक भवोंमें उसीको भोगनेकी और अन्तमें ब्राह्मणकुलमें अवतार होकरके गर्भापहारके होनेसे कर्मोंकी विचित्रगतिकी भावनासे कुलमद रहित होकरके आत्मार्थी प्राणी अपने दिलमें ऐसा विचारेगा कि, देखो अनन्त सकती वाले श्रीवीर प्रभुको भी पूर्व भवके कुल मदका कर्म भोगना पड़ा तो अल्प सकती वाला मेरे जैसा तुच्छ जीवकी तो कौन गिनती है इत्यादि भावनासे उसीको कोई बातका अभिमान नहीं हो सकेगा और विनय नम्रतादिगुणोंकी प्राप्ति होवेगी सोतो श्री वीरप्रभुके दूसरा चयवन कल्याणकको माननेसे ही उत्तम प्रकारकी भावना और धर्मध्यान अवश्यमेव करनेमें आवेगा उसीसे कर्मोंकी अनन्त निर्ज्जरा होनेका कारण है और इस कारणसे भव्यजीवोंका कल्याणरूप आत्मसाधनका कार्य हो सकता है इसलिये ही श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने उसीको कल्याणक माना है सो आत्मसाधनाभिलाषियोंको तो अवश्यमेव निश्चय करके गर्भापहारको दूसरा च्यवन कल्याणक मानना चाहिये और विनयविजयजीने आज्ञानतासे उसीको

निषेध किया तथा उसी रस्तेसे वर्तमानिक कितनेही लोग निषेध करते हैं सोतो अपनी आत्म घातका ही कारण करते हैं इस बातको विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे,

और देखिये बड़ी ही आश्चर्यकी बात है कि-नीचगौत्रके विपाक रूप तथा आश्चर्यरूप ब्राह्मणकुलमें भगवान् उत्पन्न हुए सो व्यवहार विरुद्ध अतिनिन्दनीक कहते हुएभी उसीको कल्याणक मानते है और नीचगौत्रका विपाक भोगेबाद (क्षय हुएबाद) व्यवहार विरुद्ध निन्दनीकपना मिटानेके लिये उत्तम कुलमें पधारे उसीको कल्याणत्वपनेसे निषेध करते हैं सो विनयविजयजीकी तथा वर्तमानिक कदाग्रहियोंकी विवेक शून्यताकी विद्वत्ताका निज परके आत्मघात करने वाला कलयुगी प्रकाश ही मालूम होता है सो गड्डरीह प्रवाही अंधपरंपरा वाले और दृष्टिरागके फन्दमें फंसे हुए जनोंके सिवाय आत्मार्थियोंको अवश्यमेव परिहरणे योग्य है इसको भी विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे,

और ब्राह्मणकुलमें भगवान्का उत्पन्न होना सो निन्दाका और लज्जाका कारण कहा जा सकता है नतु उत्तम कुलमें पधारना सो, क्योंकि देखो, यदि ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरे भगवान्का जन्म होता तो तत्वज्ञान रहित ब्राह्मण लोग बिना विचार कियेही हरेक जैनीसे हरेक प्रसंगमें वारंवार क्षुद्रपनेकी वाचालता प्रगट करते ही रहते कि जैनियोंके परमेश्वर तो ब्राह्मण लोग होतेहैं और अब जैनी लोग ब्राह्मणोंको पूजने वगैरहकी बातोंको नहीं मानते हैं सो परमेश्वरके द्रोहीहैं इस तरहसे बालजीवोंके आगे अपना प्रपंच प्रगट करके जैनियोंकी निन्दा पूर्वक मिथ्यात्व बढ़ाते रहते और अपनी भ्रम जालमें भोले जीवोंको फंसाकर अपना अभीष्टसिद्ध करनेके लिये जैनियोंको

कलङ्कीत करते रहते और राज्यवंशी उत्तम क्षत्रिय शूरवीरोंका जैनधर्मको हाणी पहुंचाते सोही जैनियोंको परम लज्जाका कारण होनेसे अतीव निन्दनीक था सो इन्द्र महाराजने मिटानेके लिये सिद्धार्थ राजाके घरे उत्तम कुलमें भगवान्को पधारनेका अतीव श्रेष्टकार्य करके राज्यवंशी उत्तम क्षत्रिय शूर वीरोंका जैनधर्मको कलङ्क रहित कायम रखखा और लज्जाके निन्दाके तथा ब्राह्मणोंसे मिथ्यात्व बढ़नेवाली बातके कारणको जड़ मूलसे काटडाला उसी कारणकोही विनयविजयजीने अति निन्दनीक कहा तथा अंधपरंपराके मिथ्यात्वसे वर्तमानिक तपगच्छीय कदाग्रही लोग हरवर्षे कहते रहते हैं। हा अतीव खेदः। विवेक विकल विद्वत्ताभासोंके सत्यज्ञान रूपी अन्तर चक्षुको गाढ़ मिथ्यात्व रूप अतीव अन्धकारके पडलोंने कैसी दृढ़ता करलीहै सो सत्य बातका निषेध करनेके लिये संसार वृद्धिका हेतूभूत उत्सूत्र भाषण और श्रीवीरप्रभुकी निन्दा करते हुए भी सत्यवादी शुद्ध प्ररूपक बनते हैं सो तो भारी कर्मे प्राणियोंके लिये पाखण्ड पूजा नामक अच्छेरेका कलयुगी प्रकाश ही मालूम होताहै इसको विशेष करके विवेकी तत्त्वज्ञ-जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और चौथा यह है कि गर्भापहारको अति निन्दनीक वगैरह विशेषण लगा करके कल्याणकत्वपनेसे विनयविजयजीने निषेध किया तथा वर्तमानिक लोग करते हैं सोतो निष्केवल अपने गच्छपक्षके आग्रहसे उत्सूत्रभाषण करके भोले जीवोंको वृथाही मिथ्यात्वके भ्रममें गेर कर संसार वृद्धिका हेतु करके अपनी आत्मसाधनके सम्यक्त्व रूपी सरल रस्ताको भूल करके मिथ्यात्वके विकट भ्रममें फिरनेका कारण करते हैं क्योंकि-श्रीगणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामीजीने श्रीसमवायांगजी सूत्रमें तथा श्री

नवांगी वृत्तिकार श्रीखरतर गच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीमदभयदेव सूरिजी महाराजने श्रीसमवायांगजी सूत्रकी वृत्तिमें देवानन्दा माताके उदरसे त्रिशला माताके उदरमें भगवान्‌के पधारने रूप गर्भापहारको उत्तम प्रकारके भवकी गिनतीमें लिया है इस लिये गर्भापहार निन्दनीक नहीं हो सकता है किन्तु उत्तम तो प्रत्यक्षही सिद्ध होता है अब इस अवसरपर श्रीगणधर महाराजकृत श्रीसमवायांगजी सूत्रका तथा श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजकृत उसीकी वृत्तिका पाठ यहां दिखाता हूं सो धनपति सिंह बहादुरके आगम संग्रह भाग चौथेमें श्रीसमवायांगजी सूत्रवृत्ति सहित छपकर प्रसिद्ध हुआ है जिसके पृष्ठ १६६।१६७ का पाठ नीचे मुजब है यथा—

समणे भगवं महावीरे तित्थगर भवग्गहणाओ छठे पोट्टिल भवग्गहणे एगंवासकोडिं सामन्न परियागं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सब्बठ विमाणे देवत्ताए उववन्ने ॥

व्याख्या-समणेत्यादि किल भगवान् पोटिलाभिधानो राजपुत्रो बभूव तत्र वर्षकोटिं प्रव्रज्यांपालितवानित्येकोभवः। ततो देवो भूदिति द्वितीयः। ततो नंदनाभिधानो राजसूनुः छत्रा नगर्यां जज्ञे-इति तृतीयः। तत्र वर्ष लक्षम् सर्वदामास क्षपणेन तपस्तप्त्वा दशम देवलोके पुष्पोत्तर वरविजय पुंडरीका भिधाने विमाने देवोभवदिति चतुर्थः। ततो ब्राह्मण कुंड ग्रामे ऋषभदत्त ब्राह्मणस्य भार्याया देवानंदाभिधानायाः कुक्षावुत्पन्न इति पंचमः। ततोऽह्यशीतितमे दिवसे क्षत्रिय कुंड ग्रामेनगरे सिद्धार्थ महाराजस्य त्रिशलाभिधान भार्यायाः कुक्षाविन्द्रवचन कारिणा हरिनैगमेषिनाम्ना देवेन संहृतोनीतस्तीर्थंकरतयाच जात इति षष्ठः। उक्त भवग्रहणं हि विना नान्यद्भवग्रहणं षष्टं श्रुयते भगवत इत्येतदेव षष्ठभवग्रहण तया व्याख्यातं यस्माच्च

भवग्रहणादिदंषष्ठ तद्पये तस्मात्षष्ठमेवेति सुब्दूच्यते तीर्थंकर भवग्रहणात्षष्ठे पोटिल भवग्रहणे–इति॥

उपरके पाठका भावार्थ कहते हैं कि–श्रमण भगवान् श्री महावीरस्वामीके पूर्वभवोंकी गिनती करनेमें तीर्थंकरत्वपनेके पहिले निश्चय करके भगवान् छठे भवमें महाविदेह क्षेत्रे मुका नगरीमें चौराशी लाख पूर्वके आयुष्ये पोटिल नामा राजपुत्र हुए वहां चक्रवर्तीपनेकी ऋद्धिको छोड़ करके एक क्रोड़ वर्ष पर्यन्त समान्यपने दीक्षा पर्यायको पालन करी सो प्रथम भव। वहांसे सहसार नामा आठवें देवलोकके सर्वार्थ सिद्ध नामा विमानमें देवतापने उत्पन्न हुए सो दूसरा भव। और वहांसे इसी भरतक्षेत्रकी छत्रानगरीमें नन्दनामा राजपुत्र हुए सो तीसरा भव॥ और वहां २४ लाख वर्ष तक गृहस्थावासमें राज्यका पालण करके पीछे दीक्षा लेकरके एक लाख वर्षतक निरन्तर मास मास क्षमणकी तपस्यासे श्रीवीश स्थानकजीका आराधन किया सो ११८०६४५,अथवा मतान्ततरे ११८०५००, मास क्षमण करके दशवे देवलोकके पुष्पोत्तर नामा विमानमें देवता हुए सो चौथाभव॥ और वहांसे देवत्वपनेका आयुष्य पूर्ण करके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी देवानंदा नामा ब्राह्मणीके उदरमें आकर उत्पन्न हुए सो पञ्चमभव। और वहांसे ८२ वेंदिन इन्द्रकी आज्ञानुसार हरिणेगमेषी देवने सिद्धार्थ राजाकी त्रिशलाराणीके उदरमें स्थापित किये और तीर्थंकरपने प्रगट हुए सो छठाभव।

और देवानन्दामाताके उदरसे त्रिशलामाताके उदरमें भगवान्का पधारना हुआ सो उपरमें भगवान्का छठा भव कहा है उसीको छठेभवमें गिनती किये बिना तो निश्चय करके भगवान्का दूसरा कोई अन्य छठा भवग्रहण करनेका तो किसी भी शास्त्रमें सुननेमें नहीं आया इसलिये वोही (त्रिशलामाताके

उदरमें पधारने रूप गर्भापहारको) छठा भवकी गिनतीमें कहा गया है सो ही जिस पोटिलके भवग्रहणसे भगवान्‌का यह छठा भव श्रेष्ठपनेसे कहनेमें आया तिस भगवान्‌के भवग्रहणसे छठा पोटिलकाभव गृहण किया गया ॥

अब देखिये उपरके पाठमें श्रीगणधर महाराजने तथा श्री अभयदेव सूरिजी महाराजने देवानन्दामाताके उदरसे त्रिशला माताके उदरमें पधारने रूप गर्भापहारको निश्चय करके उत्तम प्रकारके भवकी गिनतीमें प्रमाण किया तथा त्रिशला माताके उदरमें जानेसे ही तीर्थंकरपने प्रगट होनेका लिखा इससे तथा श्रीकल्पसूत्र और उनकी अनेक व्याख्या वगैरह अनेक शास्त्रानुसार भगवान्‌के गर्भापहार होनेसे च्यवन कल्याणककी तरह ही त्रिशलामाताने चौदह स्वप्नोंको देखे तथा शास्त्रकारोंने भी स्वप्नोंका विस्तारसे वर्णनकिया और सिद्धार्थ राजाने स्वप्न पाठकोंको बुलाकर स्वप्नोंका अर्थ पूछनेसे पुत्रोत्पत्ति सम्बन्धी व्याख्या वगैरह कारणोंसे भगवान्‌के गर्भापहारको अति श्रेष्ठतापूर्वक कल्याणकत्वपना तो स्वयं सिद्ध होते भी विनयविजयजीने उसीको अतिनिन्दनीक कह करके कल्याणकत्वपनेसे निषेध किया सो गच्छकदाग्रहके मिथ्यात्वसे भगवान्‌की तथा अनेक शास्त्रकार महाराजोंकी बड़ी ही आशातना करके अपनेको और अन्धपरंपरा वाले दृष्टिरागियोंको भवोभवमें भगवंतकी आशातनाके अतीव निन्दनीक महान् अनिष्ट कर्म उपार्जन करने करानेका बृथाही कारणकियाहै सो तो शास्त्रज्ञ विवेकीजन स्वयंविचारलेवेंगे,-

और अब वर्तमानिक श्रीतपगच्छके महाशयोंसे मेरा यही कहना है कि आप लोग श्रीगणधर महाराजके तथा श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके और पञ्चांगी-

शास्त्रोंके वचनोंको सत्यमान्यकर उनपर पूर्ण विश्वास (श्रद्धा) रखने वाले सत्यग्रहणाभिलाषी श्रीजिनाज्ञाके आराधक सम्यक्त्वधारी हो तब तो गर्भापहार रूप भगवान्का दूसरा च्यवन कल्याणकको निषेध करनेके लिये अतिनिन्दनीक वगैरह शब्द कह करके, संसार परिभ्रमणका कारण करते हो जिसको तत्काल छोड़कर उपर्युक्त महाराजके शास्त्र वचनानुसार निश्चय करके गर्भापहारको उत्तम प्रकारके भवकी गिनतीमें लेकरके कल्याणकृत्वपनेमें अवश्यमेव मान्य करोगे तथा दूसरोंको कराओगे तबहीतो आप लोग श्रीगणधर महाराजके तथा श्रीअभयदेवसूरिजीके और पञ्चांगी शास्त्रोंके वचनोंको सत्य मान्यकर उनपर श्रद्धा रखनेवाले तथा न्यायानुसार सत्य बातको ग्रहण करनेवाले सम्यक्त्वधारी आत्मार्थी श्रीजिनाज्ञाके आराधक बन सकोगे, अन्यथा कदापि नहीं क्यों, कि जो गर्भापहार अतिनिन्दनीक होता तो शास्त्रकार महाराज गर्भापहारको निश्चय करके उत्तम प्रकारके भवकी गिनतीमें कदापि नहीं लाते और यहां तो खुलासा पूर्वक लाये हैं इसलिये गर्भापहार अतिनिन्दनीक तो क्या परन्तु कुछ भी निन्दनीक नहीं अर्थात् अतीव श्रेष्ट है तथापि विनयविजयजीने अतिनिन्दनीक कहा तथा वर्तमानमें भी अन्धपरंपरासे जो लोग कहते हैं सो अपने और गच्छममत्वियोंके विकट कर्मबंधका और संसारमें परिभ्रमणका कारण करते हैं इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी जन तो अपनी बुद्धिसे आप ही विचार लेवेंगे,–

और इतने परभी वर्तमानिक श्रीतपगच्छवाले महाशयोंको श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक माननेमें लज्जा आती होवे तो आषाढ़ शुदी ६ को देवानन्दा माताके उदरमें भगवान् पधारे

उसीको च्यवन कल्याणक मानना छोड़कर आश्विन बदी १३ को त्रिशला माताके उदरमें भगवान् पधारे उसीको च्यवन कल्याणक मान्यकर लेवें, क्योंकि–नीच गौत्रके विपाकसे आश्चर्यरूप तथा ब्राह्मण लोगोंसे जैनियोंकी निन्दापूर्वक मिथ्यात्व बढ़नेका कारण तो आषाढ़ शुदी ६ को देवानन्दा माताके उदरमें भगवान् उत्पन्न हुए सो वहां जन्म होनेसेही होता जिसको अर्थात् उपरकी सब बातोंको मिटानेके लिये त्रिशला माताके उदरमें पधारे हैं इसीलिये तो उपरोक्त शास्त्रकार महाराजने उसीको भवकी गिनतीमें लिया ॥ इस जगह परभी विवेकी तत्त्वज्ञोंको न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि–जब त्रिशलामाताके उदरमें भगवान् पधारे तब ही तीर्थंकर भगवान् उत्पन्न होने सम्बन्धी चौदह स्वप्नोंका विस्तारसे वर्णन वगैरह कार्य भी सिद्धार्थ राजाके वहां हुए इसलिये आश्विन बदी १३ को भगवान्के उत्पन्न होनेको चयवन कल्याणकत्वपना निश्चय करके निःसन्देहता पूर्वक स्वयं सिद्ध हो चुका, इसलिये आश्विन बदी १३ को त्रिशला माताके उदरमें भगवान्का पधारना हुआ सो गर्भापहाररूप चयवन कल्याणकको शास्त्र वाक्य प्रमाण करनेवाले आत्मार्थी तो कोई भी कदापि काले निषेध नहीं करेगा परन्तु दीर्घ संसारी मिथ्यात्वियोंके अन्तरका हठवादको तो तीर्थंकर गणधर भी छोड़ाने समर्थ नहीं होसकते तो मेरा लिखना किस हिसाबमें अर्थात् उपरका मेरा लेख सत्यग्रहणाभिलाषी श्रीजिनाज्ञाके आराधकोंको तो हितकारी होगा नतु अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी दुर्लभबोधिजनोंको

और सर्वगच्छवालोंके माननीय पूज्य श्रीअभयदेव सूरिजीके वचनानुसार श्रीसमवायांगजी चौथे अङ्गकी वृत्तिके वाक्यसे आश्विन बदी १३ को त्रिशलामाताके उदरमें भगवान् पधारनेको उपर्युक्त

कारणोंसे कल्याणकत्वपना सिद्ध करके पाठक गणको यहां दिखाया तथा इन्हीं महाराजके वचनानुसार श्रीस्थानांगजी तीसरे अङ्गकी बृत्तिके वाक्यसे और श्रीकल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंके वाक्योंसे छ कल्याणक श्रीवीरप्रभुके प्रत्यक्षपने सिद्ध होते भी ऐसा कौन श्रीजिनाज्ञा विराधक भारीकर्मा निर्लज्जहोगा सो शास्त्र प्रमाण और युक्तिपूर्वक प्रत्यक्षसिद्ध बातको भी निषेध करके अपने गच्छकदाग्रहके हठवादके मिथ्यात्त्वकी स्थापन करनेका परिश्रम करके भोले जीवोंको भ्रमानेके लिये आगेवान होगा जिसकी तो अब थोड़े ही समयमें यह ग्रन्थ प्रगट हुए बाद परीक्षा हो जावेगा

और भी पाठकवर्गको विनय विजयजीकी धर्म ठगाईकी मायाचारीका नमूनादिखाता हूं, कि-देखो-खास आपने ही श्री कल्पसूत्रके मूलपाठानुसार सौधर्मेन्द्रने भगवान्को ब्राह्मण कुलसे क्षत्रिय कुलमें पधारनेका किया सो आचाररूपी धर्म तथा कल्याणकारी है इसलिये गर्भापहार करना निश्चय करके युक्तही है॥ ऐसा लिखा–जिसका पाठ भावार्थ सहित उपरमें ही छप गया है और फिर ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरसे सिद्धार्थ राजाके घरमें भगवान्के पधारनेकी व्याख्या करते विशेष करके १ श्लोकमें "भव्यजीवोंका कल्याण करनेवाले श्रीवीरप्रभु अच्छा मुहूर्त्त देखकर ब्राह्मणके घरसे सिद्धार्थ राजाके घरे पधारे" ऐसे मतलबकी व्याख्या करी सो श्लोक भी इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ५०४ में छप गया हैं॥ अब इस जगह परभी विवेकी सज्जनोंको पक्षपात रहित हो करके न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि-देवानन्दा ब्राह्मणीके उदरसे त्रिशला क्षत्रियाणीके उदरमें इन्द्रने भगवान्का पधारना किया सोही गर्भापहार होनेको खास आप विनय विजयजी ही अपनी बनाई सुबोधिकामें प्रगटपने

गर्भापहार करानेका इन्द्रका धर्म है कल्याणकारी है सो निश्च य करके युक्तही है और भव्यजीवोंका कल्याणके लिये अच्छा मुहूर्त्त देखकर ब्राह्मणके घरसे सिद्धार्थ राजाके घरमें भगवान् पधारे इस तरहका लिखते हैं सो अनन्तपुण्यवाला एक भव अवतारी अनेक तीर्थंकर महाराजोंका भक्त और निर्मल सम्यक्त्वरत्नके तथा अवधिज्ञानके धरनेवाला सौधर्मेन्द्रको तो गर्भापहारका होना कल्याणकारी ठहरा तब तो श्रीवीरप्रभुके भक्त आत्मार्थी अन्य जीवोंको तो निःसन्देहतापूर्वक निश्चय करके गर्भापहार कल्याणकारी स्वयं सिद्ध होगया इससे तो गर्भापहारको विनय विजयजीके लिखनेके अनुसार भी कल्याणकत्वपना प्रगटपने सिद्ध होता है तथापि विनयविजयजीने उसीको अतिन्दनीक लिखकर अपने अन्धपरंपराके मिथ्यात्वकी भ्रमजालमें भोले जीवोंको गेरनेके लिये कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेका परिश्रम किया सो उनकी तात्पर्यार्थमें विवेक बुद्धिकी विकलता कहीजावे, या-जानबुझकर अपने गच्छकदाग्रहकी कल्पित बातको स्थापन करनेरूप अभिनिवेशिकमिथ्यात्व कहाजावे, अथवा विवेक बुद्धिके बिना अपने लिखे वाक्यका भी अर्थ भूल करके तत्त्वज्ञोंसे अपने विद्वत्ताकी हांसी करानेका कारण कहा जावे सो तो निष्पक्षपाती विवेकी पाठकगण अपनी बुद्धिसे आपही विचार लेना चाहिये ॥

और भी देखिये बड़ेही खेदके साथ बहुतही आश्चर्यकी बात है कि विनयविजयजीने एक जगह तो गर्भापहारके करानेका इन्द्रका धर्म तथा अवश्य कर्तव्य और कल्याणकारी लिखा फिर इसी बातको अपने अन्तर मिथ्यात्वसे पूर्वापरविरोधि वाक्यका भय न करके अतिनिन्दनीक लिखते विवेक बुद्धि बिना विद्वानोंसे अपनी हांसी करानेकी कुछ भी अपने हृदयमें लज्जा नहीं

रक्खी परन्तु वर्त्तमानमें गच्छकदाग्रहके अन्धपरंपरामें चलने वाले विवेक शून्यतासे साध्वाभास लोग प्रतिवर्षे श्रीपर्युषणा पर्वमें धर्मध्यानके दिनोंमें कल्याणकारी बातको भी अति निन्दनीक कहते हुए धर्माधर्मका विचार किये बिना गाडरीह प्रवाहसे निज परके सम्यक्त्वरत्नको नष्ट करनेका और अनन्त भव भ्रमणका हेतु करते कुछ भी लज्जा नहीं रखते हैं। हा हा अति खेदः। इस पञ्चम कालमें तत्वज्ञान रहित, विवेक विकल, विद्वत्ताके अभिमान रूपी अजीर्णताके रोगसे ग्रस्त, जैनाभास, उत्सूत्रभाषक, तथा श्रीवीरप्रभुके निन्दक, भारीकर्मे प्राणियोंने शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको भी उत्थापन करके सत्य बातका निषेध करनेके लिये कुयुक्तियोंके भ्रमका और भगवंतकी आशातनाका कारण तथा गाढ़ मिथ्यात्व बढ़ानेवाला कैसा कल्पित मार्गको चलाया और चला रहे हैं जिन्होंकी आत्माका संसारमें परिभ्रमणका पार कब आवेगा जिसको तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने और ऐसे मिथ्यात्वके मार्गमें जिनाज्ञा विराधक दीर्घ संसारीके सिवाय आत्मार्थी तो कोई भी फसनेका संभव नहीं है तथापि कोई अज्ञान दशासे फसगये होवे उन्होंका तत्काल उद्धार करके श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्य बातकी शुद्ध श्रद्धा जो सम्यक्त्वरत्न उसकी प्राप्तिके लिये ही यह मेरा लिखना अल्पसंसारीको उपयोगी हो सकेगा नतु मिथ्यात्वी दीर्घ संसारके लिये क्योंकि जो सत्यग्रहणकाभिलाषी आत्मार्थी प्राणी होगा सो तो शास्त्रोंके प्रमाणानुसार तथा युक्तिपूर्वक सत्य बातको देखते ही तत्काल उसीको ग्रहणकरके अपने अंधपरंपराके कदाग्रहका शीघ्र त्याग करेगा और भगवान्‌की आज्ञा मुजब अपने आत्म कल्याण करनेके कार्यमें उद्यम करेगा और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी दीर्घ संसारी होगा सो तो सत्य बातका ग्रहण करनेके

बदले अपने कल्पित मन्तव्यके कदाग्रहको विशेष पुष्टकरता हुआ भोले जीवोंको उसीके भ्रममें गेरनेके लिये उत्सूत्रभाषणोंका और कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रह करके विशेष मिथ्यात्व बढ़ानेका कारण नहीं करेगा तोभी बहुत ही अच्छा है

और ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरे भगवान्‌का उत्पन्न होना सो नीच गौत्रका विपाक तथा आश्चर्य रूप होनेसे गुप्तपने रहे क्योंकि तीर्थंकरकी उत्पत्ति सम्बन्धी दुनियामें कोई भी बात प्रगट नहीं हुई जिसको तो कल्याणक मानते हैं और नीच गौत्रका विपाक भोगे बाद भगवान् सिद्धार्थ राजाके घरे पधारे सो प्रगटपने तीर्थंकर उत्पत्तिका बड़ा महोत्सव हुआ तथा तीर्थंकर उत्पत्ति सम्बन्धी दुनियामें भी प्रगटपने बात हुई और शास्त्रकारोंने भी उसीको कल्याणक माना और श्रीपार्श्वनाथ-स्वामीके श्रीनेमिनाथस्वामीके तथा श्रीआदिनाथस्वामीके तीर्थंकरत्वपने उत्पन्न होनेसे माताके चौदह स्वप्नोंकी व्याख्या करने सम्बन्धी भलामण शास्त्रकारोंने श्रीवीरप्रभुके गर्भापहा-रसे त्रिशलामाताके चौदह स्वप्नोंकी खुलासा पूर्वक दी है इससे भी गर्भापहारको कल्याणकत्वपना सिद्ध है क्योंकि जो गर्भाप-हारको च्यवन कल्याणककी प्राप्ति नहीं होती तो शास्त्रकार महाराज श्रीपार्श्वनाथस्वामी आदि तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन कल्याणक सम्बन्धी चौदह स्वप्नोंका विस्तार करनेके लिये उसीकी भलामण कदापि नहीं देते परन्तु प्रगटपने दी है इसलिये सामान्यता होनेसे गर्भापहारको कल्याणत्वपनेकी अवश्यमेव प्रगटपने प्राप्ति है तथापि उसीका निषेध करके कल्याणक नमाननेके आग्रहमें फसकर विशेष करके उसीकी निन्दा करना सो तो प्रत्यक्षपने गच्छकदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके सिवाय और क्या होगा सो पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे,–

तथा और भी देखिये गर्भापहारको अति निन्दनीक कहने वाले गच्छसमत्वियोंको हृदयमें विवेक बुद्धि लाकर थोड़ासा भी तो विचार करना चाहिये कि कोई अल्प बुद्धिवाला सामान्य पुरुष भी जान बुझकर निन्दनीक काम नहीं कर सकता है तो फिर अनन्तबुद्धिवाले निर्मलअवधिज्ञानी और अनेक तीर्थंकर महाराजोंके परम भक्त तथा धर्मदेशना सुननेवाले एकभव करके ही मोक्षमें जानेवाले सौधर्मेन्द्रने जानबुझ करके गर्भापहारका अतिनिन्दनीक काम क्यों किया, क्योंकि तुम्हारे मन्तव्य मुजब तो गर्भापहार हुआ सो अति निन्दनीक हुआ सो अतिनिन्दनीक काम नहीं होना चाहिये तबतो ब्राह्मण कुलमें ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरमें भगवान्का जन्म होता तो आप लोगोंके अच्छा होता परन्तु शास्त्रकार महाराजोंने तो ब्राह्मण कुलमें भगवान्का जन्म होना अच्छा नहीं समझा और इन्द्र महाराजने भी भगवान्का ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होना तथा वहां ब्राह्मण कुलमें ही जन्म होना इसको अच्छा नहीं याने अनुचित समझ करके ही तो अपने और दूसरोंके हितके लिये तथा भगवान्की भक्तिके लिये गर्भापहारसे भगवान्को उत्तम कुलमें पधारनेका किया सो उसीको शास्त्रकारोंने खुलासापूर्वक लिखा इससे प्रत्यक्षपने सिद्ध होता है कि गर्भापहार अतिनिन्दनीक नहीं किन्तु अतीव उत्तम तथा कल्याणकारी है इसलिये जो श्रीजिनाज्ञाके अराधक आत्मार्थी होवेगें सो तो इन्द्र महाराजकी तरह गर्भापहारको अतीव उत्तम तथा कल्याणकारी मान्य करेगें जिन्होंका शुद्ध श्रद्धासे आत्म कल्याण भी शीघ्र होजानेका संभव है और श्रीजिनाज्ञाके विराधक बहुलसंसारी गच्छकदाग्रहके मिथ्या हठवादी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी होवेगें सो ही अति उत्तम कल्याणकारी

गर्भापहारको अतिनिन्दनीक तथा अकल्याणकारी कहके श्री वीरप्रभुकी आशातना तथा भव्यजीवोंके आत्म साधनमें विघ्न करेंगें और करानेका कारण करेगें जिन्होंकी आत्माका कल्याण होना बहुत ही मुश्किल है इस बातको विवेकी तत्त्वज्ञ पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे,–

और अब गर्भापहारको अतिनिन्दनीक कहके श्रीवीर प्रभुकी आशातनासे तथा भोले जीवोंको गच्छकदाग्रहका मिथ्यात्वके भ्रमसें गेरनेके लिये उत्सूत्र भाषणसे संसारमें परिभ्रमणका हेतु करनेवालोंकी अज्ञानताको दूर करनेके उपकारके लिये तथा भोले जीवोंके मिथ्यात्व रूपी भ्रमको दूर करके सम्यक्त्व रूपी रत्नकी प्राप्तिका उपकारके लिये गर्भापहारको अतिउत्तमतापूर्वक कल्याणकत्वपना सिद्ध करनेवाला एक दृष्टान्तकी युक्तिके अमृत रूपी औषधको यहां दिखाता हूं जिससे कदाग्रहियोंके अन्तर मिथ्यात्व रूप अन्धकारके रोगकी शांति होनेसे सम्यग्ज्ञानका स्वयं प्रकाश होजावेगा, सो देखो– जैसे–गर्भावासका निवास तथा जन्म, जरा, रोग, शोक, आधि, व्याधि, उपाधि, संयोग, वियोग, मृत्यु आदि दुःखोंसे व्याप्त, तथा अशुचि दुर्गन्धमय सात धातुओंसे मिलित मनुष्यका शरीर सो देवताओंके शरीरसे अनन्तगुणाहीण होतेभी उसीमें धर्मसाधनका तथा मोक्षगमनका कारण होनेसे उसीको उत्तम कहा, तथा रोगरहित अनन्तशक्तिवाला अनन्तस्वरूपकी कांतिवाला अनन्तसुखवाला नवग्रैवेक निवासी देवताके शरीरको भी दीर्घ संसारी मिथ्यात्वीके लिये बुरा कहा और छेदन भेदन ताडण मारण रोग शोकादि अनन्त दुखोंवाला अतीव दुर्गन्धमय सातवीं नरक वासीके शरीरको भी सम्यक्त्वधारी अल्प संसारीवालेके लिये श्रेष्ठ कहा, तैसेही भगवा-

नूके च्यवन, तथा गर्भापहार रूप दूसरा च्यवन, भव्यजीवोंके उपकार करनेवाले होनेसे उनको अति उत्तम कल्याणक कहते हैं, अर्थात्-जैसे-देवसम्बन्धी शरीरकी अपेक्षासे सात धातुओंकी अशुचियुक्त मनुष्यका शरीर-जो माताका उदर उसीमें गर्भावासपने ऊंधे मस्तक उत्पन्न होना सो व्यवहारमें अच्छा नहीं कहें-तोभी भगवान्का माताके उदरमें उत्पन्न होना सो भव्यजीवोंके उपकारका कारण होनेसे देवलोकके शरीरको छोड़ करके वहांसे च्यवनेको कारण भावसे च्यवन कल्याणक कहते हैं सो माताके उदरमें उत्पन्न होनेसे भव्यजीवोंका उपकार रूप कार्य्य होता है तैसेही गर्भसे गर्भस्थानांतरे होना सो व्यवहारिकमें अच्छा नहीं कहा जा सकता तथापि भगवान्का त्रिशलामाताके उदरमें आना सो भव्यजीवोंके उपकारका कारण होनेसे देवानन्दामाताकी कुक्षिसे गर्भहरण रूप गर्भापहारको कारण भावसे दूसरा च्यवन कल्याणक कहते हैं उसीसे त्रिशलामाताके उदरमें पधारनेसे भव्यजीवोंके उपकार रूप कार्य हुआ तथा नीच गोत्रत्व पना मिटा इसलिये कारण कार्य भावको तथा अपेक्षाको और लाभालाभको गुरु गम्यसे समझे बिना गर्भापहारकी निन्दा करके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेके लिये उत्सूत्रभाषण करके श्रीजिनाज्ञाके अनुसार सत्य बातकी शुद्ध श्रद्धासे भोले जीवोंको भ्रममें गेरने रूप मिथ्यात्व बढ़ानेसे दुर्लभबोधिका और संसार वृद्धिका हेतु है सो आत्मार्थियोंको करना उचित नहीं है।

और देवानन्दामाताकी कुक्षिसे निकलने रूप गर्भापहारको तथा त्रिशलामाताके उदरमें प्रवेश करने रूप गर्भ संक्रमणको अतिनिन्दनीक विनय विजयजी तथा अन्धपरंपरावाले वर्तमानमें जो लोग कहते हैं सो ऐसा कहने वालोंकी पूर्ण अज्ञानता है क्योंकि जो ऊपरकी बातको निन्दनीक ठहराओगे तब

तो माताकी कुक्षिसे निकलने रूप जन्मको तथा देवलोकसे च्यव करके माताकी कुक्षिमें प्रवेश करने (उत्पन्न होने) रूप च्यवनको भी तुम्हारे कहनेसे तो निन्दनीक पना प्राप्त हो जावेगा और निन्दनिकपनेको आप लोग कल्याणक मानोगे नहीं तब तो च्यवन, गर्भापहार, और जन्म, यह तीनों कल्याणक आप लोगोंके अमान्य ठहरनेसे तुम्हारी कल्पना मुजब तो श्रीमहावीरस्वामीके तीनही कल्याणक रह जावेगे सो तो कदापि नहीं बन सकता इसलिये संसारके व्यवहारिक स्वरूपको तथा कारण कार्य भावको और लाभालाभको जाने बिना भगवान्के छठे कल्याणकके निषेध करनेके झगड़ेसे भगवान्के गर्भापहार की निन्दा करना सो अनन्तभव भ्रमणके हेतुको तथा मिथ्यात्वको छोड़ कर शास्त्रानुसार छहों कल्याणकोंको माननेकी शुद्ध श्रद्धामें तत्पर होकर आत्म कल्याणके कार्यमें उद्यम करना चाहिये जिसमें सार है नतु निषेधके मिथ्यात्वमें आगे इच्छा आपकी

और च्यवनादि पांचों कल्याणकोंकी तरह श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकमें भी सब जीवोंको सुख तथा तीन जगतमें उद्योत और नमुत्थुणं न होनेकी भ्रांतिसे उसीको कल्याणक माननेमें शंका करने वालोंकी अज्ञानताको दूर करनेके लिये भी इसका निर्णय आगे लिखनेमें आवेगा,–

और भी यहां विचारने योग्य एक बात है, कि-अपने भगवान्की लोक विरुद्ध निन्दाकी कोई भी बात होवे तो उसीको उनके भक्तजन, जान-बुझकर कदापि प्रगट नहीं कर सकते किन्तु अवश्यमेव गुप्तपने रक्खेगे परन्तु श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारको तो अनेक शास्त्रोंमें विस्तार पूर्वक तथा कारण कार्यभाव रहित वर्णन करनेमें आया है और विशेषमें श्रीवीर-

प्रभुके ही आगे सूर्याभदेवने समोवसरणके पास बतीस प्रकारका नाटक करके श्रीगौतम स्वामी आदिको दिखाया जिसमें प्रभुके च्यवन, गर्भापहार, जन्मादिकोंका वर्णन भी खुलासा पूर्वक दिखाया है इसलिये जो गर्भापहार निन्दनीक होता तो भगवान्का पूर्ण भक्त सूर्याभदेव वहां नाटकमें उसीके स्वरूपको कदापि नहीं दिखाता तथा उसी बातको जगह जगह पर शास्त्रकार महाराज भी कदापि नहीं लिखते परन्तु लिखा है इसपर भी विवेक बुद्धिसे विचार किया जावे तो कर्मोंकी विचित्रताका दर्शाव जैन शास्त्रोंमें पक्षपात रहित लिखनेमें आया है सो भव्यजीवोंके आत्मनिर्ज्जराका कारण है इस लिये गर्भापहारकी निन्दा करनेवाले अपनी आत्माको कर्मों से भारी करते हैं इस बातको विवेकी तत्वज्ञ सज्जन अपनी बुद्धिसे आपही विचार लेवेंगे—

और आगे फिर भी विनयविजयजीने लिखा है कि (अथ पंचहत्थुत्तरे इत्यत्र गर्भापहरणं कथं उक्तं इति चेत् सत्यं अत्रहि भगवान् देवानन्दा कुक्षौ अवतीर्णः प्रसूतपतीचत्रिशलेति असंगतिः स्यात्तन्निवारणाय पंच हत्थुत्तरेत्ति वचनं इत्यलंप्रसंगेन) इन अक्षरों करके भगवान्के देवलोकसे देवानन्दामाताकी कुक्षिसे उत्पन्न होनेका और जन्म त्रिशलामाताकी कुक्षिसे होनेका दिखा करके असङ्गति निवारणके लिये 'पंच हत्थुत्तरे' लिखनेका कारण विनयविजयजीने ठहराया और गर्भापहारके छट्ठे कल्याणकको निषेध किया सो शास्त्रोंके तात्पर्यार्थको समझे बिना अज्ञानतासे अथवा गच्छकदाग्रह रूप अभिनिवेशिकमिथ्यात्वकी मायाशक्तिसे भोलेजीवोंको भ्रमानेके लिये वृथा ही परिश्रम करके अपनी विद्वत्ताकी हंसी कराई है क्योंकि देखो—प्रथम तो श्रीकल्पसूत्रमें 'पञ्चहत्थुत्तरे'का

जो पाठ है सो असङ्गति निवारणके लिये नहीं किन्तु हस्तो-त्तरा नक्षत्रमें पांचों कल्याणकोंको प्रगटपने दिखाने वाला है क्योंकि आषाढ़ शुदी ६ के हस्तोत्तरा नक्षत्रमें देवानन्दामाताके उदरमें भगवान्के अवतार लेने रूप प्रथम च्यवन कल्याणकमें चौदह स्वप्न तथा पुत्र उत्पत्ति, वगैरहकी व्याख्याकी तरह ही आश्विन बदी १३ के हस्तोत्तरा नक्षत्रमें त्रिशलामाताके उदरमें अवतार लेने रूप दूसरा च्यवन कल्याणकमें भी चौदह स्वप्न तथा पुत्र उत्पत्ति वगैरहकी विशेष विस्तारार्थ पूर्वक खुलासा व्याख्या लिखी है सो प्रसिद्ध है तथा हरवर्षे श्री पर्युषणा पर्वमें वंचाती भी है इसलिये विनयविजयजीने असङ्गति निवा-णके बहानेसे दूसरा च्यवन कल्याणकका निषेध किया सो अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे उत्सूत्रभाषण करनेके सिवाय और क्या कहा जावे क्योंकि श्रीवीर प्रभुके दो च्यवन कल्याणिक सिद्ध हो गये और जन्म, दीक्षा, केवल, तथा मोक्ष, यह चार कल्याणक तो स्वयं सिद्ध होनेसे श्रीवीर प्रभुके छ कल्या णक अनेक शास्त्रानुसार प्रगटपने दिखते हैं सो विवेकी तत्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे,—

और दूसरा यह है कि त्रिशलामाताके उदरमें भगवान्के अवतार लेनेरूप दूसरे च्यवन कल्याणकको नहीं मान्यकरके असङ्गति निवारणके बहाने उसीको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेसे तो विनयविजयजीकी तथा वर्तमानिक गच्छममत्वि-योंकी कल्पना मुजब गर्भापहाररूप दूसरे च्यवन कल्याणकके मास पक्ष तिथि नक्षत्रका तथा चौदह स्वप्नोंको त्रिशलामाताके देखनेका और सिद्धार्थ राजाने तथा स्वप्न पाठकोंने नव महिने पुत्र उत्पत्ति सम्बन्धी चौदह स्वप्नोंके फल कहनेका इत्यादि बातोंका जो शास्त्रकार महाराजोंने विस्तारसे वर्णन किया

है सो सब वृथा हो जावे क्योंकि जब आप लोगोंकी बुद्धि मुजब उसीको कल्याणक ही नहीं मानना था तो फिर इतनी विस्तारसे उपरकी बातों सम्बन्धी व्याख्या करनेका शास्त्र-कारोंने वृथा क्यों परिश्रम किया और जो शास्त्रकारोंने उसीको कल्याणक मान्य करके ही उपरकी बातोंकी व्याख्याकरी है तब तो असङ्गतिके बहाने विनयविजयजीका तथा वर्तमानिक गच्छ ममत्वि लोगोंका निषेध करना सो शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें वृथाही हठवादका कारण है सो विवेकी सज्जनोंको तो करना उचित नहीं है

और अब तीसरा यह है कि-श्रीकल्पसूत्रके "पञ्चहत्थुत्तरे" के पाठको विनयविजयजीने असङ्गति निवारणेके बहाने गर्भापहा-रको कल्याणकत्वपनेसे निषेध किया, तो क्या श्रीआचारांगजी श्रीस्थानांगजी वगैरह शास्त्रोंमें श्रीवीरप्रभुके कल्याणका-धिकारे 'पञ्चहत्थुत्तरे' पाठ है वहां भी सब जगह असङ्गति निवारणेके बहाने गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे विनयविजयजी निषेध करसकेगें सो तो कदापि नहीं हो सकता क्योंकि वहां तो श्रीस्थानांगजी सूत्रके पञ्चम स्थानमें श्रीगणधर महाराजने श्रीपद्मप्रभुजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजोके नाम पूर्वक पांच पांच कल्याणकोंके नक्षत्र गिनाये हैं जिसमें श्रीपद्म प्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर महाराजोंका तो-पहिला च्यवन, दूसरा जन्म, तीसरा दीक्षा, चौथा केवल ज्ञान उत्पत्ति, और पांचवा मोक्ष, इस तरहसे सब तीर्थंकर महाराजोके पांच पांच कल्याणक दिखाये और श्रीवीरप्रभुके कल्याणकाधिकारे तो पहिला च्यवन, तथा दूसरा गर्भापहारसे गर्भ संक्रमणरूप दूसरा च्यवन, तीसरा जन्म, चौथा दीक्षा, और पांचवा केवल ज्ञानकी उत्पत्ति, यह पांच कल्याणक खुलासा पूर्वक दिखाये है,

इसलिये यहां गर्भापहारकी असङ्गति निवारणका बहाना कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि श्रीपद्मप्रभुजी आदि तीर्थंकर महाराजोंसे श्रीवीरप्रभुजी तक १४ तीर्थंकर महाराजों सम्बन्धी कल्याणकाधिकारे एक समान पाठ होनेसे श्रीवीरप्रभुके पाठका अर्थ बदला जावे तो सबी तीर्थंकर महाराजोंके पाठका अर्थ बदल जानेसे महान् अनर्थ हो जावे और एकही सूत्रमें एकही जगहपर तथा एकही सम्बन्धपर सबी तीर्थंकर महाराजों सम्बन्धी पांच पांच कल्याणकोंकी व्याख्या समान है इसलिये श्रीपद्मप्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर महाराजों सम्बन्धी पाठका तो पांच पांच कल्याणकोंका अर्थ करना और श्रीमहावीर स्वामी सम्बन्धी पाठका पांच कल्याणकोका अर्थ नहीं करना ऐसा सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें प्रत्यक्ष अन्याय अन्तर मिथ्यात्वीके सिवाय अत्मार्थी तो कदापि नहीं करेगा इसलिये सत्यग्रहणके अभिलाषी विवेकी पाठकगणसे मेरा यही कहना है कि-असङ्गति निवारणके बहाने गर्भापहार रूप श्री वीरप्रभुके दूसरे चयवन कल्याणकको निषेध करनेका विनय विजयजीने परिश्रम किया सो निष्केवल धर्मठगाईसे भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेर करके श्रीजिनाज्ञाकी सत्य बातपरकी शुद्ध श्रद्धासे भ्रष्ट करनेकी प्रत्यक्ष मायाचारी है सो विवेकी पाठकजन स्वयं विचार लेना

और यहांपर भी विचारने योग्य बात है कि-श्रीस्थानांगजी सूत्रमें श्रीपद्म प्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर महाराजोंके तो पांचवे कल्याणकमें मोक्ष होनेका गणधर महाराजने कहा और श्रीवीरप्रभुके पांचवेंकल्याणकमें केवल ज्ञान उत्पन्न होनेका ही कहा सो इस जगह पर विनयविजयजी तथा वर्त्तमानिक तपगच्छवालों के मन्तव्य मुजब तो जो श्रीमहावीर स्वामीकेभी पांचही कल्या-

णक होते तो सबी तीर्थंकर महाराजोंकी तरहही श्रीवीरप्रभुका भी पांचवेमें मोक्ष होनेका श्रीगणधर महाराजको कथन करना योग्य था सो तो किया नहीं और गर्भापहारको कथन करके पांचवेमें केवल ज्ञानकी उत्पत्ति कहकर छठा मोक्ष गमनका कथन करना छोड़ दिया तो क्या मोक्ष छोड़ने सम्बन्धी सूत्रकारको असङ्गति करनेका कहा जा सकेगा सो तो कदापि नहीं क्योंकि जिस बातका प्रकरण चलता होवे उसीके अनुसार अपेक्षा सम्बन्धी सूत्रकार व्याख्या करते हैं सो यहां श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रके पांचवे स्थानकमें एक समान पांच पांच बातोंका प्रकरण होनेसे जिन जिन तीर्थंकर महाराजोंके उसी एक नक्षत्रमें पांच पांच कल्याणक हुए थे उन उन महाराजोंके पांच पांच कल्याणक यहां दिखाये गये जिसमें श्रीआदिनाथस्वामी आदितीर्थंकर महाराजोंके केवलज्ञान पर्यन्त च्यार कल्याणक एक नक्षत्रमें और पांचवा मोक्ष गमन दूसरा नक्षत्रमें इस तरहसे दो नक्षत्रोंमें पांच पांच कल्याणक जिन जिन तीर्थंकर महाराजोंके हुए थे उन उन तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंकी व्याख्या तो श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रके पञ्चम स्थानमें श्रीगणधर महाराज नहीं करसके तैसेही जो श्रीवीरप्रभुके भी च्यार कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें और पांचवा मोक्ष स्वाति नक्षत्रमें इस तरहसे पांचही कल्याणक होते तो श्रीआदिनाथ स्वामीकी तरह श्रीवीरप्रभुके भी पांच कल्याणकोंकी व्याख्या यहां श्रीस्थानांगजी सूत्रमें श्रीगणधर महाराज कदापि नहीं करते परन्तु श्रीवीरप्रभुके तो केवल ज्ञानपर्यन्त पांच कल्याणक उसी एक हस्तोतरा नक्षत्रमें हुए और छठा मोक्ष स्वाति नक्षत्रमें हुआ इसलिये छठे मोक्ष कल्याणकको भी यहां कथन नहीं करसके परन्तु केवल ज्ञान पर्यन्त पांच कल्याणक कथन कर दिये

सो जिन जिन तीर्थंकर महाराजोंके एक एक नक्षत्रमें पांच पांच कल्याणक हुए थे उन उन महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंकी व्याख्या नक्षत्रोंके नाम पूर्वक खुलासा कर दिखाई इससे श्री वीरप्रभुके छठे मोक्षको न लिखनेकी असङ्गति करनेका गणधर महाराजको दूषण कदापि नहीं लग सकता और 'पञ्चहत्थुत्तरे' शब्दके अर्थमें असङ्गति निवारणके बहाने गर्भापहारको कल्याणकत्व पनेसे निषेध भी नहीं हो सकता है तथापि उसीको निषेध करनेवाले सूत्र पाठके अर्थका भङ्ग करते हैं इसलिये उन्होंको उत्सूत्रभाषक अन्तर मिथ्यात्वी कहनेमें कोई दुषण भी मालूम नहीं होता है सो इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञ पाठक जन स्वयं विचार लेवेंगे ॥

और इस जगहपर कितनेही विवेक रहित ऐसा सन्देह करते हैं कि श्रीआचाराङ्गजी तथा श्री स्थानाङ्गजी सूत्रमें उपरोक्त सम्बन्धवाले पाठोंमें कल्याणक शब्द देखनेमें नहीं आता है तो फिर कल्याणक कैसे माने जावे, सो ऐसा सन्देह करने वालोंकी अज्ञानताको दूर करनेके लिये, मेरा इतनाही कहना है कि तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन जन्मादिकोंको कल्याणकत्वपना तो जैनमें प्रसिद्ध है इसलिये जहां जहां तीर्थंकर महाराजके च्यवन जन्मादिकोंके नाम लिखे होंवे वहां वहां वही च्यवन जन्मादिकल्याणक समझनेचाहिये (और गर्भापहारको भी दूसरे च्यवनकी प्राप्ति होनेसे गर्भापहारको दूसरा च्यवन कल्याण माननेमें आता है) इसका विशेष निर्णय आत्मारामजीकेलेखकी समीक्षामें आगेलिखनेमें आवेगा;—

और चौथा यह है कि-जैसे इसीही श्रीकल्पसूत्रमें श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके चरित्राधिकारे "तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसा दाणीए-पंचविसाहे हुत्था" इस

६९

तरहका पाठ है तथा श्री नेमिनाथजीके चरित्राधिकारे भी "तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी पंचचित्ते हुत्था" इस तरहका खुलासा पूर्वक पाठ है तैसेही श्रीमहावीर-स्वामीके चरित्राधिकारे भी "तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-पंचहत्थुत्तरे हुत्था" इसीही तरहका पाठ है सो अब इस जगह विवेकी पाठकगणको विचार करना चाहिये कि श्रीवीरप्रभु श्रीपार्श्वप्रभु और नेमिप्रभुके चरित्रकी आदि-मेंही तीर्थंकर भगवान्के कल्याणकाधिकारे जघन्य वाचना सम्बन्धीउपरकापाठ चौदहपूर्वधर श्रुतकेवलि श्रीभद्रबाहुस्वा-मीने श्रीकल्पसूत्रमेंकहा है और इनही पाठोंकी उत्कृष्ट वाचना पूर्वक खुलासा व्याख्या खास सूत्रकार महाराजनेही करी है सो श्रीपार्श्वप्रभुके पांच कल्याणक विशाखा नक्षत्रमें तथा श्रीनेमि-प्रभुके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए इस तरहका अर्थ विनयविजयजी तथा वर्त्तमानिक सब कोई तपगच्छवाले खुलासा पूर्वक करते हैं तैसेही श्रीवीरप्रभुके भी पांचकल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें हुए ऐसा अर्थ सूत्रकार महाराजके अभिप्राय मुजबही तपगच्छवालोंको करना चाहिये क्योंकि एकही सूत्रमें एकही सम्बन्ध वाले एकही समान पाठोंका एकही शास्त्रकार महाराजने कथन किये हैं उसीसे एकही तरहके अर्थके सिवाय दो तरहके अर्थ कदापि नहीं हो सकते हैं तथापि विनयविजयजीने असङ्गति निवारणके बहाने श्रीवीरप्रभुके चरित्राधिकारे "पंच हत्थुत्तरे' पाठका अर्थ बदलाया सो प्रत्यक्षपने सूत्र पाठके अर्थकी चौरी करी है— क्योंकि 'पंच हत्थुत्तरे' पाठका च्यार कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें ऐसा अर्थ करके गर्भापहारके कल्याणकको अकल्याणक ठहराके उड़ा देनेका इतना महान् अनर्थ कदापि काले नहीं

हो सकता है तथा किसी भी पूर्वाचार्यने ऐसा अनर्थ किसी भी प्राचीन शास्त्रमें किसी जगहपर भी नहीं लिखा है तो फिर विनयविजयजी वगैरह आधुनिक कदाग्रही लोगोंने सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें सूत्रपाठके अर्थका भङ्गरूप उत्सूत्रभाषणके झगड़ेको वृथा क्यों स्वीकार करके अपनी आत्माको संसारगामी करनेका कारण किया होगा तथा वर्तमानमें क्यों करते हैं जिसको तो तत्त्वज्ञ पाठक जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और ऊपरमें तीनों तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकों सम्बन्धी सूत्रके पाठोंकी टीकाओंके पाठोंमें भवनरूप क्रिया एक समान होते भी महावीर स्वामीके पांच कल्याणक हस्तोत्तर नक्षत्रमें कहनेके बदले च्यारही कल्याणक कहकर उसीके अन्तरगत साथके गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे निकालकर अकल्याणक कहते हुए श्रीसिद्धहेमके तथा पाणिनिय व्याकरणके और महाभाष्यके नियमका भङ्ग करते विनयविजयजीको तथा वर्तमानिक विद्वान् नाम धरानेवालोंको तत्त्वज्ञार्थज्ञाताओंके आगे अपने विद्वत्ताकी हासी करानेकी कुछ भी लज्जा नहीं आई क्योंकि "सन्नियोग शिष्टानां सहैव प्रवृत्तिः सहैव निवृत्तिः॥ तथा॥ एक योग निर्दिष्टानां सहवा प्रवृत्तिः सहवा निवृत्तिः" इस वचनानुसार 'पञ्चहत्थुत्तरे होत्थत्ति" इस पाठकी व्याख्यामें अपनी कल्पना मुजब गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करोगे तो च्यवन जन्म दीक्षादिको भी कल्याणकत्वपनेका निषेधकी आपत्ती आजावेगा और च्यवन जन्मादिकोंको कल्याणक मानोगे तो उसीके भी साथ अन्तरगत गर्भापहार भी होनेसे उसीको तो स्वयंही कल्याणकत्वपना प्राप्त हो जावेगा इसलिये व्याकरणके भी

न्यायानुसार गर्भापहारको कल्याणकत्वपना प्रत्यक्षपने सिद्ध होता है सो व्याकरणके नियमानुसार आपलोग गर्भापहारके कल्याणकत्वपनेको कदापि निषेध नहीं कर सकोगे इतने परभी गच्छकदाग्रहके हठवादरूपी अन्यायसे गर्भापहारके कल्याणकत्वपनेको निषेध करोगे तो व्याकरणके नियमका भङ्ग हो जावेगा सो विवेकी विद्वानोंको तो करना कदापि उचित नहीं है तथापि हठवादीजन करें तो उनके कल्पनाको तो कोई रोक नहीं सकता क्योंकि जब हठवादसे शास्त्रोंके पाठोंकोभी उत्थापन करके उसीके अर्थों को भङ्ग करते जिनको लज्जा नहीं तो फिर व्याकरणके नियमकी तो क्या गिनती और विनयविजयजी तथा वर्तमानिक विद्वान् नाम धरानेवाले होकरके भी सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थ में सूत्र पाठके अर्थ का भङ्ग और व्याकरणकेनियमका भङ्ग करतेहुए अपनीकल्पना मुजब प्रत्यक्ष अन्यायवाला असङ्गतअर्थ करके भोलेजीवोंको कदाग्रहके भ्रममेंगेरतेहैं सो यह बड़ी ही अफसोसकी बात है

और यहां उपर्युक्त व्याकरणके नियमका आलम्बनलेकरके राज्याभिषेककों भी कल्याणकत्वपना सिद्ध करनेका कोई आग्रह करेतोभी नहीं बन सकता है क्योंकि श्रीभद्रबाहुस्वामीजीका कथन किया हुआ इसीही श्रीकल्पसूत्रमें श्रीआदिनाथजीके चरित्राधिकारे कल्याणक सम्बन्धी राज्याभिषेकके बिना च्यवन जन्म दीक्षादि कल्याणकोंका पाठ मौजूद है तथा तपगच्छकेही विद्वानोंने श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिकी व्याख्यायोंमें राज्याभिषेक कल्याणक नहीं हो सकता है जिसका खुलासा कर दिया है और इसका विशेष खुलासा इसोही ग्रन्थके पृष्ठ ४९० से ४९७ तक छप गया है इसलिये उपरके नियमका आलम्बनसे राज्याभिषेककों कल्याणक बनानेका आग्रह करना सर्वथा अनुचित है और

श्रीवीरप्रभुके चरित्राधिकारे तो गर्भापहारके बिना किसी भी शास्त्रमें पाठ नहीं है इसलिये इनको तो कल्याणक मानना सो शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक प्रत्यक्षपने सिद्ध है और गर्भापहारके सहित सब शास्त्रोंमें समान पाठ होनेसे उपर्युक्त व्याकरणका नियम गर्भापहार सम्बन्धी लग सकता है नतु राज्याभिषेक सम्बन्धी इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और श्रीसमवायांगजी सूत्रवृत्तिमें देवानन्दामाताके उदरमें भगवान्‌का उत्पन्न होना सो पञ्चमभव और वहांसे ८३ वें दिन हरिणेगमैषिदेवने त्रिशलामाताके उदरमें पधराये सो छठा भव गिना है इसलिये यहां शास्त्रकार महाराजने अलग अलग भव गिनलिये जिससे किसी प्रकारका सन्देहही नहीं रह सकता है और श्रीकल्पसूत्रमें भी 'पञ्चहत्थुत्तरे' कह करके देवानन्दामाताके उदरसे त्रिशलामाताके उदरमें पधारने रूप गर्भापहारसे गर्भसंक्रमणकी खुलासासे उत्कृष्ट वाचना पूर्वक व्याख्या खास सूत्रकार महाराजनेही कर दी है इसलिये इस बातमें सन्देह नहीं हो सकता है तो फिर उसीका, याने असङ्गति रूप सन्देहका निवारण करने सम्बन्धी 'पञ्चहत्थुत्तरे' शब्दको कथन करनेका सूत्रकारको कैसे कह सकते हैं अपितु कदापि नहीं इसलिये असङ्गति निवारणका बहाना करना सो गच्छममत्वसे मायाचारीकरके वृथाही भोलेजीवोंकोभ्रमानेसे कर्मबन्धके तथा संसार वृद्धिके सिवाय और कुछ भी सारनहींहै इस ऊपरकी बातको विशेष करके पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे.

और जैसे श्रीआदिनाथ स्वामीके चरित्रकी आदिमें कल्याणकाधिकारे "चउउत्तरासाढ़ अभीइपंचमे" ऐसापाठ श्रीभद्रबाहु स्वामीने श्रीकल्पसूत्रमेंखुलासापूर्वक कहके राज्याभिषेकको कल्या-

णकत्वपनेसे अलगकरदिया इससे राज्याभिषेकको कल्याणक माननेका झगड़ाउठगया तैसेही श्रीवीरप्रभुके चरित्रकी आदिमेंही कल्याणकाधिकारे "पंचहत्थुत्तरे साइणा पंचमे" ऐसापाठ सूत्रकार महाराजही कहके गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे अलगकरदेते तो गर्भापहारको कल्याणक माननेका झगड़ाही उठकर आपलोगोंके मन्तव्यमुजब अपनेअभीष्टकी सिद्धिहोजाती परन्तु सूत्रकारमहाराजने ऐसा न कहके गर्भापहारकी गिनती पूर्वक 'पञ्चहत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे' इस तरहका पाठ कहकरके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट, वाचना पूर्वक छहों कल्याणकोंका खुलासा किया है इसलिये असङ्गति निवारणेके बहाने गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसें माननेका निषेध करने सम्बन्धी विनयविजयजीने वृथाही परिश्रम करके भोलेजीवोंको कदाग्रहमें गेरनेका कारण क्यों किया होगा सो विवेकी पाठक जन स्वयं विचार लेना,

और यहांपर कोई कहेगा कि श्रीपंचाशकजीमें तथा उसीकी वृत्तिमें गर्भापहारको अलग करके च्यवन जन्मादि कल्याणक लिखे हैं तो इसपर मेरा यही कहना है कि श्रीमहावीर स्वामीके चरित्राधिकारे सर्व जगह गर्भापहार सहित छ कल्याणकोंका खुलासा लिखा होते भी श्रीपंचाशकजीके पाठको देखकरके छ कल्याणकोंका निषेध करनेवाले पूर्ण अज्ञानी अथवा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी मालूम होते हैं क्योंकि श्रीपंचाशकजीमें तो सब क्षेत्रोंकी सबी चौबीशीयोंके बहुत तीर्थंकर महाराजोंकी सामान्य अपेक्षा सम्बन्धी पाठ होनेसे तथा उन सब तीर्थंकर महाराजोंको गर्भापहार नहीं हो सकता होनेसे उन्होंके सम्बन्धमें श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहारको भी नहीं लिखा गया तो क्या श्रीमहावीरस्वामीके चरित्राधिकारे गर्भा-

पहार सहित सर्व जगह छ कल्याणकोंका पाठ विद्यमान होते भी उसीका निषेध हो सकेगा सो तो कदापि नहीं इस बातका विशेष निर्णय इसीही ग्रन्थके पृष्ट ४७५ से ४८४ तक छप गया है सो पढ़नेसे सब निर्णय हो जावेगा—

और अब पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि सूत्रकार महाराज जो सूत्रपाठकी रचना करते हैं उसी सम्बन्धी सामान्य विशेषताका तथा उत्सर्ग अपवादका और अल्प बहुत की तथा नयोंकी अपेक्षा वगैरहसबका खुलासा तो शंका समाधान पूर्वक उसीकी व्याख्यामें टीकाकार करते हैं नतु मूल सूत्रकार जैसे श्रीकल्पसूत्रमें चौदह स्वप्नाधिकारे श्रीवीरप्रभुकी माताने प्रथम स्वप्ने हस्तीको देखा ऐसा सूत्रकारने कथन किया सो उसीकी व्याख्या करते सबी टीकाकारोंने "बहुत तीर्थंकर महाराजाओंकी माताने प्रथम स्वप्ने हस्ती देखा उसीसे बहुत अपेक्षा सम्बन्धी सामान्यतासे व्यवहारिकपाठको वीरप्रभुकी माता सम्बन्धी भी सूत्रकार महाराजने कहा परन्तु विशेषमें तो श्रीवीरप्रभुकी माताने प्रथम स्वप्ने सिंहको देखा था" इस तरहका खुलासापूर्वक लिखके निर्णय किया है तैसे ही यदि 'चउ हत्थुत्तरे' का सूत्रकार कथन करके भगवान्के देवानन्दा माताके उदरमें उत्पन्न होनेका और जन्म त्रिशला माताके उदरसे होनेका कह देते और गर्भापहार सम्बन्धी किसी जगह भी किसी प्रकारका कथन नहीं करते तब तो विनयविजयजीके कथन मुजब शङ्का रूपी असङ्गतिके होनेकी भ्रांति लोगोंको पड़नेकाकारण होजाता उसीका निवारण करनेकी टीकाकरोंको खास आवश्यकता होती सो अवश्यमेव करना पड़ता परन्तु गर्भापहार सम्बन्धी तो खास सूत्रकारनेही विस्तारसे कथन कर दिया है इस लिये इस बातमें असङ्गतिरूपी सन्देहका होनाही नहीं बन सकता तो फिर उ-

सीका निवारणके लिये सूत्रकारको 'पञ्च हत्थुत्तरे' का पाठ कथन करने सम्बन्धी विनयविजयजीका कहना कैसे ठीक होसके अपितु कदापि नहीं अर्थात् अभिनिवेशिक मिथ्यात्व करके अन्तरके अज्ञानरूपी अन्धकारकी भ्रांतिसे भोले जीवोंको उसीके भ्रममें गेरनेके लिये उपरकी बात सम्बन्धी विनयविजयजीने इतना परिश्रम किया सो सर्वथा वृथा है और छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी विनयवियजीकेलेखका प्रति उत्तरमें छ कल्याणकोंका सिद्धि सम्बन्धी उपरोक्त मेरे लेखको वांचे बाद भगवान्‌की आज्ञाका विराधक दीर्घ संसारीके सिवाय आज्ञाआराधक आत्मार्थी तो उनके कुयुक्तियोंकी भ्रमजालसे अवश्यमेव तत्काल दूर हो जावेगा

और मेरेको बड़ेही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि-विनयविजयजी इतने विद्वान् होकरके भी अपने कल्पित मन्तव्यका स्थापनरूप झूठे आग्रहकी मिथ्यात्व बढ़ानेवाली भ्रमजालकी मालाको अपने हृदय पर धारण करके श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंका कथन किया हुआ पञ्चांगीके अनेक प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे युक्त श्रीवीरप्रभुका छठा कल्याणकको निषेध करनेके लिये उपर्युक्त प्रमाणोंके पाठोंको उत्थापन करते हुए उपर्युक्त महाराजोंकी आशातनासे संसारमें परिभ्रमणका कुछ भी भय नकिया और विवेकशून्यतासे गच्छकदाग्रहके अंधपरंपरासे उत्सूत्रभाषणोंका तथा कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रहकी बातोंको सुबोधिकामें लिखके उसीमें भोले जीवोंको भ्रमानेकेलिये परिश्रम करनेमें तथा बाल लीलावत् पूर्वापर विरोधि (विसंवादी) वाक्य लिखनेमें भी कुछ कम नहीं किया है सो उपरोक्त सुबोधिकाके छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी लेखको हर वर्ष श्रीपर्युषणापर्वमें धर्म ध्यानके दिनोंमें विवेकरहित गच्छकदाग्रही

अन्धपरम्परा वाले वांचकर खण्डन मण्डनकरके श्रीवीरप्रभुकी निन्दापूर्वक उत्सूत्रभाषणोंसे कुयुक्तियोंकी भ्रमजालमें भोले जीवोंको फसाकर उन्होंके सम्यक्त्व रत्नको हानी पहुंचाते हुए दुर्लभबोधिका और संसार वृद्धिका कारण रूपी महान् अनर्थ करते हैं सो तो अपने अपने कर्त्तव्यानुसार उसीके विपाक भवांतरमें भोगेंगे परन्तु इस बातके मूल कारण भूत चैत्यवासी और गच्छकदाग्रही लोग पूर्वे हुए उन्होंकी अन्धपरम्परासे धर्मसागरजी वगैरहोंने कल्पकिरणावली वगैरहोंमें निज परके आत्मघाती तथा मिथ्यात्व बढ़ाने वाला उपरकी बात सम्बन्धी खूबही परिश्रमकिया और मिथ्यात्वके सार्थवाहीबने उसीके अनुसार विनयविजयजीनेभी जो इतनाअनर्थ कियाहै उसीके विपाक तो भवांतरमें अवश्यमेव भोगेबिना कदापि नहीं छुटेंगे

अब इस जगह विनयविजयजीकी बाललीलाका नमूना पाठकवर्गको दिखाकर इनके लेखकी समीक्षा समाप्त करूंगा सो यहां उनकी बाललीलाका नमूना, देखो-श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठकी व्याख्यामें खास आपने ही "भगवान् आषाढ़ सुदी ६ को देवानन्दा माताके उदरमें ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुए सो नीच गोत्रके विपाकसे आश्चर्यरूप हैं" ऐसा लिखा फिर इसीको ही च्यवन वस्तु कहके च्यवन कल्याणक भी आपने माना और ब्राह्मण कुलमें भगवान्का जन्म न होनेके लिये गर्भापहारसे निजपरके कल्याणके लिये भगवान्को इन्द्रने उत्तम कुलमें पधराए इस तरहसे खुलासा किया॥ अब यहां पक्षपात छोड़ करके विवेक बुद्धिसे पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि-जब भगवान्के ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होनेको नीच गोत्रका विपाक तथा आश्चर्य कहके उसीको च्यवन वस्तु अर्थात् च्यवन कल्याणक माना तो फिर नीच गोत्रत्वपना

मिटानेके लिये निजपरके कल्याणार्थ इन्द्रने भगवान्को उत्तम कुलमें पधराये सो गर्भापहारको कल्याणकत्वपना निषेध करनेके लिये नीच गोत्रका विपाक तथा आश्चर्य और वस्तुका बहाना लेकरके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करने सम्बन्धी परिश्रम करना सो गच्छममत्वरूपी अन्तर मिथ्यात्वकी बाललीलाके सिवाय और क्या होगा सो तत्वज्ञ सज्जन तो स्वयं विचार लेवेंगे—

और जिन च्यवन गर्भहरणादि छहोंको वस्तु ठहराकर कल्याणकपनेका निषेध करते हैं तो फिर उन्हीं च्यवनको कल्याणकपना और गर्भापहारको नहीं यह तो प्रत्यक्षही बाललील दिखती है और जब उन च्यवन गर्भहरणादि छहोंको वस ठहरा दी तो फिर उन्हीं छ वस्तुओंके पांच कल्याणक कहन सो भी कदापि नहीं बन सकता क्योंकि च्यवन गर्भहरणादि वस्तु सोही छ कल्याणक है इसका निर्णय पृष्ठ ४९७ से ५ तक छप गया है और प्रत्यक्षही सिद्ध है इस लिये छ क करके फिर भी नक्षत्र सामान्यताका बहानासे छ के पांच बना यह भी बाललीलाही प्रतित होती है और नक्षत्र सामान्यत कहकरके फिर उसीको ही अति निन्दनीक भी कहना सोत विशेष बाललीला है और नक्षत्र ःसामान्यता तथा अतिनि न्दनीक कहकरके फिर उसीको ही असङ्गति निवारणका कहन सोतो अतीवही ग्रहीलत्वपनेकी बाललीलाके सिवाय और कु भी नहीं क्योंकि अभिनिवेशिक मिथ्यात्व युक्त बाल प्रलापव उपरकी बातें एक एकसे विरुद्ध पूर्वापर बाधक होनेसे तत्व ग्राही विवेकीजन तो कदापि अङ्गीकार नहीं करेगा औ उपरकी बातोंमें शास्त्रोंके विरुद्ध प्रत्यक्ष उत्सूत्र भाषणोंके कुयु क्तियोंके। विकल्पोंके लेखकी समीक्षा तो उपरमेंहीं विस्ता पूर्वक छप गई है सो पढ़नेसे सब निर्णय हो जावेगा—

और विनयविजयजी वगैरहोंनें सुबोधिकादिकोंमें अधिक मास निषेध सम्बन्धी पर्युषणा विषयिककी तरह छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी भी धर्म धूर्ताईकी ठगाईसे उत्सूत्रभाषणोंसे और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंको अपने फन्दमें फसानेके लिये ऐसी भ्रमजाल फैलाई है कि जिसमें अल्पज्ञ सामान्य जीव फसे उसमें तो कोई आश्चर्य नहीं है परन्तु न्यायांभोनिधिकी उपाधि धारण करनेवाले आत्मारामजी जैसे वर्तमानिक प्रसिद्ध विद्वान् हो करके भी उन्होंकी भ्रमजालमें फस गये और इन्होंकाही अनुकरण करके श्रीखरतर गच्छके पूर्वाचार्यकृत शास्त्र पाठका सद्गुरुसे विवेक बुद्धिपूर्वक तात्पर्यार्थको समझे बिना श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजको छठे कल्याणक नवीन प्ररूपणा करनेका वृथाही जूठा दूषण लगाकर निज परको संसार वृद्धिका और दुर्लभ बोधिपनेका हेतु करके भोलेजीवोंको अपने कदाग्रहमें गेरनेका "जैन सिद्धान्त समाचारी" नामक पुस्तकमें परिश्रम करनेमें कुछ कम नहीं किया है और वर्तमानमें श्रीपर्युषणा पर्वके धर्म ध्यानके दिनोंमें सुबोधिका बंचाकर छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी हरवर्ष आपसमेंही खण्डन मण्डनके झगड़ेको विशेषतासे आत्मारामजीनेही प्रचलित किया है और वल्लभविजयजीने भी सन् १९०९ के नवेम्बर मासकी ७ वीं तारीखके जैन पत्रके ३० वां अङ्कमें "जैन सिद्धान्त समाचारी" की पुस्तककोही आगे करके छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी अपने मन्तव्यको पुष्टकिया इसलिये अब मेरेकोभी आत्मारामजी कृत जैन सिद्धान्तसमाचारीके छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी लेखकी समीक्षा करनेका अवसर प्राप्त हुआ है सो करके पाठकगणको आगे दिखाता हूं—

और जैसी भवितव्यता आगे होनेवाली होवे वैसी बुद्धिभी हो जाती है उसीके अनुसार यद्यपि सुमति और नागिल श्रावकने धर्म आराधन करनेके लिये गुरुके पास दीक्षा लेनेका अभिलाष किया इतनेमें वेषधारी पासथोंका योग मिला तब बाईसवें भगवान्‌के कथनानुसार सुगुरुके और कुगुरुके लक्षण नागिल श्रावकने सुमति नामा श्रावकको कहे सो सुनकर वेषधारियोंके दृष्टि रागसे सुमति श्रावकने नागिल श्रावकपर अन्तर मिथ्यात्वके उदयसे क्रोध करके भगवान्‌के गुण जानता था तो भी बाईसवें तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथजीकी आशातना वाले शब्द बोले और श्रीजिनाज्ञा विराधक पासथोंकी प्रशंसा करी। उसीसे अनेक पुद्गल परावर्तनका तथा अनन्तभव भ्रमणका और वारंवार नरक गतियोंके दुःख विटम्बनाका महान् अनीष्ट कर्म उपार्जन किया॥ तैसे ही भावी भावके अनुसार यद्यपि विनय विजयजीने भी सुबोधिकामें नामानुसार व्याख्या करनेका परिश्रम किया होगा। तथा उत्सूत्र भाषणोंसे और भगवान्‌की आशातनासे संसार वृद्धिके विपाक भी जानते होंगे तथापि अन्ध परम्पराके दुराग्रहकी कल्पित बातको स्थापन करनेके लिये श्रीवीरप्रभुकी आशातना पूर्वक उत्सूत्र भाषणोंका और कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रह करके छ कल्याणकोंका निषेध सम्बन्धी तथा पर्युषणा विषयिक अधिक मासका निषेध सम्बन्धी विनय विजयजीने जो जो शब्द लिखे हैं उन्होंसे श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना करी है और उन्हीं महाराजोंकी आज्ञा मुजब पञ्चाङ्गी शास्त्र प्रमाणानुसार वर्तनेवालोंको दूषित ठहराकरके श्रीजिनाज्ञा विराधक अन्धपरम्परा वालोंकी बातको पुष्ट करी है उसीसे कितने संसार भ्रमणका कर्म उपार्जन किया होगा जिसकी

तो श्रीज्ञानीजी महाराज जानें और उन्हों विनयविजयजीके वाक्योंको वर्तमानिक श्रीतपगच्छ वाले गच्छममत्वी दुराग्रही लोग श्रीपर्युषणा पर्वमें धर्म ध्यानके दिनोंमें बांचकर ऊपर मूजब महान् अनर्थ करके भोले जीवोंको भ्रममें गेरकर बांधनेवाले अपनी आत्माको और सुननेवालोंके सम्यक्त्व नष्ट पूर्वक मिथ्यात्वमें गेरनेका और दुर्लभ बोधिपनेका कारण करते हैं इसी कारणसे ही तो वासतव्यमें गुणनिष्पन्न "दुर्लभ बोधिका" नाम सिद्ध होती है ॥ इसलिये गच्छ दुराग्रहसे आपसके वृथा खण्डन मण्डनके झगड़ेसे जो महान् अनर्थ होता है उसका निवारण करनेके लिये गच्छ दुराग्रहियोंपर अनुकम्पा और भावदया लाकर उन्होंको संसार परिभ्रमणके अनर्थसे बचानेके लिये सुमति नागिल श्रावकका दृष्टान्त पूर्वक तथा वर्तमानिक व्यवस्था पूर्वक भवभीरू श्रीजिनाज्ञा आराधक आत्मार्थियोंके हितशिक्षाके लिये और संसार भ्रमणके प्रवाहके कार्य्यका सुधारा करने सम्बन्धी आगे लिखनेमें आवेगा ।

इत्युपाध्यायविशेषणधारकोविनयविजयविरचित श्री
कल्पसूत्रसुबोधिकाव्याख्यायां षट्कल्याणकप्रति-
षेध सम्बन्धिलेखस्य मणीसागराख्यमुनि-
कृता उपर्युक्तसमीक्षासमाप्ता जाता॥

अब इस वर्त्तमानकालमें सुप्रसिद्ध श्रीआत्मारामजीने भी अन्ध परम्पराके गच्छकदाग्रहको पुष्ट करके उसीके भ्रमचक्रमें भोले जीवोंको फसानेके लिये शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणोंका और कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रह पूर्वक श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनका उत्थापन करके ढूंढक मतके पूर्वस्वभावानुसार संवेगी पनेमें भी 'जैन

सिद्धान्त समाचारी’ नामक पुस्तकमें श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी मिथ्यात्व फैलाया है जिसकी भी (भव्यजीवोंका संशयके अन्तरभ्रमको दूर करनेका उपकारके लिये विनय विजयजीके लेखकी समीक्षाके अनन्तर) यहां समीक्षा करके पाठकगणको दिखाता हूं-सो दृष्टिरागका पक्षपातको छोड़करके मध्यस्थ वृत्तिसे मेरी समीक्षाको बांचकर असत्यका त्याग और सत्यका ग्रहण करना चाहिये जिसमें प्रथम तो आत्मारामजीने अपनी बनाई “जैन सिद्धान्त समाचारी” के पृष्ठ ६६ की पंक्ति १७ वींसे पंक्ति २१ वीं तक ऐसे लिखा है कि (पृष्ठ ७० से लेकर पृष्ठ ९० तक बिनाही प्रयोजन पाठ लिखके ग्रन्थ भारी किया है क्योंकि षट्कल्याणक ऐसा वचन तुमारे गच्छसेही प्रगट हुवा है परन्तु और किसी भी आचार्यने श्रीमहावीरस्वामीजीके षट्कल्याणक ऐसा कथन नहीं किया है)

ऊपरके लेखकी समीक्षाकरके सत्यग्राही सज्जन पुरुषोंको दिखाता हूं, कि ऊपरके लेखको देखकर मेरेको बड़े ही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि आत्मारामजी सुप्रसिद्ध इतने विद्वान् और न्यायांभोनिधिकी उपाधिको धारण करनेवाले हो करके भी अपने दुराग्रहको स्थापन करनेके लिये श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए शास्त्रोंके पाठोंको बिना प्रयोजनके ठहराते महान् उत्सूत्रसे संसार वृद्धिका कुछभी विचार नहीं किया मालूम होता है क्योंकि रायबहादुर मायसिंह मेघराज कोठारीकी तरफसे जो “शुद्ध समाचारी प्रकाश” नामा पुस्तक प्रगट हुई थी जिसके पृष्ठ ७० से ९० तक श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणकोंको सिद्ध करने सम्बन्धी लेख छपा है उसीमें विद्यमान तीर्थङ्कर महाराज श्रीसीमन्धरस्वामीजीका कथन किया हुआ श्रीआचारांगजी सूत्रके दूसरे श्रुत स्कन्धके

भावना अध्ययनका पाठ १, तथा उसीकी वृत्तिका पाठ २, और श्रीगणधर महाराज कृत श्रीस्थानांगजी सूत्रके पञ्चम स्थानके प्रथम उद्देशेका पाठ ३, तथा उसकी वृत्तिका पाठ ४, और चौदह पूर्वधर महाराज कृत श्रीदशाश्रुत स्कन्ध सूत्रके पर्युषणाकल्पनामा अष्टम अध्ययनका पाठ ५, और उसीकी चूर्णिका पाठ ६, और श्रीचन्द्रगच्छके श्रीपृथ्वीचन्द्रजीकृत श्रीकल्पसूत्रके टिप्पणका पाठ ७, श्रीवडगच्छके श्रीविनयचन्द्रजी कृत श्रीकल्पसूत्रके निरुक्तका पाठ ८, श्रीजिनप्रभसूरिजीकृत श्रीकल्पसूत्रकी सन्देहविषौषधिनामा वृत्तिका पाठ ९, और श्रीतपगच्छके श्रीकुलमण्डनसूरिजी कृत श्रीकल्पावचूरिका पाठ १०, और श्रीसुलसाचरित्रका पाठ ११, इन शास्त्रोंके पाठ तथा भावार्थ और गर्भापहारके अच्छेरेको कल्याणक न माननेवालोंकी शङ्काका युक्तिसे समाधान पूर्वक शुद्ध समाचारीप्रकाशके पृष्ठ ७० से ९० तक श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सिद्ध करने सम्बन्धी शास्त्र पाठ और युक्ति पूर्वक लेख छपा है सो उपरोक्त सब शास्त्र पाठोंको आत्मारामजी बिना प्रयोजनके ठहराकर वृथाही ग्रन्थभारी करनेका लिखते हैं तो इसपर निष्पक्षपाती तत्वज्ञ पुरुषोंको विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये-कि, जैसे-कितनेही अन्तर मिथ्यात्वी दीर्घ संसारी भारीकर्मे ढूंढ़िये तथा तेरहापन्थी लोग अपनी कल्पनावाले कदाग्रहको जमानेके लिये श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए शास्त्रोंके मूल पाठोंकोभी उत्थापन करके या बिना प्रयोजनके ठहराकरके अथवा उलटा अर्थकरके उनपाठोंपर अपनी कुयुक्तियोंके संग्रहसे बालजीवोंकी श्रद्धाभ्रष्ट करके मिथ्यात्वके भ्रममें गेरते हैं तैसेही आत्मारामजीने भी पूर्व स्वभावानुसार उपर्युक्त श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके

कथन किये हुए श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंको दिखानेवाले उपरोक्त शास्त्र पाठोंको बिना प्रयोजनके ठहराकर अपने कल्पित कदाग्रहमें भोले जीवोंको गेरनेके लिये महान् अनर्थ किया॥ हा हा अति खेदः॥ श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए शास्त्रोंके पाठोंको बिना प्रयोजनके ठहरानेका महान् अनर्थ करते समय आत्मारामजीके विद्वताकी विवेक बुद्धि किस प्रदेशके कोणेमें घुस गई होगी सो जरा सा भी विचार न किया और वर्तमानमें भी उन्होंके समुदायवाले तथा उन्होंके पक्षपाती जन विद्वान् कहलानेवाले होकरके भी आत्मारामजीके ऐसे अनर्थको पुष्ट करके उत्सूत्र भाषणोंसे कुयुक्तियोंके विकल्पोंको आगे करते हुए मिथ्यात्व बढ़ानेवाले कार्यमें पक्षपातसे आग्रह करते हैं सो भी वर्तमानिक मंडलको लज्जाका कारण है और श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए (श्री आचाराङ्गजी श्रीस्थानांगजी श्रीकल्पसू-त्रादि) शास्त्रोंके पाठोंमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंको प्रगटपने कथन किये हैं सो उन्हीं शास्त्रोंके पाठोंको लिखके सत्यग्रह-णाभिलाषी भव्यजीवोंको शास्त्र प्रमाणानुसार श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंको दिखाना सो शास्त्रोंके पाठ आत्मारामजीके कहनेसे बिना प्रयोजनके ठहर सकेंगे सो तो कदापि नहीं परन्तु श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनका उत्थापन रूपी शास्त्रोंके पाठोंकी अवज्ञासे महान् उत्सूत्र भाषणके वि-पाक तो अवश्यमेव अनुभवनेही पड़ेंगे इस बातको निष्पक्ष-पाती विवेकी तत्वज्ञ पाठक जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और "किसीभी आचार्यने श्रीमहावीरस्वामीके षट् कल्या-णक ऐसाकथन नहींकियाहै" यह लेख भी आत्मारामजीका अपने विषेणको लज्जानेवाला तथा विद्वत्ताकी हँसी करानें

वाला प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि जब श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्व-धरादि पूर्वाचार्यों ने और सबी गच्छोंके पूर्वाचार्यों ने पंचांगीके अनेक शास्त्रोंमें श्रीमहावीरस्वामीके षट्कल्याणक ऐसा प्रगट-पने कथन किया है तो फिर इनका लिखना सत्य कैसे होसकेगा सो तो इस ग्रन्थको पढ़नेवाले निष्पक्षपाती सत्यग्राही विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंके कथना-नुसार हमारे गच्छके पूर्वाचार्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महा-राजने भी श्रीमहावीरस्वामीके षट्कल्याणक कथन किये इसमें कोई दूषण नहीं है तथापि आत्मारामजीने ढूंढक मतके पूर्व स्वभावानुसार शास्त्रकारोंके तात्पर्यार्थको गुरुगम्यसे समझे बिना मिथ्यात्वके उदयसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर छ कल्याणक नवीन प्ररूपणाका मिथ्या दूषण लगाके विद्वताके आडम्बरसे भोले जीवोंको अपने फन्दमें फसानेके लिये जैन सिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकके पृष्ठ ६६ की पंक्ति २१ से पृष्ठ ६७ की २२ वीं पंक्ति तक ऐसे लिखा है कि—

(खरतरगच्छमें परममान्य ग्रन्थ गणधर सार्द्ध शतककी टीकामें ॥ यथा ॥ अभयदेव सूरयः स्वर्गंगताः प्रसन्न चन्द्राचार्ये-णापि प्रस्तावाऽभावात् गुरोरादेशोनकृतः केवलं श्रीदेवभद्रा-चार्याणामग्रे भणितं सुगुरूपदेशतः प्रस्तावे युष्माभिः सफली कार्यः। इतश्च पत्तनादात्मना तृतीयः सिद्धान्तविधिना जिन-वल्लभगणिश्चित्रकूटे विहृतः तत्र चामुण्डा प्रतिबोधिता साधरण श्राद्धस्य परिग्रह प्रमाण प्रदत्त श्रीमहावीरस्य गर्भा-पहाराऽभिधं षष्टं कल्याणकं प्रकटितं क्रमेण साधारण श्रावकेण श्रीपार्श्वनाथ श्रीमहावीरदेव गृहद्वयंकारितं॥ भावार्थः—श्री अभयदेवसूरि महाराज स्वर्गकु प्राप्त हुए और प्रसन्नचन्द्र

आचार्य महाराज भी गुरुका आदेश न कर सके केवल श्रीदेव-भद्र आचार्य महाराजको गुरुका आदेश कहा कि यह सुगुरु महाराजका उपदेश होनेसे अवसर आवे तब तुमने सफल करणा इतश्च पतन नगरसे दो साधु और तीसरे आप श्रीजिन वल्लभगणि सिद्धान्त विधि करके चित्रकूटमें विहार करते भये तिस चित्रकूट विषे चामुण्डाको प्रतिबोधकीनी और साधारण नामका श्रावकको परिग्रहका परिमाण कराया और श्रीमहा-वीरस्वामीका गर्भहरण नाम छठा कल्याणक प्रगट किया और क्रम करके साधारण श्रावकने श्रीपार्श्वनाथजी और श्रीमहा-वीरस्वामीजीके दो मन्दिर कराये। यह उपरका पाठार्थ गणधर सार्द्ध शतककी लघु टीकाका हैं और जिसको शङ्का होवेसो अजमेरमें सौभाग्यमलजी ढढाके भण्डारमें प्राचीन पुस्तक है उसको देख लेवे। अब विचार कीजिए कि जब चित्रकूटमें श्रीमहावीरस्वामीजीका छठा कल्याणक प्रगट किया तो फिर शास्त्रके पाठ लिखके दिखाना सो ग्रन्थको भारभूत है या नहीं)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके सत्य ग्रहणाभिलाषी सज्जन पुरुषोंको दिखाता हूं कि, हे सज्जन पुरुषों उपरके लेखमें आत्मारामजीने श्रीगणधर सार्द्ध शतककी लघु वृत्तिके पाठ का मतलब समझे बिनाही अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजको चित्रकूटमें श्री-महावीरस्वामीजीके गर्भापहारके छठे कल्याणकको नवीन प्रगट करनेका दूषण लगाकर श्रीतीर्थंकर गणधरादि महा-राजोंके कथन किये हुए श्रीआचाराङ्गादि शास्त्रोंके पाठोंको (श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सिद्ध करने सम्बन्धी लिखे उन्होंको) ग्रन्थके भारभूत याने सर्वथा वृथा ठहराकरके गच्छके पक्षपातके दूराग्रहसे भोले जीवोंको अपनी कल्पनाके भ्रममें गेरनेसे संसार

वृद्धिका हेतुभूत मिथ्यात्व बढ़ानेवाला वृथा ही परिश्रम क्यों किया होगा क्योंकि देखो जैसे किसी जगहपर जैन धर्मका प्रचार नहीं होवे उसी जगह जैनी साधुको अनेक तरहके कष्ट उठा करके भी जैन धर्मका प्रचार करना चाहिये सो भगवान् की आज्ञानुसार होनेसे निजपरके आत्म कल्याणका कारण है नतु आज्ञा प्रतिकूल ॥ तथा ॥ किसी नगरमें जैन समुदायमें सुगुरुके अभावसे अज्ञानताके कारण कालांतरे शास्त्रानुसार बातोंका लुप्तभाव होकर शास्त्र विरुद्ध बातोंका अन्धपरम्परासे प्रवर्तन होगया हो तो वहां भी जाकर अनेक तरहकी तकलीफ उठाकरके भी शास्त्र विरुद्ध बातोंका प्रतिषेध पूर्वक शास्त्रानुसारकी लुप्त बातोंको प्रगट करना सो भी जिनाज्ञा मुजब होनेसे आत्म निर्मलताका तथा भव्य जीवोंके उपकारका कारण है—

और शिथिलाचारी द्रव्यलिंगि इहलोकस्वार्थी साध्वाभास गच्छममत्वी दुराग्रही उत्सूत्रभाषकोंने कुसाधुओंकी निन्दा पूर्वक भगवान्‌की आज्ञाविरुद्ध कितनी ही बातोंमें अपनी कल्पनावाले मन्तव्य मुजब भोले जीवोंको अपने फन्दमें फँसाकर कितनीही सत्य बातोंका लुप्तभाव कर दिया होवे वहां कोई हीमतवान् आत्मार्थी परउपकारी शुद्ध मुनि महाराज जाकर उपरकी बातोंका निवारण पूर्वक भगवान्‌की आज्ञा मुजब शास्त्रानुसार सत्य बातोंको प्रगट करे जिसको विवेकशून्य अन्तरमिथ्यात्वी दीर्घसंसारी झूठेपक्षके हठग्राही पूर्णअज्ञानीके सिवाय, विवेकी तत्वज्ञ आत्मार्थी सत्यग्राही तो नवीन बात प्रगट करनेके बहाने भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरकरके सत्य बातकी श्रद्धारहित कदापि नहीं करेगा ॥ तैसे ही चित्रकूट (चीतोड़) में साध्वाभास द्रव्यलिंगी गच्छकदाग्रही चैत्यवासियोंने शास्त्र प्रमाण शून्य अपने अनु-

कूल कितनीही कल्पित बातोंमें दृष्टिरागी भोले जीवोंको भ्रमाकरके अपने फन्देमें फसालिये तथा शास्त्रानुसार कितनीही सत्यबातोंका लुप्तभाव करदिया और नियतवासी परिग्रहधारी बाग बगीचे चैत्यके ममत्वी होकरके निन्दा द्वेषोंसे शुद्ध साधुके द्वेषी बनकर अपना अधिकार जमाये बैठे थे तब वहां श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराज पधारे सो चैत्यवासियोंके दृष्टिरागी श्रावकोंने ठहरनेंको जगा तक भी न दी तब चामुण्डा देवीके मन्दिरमें महाराज जाकर ठहरे और शास्त्रानुसार शुद्ध व्यवहार पूर्वक धर्मध्यान तपश्चर्यादि करके समय व्यतीत करने लगे सो देखकर देवी भी महाराजको भक्त होगई तब महाराजने उपदेश देकरके जीव हिंसाका त्याग पूर्वक जैन धर्मानुरागीकरी और सर्व शास्त्रोंमें ज्ञात सूर्यकी तरह प्रसिद्धिको प्राप्त होनेवाले श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजके पास सत्यग्रहणाभिलाषी अल्प संसारी आत्मार्थी जो जो भव्यजीव आने लगे उन्होंके आगे महाराज भी शास्त्रानुसार उपदेश पूर्वक चैत्यवासियोंकी कल्पित बातोंके भ्रमकोच्छेदन करके श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्य बातोंको प्रगट कहने लगे तथा चैत्यवासियोंके दृष्टिरागका कदाग्रहको छोड़ा करके शुद्ध व्यवहारमें लाये और वहां अविधिमार्गका निषेध पूर्वक विधिमार्गको प्रगट करा जिसमें श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहार नामा छठा कल्याणक भी लुप्तभाव को प्राप्त हो गया था जिसको भी प्रगट किया सो तो शास्त्रानुसार होनेसे विवेकशून्य या गच्छकदाग्रहियोंके सिवाय और तो कोई भी नवीन प्रकट करणा कदापि नहीं कह सकते क्योंकि देखो जैसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके ही परम पूज्य गुरुजी महाराज श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजने श्रीनवाङ्ग शास्त्रोंकी

कृत्तियें बनाई और श्रीस्थम्भनक पार्श्वनाथजी महाराजकी प्रतिमाको प्रगट करी उसीको श्रीखरतरगच्छादि वाले श्रीअभय देव सूरिजी महाराजके चरित्रमें इतिहासिक वार्ता सम्बन्धी जगह्द जगहपर बहुत शास्त्रोंमें लिखते आये हैं सो उन महाराज की प्रशंसाकी बात है नतु निन्दाकी। तैसेही इन्हीं महाराजके शिष्य श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजने चीतोडमें अविधिमार्गका निषेध पूर्वक विधिमार्गके प्रगट करनेमें छठे कल्याणकको भी प्रगट किया सो श्रीखरतर गच्छवालोंने श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजके चरित्रमें इतिहासिक वार्ता सम्बन्धी लिखा सो तो उन महाराजका कर्तव्य शास्त्रानुसार भव्य जीवोंको विधि मार्गका दिखानेवाला होनेसे उन महाराजकी प्रशंसाका कारण है नतु नवीन प्रगट करनेके बहाने निन्दाका कारण॥

तथा औरभीदेखो खास आत्मारामजीही अपना बनाया 'जैन तत्वादर्श' के बारहवें परिच्छेदमें गुर्वावली अधिकारे पूर्वाचार्यों के चरित्रोंमें उन महाराजोंकी प्रशंसा सम्बन्धी श्रीसिद्ध सेन दिवाकरसूरिजी महाराजके चरित्रमें उन महाराजने उज्जेणी नगरीमें श्रीऐवंतीपार्श्वनाथजी महाराजकी प्रतिमाको प्रगट करी ऐसा लिखा है जिसको श्रीऐवंतीपार्श्वनाथजी महाराजकी प्रतिमाके द्वेषी तथा श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरिजी महाराजके निन्दक ढूंढ़िये और तेरहापन्थी लोग भोले जीवोंको अपने फन्दमें फंसानेके लिये जिनमूर्तिका नवीन प्रगट करना कहे तो उनको पूर्ण अज्ञानीके सिवाय विवेकी तत्वज्ञ तो कदापि नवीन प्रगट करना नहीं कहेंगे किन्तु लुप्त बातका प्रगट होना तो अवश्यही कहेंगे तैसेही श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजने भी चीतोडमें विधिमार्गकी विच्छेद (लुप्त)बातोंके प्रगट करनेमें छठे कल्याणकको भी प्रगट किया जिसको उन महा-

राजके द्वेषी तथा श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारके निन्दक भारीकर्म पूर्णअज्ञानी विवेकशून्य गच्छकदाग्रहीके सिवाय आत्मार्थी विवेकी तत्वज्ञ तो नवीन प्रगट करनेके बहाने भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें कदापि नहीं गेरेगे और इसका विशेष निर्णय धर्मसागरजीने धर्म धूर्त्ताईकी ठगाईसे श्रीगणधरसार्द्ध शतककी बृहद्वृत्तिके अधूरे पाठसे भोले जीवोंको भ्रममें गेरे हैं जिसकी समीक्षा आगे होगी वहां लिखनेमें आवेगा—

अब देखिये आत्मारामजी इतने बड़े सुप्रसिद्ध विद्वान् होकरके भी खास अपने बनाये जैनतत्वादर्शमें प्रभावक चरित्रादि शास्त्रानुसार श्रीसिद्धसेन दिवाकरसूरिजीने उज्जेणी नगरीमें श्रीऐवंती पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको प्रगट करी। ऐसा खुलासा लिखते हैं उसी तरहसे ही श्रीजिनवल्लभ सूरिजीने भी चीतोडमें छठे कल्याणकको प्रगट किया सो तो शास्त्रानुसार की कालयोग्यसे दबीहुई लुप्त बातको प्रगट करनेका प्रत्यक्षही अर्थ है नतु शास्त्रप्रमाण बिना अपनी मति कल्पनासे, सो-इस बातको आत्मारामजी तो क्या परन्तु हरेक विवेकी विद्वानूजन तो स्वयं ही जान सकते हैं तथापि आत्मारामजीने भोले जीवोंको अपने भ्रमचक्रमें गेरनेके लिये दबीहुई लुप्तभावकी प्राचीन बातको प्रगट करनेके अर्थको बदलकरके अपनी मति कल्पनासे नवीन प्रकट करने रूपी उत्सूत्र प्ररूपणाका मतलब बालजीवोंको दिखाया सो अपने विशेषणको लज्जानेवाली अज्ञानताकी या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी मायाचारी कही जावे या नहीं इसको विवेकी तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे :—

और खरतर गच्छमें गणधर सार्द्ध शतककी टीका परममान्य होनेका आत्मारामजीने लिखा सो भी मायाचारीका ही कारण है क्योंकि खरतर गच्छवालोंके गणधर सार्द्धशतककी

टीका परममान्य तो क्या परन्तु पञ्चांगीके सब शास्त्र प्रकरणादि परममान्य है नतु आप लोगोंकीतरह एक मान्य दूसरा अमान्य॥

और 'प्रसन्नचन्द्राचार्य भी गुरुका आदेश न कर सके, इससे गुरुआज्ञा विराधक नहीं समझना किन्तु श्रीअभयदेव सूरिजी महाराज स्वर्ग जाते समय श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्यजीको कहगये थे कि अवसर आवे जब अच्छे लग्नको देखकर श्रीजिनवल्लभगणिको मेरे पाटपर स्थापनकरना सो अवसर श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्यजीको न मिलसका तब श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्यजीने श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके कथनको श्रीदेवभद्राचार्यजीको कहा सो उन्होंने अवसर आनेसे श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके पाटपर श्रीजिन-वल्लभगणिजीको स्थापन करके श्रीजिनवल्लभ सूरिजी नाम रक्खा इसलिये पूर्वापरके सम्बन्ध रहित अधूरा पाठ लिखके अधूरी बातसे भोले जीवोंको भ्रममें गेरना आत्मारामजीको उचित नहीं था, खैर—

और श्रीगणधर सार्द्धशतककी लघुवृत्तिके पाठमें किसीको सन्देह हो तो अजमेरमें सौभाग्यमलजी ढढाके भण्डारमें प्राचीन पुस्तक है जिसको देख लेनेकी आत्मारामजीने भलामण करी॥ इसपर भी मेरेको बड़ाही आश्चर्य उत्पन्न हुआ कि— आत्मारामजीने जैन सिद्धान्त समाचारीमें अपना कल्पित मन्तव्यको स्थापन करनेके लिये २५। ३० शास्त्रोंके पाठोंको लिखे उसीमें तो किसी भी जगहपर अमुक शास्त्र पाठको अमुक जगहसे देख लेने सम्बन्धी भलामण न करी क्योंकि उन शास्त्र-कार महाराजोंके विरुद्धार्थमें और शास्त्रोंके पूर्वापर सम्बन्ध-वाले पाठोंको छोड़करके शास्त्रोंके पाठोंकी चोरीसे वीचमेंके अधूरे अधूरे पाठोंको लिखके उत्सूत्र भाषणोंसे भोले जीवोंको अपने भ्रमचक्रमें गेरनेका परिश्रम किया इसलिये उन शास्त्रोंके

तो पाठोंको देख लेनेकी भलामण करते इनको लज्जा आई और श्रीगणधर सार्द्ध शतककी लघु टीकाके पाठको देख लेनेकी भलामण करके अपनी साहूकारी प्रगट करना चाहा परन्तु इससे तो अपनी विद्वत्ताकी विशेष हांसी करानेका कारण हुआ क्योंकि अजमेरमें उसी पुस्तकको देखनेके लिये इतनी दूर कौन जावे उसीका प्राचीन पुस्तक मेरे पास यहां ही मौजूद है उसीमें छठा कल्याणक प्रगट करने सम्बन्धी अक्षर देखके आप-लोगोंको भ्रम पड़ गया परन्तु सद्गुरुसे उसीका मतलब समझे बिना सन्देह करना उचित नहीं है क्योंकि देखो "प्रभावक चरित्र" में भी श्रीवृद्धवादिजीके शिष्य श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरिजीके चरित्रमें तथा श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके चरित्रमें श्रीऐवंतीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको तथा श्रीस्थम्भनपार्श्व-नाथजीकी प्रतिमाको प्रगट करने सम्बन्धी खुलासा अक्षर लिखे हैं सो तो छपाहुआ श्रीप्रभावक चरित्र प्रसिद्ध है तथा उपरकी बात अनेक शास्त्रोंमें प्रगट भी है और आत्मा-रामजीने भी सिद्धसेन दिवाकरजी महाराजके चरित्रमें श्रीऐवं-तीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको प्रकट करनेका खुलासापूर्वक लिखा है।

प्रश्नः—अजी श्रीऐवंतीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको तो अन्य मतियोंने लुप्त करी थी तथा श्रीस्थम्भनपार्श्वनाथजीकी प्रतिमा भी कालयोग्यसे लुप्तभावको प्राप्त होगई थी इसलिये श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरिजीको तथा श्रीअभयदेवसूरिजीको प्रगट करनेका अवसर मिला तब उन महाराजोंने प्रगट करी परन्तु श्रीमहावीर स्वामीका छठा कल्याणक पूर्वे कहां था तथा कब लुप्तभावको प्राप्त हुआ सो श्रीजिनवल्लभ सूरिजीको प्रगट करनेका अवसर प्राप्त हुआ सो बताओ।

उत्तरः—भो देवानुप्रिय। तेरेको गुरु गम्यसे या अनुभवसे श्रीजैनशास्त्रोंका गम्भीराशय समझमें नहीं आया उसीसे ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ है इसलिये अब तेरा सन्देह दूर करनेके लिये इस अवसरपर तो मेरेको इतना ही कहना है। कि जैसे श्रीऐवन्ती पार्श्वनाथजीकी प्रतिमा पूर्वे थी जब अन्य मतियोंनें लुप्तभावको प्राप्त करी तथा श्रीस्थम्भनापार्श्वनाथ-जीकी प्रतिमा भी पहिले थी जब कालयोग्यसे लुप्त भावको प्राप्त हुई तब उन महाराजोंनें अवसर पाय करके प्रगट करी तैसेही श्रीमहावीरस्वामीका छठा कल्याणक भी (श्रीऋषभदेव स्वामी आदि तीर्थंकर महाराजोंका तथा महाविदेहक्षेत्रमें विद्यमान भगवान् श्रीसीमन्धरस्वामीका और श्रीवर्द्धमान स्वामीके गणधर तथा पूर्वधरादि महाराजोंका कथन किया हुआ) अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने था तथापि चैत्यवासियोंने अपने साधुपनेका व्यवहार छोड़कर दृष्टिराग गच्छ ममत्व तथा परिग्रहादिके लोभमें पड़गये और शास्त्रानुसारके शुद्ध व्यवहारकी कितनीही बातोंका लुप्तभाव करते हुए अपनी कल्पना मुजब अविधिमार्गकी कितनीही बातोंको जिस समय प्रवर्तमानकरी उसी समय श्रीमहावीरस्वामीका छठा कल्याणक भी लुप्तभावको प्राप्त हो गया तब चीतोड़ नगरमें श्रीजिनवल्लभसूरिजीने अविधिमार्गकी कल्पित बातोंका निषेध पूर्वक शास्त्रानुसार विधिमार्गकी बातोंको प्रगट करनेमें श्रीमहावीरस्वामीका छठा कल्याणक भी प्रगट किया और जैसे श्री ऐवन्तीपार्श्वनाथजीकी मूर्त्तिको ब्राह्मणलोगोंने लुप्तकरी जिसका तथा श्रीसिद्धसेनदिवाकरजी महाराजने प्रगटकरी जिसके वर्षोंका नियमित समय तो श्रीज्ञानीजी महाराजके सिवाय दूसरे कोई कहनेको समर्थ नहीं है तैसेही

श्रीमहावीरस्वामीके छठे कल्याणकका कालदोषसे द्रव्यलिंगी चैत्यवासियोंसे लुप्त हुआ जिसका तथा श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने प्रगट किया जिसके वर्षों का नियमित समयको तो श्रीज्ञानीजी महाराजके सिवाय दूसरा कोई कहनेको समर्थ नहीं है और जैसे श्रीसिद्धसेनदिवाकर सूरिजी महाराजसे तथा श्री अभयदेवसूरिजी महाराजसे भी विशेष गीतार्थ समर्थ पूर्वाचार्य पूर्वे हो गये परन्तु जिस समय जिसके योग्यसे जो बात बननेवाली होती है सो बात उसी समय उनकेही योग्यसे बनती है नतु दूसरेके योग्यसे दूसरे समयमें सो यह बात प्रसिद्ध है इसीकेही अनुसार श्रीएवन्ती पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाके तथा श्रीस्थम्भन पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाके उन्हीं महाराजोंकी भक्तिपूर्वक स्तवनासे प्रगट होकर शासन प्रभावना और भव्यजीवोंको उपकार होनेका कारण होनेवाला था सोही हुआ॥ तैसेही श्रीजिनवल्लभ सूरिजीसे भी विंशेष गीतार्थ समर्थ पुरुष पूर्वे हो गये परन्तु विशेष रूपसे चैत्यवासियोंका अविधि मार्ग और दृष्टिरागके पक्षपातकी भ्रमजालको तोड़कर सिद्धान्तानुसार विधिमार्गका प्रकाश श्रीजिनवल्लभ सूरिजीसेही होनेवालाथा इसलिए इन महाराजने उसीसमय चैत्यवासियोंके अनेक उपद्रवोंको भी सहन करके-विधिचैत्य १, विधिसे उसीका पूजन २, यत्नापूर्वक विधिसे उसीकी संभाल ३, चैत्यवास त्यागरूपोपदेश ४, निशिचैत्यप्रतिष्टा निषेध ५, तथा निशि स्नात्र पूजनादि निषेध ६, सूतिकागृहे मुनि भिक्षा निषेध ७, निर्वद्य ४२ दोषरहित मुनि गौचरीका व्हवहार ८, षष्ठ कल्याणकाराधन व्यवहार ९, अप्रतिबद्ध मुनि विहार १०, द्रव्यसे गुरु अङ्ग पूजन निषेध ११, चैत्य निर्माल्य भक्षण निषेध १२, निजद्रव्य तथा

चैत्यद्रव्य परिग्रह ममत्व परिहार १३, ज्ञानद्रव्य भक्षण निषेध १४, गृहस्थी गृहे भोजन करण निषेध १५, इत्यादि साधु श्रावक चैत्यादि सम्बन्धी क्रिया अनुष्ठानोंमें शास्त्र विरुद्ध अविधि मार्गकी बातोंका निषेधरूपी लुप्तभाव और शास्त्रानुसार विधिमार्गके लुप्तभावकी बातोंको प्रगट करने रूपी प्रकाशभाव करके बहुत भव्यजीवोंका श्रीजिनाज्ञाके आराधन पूर्वक आत्मसाधनके उपकारका कारण किया तथा करगये इसलिये श्रीजिनवल्लभ सूरिजी जैसे पूर्वे कोई भी गीतार्थ समर्थ पूर्वाचार्य नहीं हुए सो चीतोड़में जाकरके षष्ठ कल्याणकादि उपरकी बातोंको प्रगट नहीं करसके जिससे इन महाराजको उपरकी बातें प्रगट करनी पड़ी ऐसी कुतर्क करना उपरके कारणसे सर्वथा वृथा हैं क्योंकि जब चीतोड़में तो क्या परन्तु उसी देशमेंही प्राय करके सबी जगहपर भोलेजीवोंके विधिमार्गसे श्रीजिनाज्ञा आराधनकी शुद्ध श्रद्धारूपी सम्यक्त्व रत्नके धनको हरण करके अपने दृष्टिरागके फन्दमें फँसाकर अविधि मार्गरूपी मिथ्यात्वमें गेरनेवाले वेषविटम्बक चैत्य वासी जन व्याप्त हो गये थे तो फिर ऐसे अवसरमें शुद्ध क्रिया पात्र परमोपकारी शास्त्रतत्वज्ञ और अविधिरूपी अन्धकारको नाश करनेमें सूर्य समान प्रकाश करनेवाले तथा वेषधारियोंके पाषण्डको तोड़नेमें समर्थ अनेक तरहके उपद्रवोंको सहन करनेवाले श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके सिवाय दूसरा कौन वहां जाकरके भव्यजीवोंके उपकार निमित्त शास्त्रानुसार विधि मार्गकी बातोंको प्रगट करानेके लिये इतना परिश्रम कर सकता था जिसको तो तत्वग्राही विवेकी पाठक गणभी स्वयं विचार सकते हैं ;—

तथा और भी एक वर्तमानिक प्रत्यक्ष प्रमाण भी यहां पाठ-

कवर्गको दिखाता हूं कि-देखो-अधिक मासके ३० दिनोंकी गिनती निषेध करनेका तथा श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकको निषेध करनेका प्रत्यक्ष कुयुक्तियोंसे अन्यायकारक और उत्सूत्र प्ररूपणाके कदाग्रहको निवारण करके श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनानुसार पंचांगीके प्रमाणों मुजब और सुयुक्तियों सहित अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें लेनेके तथा श्री वीरप्रभुके छठे कल्याणकको सिद्ध करके दिखानेके लिये श्रीजिनाज्ञाराधक आत्मार्थी परोपकारी और दीक्षा पर्य्यायमें स्थविर अनेक गीतार्थ समर्थ पुरुष पहिले हो गये तथा वर्तमानमें भी होगें परंतु "श्रीपर्युषणा निर्णय" नामाग्रन्थमें उपरकी बातोंका विस्तारसे शंका समाधान पूर्वक निर्णय होनेका ६।७ वर्षके नवदीक्षित बालक तथा अल्प बुद्धिवाले मेरेसेही योग्य था सो हुआ और भव्यजीवोंके उपकारार्थे प्रगट करनेका भी अवसर आया तो क्या मेरे जैसे तथा मेरेसे विशेष विद्वान् पूर्वे कोई नहीं हुए तथा वर्तमानमें कोई नहीं सो मेरेको उपरका कार्य करना पड़ा सो तो कदापि नहीं क्योंकि पंच समवायके योग्यसे जो कार्य जिससे होनेवाला होता है सो कार्य उसीसे होगा नतु दूसरेसे ॥ बस इसीकेही अनुसार चीतोड़में चैत्यवासियोंके कदाग्रहको हटाकरके पूर्वोक्त लुप्त बातोंको श्रीजिनवल्लभ सूरिजीसे ही प्रगट होनेका योग्य था सो हुआ इसलिये दूसरे पूर्वाचार्य षष्ठ कल्याणकादि बातोंको वहां उस समय प्रगट न करसके तो फिर श्रीजिनवल्लभ सूरिजीने कैसे किया ऐसा सन्देह करनाही उचित नहीं है यदि ऐसा सन्देह हो गया हो तो उपरके लेखको पढ़कर निकाल देना चाहिये इस बातको विशेषतासे सत्यग्रहणाभिलाषी पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे—

और श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक भव्यजीवोंको दिखानेके लिये शुद्ध सामाचारी प्रकाश नामा पुस्तकमें श्रीआचाराङ्गादि शास्त्रोंके पाठोंको पं० प्र० यतिजी श्रीरायचन्दजीने लिखे जिसको श्रीआत्मारामजी ग्रन्थके भार भूत याने सर्वथा वृथा ठहराते हैं सो तो भगवान्‌की वाणीरूपी शास्त्रोंकी अवज्ञा करके उत्सूत्रभाषणसे अपने और दृष्टिरागी जूठे पक्ष ग्राही जनोको संसार परिभ्रमणका और ज्ञानावर्णीय कर्म उपार्जन करनेका निमित्त भूत गच्छकदाग्रहको स्थापन करनेके लिये वृथाही इतना परिश्रम क्यों किया होगा जिसको तो उपरमेंही पृष्ठ ५५८।५५९।५६० के लेखको पढ़नेवाले पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे—

और आगे फिरभी आत्मारामजीने भोलेजीवोंको भ्रमानेके लिये जैन सिद्धान्त समाचारीके पष्ठ ६७ की पंक्ति २३ वींसे पष्ठ ६८ की चौथी पंक्तितक एसे लिखा है कि (पृष्ट ७० से लेके पष्ठ ७३ तक आचाराङ्ग स्थानाङ्ग दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णिके जो पाठ लिखे हैं, उसमें कल्याणक शब्दका गन्ध भी नहीं है क्योंकि प्रथम आचारांगमें पंच हत्थुत्तरे होत्था ऐसा पाठ है और टीकाकारने निवृत्तिस्तुस्वातौ निर्वाण स्वाति नक्षत्रमें ऐसा कहा है और दशाश्रुत स्कन्धकी चूर्णिमें छण्हं वत्थुणं कालो वाघरिओ अर्थात् छ वस्तुओंका काल कथन किया ऐसा पाठ है तो फिर तुमने जोरा जोरी छ कल्याणक कैसे बना लिये)

उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि-हे सज्जन पुरुषो जो श्रीआत्मारामजी श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी भवभीरु सत्यग्रहण करनेवाले भव्य जीवोंके उपकारी होते तो गच्छ कदाग्रहसे श्रीआचारांगादि शास्त्रोंमें कल्याणक शब्दका गन्ध भी नहीं है इत्यादि प्रत्यक्ष

माया मिथ्या और उत्सूत्र भाषणरूप उपरका लेख लिखकरके भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेके लिये मिथ्यात्वका कारण कदापि नहीं करते क्योंकि देखो शुद्ध समाचारी प्रकाशमें श्रीमहावीर-स्वामीके षष्ठ कल्याणकाधिकारे पृष्ठ ७० से ७३ तक श्रीआचारां-गादि शास्त्रोंके पाठ लिखे सो उन पाठोंसे भगवान्‌के च्यव-नादिकोंको कल्याणकोंरहित ठहरानेका परिश्रम आत्मारामजीने किया सो सर्वथा वथा है क्योंकि श्रीआचारांगजीमें श्रीमहावीर स्वामीके चरित्रका वर्णन किया है जिसमें च्यवनसे लेकर मोक्ष गमन पर्यंतके मास पक्ष तिथि नक्षत्रोंका खुलासा पूर्वक वर्णन किया है उसीमें च्यवनादिकोंको कल्याणकत्वपना तो अनादिसे स्वयं सिद्ध है कारणकि-अनादि कालसे श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराज श्रीतीर्थंकर भगवान्‌के च्यवनादिकोंको कल्याणक कहते आये हैं तथा वर्तमानमें भी कहते हैं सो जैनमें प्रसिद्ध है तथापि श्रीआत्मा रामजीने श्रीआचारांगजी सूत्रमें श्रीवीरप्रभुके सम्पूर्ण चरित्रको ही कल्यणकों रहित ठहरा दिया। हा अति खेद। कितनी बड़ी आश्चर्यकी बात है कि न्यायांभोनिधिका विशेषण धारण करके भी प्रत्यक्ष मायाचारी पूर्वक अन्याय करते हुए अपने गच्छ कदाग्रहकी कल्पित बातको स्थापन करनेके आग्रहमें फँसकर श्रीतीर्थंकर भगवान्‌के च्यवनादिकोंका प्रचलित कल्याणकके अर्थको जड़ मूलसे उठा करके श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी कथन करी हुई बातका उत्थापन करनेसे संसार वृद्धिका किंचित्मात्र भी हृदयमें विचार न किया॥ खैर॥

अब पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि-जैसे किसी शास्त्रमें "गौचरीके ४२ दोष रहित भिक्षावृत्ति करके निअतिचार पंच महाव्रतोंका पालन पूर्वक कर्मोंका क्षय करके

मोक्षको प्राप्त हुआ" ऐसा मतलबका पाठ आवे वहां यद्यपि साधु मुनिका नामवाला शब्द कथन नहीं किया गया तो भी पांच महाव्रतोसे साधु तो स्वयं सिद्ध होही चुका तथापि कोई उपरमें साधु शब्दका तो गन्ध भी नहीं है ऐसा कह करके साधुका निषेध करे तो उसीको विवेकशून्य हठवादी अज्ञानी समझना चाहिये ॥ तैसेही श्रीआचारांगजीमें श्रीवीर-प्रभु चरम तीर्थंकर भगवान्‌के च्यवन जन्मादिकोंके मास पक्ष तिथि नक्षत्रोंका खुलासा पूर्वक चरित्रका वर्णन करनेमें आया है वहां च्यवनादिकोंको कल्याणकत्वपना तो स्वयं सिद्ध हो चुका और गर्भापहारसे गर्भ संक्रमणको तो आश्चर्यके कारणसे दूसरे च्यवनकी प्राप्ति होनेसे उसीको भी कल्याणकत्वपना तो स्वयं सिद्ध है तथापि आत्मारामजीने श्रीवीरप्रभुके मोक्ष गमन पर्यत सब चरित्रको ही कल्याणकों रहित ठहराया सो तो अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे भोले जीवों को भ्रमाकरके शास्त्रानुसारकी सत्य बातपरसे श्रद्धा भ्रष्ट करने रूप मिथ्यात्व फैलानेके सिवाय और कुछ भी सार मालूम नहीं होता है इसको विशेषतासे तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे

तथा और भी सत्य ग्रहणाभिलाषी पाठकगण को यहां प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाता हूं कि देखो श्रीकल्पसूत्रमें श्रीपार्श्व-नाथजी तथा श्रीनेमिनाथजी और श्रीआदिनाथजी भगवान्‌के चरित्र वर्णन करनेमें आये हैं वहां उन महाराजोंके च्यवनादि-कोंसे मोक्ष पर्यतके मास पक्ष तिथि नक्षत्रोंका खुलासा पूर्वक वर्णन किया है परन्तु वहां किसी जगहभी कल्याणक शब्दका तो कथन सूत्रकारने नहीं किया है तो भी अनादि व्यव-हारकी प्रसिद्ध बात मुजब उन्होंके च्यवनादिकोंको कल्याणक-पना प्रगटपने आपलोग सब कोई कहते हैं तैसेही इसीही

श्रीकल्पसूत्रमें और श्रीआचारांगजी सूत्रमें श्रीमहावीरप्रभुके भी च्यवनादिसे मोक्ष पयतका विस्तारसे चरित्र वर्णन किया है उसीको कल्याणक कहनेके बदले उलटे विशेषतासे निषेध करते हैं इससे तो शासन नायक श्रीवीरप्रभुके च्यवनादि कल्याणकोंसे आपलोगोंके पूर्णतया द्वेष मालूम होता है अन्यथा २२वें २३ वें और प्रथम भगवान्‌के च्यवनादिकोंको कल्याणक कहनेका और २४ वें भगवान्‌के च्यवनादिकोंको कल्याणकपना न कहके निषेध करनेका ऐसा प्रत्यक्ष अन्याय अपनी विद्वत्ताकी चतुराईको लज्जानेवाला कदापि नहीं होता, इस बातको तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेना—

और श्रीस्थानांजी सूत्रमें चौदह तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांचके नाम और नक्षत्रोंके नामोंकी खुलासा पूर्वक वर्णनके साथ सूत्रकार श्रीगणधर महाराजनें व्याख्या करी है उसीमें कल्याणक शब्द न देखकर १४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांच कल्याणकोंको माननेमें न्यायांभोनिधिजीको तथा उन्होंके पक्षवालोंको भ्रांति पड़ गई इसलिये "उसीमें कल्याणक शब्दका गंध भी नहीं है" इत्यादि शब्द लिखके श्रीस्थानांगजीमें चौदह ही तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांचों पांचोंको कल्याणकों रहित ठहराये सो भी पूर्ण अज्ञानता या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वताकाही कारण मालूम होता है क्योंकि—उपर लिखे न्यायानुसार तीर्थंकर भगवानोंके च्यवनादि पांचोंकों कल्याणकपना तो अनादिसे स्वयं सिद्ध है तथा भगवान्‌के च्यवनादिकोंका नाम मात्र ही कथनसे कल्याणकका अर्थ तो जैनमें प्रगटपने है इसलिये कल्याणक शब्द लिखनेकीही कोई जरूरत भी नहीं है

और श्रीतीर्थंकर भगवान्के च्यवनादिकोंको कल्याणक कहनेका तो प्रायः करके सबकोई विवेकी जैनी जानतेही हैं तथापि न्यायांभोनिधिका विशेषण धारण करनेवाले आत्मारामजीने श्रीतीर्थंकर भगवान् वीरप्रभुके च्यवनादिकोंको कल्याणकपनेसे निषेध करनेके लिये श्रीस्थानांगजीसूत्रके मूल पाठमें श्रीगणधर महाराजके कथन किये हुए चौदह तीर्थंकर महाराजोंके सत्तर (७०) कल्याणकोंको जड़ मूलसे उड़ा करके अपने गच्छ ममत्वकी कल्पनाको स्थापन करनेके लिये ऐसा महान् अनर्थ किया परन्तु उत्सूत्रभाषणसे संसार वृद्धिका कारण भूल गये सो बड़ेही खेदकी बात है कि–इस कलियुगमें श्रीआत्मारामजी इतनेबड़े प्रसिद्ध विद्वान् हो करके भी विद्वताके अभिमानसे दृष्टिरागी भोलेजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए (श्रीतीर्थंकर भगवान्के च्यवनादिकोंको कल्याणकपनेके) अर्थका भङ्ग करके सर्वथा निषेध करनेका इतना अनर्थ कारक परिश्रम करके भी शुद्ध प्ररूपक उत्कृष्टि क्रिया करनेवाले आज्ञा आराधक कहलाते हुए कुछ लज्जा भी नहीं करी सो तो अन्तर मिथ्यात्वका कारणही मालूम होता है इस बातको विशेषतासे निष्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे

और इतने पर भी श्रीस्थानांगजीमें १४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादिकोंको कल्याणक शब्दसे सूत्रकारने न लिखा देख करके च्यवनादिकोंको कल्याणक न माननेवाले विवेकशून्य हठावादियोंके कल्पित कदाग्रहको विशेषतासे दूर करनेके लिये इस अवसर पर पाठकगणको यहां प्रत्यक्ष प्रमाण भी दिखाता हूं कि-देखो इसीही श्रीस्थानांगजी सूत्रके तीसरे स्थानके मूल पाठमें तथा उसीकी वृत्तिमें श्रीतीर्थंकर भगवान्के

जन्म दीक्षा और ज्ञानोत्पत्ति इन तीनों बातोंके होनेसे लोकमें उद्योत होनेका तथा देवताओंके आगमनका लिखा है, परन्तु यहां सूत्रकारने और टीकाकारने भी कल्याणक शब्दका तो कथन ही नहीं किया तो क्या न्यायांभोनिधिजी यहां भी तीर्थंकर भगवान्‌के जन्मादिकोंको कल्याणक नहीं मानेगे सोतो कदापि नहीं, यदि मानते होंगे तब तो बड़े ही आश्चर्य सहित महान् खेदकी बात है कि, गच्छ कदाग्रहके झगड़ेमें पड़कर उत्सूत्र भाषणसे संसार वृद्धिके भयको भूल करके भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये एकही सूत्रके तीसरे स्थानके पाठसे तीर्थंकर भगवान्‌के जन्मादिकोंको कल्याणक मानते हुए भी इसीही सूत्रके पंचम स्थानके मूल पाठसे १४ तीर्थंकर महाराजोंके चयवन जन्म दीक्षादिकोंको कल्याणक न मान्य करके विशेषतासे निषेध करनेका ऐसा प्रत्यक्ष अन्याय आत्मारामजीको अपने न्यायांभोनिधिके विशेषणको लज्जानेका कारण करना कदापि उचित नहीं था सो भी पाठकगण विचार लेना—

औरभी इसीही तरहसे श्रीजीवाभिगमजी सूत्रके मूल पाठमें तथा उसीकी वृत्तिमें नन्दीश्वरद्वीपाधिकारे सूत्रकारने तथा वृत्तिकारने श्रीतीर्थंकर भगवान्‌के जन्म दीक्षा ज्ञानोत्पत्ति और निर्वाण होनेसे सुर असुर देवोंका बहुत समुदाय मिलकर नन्दीश्वरद्वीपके शाश्वत चैत्योंमें भगवान्‌की प्रतिमाजीके आगे अठाईउत्सव करनेका लिखा है परन्तु वहां भी कल्याणक शब्द नहीं लिखा तो भी अनादि व्यवहारसे भगवान्‌के जन्मादिकोंका कल्याणक ही अर्थ किया जाता है और श्रीआवश्यकजी सूत्रकी निर्युक्तिमें तथा उसीकी चूर्णिमें और उसीकी वहद्वृत्तिमें तथा लघुवृत्तिमें श्रीचौबीसही तीर्थंकर

महाराजोंके दीक्षा और ज्ञान उत्पत्तिके मास पक्ष तिथि नक्षत्रादिकोंकी खुलासाके साथ व्याख्या करी है वहां भी सबी जगह कल्याणक शब्द नहीं लिखा है और श्रीत्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्रमें भी कितनेही पर्वोंमें (विभागोंमें) बहुत तीर्थंकर महाराजोंके चयवनादिकोंके नामों पूर्वक उन्होंके मास पक्ष तिथि नक्षत्रोंका खुलासा लिखा है परन्तु वहां सबी तीर्थंकर महाराजोंके चरित्रोंमें सबी जगह पर चयवन जन्मादिकोंमें कल्याणक शब्द नहीं लिखा है परन्तु अनादिका प्रसिद्ध व्यवहारानुसार उन चयवनादिकोंको कल्याणक अर्थ पूर्वक कथन किये जाते हैं तथा औरभी मौन एकादशीके गुनणेके जापकी नामावलीमें और श्रीतीर्थंकर महाराजके ५२।५२ बोलोंके यन्त्रोंमें तथा पांच कल्याणकोंकी टीपमें चयवनादिकोंके नाम लिखे हैं वहां कल्याणक शब्दका नाम लिखे बिना भी उन्होंको कल्याणक कहनेका तो सब कोई प्रगटपने मान्य करते हैं तैसेही जो भगवान्‌की आज्ञाके आराधक आत्मार्थी विवेकी जन होगें सो तो श्रीस्थानांगजीमें १४ तीर्थंकर महाराजोंके चयवनादि पांच पांचको कल्याणकपनेमें मान्य करेंगे परन्तु अभिनिवेशिकमिथ्यात्वी दीर्घसंसारी होगें सो न मानेगें और कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंको भ्रममें गेरेगें तो उन्होंकेही भारी कर्मोंको दोष है नतु शास्त्रकारोंका इस बातको विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और श्रीस्थानांगजी सूत्रकी वृत्तिमें श्रीपद्मप्रभुजी आदि तीर्थंकर महाराजोंके चयवनादिकोंके मास पक्ष तिथि नक्षत्र तथा माता पिताके नाम और नगरीके नामकी खुलासा पूर्वक व्याख्या करके टीकाकारने चयवनादि पांच पांच स्थान कहे अर्थात् चयवनादि पांच पांच कल्याणकोंको स्थान शब्दकी

संज्ञाके नामसे लिखे जिसको देखकर गुरुगम्य शून्यतासे न्यायांभोनिधिजीको भ्रांति पड़गई कि, टीकाकारने च्यवनादि पांच पांच स्थान कहे परन्तु पांच पांच कल्याणक नहीं कहे उसीसे च्यवनादि पांच पांच कल्याणक नहीं किन्तु कोई अन्य अर्थ वाची पांच पांच स्थान होंगे बस-इसी भ्रमसे तीर्थंकर महाराजके च्यवनादि पांच पांच कल्याणकोंसे चौदह तीर्थंकर महाराजोंके ७० कल्याणकोंका निषेध करनेका कुछभी भय न रखकर पांच पांच स्थान कहनेका आग्रह किया सो भी अन्य मतियोंके पण्डितोंसे व्याकरणादि पढ़कर विद्वताके अभिमानरूपी अजीर्णताके कारणसे गुरुगम्य बिना श्रीजैन शास्त्रोंका अतीवगहनाशय न्यायांभोनिधिजीके समझमें नहींआया मालूम होता है क्योंकि चौदह तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांच स्थान कहे हैं सो ही पांच पांच कल्याणक समझने चाहिये क्योंकि देखो जैसे किसी शास्त्रमें "जब इस जीवको ऊपरमें जानेके लिये सीढीके १४ पगथीयेरूपी १४ स्थान प्राप्त होवेंगे तब महलमें जाना होगा" इस तरहका अधिकार किसी प्रसङ्गमें आजावे तो वहां मोक्षरूपी महलमें जानेके लिये सीडीके १४ पंगथीयरूपी १४ स्थान सोही १४ गुण स्थान गुणोंकी श्रेणी प्राप्त होनेसे अनन्त और अक्षय सुख मिल सकता है इस मतलबका भावार्थवाला अर्थ करना चाहिये परन्तु वहां अन्य अर्थ वाची स्थान शब्दका अर्थ कदापि नहीं हो सकेगा तैसेही यहां भी श्रीस्थानांगजी सूत्रकी वृत्तिमें १४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादिकोंको पांच पांच स्थान कहे सोतो निज परके कल्याण कारक मोक्ष हेतु गुणोंकी श्रेणीरूप गुणोंके स्थान प्रगटपने कल्याणक अर्थकी सूचना कर रहे हैं इसलिये यहां टीकाकार कल्याणक शब्दका

पर्यायवाची एकार्थ सूचक स्थान शब्द लिखा है ऐसा समझना चाहिये अन्यथा स्थान कहके कल्याणकोंका निषेध करनेसे तो चौदह तीर्थंकर महाराजोंके ७० कल्याणकोंका निषेध होनेसे श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उत्थापनरूप उत्सूत्र भाषणसे मिथ्यात्वके दूषणकी प्राप्ति होवेगी इसको विशेषतासे तो तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे और स्थान शब्द कल्याणकके अर्थवाला है जिसका दृष्टान्तके साथ खुलासावाला लेख पहिले भी विनयविजयजीके लेखकी समीक्षामें इसी ग्रन्थके पृष्ठ ५०१ से ५०२ तक छप गया है उसीको पढ़नेसे भी पाठकवर्गको सब निःसन्देह हो जावेगा ;—

अब श्रीजिनाज्ञा आराधक सत्यग्रहणाभिलाषी सज्जन पुरुषोंसे इस अवसरपर मेरा यही कहना है कि—श्रीस्थानांगजी सूत्र तथा उसीकी वृत्ति सम्बन्धी उपरोक्त लेखके न्यायानुसार श्रीपद्मप्रभुजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजोंके ७० कल्याणक सिद्ध हो गये जिसमें श्रीपार्श्वनाथजी पर्यंत १३ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन जन्म दीक्षा ज्ञान और मोक्ष इन पांच पांच कल्याणकोंके हिसाबसे (श्रीस्थानांगजी सूत्रके मूल पाठसे तथा उसीकी टीकाके पाठसे) ६५ कल्याणक हुए और चौदहवें श्रीमहावीरप्रभुके पांच कल्याणकोंमेंसे तो प्रथम च्यवन तथा गर्भहरणसे गर्भसंक्रमणरूपी दूसरा च्यवन और तीसरा जन्म चौथा दीक्षा पांचवां केवलज्ञानोत्पत्ति यह पांच कल्याणक गिननेसे चौदह तीर्थंकर महाराजोंके सत्तर (७०) कल्याणक होते हैं इसमेंसे श्रीजिनाज्ञा आराधक आत्मार्थी भवभीरु जो जैनी होगा सो तो एकही कल्याणक निषेध नहीं कर सकेगा परन्तु आज्ञाविराधक दीर्घसंसारी जैनभास तो ७० ही कल्याणकोंको निषेध करके सूत्र पाठके अर्थका भङ्गकर देवे

तो उसको कौन रोक सकता है और श्रीस्थानांगजीके पंचवें स्थानमें पांच पांच बातोंका कथन होनेसे सूत्रकारने श्रीशासननायकके केवलज्ञान पर्यंत पांचही कल्याणकोंका कथन किया और छठा मोक्ष कल्याणकका कथन नहीं करसके परन्तु टीकाकारनेतो विशेषता पूर्वक कार्तिक अमावश्याको स्वाति नक्षत्रमें भगवान्‌के मोक्ष गमनका छठा कल्याणकको प्रगटपने कथन कर दिया है सो दीपमालिका दीपोत्सवमालाके नामसे सब जैनमें प्रसिद्ध है इस लिये शासन नायकके छ कल्याणक शास्त्रोंके प्रमाणानुसार तथा युक्ति युक्त होनेसे इनके निषेध करने वालोंको शास्त्र प्रमाण उत्थापक अन्तर मिथ्यात्वी न बनना चाहिये इस बातको भी विशेषतासे तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और श्रीआचारांगजी सूत्रके मूल पाठमें तथा श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठमें तो श्रीमहावीरस्वामीके पांच कल्याणक हस्तोतरा नक्षत्रमें और छठा मोक्षकल्याणक स्वाति नक्षत्रमें प्रगट पने कहा है उसीका उपरमें निर्णय हो गया है जिसको आत्मार्थी आज्ञा आराधक होवेंगे सो तो मान्य करेंगे परन्तु अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी इहलोक स्वार्थी पक्के कटर कदाग्रही जन नहीं मानेंगे और भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेके लिये कुयुक्तियों करके निज परके दुर्लभ बोधिपनेका कारण करते हुए मानुष्य जन्मको बिगाडेंगे तो फिर भवांतरमें मानुष्य जन्ममें जिनाज्ञाकी प्राप्ति विना संसारका पार होना अतीव कठिन है—

और श्रीदशाश्रुतस्कंध सूत्रकी चूर्णिमें श्रीमहावीरस्वामीके चरित्रको मांगलिकके लिये कथन करते भगवान्‌के च्यवनादि छहो कल्याणकोंको छ वस्तु कही सो वस्तु शब्दको देखकर न्यायांभोनिधिजीको यहां भी भ्रम पडगया कि-श्रीवीरप्रभुके

च्यवनादि छहोंको वस्तु कही परन्तु कल्याणक नहीं कहे बस इसी भ्रमसे श्रीमहावीरस्वामीके छहों कल्याणकोंको निषेध करके छ वस्तु स्थापन करनेका आग्रह अन्ध परम्परासे कर लिया सो भी पूर्ण अज्ञानताकाही कारण मालूम होता है क्योंकि देखो जैसे किसी शास्त्रमें कोई भी पदार्थको वस्तु शब्दसे कथन करें तो उसीके विशेषणोंको भी वस्तु शब्दकी संज्ञासे कथन करनेमें कोई हरजा नहीं हो सकता तैसेही यह संसार भी षट्द्रव्योंरूप पदार्थोंकी शाश्वती वस्तुओंसे चलता है उसीमें जीवको भी वस्तुकी संज्ञासे कहा तब उसीके प्रथम निजस्थान निगोदको तथा अनुक्रमे मानुष्य जन्मको और यावत मोक्ष निवासको भी वस्तु संज्ञासे कह सकते हैं तो अब यहां विवेकी तत्वज्ञोंको न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि-जीव द्रव्यात्मक वस्तुने कालान्तरे शुभ क्रियाके योग्यसे तीर्थंकरपना उपार्जन करके देवलोक प्राप्त किया सो उसी जीवात्मक वस्तुके तीर्थंकरपनमें आना सो विशेषके, च्यवनादि गुणोंकी श्रेणियोंके विशेषणोको वस्तु कहनेमें क्या हरजा हुआ अर्थात् कुछ भी नहीं सो अब यहां इस बातपर पाठक गणसे मेरा यही कहना है कि जीव वस्तुके तीर्थंकरपनेमे होना सो विशेषके, च्यवनादिक विशेषणोंको वस्तु कहनेमें आवे सो ही श्रीतीर्थंकर भगवान्के च्यवनादिकोंको कल्याणक समझने चाहिये इसलिये च्यवनादिकोंको वस्तु कहो चाहें कल्याणक कहो सो इस बातको विवेकी तत्वज्ञोंको तो दोनो शब्द एकार्थं सूचक पर्यायवाचीपने करके समान अर्थवाले हैं और इसका विशेष निर्णय पहिले भी विनयविजयजीके लेखकी समीक्षामें इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ४९७ से ५०१ तक छप

गया है जिसको पढ़नेवाले निस्पक्षपाती सज्जन तो दोनों शब्द एकार्थवाले स्वयं समझ लेवेंगे :—

और इसीके अनुसार उपरोक्त लेख मुजबही श्री दशाश्रुत स्कंध सूत्रकी चूर्णिमें श्रीमहावीरस्वामीके च्यवनादि छ वस्तुओंका काल कथन किया अर्थात् च्यवन, गर्भहरण, जन्म, दीक्षा, ज्ञान, और मोक्ष, इन छ वस्तुओंके मास पक्षादि कालका कथन पूर्वक भगवान्का सम्पूर्ण चरित्रको कथन करनेका चूर्णिकारने कहा सो च्यवनादि छह कल्याणकोंका अन्तर्गत अर्थवाला वस्तुशब्द लिखनेका समझना चाहिये नतु कल्याणकोंके निषेधवाला वस्तु शब्द इसबातको उपरोक्त लेखके न्यायानुसार निष्पक्षपाती विवेकी पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और श्रीआचारांगजी सूत्रमें 'पंच हत्थुत्तरे हुत्था साइणा परिनिव्वुडे' इसी तरहका पाठ कहकर इन्हीं छहों कल्याणकोंका खुलासा खास सूत्रकारनेही कर दिया है तथा टीकाकारने भी च्यवन गर्भहरण जन्मादि सबका खुलासा लिख दिया है तथापि (आचारांगमें 'पंच हत्थुत्तरे होत्था' ऐसा पाठ है) इन सअक्षरोंसे सूत्रका अधूरा पाठ न्यायांभोनिधिजीने भोले जीवोंको दिखाकर अपने भ्रममें गेरनेका परिश्रम किया परन्तु श्री कल्पसूत्र मुजब ही खुलासा पाठ श्रीआचारांगजीमें भी होनेसे जो विवेकी आत्मार्थी जन होंगे सो तो इनकी मायाजालमें कदापि नहीं फसेंगे तथा और भी देखो 'पंच हत्थुत्तरे, इन अक्षरोंसे पांच कल्याणक तो हस्तोत्तरा नक्षत्र होनेका लिखा तथा टीकाकारके पाठसे निर्वाण स्वाति नक्षत्र में होनेका लिखा सो तो भगवान्का मोक्ष कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें दीवालीके नामसे प्रसिद्ध है इससे न्यायांभोनिधिजीके लेख मुजबही छ कल्याणक सिद्ध होते हैं तथापि उन्होंका

निषेध करनेका आग्रह किया सो तो प्रत्यक्ष ही मायाचारीकी धर्म ठगाईके सिवाय और कुछ भी सार मालूम नहीं होता है.

अब पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि श्री खरतर गच्छ वालोंने तो शास्त्र प्रमाणानुसार श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक मान्य किये हैं इसीलिये जोरा जोरी छ कल्याणक बना लेने सम्बन्धी न्यायांभोनिधिजीका लिखना प्रत्यक्ष मिथ्या है परन्तु 'चौरडंडे कोटवालको' इस कहावत अनुसार विपरीत न्याय करके न्यायांभोनिधिजी छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये 'वस्तु' 'स्थान' शब्दका साहरा लेकर उसका तात्पर्यार्थ समझे बिना ही श्रीआचारांगजी तथा श्रीस्थानांगजीका मूलपाठ टीका और श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रकी चूर्णि सहित पाठोंका शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें अपनी मति कल्पना मुजब अर्थ करके छ कल्याणकोंका निषेध करते हुए जोरा जोरीके साथ सूत्र पाठका अर्थ भङ्ग करके १४ तीर्थंकर महाराजोंके ७० कल्याणक निषेध करनेका कितना बड़ाभारी महान् अनर्थ करके भी अपनी कल्पनाके कदाग्रहमें अज्ञ जीवोंको फँसाकर अपनी बात जमाना चाहा परन्तु उत्सूत्र भाषणके महान् अनर्थसे संसार वृद्धिका भय न किया-खैर, अब जो श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी विवेकी जन होंगे सो तो उपरोक्त लेखके तथा इस ग्रन्थके अवलोकनसे इनकी भ्रमजालमें कदापि नहीं पड़ेंगे और इनके समुदायवालोंको तथा इनके पक्षधारियोंको भी अपना हठवाद छोड़कर सत्य बातको ग्रहण पूर्वक भव्य जीवोंको भगवान्की आज्ञानुसार सत्य बातका शुद्ध उपदेश करके निज परके आत्म हितमें प्रवर्तमान होना चाहिये जिसमें संसार निर्वृत्ति है परन्तु गुरु और गच्छके पक्षपातसे अन्ध परम्पराके

कदाग्रहको पुष्ट करनेमें तो संसार वृद्धिके सिवाय और कुछ सार नहीं है ॥ मेरेको तो भव्य जीवोंके उपकारार्थ तथा आप लोगोंकी धर्मबन्धुकी प्रीतिसे उत्सूत्र प्ररूपणाके कदाग्रहका निषेध पूर्वक भगवान्‌की आज्ञानुसार सत्य बातका दर्शाव और हितशिक्षा लिखना उचित था सो लिख दिखाया मान्य करना या न करना आपलोगोंकी इच्छाकी बात है ।

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीने जैन सिद्धान्त समाचारीके पृष्ठ ६८ से ७० की पंक्ति १६ वीं तक श्रीपंचाशकजी तथा उसके वृत्तिका पाठ शब्दार्थ सहित लिखकर श्रीमहावीरस्वामीके पांच कल्याणकोंका स्थापनपूर्वक छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये परिश्रम किया सो भी अज्ञानतासे उत्सूत्र भाषण करके पूर्वापर संबंध रहित अधूरे पाठसे शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें वृथाही भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेके लिये अपने विशेषणको लजानेका कारण किया है क्योंकि वहां तो बहुत तीर्थंकर महाराजों संबंधी सामान्य पाठ है इसलिये उस पाठसे श्रीकल्पसूत्रादि शास्त्रोंमें प्रगटपने विशेष करके जो छ कल्याणकोंका कथन किया है सो निषेध कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि देखो जैसे श्रीहेमचंद्राचार्यजी कृत श्रीत्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्रके दशवें पर्वमें श्रीवीरप्रभुके चरित्रमें चौदह स्वप्नाधिकारे प्रथम स्वप्नमें सिंहका वर्णन देखकर और श्रीगणधर महाराजकृत श्रीकल्पसूत्रमें श्रीवीरप्रभुके चरित्रमें चौदह स्वप्नाधिकारे प्रथम स्वप्नमें हस्तीका वर्णन देखकर सुगुरुसे उसीमें सामान्य विशेषताकी अपेक्षाको समझे बिना, प्रथम स्वप्नमें हस्तीका स्थापन करके सिंहका निषेध करे तो उत्सूत्रभाषणका दोष लगे तैसेही श्रीपंचाशकजीके पाठसे पांचका स्थापन करके श्रीकल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने छ कहे हैं जिन्होंको

न्यायांभोनिधिजीने निषेध किये सो भी उत्सूत्र भाषण रूप है इसका विशेष खुलासाके साथ निर्णयका लेख तो पहिले ही न्यायरत्नजीके लेखकी समीक्षामें पृष्ठ ४७५ से ४८३ तक तथा विनयविजयजीके लेखकी समीक्षामें ५०२ पृष्ठसे ५१६ पृष्ठतक इस ग्रन्थमें छप गया है उसके पढ़नेसे पाठकवर्ग स्वयं समझ सकेंगे,

और फिर भी न्यायांभोनिधिजीने जैन सिद्धान्त समाचारीके पृष्ठ ७१ की पंक्ति १७ से पृष्ठ ७२ की पंक्ति ९ तक मायाचारी पूर्वक प्रत्यक्ष मिथ्या और अज्ञ जीवोंको भ्रमचक्रमें गेरनेके लिये ऐसे लिखा है कि,—

[हे मित्र! पंच हत्थुत्तरे होत्था। साइणा परिणिव्वुए। यह छी वस्तु वांचके आपको भ्रांति हूइ है, परंतु ऐसा हो भ्रांतिवाला ऋषभदेव स्वामीजीके बिषयमेंभी पाठ है, तो फिर ऋषभदेव स्वामीजीके छी कल्याणक न माने उसका क्या कारण है? हम जानते है, कि-वो पाठ आपके देखनेमें नहीं आया होगा इस हेतुसें एक श्रीवर्द्धमानस्वामीजीका भ्रांतिवाला पाठ देखके आग्रहके वस हूए होंगे, परन्तु अब आपकी भ्रांति और आग्रह दोनोंही दूर होनेके वास्ते पाठ दिखाते है, तथाच जंबुद्वीप प्रज्ञप्त्यां। यथा—

"उसभेणं अरहा कोसलीए पंच उत्तरासाढे अभीइ छठे होत्था। तंजहा। उत्तरा साढाहि चुए चइत्ता गब्भंवक्कंते।१। उत्तरासाढाहिं जाए।२। उत्तरासाढाहिं रायाभिसेअं पत्ते।३। उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारिअं पव्वइए।४ उत्तरासाढाहिं अणंते जाव समुप्पणे॥५॥ अभीइणा परिणिव्वुडे।६। व्याख्या॥ उसभेण मित्यादि ऋषभोऽर्हन् पंचसु च्यवन १ जन्म २ राज्याभिषेक ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ लक्षणेषु वस्तुषु उत्तराषाढा नक्षत्रं चंद्रेण भुज्यमानं

यस्यस तथा अभिजिन्नक्षत्रं षष्ठे निर्वाण लक्षणे वस्तुनियस्य यद्वा अभिजिति नक्षत्रे षष्ठं निर्वाणलक्षणं वस्तुयस्य स तथा उक्तमेवार्थं भावयति तद्यथा उत्तराषाढाभियुते चंद्रेणेतिशेषः सूत्रे बहु वचनं प्राकृत शैलया एवमग्रेपि च्युतः सर्वार्थं सिद्ध नाम्नो महाविमानान्निर्गतः च्युत्वा गर्भव्युत्क्रांत मरुदेवायाः कुक्षाववतीर्णवानित्यर्थः १ जातो गर्भा वासान्निःक्रांतः २ राज्याभिषेकं प्राप्तं ३ मुंडो भूत्वा आगारं मुक्त्वा अनगारितां साधुतां प्राप्तः इत्यर्थः पंचमी चात्रक्यब्लोपजन्या ४ अनंतरं यावत् केवलज्ञानं समुत्पन्नं ५ यावत् पद संग्रहः पूर्ववत् अभिजितयुते चंद्रे परिनिर्वृतः सिद्धिंगतः ६ ॥'

भावार्थः-ऋषदेवस्वामीके च्यवन १ जन्म, २ राज्याभिषेक, ३ दीक्षा, ४ ज्ञान, ५ लक्षण पंच वस्तु विषे उत्तराषाढा नक्षत्र हुआ; और अभिजित् नक्षत्र विषे छठा निर्वाणवस्तु हुवा, यही छी वस्तु न्यारे न्यारे दिखाते है, प्रथम सर्वार्थ सिद्धनामा महावीमानसें च्यवकरके मरुदेवीमाताके गर्भसें आये १ फिर जन्म हुवा, २ फिर राज्याभिषेक हुवा, ३ फिर गृहवास छोडके साधु हुए, ४ फिर केवल ज्ञान हुवा, ५ और अभिजित् नक्षत्र विषे चंद्र आयेहूए भगवान् सिद्ध हुए ६ यह श्रीजंबुद्वीप प्रज्ञप्तिका मूलपाठ और टीकाका पाठ दिखायाहै, हे सुज्ञजनों ? विचारिये । कि-जैसें श्रीमहावीरस्वामीजीके पाठ विषे छ वस्तु कथन करी है तैसें ही श्रीऋषभदेवस्वामीके पाठ विषेभी छ वस्तु कथन करी है तोभी तुमने श्रीमहावीरस्वामीजीके तो छीकल्याणक ठहरा लिये और ऋषभदेवस्वामीजीके न ठहराये, इस हेतुसें हमजानते हैं कि- यह ऋषभदेवजी महाराज विषयक पाठ न जाननेसें श्री महावीरस्वामीजीके पाठमें तुमकों छी कल्याणककी भ्रांति हुइ फिर भ्रांति होनेसें आग्रहकरलिया ।]

अब उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकगणको दिखाता हूं जिसमें प्रथम तो मेरा यहां इतना ही कहना है कि-श्री-आत्मारामजीने अपने न्यायांभोनिधिके विशेषणको लजाने का भय न रखकर श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिकी वृत्तिमें टीकाकारने सब तरहकी खुलासाके साथ व्याख्या करी थी जिसके आगे पीछेके सम्बन्धवाले पूर्वापरके पाठको छोड़कर प्रत्यक्ष माया-चारी पूर्वक उत्सूत्र भाषण रूप टीकाके अधूरे पाठसे वृत्ति-कारके विरुद्धार्थमें भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेका कारण किया है इस लिये पहिले वृत्तिका सम्पूर्ण पाठ यहां दिखाना उचित समझ करके श्रीमुर्शिदावाद अजीमगञ्ज निवासी राय बहादुर धनपति सिंहके आगम संग्रहमें श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति सहित छपकर प्रसिद्ध हुई है उसमेंका पाठ यहां दिखाता हूं तथाहि श्रीहीरविजयसूरि पट्टधर श्रीविजयसेनसूरि शिष्य श्रीशां-तिचन्द्रगणी विरचित श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वत्तौ तथा च तत्पाठ :—

अथ जन्म कल्याणकादि नक्षत्राणि आह। उसभेण मित्यादि। ऋषभो—अर्हन् पञ्चसु च्यवन जन्म राज्याभिषेक दीक्षा ज्ञान लक्षणेषु वस्तुषु उतराषाढानक्षत्रं चन्द्रेण भुज्यमानं यस्य स तथा अभिजिन्नक्षत्रं षष्ठे निर्वाण लक्षणे वस्तुनि यस्य यद्वा अभिजित नक्षत्रे षष्ठं निवाण लक्षणं वस्तु यस्यस तथा उक्तमेवार्थं भाव यति तद्यथा उत्तराषाढाभियुक्ते चंद्रे तिशेषः सूत्रे वहु वचनं प्राकृत शैलया एवमग्रेपि च्युतः सर्वार्थ सिद्धनाम्नो महाविमाना-न्निर्गत इत्यर्थः, च्युत्वा गर्भे व्युत्क्रांतः मरुदेवायाः कुक्षाववतीर्णं इतित्यर्थः १ जातोगर्भवासान्निष्क्रांतः २ राज्याभिषेकं प्राप्तः ३ मुण्डोभूत्वा आगारं मुक्त्वा अनगारितां साधुतां प्रव्रजितः प्राप्त इत्यर्थः पचमीं चात्रश्यम्लोपजन्या ४ अनंतरं यावत केवलं

ज्ञानं समुत्पन्नं ५ यावत्पद संग्रहः पूर्ववत् अभिजित्युक्ते चंद्रे परिनिर्वृतः सिद्धिं गतः ॥ ननु अस्मादेव विभाग सूत्रबलादादि देवस्य षट् कल्याणकं समापद्य मानं दुर्निवारमिति चेन्न तदेव हि कल्याणकं यत्रासनप्रकंप प्रयुक्तावधयः—सकल सुरासुरेन्द्रा जितमिति विधित्सवोयुगपत् ससंभ्रमा उपतिष्ठंते नह्ययं षष्ठ कल्याणकत्वेन भवता निरूप्यमाणो राज्याभिषेकस्ता-दृश स्तेन वीरस्य गर्भापहार इव नायं कल्याणकं अनंतरोक्त लक्षण योगात् न च तर्हिं निरर्थकमस्य कल्याणकाधिकारे पठनमिति वाच्यं। प्रथम तीर्थेश राज्याभिषकस्यजितमिति शक्रेण क्रियमाणस्य देवकार्यत्व लक्षणसाधर्म्येण समान नक्षत्र जाततया प्रसंगेन तत्पठनस्यापि सार्थकत्वात् तेन समान नक्षत्र जातत्वे सत्यपि कल्याणकत्वाभावे न नियत वक्तव्यतया, क्वचित् राज्याभिषेकस्याकथनेपि न दोषः॥ अतएव दशाश्रुत स्कंधाष्टमाध्ययने—पर्युषणाकल्पे श्रीभद्रबाहु स्वामिपादाः "तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोस लिए चउ उत्तरासाढे अभीइं पञ्चमेहोत्था" इति पंच कल्याणक नक्षत्र प्रतिपादक सूत्रं बबंधिरे, नतु राज्याभिषेक नक्षत्राभि-धायकमपीति, न च प्रस्तुत व्याख्यानस्यानागमिकत्वं भाव-नीयं आचारांग भावनाध्ययने श्रीवीरकल्याणक सूत्रस्यैवमेव व्याख्यात त्वात्।

देखिये उपरके पाठमें न्यायांभोनिधिजीके ही पूज्य वृत्ति-कारने श्रीआदिनाथजीके च्यवन जन्मादि च्यार कल्याणक उत्तराषाढा नक्षत्रमें तथा पांचवां मोक्ष कल्याणक अभिजित नक्षत्रमें होनेका खुलासा कथन किया है और प्रथम तीर्थंकरका राज्याभिषेक उसी नक्षत्रमें होनेके कारण प्रसङ्गसे कल्याणका-धिकारे उसका पठन सूत्रकारने कर दिया परन्तु राज्याभिषेक

कल्याणक नहीं हो सकता है इसलिये राज्याभिषेक बिना पांच ही कल्याणकोंका पाठ श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रके अष्टम अध्ययन रूप श्रीकल्पसूत्रमें श्रीभद्रबाहुस्वामीने कथन किया था सो दिखाया और श्रीआचारांगजी सूत्रके पाठसे श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणकों सम्बन्धी इसारा करके श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहारके छठे कल्याणककी तरह राज्यभिषेक छठा कल्याणक नहीं हो सकता है इसका भी खुलासा लिख दिया है इसलिये श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकको निषेध करनेके लिये राज्याभिषेकका सहारा लेना सो भी निष्केवल हठवादसे सर्वथा अनुचित है।

और टीकाकारने इतना खुलासाके साथ व्याख्या करी होते भी शास्त्रकारके विरुद्धार्थमें पूर्वापरका पाठ छोड़कर अधूरे पाठसे न्यायांभोनिधिजीने अपनी कल्पनाका कदाग्रहमें भोले जीवोंको गेरनेके लिये जानबूझ कर प्रत्यक्षपने ऐसी मायाचारी करके वस्तुके बहाने श्रीआदिनाथ स्वामीके भी पांचों ही कल्याणकोंकों उठा दिये सो तो अन्तर मिथ्यात्वके सिवाय ऐसा उत्सूत्र भाषण कदापि नहीं हो सकता, इस बातको विशेष करके तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेंगे।

और अब सत्य ग्रहणाभिलाषी पाठकगणसे मेरा येही कहना है कि न्यायांभोनिधिजीका ऐसा प्रत्यक्ष दिखाता हुआ इतना बड़ाभारी अन्यायपर मेरेको तो क्या—परन्तु हरेक श्रीजिनाज्ञा आराधनाभिलाषी सत्यग्राही तत्वार्थी निष्पक्ष-पाती विवेकी पुरुषोंको महान् खेद उत्पन्न हुए बिना कदापि नहीं रहेगा क्योंकि देखो खास अपने ही परम पूज्य श्रीहीर विजय सूरिजीकृत श्रीजंबूद्वीप प्रज्ञप्तिकी वृत्ति तथा उपरोक्त पाठ वगैरह अनेक व्याख्याओंमें प्रगटपने लिखा है कि प्रथम

तीर्थेशका राज्याभिषेक इन्द्रने किया सो उसी नक्षत्रमें होनेके कारण श्रीआदिनाथजीके च्यवन जन्मादि कल्याणकोंके साथ उसीकोभी सूत्रकारने लिख दिया है परन्तु राज्याभिषेक कल्याणक नहीं हो सकता है इस तरहका खुलासा श्रीखरतर गच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके सबी टीकाकारोंने पांचो व्याख्याओंमें लिखा है तिसपर भी श्रीआत्मारामजी न्यायके समुद्र, शुद्ध प्ररूपक कहलाते हुए भी श्रीमहावीरस्वामीके छठे कल्याणकके द्वेषसे उसीका निषेध करनेके लिये वस्तुके बहाने श्रीआदिनाथजीके भी च्यवन जन्मादि पांचों कल्याणकोंको निषेध करनेका प्रत्यक्ष ही इतना बड़ा भारी उत्सूत्र भाषण रूप लिखते संसार वृद्धिका कुछ भी भय न किया॥ हा अतीव खेद। देखिये ढूंढकमतका अपना पूर्वका स्वभाव न जानेकेकारण इतनेबड़े प्रसिद्धविद्वान् तथा न्यायांभोनिधि और श्रीमद्विजयानन्दसूरिका नाम धारक हो करके भी निजपरके आत्म कल्याण निमित्त शुद्ध प्ररूपणा करनेके बदले ऐसा अनर्थ कारक उत्सूत्र भाषण करके अपनी आत्माके कल्याणमें विघ्नरूप और संसार वृद्धिके हेतु भूत हो गये, अपना आत्म कल्याण तो न होने दिया परन्तु दूसरे भद्र जीवोंके भी आत्म कल्याणमें विघ्नरूप होकर आडम्बरसे विचारे भोले जीवोंको अपनी भ्रमाजलमें फंसानेके लिये उद्यम करनेमें कुछ कम न किया खैर ;—देखो यह बात तो प्रसिद्धही है कि-एक बातका उत्थापन करनेसे उसी संबन्धी बहुत शास्त्रोंके पाठके विपरीत अर्थ करने पड़ते हैं तथा उसीकी पुष्टि करनेके लिये अनेक बातें उत्थापन करके अनेक जगह अनेक शास्त्रोंके पाठोंको भी उत्थापन करके वा उन्होंके विपरीत अर्थ करके अनेक तरहकी कुयुक्तियों पूर्वक उत्सूत्र भाषणोंसे महान् अनर्थ करते हुए निजपरके दुर्लभबोधि पनेका कारण

ढूंढ़िये तेरहपन्थियोंकी तरह करना पड़ता है, अर्थात्—जैसे ढूंढिये और तेरहपन्थी लोगोंने श्रीजिनमूर्त्तिके दर्शन पूजा तथा भक्तिके कारण कार्य भावसे अनन्त लाभ होनेके मतलबको समझे बिना उसका निषेध किया तब अपना कल्पित कदा-ग्रह जमानेके लिये उसके साथ अनेक बातें उत्थापन करनी पड़ी तथा अनेक शास्त्रोंके अर्थ भी अपनी कल्पना मुजब विपरीत करने पड़े और पंचांगीके हजारों शास्त्रोंको जड़ मूलसे अमान्य ठहरा करके श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वा-चार्योंकी और एकावतारी युग प्रधान प्रभावक पुरुषोंकी बड़ी अवज्ञा पूर्वक निन्दा करनेका बड़ा भारी महान् अनर्थ करते हुए मिथ्यात्व बढ़ानेवाली अनेक तरहकी कुयुक्तियोंके विकल्प करके भोले जीवोंको अपने भ्रमचक्रमें गेरनेका उद्यम करके निजपरके मनुष्य जन्मको वृथा गमाकर विशेषतासे संसार भ्रमण और दुर्लभबोधिका कारण किया तथा करते हैं, तैसे ही-श्री महावीरस्वामीके छठे कल्याणकको मान्य करनेके कारण कार्यको तथा उसके आराधनकी तपश्चर्या और भावनासे अनन्त लाभके फलका मतलबको समझे बिना उसका निषेध करनेके लिये—मूलसूत्रादि पंचांगीके अनेक शास्त्रोंके (श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकों सम्बन्धी) पाठोंके अर्थ बदलाकर अनेक तरहके उत्सूत्र भाषणों पूर्वक अनेक तरहकी कुयुक्तियों करते हुए उसकी पुष्टि करनेके लिये वस्तुके बहाने श्रीआदिनाथजीके भी च्यवन जन्म दीक्षादि कल्याणकोंको निषेध करदिये परन्तु उत्सूत्र भाषणके विपाकका भय न किया सो बड़ेही शोककी बात है कि न्यायांभोनिधिजीने विवेक बुद्धिसे विचार किये बिना ही अपनी अन्धपरंपराकी कल्पित बात जमानेका गच्छ कदाग्रह के झगड़ेमें पड़कर ऐसा अनर्थ करके निजपरके संसार वृद्धिके

सिवाय और क्या सार निकाला होगा जिसको तो विशेषतासे तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और (पंच हत्थुत्तरे होत्था साइणा परिनिव्वुए, यही छ वस्तु वांचके आपको भ्रांति हुई है) इत्यादि लिखकर श्रीमहावीर स्वामीके चरित्र सम्बन्धी उपरोक्त श्रीकल्पसूत्रके पाठके अर्थमें सर्वथा कल्याणकोंका अभाव पूर्वक छ वस्तु ठहराकर, छ कल्याणकोंकी भ्रांति होनेका तथा उपरका भ्रांति वाला पाठ देखकर आग्रहके वस होनेका न्यायांभोनिधिजीने ठहराया अब इस लेखपर मेरा इतना ही कहना है कि-श्रीमहावीर स्वामीके चरित्रकी आदिमें ही कल्याणकाधिकारे छ कल्याणकों सम्बन्धी अनेक शास्त्रोंमें उपरके पाठ मूजब ही पाठ है तथा उपरके पाठकी हो जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक खास सूत्रकारोंनेही मूल सूत्रोंके पाठोंमें प्रगटपने व्याख्या करी है तथा उपरोक्त पाठोंकी व्याख्याओंमें टीकाकारोंने भी खुलासासे छ कल्याणक लिखे हैं तथा 'वस्तु' 'स्थान' शब्द भी कल्याणक अर्थके पर्याय वाचीपने करके एकार्थ वाले हैं और गर्भापहारको दूसरे च्यवन कल्याणककी प्राप्ति होनेसे त्रिशला माताने चौदह स्वप्न आकाशसे उतरते और अपने मुखमें प्रवेश करते हुए देखे तथा नव महिने और ७॥ दिनमें तुम्हारे कुलमें वृषभ समान, राजराज्येश्वर पूज्य, त्रिजगतपति कुलदीपक पुत्र होगा इत्यादि स्वप्न पाठकोंके कथनका पाठ मूल सूत्रमें और उसकी अनेक टीकाओंमें विस्तार पूर्वक वर्णनके साथ प्रसिद्ध है इसलिये श्री महावीरस्वामीके छ कल्याणक शास्त्रानुसार तथा युक्ति युक्त सिद्ध होनेसे इन्होंको मान्य करनेमें हमको तो क्या परन्तु किसी भी विवेकी सत्यग्राही आत्मार्थी पुरुषको किसी तरहकी भ्रांति ही नहीं हो सकती

तथा छ कल्याणकोंकी व्याख्या सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रका 'पंच हत्थुत्तरे हुत्था साइणा परिनिव्वुए' यह जघन्यपाठ सत्य होने-पर भी उसको भ्रांतिवाला कहना कदापि नहीं बन सकता है और शास्त्रानुसार छ कल्याणकोंकी सत्य बातको प्रमाण करनेमें किसी तरहका आग्रह भी नहीं कहा जा सकता, तथापि न्यायांभोनिधिकी उपाधि धारक श्रीआत्मारामजीने छ कल्या-णकों सम्बन्धी उपरोक्त पाठको भ्रांतिवाला ठहराया तथा छ वस्तु कहके वस्तुके बहाने छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये श्रीआचारांगजी तथा श्रीस्थानांगजी और श्रीकल्पसूत्रादि शा-स्त्रोंके पाठोंका कल्याणक अर्थको बदलाया और भ्रांतिवाला पाठ देखकर आग्रहके वस हुए होगे इत्यादि प्रत्यक्ष मायावृत्तिसे मिथ्या लिखा सो निष्केवल वीचारे भोले जीवोंको भ्रमानेके लिये वृथा ही गच्छकदाग्रहमें फंसकर अभिनिवेशिक मिथ्या-त्वसे उत्सूत्र प्ररूपणा करके निजपरके संसार वृद्धिका कारण किया है सो तो तत्वज्ञ जन स्वयं विचार सकते हैं,—

और (ऐसाही भ्रांतिवाला ऋषभदेव स्वामीके विषयमें भी पाठ है तो फिर ऋषभदेवस्वामीजीके छी कल्याणक न माने उसका क्या कारण है हम जानते हैं कि-वो पाठ आपके देखनेमें नहीं आया होगा) इस उपरके लेखमें न्यायांभो-निधिजीने श्रीऋषभदेवजी सम्बन्धी श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिके पाठको भ्रांतिवाला ठहराया इसपर भी मेरेको इतना ही कहना है कि-जैसे पीलीयेके रोगी आदमीको सपेद वस्तुमें भी पीलेपनकी भ्रांति होती है उसीसे बाल जीवोंको भी अपनी अज्ञानताकी भ्रांतिमें गेरनेका उद्यम करता है तैसे ही आप भी अपने पूर्व भवके पापोदयसे गच्छ ममत्वकी द्रव्य पर-म्परा करके उत्सूत्र प्ररूपनापूर्वक कुविकल्पोंके स्थापनका हठवाद

रूपी पीलियेके रोगमें ग्रस्त चित्तवाले हो करके पूर्वापरकी विचार शून्यतासे विचारे भद्र जीवोंको अपने जैसे भ्रममें गेरनेके लिये वृथा ही परिश्रम करके अपनी हांसी कराई है क्योंकि राज्याभिषेक सम्बन्धी श्रीजम्बूद्वीप पन्नत्तिके पाठमें इसको तो क्या परन्तु कोई भी विवेकी आत्मार्थी तत्वज्ञ आज्ञा आराधक को किसी तरहकी भ्रांति नहीं पड़ सकती है क्योंकि वहां तो यदि उसी नक्षत्रमें वंश स्थापना, कला प्रवर्तोना, विवाहाका होना, वगैरह कार्य भी होते तो प्रथम कार्यंकी प्रवर्तनाके हेतु तथा प्रथम तीर्थंकरकी इन्द्रकृत भक्तिके कार्यं रूप वस्तुओंकी यादगिरिके लिये उस प्रसङ्गमें सूत्रकार ९।१० नक्षत्र भी गिना देते परन्तु सबी कल्याणकपनेमें नहीं गिने जा सकते और राज्याभिषेकादिउपरके कार्य्यों· को कल्याणकपना नहीं होनेसे उसकी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक उन्होंके तिथि पक्ष मासादिकोंकी व्याख्या भी सूत्रकारने नही करी और श्रीकल्पसूत्रादिमें विशेष रूपसे राज्याभिषेक बिना पांच कल्याणकोंकी व्याख्यावाला पाठ मौजूद है और श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिके उपरोक्त पाठकी व्याख्याओंमें न्यायांभोनिधिजीके ही परम पूज्य श्रीहीरविजय सूरिजीकृत वत्तिमें तथा उपरमें ही छापा हुआ पाठ वगैरहोंसें खुलासा व्याख्यान करके किसी तरह की न्यायांभोनिधि नामधारक वगैरह किसीको भ्रांति पड़नेके कारणकोही जड़मूलसे नष्ट कर दिया है तथापि न्यायांभोनिधिकी उपाधि धारण करनेवाले श्रीमद्विजयानन्द सूरिजी बनकर आत्मारामजीने जान बूझ कर बिना भ्रांतिवाले पाठको शास्त्रकारोंके विरुद्ध होकरके तथा आगे पीछेके पाठको चौरकी तरह छुपाकर बाल जीवोंके आगे

भ्रांतिवाला पाठ ठहरानेका उद्यम किया है सो यह कलयुगी पाखण्डियोंकी मायाजालका कुछ भी पार है, हा! हा! अतीव खेद !!! ऐसे विद्वान् इतना अनर्थ करते कुछ भी लज्जा नहीं करते और भद्र जीवोंके आगे जगत पूज्य जैसी बाह्य वृत्ति करके आडम्बर दिखाकर न्यायके समुद्र, शुद्ध प्ररूपक, गीतार्थ, महात्मा बनते हैं जिन्होंकी आत्माका कैसे सुधार होगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने-परन्तु उन्होंकी मायाजालमें फंसने वाले भोले जीवोंको मेरी यही सूचना है, कि हे जिनाज्ञाइच्छक आत्मार्थी भव्यजीवों तुम्हारी आत्माका कल्याण करना चाहते हो तो गुरु तथा गच्छके पक्षपातको और दृष्टि रागके फन्दको छोड़कर मध्यस्थ वृत्तिसे इस ग्रन्थका अवलोकन पूर्वक विवेकी सज्जनोंकी सङ्गतीसे या विवेकता पूर्वक तत्त्वकी तरफ दृष्टि करके असत्यका त्याग पूर्वक सत्यको ग्रहण करके अपनी आत्माके कल्याणके कार्यमें उद्यम करो, आगे इच्छा आपकी मेरेको तो लिखना उचित था सो लिख दिखाया मान्य करना या न करना यह तो आपकी खुशी की बात है,—

और (श्रीऋषभदेवजीके छ कल्याणक न माने उसका क्या कारण है) न्यायांभोनिधिजीके इस लेखपर तो मेरेको इतना ही कहना है कि-श्रीकल्पसूत्रमें श्रीऋषभदेवजीके विशेष रूपसे पांच कल्याणकोंका खुलासापूर्वक पाठ मौजूद है तथा राज्याभिषेकको कल्याणकपना प्राप्त नहीं है जिसके लिये पहिले विनयविजयजीके लेखकी समीक्षामें इसीही ग्रन्थके पृष्ट ४८९ से ४९७ तक खुलासा छप गया है इसलिये राज्याभिषेकको कल्याणकपनमें नहीं कहा जाता परन्तु राज्याभिषेकका पाठ आपके देखनेमें नहीं आया होगा, यह अक्षर लिखना न्यायांभोनिधिजीके अपना दूसरा महाव्रत भङ्ग करनेवाले प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि

शुद्ध समाचारी प्रकाशकी पुस्तकके लेखकको उपरोक्त पाठकी अच्छी तरहसे मालूम थी तथा हमको भी उसकी अनेक व्याख्याओंके पाठों सहित कारण कार्य भाव पूर्वक सूत्रकारके तथा व्याख्याकारोंके अभिप्राय सहित अच्छी तरहसे मालूम है तब ही तो आपके मायाजालवाला कदाग्रहके भ्रमको निवारण करनेके लिये राज्याभिषेक सम्बन्धी इतना लिखा है तथा आगे लिखते हैं अन्यथा कैसे लिखते सो तो विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और (हे सुज्ञ जनो विचारिये कि–जैसे श्रीमहावीरस्वामीजीके पाठ विषे छ वस्तु कथन करी तैसे ही श्रीऋषभदेवस्वामीके पाठ विषे भी छ वस्तु कथन करी हैं) इत्यादि लिखके न्यायांभोनिधिजीने वस्तुके बहाने श्रीमहावीरस्वामीके तथा श्रीऋषभदेवजीके भी च्यवनादिकोंको कल्याणकपने रहित ठहरानेका परिश्रम किया सो भी गच्छ कदाग्रहमें फँस कर अज्ञानतासे विवेक शून्यतापूर्वक अथवा मायाचारीसे उत्सूत्र प्ररूपना करके संसार वृद्धिका और अपनी विद्वताको लज्जानेका वृथाही कारण किया है क्योंकि यद्यपि वस्तु शब्द कल्याणक अर्थका सूचक पर्यायवाचीपने करके एकार्थवाला है जिसके सम्बन्धमें हमने पूर्वमें लिखा है परन्तु वस्तु शब्द सर्व अर्थोंमें तथा सर्व लिङ्गोंमें और लोकालोकके सर्व पदार्थोंका सूचक है सो भी पहिले हम लिख आये है और शास्त्रके पाठका अर्थ तो शास्त्रकार महाराजके अभिप्राय पूर्वक, कारण कार्य भाव सम्बन्ध सहित, प्रसङ्ग मुजब, आत्मार्थी परोपकारी टीकाकारोंके लिखे मुजब करनेमें आता है इसलिये वस्तुके बहाने श्रीऋषभदेवजीके और श्रीमहावीरस्वामीके च्यवनादि सबी कल्याणकोंका निषेध नहीं हो सकता है क्योंकि, देखो न्यायां-

भोनिभिजीके पूर्वज पूज्यने (श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिकी वृत्तिका पाठ उपरमें ही छपा है उसीमें) श्रीआदिनाथजीके च्यवनादिकोंको वस्तु कही तथा उन्हीं च्यवनादिकोंको ही कल्याणक भी कहे और कल्याणकाधिकारमें ही राज्याभिषेक रूप वस्तुको कल्याणक रहित ठहराकर श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक खुलासे लिख दिये इससे भी प्रगटपने सिद्ध होता है, कि-तीर्थंकर महाराजके च्यवनादिकोंको वस्तु कहो अथवा कल्याणक कहो दोनोंका मतलब एक ही है परन्तु वस्तु शब्द पदार्थ मात्रके अर्थवाला होनेसे राज्याभिषेकको कल्याणक न कहके प्रथम तीर्थंकरका राज्याभिषेक उसी नक्षत्रमें इन्द्रने करके भरत क्षेत्रमें राज्यनीतिका व्यवहार प्रवर्तमान करनेका कारण किया उससे राज्याभिषेकके कार्यको वस्तु कह दिया तथा राज्याभिषेक बिना पांच कल्याणक खुलासे दिखा दिये, तथा राज्याभिषेकको कल्याणकपना नहीं कहा जा सकता जिसके लिये भी पहिले लिखनेमें आ गया है ;और श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारको तो कारण कार्य भाव पूर्वक तथा शास्त्रोंके प्रमाण मुजब और युक्तियोंके अनुसार प्रगटपने कल्याणकपना सिद्ध होता है जिसका विस्तार तो इस ग्रन्थमें अच्छी तरहसे हो गया है इसलिये राज्याभिषेकको कल्याणक ठहराने सम्बन्धी तथा वस्तुके बहाने श्रीआदिनाथजीके पांचों कल्याणकोंका और श्रीवीरप्रभुके गर्भापहार सहित छ कल्याणकोंका निषेध करनेका लिखा है सो सब वृथाही गच्छ कदाग्रहके अन्ध परम्पराका हठवादकी अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे भोले जीवोंको भ्रमानेवाला और निजपरके संसारका कारण रूप उत्सूत्र भाषण है सो तो उपरोक्त लेखसे विवेकी तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और राज्याभिषेकका पाठ तो मास पक्षादिककी व्याख्या रहित सिर्फ नाम मात्र ही एक जगह पर श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रमें है तथा उसकी व्याख्याओंमें कल्याणक पनेका अभाव खुलासे लिख दिया है परन्तु श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहारका पाठ तो मास पक्षादि सहित खुलासाके साथ सूत्र चूर्णि वृत्ति चरित्र प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने बहुत जगहपर मौजूद है और उसको कल्याणकपना खुलासा पूर्वक लिखा हुआ है इसलिये गच्छ कदाग्रहके वृथा हठवाद से गर्भापहारके पाठकी तरह उसीके सदृश राज्याभिषेकका पाठको ठहराकर गर्भापहारका निषेध करनेके लिये राज्याभिषेकका दृष्टान्त लिखना भी न्यायांभोनिधिजीको अन्याय कारक होनेसे सर्वथा अनुचित है इस बातको भी विवेकी जन स्वयं विचार सकेंगे :—

अब पाठक वर्गसे मेरा यहां इतना ही कहना है कि न्यायांभोनिधिजीने दूसरोंकी भ्रांति और आग्रह दोनो ही दूर करने सम्बन्धी प्रत्यक्ष मिथ्या और माया वत्ति युक्त लिख करके श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रके पाठको तथा उसकी वृत्तिके अधूरे पाठको दिखानेका परिश्रम करते हुए बालजीवोंके आगे अपनी बात जमाना चाहा परन्तु अन्तर मिथ्यात्वके उदयसे खास आप पीलियेके रोगीवत् निजमें ही भ्रांतिमें फँस गये और वृत्तिकारके विरुद्धार्थमें वृथा ही झूठा आग्रह करके दृष्टि रागियोंको मिथ्यात्वमें गेरनेका कारण किया और राज्याभिषेकके तथा गर्भापहारके मतलबको निष्पक्षपात हो करके विवेक बुद्धि पूर्वक गुरुगम्यतासे समझे बिना वस्तु वस्तु पुकारके गर्भापहारके दूसरे च्यवन कल्याणकके निषेध करनेके लिये बिना ही प्रयोजन राज्याभिषेकका सहारा लिया और गच्छ

कुदाग्रहसे अपनी विद्वत्ताकी हाँसी होनेका जरा भी भय न किया खैर। परन्तु अभी भी गच्छ कदाग्रहका मिथ्या हठवादकी कल्पित बातोंके स्थापनका आग्रहरूपी पीलियेके रोगका निवारण करनेमें अमृत समान औषधरूपी इस ग्रन्थके लेखको पढ़नेसे जो (न्यायांभोनिधिजीके परलोकजानेपर) इन्होंके समुदाय वालोंकों गुरु गच्छका अन्ध परंपराके हठवादरूपी उक्त रोगका (महान् पुण्योदयका योग्य होवे तो) निवारण हो जावे और श्रीजिनाज्ञाका आराधन करनेके अभिलाषवाले अल्पकर्मी होवेंगे तब तो अपना मिथ्या हठवादको मायावृत्तिसे स्थापन करनेके लिये निज परके संसार वृद्धि करने वाले मिथ्यात्वको सेवन न करते हुए सरल होकरके इस ग्रन्थकी सत्य बातको ग्रहण करनेमें कदापि विलंब नहीं करेंगे।

और श्रीशान्तिचन्द्रगणिजी कृत श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वृत्तिका पाठ जो ऊपरमें छपा है उसके पाठमें श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणक लिखे हैं जिसको मान्य करनेमें न्यायांभोनिधिजीके समुदाय वाले इनकार करेंगे तो भी उन्होंका प्रत्यक्ष अन्याय होगा क्योंकि देखो खास न्यायांभोनिधिजी आप तो बाल जीवोंको अपनी कल्पनाका जूठा कदाग्रहमें गेरनेके लिये इसी ही पाठके पूर्वापरका सम्बन्धको तोड़कर बीचमें से अधूरे पाठको मायाचारीसे वृत्तिकारके विरुद्धार्थमें लिखके उपरोक्त पाठको मान्य करते हैं और हमने वृत्तिकारके अभिप्राय सहित सम्पूर्ण पाठ लिखके आत्मार्थी सत्याभिलाषी भव्यजीवोंको सत्य बात दिखानेको लिखा जिसको न मान्य करनेका झगड़ा उठाया जावे यह तो प्रत्यक्ष ही अन्तर मिथ्यात्वके अन्यायके सिवाय और क्या होगा। जिसको तो तत्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

और पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके प्रमाणों मुजब तथा युक्तियोंके अनुसार श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणक प्रत्यक्ष पने सिद्ध है इसलिये श्रीशान्तिचन्द्रगणिजीने छ कल्याणक लिखे सो किसीकी संगतसे भूल करी ऐसा भी कहना अनेक शास्त्रोंके पाठोंका उत्थापनरूपी उत्सूत्र होता है इसलिये इन वृत्तिकारने छ कल्याणक लिखे जिसमें लिखनेवालेको किसी तरहका कोई दोष नहीं लग सकता है क्योंकि देखो खास वृत्तिकारने निजमें ही "न च प्रस्तुत व्याख्यानस्यानागमिकत्वं भावनियं आचारांग भावनाध्ययने श्रीवीर कल्याणक सूत्रस्यैवमेव व्याख्यात त्वात्" इन अक्षरोंको लिख करके अपनी व्याख्या आगमानुसार सिद्ध कर दी और श्रीआचारांगजी सूत्रके भावना अध्ययन अर्थात् चूलिका अध्ययनके मूलसूत्रका पाठके प्रमाणसे श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणक दिखाये हैं तथा श्रीकल्प सूत्रके पाठसे राज्याभिषेक बिना श्रीऋषभदेवजीके पांच कल्याणकोंका पाठ पूर्वक खुलासा करदिया इसलिये इन वृत्तिकारकी उपर्युक्त व्याख्या सम्बन्धी किसी तरहका आक्षेप कोई गच्छममत्वी करेगा तो विवेकी विद्वानोंसे वृथा ही हास्य का पात्र बनेगा इसको भी तत्वज्ञ,जन स्वयं विचार लेवेंगे।

तथा और भी पाठकगणको विशेष निःसन्देह होनेके लिये न्यायांभोनिधिजीके परम पूज्य व धर्मसागरजीका अनुकरण करनेवाले सुप्रसिद्ध श्रीहीरविजयसूरिजी कृत श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तिका पाठ यहां दिखाता हूं यथा,—

अथ श्री ऋषभस्य पंच कल्याणकानि राज्याभिषेक श्चेति षट् वस्तूनि यस्मिन्नक्षत्रे जातानि तानिदर्शयति ॥ उसभेणमित्यादि ॥ ऋषभो णमित्यलङ्कारे, पंचेति पंचसु च्यवन, जन्म,

राज्याभिषेक, दीक्षा, केवलज्ञान, लक्षणेषु। उत्तराषाढा यस्य स पंचोत्तराषाढ, अभिजिति, अभिजिन्नाम्नि नक्षत्रे षष्टं वस्तु निर्वाण कल्याणकलक्षणं यस्य सोऽभिजित्षष्टः, होत्थति अभवत्, अथोक्त मेवार्थं ॥ तद्यथेत्यादिना व्यक्तिं कुर्वन्नाह ॥ तंजहेति, उत्तराषाढाभि रुत्तराषाढानक्षत्रेण चन्द्र योगे सति च्युतो देव भवात् सर्व्वार्थं सिद्धि विमानात् ॥ च्युत्वा च गर्भेव्युत्क्रांत उत्पन्नः, एवं जातो योनिवर्त्मना निर्गतः ॥ रायाभिसेअन्ति ॥ राज्याभिषेकं प्रथम तीर्थंकृद्राज्याभिषेकोऽस्माकं जीत मिति विकल्पवताशक्रेण क्रियमाणं प्राप्तऽभिषेको राजा संजात इत्यर्थः॥ मुण्डेति ॥ मुण्डो भूत्वा आगारादन गारितां साधुतां प्रव्रजितो धातूनामनेकार्थत्वात् साधुत्वं स्वीकृतवानित्यर्थः ॥ तया अणंतेति ॥ अनन्तं यावत्समुत्पन्नं यावत् करणात्॥ अणुत्तरेनिव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवर नाणदंसणे समुपण्णेति, प्रागुक्तार्थं विज्ञेयं ॥ अभिणंति ॥ अभिजिन्नक्षत्रेण चन्द्र योगेसति परिणामस्त्येन निर्वृतः सकल कर्मांशैर्विमुक्त इत्यर्थः ॥ ननु श्रीऋषभ राज्याभिषेकस्य शक्र जीतत्वेन श्रीमहावीर गर्भसंहरणस्यैव षष्टं कल्याणकत्वमेवास्त्विवतिचेत् नैवं उभयोरपि कल्याणकत्वाभावेन दृष्टांत दार्ष्टांतिक त्वयोगात् नहि रूपमिव रसोपिश्रोत्रेंद्रिय ग्राह्यो भवत्विति भवतं विहायान्यकोपिवक्तं वाचालो दृष्टः श्रुतोवेति ॥

देखिये ऊपरके पाठमें प्रथम तीर्थङ्करका राज्याभिषेक इन्द्रने उसी नक्षत्रमें किया सो प्रसङ्गसे उसीका भी नक्षत्र गिनाकर राज्याभिषेकके कार्यको वस्तु कहा और (श्रीऋषभदेवजीके) च्यवनादि पांचों कल्याणकोंका भी खुलासे कथन किया तथापि न्यायांभो निधिजीने वस्तुके बहाने च्यवनादिकोंको कल्याणकपनेसे रहित ठहरानेका परिश्रम किया सो अंतरमें मिथ्यात्वके पा

पूर्ण अज्ञानताके सिवाय और क्या होगा इसकोभी विवेकी तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेंगे।

और ऊपरके पाठमें चयवनादिकोंको वस्तु कहके कल्याणक कहे इससे भी वस्तु शब्द कल्याणक अर्थ वाला प्रत्यक्षपने सिद्ध होता है परन्तु वस्तु शब्द अनेकार्थ वाला होनेसे वस्तु शब्दका अर्थ शास्त्रकारोंके अभिप्राय मुजब संबंध पूर्वक करना चाहिये तथापि वस्तु शब्दसे कल्याणक अर्थका निषेध करनेके लिये जो एकांत हठवाद करते हैं जिन्होंको तत्वज्ञान विनाके अज्ञानी समझने चाहिये।

और श्रीऋषभदेवजीका राज्याभिषेकको इन्द्र कृत्य की तरह श्रीमहावीर स्वामीके गर्भापहारकोभी इन्द्रकृत जानकर कल्याणक माननेमें संबंधी श्रीहीरविजय सूरिजीने लिखा सो तो श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारको छठे कल्याणकपनेमें मान्य करने संबंधी शास्त्रकार महाराजोंके तात्पर्यको इन महाराजके समझमें नहीं आया मालूम होता है क्योंकि जो कल्याणकत्वपनेके गुण बिनाही इन्द्रकृत्य समझकर कल्याणक माना जाता होवे तो वंशस्थापना विवाहकरना वगैरह इन्द्रकृत अनेक कार्योंको कल्याणक कहते कहते १०-१५ कल्याणक बनाने पड़ेंगे परंतु ऐसा कदापि नहीं हो सकता इसलिये राज्याभिषेकमें चयवन जन्मादिक कल्याणकत्वपनेके गुण लक्षण न होनेसे राज्याभिषेकको तो कल्याणक नहीं कह सकते परंतु श्रीमहावीर स्वामीके गर्भापहारमें तो प्रत्यक्षपने प्रथम चयवन कल्याणककी तरह दूसरे चयवन कल्याणकपनेके सब गुण लक्षण विद्यमान हैं इसलिये श्रीवीर प्रभुके दो चयवन कल्याणकोंसे छ कल्याणक होते हैं उसीसे गुण निष्पन्न होनेसे शासन नायकके छ कल्याणक कहते हैं मत निष्केवल इन्द्रकृत्य समझकरके अतएव इन्द्रकृत्य सम-

झकर छठे कल्याणकको माननेसंबंधी इन महाराजका लिखना प्रत्यक्ष मिथ्या है सो इसको विशेषतासे तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे ।

और राज्याभिषेकको कल्याणकत्वपनेका निषेध करनेके साथ गर्भापहारके दूसरे च्यवन कल्याणकको भी कल्याणकत्वपनेसे निषेध किया सोतो पूर्वपक्षका उत्तर देनेमें निजमेंही श्रीजिनाज्ञाका लोप करने लगे जिसका कारण तो उत्सूत्र प्ररूपक धर्मसागरजीकी धर्मधूर्ताईकी वक्रताके सङ्गतका गुण प्राप्त हुआ मालूम होता है क्योंकि देखो श्रीतीर्थंकरगणधरादि महाराजोंके कथन मूजब पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रानुसार गर्भापहाररूप दूसरे च्यवन कल्याणक सहित छः कल्याणकोंकी प्रत्यक्षपने स्वयंसिद्धि होते भी तथा श्रीतपगच्छके भी पूर्वाचार्योंने खुलासापूर्वक छ कल्याणकोंका कथन किया हुआ होतेभी धर्मसागरजीने अपने अन्तर मिथ्यात्वके उदयसे छठे कल्याणकके तात्पर्यार्थको समझे बिना ही उत्सूत्रभाषणोंपूर्वक कुयुक्तियोंके भ्रमचक्रमें बाल जीवोंको गेरनेके लिये राज्याभिषेकके कथनका मतलब समझे बिना निष्प्रयोजन राज्याभिषेकके पाठका सहारा लेकरके श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकको निषेध करनेका उद्यम किया उसी धर्मसागरजीकी तथा इसीके बनाये उत्सूत्र भाषणोंके संग्रहवाले तथा कुयुक्तियोंका निधि और पूर्वाचार्योंकी झूठी निन्दावाले अनुचित शब्दों करके युक्त निजपरके संसार भ्रमणका और दुर्लभ बोधिपनेका कारणरूप कदाग्रही ग्रन्थोंकी सङ्गतसे श्रीहीरविजयसूरिजीने भी निज आत्माका और पञ्चाङ्गीके प्रत्यक्ष प्रमाणोंका विवेक बुद्धिसे विचार किये बिना ही श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनसे विरुद्ध होकरके

पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाणोंको और पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंके वचनोंका उत्थापनरूप उत्सूत्रके फँद याने ओझाको धारण करके श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकके निषेध करनेके लिये वृथा ही गच्छके पक्षपातसे बिना विचारे लिखा। हा! अति खेद! ऐसे सुप्रसिद्ध प्रभावक कहलानेवाले होकरके भी उत्सूत्रसे अलग न रहे—खैर! अब आत्मकल्याणाभिलाषी निष्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंसे मेरा यहां इतना ही कहना है कि—राज्याभिषेककी तरह गर्भापहारके कल्याणकत्वपनेको निषेध करना सर्वथा वृथा है सो तो इस ग्रन्थको पढ़नेवाले तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे,—

शङ्का—अजी जिसके पूर्वज श्रीहीरविजयसूरिजीने तो श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकको निषेध किया और उनके सन्तानीय अपने पूर्वजके विरुद्ध होकरके छठे कल्याणकको सिद्ध किया सो कैसे माना जावे।

समाधान—भो देवानु प्रिय? तेरेको श्रीजैन शास्त्रोंके तात्पर्यार्थकी गुरुगम्यसे या अनुभवसे मालूम न हुई इसलिये ऐसी शङ्का उत्पन्न हुई परन्तु अब हम तेरे और अन्य भव्य जीवोंके उपकारार्थ शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक और प्रत्यक्ष प्रमाण सहित तेरी शङ्काका समाधान करते हैं सो देखो श्रीजिनेश्वर-भगवान्‌की आज्ञाके आराधक जो आत्मार्थी भवभीरु पुरुष होते हैं सो तो भगवान्‌की आज्ञा विरुद्ध अपने गुरु और गच्छकदाग्रहकी कल्पित बातका पक्षपात न रखते हुए उसका त्याग करके भव्य जीवोंके उपकारके लिये शास्त्रानुसारकी सत्य बातको प्रकाशित करते हैं जैसे कि—जमालीकी कल्पित बातको उनके आत्मार्थी शिष्योंने त्याग करी और श्रीवीर प्रभुके कथनानुसार सत्य बातको ग्रहण करके भव्य जीवोंने

प्रकाश करी सो बात तो शास्त्रमें प्रसिद्ध ही है परन्तु यहां फिर भी अबी थोड़े समयका श्रीतप गच्छके पूर्वाचार्य तथा श्रीहीरविजयसूरिजी और इन महाराजके सन्तानीयों सम्बन्धी श्रीतपगच्छका ही प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाता हूं सो देखो कि श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार अनेक शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणों मुजब श्रीतपगच्छ नायक सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीदेवेन्द्रसूरिजी तथा श्रीकुलमंडन-सूरिजी और रत्नशेखरसूरिजी वगैरह महाराजोंने अपने बनाये शास्त्रोंमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये पीछे इरियावही का प्रतिक्रमण करना कहा है तिसपर भी उत्सूत्रप्ररूपक धर्मसागरजीने तत्वतरङ्गिणि, प्रवचनपरीक्षा, इरियावहीषट्त्रिंशिकादि, अपने कदाग्रही ग्रन्थोंमें उन महाराजोंके कथनका उलटा अर्थ करके अनेक शास्त्रोंके (प्रथम करेमिभंते सम्बन्धी) प्रमाणोंका उत्थापन पूर्वक शास्त्र प्रमाणशून्य कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे श्रीमहानिशीथ, दशवैकालिकादि, शास्त्रोंके पाठोंको मायाचारीसे अधूरे अधूरे लिखके फिर उसका भी अपनी कल्पना मुजब झूठा अर्थ करके सामायिकमें प्रथम इरियावही बड़े जोरशोरसे लिखी और अनेक शास्त्रोंके प्रमाणपूर्वक प्रथम करेमिभंते लिखने वालोंपर तथा उसबातको मान्य करने वालोंपर अनेक तरहके आक्षेप वाले अति कटुक वचन लिखे उसीमुजब ही श्रीहीरविजयसूरिजी तथा श्रीविजयसेनसूरिजी वगैरहोंने तो उत्सूत्रसे जिनाज्ञा भङ्गका भय न करके प्रथम करेमिभंतेका निषेध पूर्वक प्रथम इरियावही स्थापित करते रहे परन्तु इन्होंके सन्तानीय उपाध्यायजी श्रीमानविजयजीने तथा सुप्रसिद्धविद्वान् न्याय-विशारद श्रीमद्यशोविजयजीने तो अपने गुरु तथा गच्छके

कदाग्रहके पक्षपातकी कल्पित बातको प्रमाण न करके अनेक शास्त्रानुसार प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही श्रीधर्मसंग्रह की वृत्तिमें खुलासा पूर्वक लिखी है सो आज्ञा आराधक आत्मार्थी पुरुषोंको तो शास्त्रानुसार प्रथम करेमिभंतकी सत्य बात प्रमाण होती है नतु शास्त्रप्रमाणशून्य गुरु गच्छ कदाग्रहकी कल्पनारूपी प्रथम इरियावही, तैसेही आत्मार्थी पुरुषोंको तो श्रीहीरविजयसूरिजीने उत्सूत्रसे श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकको निषेध किया जिसको न मान्यकर श्रीशान्तिचन्द्रगणिजीने शास्त्रानुसार छठे कल्याणकको लिखा उसको मान्यकरना चाहिये इसमें ही भगवान्की आज्ञाका आराधन करना है नतु मिथ्या हठवादमें इस बातको तो विवेकीजन स्वयं विचार लेवेंगे ।

और अब सत्यग्रहणाभिलाषी आत्मार्थी सज्जनोंसे मेरा इतना ही कहना है कि श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकको निषेध करनेके लिये राज्याभिषेकके पाठको आगे करनेवालोंकी कल्पना मुजब तो वीरप्रभुके छठे कल्याणकको (जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक मास पक्ष तिथिका खुलासा और दूसरे च्यवन कल्याणक सूचक चौदहस्वप्न त्रिशला माताने आकाशसे उतरते अपने मुखमें प्रवेश करते हुए देखने वगैरहके कथनकी) तरह श्रीऋषभदेव प्रभुके राज्याभिषेकके पाठकी भी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक मास पक्ष तिथिका खुलासा और जन्म दीक्षादि कल्याणकोंके सूचक चिन्होंका कथन करनेका सूत्रकार गणधर भगवान् भूल गये होंगे अथवा राज्याभिषेककी तरह गर्भापहार सम्बन्धी चौदह स्वप्नादिकके भी मासपक्ष तिथी वगैरह दूसरे च्यवन कल्याणकके सूचक चिन्होंको न लिखसे तबतो श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकके

निषेध करने वालोंकी बात बन आती परन्तु राज्याभिषेकके मास पक्षादि सम्बन्धी कुछ भी खुलासा न करते हुए गर्भापहार सम्बन्धी तो प्रथम च्यवनवत् सबी बातोंमें दूसरे च्यवनकी व्याख्या सूत्रकारोंने अनेक जगहोंपर करके दिखाई हैं तिसपर भी अन्तर मिथ्यात्वसे वृथाही कल्पित कुयुक्तियाँ करके अज्ञ जीवोंको संसार भ्रमणका रास्ता दिखानेवाले उत्सूत्रभाषी साध्वाभासोंसे दूर रहकरके सत्य बातका ग्रहण पूर्वक अपनी आत्मकल्याणके कार्यमें उद्यम करना चाहिये।

देखिये राज्याभिषेक और गर्भापहार संबंधी शास्त्रकारोंने अलग, अलग, सम्बन्ध पूर्वक अच्छी तरहसे खुलासा कर दिया है तथापि शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें हो करके कुयुक्तियोंसे खंडनमंडनका वृथा झगड़ा करके आपसमें विरोध भाव करनेमें ही अपनी विद्वत्ताकी बहादुरी समझते हुए निज परके आत्म कल्याणमें विघ्नरूप उत्सूत्री बनते कुछ शर्म भी नहीं आती—हा हा अतीव खेदः। मुण्ड मुंडाकर कुयुक्तियोंसे अपनी बात जमानेमें ही धर्म माननेवालोंको बहुत लाचारी पूर्वक विनती करता हूं कि संसार भ्रमणके हेतुभूत ऐसे निष्प्रयोजनीय कदाग्रहको छोड़कर अपनी आत्मसाधनके लिये मिथ्याभिमानको त्याग करके सत्य बातको ग्रहण करो और दुसरोंको कराओ इसमें ही अपना मनुष्य जन्म जैनधर्मकी प्राप्ति और साधुपना तथा उपदेशकादेना सफलहोवे मैंने तो धर्मबन्धुकी प्रीतिसे शास्त्रानुसार सत्यबात दिखायदी अब आगे मान्यकरना या नहीं करना आपकी इच्छाकी बात है। परन्तु कदाग्रह न छुटेगा तो उसके विपाक तो भवांतरमें तयार हो समझना।

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीमें अपने विशेषणको लज्जनीयरूप करके श्रीजिनवल्लभसूरिजीको नवीन छठा कल्याणककी प्ररूपणा करनेका वृथाही कल्पित दूषण लगानेके लिये श्रीगणधरसार्द्धशतककी बड़ीटीकाके पाठका शब्दार्थको और भावार्थको समझे विना या मायाचारीसे विद्वानोंके आगे हास्यपात्र होनेरूप और बालजीवोंको अपनी अंधपरंपराकी मायाजालके भ्रमका मिथ्यात्वमें फंसानेके लिये जैनसिद्धांतसमाचारी नामक पुस्तक (परं वास्तवमें उत्सूत्रभाषणोंकी और कुयुक्तियोंकी अंधखाड़ रूपी पुस्तक)के पृष्ठ ७२ की पंक्ति ८ वीसे पृष्ठ ७३के अंततक जो लेख अपनी बात जमानेके लिये लिखा है उसको यहां दिखाकर पीछे इसकी समीक्षा आगे करता हूं, सो लेख नीचे मुजब है ।

[आपके बड़ोंने षट् कल्याणककी परूपणा किनी सोही आद्यमें गणधर सार्द्ध शतकका पाठ हमने लिख दिखाया है, फिर भी आपको दृढ़ करणेके वास्ते गणधरसार्द्धशतककी वृहत् वृत्तिका पाठ लिखदिखाते है । यथा-मूलं ;—

'असहायेणाऽविविहि । पसाहिओ जो न सेस सूरीहिं । लोअण पहेवि वच्चइ । पुणा जिण मय णूणं ॥ १२२ ॥ व्याख्या । ततोयेन भगवता असहायेनापि एकाकिनापि परकीय सहाय निरपेक्ष अपिविस्मये अतीवाश्चर्य मेतत् विधिरागमोक्तः षष्ठकल्याणक रुपश्चेत्यादि विषयः पूर्वं प्रदर्शितश्च प्रकारः प्रकर्षेणेदमित्यमेव भवति योऽत्रार्थे ऽसहिष्णुः सवावदीतिवति स्कंधास्फालन पूर्वकं साधितः सकल प्रत्यक्षं प्रकाशितः ॥ यो न शेष सूरीणामज्ञात सिद्धांत रहस्याना मित्यर्थः । लोचनपथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तां श्रु तिपथे व्रजतियाति । उच्यते पुनर्जिन मतज्ञैर्भगवद्वचन वेदिभिरिति'।

भावार्थः—तिसपिछें, जिस जिनवल्लभसूरिजीने, सहायविना, एकाकी, दूसरेकी सहायमें निरपेक्ष अत्यंत आश्चर्य यह विधि आगमोक्त, छठा कल्याणक रूप, ऐसें औरभी विषय पहिले जो दिखाये सों अतिशय करके यह छठा कल्याणक ही है, जो इस वातमें सहन न कर सकता होवे सो अतिशय करके कथन करो? ऐसे कथनके साथ अपने स्कंधोको आस्फालन पूर्वक छठा कल्याणक कथन किया है अर्थात् अपनी भुजासें खंभा ठोकके छठे कल्याणककी परुपणाकरी सर्वलोकोके प्रत्यक्ष कथन किया, और जो यह छठा कल्याणक नही जाने है सिद्धांतके रहस्य ऐसें जितने होगये आचार्य उनोंके कर्णां प्रथमें तो दूर रहो परंतु लोचन मार्गमें भी नही आया है, ऐसा छठा कल्याणक कहा है भगवत्के वचन जाननेवाले श्री जिन वल्लभ सूरिजीने, अब इस गणधर सार्द्ध शतकके पाठसे आपही विचारीये? कि जब आपके बड़े श्रीजिनवल्लभसूरिजीने पूर्वाचार्योकों सिद्धांतके रहस्य न जानने वाले ठहराके और विद्यमान आचार्योंसें निरपेक्ष होकर यह छठा कल्याणक नवीन कथन किया तो फिर किस वास्ते सिद्धांतका झूठा नाम लेके लोकोंको भरममें गेरते हो? और पृष्ट ८८ पंक्ति ७ में तपगछीय एक श्रीकुलमंडन सूरिजीका जो उदाहरण दिया है सोतो तुमारे बड़ोंकाही अनुकरण किया है, ॥ पूर्वपक्ष ॥ श्रीकुलमंडन सूरिजीने अनुकरणही कियाहै यह कैसें हम जान लेवे? उत्तर हेमित्र! इतना तो विचार करणा चाहिये कि-जब पहिले श्री जिनवल्लभसूरिजीने सभी आचार्योसें निरपेक्ष होके नवीनही छठा कल्याणक दिखाया तो फिर काहेकों तर्क करते हो? और हे मित्र! अब इस छठे

कल्याणककी जडता सिद्ध कर दिखाइ तो फिर आपका जितना प्रयास है सो तो स्वतः ही व्यर्थ है,]

उपरके लेखकी समीक्षा करके सत्यग्रहणाभिलाषी मध्यस्थ आत्मार्थी तत्वज्ञ सज्जन पुरुषोंको दिखाता हूं सो पाठक गणको निष्पक्षपाती होकर इन लोगोंकी विद्वत्ताकी चातुराईका नमूना पूर्वक मैंरी लिखी समीक्षाको अच्छी तरहसे विचार करके अंधपरंपराके मिथ्याभ्रमकी कल्पित बातको त्यागके शास्त्रानुसार सत्य बातको ग्रहण करनी चाहिये सो न्यायांभोनिधिजीको उपरोक्त टीकाके पाठका अभिप्राय तो क्या परन्तु शब्दार्थ भी समझमें नहीं आया मालूम होता है उसीसे टीकाकारके विरुद्धार्थमें होकर श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजको झूठादूषण लगाके उपरकी टीकाके पाठपर अपनी कल्पनामुजब प्रत्यक्ष मिथ्या लिख करके भद्रजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका कारण करके वृथाही संसार वृद्धिका कारण किया है जिसमें प्रथम तो (आपके बड़ोंने षट् कल्याणककी परूपणा किनी सोही आद्यमें गणधरसार्द्ध शतकका पाठ हमने लिख दिखाया है फिर भी आपको दूढ करनेके वास्ते गणधरसार्द्धशतककी वृहत् वृत्तिका पाठ दिखाते है) यह लेख ही बाललीलाकी तरह अज्ञानताका सूचन करानेवाला मिथ्याहै क्योंकि हमारे बड़े श्रीजिनवल्लभसूरिजीने श्रीसिद्धसेनदीवाकरजी तथा श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजकी तरह श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की कथन करी हुई शास्त्र प्रमाण पूर्वककी लुप्त हुई षट्कल्याणककी सत्य बातको प्रगट करी है जिसको आप लोग विवेक शून्यतासे समझे बिना नवीन प्ररूपणाकरनेका दोष लगाते हो सो सब वृथा है इसका पूर्वमें इसी ग्रन्थके पृष्ठ ५६०

से ५७३ तक खुलासापूर्वक निर्णय छप गया है उसको बांचनेसे आपका सब भ्रम मिट जावेगा।

और फिर भी इसको दृढ़ करनेके वास्ते गणधर सार्द्ध-शतककी वृहद्वृत्तिका पाठ आपने लिख दिखाया है सो हमतो हमारे पूर्वजोंके कथन करे हुए उक्त ग्रंथके पाठोंके तात्पर्यार्थोंको समझकर शास्त्र प्रमाणानुसार प्रत्यक्षपने आगमोंमें कथन करी हुई छ कल्याणकोंकी सत्य बात पर सदा दृढ़ है उससे उपरोक्त पाठोंमें तथा छ कल्याणकोंके माननेमें किसी तरहका सन्देह नहीं है परन्तु आप लोगोंने उपरोक्त पाठोंका तात्पर्यार्थको समझे बिना अन्धपरम्पराके मिथ्या कदाग्रहका हठवादरूपी तिमिरकी भ्रमखाडमें पड़कर भद्रजीवोंको भी अपनी मायाजालमें फंसानेके लिये उपरोक्त टीकाके पाठोंको शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें होकर कल्पित अर्थ लिखकर उत्सूत्र प्ररूपणाका पंथचलाते हुए प्रत्यक्ष विपरीततासें दृष्टिरागी बाल जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेसे वृथा ही निज परके आत्म-कल्याणमें विघ्नका कारण किया है।

और उपरोक्त पाठके पूर्वापरके सम्बन्धवाले सब पाठोंको छोड़कर बिना सम्बन्धकी १ गाथा लिखकर अधूरे प्रसंगसे उलटे अर्थको करके अपनी विद्वत्ताकी चातुराई बाल जीवोंमें चलानीथी सो चला दी किन्तु जब उपरोक्त पाठके पूर्वापरकी गाथाओं सहित सम्बन्धपूर्वक शास्त्रकारोंके अभिप्रायको देखा जावे तब तो न्यायांभो-निधिजीके विवेक शून्यताकी अज्ञानताके सब परदे खुल जावे क्योंकि वहां तो उस देशमें चीताडमें तथा चीताडके आसपासमें सब जगहोंपर प्रायः करके पञ्चमहाव्रतोंका उच्चारण करनेवाले सूरिपदधर भी चैत्यवासी होकर बैठे थे

सो वे लोग निज स्वार्थ सिद्धिके लिये अज्ञानतासे उत्सूत्रप्ररूपणा करते हुए चैत्यमें रहना तथा रात्रिको स्नात्र महोत्सव, प्रतिष्ठादि करना और रात्रिको साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओंको मन्दिरमें आना वगैरह अनेक बातें शास्त्रमर्यादा विरुद्ध अपनी कल्पित कुयुक्तियोंके सहारेसे प्रवर्तमान करते थे और ४२ दोष वर्जित मुनिको गौचरी करना तथा सर्वथा परिग्रह रहित रहना और अधिक मास तथा श्री वीरप्रभुके छ कल्याणकादिको मानना वगैरह शास्त्रोंमें कथन करी हुई सत्यबातोंकों उत्थापन करके श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध प्ररूपणासे भद्रजीवोंके दिलमें अनेक तरहके संदेह उत्पन्न होवे वैसी कुयुक्तियों करके उन्होंको अपने भ्रमचक्रमें फंसाते हुए मिथ्यात्वकी वृद्धिकरते थे, तब वहां विशेष लाभका कारण जानकर उसदेशमें श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने विहार किया सो बड़े परिश्रमके साथ श्रीकालिकाचार्यजीकी तरह मरणांत उपसर्गका भी भय न करके उन चैत्यवासियोंके अनेक तरहके उपद्रवोंको भी सहन करते हुए अपनी हीमत बहादुरीसे चैत्यवासियोंके मन कल्पनाकी अविधिमार्गकी बातोंके कदाग्रहरूपी मिथ्यात्वका नाश करके शास्त्रानुसार विधिमार्गकी सत्य बातोंको प्रगट करनेमें भव्य जीवोंका उपकाररूपी अन्तर करुणाकी प्रबलतासे किसीकी साह्यता बिना परन्तु श्रीदेव गुरुके (श्रीजिनेश्वर भगवान्‌के तथा पूर्वाचार्योंके) कथन किये हुए शास्त्रोंके प्रमाणोंके आधारसे चैत्यमें रहना वगैरह शास्त्रविरुद्ध उपरोक्त बातोंका निषेध करने पूर्वक चैत्यकी विधिकी और श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकादि शास्त्रानुसार श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्य बातोंको भव्यजीवोंको ज्ञेय, ज्ञेय, उपादेयका, परिज्ञान होनेके लिये प्रकाशित करी

और वहां चीतोड़ नगरमें जब श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने चौमासा किया उस समय भी चैत्यवासियोंकी रात्रिस्नात्रादि अविधिकी बातोंका निवारण करके चैत्यमें यत्नापूर्वक दिनमें स्नात्र करने तथा चैत्यकी ८४ आशातना निवारण करनी और विधिसे प्रवेश करना तथा छठे कल्याणकका मानना इत्यादि शास्त्रानुसार विधिमार्गकी बातोंकों विशेषतासे प्रकाशित करी और चैत्यवासियोंकी कल्पित अविधिकी बातोंकी सब पोल खोलने लगे तब तो वे चैत्यवासीलोग इन महाराजपर बहुत वेराजी हुए और विरुद्धताका कथन करने लगे याने इस पञ्चमकालमें चैत्यमें रहना उचित है तथा चैत्यादिककी संभालके लिये द्रव्य भी रखना चाहिये और आश्चर्यरूपहोनेसे छठे कल्याणकको नहीं मानना इत्यादि बातोंको शास्त्रप्रमाण बिना ही कुयुक्तियों करके कथन करने लगे तब भी इन महाराजने तो निजमेही अपनी विद्वत्ताकी हिम्मतसे चैत्यवासीयोंकी कल्पित बातोंका निषेध करके शास्त्रोंके दृढ प्रमाणों पूर्वक चैत्य वास निषेध, षट् कल्याणक स्थापन वगैरह बातोंको सब लोगोंके सामने विस्तारसे प्रकाशित करी और बोलने लगे कि देखो बड़े आश्चर्यकी बात है कि श्रीजिनेश्वर भगवान्के मन्दिरकी चौराशी आशातना निवारण करके उपयोग सहित यत्नासे चैत्य वन्दनादि कार्य विशेषतासे मर्यादा युक्त चैत्यमें जानेकी और कार्य उपरांत वहां ठहरनेकी मनाई वगैरह बातोंकी भाष्य चूर्ण्यादि शास्त्रोंमें प्रगटपने विधि कथन करी हुई है तिसपर भी ये चैत्यवासीलोग उसका विचार छोड़कर सर्वथा प्रकारसे चैत्यमें निवास करने वगैरह प्रत्यक्ष अविधि करके अनुचित कार्य करते है तथा श्रीकल्प सूत्रादि मूल शास्त्रोंमें

प्रगट अक्षरों करके श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंका कथन किया हुआ होनेपर भी ये चैत्यवासी लोग उसको नहीं मानते है इससे विशेष आश्चर्य दूसरा कौनसा होगा सो विधिमार्गमें चौराशी आशातनाका वर्जन किया जिसकोतो (चैत्यमें रहकर) करना और जो आगमोंमें छ कल्याणक कथन किये उसको न मानना सो प्रत्यक्ष उत्सूत्रप्ररूपणा है इत्यादि कहा और शास्त्र विरुद्ध होकर अपने कल्पित-मंतव्यको कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे (बालजीवोंको विभ्रमवाले करके) स्थापन करते थे उन्होंको इन महाराजने शास्त्र प्रमाणोंका दर्शाव पूर्वक चैत्यवासियोंके कल्पित मन्तव्यको जूठा ठहराकर शास्त्रानुसार उपरोक्त बातोंको सिद्ध करके दिखाई और विशेषतासे भव्य जीवोंकी शास्त्र प्रमाणानुसार सत्य बातोंपर दृढ़ता होनेके लिये तथा हठवादी कदाग्रही चैत्यवासियोंकी उत्सूत्र प्ररूपणाको हटानेके लिये फिर भी बड़े जोरके साथ कथन किया कि चैत्यवास निषेध परन्तु उसकी विधिसे भक्ति करने संबंधी तथा षट् कल्याणक संबंधी जो यह सत्य बात मैं कहता हूं इसी तरहसे है इसमें अन्यथा नहीं है सो यह उपरोक्त बात किसीको पसन्द नहीं आवे अपने दिलमें नहीं रुचती होवे तो जिसकी ताकत होवेसो मेरे सामने आकर विशेषतासे अतिशयकरके अपना मंतव्यको कथकन करो, नहीं तो उनका बकवाद (कथन) वृथा मिथ्या माना जावेगा इस तरहसे शास्त्र प्रमाणोंका दर्शाव पूर्वक अपनी विद्वत्ताकी बहादुरीसे भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी सत्य बातमें विशेष दृढ़ता होनेके लिये और शिथिलाचारी द्रव्यलिंगी साधुनाम धराने वाले उत्सूत्रभाषी चैत्यवासियोंके कल्पित कदाग्रहके पाखण्डका मिथ्यात्वको हटानेके लिये बहादूरीसे अपने

स्कंधोंका आस्फालन पूर्वक उपरोक्त बातोंको सबके सामने शास्त्रोंके प्रमाणोंसे सिद्ध करके कथन किया परन्तु जैसे-सिंहकी गर्जारवके सामने सियालियोंके टोलेमेंसे कोईभी सामने नहीं आ सकते, तैसेही श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके कथनके सामने जाकर उन चैत्यवासियोंमेंसे कोईभी अपना मन्तव्य कथन करनेको समर्थ नहीं होसका। तब फिरभी इन महाराजने कहा कि "यो न शेष सूरीणामित्यादि" याने शुद्ध प्ररूपक संयमी साधु आदिकोंसे शेष (बाकी)के वर्तमानमें जो ये कितनेक चैत्यवासी लोग विद्वान् आचार्य कहलाते हैं परन्तु शास्त्रोंके तात्पर्यार्थके रहस्यको नहीं जान सकते हैं उन अज्ञानी चैत्यवासियोंके क्या उपरोक्त बातों सम्बन्धि शास्त्रोके प्रमाणोंके प्रत्यक्ष अक्षरोको भी देखनेमें नहीं आये और सुननेमें भी नहीं आये होगें सो अनंत भव भ्रमण करानेवाली अविधि करते हुए भगवान्की आशातनाके हेतु भूत रात्रि स्नात्र, प्रतिष्ठा, नंदीमहोत्सव, बलीदेना, और श्रावक श्राविकादिकोका रात्रिको मन्दिरमें आना वगैरह कार्य कराकर चैत्यमें रहतेहुए उत्सूत्र प्ररूपणासे अपने सम्यक्त्वका तथा संयमका नाश करते हैं। और श्रीआचाराङ्गजी सूत्र तथा श्रीकल्पसूत्र और श्रीस्थानांगजी सूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें छ कल्याणक कहे हैं उन्होंको न मानकर उन शास्त्रपाठोंके उत्थापक बनते हैं, इसप्रकारसे वेषधारियोंके कल्पित मार्गको हटानेके लिये इन महाराजने बड़ी बहादुरी प्रगटकरी और शास्त्रानुसार शुद्ध उपदेशसे बहुत भव्यजीवोंका उद्धार किया, याने—वेषधारियोंकी कल्पित भ्रमकी अंधपरंपरासे भद्रजीवोंको छुड़ाये और श्रीजिनाज्ञामें प्रवर्तमान किये इस तरहसे इन महाराजने द्रव्यलिंगी चैत्यवासियोंके उपद्रवोंका भय न किया और सब भ्रष्टा-

धारियोंके सामने शास्त्रानुसार उपरोक्त सत्य बातोंका प्रकाश करने रूपबड़ा आश्चर्यकारी कार्य करके बहुत उपकार किया, इसलिये ग्रन्थकारने (श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजने श्रीगणधरसार्द्धशतक नामा ग्रन्थमें) श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजकी ६२ गाथाओंमें अनेक तरहकी स्तुति करते श्रीवीरप्रभुके मोक्ष जानेसे लेकर जैनशासनकी व्यवस्था दिखाते हुए इह लोकस्वार्थी चैत्यवासियोंके और आत्मार्थियोंके भेद भावका दर्शाव पूर्वक उन चैत्यवासियोंके संबंधमें 'असहायण' इत्यादि उपरोक्त १२२ वीं गाथा कथन करी है।

अब इस जगह पर श्रीजिनाज्ञाभिलाषी आत्मार्थी निष्पक्षपाती पाठकगणसे मेरा इतनाही कहना है कि द्रव्यलिंगी उत्सूत्र प्ररूपणा करनेवाले चैत्यवासियोंकों उपरोक्त ग्रन्थ कारनें वन्दन पूजन आलाप संलाप करना तो क्या परन्तु उन्होंका अल्पकाल थोड़ी देर दर्शन मात्र भी मिथ्यात्वकी प्रप्ति करने वाला कहा और "जे जिण वयणु त्तिन्नु वयणं भासंति जेउ मन्नंति ॥ समद्दिठीणं तं दंसणंपि संसार बुड्ढी करंति" ॥ १२० ॥ यह श्रीविशेषावश्यककी उपरोक्त प्रसंगमें एक गाथा दिखाकर जो श्रीजिनेस्वर भगवान्के वचनके विरुद्ध उत्सूत्र भाषण करता होवे उसका और उसको मान्य करने वालोंका दर्शनमात्रभी आत्मार्थी सम्यक्त्वी जीवोंको त्यागना चाहिये नही तो संसार बढ़ानेवाला होता है— और उन्होंकी निज स्वार्थी कल्पित कुयुक्तियोंकी सहारेवाली (आज्ञाविरुद्ध) अविधिकी बातोंका निषेध करके मिथ्यात्व हटानेके लिये तथा भव्यजीवोंके उद्धारके वास्ते विधिमार्गकी आज्ञानुसार शास्त्रोंके प्रमाण पूर्वक सत्य बातोंको प्रगट करने सम्बन्धी इन महाराजने

बहुत कष्ट सहन करके अपनी हिम्मत बहादुरी और शास्त्रोक्त बातोंकी सत्यता दिखानेके लिये उपरोक्त बातों संबंधी अपने स्कंधोंका आस्फालन (खम्भा ठोक) कर कथन किया जिसपर विवेक शून्यताकी अन्धपरम्परासे वर्तमानकालमें अन्तरमिथ्यात्वसे बड़ाभारीविभ्रम पड़ गया है, कि श्रीजिनवल्लभसूरिजीने खम्भा ठोंक कर जबराईसे उत्सूत्ररूप छठे कल्याणकको प्रगट किया परन्तु इतना नहीं विचारते है, कि शास्त्रानुसार सत्य बातको प्रकाशित करके मिथ्या हठवादी कदाग्रहियोंको हटानेके लिये अपनी विद्वत्ताकी बहादुरी दिखाई है नतु शास्त्रविरुद्ध उत्सूत्र-प्ररूपणाका वृथा हठवादकी जबराई, क्योंकि देखो आजकाल वर्तमानमें भी यह बातें तो प्रगटपने देखनेमें आती है; कि कितनेही आदमी किसी तरहकी अपनी सत्य बातको शास्त्रप्रमाणों सहित दिखाते हुए वादानुवाद करके युक्तिपूर्वक सिद्ध करनेके लिये और दूसरे प्रतिवादीकी मिथ्या बातको निषेध करनेके वास्ते—कोई तो छाती ठोककर अपना कथन करते हैं॥ कोई डङ्केकी चोट पूर्वक अपना कथन करते हैं॥ कोई उद्घोषणा करवाते हुए कथन करते हैं॥ कोई भृकूटी चढ़ाकर बड़ी तेजीसे कथन करते हैं॥ कोई बड़ी बड़ी आवाज करके लम्बे लम्बेसे पुकारते हुए कथन करते हैं॥ कोई झालर, घण्टा बजाते हुए कथन करते हैं॥ तथा कितने ही भाषण करनेवाले कूद कूदकर उछल उछल करके कथन करते हैं॥ और कोई कोई तो चौकी टेबल ठोकते हुए कथन करते हैं॥ और कोई पुस्तकपर हाथ पिछाड़ते हुए कथन करते हैं॥ इत्यादि अनेक प्रकारसे कथन करते हैं सो तो अपनी सत्यता तथा विद्वत्ताकी हिम्मत बहादुरी और अपनी अपनी स्वभाविक प्रकृति शरीरकी चेष्टाका कारण है परन्तु उसको हठवाद

मिथ्या आग्रहकी जबराई नहीं कहसकते हैं इसीतरहसे श्रीजिनवल्लभसूरिजीनेभी शास्त्रप्रमाणों सहित अपने कथनकी सत्यताके कारणसे तथा अपनी विद्वत्ताकी हिम्मत बहादुरी और निज प्रकृति शरीर स्वभावकी चेष्टासे चैत्यवासियोंकी उत्सूत्र प्ररूपणाका कल्पित मार्गको हटा करके श्रीजिनाज्ञानुसार सत्य बातको प्रगट करनेके लिये खम्भा ठोकके कथन किया सो तो चैत्यवास रात्रिस्नात्रादि अविधिकी बातोंका निवारण करनेके लिये और प्रभातसे दिनमें विधिपूर्वक यत्नासे स्नात्र महोत्सवादि करना और चैत्य वंदनादिके लिये जाना वगैरह शास्त्रानुसार विधिमार्गकी बातोंको प्रकाशित करनेके लिये खूब ही अच्छी तरहसे सबके सामने कथन किया परन्तु झूठे आदमी सत्यवादीके सामने नहीं आ सकते हैं उसी तरह कोई भी उन चैत्यवासियोंमेंसे महाराजके सामने आकर चैत्यमें रहने वगैरह अपनी बातोंको स्थापन करनेके लिये कथन नहीं करसका उसीसे बहुत भव्यजीवोंको चैत्यवासियोंके मायाफन्दसे छुटनेका कारण होकर श्रीजिनाज्ञामें प्रवर्तमान होनेसे बड़ा लाभका कार्य (इन महाराजका कथन) होगया जिसमें अनन्त लाभके कारणका उपकार सम्बन्धी विचारको तो भूलगये और चैत्यवासियोंकी अविधिमें पड़कर भगवान्‌की आज्ञा भङ्ग तथा मन्दिरजीमें विराजमान श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की प्रतिमाजीकी आशातना करके और शिथिलाचारी उत्सूत्रप्ररूपक चैत्यवासियोंको शुद्ध उपदेश देनेवाले संयमी गुरु मानने वगैरह कारणोंसे संसारवृद्धि सम्यक्त्वका नाश दुर्लभ बोधिकी प्राप्ति भद्रजीवोंको होवे वैसे वर्तावके मिथ्यात्वको इन महाराजने हटाया और श्रीजिनाज्ञानुसार शास्त्रप्रमाण मुजब विधिमार्गकी सत्य बातोंको प्रकाशित करी जिसके पूर्वापरके सब पाठको

लिखना तो दूर रहा परन्तु विशेष मायाचारी करके चैत्यवासियों सम्बंधी विषयको छुपा करके "खम्भा ठोंकके छठे कल्याणककी प्ररूपणा करी" इसतरहसे लिखकर अपने हठवादसे नवीन छठे कल्याणककी उत्सूत्रप्ररूपणा करनेका बालजीवोंको दिखाया सो निष्केवल अन्तरके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे निजपरके आत्मकल्याणमें विघ्नरूप सम्यक्त्वको नष्ट करनेवाला वृथा ही गाढ़ मिथ्यात्वका भ्रम भद्रजीवोंके दिलमें गेरकर संसार भ्रमणका कारण किया है क्योंकि—
"प्रकर्षेणेद् मित्थमेव भवति योऽत्रार्थेऽसहिष्नुः सवावदीत्विति-स्कंधास्फालन पूर्वकं साधितः सकल प्रत्यक्षं प्रकाशितः ।" इन अक्षरोंका "अतिशय करके यह छठा कल्याणक ही है जो इस बातमें सहन न कर सकता होवे सो अतिशय करके कथन करो ऐसे कथनके साथ अपने स्कन्धोंको आस्फालन-पूर्वक छठा कल्याणक कथन किया है अर्थात् अपनी भुजासे खम्भा ठोंकके छठे कल्याणककी प्ररूपणा करी सर्व लोकोंके समक्ष कथन किया ।" यह भावार्थ न्यायांभोनिधिजीने लिखके नवीन छठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेका ठहराया सो तो अपनी विद्वत्ताकी चातुराईको मायावृत्तिसे वृथा ही लजाया है क्योंकि उपरोक्त अक्षरोंका यह भावार्थ नहीं बन सकता किन्तु चैत्यवास निषेधादि विषय हमने ऊपरमें लिखे हैं वैसा होता है इसलिये केवल छठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेके लिये खम्भे ठोंकके कथन नहीं किया किन्तु चैत्यवास निवारणादि पूर्वमें विषय दिखाये हैं उन्हीं सबोंका कथन करके शिथिलाचारी जैनीसाधुकावेष धारण करनेवालोंकी कल्पित अविधि और उत्सूत्र प्ररूपणा हटानेके लिये खम्भा ठोंकने पूर्वक उपरोक्त

विधिमार्गकी सत्य बातोंको शास्त्र प्रमाणानुसार सिद्ध करके सबके सामने प्रकाशित करनेका समझना चाहिये।

और "यो न शेष सूरीणामज्ञात सिद्धांत रहस्यानामित्यर्थः लोचनपथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तां श्रुतिपथे व्रजति याति उच्यते पुनर्जिन मतज्ञैर्भगवद्वचन वेदिभिरिति" इन अक्षरोंका भावर्थमें भी "जो यह छठा कल्याणक नहीं जाने हैं सिद्धांतके रहस्य ऐसे जितने हो गये आचार्य उन्होंके कर्णपथमें तो दूर रहो परन्तु लोचन पथमें भी नहीं आया है ऐसा छठा कल्याणक कहा है भगवतके वचन जानने वाले श्रीजिनवल्लभ सूरिजीने" इसतरहका मतलब लिख करके न्यायांभोनिधिजीने अपनी मायाचारीकी विद्वत्ता भद्रजीवोंको दिखाकर अन्ध-परम्पराकी भ्रमखाड़में बालजीवोंको गेरने थे सो गेरे और इहलोक स्वार्थसे अपनी पूजा मानतामें दृष्टिरागियोंको फसानेके थे सो फंसालिये परन्तु शास्त्र कारके विरुद्धार्थमें लिखकर पूर्वाचार्योंकी आशातना करके इन महाराजको वृथाही मिथ्या दूषण लगाकर मिथ्यात्व बढ़ाते हुए निजपरके संसार वृद्धिका कारण करते कुछ भी लज्जा नहीं आई क्योंकि न्यायांभोनिधिजीके ऊपर लिखे मुजब छठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेमें सब पूर्वाचार्योंको अज्ञानी ठहराने सम्बन्धी उपरोक्त पाठका भावार्थ नहीं बनता है, किन्तु भव्यजीवोंके धर्मरूपी धन (सम्यग्दृष्टिपने) को तस्करकीतरह हरण करनेवाले, अज्ञानरूपी अन्धकारमें पड़कर मोह प्रमादरूपी निन्द्रामें सोनेवाले, अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करतेहुये कल्पित आलम्बनोंको मायाचारीसे बालजीवोंको दिखाकर श्रीजिनाज्ञाकी विराधना करके उत्सूत्रप्ररूपणासे अविधिरूपी उन्मार्गका प्रचार करके उसमें गडडरीह प्रवाही विवेकशून्य

दृष्टिरागियोंको अपने स्वार्थके लिये अन्धपरम्परामें फंसाने-वाले आचार्य वगैरह पदधरोंकी रात्रिस्नात्र प्रतिष्ठा तथा श्राविकाओंका मन्दिरजीमें रात्रिको आना और छठे कल्याणकको न मानने वगैरह बातोंके लिये चैत्यवासियों सम्बन्धी शास्त्र-कारने कहा है सो हमने ऊपरमें ही उसका भावार्थ लिख दिया है इसलिये उपरोक्त वाक्य शुद्ध प्ररूपक आत्मार्थी पूर्वाचार्योंके लिये नहीं है क्योंकि चौदह पूर्वधर श्रुत केवली श्रीभद्रबाहुस्वा-मीजी, तथा श्रीजिनदासगणि महत्तराचार्यजी, श्रीहरिभद्रसूरिजी, श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी, श्रीअभयदेव सूरिजी, श्रीशी-लाङ्गाचार्यजी, श्रीतिलकाचार्यजी वगैरह पूर्वाचार्य महाराज तो श्रीकल्पसूत्र तथा श्रीस्थानांगजी सूत्र और श्री आचाराङ्गजीसूत्रादि शास्त्रानुसार छ कल्याणक माननेवाले तथा चैत्यकी ८४ आशातना वर्जन पूर्वक विधिसे व्यवहार करनेवाले थे और पूर्वाचार्योंके बनाये अनेक शास्त्रोंमें ८४ आशातनाका वर्जन पूर्वक दिवसमें स्नात्र उच्छवादि करतेहुये विधिसे वर्ताव करनेका तथा छठे कल्याणकको मानने वगैरहका अधिकार बहुत जगहोंपर आता है और चैत्य-वासीलोग श्रीमन्दिरजीकी आशातना वर्जन सम्बंधी तथा छठे कल्याणक सम्बन्धी शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद होनेपर भी उस मुजब न वर्तते हुए चैत्यमें रहना वगैरह विरुद्धाचरण करते थे इसलिये उन चैत्यवासियों सम्बन्धी "यो न शेष-सूरीणामज्ञात सिद्धांत रहस्यानां" इत्यादि वाक्य टीकाकार महाराजनेकहे हैं नतु शुद्ध संयमी शास्त्रोक्त सत्य उपदेशक पूर्वाचार्यों सम्बंधी जिसका विशेष खुलासा ऊपरमें लिखा गया है इसलिये उपरोक्त वाक्यका भावार्थमें न्यायांभोनिधिजीने

'जितने हो गये आचार्य' ऐसा लिखकर सब पूर्वाचार्यों को सिद्धान्तके रहस्यको न जानने वाले अज्ञानी ठहराने सम्बन्धी श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर झूठा आक्षेपकिया सो दीर्घ संसारी पनेका कारण है॥ और श्रीजिनवल्लभसूरिजीने तो जितने होगये उतने सब पूर्वाचार्यों को सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले अज्ञानी नहीं ठहराये परन्तु न्यायांभोनिधिजीने अपने लिखे भावार्थमें टीकाकारके विरुद्धार्थमें अपनी कल्पना मुजब अर्थ करके निजमें आपही ऐसा लिखकर सब पूर्वाचार्यों की बड़ीभारी आशातना करके अन्तर मिथ्यात्वके उदयसे संसार भ्रमण दुर्लभ बोधिके हेतूरूप महान् अनर्थ करदिया और इन महाराजको झूठा दूषण लगाकर उपहास-पूर्वक लिखके भोलेजीवोंको शास्त्रानुसार छ कल्याणकको सत्य बातपरसे श्रद्धा भ्रष्ट करनेका कारण किया जिसके विपाक तो भवान्तरमें भोगे विना छुटने बहुत कठिन है।

और "प्रकर्षेणेद मित्थमेव भवति" इत्यादि—इस पंक्तिमें तथा "यो न शेषसूरीणां" इत्यादि–इस पंक्तिमें छठे कल्याणकका नाम नहीं है तिसपर भी इन दोनों पंक्तियोंके भावार्थमें "अतिशय करके यह छठा कल्याणक ही है" और "जो यह छठा कल्याणक नहीं जाने हैं सिद्धांतके रहस्य ऐसे जितने होगये आचार्य" इस तरहका लिखकर भावार्थमें वारंवार छठे कल्याणकको लिखा सो यदि "विधिरागमोक्तः षष्ठ कल्याणक रूपश्चेत्यादि विषयः पूर्वंप्रदर्शितश्च प्रकारः" इस पंक्तिको देखकर लिखा होवे तो भी मायाचारीका कारण है क्योंकि इस पंक्तिसे तो आगमोक्त षष्ठ कल्याणक ठहरता है तथा "इत्यादि विषयः पूर्वं प्रदर्शितः च प्रकारः"

इन अक्षरोंसे जो पहिले चैत्यवास निषेध वगैरह विषय अतिशय विशेष करके दिखाये गये हैं उनमें ८४ आशातनाओंका निवारणादि चैत्य (मन्दिर) की विधि वगैरह बातों सम्बन्धी पूर्वमें लिखा गया है वो पूर्वोक्त बातोंके विषयोंके सम्बन्धको उन सब बातोंको यहां ग्रहण करनेके लियेही तो उपरोक्त वाक्य टीका कारने खुलासा पूर्वक लिखे है सो उन सब बातोंके विषयों सम्बन्धी "प्रकर्षे णेद मित्थमेव भवति योऽत्रार्थेऽसहिष्णु सवावदीत्विति" तथा "यो न शेष सूरीणां" इत्यादि यह दोनों पंक्ति लिखकर "अतिशय करके उपरोक्त चैत्यवास निवारणादि सम्बन्धी जो कथन किया है सो वैसेही है इसमें अन्यथा नहीं होसकता यह बात किसीको पसन्द नहीं होतो सामने आकर कथन करो" सो इस तरह चैत्यवास निवारणादि सम्बन्धी "स्कंधास्फालनपूर्वक साधितः सकल प्रत्यक्षं प्रकाशितः" तथा "यो न शेष सूरीणामज्ञात सिद्धान्त रहस्यनां लोचन पथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तां श्रुतिपथे व्रजति यातिʼʼ यह वाक्य कहे हैं सो तो निष्पक्षपाती विवेकी तत्व दृष्टिवाले अल्पज्ञ भी पूर्वापर सम्बन्ध सहित अर्थ करने वाले अच्छी तरहसे समझ सकते हैं, तिसपर भी न्यायांभोनिधिजी होकरके भी चैत्यवास निवारणादिकके सम्बन्धको टीकाकारके अभिप्रायको और पूर्वापरके पाठकी विषयको उपयोग शून्यतासे जाने बिना अथवा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी मायाचारीसे जान बूझ करके चैत्यवासके विषयको छुपा कर 'प्रकर्षे णेद मित्थमेव भवति' इसके अर्थमें 'अतिशय करके यह छठा कल्याणकही है, तथा 'योनशेषसूरीणां' के अर्थमें "जो यह छठा कल्याणक नहीं जाने है सिद्धांतके रहस्य ऐसे जितने हो गये आचार्य उनोंके कर्णपथमें तो दूररहो परन्तु लोचनपथमें

भी नहीं आया है ऐसा छठा कल्याणक कहा है" इस तरह भावार्थमें वारम्वार छठे कल्याणकको लिखके दृष्टिरागी विवेक शून्य अन्धपरंपरा मुजब चलने वाले गच्छ कदाग्रही अज्ञानी जीवोंके आगे मनमाना भावार्थ लिख दिया परन्तु इस प्रकारकी मायाचारी करके अभिनिवेशिकसे महान् अनर्थके विपाकोंको भूल गये होंगे अन्यथा चैत्यवासादि निषेधके विषयको छोड़कर आगमोक्त छ कल्याणककी सत्यबातको नवीन प्ररूपणारूप असत्य ठहरानेका ऐसा महान् अनर्थ कारी प्रयत्न कदापि न करते और खंभे ठोक कर छठे कल्याणकी प्ररूपणा करते सब पूर्वाचार्यों को अज्ञानी ठहराने सम्बन्धी श्रीजिनवल्लभसूरिजी के लिये न्यायांभोनिधिजीने लिखा सो व्यर्थ ही अज्ञानतासे महान् अनर्थ करके उन्मार्गके दोषाधिकारी बनगये परन्तु खम्भा ठोककर छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेमें सब पूर्वाचार्यों को अज्ञानी ठहरानेका लिखा सो सिद्ध नहीं होसका और मायाचारीके सब भेद खुल गये तथा 'प्रकर्षेणेदमित्थ मेवभवति' इत्यादि दोनों पंक्तियोंके भावार्थमें चैत्यवासी अज्ञानी उत्सूत्रप्ररूपक द्रव्य लिंगियों सम्बन्धी सब पूर्वापरका विषय सम्बन्धके सबी भेद भी खुल गये और—आगमोक्त छठा कल्याणक ठहरगया इसको विशेषतासे तो तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे।

और 'यो न शेष सूरीणां' इसके अर्थ में 'जितने होगये' ऐसे लिखकर सबपूर्वाचार्यों का ग्रहण किया सोभी अज्ञानताका कारण है क्योंकि 'शेष,कहनेसे तो सिद्धान्तके रहस्यको जाननेवाले तत्वज्ञानी आज्ञाआराधक शुद्ध प्ररूपणा करने वाले आत्मार्थी आचार्यों से बाकीके इसलोक स्वार्थी चैत्यवासी आचार्य नाम धारकोंका ग्रहण होता है परन्तु सब पूर्वाचार्यों का ग्रहण तो

कदापि नहीं हो सकता और खास न्यायांभोनिधिजीके भावार्थमें लिखे मुजब "नहीं जानते हैं सिद्धान्तके रहस्य एसे जितने हो गये आचार्य" इन अक्षरोंसे भी विवेक बुद्धिको स्थिर करके विचारा जावे तो सिद्धान्तके रहस्यको जानने वाले एसे जितने पूर्वाचार्य हो गये है वो सब तो कदापि ग्रहण नहीं होसकते हैं तिसपर भी सब पूर्वाचार्योंका ग्रहण किया सोतो मम जननी वंध्या समान ठहरता है क्योंकि जब ऊपरके अक्षरोंसे भी अज्ञानी ग्रहण हुए तो जितने ज्ञानी पूर्वाचार्य होगये सोतो ग्रहण करना बनही नहीं सकता और 'शेष' शब्द तो कथन करने वालेके वर्त्तमान समयका अर्थ वाला है इसलिये 'जितने होगये, ऐसा लिखकर सब पूर्वाचार्योंका अर्थ ग्रहण करके भूतकाल ठहराया सो तो प्रत्यक्ष विरुद्धता है।

और "अशेष" शब्द संपूर्ण सब पूर्वाचार्योंके अर्थ वाला है तथा 'शेष' शब्द उन पूर्वाचार्योंसे बाकीके थोड़ेसे नाम धारक आचार्योंके अर्थ वाला है सो तो अल्पज्ञ भी समज सकता है तिस पर भी न्यायांभोनिधिजी इतने बड़े सुप्रसिद्ध विद्वान् हो करके भी 'शेष' शब्दके अर्थमें "अज्ञात सिद्धांत रहस्यानां" इस प्रकार उन चैत्य वासियोंका विशेषण टीकाकारने खुलासा लिखा होने पर भी बड़ा अनर्थ करके महान् उत्तम परम पूज्य सब पूर्वाचार्योंका तथा शुद्ध प्ररूपक तत्वज्ञ क्रियापात्र उस समयके वर्त्तमानिक विद्यमान सब आचार्योंका ग्रहण कर लिया और इस प्रकारके बड़े अनर्थकोही विवेक शून्यतासे पूर्वापरका विचार किये बिना इस समय वर्त्तमान कालमें उनके गच्छवाले अपनी विद्वताके

लंबे लंबे विशेषण धारण करने वाले हो करके भी अन्धपरंपरासे चलाये जाते हैं और तत्व दृष्टिसे सत्यासत्यका निर्णय नहीं करते हैं सो भी बड़ी शर्मकी बात है।

और आगे फिर भी लिखा है कि (अब इस गणधरसार्द्ध शतकके पाठसे आपही विचारिये कि जब आपके बड़े श्रीजिनवल्लभसूरिजीने पूर्वाचार्यों को सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले ठहराके और विद्यमान आचार्योंसे निरपेक्ष होकर यह छठा कल्याणक नवीन कथन किया तो फिर किस वास्ते सिद्धान्तका झूठा नाम लेके लोगोंको भरममें गेरते हो) ऊपरके इस लेखपर भी मेरेको इतनाही कहना है कि जब उपरोक्त पाठमें प्रगटपने "आगमोक्तः षष्ठ कल्याणकः" याने मूल आगमोंमें छठे कल्याणकका कथन किया हुआ है ऐसे अक्षर खुलासाके साथ सूर्य्यकी तरह प्रकाश कर रहे हैं तिसपर भी उसको न समझकर विपरीत रीतिसे निषेध करनेवालोंको आगम सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले अज्ञानी कहे जावें तो इसमें कौनसी बुरी बात हुई सो तो आप भी इस बातमें इनकार नहीं कर सकते, तथा "योनशेषसूरीणां" यह वाक्य तो उपरोक्त चैत्यवासियोंकी-अज्ञानता, अविधि, उत्सूत्र प्ररूपणा करने तथा शास्त्रोक्त बातको न मानने सम्बंधी है इसलिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी सम्बन्धी आक्षेप रूप ऊपरका आपका लिखना अज्ञानताका सूचक व्यर्थ है। और आगमोक्त बातको भव्यजीवोंके आगे गांव गांव नगर नगर प्रति रोजीना प्रकाशित करना सो तो श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधर पूर्वाचार्य और सब साधुओंका खास कर्तव्यरूप कार्य है इसके अनुसार इन महाराजने भी चैत्यवासियोंके अन्धपरम्पराके कदाग्रहको हटानेके लिये अपनी हिम्मत बहादुरी विद्वत्ताकी सामर्थतासे

चैत्यावास निषेध पूर्वक चैत्यकी शास्त्रोक्त विधिका तथा आगमोंमें कहा हुआ छठा कल्याणकका कथन किया सो तो उपरोक्त पाठमें प्रगट अक्षरहै तिसको तो द्रव्य लोचन वाला भी अच्छीतरहसे देख सकताहै परन्तु इतने बड़े विद्वान् न्यायांभोनिधिजी बन करके भी अपने कल्पित कदाग्रहके हठको स्थापनेके आग्रहमें पड़ करके दृष्टिरागियोंसे पूजा मान्यता करानेके लिये आगमोक्त छठे कल्याणककी सत्य बातको उड़ाकर तथा द्वेष बुद्धिसे उन्मत्तकी तरह "पूर्वाचार्योंको सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले ठहराकर विद्यमान आचार्योंसे निरपेक्ष होकर यह छठा कल्याणक नवीन कथन किया" इसतरहके अक्षर लिखके छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेका लिखते कुछ शर्म भी न आई। हा! अतीव खेदः? अपनी पूजा मानता तथा विद्वत्ता और गच्छ कदाग्रहके हठवादको जमानेके लिये कितना बड़ाभारी अनर्थ कर दिया और ऐसे महान् अनर्थसे अपने और अपनी अंधपरंपराकी मायाजालमें फँसनेवाले दृष्टिरागी भद्रजीवोंके संसारभ्रमण दुर्लभ बोधिपनेके दीर्घकर्मोंका कुछभी विचार नहीं किया यही तो विशेषरूपसे बाह्य आडंबरियोंकी पाखंडपूजारूप गडुरीह प्रवाही कलयुगकी महिमाके सिवाय और क्या होगा सो इसको आत्मार्थी श्रीजिनाज्ञाराधनाभिलाषी निष्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञ सज्जन स्वयं विचार लेना।

और "विद्यमान आचार्योंसे निरपेक्ष होकर यह छठा कल्याणक कथन किया" इसपर भी मेरेको इतना ही कहना है कि श्रीजिनवल्लभसूरिजीमहाराजके समयमें चीतोड़नगरमें द्रव्यलिङ्गको धारणकरनेवाले उत्सूत्रभाषी और कल्पित आलंबनोंसे अविधि रूप उन्मार्गमें भक्तोंसमेत आप चलनेवाले चैत्यवासी आचार्य थे

सो उन्होंसे विरुद्ध होकर अंधपरंपराकी मायाजालके कदाग्रहको हटानेके लिये इन महाराजने चैत्यवासियोंकी श्रीजिनाज्ञा विरुद्धकलिपत बातोंका निषेध करके शास्त्रानुसार आज्ञामुजब विधिमार्गकी सत्यबातोंको भव्यजीवोंके उपकारके लिये प्रगटकरी उसको आपलोगोंने अच्छा नहीं समझकर विद्यमान चैत्यवासियोंके आचार्यों से निरपेक्ष याने विरुद्ध होनेका लिखा इससे तो यही सिद्धहोता है कि उन चैत्यवासियोंकी उत्सूत्ररूप कल्पित बातोंको आप अच्छी समझते हैं तबही तो शास्त्रोंके रहस्यको समझे बिना उन चैत्यवासियोंकी तरह दो श्रावण होने पर शास्त्रप्रमाणसे ५० दिनेपर्युषणाकरनेका छोड़कर ८० दिने प्रत्यक्ष विरुद्धातासे करते हो तथा शास्त्रोक्त श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणकोंका निषेध करके उत्सूत्रभाषण करनेवाले बनते हो और गच्छ कदाग्रहके फंदमें भोलेजीवोंको फंसातेहो इसलिये इन महाराजका सत्यकथन भी आपको अच्छा नहीं लगा इससे विपरीत होकर, कुविकल्प उठाया अन्यथा 'विद्यमान आचार्यों से निरपेक्ष होकर, ऐसे अक्षर लिखके चीतोड़के चैत्यवासियोंके विरुद्ध होनेका कदापि न लिखते क्योंकि इन महाराजने यहबात चीतोड़में ही प्रगट करी है और उस समय चीतोडमें चैत्यवासियोंकी मनमानी बातोंमें दृष्टिरागी विवेक शून्य श्रावक लोक उन्होके फंदमें पूरे पूरे फंसगये थे इससे उन्होंकी अविधि प्रचाररूपी मिथ्यात्वके अन्धकारकी मानों राजधानी जमीहुई थी उसको इन महाराजने वहां विधि मार्गकी श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्यबातोंकों प्रगटकरने रूप सूर्यके प्रकाशसे उखेड़ डाली और उस समय वहां शुद्ध क्रियापात्र सत्य उपदेशक उग्रविहारी आचार्यों का अभाव था इसलिये "विद्यमान आचार्यों से" इन अक्षरोंसे उन चैत्यवासियोंके सिवाय आत्मार्थी

आचार्य ग्रहण नही होसकते हैं, बड़ेही अफसोसकी बात है कि गच्छकदाग्रहमें फंसेहुए प्राणी अपनी विद्वत्ताकी मिथ्या बातको जमानेके लिये सत्यबातको भी खोटी ठहराकर अपने पक्षकी खोटी बातको सत्य करनेके लिये कैसा अनर्थ करते हैं और ऐसा अनर्थसे संसार वृद्धिका भय नहीं करते हैं खैर।

अब आत्मार्थी विवेकी पाठकगणसे मेरा यही कहना है कि उपरकी टीकाके पाठमें नवीन छठा कल्याणक प्ररूपणकरने सम्बन्धी एक अक्षरमात्र शब्दका गंध भी नहीं है तिसपर भी नवीन छठेकल्याणाकी प्ररूपणा करनेका न्यायांभोनिधिजीने वृथाही श्रीजिनवल्लभसूरिजीको दूषण लगाया सो सर्वथा मिथ्या है इसलिये ऐसा मिथ्यालिखकर शास्त्रानुसारकी सत्यबात परसे भद्रजीवोंकी श्रद्धा भ्रष्टकरके श्रीजिनाज्ञाके विराधक बनातेहुए मिथ्यात्वमें गेरनेका बडाभारी महान् अनर्थ करने वाले तो पर लोक चले गये परन्तु मायावृत्तिसे जिसके नामसे, याने-श्रीअमरविजयजी तथा श्रीकांतिविजयजीके नामसे 'जैन सिद्धान्त समाचारी' नामक पुस्तक प्रगट हुई है वे लोग तो अभी विद्यमान है तथा न्यायांभो निधिजीके समुदायमें भी तो— सूरि, उपाध्याय, गणी, प्रवर्तक, पन्यास, पण्डित और न्याय रत्न विद्या सागरादि पदके धरने वाले जगत् पूज्य गीतार्थ जैसी बाह्य वृत्तिको धारण करने वालोंकी तो बहुतही समुदाय विद्यमान है सो यदि अपने गुरु न्यायांभोनिधिजीको गीतार्थ सत्यवादी शुद्धप्ररूपक समजते होवे तो उपरोक्त टीकाके पाठसे नवीन छठे कल्याणककी प्ररूपणाकरनेका सिद्ध कर दिखलावे अन्यथा अपने गुरुको मिथ्यावादी उत्सूत्रप्ररूपक जाने तो अपने गुरुके गच्छके कदाग्रह अभिमानको त्याग करके सत्य बातको ग्रहण करें और जमालीके शिष्योंकी तरह अपना आत्म

कल्याण करते हुए भव्यजीवोंको सत्यबात ग्रहण कराकर संसार भ्रमण रूपी खोटी श्रद्धाकी खाडसे उद्धार करनेके अनन्त लाभको प्राप्त करें, जिसमेंही:निजपरकाहित है परन्तु अभिमान झूठा हठवादसे तो संसार वृद्धिके सिवाय और कुछ भी सार न मिलेगा, गुरु गच्छके कदाग्रहसे मनुष्य जन्म वृथा गमाना उचित नहीं है।

और न्याय विशारद सुप्रसिद्ध महोपाध्याय श्रीयशोविजयजीने श्रीसीमंधरस्वामीजीके स्तवनमें "जिमजिम बहुश्रुत बहुजन संम्मत, बहु शिष्ये परिवरियो ॥ तिमतिम जिन शासन नो वयरी। ते नवी कबुये तरियो" इस गाथाको जो कलिजुगकी व्यवस्था देखकरके कही है सो तो न्यायांभो निधिजीने पर्युषणा तथा सामायिक और कल्याणकादि विषयोंमें उत्सूत्र भाषणोंके संग्रहसे और कुयुक्तियोंके विकल्पोसे ढूंढक मतके त्यागी वैरागी सत्योपदेशक बाह्य आडम्बरके भरोसे भोले जीवोंको श्री जिनाज्ञाकी विराधनके रस्ते चलानेके कर्तव्योंसे प्रत्यक्ष प्रमाणता युक्त सत्य करके दिखाई हे परन्तु अब आत्मार्थियोंको उत्सूत्र प्ररूपणाकी बातोंकों त्याग करके श्रीजिनाज्ञा मूजिब शास्त्र प्रमाण युक्त इस ग्रन्थमें कथन करी हुई सत्य बातोंको शीघ्रतासे ग्रहण करके अपनी शुद्ध श्रद्धा पूर्वक आत्म कल्याणके कार्यका उद्यम सफल होवे ऐसा करना चाहिये।

और "आगमोक्तः षष्ट कल्याणकः" ऐसे अक्षर प्रत्यक्षपने खुलासा पूर्वक उपरोक्त पाठमें होनेपर भी "स्कंधा स्फालनपूर्वक साधितः" तथा "योनशेषसूरीणामज्ञात सिद्धांत रहस्यानां" इत्यादि इन दोनों पंक्तियोंके भावार्थको और चैत्यबासियों सम्बन्धी पूर्बापरके बिषय सम्बन्ध को (विवेक बुद्धी से समझे बिना या अभिनिवेशिककी मायाचारीसे) छोड़करके

ऊपरकी दोनों पंक्तियोंके अर्थमें ऊटपटांग मन कल्पना मुजब भावार्थमें लिखकर उन शब्दोंके ऊपर अपना कुविकल्प उठाया याने उपरोक्त नाम धारक चैत्यवासी आचार्यों की उत्सूत्रतासे अविधिरूप उन्मार्गकी कदाग्रही प्ररूपणाको हटानेके लिये, शास्त्रोक्त छठे कल्याणकके स्वरूपको न समझने वाले, तथा मन्दिरजीकी ८४ आशातना निवारणादि पूर्वक विधिसे वर्ताव करने सम्बंधी शास्त्रोंमें प्रत्यक्ष पाठ मौजूद होनेपर भी श्रीमन्दिरमें रहते हुए ८४ आशातना करने वाले उन चैत्यवासियोंको श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने सिद्धान्तके रहस्यको न जानने वाले ठहराये तथा भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञानुसार शास्त्रोक्त विधिमार्गकी सत्यबातोंमें शुद्धश्रद्धाकी प्राप्ति पूर्वक दृढ़ता होनेके लिये अपनी विद्वत्ताकी हिम्मत शरीरप्रकृतिकी चेष्टासे खम्भा ठोकके ऊपरकी शास्त्रोक्त बातोंको सबके सामने विशेषतासे प्रकाशित करी जिसके तात्पर्यार्थको तो समझ सके नहीं इसलिये ऊपरकी दोनों पंक्तियोंके अक्षरोंको देख कर अपने अंतर मिथ्यात्वकी अज्ञानताका कुविकल्प भद्रजीवों पर गेरना चाहा कि, ऐसे शब्द क्यों कहे परन्तु विवेक बुद्धिसे इतना नहीं विचार किया कि श्रीजिनाज्ञाकी विराधना करके उत्सूत्र भाषणोंपूर्वक अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे भव्यजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेवालोंके पाखण्डको हटानेके लिये इन महाराजके उपरोक्त कथनसे भी विशेष ज्यादा शब्द कहे जावे तोभी कोई हरजेकी बात नही है। देखिये खास न्यायांभोनिधिजीनेही उत्सूत्रप्ररूपणा करने वालों सम्बन्धी अपने बनाये "अज्ञान तिमिरभास्कर" ग्रन्थके पृष्ठ २९४।२९५ के लेखमें कैसे कैसे शब्द लिखे हैं सो लेखे भी इसोही ग्रन्थके पृष्ठ ७९।८० में छप चुका है और ढूंढकमतके साधुका वेषधारक जेठमल्लने

श्रीजिनप्रतिमाजीका उत्थापन वगैरह विरुद्धाचरणकी बातोंको स्थापन करनेके लिये उत्सूत्रभाषणोंसे संसार भ्रमण, दुर्लभ-बोधिपनेके दीर्घकर्मोंका भय न रखके भद्रजीवोंको मिथ्यात्वकी भ्रमजालमें फंसानेके लिये आगमोंके पाठोंका उलटाही विपरीत अर्थ करके कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे अनेक तरहके उटपटांग समकीतसार नामक परन्तु वास्तवमें उत्सूत्रोंकी अंधखाडकी पुस्तकमें लिखेथे, जिसका प्रति उत्तरमें भव्यजीवोंको सत्यबातकी प्राप्तिरूप उपकारके लिये "सम्यक्त्व शाल्योद्धार" नामा ग्रन्थमें खास न्यायांभोनिधिजीने उस जेठमल्लके तथा अन्य ढूढ़ियोंके जूठे हठवादकी कुयुक्तियोंके पाखडको हटानेके लिये "अज्ञानी, महामिथ्यात्वी, मूढमति, महानिन्हव, वैश्यापुत्र-समान, पशुतुल्य, दिनमें अंधे, अक्कलके दुश्मन, मूर्खशिरोमणी, महा दुर्भवी, मलेच्छ सरीखे पंथके मानने वाले, अनन्त संसारी, हीण पुण्योये, दासी पुत्र तुल्य, जेठेके बापके चोपड़ेमें लिखा है" इत्यादि अनेक तरहके अनुचित कटुक शब्द बहुत जगहों पर लिखे हैं तथा जिन मन्दिर कराने वाला श्रावक १२ वें देवलोक जावे इसका निषेध करनेके लिये जेठमलने अपने अन्तरके गाढ मिथ्यात्वके उदयसे दुर्बुद्धिसे भोले जीवोंको अपनी मायाजालमें फंसानेके लिये जिन मन्दिर बनाने वालेको नरक लिख दी जिसकी समीक्षामें सम्यक्त्व शल्योद्धारके पृष्ट १८७ पंक्ति ६ से १० तक "जेठमलने उत्सूत्र लिखते हुए जरा भी विचार नहीं करा है जे कर जेठमल ढूंढक वर्तमान समयमें होता तो पण्डितोंकी सभामें चर्चा करके उसका मुंहकाला कराके उसके मुखमें जरूर शक्करदेते क्योंकि जूठ लिखने वालेको यही दण्ड होना चाहिये" इस तरहके शब्द लिखे हैं और इसी पृष्टमें ढूंढिये ढूंढणीये उनके सेवक सबको नरकमें जानेका

लिखा है और पृष्ठ २५४।२५५ में भी कितने ही अभाषणीय शब्द लिख दिये हैं अब विवेकी निष्पक्षपाती पाठक गणको न्यायपूर्वक धर्मबुद्धिसे विचार करना चाहिये कि न्यायांभोनिधिजीने ढूंढकोंके लिये कैसे कैसे शब्द लिख दिये जिसपर तो कोई भी कुविकल्प किसीके दिलमें न उठा और श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने चैत्यवासियोंके कल्पित आलंबनोंका हठवादके मिथ्यात्वकी उत्सूत्रता और स्वार्थसिद्धकी प्रमादताका अभिनिवेशिकको हटानेके लिये अपने शरीर प्रकृति स्वभावकी चेष्टासे अपने कथनमें शास्त्रोक्त प्रमाणोंकी सत्य दृढता भव्य जीवोंको दिखाकर श्रीजिनाज्ञाकी प्राप्ति करानेके लिये शास्त्रोक्त बातोंको न समझने वाले और अविधिसे उन्मार्ग चलानेवाले उन चैत्यवासियोंको सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले ठहराकर खम्भा ठोकते हुऐ सत्यबातोंको सबके सामने प्रकाशित करी, जिसपर अपना कुविकल्प उठाकर भद्रजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये चैत्यवासियों सम्बन्धी शास्त्रकारके अभिप्रायके अर्थकी जगहपर सब पूर्वाचार्यों को लिखके विद्यमान गीतार्थ शुद्ध उपदेश देने वाले आत्मार्थी सब आचार्योंको लिख दिया और आगमोक्त छठे कल्याणकको जबराइसे खंभे ठोककर नवीन उत्सूत्र प्ररूपणरूप छठे कल्याणक कोठहरा दिया हा अति खेदः ॥ "खलः सरस्व मात्राणि, पर छिद्राणि पश्यति ॥ आत्मनो बिल्वमात्राणि, पश्यन्नपिन पश्यति" की तरह करके व्यर्थ ही निजपरके संसार वढानेके लिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके कथनके रहस्यका तात्पर्यार्थके भावार्थको पूर्वापर सम्बन्ध सहित समझे बिना अपनी विद्वत्ताकी बड़ा दूरी दृष्टिरागी विवेकशून्य अन्धभक्तोंमें

दिखाकर कितना बड़ा महान् अनर्थ करके मिथ्यात्वका कारण किया खैर।

अब श्रीजिनाज्ञाभिलाषी आत्मार्थी विवेकी पाठक गणसे हमारा इतनाही कहना है कि, उपरोक्त पाठके बनानेवाले टीकाकार महाराजने चैत्यवासियोंके लिये पूर्वापर सम्बन्ध सहित ऊपरके पाठका भावार्थ सम्बन्धी "चैत्यादि विषयः पूर्व प्रदर्शितश्चप्रकारः" ऐसा खुलासा लिखदिया था तथा उपरके पाठकी व्याख्याकरनेकी आदिमें ही पूर्वकी गाथाके प्रसङ्गका इस गाथामें सम्बन्ध करनेका लिखा था जिसको तो इन्होंने जड़मूलसे ही उड़ा दिया और ग्रन्थकारके अभिप्राय विरुद्ध होकर आगे पीछेके सम्बन्धको तोड़कर बिना सम्बन्धसे १ गाथाको लिखके उसका उलटा अर्थ करके भोलेजीवोंको अपनी मायाजालमें फंसानेके लिये श्रीजिनाज्ञाकी विराधनाका भय न करते हुए कितना बड़ा महान् अनर्थ करके आगमोक्त छठे कल्याणककी सत्यबातको उत्सूत्ररूप असत्य ठहराके श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज पर छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेका दोष (कलङ्क) लगादिया और पर्युषणा, कल्याणक, सामायिकके विषयोमें भी शास्त्र प्रमाणोंको उत्थापतेहुए कितनेही उत्सूत्र लिखके कुयुक्तियोंसे भद्रजीवोंको उन्मार्गके भ्रममें गेरनेके लिये अपनी बुद्धिकी चातुराई खर्च करनेमें किसी तरहसे न्यूनयता न करके श्रीमद्यशोविजयजीकी कथन करीहुई उपरोक्त गाथाको सार्थक करी तथा श्रीजिनवल्लभसूरिजीको झूठा दोष लगाया सो ऐसे कर्तव्योंसे प्रत्यक्षपने दीर्घ संसारीपनेके लक्षण मालूम होते हैं तिस पर भी शास्त्रप्रमाणोंको उत्थापकर उत्सूत्रोंसे कुयुक्तियों करके मिथ्यात्वका कारण

करनेवालोंको भी हमतो सम्यक्त्व शल्योद्धारके जैसे लोक विरुद्ध अनुचित शब्दोंको लिखने अच्छे नहीं समझते हैं।

और 'आगमोक्तः षष्ठ कल्याणकः' यह वाक्य ऊपरके पाठमें विद्यमान है याने श्रीकल्पसूत्र तथा श्रीआचारांगजीसूत्र और श्रीस्थानांगजीसूत्र वगैरह शास्त्रोंमें छठे कल्याणकका प्रत्यक्षपने कथन किया हुआ है (इसके प्रमाणमें इसी विषयकी आदिमेंही अनेक शास्त्रोंके प्रमाण मूलपाठ सहित छप चुके हैं) तिसपर भी न्यायांभोनिधिजीने अपना कल्पित पाखण्ड जमानेके लिये (यह छठा कल्याणक नवीन कथन किया तो फिर किस वास्ते सिद्धान्तका झूठा नाम लेकर लोगोंको भ्रममें गेरते हो) इस तरहका लिखकर नवीन छठे कल्याणकको प्ररूपणा करनेका ठहराया और छठे कल्याणककी सिद्धि सम्बन्धी जो जो शास्त्रोंके पाठ "शुद्ध समाचारी प्रकाश" नामा पुस्तकमें, दिखाये गये थे उन शास्त्र पाठोंको लोगोंको भ्रममें गेरने वाले जूठे ठहराये सोतो खास आपही निजमें उन शास्त्रपाठोंको उत्थापन करके उत्सूत्रभाषणसे कुयुक्तियोंके विभ्रममें भोले जीवोंको भ्रमाने वाले बने है नतु 'शुद्ध समाचारी प्रकाश' वाले क्योंकि उन्होंने तो जो जो पाठ छठे कल्याणककी सिद्धिके लिये लिखे हैं सो सब सत्य है परन्तु छठे कल्याणकको निषेध करने वालेही श्रीजिनाज्ञाके विराधक बनते हैं सोतो इस ग्रन्थको वांचनेवाले विवेकी तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेगें—

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीने लिखा है कि (पृष्ठ ८८ पंक्ति ७ में तपगच्छीय एक कुलमण्डनसूरिजीका जो उदाहरण दिया है सोतो तुमारे वडोकाही अनुकरण किया है ॥ पूर्वपक्ष ॥ श्रीकुलमण्डनसूरिजीने अनुकरणही किया है यह कैसे तुमजाम

लेवे ॥ उत्तर ॥ हे मित्र इतनातो विचार करणा चाहिये कि, जब पहिले श्रीजिनवल्लभसूरिजीने सभी आचार्योंसे निरपेक्ष होके नवीनही छठे कल्याणकको दिखाया तो फिर काहेको तर्क करते हो) इस तरहसे लिखकर जो शुद्ध समाचारी प्रकाशकी पुस्तकमें छ कल्याणकाधिकारे पृष्ठ ८७।८८ में श्रीतपगच्छके श्रीकुलमन्डन सूरिजी कृत श्रीकल्पावचूरि ग्रन्थका पाठ दिखाया (तथा और भी कितनेही शास्त्र प्रमाणोंसे छठे कल्याणकको सिद्ध करके दिखाया) जिसपर न्यायांभोनिधिजीने अपनेपूर्वज श्रीकुलमण्डन सूरिजीने छठे कल्याणकको अपने बनाये ग्रन्थमें लिखा उसको अपने पूर्वजका वाक्य मान्य करना तो दूर रहा परन्तु विशेषतासे उसका निषेध करनेके लिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजका अनुकरण करनेका श्रीकुलमण्डनसूरिजी पर आक्षेप लिखकर छठे कल्याणकके प्रमाण करनेकी बातको उड़ा दिया सो तो प्रत्यक्ष मायाचारीकी ठगाईका कारण है, क्योंकि जो शास्त्रानुसार सत्य बातका कथन होवे-उसके कथन करनेमे तो सब कोई अनुकरण करते हैं। देखो श्रीतीर्थंकर महाराजके कथनका अनुकरण श्री गणधर महाराज तथा पूर्वधर पूर्वाचार्यादि सभी परम्परा-गमसे-निजपरके आत्म कल्याणके लिये एक एकका अनुकरण करते आये हैं तथा ऐसेही चलता है सोही चलेगा परन्तु अविसंवादी जैनप्रवचनमें अन्यमतियोंकी तरह एक एकके विरुद्ध मनमानी गप्पोंकी बातें लिखनेका तो आत्मार्थी जैना-चार्योंमें कदापि नहीं हो सकता है इसलिये-जैसे श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने छ कल्याणकोंकी प्ररूपणा मूल आगमोंमें कथन करी तैसेही श्रीपूर्वाचार्योंने भी आगमोंको व्याख्याओंमें

लिखा उसीके अनुसारसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने भी छ कल्याणकोंकी प्ररूपणा करी तो यदि इसबातमें इन महाराज का आपके कहने मुजब आपके पूर्वजने अनुकरण किया भी मान लिया जावे तो भी आपकी कल्पनासे अनुकरणके बहाने आप छठे कल्याणकका निषेध करना चाहते हो तो न्यायानुसार तो कदापि नहीं हो सकता है।

और हमारी समज मुजब तो अनुकरण करने सम्बन्धी आपका लिखना भद्रजीवोंको भ्रमानेवाला मायावृत्तिका ठहरता है क्योंकि हमारे पूर्वाचार्योंने तो आगमानुसार अधिकमासकी गिनती वगैरह अनेक बातोंको मान्यकरके अपने बनाये ग्रन्थोंमें लिखी है सो जो तुम्हारे पूर्वजने हमारे पूर्वजका अनुकरण किया होता तो अधिक मासकी गिनती वगैरह जो जो बातें हमारे पूर्वजोंने मानी सो सो बातें तुम्हारे पूर्वज भी मान लेते, तबतो तुम्हारा अनुकरणका लिखना ठीक हो सकता परन्तु तुम्हारे पूर्वजने वैसा तो किया नहीं और कोई कोई बातमें अपने पूर्वाचार्य मानते होंगे सो वैसा किया तो प्रत्यक्ष मालूम होता है इसीलिये हमारे पूर्वाचार्यका अनुकरण न करते अपनेको अच्छालगा वैसा कुलमण्डनसूरिजीने अपनेग्रन्थमें लिख दिया होगा सो छ कल्याणक अपनेको उचित लगे होंगे तबी लिखे और अधिक मासको गिनतीमें लेना आगमानुसार है सोही खास श्रीकुलमण्डनसूरिजीने भी अधिक मासकी गिनतीसे १३ मासोंके अर्थवाला अभिवर्द्धितसम्बत्सर लिखा होनेपर भी पूर्वापर विरोधका और आगमोंके प्रत्यक्ष प्रमाणोंके उत्थापनका विचार न करके उसकी गिनती करनेका निषेध करनेके लिये "विचारामृत संग्रह" नामा ग्रंथमें खूब कोशिश करी।

अब विचार करना चाहिये कि हमारे पूर्वजका अनुकरण आपके पूर्वज करते तो अधिक मासकी गिनती निषेध कदापि न करते परन्तु करी इससे भी सिद्ध होता है कि अनुकरण नहीं किया किन्तु अपना रुषा किया है इसलिये अनुकरणके बहाने मायाचारीसे छठे कल्याणककी सिद्धिकी बातको उड़ाना चाहा सो प्रत्यक्ष मिथ्या ठहर गया इससे छठे कल्याणकका निषेध करना छोड़ कर अपने पूर्वजके लिखे मुजब छठे कल्याणकको मान्य करो तो अच्छा है और श्रीकुलमण्डनसूरिजीने छ कल्याणक लिखे परन्तु उसको तुम्हारे किसी भी पूर्वाचार्यने निषेध न किया तथा उस ग्रन्थको अप्रमाणभी न ठहराया इससे भी सिद्ध होता है कि कुल मण्डन सूरिजीके समयमें तुम्हारे सबी पूर्वज तथा कुलमण्डनसूरिजीके पूर्वज पूर्वाचार्य सबी छ कल्याणक मानने वाले थे अन्यथा कोई भी उसका निषेध अवश्य करते सो न किया ॥ तथा यह बात तो स्वयं सिद्धही है, कि हरेक गच्छके आचार्यादि जो कोई विवेक बुद्धिवाले श्रीकल्पसूत्रादि शास्त्रोंके प्रत्यक्ष पाठोंका अर्थको समजने वाले कदाग्रह रहित होंगे सोतो सभी छ कल्याणक मान्य करेंगे क्योंकि शास्त्रोंमें बहुत जगहोंपर खुलासा लिखा है ॥ तथा वस्तु, स्थान, कल्याणक, तीनों शब्द पर्याय वाची एक अर्थको कथन करने वाले हैं इसलिये कुल मण्डन सूरिजीके पूर्वाचार्य तथा उनके समयमें वर्तमानिक तपगच्छके समुदाय वाले आचार्यादि सबी छ कल्याणक मानते होवे उसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है अतएव न्यायांभोनिधिजीकी साधुमंडलीसे तथा श्रीतपगच्छके समुदायसे मेरा यही कहना है कि जब श्रीतीर्थंकर गणधर महाराजोंके कथन किये हुए छ कल्याणकोंको तपगच्छके खरतरगच्छके वगैरहसभी आत्मार्थी

शास्त्रपाठोंके तात्पर्यार्थको, याने-सिद्धान्तके रहस्यको जानने वाले सभी आचार्यादि छ कल्याणक मानते आये तैसेही तपगच्छके कुलमंडनसूरिजी वगैरहोंने भी छ कल्याणक लिखे सो एक एकके अनुकरण मुजब कथन करना सो तो परम्परागम्म कहा जाता है इसलिये आप लोगोंको भी छ कल्याणकके निषेध करनेकी कुयुक्तियों करनेके हठवादको छोड़कर उत्सूत्रप्ररूपणाके पापसे बचनेके लिये शास्त्रानुसार आपके पूर्वजोंके कथन मुजब छ कल्याणक मान्य करने चाहिये जिससे शास्त्र पाठोंके उत्थापनके तथा पूर्वाचार्योंकी अवज्ञाके दूषणसे संसार वृद्धिके कारणका वचाव होकर निजपरके आत्म कल्याणमें उद्यम करनेका अवसर मिले और उसकी सफलता प्राप्त होनेका कारण आपके बने आगे आपकी इच्छा।

और ऊपरके लेखमें अनुकरण करनेका लिखके पूर्व पक्ष उठाकर उसके उत्तरमें श्रीजिनवल्लभसूरिजीपर आक्षेप करके वोही आक्षेपकी बात अपने पूर्वजपर गेरनेका लिखा सो तो ऊपरकेलेखसे न्यायांभोनिधिजीकी अज्ञानताके परदोंके सबभेदको पाठक गण स्वयं समज सकेंगे-क्योंकि श्रीजिनवल्लभसूरिजीका सत्य-वातमें शास्त्रानुसार कथनका अनुकरण श्रीकुलमण्डनसूरिजीने किया सो शास्त्रानुसार सत्यबात इन्होंसे मंजूर न होसकी उससे कुविकल्प उठाकर भद्र जीवोंको भी भरमाये और पूर्वपक्ष उठाना भी मायावृत्तिकी अज्ञानताका सूचक है क्योंकि खरतर गच्छवाले ऐसा पूर्वपक्ष कदापि नहीं उठा सकते हैं इसलिये पूर्वपक्षका उठाना और उसका उत्तरमें मनमाना ऊटपटाङ्ग गप्प लिखना सब व्यर्थ है।

और आपके पूर्वज सम्बन्धी अब मेरा तो इतनाही कहना है कि चाहेतो हमारे बड़े पूर्वज श्रीजिनवल्लभसूरिजीके शास्त्रोक्त छ

कल्याणकके सत्य कथनका अनुकरण करके आपके बड़े पूर्वज श्रीकुलमण्डनसूरिजीने अपने बनाये ग्रन्थमें छ कल्याणक लिखे ऐसा आप मानो, या अपनी रुची मुजब छ कल्याणक लिखे मानो, वा अपने तपगच्छके पूर्वाचार्योंके माने मुजब परम्परागमसे लिखे मानों अथवा इस बातमें श्रीजिनवाणीको मान्य करके आगम प्रमाणानुसार छ कल्याणक लिखे मानो सो चाहे जिस तरहसे मान्य करो यह तो आपकी खुशीकी बात है परन्तु शास्त्रानुसार छ कल्याणक थे सोही आपके पूर्वजने लिखे है इसलिये श्रीकुलमण्डनसूरिजीके छ कल्याणक लिखने सम्बन्धी इस सत्य कथनको जो तुम्हारेमें भी शास्त्रप्रमाणानुसार सत्य बातको प्रमाण करनेरूप आत्मार्थीपना होतो युक्ति पूर्वक न्यायानुसार शास्त्र सम्मत छ कल्याणकोंकी सत्य बातको मान्य करनीही पड़ेगी, न्याय मुजब तो किसी तरहसे आप इस बातको कदापि निषेध नहीं कर सकते, तिस पर भी अपनी खोटी बुद्धिके उदयसे श्रीजिनवाणीरूप आगम वचनके छ कल्याणकोंको न मानकर उत्सूत्रोंकी कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे इस सत्य कथनका भी निषेध करनेके लिये अभिनिवेशिकका कदाग्रहको न छोड़ते हुए श्रीजिनवल्लभसूरिजीका अनुकरणकाही बहाना लेकर श्रीकुलमण्डनसूरिजीको भी उसी मुजब दोषी मान बैठों, तो अपनी गुरु परम्परासे इनका नाम निकाल दो क्योंकि आपकी खोटी बुद्धिकी समझ मुजब तो आप श्रीजिनवल्लभसूरिजीको सब पूर्वाचार्योंको अज्ञानी ठहराने वाले तथा संघा ठोककर जबराईसे उत्सूत्ररूप नवीन छ कल्याणककी प्ररूपणा करने वाले आप मानते हो और फिर भी आप इन महाराजकाही अनुकरण करनेवाले अपने पूर्वज श्रीकुलमण्डनसूरिजीको भी कहते हो इससे तो आपके पूर्वज भी

आपके पूर्वाचार्यों को तथा अन्य सब पूर्वाचार्यों को अज्ञानी ठहरानेवाले व उत्सूत्ररूप छ कल्याणक लिखनेवाले आपके लेखसे ठहरगये, तो अब यहांपर विचारनेकी बात है, कि सब पूर्वाचार्यों को अज्ञानी ठहरानेवाले तथा उत्सूत्रलिखनेवाले कुलमण्डनसूरिजीको न्यायांभोनिधिजीकी मंडलीवाले विद्वान्‌जन अपनी गुरु परम्परामें कदापि रहने देवे यह तो नहीं बन सकता इसलिये अब विद्वानोंके आगे हास्य जनक अपनी कुबुद्धिकी ऐसी ऐसी कुयुक्तियें करना छोड़ कर, या तो शास्त्रानुसार छ कल्याणक मान्य करो या कुलमंडनसूरिजीको अपनी गुरु परम्परासे निकालो।

और अपनी समझ मुजब अपने लिखे लेखसे ही अपने पूर्वज, सब पूर्वाचार्यों की आशातना करने वाले उत्सूत्रके दोषी ठहर जावें तिसपर भी उनको अपने बड़े पूर्वज गुरुपनेमें मानते हैं सोभी बड़ी शर्म की बात है और यदि इन महाराजको अपने पूर्वज गुरु उत्तम पुरुष पनेमें मान्य रखो तो इनपर ऐसा बड़ा भारी दोष लगानेका आक्षेप लिखा सो उनका प्रगटपने मिच्छामि दुक्कडं देकर छ कल्याणककी सत्यबातको मान्य करलो, अन्यथा छ कल्याणक भी मान्य न करोगे और अपने पूर्वजको हमारे पूर्वजका अनुकरण करनेवालेभी कहोगे तबतो 'ममजननी वंध्यावत्' की तरह विवेकी सज्जनोंके आगे आपका लिखना बाल लीलाका ख्याल मुजब आत्मार्थियोंको प्रत्यक्षपने स्वयं ही त्यागने योग्य मालूम हो जावेगा, और इन महाराजको अपनी गुरु परम्पराका समुदायसे निकालना मान्य करो तो 'जैनतत्वादर्श' वगैरह पुस्तकोंमें इनको उत्तम पुरुषपनेमें मान्य करके लिखा है जिसका सुधारा सम्बन्धी वर्तमानिक पत्रोंद्वारा जाहिर खबर (नोटिस) निकालना पड़ेगा और इन महाराज संबंधी ऐसा करनेमें भी नदीसे समुद्रमें गिरने जैसी विद्व-

स्थना होगी अर्थात् जैसे ढूंढियोंने तो अपना कदाग्रह जमाकर अपना अलग नवीन मत निकालनेके लिये जिनप्रतिमाको तथा पञ्चाङ्गीरूप जिनवाणीको और पूर्वधरादि सब पूर्वाचार्योंको मानना उठा दिया, तैसेही आप लोगोंको भी अपना कदाग्रह जमानेके लिये उनसे भी अधिक करना पड़ेगा याने श्रीऋषभदेवजी आदि २३ तीर्थंकर महाराजोंने तथा गणधरोंने और पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने मूल सूत्रादि पञ्चांगीके अनेक शास्त्रोंमें छ कल्याणक कथन किये है और आप लोग छ कल्याणकोंका मानना उठाते हो इससे छ कल्याणकके कथन करने वालोंकों भी नहीं मानने अप्रमाण ठहरानेकी आपत्ति आती है, इसको खूब दीर्घ दृष्टिसे विवेक बुद्धि पूर्वक विचार करके छ कल्याणकोंको नहीं माननेका कदाग्रह छोड़ो, नहीं तो इनके निषेधसे इनके कथन कर्ताओंको प्रमाण माननेका उठ जानेसे इन महाराजोंके विरुद्ध कदाग्रह जमानेके मिथ्यात्वके बड़ेही दोषके बोझेसे कदापि दूर नहीं होसकोगे इस लिये यदि मिथ्यात्वसे संसार भ्रमणका भय लगता हो तो छ कल्याणकोंको मान्य करो और निषेधके लिये जो जो अनर्थ किये जिसकी आलोचनासे आत्मशुद्ध करके भव्य जीवोंको शुद्धमार्गका दर्शाव पूर्वक निजपरका आत्म कल्याण करो आगे इच्छा आपकी है।

और आगे फिर भी लिखा कि (हे मित्र जब इस छठेकल्याणककी आपको जडता सिद्धकर दिखाईतो फिर आपका जितना प्रयास है सोतो स्वतः ही व्यर्थ है) न्यायांभोनिधिजीके इन अक्षरोंपर भी मेरेको इतना ही कहना है कि छठे कल्याणककी तो जडता कदापि सिद्ध नहीं हो सकती है परन्तु श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी कथनकरी हुई छठे कल्याणककी सत्यबातको जडता कहनेवाले न्यायांभोनिधिजी वगैरह किसीको

श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी तथा अपने पूर्वाचार्यों की आशातना करतेहुए गच्छकदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके उदयसे दीर्घसंसार और दुर्लभबोधिपनेका कारण करने जैसा महान् अनर्थ करते हुए लज्जा भी नहीं आई हा अतीवखेद ? खेद ? महा खेद ?? जो विद्वत्ताके अभिमान रूपी अजीर्णतासे श्रीतीर्थंकर महाराजोंकी कथन करीहुई आगमोक्त छठे कल्याणककी सत्यबातको अन्तरगाढमिथ्यात्वीके सिवाय तो जडता कोई भी जैनी नाम धरानेवाले भी कदापि न कहेगे इसबातको पक्षपात छोडकर तत्वदृष्टिसे अच्छीतरहसे विचारनी चाहिये ।

और श्रीजिनाज्ञाभिलाषी सत्यग्राही विवेकी सज्जनोंसे मेरा यही कहना है कि "स्कंधास्फालन पूर्वक साधितः" तथा "यो न शेष सूरीणां" इत्यादि इन दोनों वाक्योंपर न्यायांभोनिधिजीको कुविकल्प उठा उससे उलटा अर्थ लिख कर भद्रजीवोंको भ्रममें गेरे जिसका निर्णय उपरमें हमने शास्त्रकारोंके अभिप्राय सहित पूर्वापर पाठ सम्बंधी भावार्थ सहित उन्होंकी कुयुक्ति और अन्यायके लेखकी समीक्षा करके अच्छी तरहसे खुलासालिखदियाहै जिससे जो अब आत्मार्थीहोगा सोतो व्यर्थ अन्यायके आग्रहमें न पडकर, अपनी अंधपरंपराकी कुश्रद्धाके भ्रमको त्याग करनेमें कदापि बिलंब न करेगा परन्तु गाढ अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी दीर्घ संसारी जैनी नामधारी इहलोकको पूज्यता मान्यता शोभादृष्टिरागके गाढबन्धनसे बन्धेहुए होंगे सो सत्यबातग्रहण करनेके बदले भद्रजीवोंको कुयुक्तियोंसे विशेष न भ्रमावेंतो भी बहुत अच्छा होवेगा। भद्रजीवोंके कर्मबंधनके हेतु न होंगे।

अब श्रीजिनेश्वर भगवान्को आज्ञाके आराधन करनेवाले निष्पक्षपाती सत्यग्राही आत्मार्थी सज्जन पाठक गणको विशेष रूपसे ऊपरकी बातमें निःसंदेह होनेके लिये तथा बहुत काल से विवेकशून्यताकी अंधपरम्पराके गड्डरीह प्रवाहकी तरह कदाग्रहियोंका मिथ्याभ्रम निवारण करनेके लिये इस अवसर पर मैंरी तरफसे प्रगटपने प्रकाशित करके कहनेमें आता है, कि-श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने तो उस समय एक चीतोड नगरमें रहने वाले चैत्यवासियोंको शास्त्रोंके रहस्यको न जानने वाले अज्ञानी ठहराकरके स्कंधास्फालन पूर्वक शास्त्रानुसार छ कल्याणक तथा चैत्यकीविधि और साधुकीशुद्धक्रिया व्यवहार वगैरह बातें सबकेसामने भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी प्राप्ति केलिये प्रकाशित (प्रगट) करीथी परन्तु मैं तो अबी इस लेख छापे द्वारा सब ग्राम नगर शहरोंमें श्रीतपगच्छके श्रीपूज्य, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, पन्यास, गणि, पण्डित, शास्त्रविशारदजैनाचार्य, जैनरत्न, न्यायतीर्थ, न्यायरत्न, जैनधर्मोपदेष्टा, वगैरह पदधर विद्वान् मण्डलीको तथा सामान्यतासे सब साधु यति श्रावक-सभा मण्डलादि सबको उद्घोषणारूप सूचनासे (एकदेशीयदृष्टांतसे डंकेकीचोट, नगाराबजवातेहुए) मालूम कराता हूं, कि प्रथम तो-जैसे श्रीपञ्चपरमेष्ठिमन्त्रकी ४ चूलिका, श्रीआचारांगजीसूत्रके तथा श्रीदशवैकालिकसूत्रके ऊपर दो दो अध्ययनरूप दो दो चूलिका और लक्ष योजनके सुमेरूपर ४० योजनके शिखरको तथा अन्य हरेक पर्वतों, व देवमन्दिरोंके शिखरोंको चूलिकायें कही, तैसेही-चन्द्रसम्वत्सरके १२ महिनो ऊपर तेरहवे अधिक महिनेको भी उत्तम श्रेष्टतारूप चूलिकाकी ओपमा देकर उसको जैन शास्त्रोंमें श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने गिनतीमें लेनेका कहके १३ महिनोंका अभिवर्द्धितसम्वत्सर कहाहै उसके अनुसार

वर्तमानमें भी देशकालानुसार माननेमें आता है उससे लौकिक पञ्चांगमें दो श्रावण या दो भाद्रपद होवे तब भी आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रमें श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन श्रीकल्पसूत्रके तथा उसकी अनेक टीकाओंके आधारसे पूर्वाचार्यों को आज्ञा मुजब आत्मार्थी करते है; तथा (दूसरा) श्रावकके सामायिक करने सम्बन्धी सब शास्त्रोंमें पहिले करेमिभन्तेका उच्चारण करे बाद पीछेसे इरियावहीकी क्रिया करके स्वाध्याय करना कहा है, और (तीसरा) शासननायक श्रीवर्द्धमान स्वामीजीके छ कल्याणक श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वाधरादि पूर्वाचार्यों ने मूल आगमादि पञ्चांगीके अनेक शास्त्रोंमें कथन किये हैं। जिसपरभी इनऊपरकीबातों सम्बंधी शास्त्रोंके प्रत्यक्ष पाठोंके अक्षरोंका भावार्थको सद्गुरुसे या विवेकबुद्धिसे-बांचे,सुने, विचारे, बिनाही गड्डरीय प्रवाहकी तरह विवेक शून्यताकी अन्धपरम्परासे ऊपरकी बातोंको निषेध करके । प्रथम । कालचूला वगैरहके बहानोंसे (अधिक मासके ३० दिनोंमें धर्म कार्यका व्यवहार करकेभी) श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्यों केकथन किये हुए मूल आगमादि पञ्चांगीके अधिक मासगिनतीमें प्रमाण करने सम्बन्धी अनेक शास्त्रोंके पाठोंका उत्थापन करके उसको गिनतीमें नहीं लेनेका ठहराते हुए लौकिक पञ्चांगमें दो श्रावणहोनेसे प्रगटपने शास्त्र विरुद्ध भाद्रपदमें ८०दिने या दो भाद्र पद होनेसे दूसरे भाद्रमें ८०दिने पर्युषणा करने वाले, तथा (दूसरा) श्रीमहानिशीथसूत्रके तीसरे अध्ययनका चैत्यवंदन उपधान सम्बन्धी पाठको, और श्रीदशवैकालिकसूत्रकी दूसरी चूलिकाके साधुको गमनागमनसे इरियावही पूर्वक स्वाध्याय करने सम्बन्धी पाठको, आगे करके श्रावकके सामायिकमें पहिले इरियावही पीछे करेमिभन्तेको स्थापन करते हुए, श्रीआवश्यक चूर्णि, वृह-

वृहद्वृत्ति, लघुवृत्ति, श्रीनवपदप्रकरणवृत्ति, श्रीयोगशास्त्रवृत्ति, वगैरह शास्त्रोंमें पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी भाव परम्परानुसार श्रावकके सामायिकमें पहिले करेमिभन्ते पीछे इरियावही करना कहा है, जिसको निषेध करने वाले, और (तीसरा) श्रीपञ्चाशकजीमें सर्वतीर्थङ्करमहाराजोंसम्बंधी सामान्यताके पाठका तात्पर्यार्थको समजे बिना उस सामान्यताके पाठको आगेकरके, फिर-वस्तु,स्थान,आश्चर्यके, वहाने श्रीकल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने एक श्रीवर्द्धमान स्वामी संबन्धी खास विशेषताकेपाठमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंका कथन कियाहुआ होनेपरभी इसकानिषेध करने के लिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर नवीनछटे कल्याणककी प्ररूपणा करनेकाजूठा दोष लगाने वाले, इन उपरोक्त विषयों सम्बंधी उन शास्त्रोंके रहस्यको न जाननेवाले अज्ञानी उत्सूत्र भाषण करके श्रीजिनाज्ञाकीविराधनाकरतेहुए कुयुक्तियोंके खोटे आलम्बनोंसे भद्रजीवोंको उन्मार्गके मिथ्यात्वमें गेरने वाले बनते हैं तथा उपरोक्त बातों संबन्धी उपरोक्तादि शास्त्रोंके पाठोंको ऊपरकी बातोंके निषेध करने वालोके देखनेमें और सुननेमें भी नहीं आये होगें ऐसा समझना चाहिये सोतो निष्पक्षपात पूर्वक विवेक बुद्धिसे इस ग्रन्थको पूरा बांचने वाले आत्मार्थी सत्यग्राही तत्वज्ञ जन अच्छी तरहसे समझ लेंगे, तिसपर भी उपरोक्त बातों सम्बन्धी किसीके दिलमें अपने माने मंतव्य मुजब साबुत करनेकी बहादुरीकी हौंस होवे तो अन्यान्य विषयोंकी आडलेनेका और ढूंढक तेरहपंथियों जैसी रांड़ नपुतीकी तरह व्यर्थ शिरपची कर्मबंधकी लड़ाइका कारण न करते, झूठे पक्षका अभिमानको छोड़कर सत्य बातको ग्रहण करनेकी अभिलाषा धारण करके, मेरेसे वर्तमानिक छापों

द्वारा, या-पत्र व्यवहार द्वारा, वा-बड़े शहरमें सुप्रसिद्ध अन्य मध्यस्थ पण्डितोंके समक्ष धर्मशास्त्रोंके और सरकारी न्यायालयके नियमों मुजब वादानुवाद करके सत्यासत्यके निर्णय करनेको सामने आवे, नहीं तो अंधपरंपराके झूठे कदाग्रहके हठवादको छोड़कर शास्त्रानुसार सत्यबात ग्रहण करें और दूसरोंको भी ग्रहण करावे जिससे वर्तमानिक विसंवादसे जूदी जूदी प्ररूपणाका कदाग्रहको देखकर भद्रजीव भ्रममें पड़कर श्रीजिनाज्ञाकी विराधना करते हुए मिथ्यात्वमें गिरते हैं और आपसका विरोधसे कर्म बन्धनके हेतु, शासनोन्नतिके कार्योंमें विघ्न और अन्यमतियोंमें हास्यका कारण वगैरह बड़े बड़े भयंकर नुकशान हो रहे हैं उसके निवारणका अनंत लाभको प्राप्त करे यही अपने और दूसरोंके श्रेयका कारण है।

शंका—अभी आपने ऊपरमें—छ कल्याणक, अधिक मास, और सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीका निषेध करने वाले श्रीतपगच्छके वर्तमानिक समुदायके, श्रीकल्पसूत्र श्रीआवश्यक चूर्णि वगैरह शास्त्रपाठोंको देखनेमें और सुननेमें भी नहीं आनेका लिखा, तथा-ऊपरकी टीकाके पाठमें भी "लोचनपथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तां श्रुतिपथे न व्रजति याति" ऐसा कहके बड़े बड़े विद्वान् चैत्यवासी आचार्योंके-षष्ठ कल्याणक, चैत्यविधि तथा अधिकमास और साधुकी शुद्धक्रिया व्यवहार सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रादि शास्त्रोंके प्रगट पाठोंको देखनेमें आना तो दूर रहा परन्तु सुननेमें भी नहीं आये, ऐसा कहा सो कैसे मानाजावे क्योंकि श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रका पाठतो श्रीतपगच्छ वाले भी प्राय सब कोई यति साधु वगैरह हरवर्ष श्रीपर्युषणापर्वमें वांचते हैं तथा सामायिक सम्बन्धी और अधिकमास सम्बन्धी भी श्रीआवश्यक चूर्णि

वगैरह शास्त्रोंके पाठ प्रसिद्ध हैं और चैत्यवासी लोग भी श्रीकल्पसूत्रको तो हरवर्ष बांचते थे तथा कितनेही विद्वान् चैत्यवासी आचार्यादि अन्य भी जैनशास्त्रोंके तो पूरे पूरे ज्ञाता सुननेमें आते हैं इसलिये आपका और टीका कारका उपरोक्त लिखना मिथ्या मालूम होता है।

समाधान—भोदेवानुप्रिय ? अतीव गहनाशययुक्त नयगर्भित अपेक्षा संबंधी श्रीजैनप्रवचनकी शैलीको गुरु गम्यतासे यथा विवेक बुद्धिसे जाने बिना, उपरके मेरे लेखका तथा टीकाकारके वाक्यका अभिप्रायको समझे बिना शङ्का करके उपरके दोनों लेखोंको अपनी अज्ञानतासे मिथ्या कह दिये परन्तु ऊपरके दोनों लेख सत्य होनेसे मिथ्या नहीं हो सकते हैं क्योंकि देखो, जैसे—श्रीवीरविजयजीने श्रीसिद्धाचलजीके स्तवनमें "कोडिसहस भवपातिक त्रुटे शेत्रुंजय साहामो डग भरिये,विमल गिरि जात्रा नवाणु करिये" तथा "पापी अभव्य नजरें न देखे, हिंसक पण उद्धरिये, विमल गिरि जात्रा नवाणु करिये" सो इन दोनों गाथाओंमें श्रीसिद्धाचल जीके सामने जाने वालेके हजारकोडी भवोंके पाप कटते हैं और पापात्माप्राणी तथा अभव्य प्राणी इस तीर्थको नजर (आंख) सेभी नहीं देखसके, इस तरह कथन किया परन्तु वहां तो श्रीपालीतानादिमें रहनेवाले भाट तथा डोली वाले वगैरह आजीविकादि अपने इस लोकके स्वार्थकेलिये (तीर्थकी आशातनासे दीर्घ संसारका कारण करते हुए भी) श्रीसिद्धाचलजीके पहाड़ ऊपर वहुत आदमियोंको जाते हुए अपने सब कोई प्रत्यक्षपने देखते हैं तो क्या श्रीवीरविजयजीके कहने मुजब उनलोगोंके हजारकोडी भवोंके पापकटनेका आपलोग मानोंगे सोतो नहीं, और इस तीर्थके आसपासके ग्राम नगरोंमें रहनेवाले कसाई मलेच्छादि सभी हिंसक पापी जीव, इस तीर्थको अपनी

नजरों (आंखों) से प्रत्यक्षपने देखते हैं तथा घास काष्टादि-लानेको खास पहाड़पर भी जाते हैं तो क्या श्रीवीरविजयजीके उपरोक्त स्तवनमें कथन किये हुए वाक्यको आपलोग झूठा मानोगे सोभी नहीं, किन्तु यहां तो भावसहितयात्रा करनेके लिये गिरिराज तरफ चलनेवालेके हजारकोडी भवोंके पापकटने सम्बन्धी तथा अन्तरके ज्ञानचक्षुसे पापी और अभव्य इस तीर्थको न देखसके, याने-भाव सहित दर्शन नहीं करे। ऐसा तात्पर्यार्थ उपरके स्तवन बनानेवालेका समझना चाहिये, तैसेही उपरोक्त टीकाकारके वाक्यमें तथा मेरे लेखमें भी उपरोक्त बातों सम्बन्धी उपरोक्तादि शास्त्रपाठोंके सम्बन्धमें गुरुगम्यताका अनुभवकी विवेक बुद्धिसे उन शास्त्रकारोंके मुख्य तात्पर्यार्थके रहस्यको भाव पूर्वक समझनेका समझना चाहिये, नतु-उपयोग शुन्यताकी अज्ञानता पूर्वक द्रव्यसे अक्षरमात्र बांचने वालों सम्बन्धी क्योंकि द्रव्यसे अक्षरमात्र तो छ कल्याणक चैत्यकीविधि सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही और अधिक मास गिनतीमें प्रमाण करने वगैरह बातों सम्बन्धी, श्रीकल्पसूत्र श्रीचन्द्र प्रज्ञप्ति श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति श्रीनिशीथचूर्णि श्रीआवश्यकचूर्णि वगैरह शास्त्रोंके पाठोंको बांचने वाले सुनने वाले वे चैत्यवासी लोग थे परन्तु भावसे उपयोग पूर्वक वांचकर उनके भावार्थको ग्रहण करके उसी मुजब श्रद्धासे वर्ताव करने वाले नही थे, वैसेही वोही बात वर्तमानकालमें श्रीतपगच्छकी कितनीक कदाग्रही समुदायमें देखनेमें आती है क्योंकि ये लोग भी द्रव्यसे तो "तेणं कालेणं तेणं समयेणं समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे हुत्था, साइणा परिनिव्वुडे" इस तरह श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणकों सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रके खास मूल पाठको हरवर्ष पर्युषणापर्वमें वांचते हैं तथा श्रीनिशीथचूर्णि श्रीआवश्यकचूर्णि वगैरहके

शास्त्रपाठोंको (कालचूला रूप अधिकमास गिनतीमें प्रमाण तथा सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही सम्बन्धी) वांचते हैं और सुनते भी हैं परन्तु भावसे उपयोग पूर्वक वैसी श्रद्धा करके वैसाही उपदेश, और उसी मूजब वर्त्ताव नहीं करते इस लिये उपरोक्त बातों सम्बन्धी उपरोक्तादि शास्त्रोंके पाठोंको देखने वांचने सुनने भी नहीं आये जैसे हैं इसलिये उपरमें मेरे लिखे वाक्य तथा टीकाकारके कथन किये हुए वाक्य सत्य है उसमें अपनी अज्ञानतासे उसके रहस्यको समझे बिना किसीके कहनेसे मिथ्या नहीं हो सकते हैं

और कितनेही ढूंढिये तथा तेरापन्थी लोग भी उपयोग शून्य द्रव्यसे तो श्रीरायप्रशेणी श्रीजीवाभिगमजी श्रीज्ञाताजी श्रीभगवतीजी वगैरह खास मूल सूत्रोंके पाठोंके अक्षरकों तो बांचते हैं तथा सुनते हैं और लोगोंको भी सुनाते हैं उसमें श्रीजिनेश्वर भगवान्की प्रतिमाओंको श्रीजिनसमान कथन करी है तथा उसको वंदन पूजन करना कहा है और उसके वन्दन पूजनके प्रत्यक्ष प्रमाण भी उन सूत्रोंमें मौजूद हैं सोई सूत्र पाठ वे ढूंढिये और तेरापंथी लोगभी बांचते हैं तिसपरभी उन ढूढिये, तेरेपन्थियोंकी उस बातमें भावसे शुद्धश्रद्धा और प्ररूपणा नहीं किन्तु विशेष मिथ्यात्वके उदयसे कुयुक्तियोके झूठे आलम्बनोंसे सूत्र पाठोंकों उत्थापन करके और उसका उलटा मन कल्पनाका झूठा अर्थ भद्रजीवोंको सुनाते हैं तथा द्रव्यसे साधुपनेकी श्रावकपनेकी प्रतिक्रमण, पडिलेहणा, तपश्चर्यादि भी करके अपनेमें जैनीपना मानते हैं परन्तु श्रीजिनाज्ञाकी विराधना करके आगमोंको तथा उनकी व्याख्याओंको और पूर्वाचार्योंको उत्थापते हुए उन्होंकी और श्रीजिन प्रतिमाजीकी निन्दा करते हुए शास्त्र मर्यादासे विरुद्ध मन मानी बाल क्रिया अज्ञान कष्ट करते हैं इसलिये

उन्होंको श्रीजैनशास्त्रोंके नहीं जानने वाले अज्ञानी और जैनाभास कहते है परन्तु उन्होंको अपने लोग उन शास्त्रोंके ज्ञाता उनके बांचनेवाले और जैनोपनेमें नहीं गिनते हैं, सो इसीमुजब जिन्हव भी हृदयसे भावपूर्वक साधुपनेको शास्त्रानुसार सब क्रिया करताहै तथा शास्त्रोंको बांचनेवाला उन शास्त्रोंके ज्ञाता और पूर्ण वैराग्यमय शास्त्रोक्त उपदेश भी बहुत लोगोंको सुनाताहै तो भी शास्त्रकारोंने उनको असाधु अज्ञानी मिथ्यात्वी कहके उनका उपदेश सुननेको मनाई करी और उनको बंदन पूजन करना तो क्या परन्तु उनका मुंह देखना दर्शन मात्रभी वर्जन किया, है उसी तरहसे ऊपरके लेखमें, मैने तथा टीकाकारने जो वाक्य कथन किये हैं सो भाव सहित उसी मुजब श्रद्धा प्ररूपणा वर्ताव नहीं करने वालों संबन्धी जानने चाहिये परन्तु द्रव्यसे बिनाश्रद्धाके अक्षर मात्रको बांचने वालों सम्बन्धी नहीं इस बातको विशेषतासे तो विवेकी पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे।

और भी छ कल्याणक निषेध करनेके लिये न्यायांभोनिधिजीने अपने बनाये "जैन तत्वादर्श"के १२ वें परिच्छेदमें अपनी गुरूआवलीके संबन्धमें मिथ्यात्वके उदयसे भद्रजीवोंको भरमानेके लिये मायावृत्ति पूर्वक प्रत्यक्ष मिथ्या गप्प लिखा है उसका भी अब यहां इस अवसर पर निर्णय करना उचित समझ कर करता हूं सो प्रथम वारका छपा हिन्दी "जैन तत्वादर्श"के पृष्ठ ५७३ की पंक्ति ८ से ११ तक ऐसा लिखा है "विक्रमसे (११३५) वर्ष पीछे, कोई कहता है (११३९) वर्ष पीछे, नवांग वृत्ति करने वाला अभयदेवसूरि स्वर्गवास हुए तथा कुर्चपुर गच्छीय चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिने चित्रकूटमें श्री महावीरके षट् कल्याणक प्ररूपे" न्यायांभोनिधिजीके इस ऊपरके अज्ञानता वाले मायाचारीके प्रत्यक्ष

मिथ्या लेखपर प्रथम तो मेरेको इतनाही कहना है कि न्यायांभोनिधिजीने अपनी गुरुआवलीके सम्बंधमें श्रीसिद्ध-सेनदिवाकरजी वगैरह प्रभावक पुरुषोंका कथन करनेमें उन्होंके गच्छका और गुरुका नाम खुलासा लिखा है तैसेही श्रीनवांगी वृत्तिकार सुप्रसिद्ध श्रीअभयदेवसूरिजीके कथन करनेमें भी इन महाराजके गुरुका और गच्छका नाम भी अवश्य लिखना उचित था, सो न लिखा यह तो प्रगटही मायाचारीका कारण है क्योंकि यह महाराज श्रीखरतर गच्छमें हुए हैं, सो अणहिलपुर पट्टणमें श्रीदुर्लभ राजाने श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजको खरतर विरुद दिया उसदिनसे इन महाराजकी समुदायवाले खरतर गच्छके कह-लाये। सो इनमहाराजकेही शिष्य श्रीनवांगीवृत्तिकार श्रीअभय देवसूरिजी थे परन्तु इनमहाराजके वडेगुरुभाई श्रीजिनचन्द्र सूरिजी थे सो उन्होंको श्रीजिनेस्वरसूरिजीके पाटपर विराजमान किये थे और श्रीजिनचन्द्रसूरिजीके पाटपर यह श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज विराजमान हुए थे, और न्यायांभोनिधिजीने इसी जैनतत्वादर्शके पृष्ट ५७४ में खरतर गच्छसे द्वेषकरके प्रत्यक्षमिथ्या सं० १२०४ में खरतर उत्पत्ति लिखाहै, इसलिये अपने इस मायाचरीके मिथ्या लेखकी पोल न खुलनेके लिये श्रीअभयदेवसूरिजीको खरतरगच्छके लिखते न्यांभोनिधिजीको लज्जा आई होगी इससे इन महाराजके गच्छका नाम छिपा दिया सो यह मायाचारीके सिवाय और क्या होगा इसको विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेवेगें।

और श्रीजिनेश्वरसूरिजीने श्रीदुर्लभराजाकी पाठांतरे श्री भीमराजाको राजसभामें चैत्यवासियोंको धर्मवादमें जित लिये, आप विशेष सच्चे (अतिशय खरे) रहे उससे राजाने खरतर विरुद दिया है सो इन महाराजके पांचवी पिढी (पट्ट)

पर इनही श्रीखरतर गच्छमें श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज हुए हैं इसलिये सं० १२०४ में इन महाराजसे खरतर उत्पत्तिका लिखना न्यायांभोनिधिजीका महा मिथ्या है इस बातमें सब शङ्काओंका निवारण पूर्वक शास्त्र प्रमाणों सहित विस्तारसे निर्णय "आत्मभ्रमोच्छेदन भानुः" नामा ग्रन्थमें अच्छी तरहसे छप गया है इसलिये यहां पर विशेष लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तोभी इसका संक्षेपसे खुलासा आगे लिखा जावेगा,

और न्यायांभोनिधिजीने श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके ऊपर श्रीवीरप्रभुके षट् कल्याणक प्ररूपणका दोष लगाया सोतो न्यायांभोनिधिजीके मिथ्यात्वकी भ्रांतिका भेद पाठकगण उपरोक्त लेखसे स्वयं समझ लेवेंगे, परन्तु श्रीजिनवल्लभसूरिजीको कुर्च्चपुरीयगच्छके लिखे सोतो न्यायांभोनिधिजीनेखास अपने नाम को ही लजाया है और अपने गुरु आवलीके जैसी श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध मर्यादाकी गपोल खीचड़ीका बर्तावमें श्रीजिनवल्लभसूरिजी को भी ठहराकर श्रीखरतर गच्छमें भी श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध मर्यादा स्थापन करनेका न्यायांभोनिधिजीने चाहा सो भी बड़ी भूल करी क्योंकि श्रीजैन शास्त्रोंकी मर्यादानुसार तो किसी भी गच्छका कोई भी शिथिलाचारीको अपने गच्छमें क्रियापात्र शुद्ध संयमीका योग न मिले और उसके क्रिया उद्धार करके शुद्ध संयमसे अपनी आत्म कल्याणकी पूर्ण अभिलाषा होवे तो किसी भी अन्य गच्छके शुद्ध संयमीके पास क्रिया उद्धार करे, याने उनके पास फिरसे दीक्षा लेकर उनकोही गुरुमाने और उन क्रियाउद्धार करनेवालेकी पाट परम्पराभी पहिलेकेशिथिला चारि गुरुओंके साथ न मिलाकर जिसके पास क्रिया उद्धार किया होवे उन्होंकी परम्परामें अपनी पाट परम्परा मिलावे सो वोही उनका गच्छ और गुरु परम्परा मानी जावे परन्तु पहि-

लेकेशिथिला चारियोंकी नहीं, जिस पर भी पहिलेके शिथिला चारियोंके साथ अपनी गुरु परम्परा मिलावें तो श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे संसार वृद्धिका कारण है सोही बात खास न्यायांभोनिधिजीने भी तीनथुईवाले श्रीरत्नविजयजी (श्रीराजेन्द्र सूरिजी) को उपदेश करनेके लिये "चतुर्थस्तुति निर्णय" की पुस्तककी प्रस्तावनाके पृष्ठ ८ की पंक्ति १३ से पृष्ट १३ की पंक्ति ५ वीं तक लिखी है जिसका उतारा नीचे मुजब है।

रत्नविजयजी बहुल संसारी न हो जावे इसी वास्ते इनोका उद्धार करना चाहीयें, ऐसा उपकार बुद्धिसें हम सब श्रावकोंको कहने लगेके प्रथम तो यह रत्नविजयजीकों जैनमतके शास्त्रानुसार साधु मानना यह बात सिद्ध नहीं होती है. क्योंके? रतनविजयजी प्रथम परिग्रहधारी महाव्रतरहित यति थे, यह कथा तो सर्व संघमें प्रसिद्ध है, और पीछे निर्ग्रंथ पणा अङ्गीकार करके पञ्चमहाव्रत रूप संयम ग्रहण करा परन्तु किसी संयमी गुरुके पास उपसम्पत् अर्थात् फेरके दीक्षा लीनो नहीं, और पहले तो इनका गुरु प्रमोदविजयजी यती थे, कुछ संयमी नहीं थे यह बात मारवाड़के बहोत श्रावक अच्छी तरेसें जानते है, फेर असंयतके पास दीक्षा लेके क्रिया उद्धार करणा, यह जैनमतके शास्त्रोंसें विरुद्ध है।

इसी वास्ते तो श्रीवज्रस्वामी शाखायां चांद्रकुले कौटिकगणे बृहद्गच्छे तपगच्छालंकार भट्टारक श्रीजगचंद्रसूरिजी महाराजे अपणेकों शिथिलाचारी जानके चैत्रवाल गच्छीय श्रीदेवभद्रगणि संयमीके समीप चारित्रोपसंपद् अर्थात् फेरके दीक्षा लीनी, इस हेतुसें तो श्रीजगच्चंद्रसूरिजी महाराजके परम संवेगी श्रीदेवेंद्रसूरिजी शिष्यें श्रीधर्मरत्नग्रंथकी टीकाकी प्रशस्तिमें अपने बृहद् गच्छका नाम छोडके अपने गुरु श्रीजगचंद्रसूरिजीकों चैत्रवाल गच्छीय

लिखा, सो यह पाठ है ॥ क्रमशश्चैत्रावालक, गच्छे कविराज-राजिनभसीव ॥ श्रीभुवनचन्द्रसूरिर्गुरुरुदियाय प्रवरतेजाः ॥ ४ ॥ तस्य विनेयः प्रसमै कसंदिरं देवभद्रगणि पूज्यः ॥ शूचिसमयकनक निकषो, बभूव भूविदितभूरिगुणः ॥ ५ ॥ तत्पादपद्मभृंगा, निस्संगाश्चञ्चतुङ्गसंवेगाः ॥ संजनित शुद्धबोधाः, जगति जगच्चंद्र-सूरिवराः ॥ ६ ॥ तेषामुभौ विनेयौ, श्रीमान् देवेंद्रसूरिरित्याद्यः ॥ श्रीविजयचन्द्रसूरिर्द्वितीयकोऽद्भुतकीर्त्तिभरः ॥ ७ ॥ स्वान्ययो रुपकाराय, श्रीमद्देवेंद्रसूरिणा ॥ धर्मरत्नस्य टीकेयं, सुखबोधा विनिर्ममे ॥ ८ ॥ इत्यादि, इस वास्ते भव भीरु पुरुषांकों अभिमान नहीं होता है, तिनकूं तो श्रीवीतरागकी आज्ञा आराधनेकी अभिलाषा होती है, तब रत्नविजयजी और धनविजयजी यह दोनु जेकर भवभीरु है, तो इनकोंभी किसी संयमी मुनिके पास फेरके चारित्रोपसंपत् अर्थात् दीक्षा लेनी चाहियें, क्योंके फेरके दीक्षा लेनेसें एकतो अभिमान दूर होजावेगा, और दूसरा आप साधु नहीं है तोभी लोकोंकों हम साधु है ऐसा कहना पडता है यह मिथ्या भाषण रूप दूषणसेंभी बच जायगे, और तीसरा जो कोइ भोले श्रावक इनकों साधु करके मानता है, उन श्रावकोंके मिथ्यात्वभी दूर हो जावेगा, इत्यादि बहुत गुण उत्पन्न होवेंगे जेकर रत्नविजय जी धनवीजयजी आत्मार्थी है तो यह हमारा कहना परमो पकाररूप जानके अवश्यही स्वीकार करेंगे।

यह फेरके दीक्षा उपसंपत् करनेका जिस माफक जैनशास्त्रोमें जगे जगे लिखे हैं, तिसि माफक हम इनोके हितके वास्ते कुछ आप श्रावकोंकों कहते है। तथाच जीवानुशासनवृत्तौ श्रीदेवसूरिभिः प्रोक्तं ॥ यदि पुनर्गच्छो गुरुश्च सर्वथा निजगुण विकलो भवति तत आगमोक्त विधिना त्यजनीयः परं कालापेक्षया

योऽन्यो विशिष्टतरस्तस्योपसंपद्ग्राह्या न पुनः स्वतंत्रैः स्थातव्यमिति हृदयं ॥ इति श्रीजीवानुशासनवृत्तौ । इसकी भाषा लिखते हैं। जेकर गच्छ और गुरु यह दोनों सर्वथा निजगुण करके विकल होवे तो, आगमोक्त विधि करके त्यागने योग्य है, परं कालकी अपेक्षायें अन्य कोइ विशिष्टतर गुणवान संयमी होवे, तिस समीपें चारित्र उपसंपत् अर्थात् पुनर्दीक्षा ग्रहण करनी परन्तु उपसम्पदाके लीया विना स्वतंत्र अर्थात गुरुके विना रहणा नहीं इस कहनेका तात्पर्यार्थ यह है के जो कोई शिथिलाचारी असंयमी क्रिया उद्धार करे सो अवश्यमेव संयमी गुरुके पास फेरके दीक्षा लेवे। इस हेतुसें रत्नविजयजी और धनविजयजीकों उचित है के प्रथम किसी संयमी गुरुके पास दीक्षा लेकर पीछे क्रिया उद्धार करे तो आगमकी आज्ञा भङ्ग रूप दूषणसें बच जावे और इनकों साधु माननेवाले श्रावकोंका मिथ्यात्वभी दूर हो जावे, क्योंके असाधुकों साधु मानना यह मिथ्यात्व है और विना चारित्र उपसंपदा अर्थात दीक्षाके लीये कदापि जैनमतके शास्त्रमें साधुपणा नहीं माना है।

तथा महानिशीथके तीसरे अध्ययनमें ऐसा पाठ है ॥ सत्तट्ठ गुरुपरंपरा कुसीले ॥ एग दु ति परंपरा कुसीले ॥ इस पाठका हमारे पूर्वाचार्योंने ऐसा अर्थ करा है, इहां दो विकल्प कथन करनेसें ऐसा मालुम होता है के एक दो तीन गुरु परंपरा तक कुशील शिथिलाचारीके हूएभी साधु समाचारी सर्वथा उच्छिन्न नहीं होती है, तिस वास्ते जेकर कोइ क्रिया उद्धार करे तदा अन्य संभोगी साधुके पाससें चारित्र उपसंपदा विना दीक्षाके लीयांभी क्रिया उद्धार हो शक्ता है, और चोथी पेढीसें लेकर उपरांत जो शिथिलाचारी क्रिया उद्धार करे तो अवश्यमेव चारित्र उपसंपदा अर्थात् दीक्षा लेकेही क्रिया उद्धार करे, अन्यथा नही।

अथ जेकर प्रमोद विजयजीके गुरुभी संयमी होते तब तो रत्नविजयजी विना दीक्षाके लीयांभी क्रिया उद्धार करते तोभी, यथार्थ होता परन्तु रत्नविजयजीको गुरुपरंपरा तो बहु पेढीयोंसें संयमरहित थी इस वास्ते जेकर रत्नविजयजी आत्महितार्थी होवे तो, इनकों पक्षपात छोडके अवश्यमेव किसी संयमी गुरु समीपे दीक्षा लेके क्रिया उद्धार करणा चाहिये।

न्यायांभोनिधिजीके उपरोक्त लेखसे अच्छी तरहसे सिद्ध हो चुका, कि—शिथिलाचारी जिसके पास दूसरी वेर दीक्षा लेवे उसकी ही परंपरामें वो गिना जावे-नतु पहिलेकी, बस। इसीके अनुसार श्रीजिनवल्लभसूरिजी पहिले वाचनाचार्य गणी पदमें कुर्चपुरीय गच्छके शिथिलाचारी द्रव्यलिंगि चैत्यवासी श्रीजिनेश्वरसूरि नामा आचार्यके शिष्यथे सो उन चैत्यवासी गुरुने इनको न्याय, व्याकरण, छंद, काव्य, ज्योतिष, वगैहर बहुत शास्त्रोंका अध्ययन कराकर अच्छी बुद्धि और उत्तम लक्षणों वाले भविष्यमें शासन प्रभावक जानकरके श्रीजिनवल्लभजीको वाचनाचार्य गणिकी पदवी देकर सुप्रसिद्ध श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजीको जैन शास्त्रोंके ज्ञाता समझके इन महाराजके पास जैनसूत्रार्थोंकी गुरुगन्यतासे धारणा करनेके लिये वाचनाचार्य श्रीजिनवल्लभगणी जीको भेजे सो श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने भी इनको उत्तम बुद्धिवाले योग्य पुरुष जानकर थोडेही कालमें श्रीजैन शास्त्रोंका अध्ययन करा दिया और श्रीजिनाज्ञाभगसे संसार वढानेवाला चैत्यवास (शिथिलाचारको) छोड़कर क्रिया उद्धारसे शुद्ध संयमपूर्वक आत्मकल्याण करनेका उपदेश भी दिया सो उपदेश श्रीजिनवल्लभगणीजीने मान्यकिया और अपने चैत्यवासी गुरुकी आज्ञा लेकर श्रीअभयदेवसूरिजीमहाराज के पास उपसम्पत् याने क्रिया उद्धार किया फिरसे दीक्षाली

और इनही गुरुमहाराजके चरणकमलकी सेवा करते हुए महाराज के पासही रहने लगे पीछे कालान्तरमें श्रीअभयदेवसूरिजीका देवलोक हुए बाद, संसारका कारणभूत उत्सूत्ररूप चैत्यवासको अविधिका निवारण पूर्वक श्रीजिनवल्लभगणीजीने देशदेशान्तरोमें विहार करके बहुत भव्यजीवोंका उपकार किया और अनुक्रमसे विहार करते हुए मेवाड चीतोड़नगरमें पधारे सो वहां भी चैत्य वासियोंकी उत्सूत्रता और अविधिकी बातोंका निषेध पूर्वक श्रीजिनाज्ञानुसार शास्त्र प्रमाण सहित विधि मार्गकी सत्य बातोंको सबके सामने भव्य जीवोंको श्रीजिनाज्ञानुसार विधि मार्गकी सत्य बातोंकी प्राप्ति होनेके लिये प्रगट (प्रकाशित) करी सोतो हमने पहलेही लिख दिया है और पीछे चीतोड नगरमें ही इन महाराजको (श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके पहिलेके कथनानुसार श्रीप्रशन्नचन्द्राचार्यजीके कहने मुजब) श्रीदेवभद्राचार्यजीने श्रीजिनवल्लभगणीजीको सूरि पद देकर श्री अभयदेवसूरिजीके पट्टपर स्थापित किये और श्रीजिनवल्लभ सूरिजी नाम रक्खा इसलिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजके पट्टधर शिष्य श्रीखरतरगच्छमे ठहरे सो यह बात भी श्रीखरतरगच्छकी पट्टावलियोंमें तथा पूर्वाचार्योंके चरित्रोंमें और श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंके बनाये ग्रन्थोंमें तथा अन्य भी इतिहासिक ग्रन्थ वगैरह बहुत जगहोंपर प्रसिद्ध है तिसपर भी न्यायांभोनिधिजी हो करके भी अपने गच्छकदाग्रहके मिथ्याहठवाद रूप अभिनिवेशिकसे श्रीजिनवल्लभसूरिजीको कुर्च-पुरीय गच्छके चैत्यवासी श्रीजिनेश्वरसूरिजीके शिष्य लिख दिये सो श्रीजिनाज्ञाका भङ्ग कारक प्रत्यक्षपने जैन शास्त्रोंकी मर्यादा विरुद्ध और सर्वथा मिथ्या है इस बातको विशेषतासे विवेकी तत्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं—

और न्यायांभोनिधिजी श्रीआत्मारामजीके ऊपरके लेखसे यह भी सुस्पष्टता पूर्वक अच्छी तरहसे प्रगटपने सिद्ध होता है कि श्रीजगच्चंद्रसूरिजीके ३।४ पेढियोंके पहलेसेही अपने बडगच्छकी परम्परामें शिथिलाचार चला आता होगा इसलिये श्रीजगच्चंद्रसूरिजी जैसे सुप्रसिद्ध विवेकी विद्वन् आत्म कल्याण और श्रीजिनाज्ञाके अभिलाषी महाराजने अपने वडगच्छके तथा अपने शिथिलाचारी पूर्वजोंके (श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध) दृष्टिरागके पक्षपातको न रखके अपने शिथिलाचारके आचार्य पदके अभिमानको भी छोड़कर श्रीजिनाज्ञानुसार श्रीचैत्रवालगच्छके वैराग्य समुद्र शुद्ध क्रियापात्र शुद्ध संयमी श्रीदेवभद्रजी उपाध्यायजीके पास क्रिया उद्धार किया, याने—फिरसे दूसरी बेर दीक्षा धारण करी और इन्हीं महाराजको गुरु मान्य करके श्रीचैत्रवाल गच्छकी इन्होंके शुद्ध संयमियोंकी परम्परामे मिल गये इसलिये इन्हीं श्रीजगत् चन्द्रसूरिजी महाराजके सुप्रसिद्ध विवेकी विद्वान् शिष्य श्रीदेवेन्द्र सूरिजीने अपने गुरुजीकी पहिलेकी शिथिलाचारकी श्री वड़गच्छकी परम्परा न लिखके पीछे दूसरी वारकी शुद्ध संयमियोंकी श्रीचैत्रवालगच्छकी शुद्ध परम्परा श्रीधर्मरत्नप्रकरण की वृत्तिके अन्तमें प्रशस्तिके लेखमें लिखी सो पाठ भी न्यायांभोनिधिजीने अपने ऊपरके लेखमें लिख दिखाया है (और अब तो श्रीधर्मरत्न प्रकरण वृत्ति गुजराती भाषा सहित श्रीपालीताणासे श्रीविद्याप्रसारक मण्डलकी तरफसे छप करके प्रसिद्ध भी होगयी है इसलिये यह उपरका पाठ तो प्रसिद्धही है) इसलिये न्यायांभोनिधिजीके उपरोक्त लेख मुजब तो श्रीजगच्चंद्र सूरिजी महाराजको श्रीचैत्रवालगच्छके मानने तथा इसी गच्छसे उन्होंकी परम्परा भी मिलाना सोही शास्त्र मर्यादा पूर्वक श्रीजिनाज्ञा मुजब परम उचित है सो ऐसे ही करनेसे न्यायांभोनिधिजीको

अपना उपरोक्त 'चतुर्थ स्तुति निर्णय'का लिखा सत्य होसके परन्तु पहिलेके शिथिलाचारियोंकी श्रीबड़गच्छकी परम्परामें मिलाना और इन महराजको श्रीबड़गच्छके मानना सो तो प्रत्यक्षपने सर्वथा प्रकारसे शास्त्र मर्यादासे विपरीत (श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध) ठहरता है और न्यायांभोनिधिजोको उपरोक्त तीनथुई वाले रत्नविजयजी सम्बन्धी हितशिक्षारूप लिखना सब मिथ्या ठहरता है तिसपर भी बड़े ही अफसोसकी बात है, कि—खास आप न्यायांभोनिधिजी इतने बड़े सुप्रसिद्ध विद्वान् हो करके भी "जैन-तत्वादर्श" वगैरह अपने बनाये ग्रन्थोंमें श्रीजगच्चंद्रसूरिजीको श्रीचैत्रवालगच्छके शुद्ध संयमियोंकी परम्परामें लिखने छोड़कर जिनाज्ञा विरुद्ध होके श्रीबड़गच्छकी शिथिलाचारियोंकी परम्परा में लिखे तथा वर्तमानिक श्रीतपगच्छके सब समुदाय वाले भी वैसेही मानते हैं तथा पट्टावलियोंमें और अन्य पुस्तकोंमें भी लिखते हैं सो श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञा भङ्ग करनेकी हेतु भूत यह कितनी बड़ी अज्ञानता है ।

और श्रीदेवेंद्रसूरिजी जैसे गीतार्थ महाराजने अपने गुरुजी श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीबड़गच्छके शिथिलाचारियोंकी परम्परामें लिखना-श्रीजिनाज्ञाविरुद्ध जानकर छोड़दिया और श्रीचैत्रवाल-गच्छके शुद्धसंयमियोंकी परम्परामें लिखना श्रीजिनाज्ञानुसार जानकर खुलासा पूर्वक लिखदिया जिसको वर्तमानिक श्रीतपगच्छ के सब समुदाय वाले मान्य न करके इससे विपरीत लिखते हैं याने श्रीचैत्रवालगच्छके शुद्धसंयमियोंकी श्रीजिनाज्ञानुसार पर-म्परामें लिखना छोड़कर श्रीवड़गच्छके शिथिलाचारियोंकी आज्ञा विरुद्ध परम्परामें लिखते हैं मानते हैं सो क्या कारण है । क्या श्रीतपगच्छके वर्तमानिक समुदायवालोंको आज्ञानुसार श्रीदेवेंद्र

सूरिजीकी लिखीहुई उपरोक्त बात अच्छी नहीं लगती और यदि अच्छी लगती होवेतो अब भी अपनी भूलको सुधारके श्रीजगत्चन्द्रसूरिजीको आज्ञाविरुद्ध वड़गच्छके शिथिलाचारियोंकी अशुद्ध परम्परामें लिखना, मानना, छोड़कर आज्ञानुसार चैत्रवालगच्छके शुद्धसंयमियोंकी शुद्धपरम्परामें लिखना मानना अङ्गिकार करना चाहिये नहीं तो चैत्रवालगच्छके लिखने मानने छोड़कर वड़गच्छकेही लिखोंगे तो यह लिखना मानना जिनाज्ञा भङ्गका कारणरूप होनेसे आपलोगोंकी वड़गच्छकी परम्परा कदापि शुद्धनहींमानी जा सकती औरअशुद्ध परम्परा श्रीजिनाज्ञाभिलाषी आत्मार्थी निष्पक्षपातियोंको छोड़कर शीघ्रतासे श्रीजिनाज्ञामुजब शुद्धपरम्परा मान्यकरनी ही परम उचित है।

और आपलोग त्यागी वैरागी शुद्धसंयमी कहलाके भी चैत्र वालगच्छकी त्यागी वैरागी शुद्धसंयमियोंकी परंपरामें श्रीजगचन्द्रसूरिजीको लिखना मानना छोडकर शिथिलाचारियोंकी अशुद्ध परंपरामें लिखके उसी मुजब मानते हुए इन महाराजको तथा इनमहाराजके पिछाड़ीके आपके सब पूर्वजोंको शिथिलाचारियोंके शिष्य बना देते हो तथा आपलोग भी वैसे ही शिथिलाचारियोंके शिष्य बन जाते हो सो भी कितनी वडी शर्मकी बात है

और श्रीजगचन्द्र सूरिजी महाराजके पहिलेके गुरुजी दादागुरुजी वगैरह ३ । ४ पेढीके पूर्वजोंको संयमी मानकर वडगच्छके ही इन महाराजको लिखते मानते हो वो सो भी नहीं बनसकता क्योंकि जो इन महाराजके गुरुजी वगैरह ३।४ पेढी वाले जो संयमी होते तो इन महाराजोंको अपने वड़गच्छको तथा अपने गुरुजी वगैरहोंको छोड़कर अपने शिथिलाचारके आचार्य (सूरि) पदके अभिमानको नरक्खके श्रीचैत्रवाल

गच्छके श्रीदेवभद्रउपाध्यायजीके पासमें उपसम्पत् याने फिरसे दूसरी वेर दीक्षा लेनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं होती परन्तु अपने गुरुको और गच्छको छोड़कर दूसरे गच्छवालेके पास दूसरी वार दीक्षा लेनी पडी इससे इन महाराजके गुरुजी दादा गुरुजी वगैरह संयमी नहीं थे ऐसा सिद्ध होता है इसलिये इन महाराजको वडगच्छके न मानकर चैत्रवालगच्छके मानने तथा उनसे ही परंपरा मिलाना उचित है, नतु वडगच्छसे।

और इतने पर भी वडगच्छसे परंपरा मिलाना कहोगे तो भी यह मिथ्यात्वका कारण ठहरता है सोही दिखाता हूं कि देखो इन महाराजने दूसरी वेर दीक्षाली उससे यह महाराज शुद्ध संयमी ठहरे सो इन संयमी महाराजको संयमियोंको चैत्रवालगच्छकी शुद्ध परंपरामें लिखना छोड़कर शिथिलाचारियों की अशुद्धपरंपरामें लिखके उन शिथिलाचारियोंको शुद्धसंयमी अपने पूर्वाचार्य मानलेना सो प्रत्यक्षपने असाधुको साधुमानने रूप मिथ्यात्व आता है इसको निष्पक्षपात पूर्वक विवेक बुद्धिसे खूब विचार लेना चाहिये।

और श्रीजगत्‌चन्द्रसूरिजी महाराज पहिले मूलमें वडगच्छके थे ऐसा समझकर दूसरी वेर दूसरे गच्छमे दीक्षा लेनेपरभी पहिले की वडगच्छकी परंपरा मिलाना मान्य करते हैं सोभी प्रगटपने लौकिक और लोकोत्तर दोनोंसे विरुद्ध बनता है क्योंकि प्रथम तो लौकिकमें भी जो लडका अपने जन्मदाता माता पिताको छोड़कर दूसरी जगे जिसके गोद जावे उनको माता पीता मानने पड़ते हैं तथा उसीके गौत्र कुलकी परंपरामें गिनाजाता है परन्तु पहिलेके जन्मदाता माता पीताके गौत्र कुलकी परम्परामें वो नहीं गिना जाता यह बात तो जगतमें प्रसिद्ध हैं और इसी तरहसे लोकोत्तरमें श्रीजैनशास्त्रोंमें भी जिसके पास दूसरी वेर

दीक्षालेवे उसीकी परम्परामें वो गिनाजावे, पर-पहिलेकी नहीं, सोतो उपरमें खुलासा पूर्वक लिखा गया है जिसपर भी पहिले की परंपराको ही मान्य रखो तो श्रीबूटेरायजी (श्रीबुद्धिविजय जी) तथा श्रीआत्मारामजी (न्यायांभोनिधिजी) वगैरहोंने जो पहिले ढूंढकमतमें दीक्षा लीथी पीछे श्रीतपगच्छमें दूसरी वेर दीक्षा ली है जिन्होंको भी श्रीतपगच्छके न मानके उन्होंकी परंपरा भी श्रीतपगच्छमें न मिलाकर ढूंढकमतके साधुओंके शिष्य कहा करो तथा उन्ही मुंहबंधोंकी परंपरामे लिखने चाहिये और वर्तमानिक श्रीआत्मारामजीके समुदाय वाले वगैरहोंको भी श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंको अपने पूर्वज न मानकर उन मुहबंधोंको अपने पूर्वज पूर्वाचार्य मानने तथा अपनी परंपरामें भी लिखनेचाहिये तबतो इन्होंकीतरहसे आपलोगोंकी कल्पना मुजब श्रीजगचंद्रसूरिजीमहाराजकोभी वड़गच्छमें लिखना और परंपरा मिलाना आप लोगोंके बनसकेगा अन्यथा कदापि नहीं।

और भी पहिलेकी अशुद्ध दीक्षाको आगे करके दूसरी बारकी शुद्ध दीक्षाको छोड़ देने पूर्वक, पञ्जाबी ढूंढक जीवण रामजीके शिष्य न्यायांभोनिधिजी (श्रीमद्विजयानंदसूरिजी) ने "जैन तत्वादर्श" वगैरह ग्रन्थ बनाये जिन्होंके शिष्य संप्रदायमें अभी इतने साधु विद्यमान है, ऐसा कहना शास्त्रानुसार बन सकता है तथा यह बात भी सर्व मान्य हो सकती है सो तो नहीं तो फिर श्रीजगत्चंद्रसूरिजीकी पहिलेकी शिथिलाचारकी अशुद्दीक्षाको (मूलमें पहिले वडगच्छके थे इसको) आगे करके दूसरीवार चैत्रवालगच्छमें शुद्धदीक्षा ली उससे परंपरा मिलाना छोड़ करके श्रीवड़गच्छसे इन्होंकी परंपरा मिलाते हुए श्रीदेवेन्द्र सूरिजी वगैरहको श्रीवड़गच्छके शिथिलाचारियोंके शिष्य होनेका

लिखते हो सो शास्त्रानुसार कैसे बन सकता है तथा सर्व मान्य भी कैसे हो सकेगा इसको दीर्घ दृष्टिसे विचारना चाहिये।

अब श्रीतपगच्छकी;सब समुदायवालोंसे मेरा यही कहना है कि यद्यपि श्रीजगत्‌चंद्रसूरिजी पहिले वड्गच्छके थे परन्तु शिथिलाचारको छोड़करके पीछेसे चैत्रवाल गच्छमें दीक्षा ली है। इसलिये यदि आप लोग न्यायानुसार शास्त्रप्रमाण पूर्वक श्रीजिनाज्ञामुजब शुद्धपरंपरा वाले आत्मार्थी बनना चाहते हो तो इनमहाराजकी वड्गच्छसे परंपरा मिलाना छोड़कर चैत्रवाल गच्छसे परंपरा मिलाना उचित है और आजतक अज्ञानतासे चैत्रवाल गच्छसे अपनी परंपरा मिलाना छोड़कर वड्गच्छसे परंपरा मिलाई जिसकी भूलको सुधारना चाहिये, परन्तु गड्डरीय प्रवाहकी तरह अन्धपरंपराकी अज्ञानताके हठवादको ही पकड़के रहना उचित नहीं है, आगे इच्छा आपकी।

तथा और भी यहांपर आपलोगोंको प्रत्यक्ष प्रमाणभी दिखाता हूं कि देखो श्रीवर्द्धमानसूरिजी पहिले श्रीजिनचन्द्रसूरि नामा चैत्यवासी आचार्यके शिष्य थे सोही श्रीवर्द्धमानसूरिजीने अपना शिथिलाचार चैत्यवासको छोड़कर श्रीउद्योतनसूरिजी महाराजके पास दूसरीवार दीक्षा ली इसलिये इनमहाराजको उन चैत्यवासी शिथिलाचारि श्रीजिनचंद्रसूरिजीकी परंपरामें न गिन कर, दूसरी बार दीक्षालेनेके कारण श्रीउद्योतनसूरिजीकीही परंपरामें गिने गये सोतो श्रीखरतरगच्छकी पट्टावलियोंमें और इतिहासिक ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है और श्रीरत्नसागरके दूसरे भाग वगैरहोंमें छपा हुआ भी प्रगट है तथा श्रीजिनवल्लभसूरिजी सम्बन्धी भी ऊपरमें लिखा गया है उसी मुजब आप लोगोंको भी श्रीजगत्‌चन्द्रसूरिजीको चैत्रवाल गच्छकी परंपरामें लिखने चाहिये इतने पर भी आपका कदाग्रह न छुटेगा तो आपकी परंपरा श्रीजि-

नाज्ञाविरुद्ध होनेसे मानने योग्य नहीं है इस बातको निष्पक्ष पाती विवेकी तत्वज्ञ जन स्वयं विचार सकते हैं।

और श्रीजगत्चन्द्रसूरिजीने अपने गच्छको शिथिल जानकर श्रीचैत्रवाल गच्छके श्रीदेवभद्रजी उपाध्यायजीकीसाह्यतासेक्रिया उद्धार किया ऐसा जैनतत्वादर्श वगैरहोंमें 'लिखा है सो भी मायावृत्तिसे मिथ्या है क्योंकि 'चतुर्थ स्तुति निर्णय' में दूसरी बार फिरसे दीक्षा लेनेका खुलासा लिखा है तथा शिथिलाचार छोड़े तो, दूसरी बार दीक्षा लिये बिना क्रिया उद्धार करना नहीं बन सकता और जब दूसरी बार दीक्षा लेकर क्रिया उद्धार कियाजावे तो जिसके पास क्रिया उद्धार कियाजावे उनके शिष्य बनकर उनको गुरु माननाही पड़ता है, और जब दूसरी बार दीक्षा ली उनके शिष्य बने उनको गुरु माने, तो फिर उनकी साह्यतासे क्रिया उद्धार किया, ऐसा कहना प्रत्यक्ष मिथ्या व्यर्थ ठहरगया इसलिये यदि आप लोग साह्यतासे क्रिया उद्धार करनेके बहानेसे भी वड़गच्छकी परंपरा मिलाना ठहराते हो सो भी कदापि नहीं बन सकता, और जो श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीकी साह्यतासे क्रिया उद्धार करके उनको गुरु न माने होते तो श्रीदेवेन्द्रसूरिजी श्रीधर्मरत्न प्रकरणकी वृत्तिके अन्तमें प्रशस्ति के लेखमें श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीको गुरुपनेमें लिखके श्रीचैत्र-वाल गच्छसे श्रीजत्चन्द्रसूरिजीकी तथा अपनी परंपरा कदापि न मिलाते और वड़गच्छकीही परंपरा लिखते सो न लिखकर वड़गच्छको छोड़ करके चैत्रवाल गच्छसे परंपरा मिलाई और आप भी वड़गच्छके न बन कर चैत्रवाल गच्छके बने हैं, तथा वैसे ही श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजीने भी श्रीवृहत्कल्पवृत्तिके अन्तकी प्रशस्तिके लेखमें लिखकर चैत्रवाल गच्छसे परंपरा मिलाईहै और न्यायांभोनिधिजीनेभी 'चतुर्थस्तुति निर्णय'की पुस्तकमें चैत्रवाल

गच्छमे परंपरा मिलाना सिद्ध किया है इसलिये साच्युताका बहाना लेकर वड़गच्छकी परंपरामिलाना बड़ीभूलहै, उससे साच्युताकाबहाना लेनेकी मिथ्याबातकोछोड़कर सत्यको मान्य करना हीश्रेयकारी है इसकोभी विवेकीजनस्वयं विचार करते हैं।

और अब पाठक गणसे मेरा यही कहना है कि श्रीतपगच्छके समुदाय वालोंने अपनी बड़ाई विषेश शोभा होनेके लिये शास्त्रानुसार चैत्रवाल गच्छसे अपनी परम्परा मिलाना छोड़कर श्रीवड़गच्छके पूर्वाचार्यों को बड़े प्रभावक प्रसिद्ध पुरुष जान कर श्रीजगचन्द्रसूरिजीके तथा इन महाराजके गुरुजी वगैरहके शिथिलाचार, असंयम, अशुद्धपरम्पराका-विचार न करके बड़गच्छ से परंपरा मिलाने लगे, परन्तु जिनाज्ञा भङ्गका भय होता और अन्तरंगमें न्यायानुसार आत्मार्थी पना होतातो चैत्रवाल गच्छसे अपनी परम्परा मिलाना कदापि न छोड़ते, खैर।

और ऊपरके लेखमें श्रीजगचन्द्रसूरिजीके ३।४ पेढी वाले गुरुजी दादागुरुजी वगैरहोंको मैंने मेरी तरफसे शिथिलाचारी नहीं लिखे किन्तु न्यायांभोनिधिजीके लेखसे ही सिद्धहोते हैं इस लिये इस बातका मुझे कोई दोष नहीं देना इस बातको भी ऊपरके लेखसे विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

बस ? इसी तरहसे न्यायांभोनिधिजीने अन्याय कारक और जिनाज्ञा विरुद्ध वड़गच्छसे परंपरा मिलाने रूप गपोलखोचड़ी की बात श्रीखरतरगच्छमेंभी करदेनेकेलिये श्रीजिनवल्लभसूरिजीको कुर्चपुरीयगच्छके चैत्यवासी श्रीजिनेश्वरसूरिजीके शिष्य लिख दिये परन्तु ऐसी जिनाज्ञाविरुद्ध वर्तावकी यह बात श्रीखरतरगच्छमें कदापि नहीं चलसकती जिसका विशेष खुलासा ऊपरमें लिखा गया हैं इसलिये श्रीवर्द्धमानसूरिजीको श्रीउद्योतनसूरिजीके शिष्य लिखने मुजब श्रीजिनवल्लभसूरिजीको भी श्रीखरतरगच्छकी

सुप्रसिद्ध श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके शिष्य लिखने न्यायांभोनिधिजीको उचित थे सो न लिखकर धर्मसागर जीकी धर्मठगाईकी मायाजालमें फंसकर व्यर्थही भद्रजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेका हेतु करके संसार वढनेका कारण किया है जिसको तत्वज्ञजन अच्छी तरहसे विचार सकते हैं।

तथा और भी न्यायांभोनिधिजीकी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी मायाचारीका प्रत्यक्ष नमूना पाठकगणको यहां दिखाता हूं कि, देखो न्यायांभोनिधिजीने उपरोक्त चतुर्थ स्तुतिनिर्णयकी पुस्तकके पृष्ठ१०० की पंक्ति १० वीं से पृष्ठ १०१ की पंक्ति १३ तकके लेखमें खासआपनेही श्रीजिनवल्लभसूरिजीको श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके शिष्य लिखे हैं सो लेख नीचे मुजब है।

"नवांगीवृत्तिकार जो श्रीअभयदेवसूरिजी तिनके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीने रचीहुइ समाचारीका पाठलिखते हैं॥ पुण पणवीसुस्सासं, उस्सग्गं करेइ पारए विहिणा॥ तो सयल कुसल किरिया, फलाण सिद्धाणं पढइ थयं॥१४॥ अह सुय समिद्धि हेउ, सुयदेवीए करइ उस्सग्गं॥ चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ देइ तिए थुइ॥ १५॥ एवं खित्तसुरीए, उस्सग्गं करेइ सुणइ देइथुइं॥ पढिऊण पंचमंगल, मुव विसइ पमज्ज संडासे॥ १६॥ इत्यादि॥

भाषा॥ श्रीजिनवल्लभसूरि विरचित समाचारिमें प्रथम पडिक्कमणेमें चार थुइसे चैत्यवंदना करनी पीछे प्रतिक्रमणेके अवसानमें श्रुतदेवता अरु क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करणा, और इनोंकी थुइयां कहनी, यह कथन पंदरावी अरु सोलावी गाथामें करा है, जब श्री अभयदेवसूरि नवांगी वृत्तिकारकके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीकी बनवाइ समाचारीमें पूर्वोक्त लेख है तब तो श्रीअभयदेवसूरिजीसें तथा आगु तिनकी गुरु

परंपरासें चार थुइकी चैत्य वंदना और श्रुतदेवता अरु क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करणा और तिनकी थुइ कहनी निश्चयही सिद्ध होती है, तो फेर इसमें कुछ भी वाद विवादका झगडा रह्या नहीं, इस वास्ते रत्नविजयजी अरु धनविजयजी तीन थुइका कदाग्रह छोड देवे, तो हम इनोंकों अल्पकर्मी मानेंगे ॥”

देखिये ऊपरके लेखमें श्रीरत्नविजयजी (श्रीराजेंद्रसूरिजी) के और धनविजयजीके तीन थुइके नवीन मतभेदके प्रचलीत कदाग्रहको हटानेके लिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी कृत सामाचारीका पाठ लिख दिखाया तथा इन महाराजको श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजकी परंपरामें लिखके दिखाये तो फिर इन्ही महाराजको कुर्चपुरीय गच्छके चैत्यवासीके शिष्य लिखके भद्रजीवोंको मिथ्यात्वके भरममें गेरनेका काम करने वाले को आत्मार्थी सम्यक्त्वी कैसे माने जावे सो भी तत्वज्ञ जन विचार सकते हैं।

और जब खास न्यायांभोनिधिजीने ही श्रीजिनवल्लभ सूरिजीको श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेव सूरिजीके शिष्य लिखके उनकी ही परम्परामें गिने सो न्यायांभोनिधिजीका लेख हमने ऊपर लिख दिखाया है तो फिर इसी मुजब श्रीजग-चन्द्र सूरिजीको भी श्रीचैत्रवाल गच्छके श्रीदेवभद्रोपाध्याय जीके शिष्य लिखके उनसे इनकी परम्परा मिलानेमें न मालूम न्यायांभोनिधिजीको किस कारणसे लज्जा होगी सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने इसमें लज्जाका तो कोई कारण नहीं है, क्योंकि श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके शिष्य श्रीजगचन्द्र सूरिजीको लिखके श्रीचैत्रवाल गच्छसे परंपरा मिलानेमें तो श्री जिनाज्ञाकी आराधना रूप महान् लाभका कारण था सो न किया। इससे यदि इनको श्रीचैत्रवाल गच्छकी श्रीमहावीर स्वामी

की परम्परानुसार अनुक्रमसे श्रीजगचन्द्र सूरिजी तक पट्टावली मिलाने संबंधी कोई पट्टावली वा पुस्तक नहीं मिल सकी होवे तो उससे बिना परम्पराके रहनेके भयसे श्रीचैत्रवालगच्छसे परम्परा मिलाना छोड़कर श्रीबड़गच्छसे परम्परा मिलाकर श्रीमहावीर स्वामीके परम्परा वाले बननेके लिये "श्रीजग-चंद्रसूरिजी पहिले वड़गच्छके थे" ऐसा आलम्बन लेना मान्य किया होवे तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने परन्तु तो भी इसमें श्री जिनाज्ञाकी विराधनाका कारण होनेसे ऐसा आलंबन लेना उचित नहीं है क्योंकि श्रीचैत्रवाल गच्छ भी तो श्रीमहावीर स्वामीकी परम्परा वाला है इस लिये ऊपरका आलम्बनको छोड़कर उसही गच्छसे परम्परा मिलाना उचित है, जिसमें काल दोषादि कारणोंसे पूरी पट्टा-वली नहीं भी मिल सके तो भी कोई हरजा नहीं है क्योंकि श्री महावीर स्वामीके शासनमें अनुक्रमसे परम्परागत कितने ही नैमित्त कारणोंसे कितने ही गच्छ, कुल, शाखा, वगैरह अनेक हुए थे उन्होंमेंसे किसीके विशेष ज्यादा समुदाय होगया, किसीके कम, तथा किसीकी बहुत पीढ़ियों तक परम्परा चली किसीकी थोड़ी पेढ़ियों तक ही, और कितने ही विच्छेद भी होगये और कितनोंके यद्यपि परम्परासे पूर्वाचार्य होते आये तो भी काल दोषादि कारणोंसे पट्टावली नहीं मिलती और कितनोंके बीचमें से त्रुटक पट्टावली मिलती है, कितनोंके पाठांतरसे मतभेदकी मिलती है और किसीके बिलकुल नहीं मिलती तो क्या वे संयमी गण श्रीमहावीर स्वामीकी परम्परा वाले नहीं गिने जावेंगे सो तो कदापि नहीं किन्तु अवश्यमेव गिने जावेंगे, इस लिये यदि श्रीचैत्रवाल गच्छकी पूरी पट्टावली नहीं मिल सके तो भी कोई नुकसानको बात नहीं परन्तु

जितनी मिल सके उतनीहीमें भी श्रीजगचन्द्रसूरिजीसे लेके वर्तमानिक श्रीतपगच्छके समुदाय तक परम्परा मिलाना शास्त्रानुसार श्रीजिनाज्ञा मुजब है परन्तु पूरी पट्टावलीके अभावसे परम्परागत शुद्ध संयमियोंकी पट्टावली छोड़करके प्रत्यक्षपने शास्त्र मर्यादा और लौकिक विरुद्ध हो करके पूरी पट्टावली मिलानेके लिये झूठे आलम्बनसे असंयमियोंकी अशुद्ध परम्परामें मिलाना उचित नहीं है तिस पर भी श्रीजिनाज्ञाकी विराधना रूप बड़गच्छसे परम्परा मिलाकर भद्रजीवोंके आगे आप वड़गच्छके अधिपति बनना चाहते हो सो भी नहीं बन सकते क्योंकि आजतक परम्परागतसे भी बड़गच्छके-आचार्यादिकोंका और श्रावकोंका समुदाय विद्यमान कालमें भी मौजूद है इसलिये वड़गच्छसे आप अपनी परम्परा मिलावो तो भी वड़गच्छके अधिपति नहीं बन सकते किन्तु अपनी कल्पनाके लेखसे भी आप लोग श्रीजिनाज्ञाकी विराधाना करके भी शाखारूप बनो तो आपकी खुशी इसमें हमारा कोई नुकशान नहीं परन्तु शास्त्रप्रमाणानुसार श्रीचैत्रवाल गच्छसे अपनी परम्परा मिलाते तो संयमियोंकी शुद्धपरम्परा वाले ठहर सकते अन्यथा नहीं आगे इच्छा आपकी।

और हम लोग तो न्यायांभोनिधिजीके उपरोक्त लेख मुजब, जिनाज्ञानुसार तथा श्रीदेवेन्द्रसूरिजीके श्रीधर्मरत्न प्रकरणके पाठसे और श्रीक्षेमकीर्त्ति सूरिजी कृत श्रीवृहत्कल्प वृत्तिके अन्तमें प्रशस्तिके पाठसे श्रीजगचन्द्रसूरिजीको दूसरी बार शुद्ध संयम ग्रहण करने वाले श्रीचैत्रवाल गच्छके मानते हैं तथा इसी गच्छसे उनकी शुद्ध परंपरा भी मानते है और वोही परम्परा आप लोगोंकी भी ठहरती है नतु वड़गच्छकी सो विवेक बुद्धि हृदयमें लाके पक्षपात दृष्टिरागसे अन्धपरम्पराके आग्रहको छोड़ करके तत्व दृष्टिसे अच्छी तरहसे विचार लेना चाहिये।

अब यहां पर पाठक गणको विशेष निःसंदेह होनेके लिये श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी कृत श्रीवृहत्कल्पवृत्तिकी प्रशस्तिका पाठ इस जगह दिखाता हूं सो नीचे मुजब हैं।

सौवर्णाविविधार्थ रत्नकलिता एतेषडुद्देशकाः॥ श्रीकल्पेर्थनिधौ मताःसुकलशा दौर्गत्यदुःखापहे ॥ दृष्ट्वाचूर्णिसुबीजकाक्षरततिं कुर्म्याथगुर्वाज्ञया॥ खानंखानममीमयास्वपरयो र्थंस्फुटार्थीकृताः ॥१॥ श्रीकल्पसूत्रममृतंविवुधोपयोगयोग्यं॥ जरामरणदारुणदुख-हारि॥ येनोद्धृतंमतिमथामथितान् श्रुताब्धेः। श्रीभद्रबाहूगुरवेप्र-णतोऽस्मितस्मै॥२॥ येनेदं कल्पसूत्रं कमलमुकलवत् कोमलंमंजुला-भिर्गोभिदोषापहाभिः स्फुट विषय विभागस्यसंदर्शिकाभिः॥उत्फु-ल्लोद्देशपत्रं सुरसपरिमलोद्गारसारं वितेने। तंनिःसंबंध बंधुनुतमुनि मधुपा भास्करं भाष्यकारं॥ ३ ॥ श्रीकल्पध्ययनेस्मिन्नति गंभीरार्थं भाष्यपरिकलिते।विषमपदे विवरणकृते श्रीचूर्णिकृते नमः कृतिने॥४॥ श्रुत्तदेवताप्रसादादिदमध्ययनं विवृण्वता कुशलं॥ यदवापिमया तेन प्राप्नुयांबोधिमहमसमलं॥ ५ ॥ गमनयगभीरनीरश्चित्रोत्सर्गा पवादवादोर्मिः॥युक्तिशतरत्नरम्यो जैनागमजलनिधिर्जयति॥६॥श्री जैनशासन नभस्तलत्तिग्मरश्मिः, श्रीसद्मचान्द्रकुलपद्मविकाशका-रि। स्वज्योतिरावृतदिगंबरडंबरोऽभूत्, श्रीमान्धनेश्वरगुरुःप्रथितः पृथ्व्यां॥७॥श्रीमच्चैत्रपुरैकमंडनमहावीरप्रतिष्ठाकृत स्तस्माच्चित्रपुर-प्रबोधतरणिःश्रीचैत्रगच्छोऽजनि तत्रश्रीभुवनेन्द्रसूरिसुगुरुर्भूषणंभा सुर, ज्योतिसद्गुणरत्नरोहणगिरिः कालक्रमेणाभवत्॥८॥ तत्पादां-बुजमंडनंसमभवत्पक्षद्वयीशुद्धिमा न्नीरक्षीर सदृक्षदूषणगुणत्याग ग्रहैकव्रतः॥ कालुष्यंचजडोद्भवं परिहरन्दूरेणसन्मानसं॥ स्थायीरा जमरालवद्गणिवरः श्रीदेवभद्रप्रभुः॥ ९ ॥ तस्यःशिष्याःत्रयस्तत्पद सरसिरुहोत्संगश्रृंगारभृङ्गा॥ विध्वस्तानंगसंगाः सुविहित विहितो तुंगरंगाबभूवुः॥तत्राद्यः सच्चारित्रानुमतिकृतमतिः श्रीजगच्चंद्रसूरिः।

श्रीमद्देवेंद्रसूरिः सरल तरल सच्चित्तवृत्तिर्द्वितीयः ॥ १० ॥ तृतीय शिष्यः श्रुतवारिवार्द्धयः।परीषहाक्षोभ्यमनः समाधयः॥जयंतिपूज्या विजयेन्द्रसूरयः। परोपकारादि गुणौघभूरयः ॥ ११ ॥ प्रौढंमन्मथ पार्थिवं त्रिजगती जैत्रं विजित्यैयुषां॥ येषांजैनपुरेपरेणमहसाप्राक्रांत्तकांतोत्सवे ॥ स्थैर्यंमेरुरगाधतांचजलधिः सर्वं सहत्वं मही ॥ सोमः सौम्यमहर्प्पत्तिं किल महत्तेजोऽकृतप्राभृतं ॥ १२ ॥ वापं वापं प्रवचनवचोवीजराजींविनेय॥ क्षेत्रव्रातेसुपरिमलितेशब्दशास्त्रादिसीरैः॥१३॥ यैः क्षेत्रज्ञैः शुचिगुरुजनाम्नायवाक्सारणीभिः॥ सिक्त्वा तेनेसुजनहृदयानंदिसंज्ञानशस्यं ॥ १३ ॥ यैरप्रमत्तैः शुभमन्त्रजापैर्वैतालमाधायकृतं स्ववश्यं॥ अतुल्यकल्याण मयोत्तमार्थ सत्पुरुषः सत्वधनैरसाधिः ॥ १४ ॥ किं बहुना ॥ ज्योत्स्ना मंजुलया ययाध वलितं विस्वंतरामंडलं॥यानिशेषःविशेषविज्ञजनताचित्तश्चमत्कारिणी ॥ तस्यांश्रीविजयेन्दुसूरिसुगुरोर्निष्कृत्रिमायागुण ॥ श्रेणिःस्याद्यदि वास्तवस्तवकृतौविज्ञः सचावांपति ॥१५॥तत्पाणि पङ्कजरजः परिपूतशीर्षाः। शिष्याः स्त्रयोदधतिसंप्रतिगच्छभारं ॥ श्रीवज्रसेन इतिसद्गुरुरादिमोत्र। श्रीपद्मचन्द्रसुगुरुस्तु ततोद्वितीयः ॥ १६ ॥ तार्त्तीयीकस्तेषांविनेयपरमाणुरनणुशास्त्रेऽस्मिन् ॥ श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिर्विनिर्ममेविवृतिकल्पमिति ॥१७॥ श्रीविक्रमतः क्रामति नयना-[२]ग्नि-[३]गुणे-[३]न्दु-[१]परिमितेवर्षे॥ ज्येष्ठश्वेतदशम्यां समर्थितैषाचहस्तार्के ॥१८॥ प्रथमादर्शे लिखता नयप्रभप्रभृतियतिभिरेषा ॥ गुरुतरगुरुभक्तिभरोध्वहनादिवनम्रितशिरोभिः ॥ १९ ॥ इहवा ॥ सूत्रादर्शेषुयतो भूयसोवाचनाविलोक्यंते ॥ विषमाश्चभाष्यगाथाः प्रायः स्वल्पाश्चचूर्णिगिरः॥ २० ॥ ततः ॥ सूत्रेवा भाष्येवा यन्मत्तिमोहान्मयाऽन्यथा किमपिलिखितंवाविवृतं वा तन्मिथ्यादुःकृतंभयात् ॥२१॥

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीचैत्रवालगच्छ-के श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके शिष्य लिखे परन्तु श्रीवडगच्छके श्रीसोमप्रभसूरिजीके तथा श्रीमणिरत्नसूरिजीके शिष्य तो नहीं लिखे सो इसी तरहसे श्रीदेवेंद्रसूरिजीने भी श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी वृत्तिकी प्रशस्तिके पाठमें श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीवडगच्छके श्रीसोमप्रभसूरिजी तथा श्रीमणिरत्नसूरिजीके शिष्य न लिखके श्रीचैत्रवालगच्छके श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके शिष्य लिखे है सो पाठ तो न्यायांभोनिधिजीनेही "चतुर्थस्तुति निर्णय" की पुस्तकमें लिख दिखाया है सो ऊपरमें भी छप चुका है तो फिर उपरोक्त प्राचीन प्रभावक विद्वान् पुरुषोंके कथन किये हुए पाठोंका उत्थापनरूप और किसी भी शास्त्र प्रमाण बिना अपनी कल्पना मुजब मिथ्या आलम्बनोंसे दूसरी वार शुद्ध संयम ग्रहण करने वाले श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीवडगच्छके शिथिलाचारी श्रीसोमप्रभसूरिजी तथा श्रीमणिरत्नसूरिजीके शिष्य लिखना मानना यह कोई आत्मार्थी का तो काम नहीं हैं इसका विशेष खुलासा ऊपरमें छप चुका हैं।

और श्रीवडगच्छमें भी तो बहुत आत्मार्थी शुद्ध संयमी पूर्वाचार्य होगये परन्तु कर्मों की विचित्रतासे श्रीजगचन्द्रसूरीजी के ही गुरुजी वगैरहोंकी थोडीसीही पेढियोंमें शिथिलाचारकी प्रवृत्ति होगई होगी किन्तु सब वडगच्छमें नहीं इसलिये श्रीवडगच्छके आत्मार्थी शुद्ध संयमी सबको शिथिलाचारी नहीं समझना चाहिये ।

अब न्यायांभोनिधिजीके समुदाय वाले वगैरह महाशयों को मेरा यही कहना है कि उपरोक्त "चतुर्थ स्तुति निर्णय"की पुस्तकके ऊपरके लेखमें न्यायांभोनिधिजीने तीन थुईके मतकी प्ररूपणा करनेवाले श्रीरत्नविजयजी (श्रीराजेन्द्रसूरिजी) के गुरुजी वगैरह ३।४ पेढीवालेसंयमी नहीं थे इसलिये श्रीरत्न-

विजयजीको किसी संयमी गुरुके पास क्रिया उद्धार करके पुनर्दीक्षा लेने सम्बन्धी 'भवभीरू' 'आत्महितार्थी' वगैरह शब्दों पूर्वक उनको आगमकी आज्ञा भङ्ग रूप दूषणसे बचनेके लिये खूब सुस्पष्टतासे उपदेश दिया तथा जबतक श्रीराजेन्द्र-सूरिजी क्रियाउद्धार करके दूसरे शुद्ध संयमी गुरुको धारण न करे तबतक उनको साधुमाननेकी मनाई करी जिसपर भी भोले-जीव उनको साधुमाने तो असाधुको साधु मानने रूप मिथ्यात्वी ठहराये और क्रिया उद्धार सम्बन्धी शास्त्र मर्यादाके पाठ भी दिखाये और उसके दृष्टान्तरूपमें श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत पाठ भी दिखाया तो फिर श्रीजगचन्द्रसूरिजी महाराजने क्रिया उद्धार करके दूसरेको गुरु माने थे तिसपर भी उन्होंकी गुरु परंपरामें लिखनेका छोड़कर श्रीजिनाज्ञाभङ्गसे अपने संसार वढनेका भय न करके पहिलेकी परंपरामें लिखनेका ऐसा प्रत्यक्ष विरुद्ध आचरण न्यायांभोनिधिजीने तो अन्धपरंपरासे कर दिया परन्तु अब उन्होंकी समुदाय वालोंको अभिनि-वेशिक मिथ्यात्वका हठवाद अन्धपरंपराको छोड़कर श्रीजिना-ज्ञानुसार श्रीजगचन्द्रसूरिजीको वडगच्छमें लिखना मानना छोड़कर श्रीचैत्रवालगच्छमें लिखना अवश्यही मान्य करना चाहिये परन्तु विद्धत्ताके अभिमानादि कारणोंसे विरुद्ध बातको ही अन्धपरंपरासे पुष्टकरके चलाते रहना उचित नहीं है।

अब पाठकगणसे मेरा (इस ग्रन्थकारका) इतनाही कहना है कि 'हीर सौभाग्य काव्य' तथा 'विजयप्रशस्ति महाकाव्य' और श्रीमुनि सुन्दरसूरिजी कृत 'त्रिदश तरंगिणी' और धर्मसागरजी कृत 'पट्टावली' वगैरह जोजो श्रीतपगच्छकी पट्टावलियोंमें और अन्य ग्रन्थोंमें जिस जिस जगह पर श्रीजगच्चन्द्रजीने अपने वड गच्छमेंसे शिथिलाचारको छोड़ करके श्रीचैत्रवाल गच्छमें दूसरीवार

शुद्ध दीक्षा अङ्गिकार करी थी जिस पर भी इन महाराजको श्रीचैत्रवालगच्छकी परम्परामें न लिखकर भद्रजीवोंको भरमानेके लिये साच्यता वगैरहके कल्पित आलम्बनोंसे श्रीवडगच्छकी परम्परामें लिखे हैं सो उपरोक्त कथनानुसार सर्वथा श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे अप्रमाणिक समझना परन्तु जिस जिस ग्रन्थमें श्रीचैत्रवालगच्छकी परम्परा लिखी होवे सो श्रीजिनाज्ञानुसार प्रमाणिक समझना चाहिये।

और वर्तमानिक कितनेही गच्छवाले यति लोग, चैत्रवालगच्छके चैत्यवासी श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीसे तपगच्छ नाम प्रगट हुआ कहते हैं सोभी प्रत्यक्ष मिथ्याहै क्योंकि यह महाराज पहिले वडगच्छमें शिथिलाचारी थे परन्तु पीछेसे शिथिलाचार छोड़कर क्रिया उद्धार करके चैत्रवालगच्छमें सो दूसरी वार शुद्ध संयम ग्रहण किया था और पीछेसे वैराग्यभावसे खूब कठिन तपश्चर्या जीवित पर्यन्त आंबीलकी तपस्या करने लगे थे तब राजाने बहुत तपस्वी दुर्बल शरीरवाले देखकर "महातपा" विरुद दिया था परन्तु कालांतरमेंलोग 'महातपा' का 'महातमा' ऐसा कहने लग जावेंगे इसलिये 'महा' शब्दको छोड़ कर 'तपा' कहने लगे उस दिनसे इन महाराजके समुदायवाले श्रीतपगच्छके कहलाने लगे हैं इसलिये इन महाराजको चैत्रवाल गच्छके चैत्यवासी कहना मिथ्या है। और वर्तमानिक तपगच्छवालोंका वडगच्छसे तपगच्छ हुआ ऐसा कहना भी उपरोक्त लेखसे जिनाज्ञा विरुद्ध मिथ्या ठहरता है सो तो विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और वर्तमान कालमें जो जो आत्म कल्याणाभिलाषी जन अपना शिथिलाचारको छोड़कर क्रिया उद्धारसे दूसरी बेर शुद्ध संयम लेनेवाले महाशयोंको भी किसी संयमीको गुरु धारण करना उचित है परन्तु श्रीराजेंद्रसूरिजीकी तरह दूसरा गुरु

ारण किये विना स्वयं क्रिया उद्धार करना शास्त्र मर्यादा विरुद्ध है और क्रियाउद्धार करनेमें देशकालानुसार व्यवहार शुद्ध ुखलेना और न्यूनाधिक विद्वत्ता वगैरह सब गुणतो वर्तमानकाले ूसरेमें मिलने मुश्किल है इसलिये अभिमान छोड़कर छिद्रग्राही न होते हुए जिनाज्ञा आराधन करनेके लिये शास्त्रोक्त प्रमाणा-नुसार श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी महाराजकी तरह क्रिया उद्धार करना चाहिये।

और श्रीजगचन्द्रसूरिजीकी वडगच्छमें तथा चैत्रवाल गच्छमें दोनों गच्छोंमें परंपरा लिखना मान्य करो तो भी आत्मार्थी शुद्ध संयमियोंको तो श्रीचैत्रवालगच्छकी परंपरा मान्य करनी पडेगी और शिथिलाचारियोंको वडगच्छकी सो इस न्यायसे भी तो श्रीदेवेंद्रसूरिजी वगैरह महाराजोंकी परंपरा श्रीचैत्रवाल गच्छसे मिलाना ठहरता है नतु वडगच्छसे इसको भी तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे।

बस ? इसी तरहसे न्यायांभोनिधिजीने श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी महाराजको श्रीचैत्रवालगच्छके श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके शिष्य पनेमें लिखने, मानने,का छोडकर श्रीवडगच्छके श्रीसोमप्रभसूरिजी-के तथा श्रीमणीरत्नसूरिजीके शिष्य लिखने मानने रूप अपनी विरुद्धाचरणकी बातको दबादेनेके लियेही तो श्रीजिनेश्वरसूरिजी, श्रीअणहिलपुरपट्टणमें श्रीदुर्लभराजाकी पाठांतरसे श्रीभीमराजा की राज्य सभामें चैत्यवासियोंसे साधुके वर्ताव सम्बन्धी विवाद करके उन्होंकी अविधि उत्सूत्रता शिथिलताको सबके सामने प्रगट करते हुए शास्त्रोक्त साधुके वर्तावमें आप विशेष सच्चे (अतिशयखरे) रहे तब राजाने उन चैत्यवासियोंको कहा कि तुमतो साधुके वर्तावमें कवले (शिथिल) हो और श्रीजिने-श्वरसूरिजीको कहा आप खरतर (अतिशय विशेष सच्चे) हो इस

तरहसे उस दिनसे उन चैत्यवासियोंकी परंपरावाले 'कँवले' कहलाये और इन महाराजके परंपरा वाले 'खरतर' कहलाये इसलिये श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजके शिष्य श्रीजिनचन्द्र-सूरिजी तथा श्रीनवांगीवृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी श्रीजिन-वल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी वगैरह शासन प्रभावक महाराज सभी श्रीखरतरगच्छकी परंपरामें हुए हैं सो शास्त्रोंके प्रमाणोंसे और युक्तियोंके अनुसार प्रगटपने स्वयं सिद्ध हैं तथा ऐसेही श्रीतपगच्छादिके पूर्वाचार्योंने भी अपने बनाये ग्रन्थोंमें खुलासा पूर्वक लिखा है तिसपर भी न्यायांभोनिधिजीने अपने पूर्वज पुरुषोंके कथनको और शास्त्र प्रमाणानुसार सत्य बातको उत्थापन करके श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर विरुद नहीं मिलनेका ठहरा करके श्रीनवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेव-सूरिजी खरतरगच्छमें नहीं हुए ऐसा कहते हुए व्यर्थ द्वेष बुद्धिसे प्रत्यक्ष मिथ्या जूठे आलंबनोंसे शासन प्रभावक परमोपकारी श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज पर कितनीक बातोंके झूठे दोष लगाके इन महाराजसे सम्बत् १२०४ में खरतरगच्छकी उत्पति होनेका "जैनसिद्धांत समाचारी" परन्तु वास्तवमें "उत्सूत्रोंकी कुयुक्तियोंकी अन्धखाड" नामक पुस्तकमें तथा 'जैनतत्वादर्श' वगैरहोंमें लिखने वाले (न्यायांभोनिधिजी वगैरहों) ने अपने महाव्रतका भंग करके मिथ्या भाषणके लेखोंसे भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरकर अपने और दूसरे भद्र जीवोंके संसार बढ़ानेका कारण करते हुए आपसमें कदाग्रहका झगड़ा बढ़ानेका कारण किया जिसका निवारण करनेके लिये तथा ऊपरकी बातमें पाठकगणको विशेष निःसन्देह होनेके लिये यहां पर थोड़ेसे शास्त्रोंके प्रमाणों सहित, प्रत्यक्ष प्रमाणों पूर्वक युक्तिके साथ संक्षिप्तसे निर्णय करके दिखाता हूं।

सो प्रथम तो श्रीतपगच्छ नायक सुप्रसिद्ध श्रीसोमसुन्दर सूरिजीके शिष्यश्रीचारित्ररत्नगणिजीके शिष्यश्रीसोमधर्मगणिजीने विक्रम संवत् १५ सौके अनुमानमें श्री "उपदेश सत्तरी" नामा ग्रन्थ बनाया है उसमें श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतरगच्छ तथा नवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी खरतरगच्छमें हुएहैं ऐसा खुलासा पूर्वक लिखा है जिसका पाठ नीचे मुजब है।

जयत्यसौ स्तंभन पार्श्वनाथः प्रभावपूरैः परितः सनाथः ॥ स्फुटीचकाराभयदेवसूरि र्यंभूमिमध्यास्थित मूर्त्तिसिद्धं ॥ १ ॥ पुरा श्रीपत्तनेराज्यं॥ कुर्वाणे भीमभूपतौ ॥ अभूवन् भूतलाख्याताः॥ श्री जिनेश्वर सूरयः ॥ २ ॥ सूरयोभयदेवाख्यास्तेषां पट्टे दिदीपिरे ॥ येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो गच्छः खरतराभिधः ॥ ३ ॥ तेषामाचार्याणां, मान्यानांभूभृतामपि ॥ कुष्ठव्याधिरभूद्देहे, प्राच्यकर्मानुभावतः ॥४॥ ततः श्रीगूर्जरयात्रायां, स्थंभनकपुरं प्रति ॥ शक्त्यल्पत्येपिते चक्रु विहारं मुनिपुंगवाः ॥५॥ रोगग्रस्ततयात्यंतं। संभाव्यस्वायुषः क्षयं ॥ मिथ्यादुः कृतदानार्थं। सर्वं श्रीसंघमाहूयत् ॥ ६ ॥ तस्यामेव निशीथिन्यां स्वप्नेशासनदेवता ॥ प्रभोस्वपिषि जागर्षि, किंचेत्या हगुरुंप्रति ॥ ७ ॥ रोगेणक्लास्तिमेनिद्रेत्युक्ते देवी गुरुं जगौ ॥ उन्मोहयततन्त्वैषा सूत्रस्यनवकुक्कुटीः ॥८॥ शक्तेरभावात् किंकुर्वे, साहमैवंप्रबोवद ॥ त्वमद्यापि नवांग्या यद्वृत्तीः स्फीताः करिष्य सि ॥९॥ श्रीसुधर्मकृत ग्रन्थान् कंथमन्यास्म्यहं ॥ पंगोः प्रत्येतिको नाम मेर्वारोहण कौशलं॥ १० ॥ देव्याह यत्र संदेहः स्मर्त्तव्याहं त्वयातदा ॥ यथाभिनङ्कितान् सर्वान्पृष्ट्वा सीमंधरं जिनं ॥ ११ ॥ रोगग्रस्तः कथंमातः, करोमि विवृतीरहं ॥ साबादीत्तत्प्रतीकारं किंतूपायमिमंश्रृणु ॥ १२ ॥ अस्तिस्तंभनक ग्रामे सेढीनाम महा नदी ॥ तस्यां श्रीपार्श्वनाथस्य प्रतिमास्त्यतिशायिनी ॥ १३ ॥ यत्र च क्षरति क्षीरं प्रत्यहं कपिलेतिगौः तत् सुरोत्खा भूमौघ

दृक्षसि प्रतिमा मुखं ॥१४॥ तदेवं स प्रभावं तद्बिंबं बंद्यं स्वभावतः॥ यथा स्वं स्वस्य देहस्या दिति प्रोच्यगता सुरी ॥ १५ ॥ प्रातर्जागरित स्तेय स्वप्नार्थं मवबुद्धय च ॥ समं समग्र संघेन चेलु स्तंभनकं प्रति ॥ १६ ॥ तत्र गत्वा यथा स्थाने प्रेक्ष्यपार्श्वजिनेश्वरं ॥ उल्ल सत्सर्व रोमांच एवं ते तुष्टवुर्मुदा ॥ १७ ॥ जय तिहुअण वर कप्परुक्ख जय जिण धन्नंतरि, जय तिहुअण कल्लाण कोस दुरिअ-क्करि केसरि ॥ तिहुअण जण अविलंघिआण भुवण त्तय सामिय कुणसु सुहाइं जिणेसपास थंभणय पुरट्ठिय ॥ १८ ॥ वृत्ते तुषोडशे साचा सर्वाङ्गा प्रगटाभवत् ॥ अतएवाग्र वृत्तेतैः पच्चक्खेसिपदं कृतं ॥ १९ ॥ फणि फण फार फुरन्त रयण कर रंजिय नहयल, फलिणी कंदल दल तमाल नीलुप्पल सामल ॥ कमठा सुर उवसग्ग वग्ग संसग्ग अगंजिय, जय पच्चक्ख जिणेस पास थम्भणय पुर ट्ठिय ॥ २० ॥ एवं द्वात्रिंशता वृत्तैस्तुष्टुवुः पार्श्वतीर्थपं ॥ श्रीसंघोपि महापूजा ध्युत्सवानुस्तत्रनिर्ममे ॥ २१ ॥ अंत्यवृत्तयद्वयं तत्र त्यक्त्वा देव्युपरोधतः ॥ चक्रिरेत्रिंशतावृत्तैः स प्रभावं स्तवंहिते ॥ २२ ॥ तत्कालं रोगनिर्मुक्ताः सूरय स्तेपि जज्ञिरे ॥ नव्य कारित चैत्येच प्रतिमा सा निवेशिता ॥ २३ ॥ स्थानांगादि नवांगानां चक्रुस्ते विवृतीः क्रमात् ॥ देवता वचन नस्यात्कल्पांतेपिहिनिःफलं ॥ २४ ॥ सौवर्ण नव्य निघ्नन् ग्रंथपुस्तक संचयं ॥ दृष्ट्वा उत्तरिकाभूपादि-भिर्दिव्यानुभावतः ॥ २५ ॥ पत्तने भीमभूपालो द्रव्यलक्षत्रय व्ययात् ॥ लेखया मास ताः सर्वावृत्तीः स्वपरसूरिषु ॥ २६ ॥ एवं ते सूरयो भूरिकालं श्रीवीरशासने ॥ चिरं प्रभावनां चक्रुः प्राप्त सार्व त्रिकोदया ॥ २७ ॥ आज्ञायनामादिरसत्र्यं नायक, श्रीरासकृष्णो-रुगपांडुगादिभिः ॥ नाना विधस्थान कृतार्चनश्चिरंपार्श्व, प्रभुः पातु भावात् सदेहिनः ॥२८॥ अथवा॥ पार्श्वे श्रीकुंथुनाथस्य, सम्मण व्यवहारिणा॥पृष्टं मोक्षः कदाभावी, ममस्वाम्यपितं जगौ ॥ २९ ॥

तीर्थंश्रीपार्श्वनाथस्य तव सिद्धिर्भविष्यति ॥ अचीकरदिमामर्थां ततो सा विलिलिखे केवल ॥३७॥ इत्युपदेशसप्तत्यां द्वादशोपदेशः ॥

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीतपगच्छ वालोंनेही अपने बनाये ग्रंथमें पत्तननगरमें श्रीभीमराजा और श्रीजिनेश्वर सूरिजी-तथा इन्ही महाराजके शिष्य श्रीनवांगी वृत्ति कारक श्रीअभयदेव-सूरिजीको "गच्छः खरतराभिधः" याने श्रीखरतरगच्छमें होनेका प्रगटपने लिखा है और इन महाराजके शरीरमें बहुत व्याधि उत्पन्न होजानेसे स्वप्नमें शासन देवीने आकर रोग निवारण करनेके लिये स्थंभनक ग्रामके पास सेढीनामा नदीके नजीक महा प्रभावशाली अतिशय युक्त श्री पार्श्वनाथजीकी प्रतिमा भूमिके अंदर है उसपर कपिला गऊ नित्य दूधसे स्नान कराती है वहां जाकर उस प्रतिमाको प्रगट करनेसे रोग मुक्त होनेंका और नवांग सूत्रोंकी टीका करनेको कहा तब महाराजने श्रीसंघ सहित वहां जाकर "जयतिहुयण" इत्यादि भगवान्‌की स्तुतिकरनें लगे सो "फणीफण" इत्यादि १६वींगाथा बोलतेही प्रतिमा प्रगट हो-गई और श्रीसंघने भक्ति सहित महापूजा करी उस स्नात्रपूजाके न्हवण जलसे महाराजका शरीर अच्छा हुआ और अनुक्रमे श्री-स्थानांगादि नवअंगोंकी वृत्तियें करके श्रीवीरप्रभुके शासनकी उन्नति करतेहुए बहुत भव्यजीवोंका उपकार करके देवलोक पधारे सो खुलासा लिखा है ऐसे महाप्रभावक नवांगी वृत्तिकार श्रीअ-भयदेवसूरिजी महाराजको उपरोक्त 'उपदेशसप्तति' केपाठमें खर-तरगच्छके लिखे हैं।

२ और दूसरा "सोहन चरित्र" के दूसरे सर्गमें भी भीमराजाने श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद देनेका लिखा है जिसका पाठ नीचे मुजब हैं

महावीरात्सुधर्मार्य-जम्बू श्रीप्रभवादयः । आचार्याः क्रमशो-ऽभूवन् नवत्रिंशत्सुसंयताः ॥ ४१ ॥ चत्वारिंशास्ततोऽभूव-न्सूर-

यः श्रीजिनेश्वराः। अणहिल्लं पत्तनं ते विहरन्तः समागमन् ॥ ४२ ॥ धर्मोद्योतं कृतं तत्र श्रीजिनेश्वर सूरिभिः। वीक्ष्यभीमनृपः सद्यः प्रससाद महामनाः ॥ ४३ ॥ प्रतिवादि मतोत्साद एते खरतरा इति। तेभ्यः खरतरेत्याख्यं विरुदं प्रददौनृपः ॥ ४४ ॥ गगनेभव्योमचन्द्र—मितेविक्रमसंसदि। अलभन्त नृपादेतद्‌ विरुदं श्रीजिनेश्वराः ॥ ४५ ॥ शासने वर्द्धमानस्य कुलंचन्द्रंपुरातनम्। तस्मादारभ्यलोकेऽस्मि—न्नाप्नोत्खरतराभिधाम् ॥ ४६ ॥ तत्पट्टेजिनचन्द्राख्या अभवन्सूरयस्ततः। संवेगरङ्ग शालादि ग्रन्थरत्नविधायकाः ॥ ४७ ॥ सूरयोऽभयदेवाख्या—स्तेषांपट्टेऽतिविश्रुताः। नवाङ्गीवृत्तिकर्तारोऽभूवंस्तीर्थप्रभावकाः ॥ ४८ ॥ ततस्तेषांपट्टआसन्सूरयो जिनवल्लभाः। संघपट्टादिकर्तारो भव्य बोध विशारदाः ॥ ४९ ॥ तेषांपट्टे जज्ञिरेऽथ जिनदत्तादयोऽमलाः। सूरयः संयमसिताः शासनोन्नति कारकाः ॥ इत्यादि ॥

देखिये ऊपरके पाठमें भी श्री अणहिलपुर पट्टणमें प्रतिवादियोंको जीतनेसे श्री भीमराजाने विक्रम संवत् १०८०में श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतरविरुद दिया और इन्हीं महाराजके शिष्य श्री जिनचंद्र सूरिजी तथा श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी और श्री जिनवल्लभ सूरिजी वगैरहोंको अनुक्रमे पट्टधर लिखे हैं।

३ तीसरा फिर भी श्री तपगच्छके श्री हेमहंस सूरिजीने श्री "कल्पांतरवाच्य" में भिन्न भिन्न गच्छोंके प्रभावक पूर्वाचार्यों के संबंधमें श्री नवांगी वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरिजीको तथा इन महाराजके शिष्य श्रीजिनवल्लभ सूरिजीको श्रीखरतरगच्छके लिखे हैं जिसका लेख नीचे मुजब है।

नवांग वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरि जेणे थंभणइ गामइ श्री सेढ़ी नदी नइ उपकंठइ श्रीपार्श्वनाथ तणी स्तुतिकीधी धरणेंद्र प्रत्यक्ष कीधउ शरीरतणउ कोढ रोग उपसमाव्यउ तेहना शिष्य

श्रीजिनवल्लभसूरि थया ते चारित्र निर्मल अनेक ग्रन्थ तणउ निर्माण कीधउ इणइ अनुक्रमइ श्रीखरतरपक्षइ अनेक सूरिवर सातिशयइ थया, इत्यादि ॥

४ चौथा और भी श्रीतपगच्छके श्रीमुनिसुंदर सूरिजीने "त्रिदश तरंगिणी" में उपरोक्त 'उपदेश सत्तरी' तथा 'कल्पांतरवाच्य' मुजब ही श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्री अभयदेव सूरिजीके शिष्य श्री जिनवल्लभ सूरिजी और इनके शिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजीको लिखे है जिसका पाठ नीचे मुजब है यथा—

व्याख्याताभयदेव सूरि रमल प्रज्ञो नवांग्या पुनः, प्रौढिं श्री जिनवल्लभोगुरुरधीत् ज्ञानादि लक्ष्म्याःपुनः ॥ भव्यानां जिनदत्त सूरिरददद्दीक्षां सहस्रस्यतु, ग्रन्थान् श्रीतिलकश्चकार विविधान् चन्द्रप्रभाचार्यवत् ॥ १ ॥

५ पांचवां श्रीतपगच्छके श्रीरत्नशेखरसूरिजीने भी श्रीआचार प्रदीपमे श्रीजिनदत्त सूरिजीको श्रीखरतरगच्छके लिखे हैं सो ग्रन्थ अबी मेरेपास नहीं है इसलिये उस पाठको यहां नहीं लिख सकता परन्तु 'आचारप्रदीप' मूल ग्रन्थ तथा भाषांतर छपा हुआ प्रसिद्ध है सो पाठक गण स्वयं देख लेवेंगे—

६ छटा और भी देखो खास न्यायांभो निधिजीने ही 'चतुर्थ स्तुति निर्णय' की पुस्तकमें श्री अभयदेव सूरिजीको खरतरगच्छके लिखे हैं जिसके पृष्ट १०७ की पंक्ति २० से पृष्ठ १०८ की पंक्ति १० तकका लेख नीचे मुजब है

तथा श्रीअभयदेवसूरिने तथा तिनके शिष्यने देवसि पडिकमणेकी आदिमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है और श्रुतदेवता अरु क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करना तथा तिनकी थुइ कहनी कही है तथा सम्यक्त्व देशविरत्यादिके आरोपणेकी चैत्य वंदनामें प्रवचन देवी, भुवन देवता, खेत्र देवता, वेयावच्चगराणं

इनके कायोत्सर्ग और इन सर्वोंकी पृथग् पृथग् थुइ कहनी कही है इस समाचारीके अंत श्लोकमें ऐसें लिखा हैके;श्रीअभयदेवसूरिके राज्यमें यह समाचारी रची गई है और इसी पुस्तककी समाप्तिमें ऐसे लिखा है इति श्रीखरतरगछे श्रीअभयदेवसूरि कृता समाचारी संपूर्णा ॥ यह पुस्तकभी हमारे पास है किसीको शंका होवे तो देख लेवे ॥

देखिये ऊपरके लेखमें न्यायांभोनिधिजीने तीनथुइ वालोंके कदाग्रहको हटानेके लिये श्रीअभयदेवसूरिजीको श्रीखरतर गच्छके लिखके इन महाराजके कथनसे प्रतिक्रमणमे च्यारथुइ कहना ठहराया और श्रीखरतर गच्छके अभयदेवसूरिजी कृत समाचारीके लेखमें किसीको शङ्का होवे तो खास उस पुस्तकको देखा करके लोगोंको शंकाका निवारण करनेकेलिये खुलासा सूचना करी है।

७ सातवा और भी सुप्रसिद्ध १४४४ ग्रन्थकारक श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज कृत श्री 'अष्टक' जी नामा ग्रन्थको टीका श्रीजिनेश्वरसूरिजीने विक्रम् सम्वत् १०८० में बनाई है और उस टीकाको श्रीअभयदेवसूरिजीने शुद्ध करी है सो वो श्री अष्टकजी नामा ग्रन्थ भाषान्तर सहित छपकर प्रकाशित हो चुका है उसकी 'प्रस्तावना' में उपरोक्त इन तीनों महाराजोंके संक्षिप्त चरित्र लिखे हैं उसमेंसे यहां श्रीजिनेश्वरसूरिजीके तथा श्रीअभदेवसूरिजीके चरित्र लिख दिखाता हूं सो नीचे मुजब है।

श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज।

आ "अष्टकजी" नामना ग्रन्थनी टीका करनारा श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज विक्रम संवत् एक हजारना सैकामां विद्यमान हता, एम संभवे छे। ते श्रीवर्द्धमानसूरीश्वरजी महाराजना शिष्य हता, अने श्रीअभयदेवसूरिजी, जिनचद्रसूरिजी, तथा जिनभद्रसूरिजीना गुरु हता। ते ओ संसारी पणामां सोम

आसना ब्राह्मणना पुत्र हता। तथा तेमनुं नाम शिवेश्वर हतुं तथा मालवाना रहेवासी हता. तेओ गुजरातना राजा दुर्लभसेनना समयमां चैत्यवासीओ साथे धर्मवाद करवाने पोताना भाई बुद्धिसागरजीनी साथे गुजरातमां आव्या हता; तथा त्यां दुर्लभसेनराजानी सभामां, सरस्वतीभाण्डागारमांथी मंगावेली-दशवैकालिकनी टीकामांथी साध्वाचार प्रकरण वांचीने तेमणे चैत्यवासीओने हराव्या हता; अने एवी रीते सभाने जीतवाथी राजाए तेमने "खरतर" नामनुं विरुद आप्युं हतुं, तेमने अष्टकनी टीका विक्रम सम्वत् १०८० मां जावालपुर नामना गाममां बनावी छे; वली तेमणे पञ्चलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र, तथा सम्वत् १०९२ मां आसापलीमां रहीने लीलावती कथा, तथा डींडीयानकमां रहीने कथानककोश विगेरे ग्रन्थो बनाव्या छे।

श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज।

आ ग्रन्थनी टीकाना शोधनार श्री अभयदेवसूरि महाराज पण विक्रम संवत् एक हजारना सैकामां विद्यमान हता, तेम कहेवुं निर्विवादज छे, तेमनो जन्म धारा नगरीना व्यापारी धननो.स्त्री धनदेवीनी कुक्षिये थयो हतो, तथा संसारीपणामां तेमनुं अभयकुमार नाम हतुं ते श्री जिनेश्वरसूरिजी महाराजना शिष्य हता, तेमने विक्रम संवत १०८८ मां सोल वर्षनी वयेज आचार्यपदवी मली हती, अने तेथी तेमनो जन्म विक्रम संवत १०७२ मां होवानुं साबित थाय छे, वली विचारामृत नामना ग्रन्थमां कहेलुं छे के, तेमणे विक्रम संवत् ११२५ मां धोलकामां रहीने श्री हरिभद्रसूरिजी महाराजना बनावेला पञ्चाशक नामना ग्रन्थपर टीका रची छे, तेम तेमणे त्रणथी मांडीने अग्यार सुधिना एटले नव अङ्गोनी टीका ओ, जयतिहुअणस्तोत्र, जिनचन्द्रगणिजीए बनावेला नवतत्वप्रकरणनी टीका, निगोदषट्

त्रिंशिका, पञ्चनिग्रन्थविचारसंग्रहणी पुद्गलषट्त्रिंशका, संग्रहणी जिनभद्रजीए बनानेला विशेषावश्यकभाष्यपर टीका, हरिभद्र-सूरिजीना बनावेला षोडशकनी टीका, देवेन्द्र महाराजे बनावेला सतारिकप्रकरणनी टीका विगेरे अनेक ग्रन्थो बनावेला छे, एवीरीते ६७ वर्षोनु' आयुष्य संपूर्ण करीने विक्रम संवत् ११३९ मां कपडवंजमा तेमनु' देवलोकगमन थयु', एवी रीते महान् आचार्योनो सक्षेपथी इतिहास जाणवो।

८ आठवा और भी श्री जैनधर्मके प्राचीन इतिहासकी दोनों पुस्तकोंमें श्रीजिनेश्वरसूरिजीका चरित्र नीचे मुजब लिखा है।

जिनेश्वरसुरि—आ महान् आचार्य, उद्योतनसूरिना शिष्य वर्धमान सूरिना शिष्य हता, तथा नवांगी टीकाकार श्रीअभय-देवसूरिना गुरु हता। खरतरगच्छ आ आचार्यथी चाल्यो छे, ते विक्रम सवत् १०८० मां विद्यमान हता। तेमणे जावालपुरमां रहीने हरिभद्रसूरिजीना अष्टकपर टीका रचेली छे। तेमने गुजरातना राजा दुर्लभसेन तरफथी खरतरनु' विरुद मल्यु' हतु'। वली तेमणे पंचलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र, लीलावतीकथा, कथा-रत्नकोष विगेरे अनेक ग्र'थों रचेला छे। तेमने माटे प्रभाविक-चरित्रमां प्रभाचंद्रसूरिअे नीचे प्रमाणे वृत्तांत आपेलु' छे।

मालवा देशमां आवेली धारा नगरीमां ज्यारे भोज राजा राज्य करता हता त्यारे त्यां लक्ष्मीपति नामनो एक महा-धनाढ्य व्यापारी रहेतो हतो। एक दहाडो त्यां महा विद्वान् श्रीधर अने श्रीपति नामना ब्राह्मणना पुत्रो देशो जोवानी इच्छाथी आवी चड्या, तथा भिक्षा माटे ते लक्ष्मीपतिने घेर आववाथी तेणे तेओने भक्तिपूर्वक भिक्षा आपी। ते शेठना घरनी भींतपर हमेशां लेख लखाता हता। ते लेखने आ बुद्धि-वान बन्ने ब्राह्मणो हमेशां जोता। अने तेमनी अपूर्व याद

शक्तिथी ते लेख तेओने कंठे थइ गयो। एक दहाडो ते नगरमां आग लागवाथी ते शेठनुं घर धनमाल सहित नष्ट थयुं। ते दिवसे ज्यारे ते बन्ने ब्राह्मणपुत्रो ते शेठनेघेर आव्या, त्यारे तेओ ते शेठने शोकमां निमग्न थएलो जोइ अत्यंत दिलगीर थया। शेठे तेओने कह्युं के, हे ब्राह्मणपुत्रो! मने मारा द्रव्यादिकनी हानिथी शोक थतो नथी, पण मारा लेखनी हानिथी मने घणुं दुःख थाय छे। त्यारे ते ब्राह्मणपुत्रोए कह्युं के, हे यजमान! अमो गरीब भिक्षुको आपने बीजो उपकार करवाने तो असमर्थ छीये, तो पण तमोने तमारा ते लेखनी जो इच्छा होशे तो अमो ते आपने यथास्थित लखी आपीशुं। ते सांभली अत्यन्त हर्षित थएला ते लक्ष्मीपति शेठे तेमने उंचा आसनपर बेसाडी अत्यंत सन्मान आप्युं। पछी तेओए तिथिवार पूर्वक ते समस्त लेख शेठने लखी आप्यो, ते जोइ शेठे विचार्युं के, अहो! आ तो मारा पूर्वभाग्यना प्रबलथी कोइक मारा गोत्रदेवोज मने प्राप्त थया छे॥ पछी ते शेठे तेमने उत्तम भोजन तथा वस्त्रादिकथी सन्मान आपीने पोताने घेर चाकर राख्या। बाद तेओ बन्नेने जितेंद्रिय अने शांत-स्वभावी जोइने शेठे विचार्युं के, आमने जो मारा आचार्य शिष्यो करे, तो खरेखर जैनशासनने दीपावनारा तेओ थाय। एटलामा त्यां श्रीवर्धमानसूरि पधारवाथी ते लक्ष्मीपति शेठ ते बन्ने ब्राह्मणपूत्रोने साथे लेइने तेमने वांदवामाटे तेमनी पासे गयो। तेओनां हस्तरेखा आदिक चिन्हो जोइने गुरुए तेमनें दिक्षायोग्य जाणीने लक्ष्मीपतिनी अनुज्ञापूर्वक दीक्षा आपी। दीक्षाबाद तेओ योगवहनपूर्वक सर्व सिद्धांतोनो अभ्यास करीनें पंच महाव्रतो निरतिचारे पालवा लाग्या। छेवटे तेओनें योग्य जाणीने गुरु महाराजे आचार्यपद आपी तेओनां अनुक्रमे

जिनेश्वरसूरि तथा बुद्धिसागरसूरि नाम पाड्यां पछी श्रीवर्द्धमान-सूरिजीओ तेओने कह्युं के आज कल अणहिलपुर पाटणमां चैत्यवासीओनु घणुं जोर होवाथी त्यां शुद्ध मुनिराजोने रहेवाने स्थानक मलतुं नथी, माटे ते उवद्रवने तमो बन्ने तमारी शक्ति अने बुद्धिथी त्यां जइ निवारण करो ? केमके, आ सांप्रतका-लमां तमारा सरखा बीजा विचक्षणो नथी। गुरु महाराजनी ते आज्ञाने मुकुटरूप करीने तेओ बन्ने त्यांथी विहार करीने अनुक्रमे पोताना चरणन्यासोथी पृथ्वीने पवित्र करता थका गुर्जर देशमां आवेला अणहिलपुर पाटणमां पधार्या, ते समये ते नगरमां महा विद्वान् तथा नीतिशास्त्रमां विचक्षण दुर्लभसेन नामे राजा राज्य करतो हतो, त्यां अेक सोमेश्वर नामनो पुरोहित वसतो हतो, तेने घेर आ बन्ने जैनाचार्यो गया, तथा वेदपाठोच्चार करवा लाग्या, ते सांभली पुरोहित तेअेने अत्यन्त आदरसत्कार आप्यो, त्यारे तेओअे पण तेने आशिष आपी के, 'अपाणि पादो यवनो गृहीता। पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः स वेत्ति विश्वं न च तस्य वेत्ता । शिवो ह्यरूपी स जिनोऽव-ताद्वः ॥ १ ॥ पछी ते पुरोहिते तेओने आदर पूर्व्वक पूछ्यु के, तमोअे अहीं कइ जगोपर निवास कर्यो छे, ? त्यारे तेओअे कह्युं के, अहीं चैत्यवासि यतिओनुं जोर होवाथी अमोने रहेवाने स्थानक मल्युं नथी, ते सांभली निर्मल मनवाला पुरो-हिते तेओने रहेवा माटे पोतानी चन्द्रशाला आप्याथी त्यां परिवार सहित तेओअे निवास कार्यो, त्यां तेओ लोलता रहित निरवद्य आहार पाणी लेता थका विद्याविनोदथी पोतानो समय निर्गमन करवा लाग्या। अेटलामां त्यां चैत्यवासिओना नोकरो आवीने तेओने कहेवा लग्या के, अरे ! साधुओ ! ! तमो तुरत आ नगरनी बाहर निकली जाओ ? केम के, अहीं

चैत्यवासीओ सिवाय बीजा श्वेतांबर मुनिओने रहेवानो हुक्म नथी, ते सांभली पुरोहिते कह्युं के, आ बाबतनो मारे राजापासे जइ राजसभामां निर्णय करवो छे, अेम कही ते दुर्लभराजा पासे गयो, अने त्यां ते चैत्यवासीओ पण आव्या, पछी पुरोहिते राजाने विनती करी के, हे राजन्! आ नगरमां बे उत्तम जैनमुनिओ पोताने स्थानक नहीं मलवाथी मारे घेर पधार्या छे, तेओ महा गुणी होवाथी में तेओने रहेवाने स्थानक आप्युं छे, पण आ चैत्यवासी यतिओअे पोताना मांणसो मारे घेर मोकली तेओने नगरनी बाहर नीकली जावानु कहेवराव्यु छे, ते सांभली तुल्यदृष्टिवाला दुर्लभराजाअे जरा हसीने कह्युं के, मारा नगरमां जे गुणी माणसो देशान्तरथी आवीने वसे छे, तेओने कोइ पण निवारी सक्तु नथी तो, आवा महात्माओने अहीं नहीं वसवा देवा माटेशु प्रयोजन छे,? त्यारे चैत्यवासीओ बोली उठ्या के, हे महीपति! पूर्वे श्रीवनराज नामना जे महापराक्रमी राजा आहीं थअेला छे, तेमने बाल्यपणामां चैत्यवासी देवचन्द्रसूरिअे (बीजा मत प्रमाणे शिलगुणसूरिअे) आश्रय आपी पोष्या हता, अने ते उपकारना बदलामां वनराजे संप्रदाय विरोधना भयथी आ नगरमां फक्त चैत्यवासीओ अेज रहेवु अनेबीजा श्वेतांबर जैनसाधुओअे अही रहेवु नहीं, अेवो लेख करी आप्यो छे, अने तेथी अमो तेमने अहीं वसवा माटे मना करीअे छीअे, अने आपे पण आपना ते पूर्वजोनी आज्ञा पालवी जोइअे, त्यारे राजाअे कह्युं के, अमारा पूर्वजोनी आज्ञा अमारे पालवी जोइअे ते व्याजबीज छे, केमके, आप जेवा मुनिओनी आशिषोथी अमारा जेवा राजाओ ऋद्धिवंत थाय छे, अने टुंकामां कहीये तो आ राज्य आपनुज छे, तेमां कंई पण

सन्देह नथी, वली तमो पण जैन मुनिओ छो, तो मुनिओनो आचार शुं छे? ते सांभलवानी मने इच्छा छे, अने ते आचारमां जो आ बन्ने मुनिओनुं विरोधपणुं मालुम पडे, तो तेओअे आ नगरमां रहेवुं नहीं, अेम कही ते दुर्लभराजाअे पोताना सरस्वती भण्डारमां रहेलुं, जैन मुनिना आचारना स्वरूपवालुं दशवैकालिक सूत्र मंगाव्युं, अने तेमां कहेला आचार प्रमाणे आ बन्ने आचार्योंने प्रवर्तता जोइने तेमने 'खरतर' विरुद आपी रहेवामाटे त्यां निवास आप्यो, अने चैत्यवासीओ झंखवाणा थइने पोताने स्थानके गया, तथा त्यारथी ते अणहिलपुरमां शुद्ध जैन मुनिओने निवास मलवा लाग्यो, अने चैत्यवासीओनुं जोर धीमे धीमे कमी थतुं चाल्युं त्यां बुद्धिसागराचार्यें बुद्धिसागर नामनुं आठ हजार श्लोकनुं नवुं व्याकरण रच्युं, अेवी रीते आ खरतरगच्छना स्थापनकरा श्रीजिनेश्वरसूरि आचार्य महाप्रभाविक थअेल छे।

९ नवम औरभी सर्वगच्छोंकेमान्य श्रीनवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके शिष्य श्रीप्रसन्नचन्द्रसूरिजीकी आज्ञानुसार श्रीसुमतिविमलवाचकके शिष्य श्रीगुणचन्द्रगणजीने श्रीअभयदेवसूरिजी स्वर्ग पधारे उसी वर्ष, याने सम्वत् ११३९ वर्षे प्राकृत भाषामें १२००० प्रमाणे श्रीवीरप्रभुका चरित्रकी रचना करी है उसके अन्तकी प्रशस्तिमें भी श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे "सुविहित" अर्थात् खरतर संतती प्रचलीतहोनेका खुलासा लिखा है जिसका पाठ नीचे मुजब है।

इय सुक्कज्जाणानलनिदड्ढ। घण घाइ कम्मदारुस्स। गोयम पहुस्स सहस्सा। उपन्नं केवलं नाणं॥१॥ बारस वासाणि विवोहिऊण। भव्वे सिवंगए तम्मि॥ भयवं सुहम्मसामी। निव्वाण पहं पयासेइ॥ २॥ तंमिविचिरकालं विहरिऊण।

सिरिजंबूसामिणो दाउं। गच्छ गणाण मणुयणं। संपत्ते सिद्धि वासंमि ॥ ३ ॥ एवं विज्जाहर सुर नर। सुरिंद सन्दोह वंदणिज्जेसु समइक्कन्तेसु महा। पहुसु सेज्जंभवाईसु ॥ ४ अइसय गुणरयण निही। मिच्छत्त तमंधलोअ दिणनाहो ॥ दूरिच्छारिय वइरो। वइरसामी समुप्पन्नो ॥ ५ ॥ सहाइतस्स चंदे। कुलंमि निप्पडिम पसम कुल भवणं। आसि सिरि वद्धमाणो। मुणिनाहो संजम निहिव्व ॥ ६ ॥ बहु कलिकालतम पसर। पूरिया सेस विसम सम भागो ॥ दीवेणांव मुणीणं। पयासिओ जेन मुत्तिपहो ॥ ७ ॥ मुणि-वइणो तस्स हरट्टहास। सिअ जस पसाहिआसस्स ॥आसि दुवेवर सीसा। जयपयडा सूर ससिणोव्व ॥ ८ ॥ भवजलहि वीइसंभंत। भविय संताण तारण समत्थो ॥ बोहित्थोव्व महत्थो सिरि सूरि जिणेसरो पढमो ॥ ९ ॥ गुरुसीराओ धवलाओ। सुवि हिया साहू संतती जाया॥ हिमवंताऊ गंगुव्व निग्गया सयल जण पुज्जा ॥१०॥ अन्नोयपुणिणमाचन्दो। सुन्दरो बुद्धि सागरो सूरी ॥ मिम्म विय पवर वागरण। च्छन्द सत्थो पसत्थमई ॥ ११ ॥ एगंतवाय विल सिर। परवाइ कुरंग भंग सीहाणं ॥१२॥ तेसिं सीसो जिण चन्दो। सूरि नामा समुप्पन्नो ॥ १२ ॥ संवेगरंगसाला। न केवलं कव्व-विरइणाजेण। भव्वजण विम्हयकारी। विहिया संयम पवित्तीवि ॥ १३ ॥ ससमय पर समयन्नू। विसुद्ध सिद्धांत देसना कुसलो। सयल महिवलय वित्तो। अन्नो अभयदेव सूरित्ति ॥ १४ ॥ जेण लंकार धरी। सलक्खणा वरपया पसन्नाय ॥ नवांगवित्तिरयणेण। भारइ कामिणिव्वकया ॥ १५ ॥ तेसिं अत्थिवणेओ। समत्थ सत्थत्थ बोह कुसलमई। सूरि पसन्नचन्दो। चन्दोइव जणमणा-णंदो ॥ १६ ॥ तव्वयणेणं सिरिसुमइ। वायगाणं विनेयलेसेण ॥ गणिणा गुणचन्देणं। रइअं सिरि वीरचरिय मिणं ॥ १७ ॥ इत्यादि

देखिये ऊपरके पाठकी "भवजलहि वीइ संभंत भविय संताण

तारण समत्थो बोहित्थोव्व . महत्थो सिरि सूरिजिणेसरो पथमो ॥ ९ ॥ गुरु सीराओ धवलाओ सुविहिया साहु सन्तती जाया हिम वंताऊ गंगुव्व निग्गया सयल जण पूज्जा ॥ १० ॥ इन गाथाओंमें भव्यजीवोंको भवजलधिके दुखसे पार उतारनेमें नाव समान श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे सब जनोंके पूज्यने योग (हीमवन्त पर्वतसे गङ्गानदीके निकलनेकी तरह) सुविहित याने खरतर सन्तती चली अर्थात् साधुके वर्तावमें शुद्ध चलने रूप सुविहित खरतर परम्परा चली ऐसा खुलासा पूर्वक लिखा है सो सुविहित कहों अथवा खरतर कहो दोनों शब्द पर्याय वाची एकार्थ वाले हैं क्योंकि पहिले श्रीअणहिलपुर पट्टनमें चैत्यवासिलोगोंने वहांके राजाको अपने वशीभूत करके उनसे पट्टा (हुकुम नामा) लिखा लिया था कि इस नगरमें हम लोगोंके समुदाय (चैत्यवासियों) के सिवाय अन्य जैन श्वेतांबर मुनि रहने न पावे सो इस तरहकी श्रीवनराज चावड़ासें अपनी स्वार्थ सिद्धताकी बात मंजूर कराके क्रियापात्र शुद्ध मुनियोंके आभावसेअपना मनमाना उपदेशसे भद्रजीवोंको अपने गच्छ परम्पराके और दृष्टि रागके फन्देमें फँसाकर शिथिलाचारी होते हुए कितनीक बातोंमें अविधि करके उत्सूत्रतासे अपनी बात जमा बैठे थे इसलिये इस नगरमें चैत्यवासियोंके सिवाय अन्य शुद्ध संयमी जैन मुनियोंको रहनेका स्थान भी नहीं मिल सकता था उससे साधुओंका आना जाना इस नगरमें प्रायः बन्ध हो गया था तब श्रीवर्द्धमानसूरिजी महाराजकी आज्ञानुसार श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज उपरोक्त अनर्थका निवारण करके भव्यजीवोंको विधिमार्गकी सत्य बातोंमें प्रवर्तमान करनेके लिये और शुद्ध संयमी साधुओंका आना जाना शुरू करानेके लिये इस अणहिलपुर पट्टणमें पधारे सो जब चैत्यवासियोंके

सीखाने (कहने) से उनोंके नोकर लोगोंने श्रीजिनेश्वरसूरिजी को नगर छोड़कर बाहिर चले जानेका कहा तब इन महाराजने सोमेश्वर नामा राज्यपुरोहितकी सहायतासे श्रीदुर्लभराजाकी राज्यसभामें उन चैत्यवासियोंके साथ विवाद करके उन्होंको हटाये तब राजाने इन महाराजको खरतर याने साधुके वर्ता-वमें-अतिशय विशेष सच्चे मार्गमें चलने वाले सुविहित अर्थात् शुद्धसाधु आप हैं ऐसा कहके अपने नगरमें ठहरनेको आज्ञा दी।

तबसे महाराजका वहां रहना हुआ तथा अन्य भी शुद्ध संयमियोंका आना जाना शुरू होगया और चैत्यवासियोंकी पोल भी खुलती गई उन्होंकी माया फंदसे बहुत भव्य जीवों का छुटकारा होगया और विधिमार्गका शुद्ध व्यवहारसे श्रीजिनाज्ञाकी आराधना करके आत्म कल्याणके रस्ते लगे और इन महाराजके उपदेशसे तथा शुद्धवर्तावके देखनेसे राजा भी महाराजका भक्त होगया और महाराजके पास धर्मशास्त्रोंका अध्ययन भी करने लगा और जीवदया वगैरह धर्म कार्योंमें और न्यायमें वर्तने लगा था और उपरोक्त कारणसे ही तो इन महाराजके समुदाय वाले उस नगरमें शुद्ध संयमी सुविहित (खरतर) कहलाने लगे सो ही नामसे गच्छ प्रसिद्ध होगया इसीलिये श्रीगुणचन्द्र गणिजीने विक्रम संवत् ११३९ वर्षे श्रीवीरप्रभु का चरित्रकी रचना करी उसके अन्तकी प्रशस्तिमें श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे खरतर (सुविहित) साधुओंकी सन्तती परम्परा जाता अर्थात् शुरू होनेका खुलासा पूर्वक लिखा है सो सुविहित कहो अथवा खरतर कहो दोनों शब्द पर्यायवाची एकार्थ सूचक है और 'वसति वासी' याने निर्दोष मकानमें ठहरने वाले शुद्ध साधु कहो तो भी सुविहित–खरतरके तात्पर्य को प्रगट करनेवाला होनेसे तीनों शब्द एकार्थवाले हैं।

और श्रीमहाविदेह क्षेत्रकी अपेक्षासे तो अनादिसे सुविहित खरतर वसतिवासी शुद्ध संयमियोंकी सन्तती शुरू है तथा इस भरत क्षेत्रकी इन्ही अवसर्पिणीकी अपेक्षासे श्रीऋषभदेव स्वामीजीसे शुरू होनेका कहो अथवा निज निज शासनकी अपेक्षासे शासन नायक श्रीवर्द्धमान स्वामीजीसे सुविहित खरतर वसतिवासी शुद्ध संयमियोंकी संतती शुरू समझो, परन्तु भगवान्‌के मोक्ष पधारे बाद अनुमान हजार वर्ष किंचित् किंचित् किसी किसीने शिथिलाचार चैत्यवासकी प्रवृत्ति करी थी सो श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजके समय एकमें तो अणहिलपुर पट्टण जैसे ग्राम नगरोंमें चैत्यवासी लोगोंने अपना पूरा जोर जमा लिया था, तथा अपने क्षेत्रोंमें शुद्ध संयमियोंका विहार राजाओंके हुक्म से बन्ध करा दिया और अपनी मति कल्पना मुजब इहलोक स्वार्थके लिये उत्सूत्रतासे और कुयुक्तियोंसे भव्यजीवोंको अपनी माया जालमें फँसाकर अविधि रूप उन्मार्गमें गेरकर अपने अपने गच्छकी अन्ध-परम्पराके और दृष्टिरागके बन्धनसे भव्य जीवोंको खूब बांध लिये थे इस तरहका महान् अनर्थ करके अन्य शुद्ध संय-मियोंके और विधि मार्गके द्वेषी बना लिये थे तब श्रीजिने-श्वर सूरिजी महाराज अपने गुरु भाई श्री बुद्धिसागर सूरिजीके साथ उपरोक्त महान् अनर्थका निवारण करके शुद्ध संयमियोंका विहार शुरू करनेके वास्ते अणहिलपुर पट्टणमें पधारे और राज्य सभामें चैत्यवासियोंसे शास्त्रार्थ करके उन्होंको पराजय किये उससे संयमियोंका विहार होने लगा और इन महाराज की समुदायमें उग्रविहारी शुद्धसंयमी शासन प्रभावकोंकी परम्परागत बहुत शिष्य प्रशिष्यादिकी समुदायमें साधुओंकी वृद्धि हुई। सो चैत्यवासियोंको हटा करके राजासे खरतर

विरुद्द पाये और शुद्ध संयमियोंका अणहिलपुर पट्टणमें विहार-खुला कराने वाले होनेसे इन्होंको सुविहित खरतर वसति-वासियोंके जन्मदाता अर्थात् संतती चलानेवाले कहनेमें आते हैं इस लिये श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज खरतर सुवि-हित सन्ततीके जन्मदाता याने सुविहित खरतर समुदायकी परम्पराके चलाने वाले माने तो क्या पहिले सुविहित सन्तती तीर्थंकर महाराजोंसे नहीं थी ऐसी किसी तरहकी शंका करनेका कोई भी कारण नहीं है।

देखिये दुर्लभराजा जैसे बुद्धिमान् भी शुद्ध संयमियोंके दर्शन और उपदेशके अभावसे अपने नगर निवासी द्रव्य लिंगी शिथिलाचारी आचार्य नाम धारक चैत्यवासियोंको ही शुद्ध संयमी जैनी साधु मानता था परन्तु यह तो श्री जिनेश्वर-सूरिजी महाराजके संसर्गसे ही सब भेद खुल गये तबसे ही तो दिनों दिन चैत्यवासियोका जोर घटता गया और शुद्ध संय-मियोंकी समुदाय भी बढ़ती गई तथा देशान्तरोंमें विहार भी होने लगा तबसे विशेष रूपसे सुविहित सन्तती प्रसिद्धिको प्राप्त होती भई इससे इन महाराजको खरतर समुदायकी सन्तती चलाने वाले कहनेमें किसी तरहकी विरुद्धता नहीं आ सकता है।

और उपरोक्त पाठमें खरतर शब्दके अर्थ वाला ही सुविहित शब्द शास्त्र करने कथन किया परन्तु दुर्लभराजाकी सभामें चैत्यवासियोंके साथ शास्त्रार्थ होने सबन्धी खुलासा पूर्वक विस्तारसे नहीं लिखा जिसका कारण तो यही है कि प्रशस्तिके पाठमें कथानक रूपकी बात विस्तारसे या संक्षिप्तसे भी प्रायः करके नहीं लिखी जाती किन्तु जिन जिन पूर्वाचार्योंका संबंध आवे उन्होंके विशेषण सहितसे नाम मात्र ही लिखनेमें आते हैं

सो ऐसा तो बहुत प्रशस्तियोंके पाठोंमें देखनेमें आता है, देखिये ? श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी महाराजने तपस्या करी उससे इन्होंको राणाकी तरफसे 'तपा' का विरुद मिला ऐसा वर्त्तमानिक सब तपगच्छवाले मानते हैं, परन्तु इन्ही महाराजके शिष्य श्रीदेवेन्द्र-सूरिजी महाराजने श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी वृत्तिके अन्तकी प्रशस्तिके पाठमें तथा श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजीनें श्रीबृहत्कल्पवृत्तिकी प्रशस्ति-के पाठमें, इत्यादि अनेक पाठोंमें श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीका नाम मात्र ही देखनेमें आता है परन्तु उन्होंने आंबीलकी तपस्या करी उससे राणानें 'तपा' विरुद दिया, उस दिनसे तपगच्छ प्रसिद्ध हुआ, ऐसा नहीं लिखा और 'तपस्वी' या 'तपा विरुद' धारक तपगच्छकी सन्तती चलानेवाले ऐसा भी किसी तरहका विशेषण नहीं लिखा तो क्या यह बात नहीं मानी जाती, सो तो नहीं ? किन्तु विशेषरूपसे प्रगटपने माननेमें आती है, इसलिये कथा-नक रूपकी बातको प्रशस्तिकार खुलासा पूर्वक लिखे, या न लिखे यह तो ग्रन्थकारकी इच्छाकी बात है, परन्तु प्रशस्तिमें कथानककी बातको न लिखने पर प्रसिद्ध प्रचलित बातको नहीं मानना या निषेध करनेका व्यर्थ हठवादका कदाग्रह करना सो न्याय विरुद्ध होनेसे आत्मार्थियोंको सर्वथा त्यागने योग्य है, तिसपर भी कोई अभिनिवेशिक कदाग्रही हठवाद करें, तो अब यहां दुर्लभराजाकी सभामें चैत्यवासियोंके साथ शास्त्रार्थ होने सम्बन्धी नीचेमें प्राचीन पाठ दिखानेमें आवे सो देखो।

१० दशवा—और भी ऊपरकी बात सम्बन्धी सुप्रसिद्ध, सवा लक्ष ब्राह्मण क्षत्री महेश्वरी वगैरहके कुटुम्बोंको प्रतिबोध करके जैनी श्रावक बनाने वाले तथा चौसठ योगनी और बावन वीर वगैरह अनेक देवी देवताओंको अपने वशमें करके जैनधर्मकी महान् उन्नति करने वाले बड़ेही शासन प्रभावक, अकूम युग

प्रधान श्रीदादाजी नामसे प्रख्यात श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजनें विक्रम सम्बत् ११८० के अनुमान श्री "गुरुपारतंत्र्य" नामा-स्तोत्र बनाया है उसमें श्रीदुर्लभराजाकी राज्यसभामें श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजने चैत्यवाशियोंके साथमें विवाद (शास्त्रार्थ) करके उन्होंको हटाये ऐसा खुलासा पूर्वक कथन कियाहै सो छपा हुआ श्री "गुरुपारतंत्र्य" के पृष्ट १० से १४ का मूल व्याख्या भावार्थ सहित पाठ नीचे मुजब है।

अथ वसति मार्ग प्रकाशक श्रीजिनेश्वरसूरि स्तुतिं गाथा त्रयेणाह ॥ "सुहसील चोर चप्परण पच्चलो निच्चलो जिण मयंमि ॥ जुग पवर सुद्ध सिद्धन्त जाणउ पणय सुगुण जणो ॥ ९ ॥ पुरउ दुल्लहमहि वल्लहस्स अणहिलवाडए पयडं॥ मुक्काविआरिउणं सीहेण व दव्वलिंगिगया ॥ १० ॥ दसमच्छेरय निसिविप्फुरंत सच्छन्दसूरि मयतिमिरं॥ सूरेणव सूरिजिणेसरेण हयमहिय दोसेण ॥ ११ ॥"

व्याख्या ॥ सुखशीलचौर निराकरण समर्थः, जिनमते निश्चलः, युगप्रवर शुद्ध सिद्धान्त ज्ञातः, प्रणत सुगुण जनः (चप्परण पच्चल शब्दौ क्रमेण निरास समर्थ वाचकौ) ॥ ९ ॥ (येन) अणहिल्लपाटके दुर्लभमही बल्लभ स्य पुरतः विचार्य सिंहेन गजा इव प्रगटं लिंगिनः मुक्ताः ॥ १० ॥ अहित दोषेण सूरिजिनेश्वरेण दशमाश्चर्य निशि विस्फुरत्स्वच्छन्दसूरि मत तिमिरं सूरेणेव हतम् ॥ ११ ॥

भावार्थ—विषय सुखमें लंपट केवल साधु वेषकोहि धारण करनें वाले, भक्त जनोंके जैन सम्यक्त्व बोधि रत्नोंको असदुपदेश द्वारा चुरानें वाले, ऐसे लिङ्गी साधुओंको जिनराज सिद्धान्तोक्त युक्ति पूर्वक वलात्कारसे मत खण्डनमें समर्थ और जिन मतमें निश्चल और युगप्रवर सुधर्म्मस्वामीके निर्दोष अङ्गोपाङ्गरूप सिद्धान्तके निरन्तर अभ्याससे प्रसिद्ध और प्रणाम करते हैं सद्-

गुणी जन जिणको ऐसे ॥ ९ ॥ अणहिल्ल पाटक नामके नगरमें दुर्लभ संज्ञक राजाके समक्ष श्रीजिनेश्वरसूरिने शिथिलाचारी साधुओंसे वादप्रतिवाद किया और जैसे सिंह हाथिओंसे सामना कर उन्हें चीरकर फेक देता है वैसेही श्रीजिनेश्वरसूरिने शास्त्रार्थ में उन शिथिला चारियोंको पराजित किया ॥ १० ॥ जैसे सूर्य्य रात्रिके अन्धकारको सत्वर नष्ट करता है वैसे ही रागादि दोष रहित सूरिजिनेश्वराचार्यने दशम असंयमीरूप पूजा लक्षण आश्चर्यरूप रात्रिमें स्फुरायमाण स्वच्छन्द शिथिलाचारियोंके मतरूप अन्धकारको शीघ्र नष्ट किया ॥ ११ ॥

११ और इन्हीं महाराजने श्रीगणधर सार्द्ध शतकमें ऊपर की बातको खुलासा पूर्वक कही है जिसका पाठ नीचे मुजब है

अथ—वसति वासोद्धारकरा भारधारण धोरेयान् ॥ श्रीजिनेश्वरसूरि युगप्रवरान् शरणी कुर्वन् गाथा त्रयोदशकमाह ॥

तेसि पय पउम सिवा रसिउ भमरुव्व सव्व भमरहिऊ ॥ ससमय पर समय पयत्थ सत्थ वित्थारण समत्थो ॥६४॥ अणहिल्ल वाडयनाइ इव्व दंसिय सुपत्तसंदोहे ॥ पउरपए वहूक विदूसगेय सन्नायगा णुगए ॥६५॥ सढिय दुल्लहराए सरसइ अंको वसोहिय ॥ सुहए मज्जेरायसहं पविसिऊण लोयागमाणु मयं ॥ ६६ ॥ नामाय रएहिं समं करियं वियारं ॥ वियार रहिएहिं वसहि निवासो साहुण ठाविउ ठाविओ अप्पा ॥६७॥ परिहरिय गुरुकमागय वरवत्ताएय गुज्जरत्ताए वसहि निवासो जेहिं फुडी कउ गुजरत्ताए ॥६८॥ इत्यादि

ऊपरके पाठकी लघु वृत्तिका पाठ नीचे मुजब है :—

व्याख्या॥वक्षमाण त्रयोदश गाथांतं स्थितं तेसि जिणेसरसूरीणां चरणसरणं पवजामीति संबंधः ॥ यः कीदृशः तेषां श्रीवर्द्धमानाचार्योणां पाद पद्म सेवा रसिक चरणारविन्दपर्युपासिगाढासक्त, किंवदित्याह॥ भ्रमरवत् मधुकरवत्, सर्वेषु शास्त्रेषु भ्रमेण संशयेनरहितः

सर्वं भ्रम रहितः ॥अतएव स्वसमय परसमय पदार्थ सार्थः विस्तारण समर्थ स्वसिद्धांत परसिद्धांतानां पदार्थ सार्थास्तत्रपदानि विभक्तितानि तेषां अर्था पदार्थास्तेषां सार्थासमूहास्तेषां विस्तारणे विस्तर प्रकाशनेपटुः ॥६४॥ ये श्रीजिनेश्वराचार्यैं नाममात्र धारकाचार्यैः समं सह विचारं धर्म्मवादं कृत्वा वसतौ निवासोऽवस्थानं साधूनां स्थापित प्रतिष्ठापितः, प्रतिष्ठितस्थापितः स्थिरी कृतः आत्मकीर्त्यालंकृतइत्यर्थः ॥ किंविशिष्टैर्यैं विवादे क्वसत्ति व्यवस्थापनं, अणहिल्ल पाटके अणहिल्ल पाटकाख्य पत्तने कीदृशे पाटके नाटक इव, दशरूपाख्ये शास्त्रविशेषे इव कीदृशे ॥ अणहिल्ल पाटके नाटके च,उभयोरपिश्लिष्टंविशेषण सप्तकमाह॥दंसिय सुपत्त संदोहे, दर्शितश्चक्षुर्विषयतांनीतः सुपात्राणां संज्ञाजनानां स्थालक कच्चोलादीनां हट्टेस्थापितानां संदोहः समूहो यत्र ॥ नाटक पक्षे, राम लक्ष्मण सीता लंकेश्वर विभीषणादीनि सुपात्राणि ज्ञेयानि, तस्मिन् दर्शित सुपात्र संदोह ॥ १ ॥ संदेहे इति पाठेतु, पत्तने पत्तनपक्षेऽसमंजसचारित्र साधुवेषविडंबक कुयति दर्शनेन भव्यानां मनस्य यं संशयः यदुत किमस्ति क्वापि सत्पात्रं नवेति, अतउक्तं, दर्शित सुपात्र संदेहे॥नाटक पक्षे, दर्शितानि सुपात्राणां रामादीनां संसम्यक्देहाः शरीराणि यत्र, तस्मिन् दर्शितसुपात्र संदेहे ॥ १ ॥ तथा ॥ पउरपए इति, प्रचुराणि प्रभूतानि प्रतिगृहद्वारकुपिका सहस्र लिंग महातड़ाग वाप्यादिसद्भावेन पयांसि जलानि यत्र, तस्मिन् प्रचुर पयसि ॥ नाटक पक्षे ॥ प्रचुराणि प्रलम्बानि दीर्घंसमासानि पदानि यत्र तस्मिन् प्रचुर पदानि ॥ २ ॥ बहुकवि दूसगे इति, बहूनि अनेकानि कवयः काव्य कर्त्तारः दुष्यानिवस्त्राणि च यत्र तस्मिन् बहुकविदूषके ॥ नाटक पक्षेतु ॥ बहुकाः प्रभूता विदूषका क्रिडा पात्राणि यत्र तस्मिन् बहुक विदूषका ॥ ३ ॥ तथा ॥ संनायगाणुगये इति, शोभननायके वशिष्ट मण्डल

गृह ग्रामादिस्वामिभिरनुगते ॥ नाटक पक्षेतु, ललित शांत उदानु-उद्धत संज्ञश्चतुर्विधैनायकैरनु गतो ॥ ४ ॥ तथा सड्डियदुल्लहराए इति, सहस्रध्यावर्त्ततेतिसर्द्धिक ऋद्धमान् दुर्लभ राज्ञो महीपति यत्र तस्मिन् सार्द्धिक दुर्लभ राजा ॥ नाटक पक्षे ॥ सती शोभना वैराग्य युक्ता धीर्बुद्धिर्येषांते सार्द्धिका स्तेषां दुर्ल्लभोदुःप्रापो राग श्वेतशोऽनुबंधो यत्र तस्मिन सर्द्धिक दुर्लभ राग ॥ ५ ॥ तथा ॥ सर सइअंको वसोहिए इति, सरस्वती नाम नदी तस्या अंक उत्संगस्तेन उपशोभिते विराजिते ॥ नाटक पक्षे च ॥ सरस्वती भारतीलक्षणा वृत्तिः ॥ अंकाश्वर सांश्रया स्तैरुपशोभितेतेषां स्वरूपं नाटकादवगन्तव्यं ॥ ६ ॥ तथा ॥ सुहए इति, शोभना हया अश्वा यत्र तस्मिन् सुहये ॥ नाटकपक्षेतु ॥ सुखदे कौतकप्रियाणां शर्मदे ॥ ७ ॥ इति पक्षविशेषण समकार्थः ॥ किंकृत्वा विवादः कृतःमध्ये राजसभं राजसभामध्ये प्रविश्यउपविश्यकथं विवादकृ तःलोकश्च आगमश्च तयोरनुमतं सम्मतं यथा भवतीति गाथा ॥६५॥ ६६ ॥ ६७ ॥ त्रयार्थः ॥ अमुमेवार्थंपुनः सविशेषमाह॥वसत्या चैत्य-गृह निराकरणेन परगृहावस्थितस्य सह विहारः ॥ समय भाष या ग्रामनगरादौ विचरणं वसति विहारं सयैर्भगवद्भिः स्फुटीकृतः सिद्धान्तोक्तोपि पुनः प्रकटी कृतः कस्यां गूर्जरयात्रायां सप्ततिसहस्र प्रमाण मण्डलमध्ये किं विशिष्टायां प्रगटीकृत गुरुक्रमागतवरवा-र्तायामपि परिहृता अवगणिता गुरुक्रमागता गुरुपारंपर्यसमा-याता वरवार्त्ताविशिष्टधर्मवार्ता ययातस्यामपि अपिसंभावने नास्तिकिमप्यत्रासंभाव्यं घटतएवैतदित्यादि ॥

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीवर्द्धमान सूरिजीके चरण कमलकी सेवा भक्तिमें भ्रमरकी तरह विशेषरक्त और सर्व प्रकारके संदेह-रूप भ्रमसे रहित और श्रीजैन शास्त्रोंके तथा अन्य मतके शास्त्रों

के अर्थको विस्तार करनेमें समर्थ, ऐसे श्री जिनेश्वर सूरिजी महाराजनें गुजरात देशमें श्रीअणहिलपुर पट्टणमें श्रीदुर्लभ राजाकी राज्य-सभामें चैत्यवासी आचार्य नामधारकोंके साथ साधुके क्रिया कर्त्तव्यका व्यवहार सम्बन्धी युक्ति और आगमानुसार धर्मवाद करके,वहां साधुका वसति मार्ग स्थापित किया उससे इन महाराजकी देश देशान्तरोंमें शोभा प्रसिद्धिको प्राप्त होती भई। यद्यपि शास्त्रोंमें तो वसतिमार्गको प्रकट ही कथन किया हुआ है परन्तु इस क्षेत्रमें शिथिलाचारी द्रव्यलिंगियोंसे लुप्त प्रायः होगया था इसलिये इन महाराजने प्रगट किया और इन्हीं अणहिलपुर पट्टणको "दशरूप" नामा नाटक सदृश ओपमा देकर सात विशेषणोंकी समानता दिखाई है सो तो खुलासा ही लिखाहै और ऊपरके पाठसे वसतिमार्ग प्रकाशक कहो या खरतर मार्ग प्रकाशक कहो अथवा वसतिवासी सुविहित मार्ग प्रकाशक कहो सबका भावार्थ एकही है सो सो ऊपरके लेखसे विवेकी-तत्वज्ञ पाठकगण स्वयं समझ सकते हैं:—

और इसी तरहसे उपरोक्त पाठकी वृहद्वृत्तिमें तथाश्रीसंघपट्टककी वृहद्वृत्ति और षट् स्थानक प्रकरण वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रोंमें दुर्लभराजाकी राज्य सभामें श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज नेचैत्यवासियोंके साथ शास्त्रार्थ करके उन्होंको हटाये और संयमियोंका विहार शुरू करानेका खुलासापूर्वक लिखा है उन सब पाठोंको विस्तारके कारणसे यहां नहीं लिखता हूं, परन्तु जिसके देखनेकी इच्छा होवे सो उपरोक्त शास्त्र पाठ स्वयं देख लेवेंगे।

१२ बारहवां और भी श्रीखरतरगच्छकी गुर्वावली श्रीआचार रत्नाकर के दूसरे प्रकाशमें छप कर प्रसिद्ध हुई हैं उसके पृष्ठ १०४। १०५। १०६ में नीचे मूजिब लिखा है।

श्रीवर्द्धमानसूरिके पाट ऊपर श्रीजिनेश्वरसूरि हुए सो, सं० १०७० में आचार्य पदको प्राप्त होके श्रीबुद्धिसागरसूरिके साथ मरुस्थल देशमें विहार करके क्रमसे गुर्जर देशमें अणहिल्लपुर पट्टणमें गए, वहां दुर्लभ राजाका पुरोहित शिवशर्मा नामें ब्राह्मण जो अपना मामाथा तिसके घरमें गए, वहां शिवशर्मा ब्राह्मण अपने लड़केको वेद पदोंका अर्थ बतला रहाथा, उसमें कितनेक वेद पदोंका उलटा अर्थ बताने लगा, तब गुरु बोले, इस मुजब नहीं है, हम कहें उस मुजब है, तब सच्चा अर्थ सुनके प्रोहित बोला कि आपको इस माफक वेदके अर्थका जाणपणा किसतरें हुआ, आप संसारी अवस्थामें कौन नगरके अरु किसके पुत्र थे, तब महाराजने कहा कि, हम वणारसी नगरीके, सोम नामें ब्राह्मणके पुत्र हैं, तब शिवशर्मा पुरोहितने पिछानें कि ये तो मेराभाणेज है, ऐसा जाणके बहुत भक्ती मान हुआ, बहुमान पूर्वक अपने मकानमें रक्खे, वहां रहते और भी केई पदार्थोंमें पुरोहितके दिलमें सन्देहथे सो सर्व दूर किये, तब शिवशर्मा पुरोहित बहुत महाराजका रागी हुआ, तब वहांके चैत्यवासियोंने विचारा कि श्रीजिनेश्वरसूरिके इहां रहनेसे अपना पड़दा खुल जायगा, अपनेको कोई न मानेंगा, सर्व लोक इनोंके रागी हो जायेंगे, इसमें कोई उपाय करना चाहिये, ऐसा विचारके दुर्लभराजाके पास जायके चुगली किया कि दिल्लीसे ग्रन्थ छोटक चोर आये हैं, सो आपके पुरोहितके इहां ठहरे हैं, तब राजा एसा बचन सुनके पुरोहितको बुलाकर पूछने लगा कि तेरे घर चौर आये सुना है, तब पुरोहित बोला कि, मेरे घरमें चौरतो कोई नहीं आए है, परन्तु शुद्धक्रिया पात्र साधु आये हैं जो उनोंको चौर कहते होंगे सो आप चौर

होंगे, तब राजाने शुद्धाचार देखनेके लिये श्रीजिनेश्वरसूरीको अपने पास बुलाये और चैत्यवाससियोंको भी बुलाये, जब श्रीजिनेश्वर सूरि राजाकी सभामें आए तब राजानें नमस्कार करा, तब गुरू महाराजने धर्मलाभ आशीर्वाद देके अपने बैठने योग्य स्थानमें, कंबली विछाके इरियावही पडिक्क-मके जमीनकी पडिलेहणा करके बैठें। तब राजाने विचारा कि शुद्ध आचार ऐसा ही होता है और चैत्यवासी जो आये सो राजाको आशीर वाद देके, इसी तरह विस्तरोंके ऊपर बैठ गये तब राजाने चैत्यवासियोंका विरुद्ध आचार देखके श्री जिनेस्वरसूरि महराजको साधुका आचार पूछा तब महाराज बोले आपका देवाधिष्ठित ज्ञानका भण्डार है जिसमें सर्व मत स्वरूप निवेदक पुस्तक है उसमें से आपके पण्डितोंके पास एक या दो पुस्तक मंगवाइये तब राजाने भण्डारमेंसे पुस्तक मंगवाया सो पण्डितोंके दशवै कालिक पुस्तक हाथ लगी। सो जब राजसभामें लेके आये। तबगुरू महाराजनें कहा, इस पुस्तककों चैत्यवासियोंके हाथमें देके आप साधुका आचार सुनों, तब चैत्यवासी पुस्तक बाचने लगे, सो जहां बहुत साधुका आचार आने लगा वहांके पाठ वे छोड़नें लगे, तब गुरूमहाराज बोले, कि राजसभामें दिन को चौरी होती है, तब राजाने पूछा किस तरेसें, गुरूनें कहा; कि यहां इणोंनें साधुके आचारके कई पन्ने छोड़ दिये हैं, तब राजा बोला कि,आप बांचो। तब गुरूमहाराजनें कहा हमारे बांचनेंसे ये लोग फिर कल्पित बात कहेंगे, इससे आपके बड़े पण्डितोंके पास ये पुस्तक वंचावो, तब राजाने अपने पण्डितोंके पास उस पुस्तक मेंसे साधुका आचार सुना, तब उसी आचारमुजिब श्रीजिनेश्वर

सूरिका सत्य आचार देखा, और चैत्यवासियोंका उस पुस्तक-में विरुद्ध आचार देखा, इससे सारी सभाके सामनें राजाने कहा ॥ अतिशय पणें करके श्रीजिनेश्वरसूरि सच्चा हुवा, इससें ये खरतरा हे, और चैत्यवासी हारगया, इससेती ये कवला हे ॥ हारा सो कवला थया ॥ जीता खरतर जाणिया ॥ तिणीकाल श्रीसंघमें। गच्छ दोय वखाणिया ॥ १ ॥ इसी तरे सुविहित पक्षधारक श्री जिनेश्वर सूरि, वीर संवत् १५५० ॥ विक्रम संवत् १०८० में खरतर विरुदकों प्राप्त भए। तबसें कोटिक गच्छ, चन्द्रकुल, वयरी शाखा, खरतर विरुद, ऐसा भेद स्थिवर साधु, नवीन साधुओंसे कहनें लगे, इहांसे मूल कोटिक गच्छका नाम खरतर गच्छ प्रसिद्ध हुआ, अतिशयेन खरा सत्य प्रतिज्ञा ये ते खरतराः, इत्यादि खरतर विरुदकों प्राप्त होनेंवाले श्री जिनेश्वर सूरि बड़े प्रभावीक भए ॥ ४० ॥"

१३ तेरहवां—और भी अन्यमतके न्यायवान् मध्यस्थ विद्वान्ने अङ्गरेजी भाषामें सभामें व्याख्यान (भाषण) करते समय अनेक शास्त्रानुसार जैनधर्मके प्राचीन इतिहास संबंधी बहुत खुलासा किया था उसमें खरतरगच्छ तथा तपगच्छकी पट्टावलियोंका कथन करनेमें तपगच्छकी पट्टावलीको पहिले कथन न करके खरतरगच्छकी पट्टावलीको पहिले कथन करी थी और इसके बाद तपगच्छकी पट्टावलीको कथन करी थी उसी खरतर-गच्छकी पट्टावलीमें भी श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे 'खरतर' विरुदलिखाहै उसका गुजरातीभाषामें अनुवाद सन् १९०८ जुलाई मासके "सनातन जैन" नामा मासिकपत्रके पृष्ठ ३७४ से ३८१ तक में प्रसिद्धहुआ था जिसका उत्तारानीचेमुजबहै :—

"डॉक्टर जहॉन्नेस कलाट्ट पी० एच० डी० (बर्लिन) ए लखेलो अंगरेजी निबन्ध-डाक्टर भाउदाजी रॉयल ऐसीआटीक

सोसाइटीनी मुंबई शाखा पासे (१२ मी डिसेंबर १८६७ ने दिने) निबंध वांच्यो हतो तेमां तेणे मेरुतुङ्गनी थेरावलि अने बीजां पुस्तकाने आधारे जैनोना प्राचीन इतिहास पर घणो प्रकाश पाडयों हतो। आ पृष्ठोमां जैनोना बे मुख्य गच्छ खरतर अने तप गच्छनी पट्टावलिओमांथी सौथी अगत्यनी तारीख—काल हुं आपीश, आ सर्व २२ लिखीत प्रतोमांथी लीधुं छे। तेमांथी २० प्रतो मुंबईथी, के. एम. चॅटफिल्ड मुंबईना केलवणी खाताना डायरेकटरनी सहायता थी मली छे तेथी तेनो उपकार मानुं छुं अने बीजी बे प्रतो बर्लिनमांथी मेलवी छे।

खरतर गच्छनी पट्टावलि।

महावीर—कुल इक्ष्वाकु, गोत्र काश्यप, पिता क्षत्रियकुण्ड ग्रामना राजा सिद्धार्थ, माता त्रिशला, जन्म चैत्र शुदि त्रयोदशीमां, निर्वाण चतुर्थ आराना अंत पहेलां ३ वर्ष अने ८॥ महिनें पापाशहेरमां ७२ वर्षनी उमरे कार्तिक अमावास्याने दिने. तेमने ११ शिष्यो (गणधरो) हता।

तेना प्रथम शिष्य गौतम उर्फे इन्द्रभूति हता, तेमना गोत्रनुं नाम गौतम, पितानुं नाम ब्राह्मण वसुभूति; मातानुं नाम ब्राह्मणी पृथ्वी हतां. जन्म मगधदेशना गोबर ग्राममां थयो. निर्वाण वीरना निर्वाण पछी १२ वर्षे ९२वर्षनी उमरे राजगृहीमां पाम्या, गौतमे दीक्षित करेला साधुओ पोतानी पहेलां गत थवाथी, अने बीजा नव गणधरोअ पोताना शिष्य साधुओ सुधर्माने सोंपी देवा थी,पांचमा गणधर सुधर्मानीपाट गणाई अने ते पाट पांचमा आराना अंते थनार दुःप्रसहसुरि सुधी चालशे।

वीर पछी १४ वर्ष गयां पछी जमालि नामनो पहेलो निन्हव जाग्यो, अने १६ वर्ष गयां पछी तिश्यगुप्त (प्रादेशिक) नामनो बीजो निन्हव थयो।

२ सुधर्मा—जन्म कोल्लाक ग्राममां, गोत्र अग्नि वैश्यायन, पिता धम्मिल्ल, माता भद्दिल्ला ; गृहस्थपणे ५० वर्ष, छद्मस्थ तरीके ४२ वर्ष अने केवली तरीके आठ वर्ष रह्या. निर्वाण वीर पछी २० वर्षे १०० वर्षनी वये पाम्या।

३ जम्बू—जन्म राजगृहीमां, गोत्र काश्यप, पिता श्रेष्ठी ऋषभदत्त, माता धारिणी ; गृहस्थ तरीके १६ वर्ष, छद्मस्थ तरीके २० अने केवली तरीके ४४ वर्ष रह्या. निर्वाण वीर पछी ६४ वर्षे ८० वर्षनी वये पाम्या. आ छेल्ला केवली हता।

४ प्रभव—गोत्र कात्यायन, पिता जयपुरना राजा विंध्य, गृहस्थपणे ३० वर्ष, सामान्य व्रती तरीके ४४ वर्ष (कोई ६४ कहे छे) अने आचार्य तरीके ११ वर्ष रह्या. मरण वीरना निर्वाण पछी ७५ वर्षे, ८५ (अथवा १०५) वर्षनी वये थयुं।

५ स्वयम्भव—जन्म राजगृही, गोत्र वात्स्य ; तेमणे शांति-जिननी प्रतिमानां दर्शन करवाथी जैन दीक्षा लीधी, पोताना पुत्र मनक वास्ते दशवैकालक सूत्र रच्युं, २८ वर्ष गृहस्थाश्रममां, ११ व्रती तरीके, अने २३ वर्ष आचार्य तरीके गाल्यां वीर पछी ९८ वर्षे, ६२ वर्षनी वये पंचत्व पाम्या।

६ यशोभद्र—गोत्र तुंगीयायन, गृहस्थ पणे २२ वर्ष, व्रती तरीके १४ वर्ष, अने आचार्य तरीके ५० वर्ष रह्या. वीर पछी१४८ वर्षे ८६ वर्षनी वये मृत्यु पाम्या।

सम्भूति विजय अने तेना लघु गुरु भ्राता भद्रबाहु।

७ सम्भूति—विजय गोत्र माढर, गृहस्थपणे ४२ वर्ष, व्रती तरीके ४०, युग प्रधान तरीके ८ गाल्यां अने वीर पछी १५६ वर्षे ९० वर्षनी उमरे गत थया।

८ भद्रबाहु—गोत्र प्राचीन, तेमणे उपसर्गहरस्तोत्र, कल्पसूत्र, अने आवश्यक ; दशवैकालिक वगेरे १० शास्त्रों पर निर्युक्तिओ

रह्यो. गृहस्थपणे वर्ष ४५, व्रती तरीके १७ अने युगप्रधान तरीके १४ वर्ष रह्या. अने वीर पछी १७० वर्षे ७६ वर्षनी वये पंचत्व पाम्या।

९ स्थूलभद्र—(सम्भूति विजयना शिष्य. अहीं भद्रबाहुना शिष्यो मूकी दीधा छे) जन्म पाटलीपुत्र, गोत्र गौतम, पिता शकडाल (तपागच्छनी पट्टावलीमां शकटाल) के जे नवमा नंदना मन्त्री हता, माता लाछलदेवी (हेमचंद्रना परिशिष्टमां लक्ष्मीवती) तेओ कोश्यानामनी वेश्याने जैनधर्ममां लाव्या. ते १४ पूर्वना जाणनारमां छेल्ला हता. पण तेमां फेरफार नीचे प्रमाणे करवो जोईओ :—

दश पूर्वाणि वस्तुद्वये न न्यूनानि सूत्रतोऽर्थतश्चपपाठ अन्त्यानि चत्वारि पूर्वाणि तु सूत्रत एवाधीतवान्नार्थत इति वृध्धप्रवादः

ते गृहस्थ तरीके ३० वर्ष, व्रती तरीके २० अने सूरि तरीके ४९ वर्ष रह्या; वीर पछी २१९ वर्षे, ९९ वर्षनी वये मृत्युशरण थया

वीर पछी २१४ वर्षे अव्यक्त नामनो त्रीजो निन्हव आषाढाचार्ये उत्पन्न कर्यो, वीर पछी २२० वर्षे समुच्छेदिक नामनो चोथो निन्हव अश्वमित्रे उत्पन्न कर्यो अने वीर पछी २२८ वर्षे गंग (द्विक्रिय) नामनो पांचमो निन्हव थयो।

१०-११ आर्यमहागिरि अने तेना लघुगुरुभ्राता आर्यसुहस्ति

आर्य महागिरि-गोत्र अेलापत्य,गृहस्थ तरीके ३० वर्ष, व्रती तरीके ४० वर्ष, अने सूरि तरीके ३० वर्ष रह्या। वीर पछी २४९ वर्षे (सामान्य रीते २४५ वर्षे) १०० वर्षनी उमरे मृत्यु पाम्या।

सुहस्तिन्-गोत्र वाशिष्ठ, गृहस्थ तरीके ३० वर्ष, व्रती तरीके २४ वर्ष अने सूरि तरीके ४६ वर्ष रह्या। वीर पछी २६५ वर्षे १०० वर्षनी वये मरण पाम्या। तेणे वीर पछी २३५ वर्षे राज्य करता रामा अने श्रेणिकथी १७ मी पेढीअे उतरी आवेला संप्रति राजाने

पोताना जैनधर्ममां लाव्या, अने त्रिखंडोने प्रसाद, बिम्बो आदि थी सुशोभित कर्युं अने अनार्य देशमां विहार करवानी स्थापना करी अवन्तिसुकुमाल अने बीजा घणाओने तेमणे जैन दीक्षित कर्या ।

१२, आर्यसुस्थित—(आ सुहस्तिना शिष्य हता । आर्य महागिरिने बहुल अने बलिस्सह नामना बे शिष्यो हता । वलिस्सह ना शिष्योनी टीप आवश्यक अने नन्दीसूत्रनी स्थविरावलिमां आपेल छे) आमने कोटिक अने काकन्डिक नामना बे बिरुद हता । गोत्र व्याघ्रापत्य, गृहस्थ तरीके वर्ष ३१, व्रती तरीके १७ अने सूरि तरीके ४८ वर्ष रह्या अने वीर पछी ३१३ वर्षे ९६ वर्षनी वये पञ्चत्व पाम्या । आमनाथी कोटिकगच्छ जन्म पाम्यो, आमना लघुभ्रातानुं नाम सुप्रतिबुद्ध हतुं ।

१३, इन्द्र दिन्न । १४, दिन्न, १५ सिंहगिरि—जातिस्मरण ज्ञानवान् ।

आ वखते पादलिप्ताचार्य, वृद्धवादिसूरि अने वृद्धवादिसुरीना शिष्य सिद्धसेन दिवाकर (अपर नाम कुमुदाचार्य) थया । सिद्धसेन दिवाकरे उज्जयिनिना महाकाल मन्दिरमां रुद्रनुं लिंग तोडी तेमांथी पोताना कल्याण मन्दिर स्तवनना प्रभावे पार्श्वनाथनी प्रतिमा प्रगट करी बातावी । तेणे वीरना निर्वाण पछी ४७० वर्षे विक्रमादित्य जैन बनाव्या ।

१६, वज्र—गोत्र गौतम पिता धनगिरि, माता सुनन्दा, जन्म तुम्बवनग्राममां वीर पछी ४९६ वर्षे थयो । गृहस्थ तरीके ८ वर्ष व्रती तरीके ४४ वर्ष अने सूरि तरीके ३६ वर्ष रह्या । वीर पछी ५८४ वर्षे ८८ वर्षनी उमरे कालवश थया । तेओ सिंहगिरि पासेथी ११ अङ्ग शिख्या, त्यार पछी तेओ १२ मुं दृष्टिवादांग दशपुर थी अवन्ति (उज्जयिनि) मां भद्रगुप्त पासे शिखवा

थया। १० पूर्व जाणनाराओमां ते छेल्ला हता (वज्रस्वामितो दशम पूर्व चतुर्थ संहननादि व्युच्छेदः) अने तेणे जैन धर्मनो प्रचार दक्षिण तरफना बौद्ध राज्यमां कर्यो आ वज्र मां थी वज्र-शाखा थइ।

वीर पछी ५२५ वर्ष पछी शत्रुंजय तीर्थने तुटेलु देखवामां आव्युं अने वीर पछी ५७० मां ते तीर्थनो जावडे पुनरुद्धार कर्यो। वीर पछी ५४४ मां त्रैवार्तिक नामना छट्ठो निन्हव रोहगुप्ते उत्पन्न कर्यो।

१७ वज्रसेन—गोत्र उत्कोसिक तेमणे सोपारकमां श्रेष्ठी जिनदत्त अने तेनी स्त्री ईश्वरीना चार पुत्र नामे नागेन्द्र, चन्द्र, निवृति अने विद्याधरके जे चारे चार कुलोना स्थापक हता। तेमने जैन धर्म दीक्षित कर्या।

१८ चन्द्र—गृहस्थी तरीके ३७ वर्ष, व्रती तरीके २३ अने सूरि तरीके ७ वर्ष अेटले बधां मली ६७ वर्ष जीव्या।

तेज समये पुरोहित सोमदेव अने तेनी भार्या रुद्रसोमाना पुत्र आर्य रक्षित दशापुरमां वसता हता, ते पोते वज्र पासेथी। नव पूर्व अने १० मा पूर्वनो अेक खण्ड शीख्या अने ते सर्व पोताना शिष्य दुर्बलिका पुष्प मित्रने शिखाव्या।

वीर पछी ५८४ वर्षे गोष्टामाहिल नामनो सातमो निन्हव उत्पन्न थयो। वीर पछी ६०९ वर्षे दिगम्बरोनी उत्पत्ति थई।

१९ समन्तभद्र—तेनु वनवासी पण नाम हतु

२० देव—अपर नाम वृद्ध, २१—प्रद्योतन,

२२ मानदेव—शान्तिस्तवना कर्ता, २३ मानतुङ्ग—भक्तामर अने भयहर स्तोत्रोना कर्ता।

२४ वीर—वीर पछी ९८० वर्षे वल्लभी परीषद्मां लोहित्य सूरिना शिष्य देवर्धिगणि क्षमाश्रमणे (आनु देववाचक पण

नाम कहे छे अने तेना गुरुनुं नाम दुशगणि कहे छे) सिद्धान्तो लेखबद्ध कर्या। देवर्द्धिना समयमां अेकज पूर्व रह्युं हतुं।

वीर पछी ९९३ वर्षे कालकाचार्ये भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीमां थी चतुर्थीपर पर्युषण पर्व फेरव्युं। अहीं हस्त लिखीत प्रतो Intercalate थाय छे अेटलेके अेकज नामना बे आचार्यों कालक पहेलां थया। तेमांना अेक नामे श्यामे प्रज्ञापना रची हती अने निगोदोपर टीका करी हती अने बीजाये गर्दभिल्लने वीर पछी ४५३ वर्षे हांकी कहाड्यो।

वली हस्त लिखित प्रतो वधारे उमरे छे के जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण हता। तेओअे विशेषावश्यकादि भाष्य रच्युं छे। तेना शिष्य नामे शिलांक अपर नाम कोटयाचार्ये प्रथम अने द्वितीय अङ्गो ऊपर वृत्ति रची छे।

हरिभद्र—जन्मे ब्राह्मण हता, तेमने जिनभट्टे (उर्फे जिनभद्रे) जैन धर्ममां दीक्षा आपी हती। हरिभद्रना बे शिष्यो हंस अने परमहंसने भोट देशना बौद्धोअे मारी नांख्या हता। तेणे १४४४ (केटलाक १४०० कहे छे जिनदत्तना गणधर सार्द्ध शतक ऊपर थयेली टीकामां हरिभद्रना लगभग ३० ग्रन्थोनी टीप आपी छे तेमांना घणा हस्त लिखित छे) ग्रन्थों लख्या छे जेवां के—अष्टक, पञ्चाशकं।

२५ जयदेव, २६ देवानन्द, २७ विक्रम, २८ नरसिंह, २९ समुद्र ३० मानदेव, ३१ विबुध प्रभ, ३२ जयानन्द, ३३ रविप्रभ, ३४ यशोभद्र, ३५ विमलचन्द्र, ३६ देव, सुविहित पक्ष गच्छना स्थापक, ३७ नेमिचन्द्र।

३८। उद्योतन आमना शिष्योथी वर्त्तमानना ८४ गच्छोनी उत्पत्ति थई उद्योतन पोते माथे लीधेली यात्रामां मृत्य पाम्यां।

आ यात्रा ऋषभने वांदवा माटे मालवक देशथी शत्रुंजय जवानी हती।

सुस्थितना मरण अने विक्रमादित्य वच्चेना १५७ वर्षना आंतरामां (१३ थी १५) ऐ त्रण नामो जाणवा।

३९। वर्द्धमान खरतर गच्छना प्रथम सूरि। ते पहेलां चैत्यवासी जिनचन्द्रना शिष्य हता पण पाछलथी उद्योतनना थया हता। तेणे सोम नामना ब्राह्मणना शिवेश्वर अने बुद्धिसागर नामना बे पुत्रोने अने कल्याणवती नामनी पुत्रीने दीक्षा आपी हती। दीक्षा वखते शिवेश्वरे जिनेश्वर नाम धारण कर्युं।

तदा त्रयोदश सुरत्राण छत्रोद्दालक चन्द्रावती नगरी स्थापक पोरवाड ज्ञातीय श्री विमलमन्त्रिणा श्री अर्बुदाचले ऋषभदेवप्रासादः कारितः

...... तत्राद्यापि विमलवसही इति प्रसिद्धिरस्ति। ततः श्री वर्द्धमान सूरिः संवत् १०८८ मध्ये प्रतिष्ठां कृत्वा प्रान्तेऽनशनं गृहीत्वा स्वर्गं गतः॥

४०। जिनेश्वर पोताना भ्राता बुद्धिसागरने लइ मरुदेशथी गुर्जरदेशमां चैत्यवासी साथे वाद करवा गया। (बुद्धिसागरना सम्बन्धमां श्लोक छे के

श्री बुद्धिसागर सूरिश्चक्रे व्याकरणं नवं।
सहस्राष्टक मानं तत् श्रीबुद्धिसागराभिधं॥

प्रभावकाचार—१९—९१)

गुर्जरदेशमां अणहिल्लपुरना राजा दुर्लभनी राजसभामां सरस्वतिभांडागारमांथी दशवैकालिक सूत्र लावी साध्वाचार विषयपरनी गाथाओ वांची समजावी। जिनेश्वरे चैत्यवासीनो पराभव कर्यो। आथी तेमणे 'खरतर' ए नामनुं विरुद मेलव्युं।

४१। जिनचन्द्र—संवेगरङ्गशाला प्रकरणना कर्ता।

४२ अभयदेव—जिनचन्द्रना लघुभ्राता, पिता धारा नगरीना श्रेष्ठीधन अने माता धनदेवी. तेमनु मूल नाम अभयकुमार हतु, अतिशय आत्मपीडन करवा थी तेने कोढ थयो हतो, हाथ तूटी पड्या हता पण एक चमत्कार थी सर्वरोग नाश पाम्यो हतो, अने ते स्तंभनक पासे पार्श्वनी प्रतिमाने 'जयति-हुयण' स्तोत्र थी विनति करी हती, तेमणे नव अङ्ग पर टीकाओ लखी, अने गुर्जर देशमां कप्पडवणिज ग्राममां मृत्यु पाम्या।

४३ जिनवल्लभ—पहेलां तेओ जिनेश्वरसूरि के जे कूर्चपुरग-च्छना चैत्यवासी हता तेना शिष्य थया पछी थी अभयदेवना शिष्य हता, तेना रचित ग्रन्थो आ छे;—पिंडविशुद्धि द्विप्रकरण, गणधरसार्द्धशतक, षडशीति वगेरे. संवत ११६७ मां तेमने देवभद्रा-चार्यें सूरिपद आप्यु अने त्यार पछी छ महिने पंचत्वपाम्या।

तेमना वखतमां मधु खरतरशाखा जुदी थइ अने आथी पहेलो गच्छभेद थयो।

४४। जिनदत्त—पिता वाछिग मंत्री, माता विहद देवी, गोत्र हुम्बड, जन्म संवत् ११३२, मूल नाम सोमचन्द्र, दीक्षाकाल संवत् ११४१ अने सूरिमंत्र संवत ११६९ ना वैशाख वदी छट्ठने दिने चित्र-कूटमां देवभद्राचार्य पासेथी मल्यो। तेमणे घणा शहेरोमां चम-त्कार दर्शाव्या, आथी जैनधर्म घणो फेलाव्यो। तेमणे संदेह-दोलावलि अने बीजाग्रन्थों रच्या (जेवी रीते गणधरसार्द्धशतक जे जिनवल्लभे रच्यो हतो तेज नामनो ग्रन्थ आमणे पण लख्यो हतो) संवत् १२११ ना आषाढ शुदी अेकादशिअे अजमेरमां मरणवश थयां।

संवत् १२०४ मां जिनशेखराचार्य रुद्रपल्ली आगल रुद्रपल्लीय खरतर शाखा स्थापी, आ बीजो गच्छभेद थयो।

४५ जिनचन्द्र—जन्म संवत् ११९७ भाद्रपद शुदि अष्टमी पिता शाह रासल अने माता देल्हण देवी, दीक्षाकाल अजमेरमां सं० १२०३ ना फाल्गुन वदी नवमीने दिने आचार्यपद जिनदत्ते विक्रमपुरमां संवत १२११ ना वैशाख शुदी छट्ठने दिवसे आप्युं (उमर १४ । नी हती) मरण संवत् १२२३ ना भाद्रपद वदी चतुर्दशीने दिने दिल्लीमां थयुं त्यां तेमना नामनो स्तूप करवामां आव्यो, तेमना मस्तकमां मणि होवानुं कहेवाय छे।

४६, जिनपति—जन्म सं० १२१० चैत्र वदी ८, पिता शाह यशोवर्द्धन, माता सूहवदेवी, दीक्षा संवत् १२१८ ना फाल्गुन वदी ८ ने दिने दिल्लीमां लीधी, संवत् १२२३ ना कार्तिक शुदी त्रयोदशीए तेमनुं पद स्थापन जयदेवाचार्यै कर्युं, अने संवत् १२७७ मां ६७ वर्षनी वये पाल्हणपुरमां मरण थयुं।

संवत् १२१३ मां आंचलिकमतनी उत्पति थई, अने संवत् १२८५ मा मां चित्रावालगच्छना जगच्चन्द्रसूरिए तपगणनी उत्पति करी।

४७, जिनेश्वर—जन्म मरोटमां संवत् १२४५ मार्गशीर्ष शुदी ११, पिता भांडागारिक नेमिचन्द्र, अने माता लक्ष्मी, मूलनाम अम्बद, खेडानगरमां संवत् १२५५ मां दीक्षा लीधी ते समये वीरप्रभ नाम धारण कर्युं, संवत् १२७८ ना माघ शुदी ६ दिने सर्वदेवाचार्यै तेमनुं जालोर नगरमां पदस्थापन कर्युं, सं० १३३१ ना आश्विन वदी ६ ने दिने मरण थयुं।

तेज वर्षमा जिनसिंहसूरिए त्रीजो गच्छभेद नामे लघु खरतर शाखा स्थापी (जिनेश्वरना शिष्य धर्मतिलकगणिये संवत् १३२२ मां जिनवल्लभना अजितशान्ति, स्तवपर 'उल्लासिक्कम' थी शरु थती स्तुति लखी)

४८ जिनप्रबोध—दुर्गप्रबोध व्याख्याना कर्ता, पिता शाह श्रीचन्द, माता सिरियादेवी, जन्म संवत् १२८५ मूलनाम पर्वत, दिक्षा संवत् १२९६ ना फाल्गुन वदी पञ्चमीने दिने थिरापद्र नगरमां लई प्रबोधमूर्ति नाम धारण कर्युं, तेमनो पट्टाभिषेक संवत् १३३१ ना आश्विन वदी पञ्चमीने दिने थयो अने तेज वर्षना फाल्गुन वदी अष्टमीने दिने तेमनो पदमहोत्सव थयो, तेओ संवत् १३४१ मां मरण पाम्या।

४९, जिनचन्द्र—जन्म संवत् १३२६ ना मार्गशीर्ष शुदी चतुर्थीने दिने, स्थान समियाणाग्राममां, पिता मन्त्रि देवराज, गोत्र छाजेहड, माता कमलादेवी, मूलनाम शम्भराय दीक्षा जालोरमां सं० १३३२ मां पदमहोत्सव सं० १३४१ वैशाख शुदी त्रीजने सोम-वारे, तेमणे चार राजओने जैनी कर्या, अने कलिकालकेवली नामना विरुदथी प्रसिद्ध थया, मरण संवत् १३७६ मां कुसुमाण-ग्राममां थयुं।

५० जिनकुशल—(चैत्यवन्दन कुलक वृत्तिना रचनार) प्रसिद्ध दादोजी नामथी थया, जन्म सं० १३३० समियाणा ग्राममां, पिता मन्त्रि जिल्हागर, माता जयतश्री, गोत्र छाजेहड दीक्षा संवत् १३४७ मां, सूरिमन्त्र राजेन्द्राचार्य पासेथी सं० १३७७ ना ज्येष्ठ वदी अेकादशी दिने लीधो, मरण देरावरमां सं० १३८९ ना फाल्गुन वदी अमावस्याने दिने थयुं।

५१, जिनपद्म—वंश छाजेहड, जन्म पंजाबमां, सूरिमन्त्र तरुण प्रभाचार्य पासेथी लीधो अने पाटणमां सं० १४०० ना वैशाख शुदी १४ ने दिने मरण थयुं।

५२, जिनलब्धि—नागपुरमां संवत् १४०६ मां मृत्यु थयुं।

५३, जिनचन्द्र—स्तम्भतीर्थमां संवत् १४१५ ना आषाढ़ वदि १३ ने दिने मृत्यु थयुं।

५४, जिनोदय—पिता शाह रुद्रपाल पाल्हणपुरमां वसता हता, माता धारलदेवी जन्म सं० १३७५, मूलनाम समरो। तेमनुं पदस्थापन स्तम्भतीर्थमां तरुणप्रभाचार्ये संवत् १४१५ ना आषाढ़ शुदि २ ने दिने कर्युं। तेज जग्याए जिनोदये अजितनाथना चैत्यनी प्रतिष्ठा करी। अने शत्रुंजय उपर तेमणे पांच प्रतिष्ठा करी। मरण सं० १४३२ ना भाद्रपद वदि एकादशीने दिने पाटणमां थयुं।

तेमना समयमां सं० १४२२ मां चोथो गच्छभेद नामे वेगड खरतर शाखानी उत्पत्ति थई। तेना स्थापक धर्मवल्लभ गणि हता।

५५, जिनराज—सं० १४३२ ना फाल्गुन वदि ६ ने दिने पाटणमां तेमने सूरिपद मल्युं। मरण देवलवाड (हालनुं देलवाडा आबु पासे) सं० १४६१ मां थयुं।

५६, जिन भद्र—पहेलां जिनवर्द्धन सूरिने सं० १४६१ मां जिनराजनी पाटे स्थापित कर्या हता पण चतुर्थ व्रतनो भङ्ग कर्याथी तेमने अपात्र ठेराव्या अने तेमनी जग्या जिनभद्रने सं० १४७५ ना माघ शुदि पूर्णिमाने दिने आपवामां आवी। जिनभद्रनुं गोत्र भणशालिक हतुं। मूलनाम भादो। तेणे घणी प्रतिमाओ स्थापी, घणा मन्दिरो नी प्रतिष्ठा करी अने घणा पुस्तकालयो स्थाप्यां। अने संवत् १५१४ ना मार्गशीर्ष वदि नवमीने दिने कुम्भलमेरुमां मरण पाम्या उपर्युक्त जिनवर्द्धनसूरिए सं० १४७४ मां पांचमो गच्छ भेद नामे पिप्पलक खरतर शाखा स्थापी।

५७, जिनचन्द्र—पिता शाह वच्छराज माता वाहलदेवी। गोत्र चम्म, जन्म संवत् १४८७, स्थान जेसलमेरुमां, दिक्षा सं० १४९२, सूरिपद सं० १५१४ ना वैशाख वदि २। मरण जेसलमेरुमां संवत् १५३० मां। सं० १५०८ मां लेखक लौंके अहमदावादथी

मूर्त्ति दूर करी अने संवत् १५२४ मां पोताना नामथी ओलखातो मत उभो कर्यो। (तद्वारके सं० १५०८ अहमदावादे लौङ्काख्येन लेखकेन प्रतिमा उत्थापिताः)

५८, जिनसमुद्र—पिता देकाशाह, माता देवणदेवी। गोत्र पारख, दीक्षा, सं० १५२१, पदस्थापना सं० १५३० माहा शुदी १३ मरण सं० १५५५ अहमदावादमां।

५९, जिनहंस—पिता शाह मेघराज माता कमलादेवी, गोत्र चोपडा, जन्म सं० १५२४ दीक्षा सं० १५३५, पदस्थापना सं० १५५५ अहमदावादमां, मरण सं० १५८२ पाटणमां थयुं।

सं० १५६४ मां मरु देशमां छट्ठो गच्छ भेद नामे आचार्यिक खरतर शाखा आचार्य शान्तिसागरे स्थापी।

६०, जिन माणिक्य—पिता शाह जीवराज, माता पद्मादेवी, गोत्र कुकडाचोपडा, जन्म सं० १५४९, दिक्षा सं० १५६०, पद स्थापना सं० १५८२ ना भाद्रपद वदि ९, मरण सं० १६१२ ना आषाढ़ शुदि पंचमीने दिने थयुं।

६१, जिनचन्द्र—पिता शाह श्रीवन्त, माता सिरियादेवी, गोत्र रीहड, जन्म तिमरी नगर पासेना वडली ग्राममां संवत् १५९५, दिक्षा १६०४, सूरिपद जेसलमेरुमां सं० १६१२ ना भाद्रपद शुदी नवमीने दिने, तेमणे अकबर बादशाहने जैन धर्मी बनाव्या अेम कहेवाय छे, तेमणे ९५ शिष्यों हता–समयराज, महिमाराज, धर्मनिधान, रत्ननिधान, ज्ञानविमल वगेरेह अने तेमनुं मरण वेनातटे सं० १६७० ना आश्विन वदि बीजने दिने थयुं।

सं० १६२१ मां भावहर्षोपाध्याये ७ मो गच्छभेद नामे भावहर्षीय खरतर शाखा स्थापी।

६२, जिनसिंह—पिता शाह चांपसी माता चतुरङ्गादेवी, गोत्र गणधरचोपडा, जन्म खेसर ग्राममां संवत् १६१५ मा

मार्गशीर्ष शुदि पूर्णिमाने दिने, मूल नाम मानसिंह, दिक्षा बीकानेरमां संवत् १६२३ ना मार्गशीर्ष वदि ५, वाचकपद जेशलमेरुमां सं० १६४० माघ शुदि ५, आचार्यपद लाहोरमां सम्वत् १६४९ फाल्गुन शुदि २, सूरिपद वेनातटमां सम्वत् १६७०, मरण मेडतामां सम्वत् १६७४ पौष वदि १३ ने दिने थयुं।

६३, जिनराज—पिता शाह धर्मसी, माता धारलदेवी, गोत्र बोहित्थरा, जन्म सं० १६४७ वैशाख शुदि७, दिक्षा बीकानेरमां सं० १६५६ ना मार्गशीर्ष शुदि ३, दीक्षा नाम राजसमुद्र, वाचकपद सं० १६६८ अने सूरिपद मेडतामां सं० १६७४ ना फाल्गुन शुदि ७ ने दिने मल्युं, तेमणे घणी प्रतिष्ठाओ करी। दाखला तरीके सं० १६७५ ना वैशाख शुदि १२ ने शुक्रवारे शत्रुंजय ऊपर तेणे ऋषभ अने बीजा जिनोनी ५०१ मूर्तिओ नी प्रतिष्ठा करी, तेणे नैषधीय काव्य पर जैनराजी नामनी वृत्ति लखी अने बीजा ग्रन्थों लख्या छे; मरण पाटणमां सं० १६९९ ना आषाढ़ शुदि ९ ने दिने थयुं।

सं० १६८६ मां आचार्यजिनसागर सूरिअे आठमो गच्छभेद नामे लघ्वाचार्यिय खरतर शाखा उत्पन्न करी अने समय सुंदरना शिष्य हर्षनन्दने वधारी, (हर्षनन्दन ऋषिमंडल टीकाना कर्ता हता)

सं० १७०० मां रंगविजयगणीअे नवमो गच्छभेद नामे श्री रंगविजय खरतर शाखा उत्पन्न करी, अने आ शाखामांथी श्री सारोपाध्याये १० मो गच्छभेद नामे श्री सारीय खरतर शाखा उत्पन्न करी। एकादशस्तु बृहत्खरतर मूलगच्छ एवमेकादशभेदः खरतरगच्छः॥ इत्यादि।

यह उपरोक्त पट्टावली मुंबईसे प्रगट होने वाला 'सनातन जैन' नामा मासिक पत्रके दूसरे पुस्तकके अंक १२ वें में सन्

१९०७ के जुलाई मासमें प्रकाशित हुई थी (ऊपरमें ७०५ पृष्ठकी २२ वीं पंक्ति में १९०८ लिखा गया सो भूलसे समझना) और हस्त लिखित प्रतोंसे अमेरिकन देशके बर्लिन नगरके डाकूर जहांन्नेस कलाट पी० एच० डी० ने अंग्रेजीमें पट्टावली लिखी थी उसको गुजराती भाषामें उपरोक्त मासिक पत्रमें प्रकाशित करी उसमें कितनी जगह नामोंका गोत्रोंका शब्दोंका रूपान्तर हो गया है सो अन्य पट्टावलियोंसे मिलान कर लेना और इसके बाद सन् १९०८ डीसेंबर फेब्रुआरीके अंक ५-६, पुस्तक तीसरेमें तपगच्छकी पट्टावली प्रकाशित उपरोक्त मासिकमें हुई हैं।

१४ चौदहवां और भी ऊपर मुजब ही खास न्यायांभोनिधिजी (श्रीआत्मारामजी) ने अपने बनाये "जैनमत वृक्षमें" श्री खरतरगच्छकी पट्टावलीमें नीचे मुजब लिखा हैं यथा—श्री नेमिचन्द सूरिजी १, श्रीउद्योतनसूरिजी २, श्री वर्द्धमान सूरिजी ३, श्री अष्टक वृत्ति पंचलिंगी प्रकरणकर्त्ता श्रीजिनेश्वरसूरिजी और इन्हींके गुरु भाई "बुद्धिसागर" व्याकरण कर्त्ता श्री बुद्धिसागर सूरिजी ४, संवेगरंगशाला कर्त्ता श्रीजिनचन्द्र सूरिजी ५, श्रीनवांगी वृत्तिकर्ता तथा श्रीस्थंभन पार्श्वनाथ प्रतिमा प्रगटकर्ता श्रीअभयदेवसूरिजी ६, पिंड विशुद्धि १, भवारिवारण २, वीरचरित्र २, संघपट्टक प्रमुख ग्रन्थकर्ता श्री जिनवल्लभ सूरिजी ७, संदेह दोलावली, गणधर-सार्द्ध शतककर्ता श्री जिनदत्त सूरिजी ८, इत्यादि इसी तरहसे श्री जिनचन्द्र सूरिजी ९, श्री जिनपति सूरिजी १० वगैरह वर्त्तमान समय तक खरतरगच्छकी पट्टावलीमें उपरोक्त पूर्वाचार्यों के नाम लिखे हैं सो छपा हुआ "जैनमत वृक्ष" प्रसिद्ध है।

और भी इसी ही तरहसे अनेक ग्रन्थोंमें, अनेक पट्टावलियोंमें, अनेक प्रशस्तिओंमें, तथा अनेक ऐतिहासिक कथानक

ग्रन्थोंमें, चरित्रोंमें, और यावत् श्री आबुजी, विजापुर वगैरहके जैन मन्दिरोंके शिला लेखोंमें भी ऊपर मुजब ही पूर्वाचार्योंकी परम्परा लिखी है परन्तु यहां विस्तारके कारणसे सब पाठ नहीं लिख सकता जिसके देखनेकी इच्छा होवे तो "सामाचारी शतक" तथा "शुद्ध समाचारी प्रकाश" और "जैन इतिहास" वगैरह ग्रन्थोंको देख लेवें ;—

और कितनी ही जगह तो श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजको अणहिलपुर पट्टणमें संवत् १०८४ में श्री दुर्लभ राजाने चैत्यवासियोंको जितनेसे 'खरतर' विरुद दिया ऐसा भी लिखा है परन्तु ऊपरके प्रमाणोंमें तो १०८० लिखा है। और ऊपरके बहुत प्रमाणोंमें तो दुर्लभ राजा लिखा है परन्तु श्री तपगच्छके सोमधर्मगणिजीने "उपदेश सत्तरि" नामा ग्रन्थमें तथा "मोहन चरित्रमें" और कितनी ही पट्टावलियोंमें भीमराजा भी लिखा है, इस लिये संवत् १०८० का, या, १०८४ का, और दुर्लभ राजा था, या भीमराजा, इन दोनों बातोंके पाठांतर मतभेदका निर्णय तो श्री ज्ञानीजी महाराजके सिवाय वर्तमान कालमें होना कठिन है, और कितनी जगह श्री जिनेश्वरसूरिजीके संसारी नामोंमें और चरित्रोंमें भी मतभेद मालूम होता है जिसका निर्णय तो श्री ज्ञानी जाने और कितनी जगह तो श्री जिनेश्वरसूरिजी अपने गुरु भाई श्री बुद्धिसागरजीको साथ लेकर पाटण गये थे ऐसा लिखा है और कितनी ही जगह श्री वर्द्धमान सूरिजी वगैरह १८ साधुओंके साथ पाटण गये थे ऐसा भी लिखा है।

परन्तु चाहे जो हो यह बात तो सभी प्रमाणोंसे अच्छी तरहसे सिद्ध होती है कि श्री जिनेश्वरसूरिजीसे सुविहित (खरतर) सन्तती अर्थात खरतर (सुविहित)

गच्छके नामकी परंपरा शुरू हुई है सो तो श्री तपगच्छादिके सभी पूर्वाचार्योंको भी मान्य है। और दृढ़तर शास्त्र प्रमाणोंसे भी सिद्ध होता है इसलिये कोई निषेध भी नहीं कर सकता तथापि कोई कदाग्रहसे निषेध करनेका आग्रह करे तो अन्धपरम्परा और शास्त्र प्रमाण शून्य होनेसे मान्य नहीं हो सकता, इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं।

और कितनी ही जगह तो संवत् १०८० या १०८४ कुछ भी नहीं लिखा इसलिये दुर्लभ राजाने अपने राज्यासनके समयमें किसी वर्ष श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद तो अवश्यमेव दिया होगा परन्तु संवत् नहीं लिखनेके कारण यदि श्रीजिनेश्वर सूरिजीने संवत् १०८० में श्रीहरिभद्र सूरिजी कृत श्री अष्टकजी नामा ग्रन्थकी वृत्ति रची थी उससे भी १०८० का संवत् चल पड़ा होवे तो भी श्रीज्ञानीजी महाराज जाने।

अब विवेकी पाठक गणसे मेरा यही कहना कि ऊपरोक्त शास्त्र प्रमाणानुसार श्रीजिनेश्वरसूरिजीने राज्य सभामें शास्त्रार्थ करके चैत्यवासियोंको हराये और आप साधुके वर्तावमें सच्चे रहे तबसे 'खरतर' 'सुविहित' वसति मार्ग प्रकाशक कहलाने लगे इसलिये श्रीतपगच्छवाले वगैरह सब कोई श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे खरतरगच्छ और श्रीनवाङ्गीवृत्ति कारक श्रीअभयदेव सूरिजी खरतरगच्छीय ऐसा मानते हैं और पट्टावली वगैरह अनेक प्रत्यक्ष प्रमाणभी इस बातमें मिलते हैं मौजूद है जिसपर भी न्यायांभोनिधिजीने 'जैन सिद्धान्त समाचारी' नामक पुस्तक में और धर्मसागरजीने प्रवचन परीक्षा वगैरहमें श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुदका निषेध करनेके लिये मायावृत्तिसे एकांत हठवाद करके कल्पित अवलम्बनोंसे जो परिश्रम किया है उससे

उनमें मृषा वादका त्यागरूपी दूजा महाव्रत कैसे माना जावे सो विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं।

और अब इन दोनों महाशयोंके झूठे विकल्पोंका निर्णय आगे करनेमें आता है उससे सबको निःसन्देह हो जावेगा।

और श्रीन्यायांभोनिधिजीने 'प्रबन्ध चिंतामणी' 'गुर्जरदेश भूपावली' 'वनराज चावड़ा प्रबन्ध' और फारबस साहिबकी रची 'रासमाला' वगैरह इतिहास पुस्तकोंका प्रमाण बतलाकर संवत् १०७७ में दुर्लभ राजाकी मृत्यु होनेका ठहराके संवत् १०८० में श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद देनेका निषेध किया सो भी एकान्त हठवाद रूप अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका कारण ही मालूम होता है क्योंकि ऊपरके इतिहासिक पुस्तकोंमें अनेक जगह परस्पर विरुद्धताकी बातें बहुत जगह लिखी हुई हैं और एक ही बातमें अनेक तरहके मतभेद लिखे हुए हैं तो भी 'रासमाला' वगैरह इतिहासिक पुस्तकोंसे भी श्रीदुर्लभ राजाने श्रीजिनेश्वर सूरिजीको 'खरतर' विरुद दिया ऐसा सिद्ध होता है सो उसका लेख नीचे दिखाता हूं।

प्रथम फारबस साहिबकी रची 'रासमाला' नामकी गुजरातके इतिहासकी पुस्तक दूसरी आवृत्ति पृष्ठ १०५ में नीचे लिखे मूजिब लेख है।

"दुर्लभ राजे राज्य सारी रीते चलाव्युं असुरोने तेणे बहादुरी थी जीत्या देरां बांध्यां अने घणां धर्मनां काम कर्यां अणहिल वाडमां तेणे एक दुर्लभ सरोवर बांध्युं श्रीजिनेश्वरसूरि पासे ते भणतो हतो तेथी जैनधर्मनो बोध पामी जीवता प्राणियो ऊपर दया करवाना सारा मार्गमां चालतो" इत्यादि।

दूसरा और भी गुजरात देशका इतिहाश मराठी भाषामें मुम्बई निर्णयसागर छापाखानामें छपा है जिसमें भी नीचे मूजिब लिखा है।

"दुर्लभ राजाने ही आपलें राज्य फार चांगल्या चालविलें होतें यानें देवलें वगैरह बांधवून आपल्या राज्यांत पुष्कल धार्मिककामें केलीं होतीं अन्हिलवाड येथें दुर्लभ सरोवर नावाचा एक मोठा तलाव आहे, तो याच राजानें बांधविला असल्याची साक्ष त्या सरोवराचें नांव देत आहे। दुर्लभ सेनाने थोडींची वर्षें राज्य केलें। त्यानें आपला गुरु श्रीजिनेश्वर सूरिजी म्हणून होता त्याचे उपदेशानें जैनधर्माची शिक्षा स्वीकारून त्या धर्मान्त तो मोठा प्रवीण जाला होता त्याने जीव दया उत्तम प्रकारें पालिली" इत्यादि।

अब उन इतिहासिक लेख पर भी विवेक बुद्धिसे विचार करके देखा जावे तब तो श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजको दुर्लभ राजाने खरतर विरुद दिया जिसका निषेध करना कदाग्रहका सूचक व्यर्थ मालूम होता है क्योंकि जैनधर्मके इतिहासिक ग्रन्थोंसे और श्रीजिनेश्वर सूरिजीके चरित्रोंसे यह तो खुलासा ही मालूम पड़ता है कि अणहिलपुर पट्टणमें चैत्यवासियोंने राजासे करार करवा लिया था कि हम लोगोंके सिवाय अन्य जैनमुनि इस नगरमें रहने न पावे, इसलिये उस नगरमें शुद्ध संयमियोंका आना नहीं होता था, जब श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजने इस अनर्थको तोड़नेके लिये पाटण पधारे तब चैत्यवासियोंने अपने आदमियोंको भेजकर इन महाराजको नगरमेंसे बाहिर चले जानेको कहलाया नगरमें ठहरने भी नहीं देते थे जब महाराजने राज्य सभामें शास्त्रार्थसे चैत्यवासियोंको पराजय किये उससे इन महाराजको खरतर विरुद राजाने दिया तबसे शुद्ध संयमियोंका आना जाना विहार होने लगा और इन महाराजका भी वहां ठहरना हुआ।

अब विचार करनेकी बात है कि यदि श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजने उन चैत्यवासियोंका पराभव करके वहां शुद्ध संयमी मुनियोंका विहार खुला करानेके लिये वहां राजासे परिचय न किया होता तो राजा महाराजका भक्त होकर महाराजके पास जैन शास्त्रोंका अभ्यास कैसे करता और जैन धर्मानुरागी होकर विशेष न्यायवान् दयावान् कैसे बनता इससे भी साबित होता है कि यह बात अवश्य बनी होगी तभी तो रासमालामें और मराठी इतिहासमें श्रीजिनेश्वर सूरिजीको दुर्लभराजाके गुरु लिखे हैं और राज्यसभामें शास्त्रार्थ होनेसे जितने वाले विद्वान्को राजाकी तरफसे उनको सत्कार रूप पदवी मिलती है सो यह तो अनेक राजाओंकी सभामें अनेक विद्वान् जैनाचार्यों ने अनेक तरहके विरुद प्राप्त किये हुए शास्त्रोंमें सुननेमें आते हैं इसी तरहसे रासमाला और मराठी भाषाके इतिहाससे भी दुर्लभराजाने श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद दिया सिद्ध हो जाता है अन्यथा जहां अणहिलपुर पट्टणमें संयमियोंका जाना और ठहरना नहीं होता था तहां श्रीजिनेश्वर सूरिजीके पास राजाके शास्त्राध्ययन करनेका और जैनधर्मकी शिक्षा पाकर दयावान् होना यह कैसे बन सके सो विवेकी स्वयं विचार लेंगे।

और 'प्रबन्ध चिन्तामणी'के नामसे दुर्लभ राजाकी मृत्यु सं० १०७७ में होनी ठहराई सो तो प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि 'प्रबन्धचिन्तामणी'में तो १०७७ में दुर्लभ राजाके पाटणसे काशीकी यात्रा जानेको लिखा है परन्तु मृत्यु होनेका संवत नहीं लिखा इसलिये 'प्रबन्धचिन्तामणी'के नामसे सं० १०७७ में मृत्यु होनेका ठहराना सो भद्रजीवोंको भरममें डालकर अपने दूजे महाव्रतमें हानि पहुंचाना उचित नहीं है।

और रासमाला वगैरह गुजरातके इतिहासिक पुस्तकोंके आधारसे सं० १०७७ में मृत्यु होनेका ठहरानेका आग्रह किया सो भी बड़ी भूल है क्योंकि रासमालादि इतिहासिक पुस्तक किसी सर्वज्ञके कथन किये हुए तो नहीं हैं किन्तु अर्वाचीन जैन व अन्य कथानक इतिहासोंके आधारसे और चारण भाटादिकोंकी परम्परागत कथा कहानियोंके आधारसे रासमालादि इतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये हैं इसलिये इन पुस्तकोंकी सब बातोंपर निश्चय विश्वास करना उचित नहीं है और जो बात जैनधर्मके इतिहासिक वगैरह बहुत पुस्तकोंके प्रमाणानुसार होवे सो तो मानना चाहिये और जो बात बहुत शास्त्रोंके विरुद्ध होवे उसको भी माननेका आग्रह करना सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका कारण बनता है, जैसे श्रीजिनेश्वरसूरिजीको संवत् १०८० में दुर्लभराजाने 'खरतर' विरुद दिया सो यह बात बहुत शास्त्रोंके प्रमाणोंसे सिद्ध है इसलिये चारण भाटादिकोंकी कथा कहानियां वगैरहोंके आधारसे 'रासमाला' वगैरहमें सं० १०७७ में दुर्लभराजाकी मृत्यु लिखी उसको निश्चय मान लेना और बहुत शास्त्रानुसार तथा श्रीतप गच्छादिके पूर्वाचार्यों के सम्मत उपरोक्त विरुदका निषेध करना सो वर्त्तमानिक गच्छ कदाग्रहकी अज्ञानताकी तुच्छ बुद्धिके सिवाय क्या होगा।

और यद्यपि रासमाला वगैरह गुजरातके इतिहासोंमें तथा इतिहासोंके ही आधारसे किसी अन्य जगह जैनोंके इतिहासिक पुस्तकोंमें भी १०७७ का लिखा देखनेमें आता है परन्तु इससे श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजको चैत्य वासियोंके जितनेसे जो दुर्लभ राजाने सं० १०८० या १०८४ में खरतर विरुद दिया इसका निषेध नहीं बन सकता। क्योंकि देखो ऐसे तो श्रीस्थूलभद्रजीके जन्म दीक्षा स्वर्ग गमनके वर्षोंमें च्यार २

वर्षोंका मतभेद देखा जाता है, श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजीके स्वर्गगमनमें ४।४ वर्षों का मतभेद देखा जाता है, तथा कलिकाल सर्वज्ञ विरुद धारक श्रीहेमचन्द्राचार्यजीके दीक्षा और आचार्य पदमें भी ४।४ वर्षोंका मतभेद है और श्रीभद्रबाहु स्वामीजी, श्रीजिनेश्वरसूरिजी, श्रीमल्लवादीसूरिजी, तथा धनपाल पण्डित वगैरहके चरित्रोंमें भी पाठांतर मतभेद देखा जाता है और इसी तरह तपगच्छकी पट्टावलीमें भी यावत् श्रीहीरविजयसूरिजी तकको पाटानुपाटमें कोई कितने पाटपर और कोई कितने पाटपर; कोई कितने पाटपर मतांतरोंसे मानते हैं सो "सेन प्रश्न" देख लेना और इसी तरहसे 'सम्यक्त्वसल्योद्धार' वगैरहमें लिखे मूजिब सूत्रोंमें भी पाठान्तर देखा जाता है और भी कितने ही चरित्रादिकोंमें और इतिहासिक बातोंमें मतभेद पाठान्तर देखने सुननेमें आता है और श्रीउद्योतन सूरिजीसे ८४ गच्छकी उतपत्तिके सम्बन्धमें भी ३।४ मतान्तर होगये हैं और ओसवाल पारवाल श्रीमाल श्रीश्रीमाल वगैरह जैनी श्रावकोंकी उत्पत्ति, गौत्र, कुल, स्थापनमें भी कितने ही वर्षोंका मतभेद देखा जाता है इत्यादि। इन बातोंमें, सो यदि कोई हठवादी एकान्त एक बातको पकड़कर मतभेद पाठान्तरकी दूसरी बातका निषेध करनेके आग्रहमें पड़नेवालेको अभिनिवेशिक मिथ्यात्वीके सिवाय और क्या कहा जावेगा क्योंकि मतभेदकी बातोंका पूरा निर्णय तो श्रीज्ञानीजी महाराजोंके सिवाय वर्त्तमानमें अलपज्ञ हठवादी कदापि नहीं कर सकते हैं।

तैसे ही यदि संवत् १०८० पाठान्तरे १०८४ में दुर्लभ राजा विद्यमान होनेसे श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद दिया हो तो क्या इतिहासिक पुस्तकोंमें १०७७ में मृत्युके लिखनेको देख कर ऊपरकी बातका निषेध करना योग्य है सो तो कदापि

नहीं क्योंकि इन उपरोक्त बातोंका पूरा स्पष्ट खुलासे निश्चयके साथ निर्णय तो श्रीज्ञानीजी महाराजके सिवाय और कोई भी नहीं कर सकता इसलिये १०७७ के मृत्युके इतिहासिक लेखको आगे करके अनेक शास्त्रोंमें और तप गच्छके ही पूर्वजोंने अपने ग्रन्थोंमें श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर गच्छ, और श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी तथा श्रीजिनवल्लभ सूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी वगैरह पूर्वाचार्य खरतर गच्छमें हुए ऐसा लिखा है इसको झूठा ठहरानेका उद्यम करना सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका ही कारण मालूम होता है अन्यथा कदापि ऐसा एकान्त हठवादका साहस न होता खैर ;—

और नवीन या पुरानी जीर्ण पुस्तकोंका उतारा करनेमें बहुत भूलें भी हो जाती हैं इसलिये अक्षर और अंकोंका नम्बर लिखनेमें दृष्टि दोषसे यदि दुर्लभ राजाकी मृत्यु १०८७ में हुई होवे उसके लिखनेकी जगहपर भूलसे १०८७ के १०७७ लिखे गये होवे उसमें ८ का ७ बन गया होवे तो भी ज्ञानी जाने। अथवा १०७० या १०७४ में दुर्लभ राजाने श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद दिया होवे उसके लिखनेकी जगहमें भी ७ की जगह ८ लिखा गया होवे उसमें १०७०। बदसे १०८० बन गये होवे या १०७४ की जगह १०८४ बन गये होवे और वोही परम्परा चल पड़ी होवे तो भी श्रीज्ञानीजी महाराज जाने। परन्तु श्रीजिनेश्वर सूरिजीने दुर्लभ राजाकी सभामें चैत्य वासियोंका पराभव किया और संयमियोंकी विहार खुला कराया तबसे वसतिवासी सुविहित खरतर कहलाने लगे यह बात तो संवत् ११३९ में बना हुआ श्रीवीरचरित्र श्रीअभयदेव सूरिजीके सन्तानीय श्रीगुणचन्द्रगणिजी कृतसे, तथा दादाजी श्रीजिनदत्त सूरिजीकृत ११८० के अनुमान श्रीगुरुपारतंत्र्य और श्रीगणधर

सार्द्धशतक वगैरह प्राचीन ग्रन्थोंसे भी सिद्ध है तथा अन्य इति-हासिक ग्रन्थोंसे और परम्परासे भी सिद्ध है इसलिये थोड़ेसे वर्षों के मतभेदके देखनेसे मूल बातका निषेध करना सो बड़ी भूल है इसको निष्पक्षपाती विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं ;—

और १०८४ में भीमराजाने खरतर विरुद दिया यह माना जावे तब तो इतिहासिक पुस्तकोंसे भी कोई विरोध नहीं आ सकता सो यह बात भी तो पाठांतरसे लिखी हुई देखनेमें आती है इसलिये भीमने दिया या दुर्लभने सो तो श्रीज्ञानीजी जाने परन्तु श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद मिला यह सब प्रकारसे सिद्ध होता है ।

और जब श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी वगैरह जैनाचार्य्यों के सम्बन्धमें भी वर्षों का भेद देखा जाता है तो फिर दुर्लभ राजाके सम्बन्धमें निश्चय कैसे कह कसते हैं जिसपर भी निश्चय कहनेवाले प्रत्यक्ष हठवादी ठहरते हैं सो विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और धर्मसागरजीने भी विवेकशून्यतासे 'प्रबन्ध चिन्तामणि' 'बनराज चावड प्रबन्ध' वगैरह इतिहासिक पुस्तककोंके प्रमाणोंसे दुर्लभ राजाकी १०७७में मृत्यु होनेका ठहरानेका एकान्त हठवाद करके श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर विरुदका विषेध करनेका परिश्रम उठाया और उसी अंधपरम्परासे वर्त्तमानिक कदाग्रही जन आग्रह करते हैं सो उपरोक्त लेखसे सब व्यर्थ ठहरता है इसका विशेष निर्णय सत्यग्राही जन स्वयं कर सकते हैं।

शङ्का—अजी आप पूर्वोक्त शास्त्रोंके प्रमाणोंसे श्रीजिने-श्वरजीने चैत्यवासियोंके साथ दुर्लभ राजाकी सभामें शास्त्रार्थ करके राजसभामें खरतर विरुद प्राप्त किया ऐसा सिद्ध करते हो परन्तु "गुरु पारतंत्र्य" तथा "गणधर सार्द्धशतक" मूल और

उसकी व्याख्यामें तो शास्त्रार्थ करके चैत्यवासियोंको पराजय करनेका लिखा है परन्तु दुर्लभ राजाने खरतर विरुद दिया ऐसा तो नहीं लिखा तो फिर कैसे माना जावे।

समाधान—भो देवानुप्रिय! तेरेको श्रीजैनशास्त्रोंके अतीव गहनाशयकी गुरुगम्यतासे या अनुभवसे मालूम होती तो ऐसी शङ्का कदापि नहीं उठाता क्योंकि जैनशास्त्रोंमें किसी जगह किसी नय आश्रयि पूर्व कारण रूपकी बातको लिखी होवे वहां सम्बन्धसे उत्तर कार्य रूपकी बातका ऊपरसे अध्याहार करनेमें आता है और किसी जगह उत्तर रूपमें कार्यकी बात लिखी होवे वहां सम्बन्धानुसार पूर्व कारणकी बातका ऊपरसे अध्याहार करनेमें आता है और किसी जगह थोड़ेसे प्रसङ्ग मात्रका दर्शाव किया होवे वहां सम्बन्ध पूर्वक पूर्व और उत्तरका सब विवरण ऊपरसे करनेमें आता है। देखो! जैसे—किसी जगहपर अमुक तीर्थंकर भगवान्‌के उपदेशसे अमुक राजा दीक्षा लेता भया इतना लिखा होवे तो वहां-तीसरे भवमें तीर्थंकर गोत्र बांधनका, जन्म होनेका, दीक्षा लेनेका, केवल ज्ञान प्राप्त करनेका, ग्रामानुग्राम विचरनेका, समवसरणकी रचना होनेका, चौसठ इन्द्रादिकोके आनेका, और राजाको वधाई जानेसे भक्ति पूर्वक परिवार सहित बन्दनाको आनेका, भगवानके देशना देनेका, देशना सुनकर वैराग्य उत्पन्न होनेका, दिक्षा लेनेका, और शास्त्रार्थका अध्ययन करनेका, निरतिचार संयम पालनेका, यावत् तपश्चर्यादि पूर्वक आयु पूर्ण करके मोक्षगमन पर्यन्तका सब वृत्तान्त सम्बन्ध पूर्वक कहा जासकता है।

तथा दूसरा और भी सुना जैसे किसी जगह अमुक राजाने अमुक सूरिजीको शास्त्रार्थके लिये बुलाये सिर्फ इतनाही

लिखा होवे तथा अन्य जगह वही अमुक सूरिजी अमुक विरुद धारक थे इन्हीं महाराजके सन्तानीये अमुक गच्छवाले कहलाते हैं एसा लिखा होवे तो वहां राजसभामें विद्वानोंसे शास्त्रार्थ होनेका आप विजय प्राप्त करनेका राजाने खुश होकर उनके सत्कार रूप विरुद (पदवी) देनेका और अमुक विरुद धारक अमुक आचार्यके परम्परावाले उस पदवीके कारण पदवीके नामका गच्छवाले कहलाने लगे इत्यादि सब सम्बन्ध पूर्वक माना जाता है।

तैसेही श्रीजिनेश्वरसूरिजीने भी राज्यसभामें शास्त्रार्थ करके लिङ्गधारियोंका पराजय किया यह बात तो पूर्वोक्त शास्त्रोंमें खुलासाही लिखी हुई है तथा राज्यसभामें या विद्वानोंकी सभामें शास्त्रार्थमें विजय पानेवालेको राजाओंकी तरफसे या विद्वानोंकी तरफसे उनको पदवी मिलति थी और मिलति भी है इस बातके तो शास्त्रोंमें भी अनेक प्रमाण मिलते हैं और वर्त्तमानमें प्रत्यक्षपनेमें भी अनेक प्रमाण विद्यमान है। और अन्य शास्त्रोंमें तथा पट्टावलियोंमें, शिलालेखोंमें, चरित्रोंमें, चैत्यवासियोंके जीतनेसे राजाने खरतर विरुद दिया ऐसा खुलासा लिखा है उसके कितनेही प्रमाण तो ऊपरमें भी छप चुके हैं और उपरोक्त शास्त्रोंमें जब शास्त्रार्थका कारण लिख दिया तो विजय प्राप्तिसे सत्काररूप राजाकी तरफसे खरतर विरुदके कार्यका तो ऊपरसे भी सम्बन्ध जोड़ना चाहिये सो इसका दृष्टान्त ऊपरमें लिखा गया है इसलिये उपरोक्त शास्त्रोंके प्रमाणोंसे भी कारण कार्य भाव ग्रहण करके खरतर विरुदकी प्राप्ति मानना चाहिये।

और पहिली बार जो कार्य होता है वही प्रधानरूपसे गिना जाता है परन्तु पीछे तो कईवार वैसा कार्य होवे तो भी

पहिले जैसा नहीं गिना जाता इसलिये यद्यपि पीछे तो चैत्य-वासियोंको बहुत आचार्यादिकोंने हटाये थे परन्तु श्रीजिनेश्वर सूरिजीनेही पहिली वार प्रगटपने राज्यसभामें चैत्यवासियोंको हटाये थे इसलिये इन महाराजकी विशेषता मानी जाती है और पहिली वारका कार्य परम्परागतसे चिरकाल तक स्मर-णीय रहता है इसलिये इन महाराजका पहिलाही कार्य खरतर विरुदका परम्परा करके आज तक स्मरणीय हो रहा है और आगे होता रहेगा उसी कारणसे भी इन महाराजसे खरतर विरुद निषेध नहीं हो सकता है।

अथवा कितनेही ऐसा भी कहते हैं कि दुर्लभ राजाकी सभामें जब चैत्यवासियोंसे शास्त्रार्थ हुआ था तबसे ही सं० १०८० में सुविहित (खरतर) कहलाने लगे और राजाने इन महाराजको अपने नगरमें ठहरनेकी आज्ञा दी पीछे काला-न्तरमें भीम राजाकी सभामें १०८४ में बड़े बड़े विद्वानोंको-शास्त्रार्थमें जीतनेसे "खरतर" विरुदकी विशेष प्रसिद्ध हुई और इन महाराजका समुदायवाले खरतर गच्छके कहलाने लगे हैं सो ऐसा माना जावे तो भी दुर्लभ या भीम और १०८० या १०८४ का पाठान्तर ऊपरमें लिखा गया है सो इस बातसे भी श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे सुविहित (खरतर) गच्छकी उत्पत्ति होना परम्परा चलना तो अवश्यमेव मानना चाहिये जिसपर भी हठवादसे कुविकल्प करना सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे संसार बढ़नेका कारण है सो भवभीरू आत्मार्थी सत्यग्राही निष्पक्षपातियोंको करना उचित नहीं है और अन्ध परम्पराके कदाग्रहको छोड़कर उपरोक्त सत्य बातको ग्रहण करनाही श्रेयकारी है।

और जैसे पूर्वाचार्योंके दीक्षा, स्वर्गवास वगैरहके कालमानमें कितनेही वर्षोंका मतभेद हो रहा है तथा कितनेही चरित्रोंमें,

कितनेही सूत्रोंमें और भावी चौवीशीके वर्त्तमानिक जीवोंके गतिके नामोंमें और युगप्रधान गंड्किकाओंमें और इतिहासिक कथाओंमें इत्यादि अनेक बातोंमें ज्ञानी महाराजोंके अभावसे और काल दोषादि कारणोंसे जूदेजूदे मतभेद पाठान्तर हो गये हैं परन्तु उन बातोंमेंसे एक बातको पकड़के दूसरीको निषेध नहीं कर सकते हैं तैसेही खरतर विरुद प्राप्तिमें भी कालदोषादि कारणोंसे मतभेद हो गया है परन्तु श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुदकी प्राप्ति होनेरूप यह मूल बात सत्य होनेसे १०७७ में दुर्लभ राजाके मृत्यु होने सम्बन्धी, अन्धपरम्पराके अर्वाचीन इतिहासिक पुस्तकोंको आगे करके श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर परम्पराकी मूल सत्य बातका निषेध करनेका आग्रह करनासो आत्मार्थियोंका काम नहीं है।

और श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर गच्छकी परम्परा शुरू होने सम्बन्धी यहांपर प्रत्यक्ष प्रमाण भी दिखाता हूं सो विवेक बुद्धि हृदयमें लाकरके विचार लो देखो—जैसे श्रीजगच्चन्द्र सूरिजीको 'तपा' विरुद मिला इससे इन महाराजके परम्परा वाले तप गच्छके कहलाने लगे और उन्हीं तप गच्छमें से वृद्ध-पौशालिये तथा लघुपौशालिये वगैरह अनुक्रमसे वर्त्तमान समय तकमें करण योगोंसे १३। १४ भेद होगये सो १३। १४ गट्टी तो प्रसिद्ध ही हैं।

तैसे ही श्रीजिनेश्वर सूरिजीके परम्परावाले खरतर गच्छके कहलाने लगे सो उन्हीं खरतर गच्छमें से श्रीजिनवल्लभ सूरिजीके समयमें अनुमान ११७० के लगभगमें श्रीअभयदेव सूरिजीके अन्य दूसरे शिष्यकी तरफसे 'मधुकर खरतर' नामा खरतर गच्छकी प्रथम शाखा निकलि और श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजके समय संवत् १२०४ में श्रीजिनवल्लभ सूरिजीके शिष्य

श्रीजिनशेखर सूरिजी "रुद्रपल्लीय खरतर" नामा खरतर गच्छकी दूसरी शाखा निकाली सो इस तरहसे अनुक्रमे कारणका योगोंसे (तप गच्छकी तरह) खरतर गच्छमें भी वर्त्तमान समय तक में १२। १३ भेद होगये हैं सो १२। १३ गद्दी प्रसिद्ध हैं इस मुजब खरतर तप इन दोनों गच्छोंके १२। १३ भेद दोनों गच्छवाले प्रायः सब कोई मान्य करते हैं यह तो प्रत्यक्ष ही प्रमाणकी बात है।

और जैसे तपगच्छकी वृद्धपौशालिक शाखामें श्रीविजयचन्द्र सूरिजी श्रीक्षेमकीर्त्ति सूरिजी हुए हैं तथा लघुपौशालिक शाखामें श्रीदेवेन्द्र सूरिजी श्रीधर्मघोषसूरिजी वगैरह आचार्य हुए हैं और रुद्रपल्लीय शाखामें श्रीजिनशेखर सूरिजी वगैरह आचार्य हुए हैं और मूल वृहत्खरतर गच्छमें श्रीजिनवल्लभ सूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी श्रीजिनपति सूरिजी वगैरह बड़े बड़े शासन प्रभावक आचार्य हुए हैं सो तो आज तक भी प्रसिद्ध है और इसीलिये न्यायांभोनिधिका विशेषण धारण करनेवाले श्रीआत्मारामजी भी "चतुर्थस्तुति निर्णय" की पुस्तकमें श्रीजिनपति सूरिजीको वृहत् खरतरगच्छके लिखे हैं सो पुस्तक तो छपी हुई प्रसिद्ध ही है। इस बातमें किसीको सन्देह होवे तो उक्त पुस्तक देख लेना

अब यहांपर विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि—जब श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजके शिष्योंसे ही खरतर गच्छकी शाखा अलग हो गई तो इन महाराजके पहिलेसे ही खरतर गच्छ तथा इन महाराजके खरतर गच्छमें होनेका स्वयं ही सिद्ध हो चुका इसलिये खरतर गच्छके १३ भेदोंका प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर विरुद सिद्ध होता है इसलिये इन महाराजसे खरतर विरुदका निषेध

करना और श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजीको खरतर गच्छमें न होनेका ठहराना सो प्रत्यक्ष महामिथ्या है इसको विशेषतासे तो निष्पक्षपाती विवेक बुद्धिजन स्वयं विचार लेवेंगे ।

अब मेरेको बड़े आश्चर्य सहित खेदके साथ लिखना पड़ता है कि न्यायांभोनिधिजीका विशेषण धारण करनेवाले श्रीआत्मारामजी जैसे भी धर्मसागरजीकी धर्म धूर्त्ताईकी ठगाई के अन्ध परम्परामें गड्डरीह प्रवाहकी तरह फंस गये और विवेक बुद्धिकी शून्यतासे विना विचारे ही कुविकल्प और जूठे आलम्बनोंका सहारा लेकर व्यर्थ द्वेष बुद्धिसे अपने दूसरे महाव्रतके भङ्गका भय न करके श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजसे खरतर परम्परा चलनेका निषेध करते थोड़ासा कुछ भी विचार क्यों नहीं किया, क्योंकि देखो भला जब श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजके सन्तानीय श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी के शिष्योंसे ही गच्छ भेदसे जुदी शाखा होगई और संवत् १२०४ तक श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजके समय तक तो खरतर गच्छकी दूसरी शाखा भी जुदी हो गई और मूल वृहत् खरतर गच्छ सहित दो शाखा अलग होकर तीन भेद भी होगये तो फिर श्रीजिनदत्तसूरिजीसे १२०४ खरतर गच्छकी उत्पत्ति कहना लिखना बालकपनके सिवाय और क्या होगा ।

और जब 'मुधकर' तथा 'रुद्रपल्लीय' यह दोनों शाखा खरतर गच्छकी आज तक इतिहासोंमें और पट्टावलियोंमें प्रसिद्ध है तो फिर सं० १२०४ में खरतर उत्पत्ति कहने लिखने मानने वालोंको १२०४ के पीछे 'मधुकर' और 'रुद्रपल्लीय' यह दोनों खरतर गच्छकी शाखा न माननेका हठ करनेवालोंको भी 'मधुकर' और 'रुद्रपल्लीय' यह दोनों शाखा किस गच्छकी है और

किस २ आचार्यसे किस २ वर्ष उत्पन्न हुई इसका भी तो खुलासा अवश्यमेव करना पड़ेगा क्योंकि इन दोनों शाखाओंका प्रत्यक्ष प्रमाण खरतर गच्छमें मिलता है इससे इन दोनों शाखाओंसे भी खरतर गच्छ पहिलेका ही सिद्ध होता है जिसपर भी कितने ही अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे इस प्रत्यक्ष प्रमाणकी सत्य बातको भी नहीं मानकर इनका निषेध करनेका आग्रह करनेवालोंको ऊपरकी दोनों शाखाओंका खुलासा अवश्य दिखलाना पड़ेगा अन्यथा जिस गच्छके आचार्यों के शिष्य प्रशिष्यादि परम्परामें मूल गच्छकी शाखा प्रशाखा भी जिसके पहिले अलग हो चुकी उस गच्छको शाखा प्रशाखाओंके पीछे उत्पन्न होनेका ठहरानेका साहस करना सो तो पोता प्रपोताकी उत्पत्ति पहिले, और उनके दादाकी उत्पत्ति पीछे मानने जैसी न्यायांभोनिधिजी वगैरहोंका कथन बाललीला समान ठहरता है उसको विवेकी तत्वज्ञजन अच्छी तरहसे विचार सकते हैं।

तथा और भी न्यायांभोनिधिजीके समुदाय वालोंको इस बातपर भी विचार करके निर्णय दिखाना पड़ेगा कि खास न्यायांभोनिधिजीने 'चतुर्थ स्तुति निर्णय' की पुस्तकमें श्रीजिनपति सूरिजीको वृहत् खरतर गच्छके लिखे हैं और "जैनतत्वादर्श" तथा "जैनसिद्धान्त समाचारी" की पुस्तकमें १२०४ में खरतर गच्छकी उत्पत्ति लिखते हैं तो १२०४ पीछे किस वर्ष किस आचार्यसे किस कारण किस ग्राममें खरतर गच्छकी कौन कौन शाखा अलग अलग जुदी २ निकली उससे वृहत खरतर लघु खरतर वगैरह कहलाने लगे क्योंकि लघुके बिना तो वृहत् नहीं हो सकता है और न्यायाभोनिधिजी श्रीजिनपति सूरिजीको 'चतुर्थस्तुतिनिर्णय' की पुस्तकमें वृहत् खरतर गच्छके लिख चुके हैं इसलिये लघु होनेका और मधुकर रुद्रपल्लीय वगैरह गच्छी

अलग होनेका कारण खुलासा पूर्वक बतलाना होगा, नहीं तो हम ऊपरमें लिख आये हैं उस मुजब मानना पड़ेगा अन्यथा अन्तर मिथ्यात्वियोंमें अन्याय रूप अधर्म रहता ही है सो तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और खरतर गच्छ वालोंके लिखे मूजब वृहत् खरतर लिखा मानो तो उनके लिखे मूजब इस गच्छकी उत्पत्ति और गच्छभेद भी मान लो अन्यथा एकको मानोंगे एकको नहीं यह तो प्रत्यक्ष अन्यायकी बात है।

और कलिकाल सर्वज्ञ समान श्रीहेमचन्द्राचार्यजी, वादिवेताल श्रीशान्ति सूरिजी, न्यायविशारद श्रीयशोविजयजी, श्रीखरतर गच्छकी रुद्रपल्लीय शाखाके वादीसिंह श्रीअभयदेव सूरिजी, वगैरह अनेक प्रभावक पुरुषोंको विरुद मिलने सम्बन्धी कारण, कार्य, सभा, विषय, राजा, विद्वानोंका समुदाय, संवत, वगैरह कितनीही बातोंका प्रमाण नहीं मिलता है तो भी वे सब विरुदतो माननेमें आते हैं और श्रीजिनेश्वर सूरिजी सम्बन्धीअनेक शास्त्रोंके, पट्टावलियोंके, चरित्रोंके, प्रमाण मिलते हैं और श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्य मान्य करते हैं और १३ भेद वगैरह प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिलते हैं जिसपर भी व्यर्थ कुयुक्तियोंकी आड़ लेकर सत्य बातके निषेध करनेके आग्रहमें फसना सो तो प्रत्यक्ष ही अभिनिवेशिकका कारण मालूम होता है क्योंकि सब विरुदोंको तो मानना और एकको नहीं मानना यह अन्याय आत्मार्थियोंसे कदापि नहीं हो सकता. इसको विशेषतासे विवेकीजन स्वयं विचार लेवेंगे।

शङ्का–अजी आप श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर गच्छकी परम्परा शुरू होनेका मानते हो और श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेव सूरिजीको खरतर गच्छके कहते हो तो इन महाराजने

तो श्रीनवांगी वृत्ति और पञ्चाशक वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रोंकी रचना करी है और श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे अपनी परम्परा भी मिलाई है परन्तु इन महाराजको खरतर विरुद धारकका विशेषण तथा मैं खरतर गच्छमें हूं ऐसा किसी भी ग्रन्थमें नहीं लिखा तो फिर इन महाराजको खरतर गच्छके कैसे माने जावे सो बतलाओ ।

समाधान—भो देवानु प्रिय ? तेरेको उन महापुरुषोंके अभिप्रायकी मालूम नहीं है इसलिये ऐसी शङ्का करता है परन्तु अब हम तेरे तथा अन्य सत्य ग्राही विवेकी भद्र पाठक गणके सन्देहको दूर करनेके लिये उन महापुरुषोंके अभिप्रायको दिखाते हैं सो निस्पक्षपातसे विवेक बुद्धिको हृदयमें स्थिर करके देखो जैसे ? प्राचीन समयमें श्रीशीलांगाचार्यजी, श्रीमलयगिरिजी, १४४४ ग्रन्थकर्ता श्रीहरिभद्रसूरिजी, ५०० ग्रन्थकर्ता श्रीउमास्वातिवाचकजी, श्रीजिनभद्रगणी क्षमाश्रमणजी, श्रीदेवर्द्धिगणी क्षमाश्रमणजी, श्रीश्यामाचार्यजी, पूर्वधर चूर्णिकार श्रीजिनदास गणी महत्तराचार्यजी, श्रीशान्तिसूरिजी श्रीयशोदेवसूरिजी वगैरह अनेक महापुरुषोंने, किसीने तो अपने बनाये ग्रन्थमें अपने गच्छका नाम नहीं लिखा, किसीने अपने गुरु तकका भी नाम नहीं लिखा, तो भी अन्य ग्रन्थोंके आधारसे उन पुरुषोंको उनके गच्छके माननेमें आते हैं ।

तैसेही श्रीअभयदेव सूरिजीने भी अपने बनाये ग्रन्थोंमें खर-तर नाम नहीं लिखा तो भी न्यायानुसार तो अन्य ग्रन्थोंके प्रमाणसे और परम्परा पट्टावलीके प्रत्यक्ष प्रमाणसे इन महा-राजको खरतर गच्छमें मानने चाहिये ।

और उपरोक्तादि अनेक महापुरुषोंने अपने गुरुका और गच्छका नाम नहीं लिखा तो भी उसी मुजब मान लेना और

श्रीअभयदेवसूरिजीके न लिखनेकी आड़ लेकर नहीं मानना, यह तो प्रत्यक्षही कदाग्रहका कारण दिखता है सो आत्मार्थियोंको करना उचित नहीं है।

और यदि श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतर गच्छ न लिखनेकी आड़ लेकर न मानोंगे तो श्रीदेवेन्द्रसूरिजीने, श्रीधर्मघोषसूरिजीने, श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजीने, भी तो श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीवड़गच्छके नहीं लिखे हैं, और अपनी परम्परा भी वड़गच्छसे नहीं मिलाई है, और श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको तपा विरुद धारक भी नहीं लिखे हैं, तो फिर श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतर न लिखनेके आड़की तरह तो वर्त्तमानिक सब तपगच्छवालोंको भी श्रीदेवेन्द्रसूरिजी वगैरह अपने पूर्वजोंके वड़गच्छ तथा तपाविरुद न लिखनेको भी नहीं मानना चाहिये सो तो नहीं किन्तु विशेष रूपसे मानते हैं। सो यह तो प्रत्यक्षही अन्याय रूप अधर्म ठहरता है क्योंकि अपने पूर्वाचार्योंके न लिखनेको भी मान लेना और दूसरोंके पूर्वाचार्योंके न लिखनेकी आड़ लेकर निषेध करना यह बाललीलाके सिवाय और क्या होगा सो विवेकीजन स्वयं विचार लेवेंगे।

और श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतर न लिखनेकी आड़ लेकर इन महाराजको खरतरगच्छमें नहीं होनेका मानते हो तो इसीके अनुसार तो श्रीजिनवल्लभसूरिजी, श्रीदेवभद्रसूरिजी, श्रीवर्द्धमानसूरिजी, श्रीदेवेन्द्रसूरिजी, श्रीविबुद्धप्रभसूरिजी, श्रीजिनदत्तसूरिजी, श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, श्रीजिनपतिसूरिजी वगैरह खरतरगच्छके बहुत आचार्योंने अपने बनाये ग्रन्थोंमें अपना खरतरगच्छ नहीं लिखा है तथा ऐसेही तपगच्छवालोंने भी कितनेही ग्रन्थोंमें अपना तपगच्छ नहीं लिखा है। और दूसरे भी प्राचीन तथा थोड़े कालके कितनेही ग्रन्थोंमें ग्रन्थकारोंने

अपना गच्छ नहीं लिखा है ऐसे बहुतसे ग्रन्थ दृष्टिगोचर आते हैं तो क्या उन सभी ग्रन्थकारोंको उनके गच्छके न मानोगे सो तो कदापि नहीं तो फिर व्यर्थका हठ वादमें क्या सार निकलेगा सो विवेक बुद्धि हृदयमें लाकरके स्थिर चित्त पूर्वक न्याय दृष्टिसे विचारनेकी बात है ।

और जैसे श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको तपाविरुद मिला था सो श्रीदेवेन्द्रसूरिजी तथा श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी जानते थे, तो भी (इन महाराजकी इसी ग्रन्थके पृष्ठ ६५६ से ६७६ तकमें छपेमुजब वड़गच्छको छोड़कर चैत्र वालगच्छसे ही परम्परा मिलाई) तपाविरुदको नहीं लिखा ।

तैसेही श्रीनवाङ्गी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी भी अपने गुरुजी श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर विरुदकी प्राप्ति और चैत्यवासियोंके साथ शास्त्रार्थ वगैरह सब बाते जानते थे तो भी खरतर विरुद न लिखा और चन्द्रकुलादिसे अपनी श्री-जिनेश्वरसूरिजीकी परम्परा मिलाई है।

और श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीजिनवल्लभसूरिजी, श्रीजिनदत्त-सूरिजी, श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, श्रीजिनपतिसूरिजी, श्रीसुमतिगणी श्रीजयन्तविजयंत काव्यकर्त्ता वादीसिंह विरुद धारक श्रीअभयदेव सूरिजी वगैरह इन महाराजोंको तो खरतर विरुदका आग्रह नहीं था इसलिये वर्त्तमानिक समयवत् आप लोगोंकी तरह अपने गुरुको लम्बी चौड़ी पदवी लिखते चले आवे परन्तु इन महा-राजोंको तो अशुद्ध प्रवृत्तिको हटाके, शुद्ध मार्ग प्रकाश करनेका आग्रह था, इसलिये 'आगम अठोत्तरी' "संघ पट्टक" सन्देह दोला वली, संघ पट्टककी और इसीकी वृहत् तथा लघु दोनों वृत्ति, गणधर सार्धशतक वृहत् तथा लघु दोनों वृत्ति, षट्स्थान-कप्रकरणवृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें द्रव्यलिङ्गी शिथिलाचारी उत्सूत्र-

भार्यियाँ सम्बन्धी क्या क्या लिखा है सो तो उपरोक्त महाराजोंके रचे हुए ऊपरके ग्रन्थोंको देखनेसे मालूम हो जावेगा और तुमारी शङ्का मुजब तो यह सबी महाराज खरतरगच्छके तथा श्रीदेवेन्द्रसूरिजी वगैरह तपगच्छके नहीं ठहरेंगे सो कदापि नहीं हो सकता और बहुतसे ग्रन्थकारोंने तो अपना चान्द्रकुलादि भी नहीं लिखा परन्तु तुमारी शङ्का मुजब तो उनोंके चान्द्रकुलादि भी नहीं मानने चाहिये ऐसा कभी नहीं हो सकता सो इसलिये अज्ञानतासे ऐसी शङ्का करना व्यर्थ है इसको विवेकी पाठकगण विशेषतासे तो स्वयं विचार लेवेंगे।

और श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी वगैरह इन महाराजोंने अपना खरतर गच्छ नहीं लिखा जिसका कारण तो यही है कि इन महाराजोंको इस खरतर विरुदके लिखने ऊपर इतना आग्रह अभिमान नहीं था क्योंकि श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजने चैत्यवासियोंकी अविधि उत्सूत्रता शिथिलताका निषेध करके संयमियोंका शुद्ध व्यवहार विधि मार्गको भगवान्‌की आज्ञानुसार प्रगट किया था सो ऐसे करना तो सभी आत्मार्थी जैनी आचार्य उपाध्याय साधुका कर्त्तव्य रूप मुख्य धर्म ही है सो वोही श्रीजिनेश्वरसूरिजीने किया परन्तु विशेष कोई नवीन आश्चर्यकी अपूर्व बात नहीं करी थी, तो भी इस पञ्चमकालमें उस समय लिङ्गधारी चैत्यवासियोंका उपद्रव बढ़ गया था शिथिलताका प्रचार बहुत हो गया था और अपने नगरमें संयमियोंको आने भी नहीं देते थे और किसी किसी क्षेत्रमें संयमी अल्प रह गये थे इसलिये श्रीजिनेश्वरसूरिजीने अपने शुद्ध संयमका बर्त्ताव पूर्वक चैत्यवासियोंके उपद्रवका भय न करते हुए साहस करके अणहिलपुरपट्टणमें आये और उन्होंको हटाने पूर्वक संयमी मुनि

योंका विहार कराना शुरू किया उससे वहां विधि मार्ग और संयमी साधुओंका प्रकाश होने लगा इसलिये इन महाराजके इस कर्त्तव्यको विशेष रूपसे भी मान सकते हैं इसलिये इन महाराजका इस कर्त्तव्यको श्रीजिनदत्तसूरिजी श्रीजिनपतिसूरिजी श्रीसुमतिगणीजी दूसरे श्रीअभयदेवसूरिजी वगैरह पूर्वाचार्य अपने ग्रन्थोंमें विस्तारसे लिखते आये हैं परन्तु खरतर विरुद पर इतना आग्रह न होनेसे इसको जगह जगह नहीं लिखा तो भी इसीका कारण लिखा हुआ है सो कार्यका सम्बन्ध जोडकर मान सकते हैं इसलिये उपरोक्त महाराजोंने खरतर विरुद नहीं लिखा तो भी कोई हरजा नहीं है।

और श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके तो श्रीजिनेश्वरसूरिजीने चैत्यवासियोंको जीते उसको तथा खरतर विरुदको लिखनेका प्रसङ्ग भी नहीं था क्योंकि प्रशस्तियोंके लेखोंमें कथानकरूपकी बातको नहीं भी लिखे तो कोई हरजा नहीं है और कर्मोंकी विचित्रताके कारणसे चैत्यवासी होगये थे, परन्तु वे लोग भी तो श्रीवीरप्रभुकी परम्परावाले तथा सूत्रवृत्ति आदि पञ्चाङ्गी और प्रकरणादि माननेवाले थे और श्रीअभयदेवसूरिजीने श्रीनवांग वृत्ति वगैरह जैनीमात्र सबगच्छवालोंके माननेके लिये बनाई थी किन्तु किसी एक पक्षके माननेके लिये नहीं और खरतर विरुद सम्बन्धी बात तो चैत्यवासियोंको और अन्य शिथिलचारियोंको मान्य नहीं थी इसलिये यदि श्रीनवांग वृत्तिमें श्रीअभयदेवसूरिजी खरतर विरुदकी बात लिखते तो चैत्यवासियोंके और अन्य शिथिलाचारियोंके तथा खरतर विरुदके द्वेषी अन्य गच्छ वालोंके श्रीनवांग वृत्ति वगैरह इन महाराजके बनाये शास्त्रोंको मान्य करनेमें बाधा खड़ी हो जाती, और श्रीनवाङ्ग वृत्ति सबगच्छवाले शिथिलाचारी चैत्यवासी या

संयमी सबके एकसमान उपगारी होनेसेही तो इन महाराजने सर्व मान्य चान्द्रकुल लिखा परन्तु खरतर न लिखा सो तो इन महापुरुषोंने बहुतही अच्छा किया जो गच्छके आग्रहके निमित्त कारणकी जड़कोही नहीं लिखा अन्यथा जैसे वर्त्तमानकालमें कितनेही विवेक शून्य गच्छकदाग्रही जैनी नाम धरानेवाले, किसी गच्छवालेने अपने गच्छके नामसे कोई अच्छा भी पुस्तक बनाया होवे तो भी उसको नहीं मानते हैं। सो मानना तो दूर रहा हाथमें लेकर वांचनेमें भी सङ्कोच करते हैं, और कितनेही आदमी उस पुस्तककी बातों सम्बन्धी सत्यासत्यका निर्णय किये बिना ही बोलने लगते हैं कि इसमें क्या है यह तो अमुक गच्छ वालेने बनाया है सो अपनी बातें लिखी होगी इसलिये इसको नहीं बांचना चाहिये सो ऐसे दृष्टान्त वर्त्तमानमें बहुत देखनेमें आते हैं सो ऐसा न होनेके लियेही तथा भाष्यचूर्णिकारोंकी और हरिभद्रसूरिजी वगैरह महाराजोंकी तरह इन महाराजने भी स्वभाविकसे खरतर विरुद न लिखा परन्तु आप खरतर विरुदमें ही थे सो स्वयं अच्छी तरहसे जानते थे।

और दूसरा यह भी कारण है कि श्रीअभयदेवसूरिजी श्री-जिनवल्लभसूरिजी वगैरह उपरोक्त महाराज अपने अपने बनाये शास्त्रोंमें अपना खरतरगच्छको जगह जगह पर लिखते जावे और उस समयके चैत्यवासियोंकी तरह गच्छरूप वाड़ेके आग्र-हका बन्धनको दृढ़ होनेका कारण करें, ऐसा उन महाराजोंसे कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि देखो—उस समय चैत्यवासी लोग अपने अपने भक्तोंको अपने दृष्टिरागमें फसानेके लिये अपने अपने गच्छकी परम्पराका नाम लेकर विवेक शून्य भोले जीवोंको अपनी मायाजालमें फसाते थे और आराधक, विरा-धक, सम्बन्धी शुद्ध वर्तावके विचारोंको भूलाकर अपनी स्वार्थ

सिद्धता करनेके लिये, ब्राह्मण चारण भाट और कुलगर (गृहस्थ लोगोंके वंश परम्परा सुनानेवाले) वगैरहोंकी तरह चैत्यवासियोंने भी गच्छ परम्पराके बहाने भोले जीवोंको अपने वाड़ेमें रख छोड़े थे इसलिये ही तो श्रीसङ्घपट्टककी व्याख्या वगैरह शास्त्रकारोंने गच्छोंके पक्षपात परम्परा रूप वाड़के बन्धनको तोड़नेके लिये और दृष्टिराग छोड़कर शुद्ध विधि मार्ग श्रीजिनाज्ञा अङ्गिकार करनेके लिये बहुत लिखा है सो तो छपा हुआ सङ्घपट्टक प्रसिद्धही है इसलिये श्रीअभयदेवसूरिजी श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी श्रीजिनपतिसूरिजी वगैरह महापुरुषोंने गच्छ बन्धनके वाड़ेके कारणभूत पिछाड़ी परम्परागतमें न होनेके लिये अपने खरतर विरुदको अलग करके न लिखा और चन्द्रकुलके अन्तरगत उस समयके सर्व-मान्यचन्द्रकुलादिको लिखते रहे हैं, आत्मकल्याण और परो-पकार तो श्रीजिनाज्ञा पूर्वक सत्योपदेशमें है किन्तु गच्छके पक्षपातके बन्धनरूपवाडेमें नहीं है।

अब मेरेको बड़ेही अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि वर्त्तमानिक श्रीतपगच्छमें बड़े बड़े विद्वान् कहलाते हैं परन्तु धर्मसागरजी आत्मारामजी वगैरहोंकी अन्धपरम्परामें फसकर गड्डरीह प्रवाहकी तरह एक एककी देखादेखी विवेक बुद्धिसे कारण कार्यको तथा उन महापुरुषोंके भाष्यचूर्णिकारा पूर्व-धरादि पूर्वाचार्योंके अभिप्रायको और उस समयके चैत्य-वासियोंकी गच्छके नामसे अपना अपना वाड़ा बांधनेकी खोटीप्ररूपणावगैरहका विचार किये बिना और श्रीदेवेन्द्रसूरिजी श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी श्रीधर्मघोषसूरिजीके बनाये ग्रन्थोंकी प्रश-स्तिके लेख रूप अपने घरको देखे बिनाही श्रीनवाङ्गी वृत्ति-कारक श्रीअभयदेवसूरिजीने 'खरतर न लिखा' 'खरतर न लिखा'

ऐसे लिखते कहते चले जाते हैं और आपसमें कदाग्रह बढ़ाते हैं उन्हींकों उपरोक्त लेख बांचकर लज्जित होना चाहिये और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके हठवादको छोड़कर सरलता पूर्वक सत्य बात ग्रहण करनी चाहिये।

और अपना घर भी तो देखना चाहिये कि श्रीदेवेन्द्रसूरिजी श्रीक्षेम कीर्त्तिसूरिजी वगैरहोंने वड़गच्छको छोड़कर चैत्रवालगच्छ को खुलासा पूर्वक लिखा है जिसको तो माननेमें न मालूम किस कारणसे लज्जा करते हो और इन पूर्वाचार्योंके लिखे चैत्रवाल गच्छसे परम्परा मिलाना छिपाकर श्रीजिनाज्ञा और अपने पूर्वाचार्योंके विरुद्ध होकर प्रत्यक्ष विपरीत वड़गच्छसे परम्परा मिलाते हो सो "अकरंतोगुरुवयणं, अणन्त संसारीओ, भणिओ" इस वाक्यानुसार आप लोगोंका कितना संसार माना जावे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने और अपने घरमें तो बिना लिखे भी मनमाना चाहे जैसा विपरीत वर्तावको भी मान बैठना और दूसरे महापुरुषोंके अभिप्रायको समझे बिना कुविकल्प उठाना सो बाल लीलाके सिवाय और क्या होगा। इसलिये दूसरेके वास्ते कुयुक्ति करना वोही अपने सिरपर गिरने लगे वैसे कदाग्रहको छोड़नाही आत्मार्थी अल्पकर्मियोंका काम है।

शङ्का—अजी आप तो उपरोक्त पूर्वाचार्योंने अपनी अपनी गच्छ परम्पराके पक्षपातरूप बन्धनके वाड़ेका कारण न होनेके लिये अपना खरतर विरुद नहीं लिखा ऐसा कहते हो तो फिर १४००।१५०० से तो खरतर गच्छके बहुत आचार्य अपना खरतर गच्छ लिखने लगे थे और वर्त्तमानिक समयमें तो बड़े जोर शोरसे लिखते हैं जिसका क्या कारण है।

उत्तर—भोदेवानु प्रिय? संवत् १४००।१५००से तथा वर्त्तमानमें खरतर लिखनेका तो यही कारण है कि—यद्यपि श्रीजिनेश्वर-

सूरिजीने पहिलेही पहिल राज सभामें चैत्य वासियोंका पराभव किया था, तबसेही उन्होंका जोर दिनो दिन कमती होने लगा, सो जैसे जैसे-संयमियोंने चैत्यवासियोंके अनुचित वर्तावके भेद खोलकर भव्य जीवोंको शुद्ध मार्गमें लानेका खूब प्रचार किया तैसे तैसेही-वे चैत्यवासी जन अपने अनाचारोंका विचार करके उनोंको छोड़ तो नहीं सकते थे, परन्तु विशेष रूपसे संयमियोंके द्वेषी बनते थे, और जबसे श्रीजिनवल्लभ सूरिजीने, तथा श्रीजिनदत्तसूरिजीने, उन चैत्यवासियोंकी अविधि उत्सूत्रता सिथिलताको बड़े जोर शोरसे निषेध करी और भव्य जीवोंके उपकारके लिये भगवान्की आज्ञानुसार शुद्ध विधिमार्गकों प्रकाशित किया, और कठिन क्रियाके वर्तावसे शिथिलाचारियोंको लज्जित किये, और चमत्कारोंसे तथा उपदेशसे हजारों लाखों अन्यमत वालोंको प्रतिबोध देकर जैनी ओसवाल वगैरह श्रावक बनाये, और विशेष रूपसे चैत्यवासियोंकी मायाजाल उखेड़ डालनेके लिये अनेक ग्रन्थों की भी रचना करी, और चारों तरफसे श्रीजैनशासनकी बहुत बड़ी भारी उन्नति करके दूसरे उदयको प्रकाशमान किया, तबसे चैत्यवासी लोग और अन्य गच्छवाले भी शिथिलाचारीजन इन महाराजोंसे बहुत द्वेष रखने लग गये थे, (सो तो छपा हुआ श्रीसङ्घपट्टक वांचनेसे मालुम हो जावेगा) उससे इन महाराजोंकी अनेक तरहसे निन्दा करके अवर्णवाद बोलने लगे, तथा खरतर (सुविहित) विरुदसे बहुत द्वेष हो गया, परन्तु खरतर विरुद धारकोंकी बनाई हुई श्रीनवाङ्गसूत्र वृत्ति वगैरह शास्त्रोंकों मान्य किये बिना काम भी नहीं चुल सकता था, इसलिये उन द्वेषी लोगोंने १३०० के लगभग श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजको खरतर विरुदकी प्राप्ति होनेका निषेध

करना शुरू किया, और श्रीनवाङ्गी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी महाराज खरतर गच्छमें नहीं हुए ऐसा कहते हुए ? नवाङ्ग वृत्ति मानने रूप अपना अभीष्ट सिद्ध करनेके लिये, और श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजपर झूठे कल्पित दोषोंका अव-लम्बन लगाके १२०४ में खरतरगच्छकी उत्पत्ति कहने लगे, तबसे १३००।१४०० सौ से शिथिलाचारको हटानेके मूल कारण भूत और श्रीनवाङ्गी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज खरतर याने सुविहित गच्छमेंही हुए ऐसा सबको विशेष रूपसे मालुम होनेके लिये श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर बिरुदकी प्राप्तिके लिखनेका कारण बन गया। अन्यथा पूर्वे तो जैसे प्राचीनाचार्योंके गच्छ लिखनेका रूढी नहीं थी, तैसेही श्रीजिने-श्वरसूरिजीसे खरतर विरुद लिखनेकी प्रवृत्ति भी नहीं थी, जिस का विशेष खुलासा तो श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतर न लिखने सम्बन्धी शङ्काके समाधानमें ऊपरमेंही छप चुका है।

और जैसे जैसे द्वेषी लोगोंने श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुदका निषेध सम्बन्धी विवाद बढ़ाया, तैसे तैसेही खरतर विरुदके लिखनेकी प्रवृत्ति भी बढ़ती चलती गई है ?

और जबसे कालदोषादि कारणोंसे श्रीतपगच्छकी समुदायमें भी कितनीही बातोंमें शास्त्र विरुद्ध प्रवृत्ति होने लगी, तबसे खरतर विरुदधारकोंने उसका निषेध करना शुरू किया, उसी समयसे इन दोनों गच्छोंके आपसमें द्वेषका कारण होने लगा, और जैसे जैसे आपसमें खण्डन मण्डन वादविवाद बढ़ने लगा, तैसे तैसेही एक एकके-थाप-उत्थापसे निन्दा-इर्षा भी बढ़ने लगी; जिसमें भी तपगच्छके कितनेही आचार्यादि महाराजोंने तो श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक, तथा अधिक मासकी गिनति पूर्वक दूसरे श्रावणमें पर्युषण पर्वका आराधन, और सामायिका-

धिकारे पहिले करेमिभन्ते पीछे इरियावही, और श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर विरुदकी उत्पत्ति, और श्रीनवाङ्गी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीजिनवल्लभसूरिजी, श्रीजिनदत्तसूरिजी वगैरह शासन प्रभावकाचार्य्य श्रीखरतरगच्छमें हुए इत्यादि बहुत सत्य बातें मान्यकरी थी और अपने अपने बनायें ग्रन्थों में खुलासा पूर्वक इन बातोंको लिखते रहे, इन्होंसे खरतर वालोंका पूर्ण प्रीति भाव सहित संपसे वर्ताव होता था और आपसमें एक एकको वन्दना स्तुति-गुण गान-करते रहते थे, परन्तु जबसे उपरोक्त बातोंमें भी चैत्यवासियोंका अनुकरण होने लगा, तबसे विशेष विरोध भाव बढ़ गया, जब खरतर गच्छवाले भी उपरोक्त बातोंको बड़े जोर शोरसे शास्त्रप्रमाणानुसार सिद्ध करने लगे, तब तपगच्छवाले भी कितनेही कदाग्रहीजन तो चैत्यवासियोंकी तरह कुयुक्तियोंका और कदाग्रहका साहरासे अपना इष्ट स्थापन करने लगे, परन्तु नवाङ्ग वृत्ति वगैरह माने विना काम नहीं चल सकता था, इसलिये श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर विरुद निषेध करके-नवाङ्गवृत्तिकारक श्रीअभय देवसूरिजीको खरतर गच्छकी परम्परासे अलग करनेका परि-श्रम करने लगे, और कालान्तरमें चैत्यवासियोंकी और अपने गच्छके कदाग्रहियोंकी अन्धपरम्परामें पड़कर श्रीअनन्त तीर्थ-ङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उत्थापनसे संसार बढ़नेके भयको छोड़कर-अपने पूर्वाचार्यों के कथनको भी उन्मूलन करके-धर्मसागरजीने-षट्कल्याणक, अधिकमास, दूसरे श्रावणमें तथा प्रथमभाद्रवमें पर्युषणा, सामायिकमें प्रथम करेमिभन्ते, श्रीजिने-श्वर सूरिजीसे खरतर विरुद वगैरह शास्त्रानुसार आज्ञामुजब सत्य बातोंको निषेध करनेके लिये और उत्सूत्रोंसे तथा कुयुक्तियोंसे इन बातोंके विरुद्ध प्रत्यक्ष मिथ्या झूठी बातोंको

स्थापन करनेके लिये खरतर गच्छके प्रभावक युग प्रधान पुरुषों-की निन्दा पूर्वक खूब दृढ़तर कदाग्रह बढ़ानेका परिश्रम किया। और उत्सूत्रोंके भण्डार तथा कुयुक्तियोंकी अन्धखाडरूप कितनेही ग्रन्थोंकी भी रचना करके तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके कथनको छोड़कर अपनी अन्धपरम्परामें चलनेवाले पञ्चमकालके गुरुकर्मी कदाग्रहियोंके संसारको वढ़ानेके कारण रूप प्रगट किये सो यद्यपि उस समयके कितनेही आचार्यादि महाराजोंने इनके कदाग्रही वचनोंका अनादर करके उन ग्रन्थोंको जलशरण करा दिये, जिससे भविष्यतमें कदाग्रह बढ़ने नहीं पावे, तो भी कलयुगी महिमाके कारण कितनेही भारी कर्मी उन बातोंको पकड़ने लगें, और कालान्तरमें-जयविजयजी, विनयविजयजी, वगैरहोंने भी उसी मुजब-कल्पदीपिका, सुखबोधिका, वगैरहमें षट्कल्याणक, अधिक माससे दूसरे श्रावणमें पर्युषणा सम्बन्धी लिखा, उसकी समीक्षा इसी ग्रन्थमें हो चुकी हैं। और वर्त्तमान समयमें न्यायाम्भोनिधिजी नाम धारक श्रीआत्मारामजीने भी धर्मसागरजीको मानो अपने परम गुरुमान करके उनकी बातोंके फेरमें भद्रजीवोंको गेरनेका खूब विशेष रूपसे परिश्रम किया और भोले जीवोंको श्रीजिनाज्ञाके शत्रु बना दिये, उसी मुजब वर्त्तमानमें उन्होंके समुदायवाले-न्यायरत्नजी, वल्लभ विजयजी-वगैरह भी वर्तावकर रहे हैं, सो तो इस ग्रन्थको पूर्ण वांचनेवाले स्वयं समझ लेवेंगे

और खासकरके-वल्लभविजयजीके कर्त्तव्य परही मेरेको इस ग्रन्थकी रचना करनी पड़ी है।

और खास न्यायाम्भोनिधिजीके तथा धर्मसागरजीके परम पूज्य श्रीतपगच्छनायक श्रीसोमसुन्दरसूरिजीके सन्तानीय श्री-सोमधर्मगणीजीने संवत् १५१२ के वर्षमें "श्रीउपदेश सत्तरी" नामा

ग्रन्थ बनाया है। उसमें श्रीभीमराजासे श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर विरुद, श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी खरतर गच्छमें हुए, ऐसा खुलासा पूर्वक लिखा है, जिसका पाठ भी इसी ग्रन्थके ६८० में छप चुका है, उस पाठको मान्य करना छोड़ करके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके कदाग्रहसे अपने पूर्वजो की तथा अपने पूर्वजोंके कथनकी अवहिलना करते हुए, उनपर अनाभोगका दूषण लगाते हैं, अर्थात् तपगच्छाचार्य श्रीसोम-सुन्दरसूरिजीके सन्तानीय (प्रशिष्य) ने संवत् १४१२ में 'उपदेश सत्तरी' में श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे-खरतरगच्छ श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छमें हुए, ऐसा लिखा है उसको झूठा ठहरा करके किसीकी देखादेखी विना उपयोगसे लिखा होगा-ऐसा उपरोक्त धर्मसागरजी तथा न्यायाम्भोनिधिजी दोनों महाशयोंने लिखा है, अन्य भी कदाग्रहीजन ऐसा कहते हैं, सो बड़ी अज्ञानता है, क्योंकि श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर-गच्छकी उत्पत्ति सम्बन्धी अनेक शास्त्रोंके प्रमाण मौजूद हैं, तथा परम्परागतसे १३ भेद-वगैरह प्रत्यक्ष प्रमाण भी देखनेमें आते हैं, इसलिये अपने पूर्वजके सत्यकथनको विना उपयोग-अनाभोग-अनादरनीय कहके-पूर्वजकी: आशातना और झूठा कदाग्रह करना सर्वथा अनुचित है,। जिसपर भी अनाभोग कहनेका आग्रह करोंगे, तो, अनाभोगका कारण भी बतलाना होगा, यदि कहोंगे, कि-श्रीजिनेश्वरसूरिजीको भीमराजाने खरतर विरुद नहीं दिया, तो यह भी कहना सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि न देने सम्बन्धी आप कोई शास्त्रीय दृढ़ प्रमाण देखा सकते हो, सो तो नहीं। तो फिर आपके मति कल्पनाका आग्रहमात्रको कौन मान्य करेगा, अपितु कोई भी नहीं। और १०८०, या पाठान्तरे १०८४ में, श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीभीम

राजा दोनों विद्यमान थे, और श्रीजिनेश्वरसूरिजीकी परम्परामें अनुक्रमें-श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, तथा श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी, वगैरह महापुरुषोंकी परम्परा आजतक चल रही है तथा श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुद सम्बन्धी प्राचीन शास्त्रोंके प्रमाण भी मिलते हैं, उसीके अनुसार आपके पूर्वजने भी लिखा है इसलिये संवत् १०७७ में दुर्लभ राजाके परलोक जाने सम्बन्धी बातकी आड लेकरके श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुदका निषेध करना चाहो सो भी नहीं हो सकेगा, क्योंकि-कितनी जगह दुर्लभराजा लिखा है और कितनी जगह भीमराजा लिखा है यह दोनों नाम पाठान्तरसे माननेमें आते हैं और आपके पूर्वजने भीमराजा लिखा है इसलिये सं॰१०७७में मृत्युकी आड़से, १०८० या १०८४ की बातका निषेध नहीं हो सकता । उसी समय भीमराजा मौजूद था ।

तथा और भी यहां पर विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि—जब आपके पूर्वजने १४०० में श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर गच्छ लिखा सो इसके पहिले १२००।१३०० सौ में यह बात जैनमें प्रगटपने प्रसिद्ध होनी चाहिये, तथा उसी समयके शास्त्रोंमें भी लिखा हुआ होना चाहिये और तपगच्छके आचार्यादि भी इसी बातको मान्य करनेवाले होंगे, तभी तो सं॰ १४०० में आपके पूर्वजने यह बात लिखी होगी अन्यथा कैसे लिखते, और उस समयके किसी भी पूर्वजने इस बातका निषेध भी नहीं किया इसलिये अभी थोड़े कालके धर्मसागरजी जैसे कदाग्रहियोंकी कल्पनाको पकड़के प्राचीन सत्य बातको अस्वीकार करना और अपने पूर्वजको अनाभोगका दोष लगाना आत्मार्थियोंका काम नहीं है ।

और भी धर्मसागरजी तथा न्यायाम्भोनिधिजी इन दोनों

महाशयोंने, खरतरगच्छकी पांच पट्टावली लिखके उसमें पूर्वाचार्यों के नामोंका पाठान्तर सम्बन्धी आक्षेप करके अपनी विद्वत्ता दृष्टि रागियोंको दिखाई है, परन्तु विवेकी विद्वान् तो उनकी कुटिलताही समझते हैं, क्योंकि-श्रीमहावीर-स्वामीके शासनमें-अनेक गच्छ, कुल, शाखा, अलग अलग निकली, जिसमें किसीका समुदाय बहुत बढ़ गया, किसीका कम हो गया और किसीकी बहुत काल तक परम्परा चली, किसीकी थोड़े काल तक, और कालदोषादि कारणोंसे किसीकी तो पट्टावली मिलती भी नहीं, किसीकी त्रुटक मिलती है, किसीकी पाठान्तरसे मिलती है, और यद्यपि परम्परागतसे-आचार्य, साधु, होते चले आते हैं, परन्तु पूरी पट्टावलीके अभावसे उनको कोई दोष नहीं लग सकता, और अपने अपने हाथोंसे अपना अपना नाम पट्टावलीमें पूर्वाचार्यों के लिखनेकी रूढी भी नहीं है और पिछाड़ी पट्टावली लिखनेवाले सर्वज्ञ भी नहीं होते हैं, किन्तु जैसे जैसे परम्परासे वा, दूसरोंसे सुननेमें आवे वैसीही पट्टावली बनानेवाले लिख देतेहैं;इसलिये पट्टावलीके पाठान्तर सम्बन्धी दोनों महाशयोंका आक्षेप करना सो गच्छकदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका कारण ठहरता है, इसको विवेकीजन स्वयं विचार सकते हैं।

और खास दोनों महाशयोंने जो अपनी पट्टावली लिखी है, सो भी तो कोई सर्वज्ञके कथनसे नहीं लिखी, और श्रीहीर-विजयसूरिजीके पाठान्तर सम्बन्धी २।३ मतान्तर "सेन प्रश्न" नामा ग्रन्थमें लिखे हैं और जहां गच्छ भेद-आपसमें विरुद्धता हो जाती है, वहां अपनी मूल पट्टावली वगैरह पुस्तक एक दूसरेको नहीं देते हैं, और कुसंप-अभिमानादि कारणोंसे दूसरे के पास कोई मांगनेको भी नहीं जाता, और जैसा सुननेमें

आया-याद होवे वैसाही लिख रखते हैं, इत्यादि कारणोंसे वर्त्तमानिक तपगच्छ खरतरगच्छ वगैरहोंकी पट्टावलियोंमें पाठान्तर देखनेमें आता है। खास मैंने तपगच्छकी ३।४ पट्टावलियोंमें ३।४ मतान्तरसे पाट परम्पराके नामोंका भेद देखा है और पहिलेके समयमें, मुसलमानी राजाओंके भयसे जिसके पास जो पुस्तक पट्टावली-आदि होते वो भण्डारादिमें बन्ध करके रखते थे उससे किसी अन्यको देना भी मुश्किल था और प्राचीन पुस्तक पट्टावली वगैरह हजारों लाखों शास्त्रोंको धर्मद्वेषी मुसलमानादिकोंने नष्ट भी कर दिये थे, उस समयमें पट्टावली लिखनेमें प्राचीन शास्त्रोंके अन्तकी प्रशस्ति देखनेको नहीं मिल सकती थी, इत्यादि कारणोंसे जैसा याद आया वैसा लिखके पट्टावली बनाते थे इसलिये पाठान्तर होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है जिसपर कोई आक्षेप करे तो उनकी अज्ञानताके सिवाय और क्या कहा जावे सो विवेकीजन स्वयं विचार सकते हैं।

और वर्त्तमानिक तपवा खरतरकी पट्टावलीके मतभेदका तो कहनाही क्या परन्तु पहिले पूर्वधरादि प्राचीनाचार्योंकी तो पट्टावली बिलकुल नहीं मिलती तो क्या वे महाराज श्रीवीरप्रभु की परम्परावाले नहीं माने जावेंगे, या उन महाराजोंपर किसी तरहका आक्षेप कर सकते हैं, सो तो कदापि नहीं तो फिर वर्त्तमानिक मतभेदकी व्यर्थ झूठी आड़ लेकर श्रीजिनेश्वर-सूरिजीसे खरतर उत्पत्तिका निषेध करना यह क्या विवेकियों का काम है सो कदापि नहीं जिसपर भी दोनों महाशयोंने खरतरगच्छकी परम्परावालोंपर बड़ा भयङ्कर आक्षेप किया तो फिर इन्होंकी बुद्धि मुजब तो चरित्र प्रकरणादिकोंमें पाठांतर मतभेद है वे भी चरित्र प्रकरणादि सब दोषी ठहर जावेंगे,

धन्य है ऐसी कदाग्रहकी कुटिल बुद्धिको, अब विवेकी सत्य-ग्राही पाठकगणसे मेरा यही कहना है, कि वर्त्तमानकालमें सर्वज्ञके अभावसे पाठान्तरकी बातको झूठी कहना या एकको मान्य, दूसरीका खण्डन, वगैरह न करके मध्यस्थ विचारसे बर्ताव करनाही उचित है इसलिये चरित्र प्रकरण पट्टावली वगैरहोंके पाठान्तरोंको देखके वितर्क करना और कदाग्रह बढ़ाना सर्वथा अनुचित है। महान् कर्मबन्धका कारण है।

और इन दोनों महाशयोंने पट्टावलीके पाठान्तरपर आक्षेप किया तो श्रीकल्पसूत्रकी स्थविरावलीके व्याख्याकारोंके लेखक दोषादि भेदभावके अभिप्रायको तथा चरित्र प्रकरणादिकोंके पाठान्तरोंको देखके दोनों महाशयोंकी अन्धपरम्परामें चलने-वालोंको लज्जित होना चाहिये और कदाग्रहको छोड़कर सरलतासे न्यायपूर्वक सत्यको मान्य करना चाहिये,—

और पट्टावलियोंमें पूर्वाचार्योंके नामोंका मतभेद है, परन्तु सभी पट्टावलियोंमें श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुद तथा श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीको खरतरगच्छमें लिखे हैं, इसलिये पाठान्तरकी पट्टावलियोंसे खरतर विरुदका तथा श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतरगच्छमें होनेका निषेध कदापि नहीं हो सकता सो तो निष्पक्षपाती विवेकीजन स्वयं विचार सकते है,—

और कितनेही श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजसे खरतर गच्छकी उत्पत्ति होनेका कहते हैं सो भी मिथ्या है, क्योंकि इन महाराजसे खरतर गच्छकी नवीन उत्पत्ति होने सम्बन्धी कोई भी कारण नहीं बना, किन्तु इन महाराजसे खरतर गच्छकी विशेष प्रसिद्धि होनेके, और शिथिलाचारी द्रव्यलिङ्गी गच्छ कदा-

ग्रहियोंके साथ खरतर गच्छवालोंसे विशेष द्वेष बुद्धि होनेके कारण सो बन गये सोही दिखाता हूं।

देखो जब पहिलेसे श्रीजिनेश्वरसूरिजीने प्रगटपने राज्य सभामें चैत्यवासियोंका पराभव किया, और शुद्ध क्रिया पूर्वक अणहिलपुर पट्टणमें संयमियोंका विहार खुला कराया तबसेही वसतिवासी (खरतर) कहलाने लगे उससे चैत्यवासियोंका कपट क्रियाका भेद खुला होने लगा, जिससे वे लोग संयमियोंसे विरोध भाव रखने लगे, इसके बाद श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्री अभयदेवसूरिजीमहाराजने भी चैत्यवासी वगैरहोंकी शिथिलता और उत्सूत्रता श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध वर्त्तावको "आगमअठोत्तरी" नामा ग्रन्थमें, चैत्यवासियोंका प्रगट नाम न लेते हुए गुप्त नाम से (मोगम) खूब खण्डन किया, परन्तु प्रगट नाम न लेनेके कारण इन महाराजसे चैत्यवासियोंने इतना विशेष विरोध न किया, परन्तु इन्हीं महाराजके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीने तो चैत्यवासियोंका प्रगट नाम लेकर देश देशान्तरोंमें खूब जोर शोरसे खण्डन किया तथा उस विषय सम्बन्धी 'सङ्घपट्टक' वगैरह ग्रन्थ भी बनाये, और कठोर (कठिन) क्रिया तथा विद्वत्ता हिम्मत और चमत्कारोंसे बहुत भद्रजीवोंको चैत्यवासियोंकी अन्ध परम्परा और अविधिकी मायाजालसे छोड़ाके शुद्ध मार्गमें लाये, उसीसे इन महाराजसे खरतर वसतिवासी सुविहित नाम की बहुत प्रसिद्धि हुई है और चैत्यवासियोंसे बहुत विरोध भाव हो गया सो भी छपा हुआ 'सङ्घपट्टक'के देखनेसे मालूम हो जावेगा, परन्तु इन महाराजसे खरतरकी नवीन उत्पत्ति नहीं हुई थी क्योंकि खरतरकी उत्पत्ति तो इन महाराजसे पूर्व तीसरी पिढ़ीमें श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे हो गई थी उसका विशेष निर्णय पहिले छप चुका है।

और श्रीजिनवल्लभसूरिजीने पहिले वाचनाचार्यगणीपदमें, कूर्चपुरीय गच्छके चैत्यवासी अपने गुरु श्रीजिनेश्वरसूरिजीके पास एक समय कल्पसूत्रवांचते "तेणं कालेणं तेणं समयेणं समणे भगवं महावीरे पञ्चहत्थुत्तरेहोत्था" तथा "साइणापरिनिव्वुडेभयवं" इस पाठके अर्थमें श्रीवीरप्रभुके पांचकल्याणक हस्तोत्तरमें और छठा स्वाति नक्षत्रमें मोक्ष हुआ, इसतरह भगवान्‌के छ कल्याणक कहने लगे तब गुरुने मना किया सो न मानके क्रोधसे लड़ाई करके अपने चैत्यवासी गुरुको छोड़कर निकल गये और छ कल्याणकोकी प्ररूपणा करने लगे तबसे इसी कारणसे "कोहाओ खरहरो जाओ" अर्थात् क्रोधसे खरतर कहलाने लगे इस तरहसे धर्मसागरजी वगैरहोंने अपने कदाग्रही उत्सूत्र भाषणोंके संग्रहवाले ग्रन्थोंमें लिखा है और ऐसेही कितनेही अन्ध परम्परावाले मानते हैं सो अज्ञानतासे और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे प्रत्यक्षही महामिथ्या अन्ध परम्परा चल रही है क्योंकि चैत्यवासी श्रीजिनेश्वरसूरिजीने इनकों न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द शास्त्रादि और ज्योतिषादि पढ़ाये बाद अपनी राजी खुशीसे वाचनाचार्यगणीपदमें स्थापन करके श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके पास जैनशास्त्रोंका गुरुगम्यतासे अध्ययन करानेके वास्ते भेजा था सो इन महाशयने भी उनको पूरण विद्वान् और शासनप्रभावक विनयादिगुण युक्त जानके थोड़ेही समयमें शास्त्राध्ययन करा दिया, और संसारवृद्धिकारक तथा दुर्गति देनेवाला चैत्यवास छोड़कर क्रिया उद्धार (पुनर्दीक्षा)से शुद्ध संयममें वर्त्ताव करने सम्बन्धी उपदेश दिया, उसको अङ्गिकार करके अपने चैत्यवासी गुरुकी आज्ञा लेकर श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके पासही पुनर्दीक्षासे क्रिया उद्धार किया था, और गुरु गम्यताके शास्त्राध्ययनकी धारणा

मुजब श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्यों के कथन किये प्रमाण श्रीकल्पसूत्रके पाठार्थसे श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक भाष्यचूर्णिवृत्त्याद्यनुसार कथन किये थे, इसलिये गुरुसे लड़ाई करके क्रोधसे चैत्यवास त्यागनेसे खरतर कहलानेका और नवीन छ कल्याणकोंकी प्ररूपणा करनेका कहने तथा लिखने और माननेवाले प्रत्यक्ष मिथ्यावादी हैं, इसको विशेषतासे तो इस ग्रन्थको निष्पक्षपातसे सम्पूर्ण पढ़ करके सत्यग्रहण करनेवाले विवेकी आत्मार्थी जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और धर्मसागरजीने तथा न्यायाम्भोनिधिजीने श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजसे खरतर विरुद निषेध करनेके लिये, अनेक तरहकी कुयुक्तियों करके भद्रजीवोंको भरमसें गेरे हैं, उन सब कुयुक्तियोंकी समीक्षा यहांपर करके पाठकगणको दिखानेकी दिलमें बहुत है, परन्तु कितनेही कारण योगोंसे नहीं कर सकता हूं, तो भी कितनीही कुयुक्तियोंकी समीक्षा तो "आत्म-भ्रमोच्छेदनभानु" में छप चुकी है, और सब कुयुक्तियोंका विशेष निर्णय "प्रवचन परीक्षा निर्णय" नामाग्रन्थमें विस्तारसे करनेमें आवेगा ;—

और धर्मसागरजीने श्रीजिनदत्तसूरिजीसे खरतर उत्पत्ति ठहरानेके लिये, इन महाराजपर अनेक तरहके आक्षेप करके चामुण्डीक, औष्ट्रिक, खरतर लिखके कल्पित बातोंसे भद्रजीवों को भरमाये हैं, और मिथ्यात्वके साथ बाहीका काम किया है, वही अन्ध परम्परा विवेक शून्य कदाग्रही गुरुकमें लोग चला रहे हैं, जिसका निर्णय "आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः" की पीठिकामें छप चुका है, और यहां पर भी विस्तार पूर्वक लिखनेका दिल था, परन्तु मेरे शरीरकी व्याधियोंके, और शिरके दर्दके कारणसे नहीं लिख सकता हूं, सो जिसके देखनेकी

इच्छा होवे सो "आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः" को देख लेना, उससे सब निर्णय हो जावेगा ;—

और श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुदका निषेध करना, तथा श्रीजिनदत्तसूरिजीसे खरतर उत्पत्ति ठहराना सो प्रत्यक्ष मिथ्या है। क्योंकि श्रीजिनेश्वरसूरिजी सम्बन्धी अनेक प्रमाण मौजूद है। सो शास्त्र प्रमाण और युक्ति पूर्वक उपरमेंही सब खुलासा छप चुका है। और श्रीजिनदत्तसूरिजी सम्बन्धी तो द्वेषी निन्दक लोगोंके अन्ध परम्पराका गड्डरीह प्रवाही मिथ्या प्रलापरूप कथनके सिवाय अन्य कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है। इसलिये श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुद निषेध करनेका और श्रीजिनदत्तसूरिजीसे स्थापन करनेका प्रत्यक्ष मिथ्या कदाग्रहको छोड़ देनाही श्रेयकारी है। नहीं तो सत्य बातका निषेधसे और युगप्रधान शासन प्रभावकाचार्यको झूठे दूषण लगाके मिथ्या बातके स्थापनके लिये भद्रजीवोंको महापुरुषोंकी निन्दामें गेरनेसे संसार वृद्धि और दुर्लभ बोधिके कारणसे संसारका पार होना मुश्किल है। आगे इच्छा आपकी—

अब सत्य ग्रहण करनेवाले आत्मार्थी सज्जनोंसे मेरा इतनाही कहना है, कि अपने अपने गच्छकी अन्ध परम्पराके हठवादके दृष्टि रागको, और समुदायकी मान पूजा प्रतिष्ठाके लोभको, और लज्जाको, छोड़ करके श्रीजिनाज्ञानुसार सत्य बातोंको ग्रहण करो। इस अनादि अनन्त संसार भ्रमणमें वारम्वार मनुष्य जन्ममें जैनधर्मकी योगवाई प्राप्त होना अतीव मुश्किलीसे है। इसलिये गच्छ कदाग्रहकी तुच्छ बातोंके विचारमें चिन्तामणीरत्नसे भी अधिक श्रीजिनाज्ञाको ग्रहण करनेमें किञ्चित् भी कदापि विलम्ब नहीं करना चाहिये।

और उपरोक्त लेखोंसे सत्यके भेदोंको तो निष्पक्षपाती विवेकीजन स्वयं समझ सकेंगे। इसलिये श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याण-

कको। तथा-अधिक मासकी गिनतीसे दूसरे श्रावण या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणपर्वाराधनको। तथा सामायिकाधिकारे प्रथम करेमि-भन्ते पीछे इरियावहीको। और श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर विरुद मिला था, उससे श्रीनवाङ्गीवृत्ति कारक श्रीअभय-देवसूरिजी खरतरगच्छमें हुए उसको। और वड़गच्छके नहीं किन्तु चैत्रवालगच्छके श्रीजगचंद्रसूरिजीसे तपगच्छ हुआ। इत्यादि इन सत्य बातोंको निषेध करनेके लिये जो जो कुयुक्तिये कोई अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी गुरुकर्मे भद्रीकजीवोंको अपने कदाग्रहमें फँसानेके वास्ते उत्पन्न करें, तो वे सब जिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे, सर्वथा व्यर्थ समझकर उनको कदापि ग्रहण नहीं करना। और इस ग्रन्थमें उपरोक्त बाते शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक दिखानेमें आई है। उसको ग्रहण करके अपनी आतम कल्याणके कार्यमें उद्यम करना। तथा अन्य भव्य जीवोंको भी सत्य ग्रहण करवाके सत्यकाही उपदेश द्वारा विशेष प्रकाश करना। और अपने मनुष्य जन्ममें जैनधर्मकी प्राप्तिको सफल करना, परन्तु जमालि आदि निन्हवोंकी तरह संसार वृद्धि और दुर्लभ बोधिके निमित्त भूत उत्सूत्री होकर देशविरती और सर्वविरतीको हानी करके सम्यक्त्वको उन्मूलन करना उचित नहीं है।

इति—न्यायाम्भोनिधिपदधारकस्य षट्कल्याणकादि प्रतिषेध विषयी लेखस्य श्रीमत् परमपूज्य गुरुवर्य श्रीसुमतिसागर महाराजस्य लघुशिष्य मुनिमणीसागरनेयं समीक्षा सम्पूर्णा कृता।

अब न्यायाम्भोनिधिजीके लेखकी समीक्षाके अनन्तर प्रसङ्गसे धर्मसागरजीके लेखकी भी समीक्षा करना उचित समझ कर करता हूं। जिसमें अब यह ग्रन्थ बहुत बड़ा हो गया, तथा सुखबोधिकाके और जैन सिद्धान्त समाचारीके लेखकी समीक्षामें विशेष रूपसे वर्त्तमानिक सब सन्देहोंका निवारण हो गया है। इसलिये इनके लेखकी समीक्षामें तो श्रीतपगच्छकी उत्तमताको उठाकर उत्सूत्र प्ररूपणाका हर वर्ष प्रचार करनेके लिये जो पर्युषणाजीके व्याख्यानमें प्रथमही षट्कल्याणकोंका खंडन करके मिथ्यात्वकी वृद्धि करते हुए श्रीजिनाज्ञाका नाश करके भद्रजीवोंको कुयुक्तियोंके विकल्पोंमें फंसाकर उन्होंके सम्यक्त्वरूपी शुद्ध श्रद्धाके धनको उन्मार्गके उपदेशरूपी तस्कर वृत्तिसे हरण करनेवाले गाढ अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका अज्ञानतासे धर्मसागरजीने जो जो शास्त्रविरुद्ध बातें लिखी हैं। जिसका नमूना मात्र दिखाता हुआ संक्षिप्तसे थोड़ासी दिग्दर्शन मात्र समीक्षा करता हूं। उससे भी तत्वज्ञजन तो सब पाखण्डकी मायाजालके परदोंके भेदको अच्छी तरहसे समझ लेंगे, सो प्रथम तो श्रीकल्पसूत्रकी किरणावली नामा अपनी बनाई टीकामें श्रीवीरप्रभुका चरित्र कथन करने सम्बन्धी धर्मसागरजीने लिखा है कि—

[साम्प्रतन्तीर्थाधिपतित्वेन प्रत्यासन्नोपकारित्वादादावेव श्रीभद्रबाहुस्वामिपादास्तद्धव व्यतिकरावाप्त पंच कल्याणकनिबंध बंधुरं श्रीवीर चरित्रं सूत्रयन्त उद्देश निर्देश सूचक प्रायः जघन्य मध्यम वाचनात्मकं प्रथमं सूत्रमादिशन्ति "तेणं कालेणं तेणं समयेणं समणे भगवं महावीरे पञ्चहत्थुत्तरेहोत्था-तंजहा-हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गभ्भं वक्कंतो ॥ १ ॥ हत्थुत्तराहिं गभ्भाओ गभ्भं साहरिये ॥२॥ हत्थुत्तरा हिं जाए ॥ ३ ॥ हत्थुत्तरा हिं मुंडेभविता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ ४ ॥ हत्थुत्तरा हिं

मणन्ते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवल वर णाणदंसणेसमुपन्ने ॥५॥ साइणा परिनिव्वुडे भयवमिति ॥६॥" अत्र यत्तदोर्नित्योक्तसम्बन्धात् यत्राऽसौस्वामि दशम देवलोकात् पुष्पोत्तर प्रवर विमानाद्देवानन्दा कुक्षाववातरदिति । तेणन्ति, तस्मिन्, णमितिवाक्यालङ्कारे, कालेवर्त्तमाना वसर्पिणाश्चतुर्थार कलक्षणे, णङ्कारपूर्ववत् । अथवाऽर्षत्वात् सप्तम्यर्थे तृतीयामधिकृत्य, तेणं कालेणन्ति, तस्मिन् काले, तेणं समयेणन्ति, तस्मिन् समये । परं समयोजीर्णशाटकस्फालन दृष्टान्तेन प्रागुक्त कालान्तर्गत एव परमनिकृष्टं कालविशेषः यद्वा हेतौ तृतीया ततश्च पूर्वन्यायादेव-यौकालसमयौ श्रीऋषभादिजिनैः ॥ श्रीवीरस्यषण्णां च्यवनादीनां वस्तूनां हेतु तया प्रतिपादितौ न च च्यवनादीनां कल्याणकत्वेन व्याख्यात मनागमिकं चूर्ण्यादिषु तथैव व्याख्या नात् ॥ यतः ॥ जो भगवता उसभ सामिणा सेसतित्थगरेहिय भगवतो वद्धमाण सामिणो चवणादीणं छण्हंवत्थुणं कालोणातो दिठोवागरइओअ, तेणं कालेणं तेणं समयेणन्ति, इति पर्युषणा कल्पचूर्णौ]

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकगणको दिखाता हूं, हे सज्जन पुरुषों प्रथम तो धर्मसागरजीने साम्प्रत वर्त्तमानकालमें तीर्थके नायक श्रीवर्द्धमान प्रभुको नजीक उपकारी जान कर श्रीभद्रबाहु स्वामीजीने जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक श्रीवीर भगवान्‌का चरित्र कथन करनेका लिखा सो मूल सूत्रमें तो सूत्रकार महाराजने 'पञ्च हत्थुत्तरे' 'साइणापरिनिव्वुडे, ऐसा करके च्यवनगर्भापहार जन्मादि छहों कल्याणकोंका कथन किया हुआ है तिसपर भी इसीही मूल पाठकी व्याख्या करते हुए धर्मसागरजीने "पंचकल्याणक निबन्ध बन्धुरं श्रीवीरचरित्र" ऐसा लिखकर च्यवन जन्मादि पांच कल्याणकोवाला श्रीवीर

प्रभुका चरित्र ठहराके छठे गर्भापहारके मूलपाठको उड़ा दिया सो गर्भापहारके मूल पाठके उत्थापन रूप उत्सूत्रताकी तस्कर वृत्ति करके संसार वृद्धिका कारणभूत भद्रजीवोंको अपनी माया जालमें फंसाना उचित नहीं था।

और "पञ्चकल्याणक निबन्ध बन्धुरं श्रीवीर चरित्रं" इस वाक्यसे धर्मसागरजीने श्रीकल्पसूत्रमें कहे हुए श्रीवीरप्रभुके च्यवनादिकोंको कल्याणकत्वपना ठहरा करके फिरभी अभिनिवेशिककी अज्ञानतासे भगवान्के गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याण कत्वपनेका निषेध करने के लिये "यौकाल समयौ श्रीऋषभादि जिनैः। श्रीवीरस्य च्यवनादीनां वस्तूनां हेतुतया प्रतिपादितौ न च च्यवनादीनां कल्याणकत्वेन व्याख्यातं" ऐसा लिखकर उसी समय कालको श्रीऋषभदेवजी आदि २३ तीर्थङ्कर महाराजोंने श्रीवीर भगवान्के च्यवनादि छ वस्तुओंके हेतु रूप कथन करनेका ठहराते हुए च्यवनादिकोंको वस्तु कहके फिर उसी च्यवनादि सबको सर्वथा कल्याणकत्वपने रहित ठहरा दिये। और श्रीदशाश्रुत स्कन्धकी पर्युषणा कल्पचूर्णि कारके पाठका वस्तु कल्याणक एकार्थसम्बन्धी अभिप्रायको समझे बिनाही उसी चूर्णिका थोड़ासा पाठ लिखकर च्यवनादि छहोंको वस्तु सिद्ध करके कल्याणकत्वपनेका अभावही दिखा दिया सो भी विवेक शून्यतासे गच्छकदाग्रहकी ममत्वरूप अज्ञानताके अन्धकारमें पड़कर शास्त्रकारके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र प्ररूपणाके विपाकोंका बोझा सिरपर धारण करते हुए भद्रजीवोंको शुद्ध श्रद्धासे भ्रष्ट करके उन्मार्गके मिथ्यात्वमें गेरनेका और अपनी विद्वत्ताकी हंसी करनेवाला वृथाही प्रयास किया है क्योंकि वस्तु शब्दका अर्थ प्रसङ्गानुसार कल्याणकपनेका होनेसे श्रीवीरप्रभुके च्यव-

नादि छ वस्तु कहो अथवा छ कल्याणक कहो दोनों शब्दों का तात्पर्य एकही है उसका विशेष खुलासा श्रीविनय विजय जीके और न्यायाम्भोनिधिजीके लेखकी समीक्षामें विस्तारसे ऊपरमेंही छप चुका है इसलिये धर्मसागरजीने वस्तु शब्दके अर्थ में कल्याणकपनेका निषेध करनेके लिये अज्ञानताके अन्धकार का साहससे श्रीवीरप्रभुके च्यवनादि छहोंको वस्तु ठहरा कर छहोंमें कल्याणकपनेका अभाव दिखाया सो कदापि नहीं हो सकता है ।

तथा और भी देखो खास धर्मसागरजीनेही अपनी बनाई श्रीकल्पसूत्रकी इसी कल्पकिरणावलीनामा टीकामें जहां स्थिविरावलीकी व्याख्या करी है वहां खास आपनेही श्रीजम्बू स्वामीका मोक्षगमन हुए बाद—"मनः पर्यव ज्ञान १, परमावधि २, पुलाकलब्धी ३, आहारक शरीर लब्धी ४, क्षपक श्रेणी ५, उपशम श्रेणी ६, जिनकल्प ७, परिहार विशुद्धि वगैरह तीन संयम ८, केवल ज्ञानकी उत्पत्ति ९, और मोक्ष गमन १०"—यह दश वस्तुओंके विच्छेद होनेका लिखा है सो इसमें—परमावधिको मनः पर्यवको केवल ज्ञानोत्पत्तिको और मोक्षगमनको वस्तु कहा और—"कारणगुणाकार्य गुणा भवन्ति"—इस व्यवहारिक न्यायके अनुसार कारणके अनुसार कार्यकी उत्पत्ति मानना सो प्रसिद्ध बात है इसलिये भगवान्के केवल ज्ञानकी उत्पत्ति तथा मोक्षगमनको वस्तु कहनेमें क्या हरजा है अपितु कुछ भी नहीं और जब धर्मसागरजीके कथन करने लिखने मुजब भगवान्के केवल ज्ञान की प्राप्तिको तथा मोक्षगमनको वस्तु कहना सिद्ध हुआ तथा इसी केवल ज्ञानकी प्राप्तिको और मोक्षगमनको सब कोई कल्याणक भी कहते हैं वैसेही धर्मसागरजी भी केवल ज्ञान

की प्राप्तिको और मोक्षगमनको कल्याणक भी मानते हैं लिखते हैं कथन भी करते हैं इससे तो धर्मसागरजीके कथन करने लिखने माननेके अनुसारही केवल ज्ञानकी प्राप्ति और मोक्षगमन रूप वस्तु सोही कल्याणक अर्थात् वस्तु कल्याणक दोनोंका भावार्थ एकही धर्मसागरजीके कथनसे सिद्ध हो गया तो फिर वस्तु करके कल्याणकपनेका निषेध करना सो अभि-निवेशिक मिथ्यात्वके वा "ममवदनेजिह्वानास्ति" की तरह बाल लीलाके सिवाय और क्या कहा जावे। और अब इस प्रकार धर्मसागरजीके अन्धपरम्परामें चलकर वस्तु करके कल्याणकपनेका निषेध करनेवाले गच्छकदाग्रहियोंको भी लज्जित होना चाहिये और अबी भी गच्छाग्रहका मिथ्या पक्षपात छोड़कर श्रीजिनाज्ञानुसार इस ग्रन्थको बांचकर सत्यको अङ्गिकार करना चाहिये ;—

तथा फिर यहांपर यह भी विचार करने योग्य बात है कि—अनादि कालसे सभी तीर्थङ्कर महाराजोंके च्यवनादिकोंको कल्याणकपना अनन्त तीर्थङ्कर महाराज कहते आये हैं और अविसंवादी केवली भाषित जैन प्रवचनमें श्रीऋषभदेवजी आदि २३ तीर्थङ्कर महाराज श्रीवीरभगवान्के च्यवनादिकोंको वस्तु कहके कल्याणकपने रहित कथन कर देवें ऐसा तो कदापि न हुआ, और न हो सकेगा, इसलिये इससे भी वस्तु कहनेसे कल्याणकपनेका परमार्थ सिद्ध होता है तिसपर भी धर्मसागरजीने सभी अनन्त तीर्थङ्कर महाराजोंके विरुद्ध होकर च्यवनादिकोंको वस्तु ठहरा कर कल्याणकपने रहित जनाये सो विवेक शून्यतासे अन्धपरम्परा रूप कदाग्रहकी भ्रमजालमें गिरने वालोंके सिवाय आत्मार्थी तो कदापिकाल मान्य नहीं करेंगे।

बस ! इसी तरहसे प्रथम च्यवनवत् गर्भहरण रूप दूसरे च्यव-

नमें भी त्रिशलामाताके १४ स्वप्न देखने वगैरह सब गुण लक्षणोंका विस्तारसे खुलासा पूर्वक शास्त्रकारोंने कथन किया हुआ होनेपर भी गच्छकदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके जोरसे धर्मसागरजीने प्रथम च्यवनको कल्याणकपना और दूसरे च्यवनको कल्याण कपणा नहीं ठहरानेके लिये शास्त्रकारोंके कथनका रहस्यको समझे बिना उत्सूत्रों की कुयुक्तियों से अपना संसार बढ़नेका भय न रखके भोले जीवों की शुद्धश्रद्धा भ्रष्ट करनेके लिये अनेक तरहके उत्सूत्रोंकी कुयुक्तियोंसे कितनेही कुविकल्प उठाकर लिखे हैं उन सबोंको तत्वज्ञजन तो स्वयंहि व्यर्थ समझ लेवेंगे। तो भी अल्प बुद्धिवाले पाठकगणको फिर भी विशेष निस्सन्देह होनेके लिये थोड़ासा नमूना दिखाता हूं सो देखो।

"उसभेणं अरहा कोसलिए पंचउत्तरासाढ़े अभिइ छट्ठे होत्थत्ति सूत्रवत् समणे भगवं महावीरे पञ्चहत्थुत्तरे साइणा छट्ठे होत्थत्ति सूत्रं वक्तुं युक्तं तथापि सूत्रकाराणां विचित्रगतिरिति नाधृतिर्विधेया" इस लेखमें धर्मसागरजीने गर्भापहारके पाठको राज्याभिषेकके पाठके समान ठहरा करके अपनी अज्ञानतासे सूत्रकार महाराज पर भी आक्षेप किया और संसार बढ़नेके भयको न करते हुए गर्भापहारके दूसरे च्यवन कल्याणकको निषेध करनेके लिये लिखा सो सबही भद्रजीवोंको उन्मार्गमें गेरने रूप मिथ्यात्वका कारण है क्योंकि ऊपरके लेखमें श्रीकल्पसूत्रके श्रीमहावीर स्वामी सम्बन्धी "समणे भगवंमहावीरे पञ्चहत्थुत्तरे" के पाठके समान श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिके श्रीऋषभदेवजी सम्बन्धी "उसभेणं अरहा कोसलीए पञ्च उत्तरा साढ़े" के पाठको भी कथन करना युक्त ठहराया सो नहीं बन सकता क्योंकि कल्पसूत्रके पाठकी तरह जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक उन्होंके मास पक्ष दिवसका

खुलासा सहित कथन श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिके पाठका किसी भी शास्त्रमें खुलासा न होनेसे तथा गर्भापहारकी तरह राज्याभिषेकको कल्याणकत्वपना प्राप्त न होनेसे दोनों पाठोंको समान बनाना अज्ञानताका कारण है और पहिले इसका विशेष निर्णय श्रीविनयविजयजी तथा श्रीन्यायाम्भोनिधिजी इन दोनों महाशयोंके लेखकी समीक्षामें इसीही ग्रन्थमें छप चुका है

और ऊपरके दोनों पाठोंके कथन करनेमें "सूत्रकाराणां विचित्र गतिरिति नाधृति विधेया" इस तरहका लिखके दोनों सूत्रकार महाराजों पर आक्षेप रूप लिखा सो भी इनके दीर्घ संसारीपनेका लक्षण मालूम होता है अन्यथा दोनों सूत्रकारों के भिन्न भिन्न विषय सम्बन्धके अभिप्रायको समझे विना अपनी कुबुद्धिकी विकलपनासे सूत्रकारोंपर ऐसा आक्षेप कदापि न करता खैर—

और अनादि अनन्तकालसे सर्वदा हमेशा सभी श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांच कल्याणकही होते हैं परन्तु इन पांचोंके सिवाय अन्य कोई भी छठा कल्याणक नहीं हो सकता और श्रीवीरप्रभुके तो कर्मानुसार कालानुभावसे आश्चर्यजनक दो वार च्यवन होनेसे दो अलग अलग भव गिने गये और दो माता तथा दो पीता भी अलग अलग गिने गये और प्रथम च्यवनकी तरह दूसरे च्यवन रूप गर्भापहारमें भी च्यवन कल्याणकके सभी कर्त्तव्य हुए सो तो प्रसिद्ध है इसीलिये श्रीवीर प्रभुके दो च्यवन मान करकेही दो च्यवन रूप दो कल्याणकोंकी गिनतीसे छ कल्याणक ठहरते हैं परन्तु श्रीऋषभदेव स्वामीके राज्याभिषेकके कर्त्तव्यमें तो पांचो कल्याणकोंमेंसे किसी भी कल्याणकके कर्त्तव्य नहीं बने और पांचो कल्याणकोंमेंसे किसी भी कल्याणके लक्षण राज्याभिषेकमें न

होनेसे श्रीकल्पसूत्रादिमें प्रगटपने राज्याभिषेकको अलग करके "चउ उत्तरा साढ़ अभिइपञ्चमें" ऐसा खुलासा पाठकहके राज्याभिषेकके बिना शेष च्यवनादि पांच कल्याणक कथन किये हैं इसलिये राज्याभिषेककी आड़ लेकर गर्भापहारके कल्याणकत्वपनेको निषेध करना पूरी अज्ञानता है इसको विशेष तत्वज्ञजन स्वयं समझ सकते हैं।

और गर्भापहारको इन्द्र महाराजका कार्य समझके कल्याणकपना नहीं मानते क्योंकि इन्द्र तो अन्य भी अनेक कार्य करता है परन्तु सब कार्योंमें कल्याणकपना नहीं माना जाता (जैसे श्रीआदि नाथजीकी वंशस्थापना, पाणी ग्रहण, राज्याभिषेक इत्यादि) किन्तु गर्भापहारमें तो च्यवन कल्याणकके गुण लक्षण स्वभाव होनेसे कल्याणकपना माननेमें आता है इसका विशेष खुलासा इस ग्रन्थको पढ़नेवाले विवेकी स्वयं समझ लेवेंगे।

और फिर भी धर्मसागरजीने गर्भापहारका कल्याणकपना निषेध करनेके लिये नक्षत्र सामान्यताका तथा असङ्गतिका बहाना लिया सो भी अज्ञानता है क्योंकि श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रमें तो नक्षत्र सामान्यता तथा असङ्गतिका कुछ भी प्रसङ्ग (कारण) नहीं है क्योंकि वहां तो सामान्य व्याख्यासे श्रीपद्मप्रभुजी आदि १३ तीर्थङ्कर महाराजोंके च्यवनसे यावत् मोक्ष गमन पर्यन्त पांच पांच कल्याणक बताये हैं उसी मुजब विशेष रूपसे श्रीवीरप्रभुके भी च्यवनसे यावत् गर्भापहारको कल्याणकपनेमें सामिल ले करके केवल ज्ञान पर्यन्त पांच कल्याणक दिखाये हैं और वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजीने छठा कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें मोक्ष गमन खुलासा अलग बतलाया है तथा श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रवृत्तिमें गर्भापहारको अलग भवमें

गिना है उसी मुजब "लोक प्रकाश" में भी देवलोकके च्यवनको और देवानन्दामाताकी कूक्षिसे त्रिशलामाताकी कूक्षिमें जाने रूप गर्भापहारको इन दोनोंको अलग अलग भव गिने हैं, और प्रथम च्यवनके तथा गर्भापहार रूप दूसरे च्यवनके दोनों जगहों पर खास श्रीकल्पसूत्रकार श्रीभद्रबाहु स्वामीजीने जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचनापूर्वक अलग अलग व्याख्या विस्तारसे करी है इसलिये नक्षत्र सामान्यता तथा असङ्गतिका बहाना लेना सो अज्ञानतासे भद्र जीवोंको व्यर्थही भ्रमानेसे संसारका कारण है इसको विशेष विवेकी तत्वज्ञजन स्वयं विचार सकते हैं।

और यदि नक्षत्र सामान्यताका हठ किया जावे तो तुमारी कल्पना मुजब तो श्रीआदिनाथजीके राज्याभिषेकको भी तुम लोग नक्षत्र सामान्यता करते हो तो फिर श्रीपद्मप्रभुजी आदि तीर्थङ्कर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंके साथ श्रीवीर प्रभुके भी पांच कल्याणक दिखाये उसी तरहसे श्रीआदिनाथ-जीके भी पांच श्रीस्थानांगजी सूत्रमें क्यों नहीं दिखाये तथा जैसे श्रीवीरप्रभुके चरित्रोंमें सभी जगहों पर पांच पांचका व्याख्यान है वैसे श्रीआदिनाथजीके भी कल्पसूत्रादिमें एक नक्षत्रमें पांचका व्याख्यान सूत्रकारने क्यों नहीं किया और "चउ उत्तरासाढे" ऐसा क्यों कहा और वीर चरित्रमें तो ४ हस्तोत्तरामें किसी जगह नहीं कहे और विशेषतासे श्रीसमवायांगजी तथा लोकप्रकाश वगैरहमें अलग अलग भव गिनेहैं और स्थानांग आचारांग कल्पसूत्रादिमें पांच हस्तोत्तरमें छठा स्वातिमें खुलासा कह दिया है इसलिये नक्षत्र सामान्यता करना व्यर्थ है इसका विशेष खुलासा विनय विजयजीके लेखकी समीक्षामें पहिले छप चुका है।

तथा और भी सुनो जब खास सूत्रकारनेही च्यवन गर्भहरण जन्मादिका भिन्न भिन्न व्याख्यान विस्तारसे कथन कर दिया तथा इस विषयमें पूर्वाचार्योंने वीर चरित्रादिमें तथा कल्पसूत्र की टीकाओंमें हजारों श्लोकोंकी विस्तार पूर्वक व्याख्या करी है और राज्याभिषेक सम्बन्धी विशेष खुलासा किसी जगह पर किसी भी पूर्वाचार्यने नहीं किया इसलिये गर्भहरणके समान राज्याभिषेकको ठहराना कदाग्रहके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है और गर्भहरण सम्बन्धी हजारों श्लोकोंकी व्याख्या प्रसिद्ध होनेसे असङ्गति रूपी शङ्काके गन्धकी भी सम्भावना नहीं हो सकती इसलिये असङ्गतिका कहना भी व्यर्थ है क्योंकि असङ्गति तो जब कह सकते थे कि—१४ स्वप्न त्रिशलामाताने आकाशसे उतरते और अपने मुखमे प्रवेश करते वगैरह च्यवन कल्याणकके लक्षण गर्भापहारमें न होते तथा सूत्रकारने "चउ हत्थुत्तरे" कहके च्यवन देवानन्दा जन्म त्रिशला कह देते और इस विषयमें किसी तरहका खुलासा न करते तब तो असङ्गति रूपी शङ्काका कहना बन सकता और इस विषयमें टीकाकारों को समाधान करनेकी जरूरत पड़ती सो तो नहीं किन्तु खास सूत्रकारादिकोंनेही "पञ्चहत्थुत्तरे" कहके विस्तारसे कथन किया है तथा उसमें कल्याणकत्वपनेके लक्षण प्रत्यक्षही देखनेमें आते हैं इसलिये असङ्गति वगैरह कुविकल्पों की कुयुक्तियों को छोड़कर सत्यग्रहण करनाही श्रेयकारी है इसका भी विशेष निर्णय विनयविजयजीके लेख की समीक्षामें पहिले छप चुका है।

और "सन्देहविषौषधी" में गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेमें गिनकर छ कल्याणक प्रतिपादन किये जिसका निषेध करनेके लिये धर्मसागरजीने गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेमें किसी

आगममें कथन नहीं करनेका कहके आगम में बाधा ठहराया और आचाराङ्गजीमें 'पञ्चहत्थुत्तरे'की व्याख्यामें (पञ्चसुस्थानेषु- गर्भाधान, संहरण, जन्म, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति लक्षणेषु) इत्यादि यहांपर पांच स्थान कहे परन्तु पांच कल्याणक नहीं कहे ऐसा लिखके 'सन्देहविषौषधी' से विसंवाद दिखाया सो भी पूरण अज्ञानता प्रगट करी है, क्योंकि स्थानाङ्गादि अनेक आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, वृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें छ कल्याणक प्रगटपने कथन किये हैं, इसलिये 'सन्देहविषौषधी'कारका छ क- ल्याणकों सम्बन्धी कथन आगमानुसार होनेसे आगम बाधा कहना प्रत्यक्ष मिथ्या है। और श्रीआचाराङ्गजी सूत्रकी दूसरी चूलिकाकी आदिमें वीरचरित्राधिकारे कल्पसूत्रकी तरहही "पञ्चहत्थुत्तरे" तथा "साइणा परिनिव्वुडे" कहके च्यवन, गर्भ- हरण, जन्मादि प्रगटपने छही कल्याणक दिखाये हैं और टीका कारने च्यवन गर्भहरण जन्मादिकोंको स्थान कहे सो स्थान कहो अथवा कल्याणक कहो दोनों एकार्थवाची हैं इसलिये स्थान शब्द देखके टीकाकार महाराजके अभिप्रायको समझे बिना तीर्थङ्कर महाराजके चरित्रको कल्याणकपने रहित ठह- रानेका परिश्रम किया सो उत्सूत्र भाषणरूप होनेसे आत्मार्थी कोई भी मान्य नहीं कर सकते। और स्थान शब्दका कल्याण- कार्थ प्रसङ्गानुसार अरिहन्त सिद्धादि वीश (२०) स्थानक, तथा १४ गुणस्थानकोंकी तरह एकही है इस बातका विशेष निर्णय न्यायांभोनिधिजीके लेखकी समीक्षामें पहिले छप चुका है इसलिये आचाराङ्गजीके और सन्देहविषौषधिके विसवाद नहीं हो सकता, इस बातको विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं।

और आगे फिर भी धर्मसागरजीने पञ्चाशकजीके पाठसे पांच कल्याणक दिखाके छ का निषेध किया सो भी विवेक शून्यताकी

अज्ञानतासे मायाचारीकी ठगाई है क्योंकि वहां तो "पञ्चमहा-कल्लाणा सव्वेसिं जिणाणं होंति णियमेण" इत्यादि पूर्व भागके सम्बन्धकी ३ गाथा छोड़ दी है तथा "अहिगय तित्थ विहाया भगवन्ति णिदंसिया इमेतस्स। सेसाणवि एवंचियणियणिय तित्थेसु विण्णेया इत्यादि पिछाड़ीके सम्बन्धकी भी गाथा छोड़ दी है और पूर्वापर सम्बन्ध सहित उन गाथाओंकी टीकाका पाठ भी छोड़ दिया है और पूर्वापर सम्बन्ध रहित बीचमेंसे थोड़ासा अधूरा पाठ दिखाया और मूलग्रन्थकर्त्ता श्री-हरि भद्रसूरिजीके तथा वृत्ति (टीका) कारक श्रीअभयदेवसूरिजी के अभिप्रायको छुपा करके इन महाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध हो करके अधूरे पाठसे मायाचारी करके भद्रजीवोंको भर-मानेका काम किया है क्योंकि यदि पूर्वापर सम्बन्ध सहित सम्पूर्ण पाठ लिख दिखाते तब तो सामान्य विशेषके भेदको और शास्त्रकारोंके अभिप्रायको विवेकी जन स्वयं समझ लेते, और मायाचारीकी तस्कर वृत्तिके सब भेद खुल जाते खैर इस विषय सम्बन्धी शास्त्रकारोंके अभिप्राय सहित सम्पूर्ण पाठ पूर्वक हमने विस्तारसे समाधान न्यायरत्नजी तथा विनय विज-यजी और न्यायाम्भोनिधिजीके लेखकी समीक्षामें लिख दिखाया है इसलिये पञ्चाशकजीके सामान्य पाठको बाल-जीवोंके आगे करके कल्पसूत्रादिके विशेष पाठोंमें छ कल्याणक कथन किये है उसका निषेध करना सो अज्ञानता और गच्छक-दाग्रहके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है इसका विशेष निर्णय हमारे पूर्वोक्त लेखोंसे विवेकी जन स्वयं समझ लेवेंगे ;—

देखिये कितने बड़े आश्चर्यकी बात है कि—श्रीतपगच्छमें वर्त्तमानिक समयमें अनेक विद्वान् नाम धराते हैं तिसपर भी शास्त्रकारोंके अभिप्रायको समझे बिना अनन्त तीर्थङ्कर महा-

राजों सम्बन्धी पञ्चाशकजीके सामान्य पाठको आगे करके श्रीकल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें विशेष रूपसे प्रगटपने वीर प्रभुके छ कल्याणक लिखे हैं उसको निषेध करनेके लिये "यदि वीर प्रभुके छ कल्याणक होते तो पञ्चाशकमें उसके मास पक्ष दिन दिखलाते" ऐसी कुयुक्ति मायाचारी करने वालोंको लज्जित होना चाहिये। क्योंकि विशेष रूपसे श्रीकल्पसूत्रमें तथा उसकी ११ व्याख्याओंमें और आवश्यक निर्युक्ति चूर्णि वगैरह अनेक शास्त्रोंमें छहों कल्याणकोंके भिन्न भिन्न मास पक्ष तिथि नक्षत्रका व्याख्यान शास्त्रकारोंने खुलासे कर दिया है उसको छोड़ देना और पञ्चाशकमें छ लिखनेका प्रसङ्ग न होनेसे वहां छ न लिखे जिसपर तर्क करना क्या ऐसी माया-चारीमें विद्वत्ता है बड़ी शर्मकी बात है, खैर।

और भी देखो विशेष व्याख्यामें सामान्य पाठ आवे उसका खुलासा टीकाकार करते हैं जैसे वीर प्रभुकी माताके १४ स्वप्ना-धिकारे प्रथम हस्तीका वर्णन किया परन्तु वीर प्रभुकी माताने प्रथम सिंह देखा था उसका खुलासा टीकाकारोंने किया परन्तु सामान्य पाठमें विशेष पाठ आवे उसका खुलासा करनेकी विशेष आवश्यक नहीं रहती क्योंकि देखो जैसे २४ तीर्थङ्कर महाराजोंके नाम, गौत्र, माता, पिता, दीक्षादि कल्याणक तिथि और साधु साध्वीयोंके प्रमाण वगैरहके यन्त्रों (कोष्टकों) में तथा २४ वीशीके स्तवन वगैरहोंमें १९वें भगवान्‌को स्त्रीत्वपनेसें न लिखके सामान्यपनेसे पुरुषत्वपनेमें लिखते हैं। तैसेही यद्यपि वीरप्रभुके छ कल्याणक होनेपर भी पञ्चाशकमें छ न लिखके सामान्यतासे पांच लिखे तो उसमें कोई हरजा नहीं, तथा उससे छ निषेध भी नहीं हो सकते इस बातको भी विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं।

तथा और भी देखो श्रीआदिनाथजीको दीक्षा लिये बाद १ वर्ष पर्यन्त आहार न मिला यह बात सामान्यतासे कहनेमें आती है परन्तु विशेषतासे तो चैत्र कृष्ण अष्टमी (गुजराती फ़ागण बदी ८) को दीक्षाके दिनके हिसाबसे वैशाख सुदी ३ के दिने पारणेको १३ मास और ऊपर ११ दिन होते हैं तो भी सामान्यतासे वर्ष कहनेमें आता है इसी तरहसे तीर्थङ्कर महाराजोंके गर्भ स्थिती वगैरह सामान्यता विशेषताके हजारों दृष्टान्त शास्त्रोंमें देखनेमें आते हैं इसलिये अक्षरार्थको न पकड़के भावार्थको देखना चाहिये उसके बिना समझे व्यर्थ झगड़ा करके कर्मबन्धक और उत्सूत्री न होना चाहिये।

और फिर कुलमण्डनसूरिजीने कल्पावचूरिमें छः कल्याणक लिखे हैं उसको धर्मसागरजीने बिना उपयोगसे और सन्देह-विषौषधिके अनुसार लिखनेका ठहराया सो भी गच्छकदाग्रहकी अभिनिवेशिकतासे व्यर्थही मिथ्या प्रलाप किया है क्योंकि सर्वशास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक छ कल्याणक लिखे हैं इसलिये बिना उपयोगसे नहीं किन्तु जान बूझकर शास्त्रानुसार लिखे हैं और सन्देहविषौषधि के अनुसार लिखे हैं वैसा धर्मसागरजीको कोई ज्ञान नहीं था इसलिये सन्देहविषौषधिका अनुसरणका कहना व्यर्थ है और सत्य बातमें एक एकके कथनका पूर्वाचार्य अनु-सरण करतेही हैं इसमें कोई हरजकी बात नहीं है इसलिये उपरोक्त सत्य बातमें यदि अनुसरण किया माना भी जावे तो उससे छकल्याणकका निषेध नहीं हो सकता इसका विशेष निर्णय न्यायाम्भोनिधीजीके लेखकी समीक्षामें पहिले छप चुका है।

और जिस विषयका वादविवाद चलता हो उस विषयमें जो लिखेगा सो विचारकेही लिखेगा इसके न्यायानुसार छ कल्या-णक सम्बन्धी विवाद तो श्रीकुलमण्डनसूरिजीके पहिलेसेही चला

आता था उनके समयमें भी चलता था जिसपर भी उनोंने छ क० लिखे उससे सिद्ध होता है कि—उन्होंने जानबूझ करके ही छ कल्याणक लिखे हैं नतु बिना उपयोग। और उस समय इनके कथनका किसीने निषेध भी नहीं किया इससे उस समयकी तपगच्छ समुदाय व उनके पूर्वज सब छ माननेवाले सिद्ध होते हैं।

और आगे फिर भी धर्मसागरजीने अपने मिथ्यात्वके उदयसे श्रीगणधरसार्द्धशतकके पाठका तथा उसकी बृहद्वृत्तिके पाठका और श्रीजिनवल्लभसूरिजीके कथनके भावार्थको समझे बिना इन महाराज पर छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेका मिथ्या दूषण लगानेके वास्ते पूर्वापरका सम्बन्धको छोड़कर बीचमेंसे थोड़ासा अधूरा पाठ लिखके फिर उसका विपरीत उलटा अर्थ करके अन्धपरम्परामें चलनेवाले विवेक शून्योंको तथा भद्रजीवोंको अपने भ्रममें गेरनेका काम करके मिथ्यात्वके सार्थवाहीका काम किया है उसकी भी समीक्षा करके पाठकगणको दिखाता हूं सो धर्मसागरजीका लेख नीचे मुजब हैं।

"षष्ठ कल्याणक प्ररूपणा मूलं तावत् चित्रकूटे चरिहका गृहस्थितौ नवीनमतव्यवस्थापनहेतवे जिनवल्लभवाचनाचार्य एव यत आह। तत्र कृतचातुर्मासिकानां श्रीजिनवल्लभवाचनाचार्याणामाश्विनमासस्य कृष्णपक्षस्य त्रयोदश्यां श्रीमहावीरगर्भापहार कल्याणकंसमागतं, ततः श्राद्धानां पुरो भणितं जिनवल्लभगणिना भो श्रावका अद्य श्रीमहावीरस्य षष्टंगर्भापहार कल्याणकं समागतं। ततः श्राद्धानां पुरोभणितं षष्टंगर्भापहार कल्याणकं 'पञ्चहत्थुत्तरेहोत्था—साइणापरिनिव्वुडेभयवमिति' प्रगटाक्षरैरेव सिद्धान्ते प्रतिपादनात् अन्यच्च तथाविधं किमपिविधिचैत्यंनास्ति ततो अत्रैव चैत्यवासि चैत्येगत्वा यदि देवा—

वन्द्यंते तदा शोभनं भवति गुरुमुख कमल विनिर्गत वचनाराधकैः श्रावकै रुक्तं भगवन् यद्युष्माकं सम्मतं तत् क्रियते ततः सर्वैश्राव-का निर्मलशरीरा निर्मलवस्त्रा गृहीतनिर्मलपूजोपकरणा गुरुणा सह देवगृहे गन्तु प्रवृत्ता। ततो देवगृहस्थितयार्यकया गुरुश्रावक समुदायेनागच्छतो गुरून्दृष्ट्वा पृष्टको विशेषोद्य केनापि कथितं वीरगर्भापहार कल्याणक करणार्थमेते समागच्छन्ति तयाचिन्तितं पूर्वं केनापि न कृतमेतदधुना करिष्यंतीति न युक्तं पश्चा-त्संयती देवगृहद्वारे पतित्वास्थिता द्वारप्राप्तान् प्रभूनवलो-कयोक्तमेतयादुष्टचित्तया मया मृतया यदि प्रविशत तादृगप्रीतिकं ज्ञात्वा निवर्त्यं स्वस्थानंगताः पूज्या-इत्यादि जिनदत्ताचार्यं कृतगणधरसार्द्धशतकस्य वृत्तौ ॥ तथा ॥ असहाएणा विवहो पसाहिओ जो न सेससूरीणां। लोयणपहेविवच्चइ पुणजिण-मयणूणं—इति गणधरसार्द्धशतकेद्वाविंशतिशतमी गाथा तद्वृ-त्तिर्यथा—ततो येन भगवता असहायेनाप्येकाकिनापि परकीय सहाय निरपेक्षं अपिविंस्मये अतीवाश्चर्यमेतत् विधिरागमोक्तः षट्कल्याणकरूपश्चैत्यादि विषयः पूर्वं प्रदर्शितश्चप्रकारः प्रकर्षेणो द्मित्थमेवभवति योऽत्रार्थेऽसहिष्णुः सवावदात्विति स्कन्धा-स्फालनपूर्वकं साधितः सकललोक प्रत्यक्षकं प्रकाशितः। यो न शेष सूरीणामज्ञातसिद्धान्तरहस्यानामित्यर्थः। लोचनपथेऽपि दृष्टिमार्गेऽपि आस्तां श्रुतिपथे व्रजति याति। उच्यते पुनर्जिनमत श्रीभगवन्प्रवचनवेदिभिरिति गाथार्थः॥तथा॥ पूणइ मूल पडिमंपि साविआ चिइनिवासि सम्मतं। गब्भापहार कल्लाणगंपि नहुं होइ वीरस्स ॥ १ ॥ इति जिनदत्ताचार्यं कृतोत्सूत्रपदोद्घाटन कुलके इत्यादि वचो व्यञ्जिता, श्रीहरिभद्रसूरि श्रीअभयदेवसूर्या-दिनां पञ्चकल्याण वादीनां क्वचिदज्ञानोद्भावनेन क्वचिन्नोत्सु-त्रभाषणेन हीलनां कुर्वन् प्रागुक्तरोत्यार्यिकया निवार्यमाणोपि

-मिजमताविष्करणार्थं षष्ठंकल्याणकं व्यवस्था स्थापयत् ।"

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके आत्मार्थी सत्यग्रहणभिलाषी निष्पक्षपाती सज्जनोको दिखाता हूं, सो देखो-ऊपरके लेखमें धर्मसागरजीने शास्त्रकारके उपरोक्त पाठोंका अभिप्रायको समझे बिना विवेक शून्यतासे मिथ्यात्वकेउदयसे भद्रजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेके लिये शास्त्रकारोंके अभिप्राय विरुद्ध होकर पूर्वापर सम्बन्ध रहित अधूरा थोड़ासा पाठ लिखके व्यर्थही निजपरके संसार बढ़ानेका कारण किया है क्योंकि श्रीगणधरसार्द्धशतककी वृहद्वृत्तिके उपरोक्त पाठसे श्रीजिनवल्लभसूरिजीको नवीन छठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेवाले ठहरा कर श्रीहरिभद्रसूरिजी श्रीअभयदेवसूरिजीकी आशातना हीलना करनेवाले उत्सूत्र प्ररूपक ठहराये सो निष्केवल बड़ी भारी अज्ञानतासे अपनी वाचालता प्रगट करी है, क्योंकि श्रीजिनवल्लभसूरिजीने छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा नहीं करी किन्तु श्रीऋषभदेव आदि २३ तीर्थङ्कर महाराजोंके तथा श्रीगणधरपूर्वधर पूर्वाचार्योंके कथन मुजबही आगमोक्त रीतिकी प्राचीन सत्य बातोंको प्रगट करी है नतु शास्त्र विरुद्ध अपनी कल्पनासे, इस लिये नवीन प्ररूपणा कहना प्रत्यक्ष मिथ्यात्वका हेतु भूत संसारका कारण है इसका विशेष निर्णय ऊपरमें न्यायाम्भोनिधिजीके लेखकी समीक्षामें इसी ग्रन्थके पृष्ठ ५६१ से ५७२ तक तथा ६१० से ६३७ तकमें छप गया है उसको विवेक बुद्धिसे पढ़नेवाले तत्वार्थी पाठकगण सत्यासत्यका निर्णय स्वयं कर सकेंगे ।

और ऊपरमें धर्मसागरजीने श्रीजिनवल्लभसूरिजीको नवीन मत स्थापन करनेके लिये चीतौड़में चण्डीकाके मन्दिरमें ठहरनेका लिखा सो भी अज्ञानता व द्वेष बुद्धिसे जिनाज्ञा प्रकाशको

उन्मार्ग ठहरानेरूप मिथ्यात्वका कारण किया है, क्योंकि श्री-अभयदेवसूरिजीने इन महाराजको शास्त्राध्ययन कराये बाद क्रिया उद्धारका उपदेश दिया उसी मुजब चैत्यवासी अपने गुरु की आज्ञासे श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके पास क्रिया उद्धारसे शुद्ध संयम अङ्गिकार किया और कितनेही काल गुजरातमें बिहार करते हुए विशेष लाभ जानकर मेवाड़ देशमें विहार किया यहां चितोड़में अविधिमें पड़ेहुए चैत्यवासियोंके भक्तोको श्रीजिनाज्ञानुसार शास्त्रोक्तविधि मार्गमें स्थापन किये थे नतु अपने कल्पित मार्गमें जिनाज्ञा विरुद्ध—इसलिये जिनाज्ञाका प्रकाश करनेको धर्मसागरजीने द्वेष बुद्धिसे नवीन मत व्यवस्था स्थापनका लिखा सो प्रत्यक्ष मिथ्या है इसका विशेष खुलासा इस ग्रन्थके पढ़नेवाले विवेकी जन स्वयं कर लेवेंगे।

और चितोड़में श्रीजिनवल्लभसूरिजीने चौमासा किया तब आश्विन बदी १३ को श्रीमहावीरप्रभुके छठे गर्भापहाररूप दूसरे च्यवन कल्याणकका दिन आया उसकी आराधना करनेके लिये श्रावकोंके साथ चैत्यवासियोंके मन्दिरमें देववन्दन कर-नेको जाने लगे, उसको देखके चैत्यवासिनी आर्या (जतनी) ने विचारा कि—पूर्व किसीने नहीं किया तो यह कैसे करेंगे ऐसा विचारके चैत्य (मन्दिर) के दरवाजे आड़ि गिर गई और महाराजको चैत्यके दरवाजेपर आये हुऐ देखकर वो चैत्य-वासिनी जतनी साध्वी बोली कि, मेरे जीवते हुए तो मेरे मन्दिरमें न जाने दूंगी, परन्तु मेरेको मारकर मेरे—मरे पीछे जावो तो तुमारी खुसी तब महाराज उसका ऐसा क्रोधयुक्त दुष्ट अध्यवसायका क्लेश बढ़ानेवाला अप्रीतिका बचन सुन कर पीछे लौट आये। इसपर धर्मसागरजीने चैत्यवासिनी साध्वीके कहने मुजब छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा

और चीतोड़ नगरमें श्रीजिन वल्लभ सूरिजी महाराजने चातुर्मास किया उस समय चीतोड़नगरमें चैत्यवासियोंने अपने अपने गच्छ परंपरा रूप वाड़ेके दृष्टिरागका अंध परं परामें भोले जीवोंको फंसा लिये थे तथा मंदिरों (चैत्यों) के मालिक बन बैठे थे और चैत्यादिमें रहते हुए चैत्योंका पैदास पूजारी सेवक गोठीकी तरह खाते थे और अविधिसे सावद्यानुष्टान पूर्वक संयम मार्गको छोड़ कर भ्रष्टाचारसे पड़े थे इस लिये चीतोड़में उस समय जितने मंदिर थे वह सब पक्षपाती कदाग्रही चैत्य वासियोंके हाथमें होनेसे अविधि चैत्य थे परन्तु पक्षपात रहित विधि मार्गका एक भी मन्दिर वहां नहीं था इस लिये महाराजने श्रावकोंको कहा कि— "अन्यच्च तथा विधंकिमपि विधि चैत्य नास्ति ततो अत्रैव चैत्यवासी चैत्येगत्वा देवावंद्यतेतदाशोभनं भवति" अर्थात् इस नगरमें चैत्यवासियोंके अविधि चैत्योंके सिवाय विधि चैत्य कोई नहीं है इसलिये चैत्यवासी चैत्यमें जाकर देव वंदन करना अच्छा है तब महाराजके साथमें अन्य भी बहुत श्रावक लोग पवित्र वस्त्रादि धारण करके मन्दिरमें लेजाने योग्य पूजा की सामग्री लेकरके देव वंदनके लिये चले इस तरहसे महाराज को श्रावकोंके साथमें श्रीवीर प्रभुके गर्भापहार दूसरे च्यवन रूप छठे कल्याणक संबन्धी देव वंदन करनेको किसीके मुखसे अपने चैत्यमें आते हुए सुनकर चैत्यवासीनी साध्वीने विचारा कि—" पूर्वंकेनापिनकृतंअधुना करिस्यतीति न युक्तं पश्चात्संयतो देव गृहद्वारे पतित्वास्थिता द्वार प्रासान् प्रभूनव लोक्योक्त मेतया दुष्टचितया मया मृतया यदि प्रविशत तादृगमीतिकं ज्ञात्वा निवर्त्य स्वस्थानंगताः पूज्या " अर्थात् मेरे मंदिर में पहले किसीने (वीर प्रभुके गर्भापहार कल्याणक संबन्ध

देव वंदनादि विधान किया नहीं और यह अभी करेंगे सो युक्त नहीं है इस लिये इनको मेरे मन्दिरमें ऐसा नहीं करने देना चाहिये ऐसा विचार करके अपने मन्दिरके दरवाजेके अगाड़ी आड़ी गिर गई और महाराजको श्रावकोंके साथ मन्दिरके दरवाजे पर आये हुए देखकर वो चैत्यवासीनी साध्वी दुष्टचित्त से क्रोध युक्त होकर बोलने लगी कि मेरे जीवते हुए तो मेरे मंदिरमें आपको न जाने दुंगी परन्तु मेरेको मारो मेरे मरे बाद पीछे यदि मंदिरके अन्दर प्रवेश करो तो तुमारी खुशी तब महाराज उस चैत्यवासीनीका ऐसा क्रोध युक्त दुष्ट अध्यवसायका कलेश बढ़ाने वाला अप्रीतिका बचन सुनकर जानकरके वहांसे पीछे स्थान पर आगये।

इस प्रकारसे चैत्यवासीनीने (पूर्वं केनापि न कृतमेतदधुना करिस्यतीति नयुक्तं) ऐसा विचार किया और पीछे (पश्चात् संयती देवगृह द्वारेपतित्वास्थिता द्वारप्राप्ता प्रभूनवलोक्योक्त मेतया दुष्टचितया मयामृतया यदि प्रविशत) इस तरह का अपना कदाग्रह करके दिखाया इस बात पर भी जो छठे कल्याणकको नवीन प्ररूपण कहते हैं सो बड़ी अज्ञानता है क्योंकि यह चैत्यवासीनी अपने गच्छ परंपरा रूप वेंडिमें वन्धी हुई सावद्यानुष्टानकी करनेवाली आगमार्थको जिनाज्ञा को नहीं जाननेवाली थी और चीतोड़में उस समयके चैत्यवासी आचार्यादि लोग भी अपने अपने गच्छका द्रव्य परंपरा रूप वाड़ाके दृष्टि रागमें बंधे हुए अपने अपने गच्छ वासीयोंके सिवाय अन्य दूसरे गच्छ वालोंको अपने चैत्यमें अपनी इच्छाके विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं करने देते थे और खास आपही उन चैत्योंके मालिक बने एहु बैठे थे इस लिये उस समयके वहांके

बर्ताव मुजब उस चैत्यवासीनीने भी अपने चैत्यमें महाराजको प्रवेश न करने दिया।

और (पूर्वकेनापि न कृतमेतदधुना करिष्यतीति नयुक्तं) इस का अर्थ तो सिद्ध इतना होता है कि-पूर्व अर्थात् पहले किसी ने भी मेरे चैत्यमें एसा न किया और यह अभी करेंगे सो युक्त नहीं है, ऐसा उस चैत्यवासीनीने अपने चैत्य संबंधी विचारा था परन्तु सर्व जगह सर्व देशों तथा शास्त्रोंमें भी यह बात नहीं है इस तरहका नहीं विचारा था सो तो ऊपरके पाठसे प्रगटपने दिखता है इसलिये उसने सर्वत्र नहीं किन्तु चैत्य संबंधी बिचारा था तबही तो इस तरहका विचारके अपने चैत्यके दरवाजेके आडिगिरी थी सो यह तो उन चैत्यवासीनीने अपने गच्छ कदाग्रहके क्रोधके उदयकी अज्ञानतासे बिन बिचारा वर्ताव किया था और जब उस समयके वहांके चैत्य वासि आचार्य नाम धराने वाले विद्वान् कहलाते थे तोभी छठे कल्याणकका स्वरूप नहि जानतेथे (जिसका खुलासा न्यायाम्भोनिधि जीके लेखकी समीक्षामें पहले छपचुका है) तोफिर यह तो विचारी स्त्री जाति तुच्छ वुद्धि वाली अज्ञानि चैत्यवासिनी उसका स्वरूप कैसे जान सक्तीथी और जिसका स्वरूप नहि जान सके उस विषय में प्राणि अज्ञानतासे चाहे जैसा अनुचित वर्तावभि करे तो क्या उसका ज्ञानीके वर्तावसे शास्त्रोक्त मूल सत्य बात झूठी हो सक्ती है सो तो कदापि नहि और वह अज्ञानि प्राणि उसका स्वरूपनहीं जानने से तथा अपना कदाग्रहके क्रोध उदयसे विपरीत वर्ताव करे तो क्या उसका देखा देखी विवेकी विद्वानोंको भी वैसा वर्ताव करना चाहिये सो भी कदापि नहीं तो फिर उस अज्ञानी चैत्यवासीनी गच्छ कदाग्रही स्त्री जातिकी तुच्छ बुद्धिकी अपने चैत्य सबन्धी अनुचित वर्तावका

विचारोंकी देखा देखी वर्त्तमानिक विद्वान् नाम धराने वाले होकरके भी सत्यासत्यका निर्णय किये विना शास्त्रोक्त छठे कल्याणककी सत्य बातको झूठी ठहरानेके लिये उपरोक्त चैत्य वासिनीका अनुचित बर्तावको आगे करके गच्छ कदाग्रहसे महान् पुरुषोंको मिथ्या दूषण लगाते हैं जिन्होंको उपरोक्त लेख बांचकर लज्जित होना चाहिये और अपनी विद्वत्ताकी हांसी कराने वाला अंध परंपराका हठवादको छोड़कर सत्य ग्रहण करना चाहिये इसका विशेष निर्णय निष्पक्षपाती विवेकी सत्य सुजन स्वयं समझ लेवेंगे—

और आज उपरोक्त विषयमें सत्य ग्रहणाभिलाषी पाठक गणको विशेष निस्संदेह होनेके लिये यहां पर प्रत्यक्ष दृष्टान्त दिखाता हूं सो देखो—आज काल वर्त्तमानमें जितने ही विवेक शून्य कदाग्रही मत वासियोंमें उन चैत्यवासियोंके जैसा दुष्ट ग्रहका वर्ताव देखनेमें आता है जो जैसे कितने ही शहरों में कितने ही अज्ञानी ढूंढिये लोगोंने "जिनेश्वर भगवान्की रथ यात्राका वर घोड़ा वाजित्रादि सहित गीत गान पूर्वक" अपने स्थानकके आगेसे होकर नहीं जाने देनेका मान रक्खा है उन शहरोंमें कोई आचार्यादि मुनिराज पधारे हों वे वहांके आत्म कल्याणार्थी भक्त श्रावकोंको धर्मोपदेश द्वारा अठाई उच्छव जिन पूजन रथ यात्रादिसे शासनका प्रभावना करने वाले को बोधिबीजकी प्राप्ति सम्यक्तकी शुद्धि और अनंत लाभका कारण बतलाया होवे उसको सुनकर हृदयमें धारके कितने ही भक्त श्रावकोंने श्रद्धा पूर्वक श्रीजिनेश्वर भगवान्की भक्तिके लिये और शासन प्रभावनाके वास्ते अठाई उच्छवमें रथ यात्रा का वर घोड़ा वाजित्रादि सहित भगवान्के गुणोंका कीर्तन पूर्वक जय ध्वनिसे निकालना शुरू किया होवे वहां बाजार या

गलीके रास्तामें ढूंढियोंका स्थानक आजाये तब ढूंढिये लोग वाजित्रादि गीतगान जय ध्वनी सहित रथ यात्राका वर घोड़ा (भगवान्की असवारी) को अपने स्थानकके आगेसे जाने सम्बन्धी विरोध करें और बहुत कहने सुनने पर भी नहीं जाने तो अपने हठवाद रूपी मतकदाग्रहके कारण अभिमानसे क्रोध कदाग्रह करके मार पीट लड़ाई दङ्गा भी करने लगजावे और बकवाद करने लगजावे कि-हमारे स्थानकके आगेसे रथ यात्रा वर घोड़ा वाजित्रादि गीत गान जय ध्वनी पूर्वक आज तक भी नहीं निकला तो आज कैसे जाने देवेंगे इस प्रकार क्लेशसे कर्म बंधनका कारण जानकर विवेकी बुद्धिमान् शांत स्वभावी आत्मार्थी भक्त जनोंने उस भगवान् की असवारीको वाजित्रादि ध्वनि पूर्वक ढूंढियोंके स्थानकके आगेके रस्तेके बदले दूसरे रस्तासे ले जावे तो क्या वह रथ यात्रा भगवान्की असवारी अठाई उच्छव पूजन कल्पित शास्त्र विरुद्ध हो सकता है सो तो कदापि नहीं तथापि कोई अज्ञानी मत कदाग्रही ढूंढक कहने लगे कि देखो उस दिन रथ यात्राका वर घोड़ा हमारे स्थानके आगे होकर नहीं जाने पाया इस लिये यह रथ यात्रादि सब झूठे ढङ्ग हैं तो क्या वह अज्ञानी ढूंढकका कहना सत्य कदापि हो सकता है सो तो कभी नहीं और उस अज्ञानी ढूंढकके अनुयायियोंकी अन्ध परम्पराका कथन भी सत्य नहीं होसकता तथा रथ यात्रा अठाई उच्छव जिन पूजन वगैरहका उपदेश और कर्त्तव्य कल्पित शास्त्र विरुद्ध नवीन प्ररूपणा नहीं ठहर सकती किन्तु शास्त्रानुसार जिनाज्ञा मुजब आत्म कल्याण कारक प्राचीन ही माननेमें आते हैं तिस पर भी कोई कदाग्रही भारी कर्मा अपना झूठा हठवादको नहीं छोड़े तो उनके कर्मोंका दोष परन्तु आत्मार्थी जन तो ऐसा

कल्पित झूठा कदाग्रह कदापि नहीं कर सकते हैं इसी तरहसे उस समय उन चैत्यवासियोंने अपने अपने गच्छममत्व रूप बाडे बन्धनमें अपने अपने दृष्टि रागियोंको फंसा लिये थे तथा अपने गच्छके अविधिसे मंदिर बनवाये और भ्रष्टाचारमें पड़कर आजिवीका करते हुए काल व्यतीत करते थे और अपनी २ कल्पित कल्पनाके माने हुए मन्तव्यके विरुद्ध चाहे वो जिनाज्ञा मुजब शास्त्रानुसार होवे तो भी अपने अधिकार के मंदिर (चैत्य) में दूसरे गच्छ वाले किसीको भी कोई भी कार्य नहीं करने देते थे इस लिये उन चैत्यवासीनी जतनीने भी अपने गच्छके मन्दिरमें श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजको देव वन्दनादि नहीं करने दिये तथा गच्छाकदाग्रहसे मन्दिरके दरवाजे आडी गिर गई और अविचारसे क्रोध युक्त अनुचित बर्ताव करके आगमार्थको समझे बिना स्त्री जातिकी तुच्छ बुद्धिसे अपनी कल्पना मुजब कहने लगी कि-पहिले किसीने भी मेरे मन्दिर में एसा नहीं किया तो यह कैसे करेंगे; इस तरहसे उस चैत्य वासीनी गच्छ कदाग्रही अज्ञानी जतनी (साध्वी) का कथन सत्य नहीं हो सकता तथा श्रीजिनवल्लभ सूरिजीका भी वीर प्रभुके छठे कल्याणक संबन्धी कथन तथा उसीके लिये मन्दिर में देव वन्दनाके लिये जाना भी शास्त्र विरुद्ध कल्पित नहीं हो सकता किन्तु इन महाराजका कथन तो आगमानुसार जिनाज्ञा मुजब ही समझना चाहिये। तिस पर भी उस चैत्य वासीनी अज्ञानि जतनिका कदाग्रही कथनको विवेक बुद्धि गुरु-गम्यआगमार्थसे सत्यासत्यका निर्णय किये बिना गम्भरीह प्रवाहकी तरह अन्ध परंपराका गच्छ कदाग्रहसे आगे करके उसी तरहका दृढ़ कदाग्रहसे आगमोक्त छठेकल्याणक संबंधी श्री जिनवल्लभ सूरिजीके सत्य कथनको झूठा ठहरानेका उद्यम करने वाले

धर्म सागरजी व उनके अनुयायियोंको गच्छ कदाग्रही अज्ञानियों के सिवाय और क्या कहा जावे सो इस बातको निष्पक्षपाती आत्मार्थी विवेकी जिनाज्ञाभिलाषी पाठक गण स्वयं विचार सकते हैं—

तथा दूसरा और भी सुनो वर्त्तमानमें गच्छ वाले यति तथा श्री पूज्य लोगोंमें अपने २ गच्छके मंदिरोंमें स्नात्र पूजाका पढ़ाना सतरह भेदी पूजन तथा शांतिक पूजन प्रतिष्ठा अंजनशलाकादि कर्तव्य जो जो यति लोग कराते हैं वहां दूसरे गच्छवाले यतिको स्नात्र पूजा प्रतिष्ठादि क्रिया कभी नहीं करने देते जिस पर भी दूसरे गच्छ वालायति करने जावे तो वे लोग बोलने लगते हैं कि ऐसा कभी हुआ नही होने भी नहीं देवेंगे यह बात भी प्रत्यक्ष देखनेमें आती है इससे दूसरा गच्छ वालेका स्नात्र पढ़ानादि क्रिया करवाना शास्त्र विरुद्ध नहीं हो सकती परन्तु निषेध करने वालोंका गच्छ कदाग्रह अन्ध परंपरा ही समझनी चाहिये और कितने ही संवेगी नाम धराने वाले साधु लोग तथा उन्होंके दृष्टिरागी श्रावक लोग भी दूसरे गच्छ वाले साधू साध्वियोंको अपने गच्छके उपाश्रय व धर्मशालामें उतरने नहीं देते ऐसे ही अन्यमत वाले मिथ्यात्वी लोगोंमें भी देखने में आता है कि अपने मतके मठ देवलमें वा अपने भक्तोंके घरमें पूजन व अनुष्ठानादि कार्य अपने कुटुम्बके आदमीके सिवाय दूसरे आदमीको नहीं करने देते जिस पर भी कोई करने जावे तो उस पर अपनेसे बन सके तब तक मारपीट लड़ाई दङ्गा शिर फोड़ना वगैरह करें परन्तु अपने विरुद्ध दूसरेको नहीं करने देते इसी तरहसे वे चैत्यवासी भी अपने सिवाय दूसरे गच्छ वालेको नहीं करने देते थे उससे उन चैत्य वासीभी जतनीने भी श्रीजिन वल्लभ सूरिजीको दूसरे गच्छवाले

जानकर अपने गच्छके मंदिरमें प्रवेश भी नहीं करने दिया और मन्दिरके आडे गिर गई सो तो उनकी अज्ञानताका कदाग्रह समझना चाहिये परन्तु इन महाराजका कथन तो शास्त्रोक्त सत्य ही मानना चाहिये—

तथा तीसरा और भी सुनो—जब चीतोड़ नगरमें जिस समय श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराज विहार करते हुए पधारे उस समय वहांके जैनी नाम धराने वाले चैत्यवासियोंके दृष्टिरागी भक्तोंने नगर भरमें महाराजका ठहरनेके लिये कोई भी स्थान न दिया तब महाराज चामुंडा देवीके मन्दिरमें ठहरे और वहां धर्मोपदेश द्वारा चैत्यवासियोंकी अविधिको निषेध करके विधि मार्ग जिनाज्ञाको प्रगट करने लगे तब वहांके चैत्यवासी लोग इन महाराज पर द्वेष करके पांच सौ (५००) आदमी एकट्ठे होकर लाठी लेके महाराजको मारनेके लिये आये यह बातके इतिहास छपे हुए संघपटकमें तथा श्रीगणधर सार्द्ध शतक वृत्ति प्रकरणादिमे प्रसिद्ध है इस पर भी विचार करना चाहिये कि—जब वे चैत्यवासी लोग नगरमें ठहरनेकी जगह तक भी नहीं देने देवे तथा अपनी खराब आचरणके अवगुणों को देखे बिना उनको मारनेके लिये आवे पूरा द्वेषभाव रक्खे तो फिर उनको अपने मन्दिरमें कैसे प्रवेश करने देवे अपितु कभी नहीं इस लिये उन चैत्यवासीनी पतनीने द्वेष बुद्धिसे अपने मन्दिरमें महाराजको प्रवेश तक भी नहीं करने दिया यह तो द्वेषका कारण प्रत्यक्ष दिखता है और उनहीं अज्ञानी कदाग्रही चैत्यवासिनीका अनुकरण करके सत्यासत्यकी परीक्षा किये बिना आगमोक्त छठे कल्याणकका निषेध करनेके लिये श्री जिनवल्लभ सूरिजी महाराज पर कल्पित प्ररूपणका दूषण लगाने वाले उन चैत्यवासीनी जैसे ही गच्छ कदाग्रही जिनआज्ञाके और

पूर्वाचार्योंके अत्र अज्ञानी समझना चाहिये इस बातको विशेष रूपसे तत्वज्ञ सज्जन स्वयं विचार सकते हैं—

और श्री गणधर सार्द्धशतककी १२२ वीं गाथाकीटीका का विशेष निर्णय इस ग्रन्थके पृष्ठ ६१० से ६३७ तक छपचुका है वहांसे समझ लेना इस लिये इस गाथाकी टीकासे भी छठा कल्याणक आगमोक्त गणधरादि महाराजोंका कथन किया हुआ उसके अनुसार इन महाराजने भी कहा है–

अब पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि–धर्मसागरजीने श्रीगणधर सार्द्धशतककी वृत्तिकारके अभिप्रायको तथा इस पाठके पूर्वापर सम्बन्ध के भावार्थको समझे बिना या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे माया वृत्ति करके बीचमेंसे थोड़ासा अधूरा पाठ वालजीवोंको दिखाके अपनी कल्पनासे छठे कल्याणक की नवीन प्ररूपणा करनेका उद्यम किया सो गच्छ कदाग्रह अन्ध परंपरा वालोंको और भोले जीवोंको मिथ्यात्वमें गेरने वाला होनेसे संसार वृद्धिका हेतु है इस बातका निर्णय इस ग्रन्थके पढ़ने वाले ऊपरके लेखसे विवेकी पाठकगण स्वयं कर लेवेंगे—

और चैत्यवासीनीका क्रोधयुक्त अनुचित वर्तावको देख कर मन्दिरमें प्रवेश न किया पीछे लौट कर स्वस्थान आगये सो तो बहुत ही अच्छा किया क्योंकि आत्मार्थी जिनाज्ञा राधक शांत स्वभावी महात्माजन कलेश झगड़ेके कारण कर्म बंधके हेतुसे दूर रहते हैं इस लिये यद्यपि महाराज श्रावकों के साथमें मन्दिरजीमें देव वन्दन करनेको जाते थे सो महाराज का कर्त्तव्य सत्य था तिस पर भी उन चैत्यवासिनीका गच्छ कदाग्रह देख कर पीछे लौट आये उससे इन महाराजका कथन शास्त्र विरुद्ध कदापि नहीं हो सकता इस बातको

विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं क्योंकि देखो वर्तमानमें तुम्हारे तप गच्छके मुनि श्रीआनन्द सागरजी मुम्बई बन्दर से श्रीसंघके साथमें श्रीअन्तरिक्ष पार्श्वनाथजीकी यात्रा करने के लिये वहां गये थे तब साथमें भगवानकी प्रतिमा भी थी इस लिये जब तक सन्घ वहां दर्शनके लिये ठहरे तब उन प्रतिमाजी को श्री अन्तरीक्ष पार्श्वनाथजी महाराजके मंदिर में बिराजमान करनेके लिये संघवाले गये सो बात उचित थी तिस पर भी वहांके दिगम्बर लोगोंने कितने दिन तक मंदिर में प्रतिमाजी को बिराजमान करनेका विरोध किया बिराज मान नहीं करने देने लगे तब आपसमें खींचातान होनेसे श्वेतांबर दिगम्बर श्रावकोंके आपसमें मारपीट लड़ाई दङ्गा हो गया कोर्ट कचेरीमें हजारोंका खर्चा हुआ लोगों को बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी साथवाले साधुओंको भी कोर्टमें खड़ा रहना पड़ा इत्यादि बहुत नुकशान हुआ सो जैनमें प्रगट है और श्रीजिनवल्लभ सूरिजी तो कलेशका कारण देख कर पीछे लौट आये सो बहुत अच्छा किया किसी तरह का नुकशान नहीं हुआ परन्तु उससे महाराजका कथन शास्त्र विरुद्ध नहीं समझना चाहिये जिस पर भी कोई इस बातको विरुद्ध समझे तो उनकी अज्ञानता है इसको विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और आगे फिर भी धर्म सागरजीने पूयई मूळपडिमंपि साविआ चिई निवासी सम्मतं "गर्भापहार कल्याणगंपिनहु होई वीरस्स ॥ १ ॥" इस गाथाको लिख कर छठे कल्याणक को निषेध करनेके लिये बाल जीवोंको अपनी चतुराई दिखाई परन्तु विवेकी विद्वानोंके आगे तो बाल बुद्धिकी वाचालता दिखाकर अपनी हांसी करानेका कारण किया है क्योंकि

देखो ऊपरकी गाथासे छठा कल्याणक निषेध नहीं हो सकता किन्तु शास्त्रोक्त सिद्ध होता है क्योंकि देखो श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजने "उत्सूत्रपदोद्घाटण कुलक" में ऊपरकी गाथा कथन करी है इस गाथाका भावार्थ ऐसा है कि इन महाराजके समयमें चैत्यवासी लोग शिथिलाचारमें पड़कर अनेक तरहकी शास्त्रोक्त विधि मार्गकी सत्य बातोंको छोड़ बैठे थे और शास्त्र विरुद्ध अविधिकी कितनी ही बातें करने लग गये थे उसमें श्रीवीर प्रभुके गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याणकको माननेका निषेध करते थे तथा मन्दिरमें रात्रिको स्नात्र पूजा प्रतिष्ठा बलि विधान स्त्रियोंका आगमन दीवा बत्तियोंकी धूमधाम और सधवा सयोवना अनियमीत रजस्वला होनेवाली अविवेकी तरुण स्त्रियोंको नगरका श्री संघके मंदिरमें चमत्कारी प्रभावक मूल नायककी प्रतिमाकी केशर चन्दनादिसे अङ्ग पूजा करनेका और अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें लेनेका निषेध वगैरह कितनी ही विरुद्धा चरणके वर्तावकी अनुचित बातोंकी प्रवृत्ति करने लग गये थे और आत्मार्थी आज्ञाके आराधक शुद्ध संयमी विधि मार्गमें चलने वाले बहुत थोड़े रह गये थे उनोंका मन्तव्य तो वीर प्रभुके गर्भापहार रूप दूसरे च्यवनको कल्याणकत्वपने से माननेका तथा मंदिरमें रात्रिको स्नात्रादि करनेका दीवा बत्तीयोंकी धूम धाम स्त्रियोंका रात्रिमें मंदिरमें आगमन और अनियमीत रजस्वलाके कारण अविवेकी सयोवना सधवा स्त्रीको संघके मन्दिरमें मूलनायककी प्रतिमाकी अङ्ग पूजा नहीं करनेका था इस लिये आगमानुसार तथा आत्मार्थी पूर्वाचार्योंकी कालानुसार लाभालाभके विचारकी आचरणानुसार श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजने "उत्सूत्रपदोद्घाटनकुलक"

में ऊपरकी गाथा कथन करी है उससे यह बात प्रगटपने दिखती है कि वर्तमान कालमें कलयुगी श्राविका नाम धारण करने वाली स्त्री मूलनायककी अङ्ग पूजा करनी और वीरप्रभुके गर्भ हरणको कल्याणक नहीं मानना यह मन्तव्य उन चैत्यवासियों के सम्मत है ऊपरकी दो बातें चैत्यवासी मानते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि वे ऊपरकी दो बातें पूर्वाचार्योंको सम्मत नहीं है अर्थात् भ्रष्टाचारी चैत्यवासी वैसा मानते हैं परन्तु आज्ञा आराधक पूर्वाचार्य तो वीरप्रभुके गर्भहरणको दूसरे च्यवन रूप कल्याण कत्वपनेमें माननेका तथा नगरके संघके मन्दिरमें चमत्कारी प्रभावक मूलनायककी प्रतिमाजी का प्रभाव चमत्कार आशातनासे कम न होनेके लिये तथा आशातनासे अधिष्टायक देवके न चले जानेके लिये और शासन की वृद्धि होती रहनेके लिये सधवा सयोवना अविचारवान् तरुण स्त्री मूलनायककी केसर चंदनादिसे अङ्ग पूजा न करे ऐसा मानते हैं इस मूजब उपरकी गाथासे सिद्ध होता है इस लिये ऊपरकी गाथासे चैत्यवासियोंका मन्तव्य इन महाराजने दिखाया है परन्तु गर्भापहारको कल्याणकत्वपने में निषेध नहीं किया है इस लिये धर्मसागरजीने ऊपरको गाथासे छटे कल्याणकका निषेध किया सो अपनी अज्ञानतासे हासीका कारण किया है इस बातको विवेकी पाठकगण स्वयं बिचार लेवेंगे—

और यद्यपि पूर्वकालमें विवेकी द्रौपदी वगैरह सतीयोंने मूलनायककी अङ्ग पूजा करी थी ऐसे शास्त्रोंमें बहुत प्रमाण मिलते हैं तोभी कालानुभावसे वर्तमानमें वो बात मुख्यतया नहीं रही और बाल कुमारका तथा रजस्वलाके रोध वा वृद्ध स्त्रीयें मूलनायककी अङ्ग पूजा करें किन्तु अकालरितु श्राव (रजस्वला) होनेके कारण मूलनायककी महान् आशातनासे उनका चमत्कार

प्रभाव कम हो जावे उनके अधिष्ठायक देव वहांसे चले जावे तथा सन्घकी पड़ती दशा होवे और रजस्वलासे आशातना करनेवालीका संसार परिभ्रमण करनेका कर्म बंध होवे इत्यादि कारणोंसे पूर्वाचार्य्योंने मूल नायककी अङ्ग पूजाका निषेध किया है इसलिये पूर्वकालकी सती श्राविकाओंके दृष्टान्त बतलाके उन सतियोंके जैसी श्रद्धाभक्ति, शुद्धशीयल और पतिव्रता धर्मकी दृढ़ता शरीरकी निरोगता मजबूत सहयनसे नियमित रजस्वला होनेवाली, वगैरह पूर्ण उपयोगयुक्त शुद्ध श्राविकाओंके विवेकादि गुणोंका विचार किये बिना वर्तमानमें अनियमित रजस्वला होनेवाली अविवेकी कलयुगी स्त्रियोंको मूलनायककी अङ्ग पूजा करनेकी बातको स्थापन करनेका आग्रह करके रजस्वला वगैरहसे मूल नायककी आशातनासे पूर्वोक्तादि अनेक तरहके नुकसानका कारण करना और उससे भगवान्की आशातनाके भागी होकर लाभके बदले हानि करके अपने संसारका कारण रूप ऐसा आग्रह करना उचित नहीं है इस बातमें समुद्र जैसी बुद्धिवाले गीतार्थ लाभालाभके जानने वाले पूर्वाचार्य्योंने जो आचरण मान्य करा है उन्हींके कथन को और आचरणको जिनाज्ञाके आराधन करनेवाले आत्मार्थी सज्जनोंको मान्य करना चाहिये और इस बातका आचरण श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजके पहिलेके पूर्वाचार्य्योंसे चली आती है देखो श्रीपार्श्वनाथजी संतानीये श्रीरत्नप्रभ सूरिजीकृत समाचारीमें ऋतुवतीका जिन पूजा निषेध लिखा है जब तो गछकदाग्रही का बाहा नहीं था इसलिये वर्तमानमें कितने ही गच्छकदाग्रही अज्ञानी धर्मसागरजी वगैरह और इनकी अंधपरंपरामें चलनेवाले श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजको स्त्री पूजा निषेध करनेका दूषण लगाते हैं सो व्यर्थही युगप्रधान

शासन प्रभावक परमोपकारी महाराजकी प्रत्यक्ष झूठी निन्दा करके पापसे दुर्लभ बोधिपनेका और संसार भ्रमण करनेका हेतु करके भोले जीवोंको मिथ्यात्वमें गेरनेके कारण करते हैं क्योंकि कालानुभावसे अनियमित अकालसे अकस्मात् ऋतुभाव के दूषणसे पूर्वोक्तादि अनेक बातोंकी हानि न होनेके लिये तरुण स्त्री मूलनायककी अङ्ग पूजा न करे और कुमारि वृद्ध कर सकती हैं यह आचरण इन महाराजके पहिले पूर्वाचार्योंका है और यद्यपि चौबीश (२४) ही तीर्थंकर महाराजकी प्रतिमा पूज्यभावमें तो सभी बरोबर है। परन्तु राज्यगद्दीकी तरह मन्दिर तथा अधिष्ठायक मूलनायकके नामसे होते हैं उसके चमत्कार प्रभावसे जैन शासनकी विशेष उन्नति होती है इसलिये यदि पूजा करनेके समय अकालसे अकस्मात् ऋतुभाव हो जावे तो मूलनायकका तेज कांति प्रभाव हट जावे अव्यवस्थीत प्रतिमाजोहो जाति है तथा महा मलीन अशुद्धताकी बड़ीआशातनासे अधिष्ठायकके कोपसे आशातना करनेवालो को तो जो शिक्षा मिले सो मिले ही परन्तु शासनकी प्रभावना उन्नति होनेमें बाधा पहुचे बड़ीभारी हानि होवे और संघमेंभी रोगमारी जन हानि दलिद्रता वगैरह भयङ्कर उपद्रव होनेका भय रहता है यह बातें तो वर्तमानमें बहुत जगह बनी हुई है उसके प्रत्यक्षमें बहुत दृष्टान्त है इसलिये लाभके बदले विशेष हानिके कारण इस प्रवृत्तिको पूर्वाचार्य्यों ने नियत करी है परन्तु जिस स्त्रीके अङ्गपूजा ही करनेका विशेष भाव होवे तो वो अपने शरीरकी व्यवस्था देखकर पूरण उपयोग युक्त पवित्रतासे श्रीपञ्चतीर्थकी नवपदजीका तथा मूलनायकके विना आजुवाजुकी अन्य प्रतिमाजीकी अङ्ग पूजा करके अपनी भावना पूरण कर लेवें उसमें कदाचित् अकस्मात्से आशातना

भी हो जावे तो उसके विपाक वोही इस भव पर भवमें भोगेगी परन्तु मूलनायकके प्रभावमें तथा अधिष्ठायकके कोपसे शासनकी उन्नतिकी बाधा और संघमें भयंकर उपद्रवकी तो सम्भावना न होगी, और तरुण स्त्री मूलनायककी अङ्ग पूजा न करे परन्तु अग्रपूजा पुष्प प्रकरकी रचना धूप दीपादि और भावपूजा चैत्य वंदन स्तवन गीतगान नाटकादि करके अपनी भावनानु-सार अपनी आत्माको पवित्र करें इसका खुलासा श्रीमान् समय सुन्दरजी उपाध्यायजी विरचित श्री'समाचारीशतक' नामा ग्रन्थसे तथा श्रीमज्जिनयशस्सूरिजी महाराजके आज्ञाके अनुयायी श्रीमान् पं० केशर मुनिजी रचित "प्रश्नोत्तर विचार" नामा पुस्तकके देखनेसे हो जावेगा और विस्तार पूर्वक विशेष निर्णय इसी ग्रन्थकारका बनाया हीरधर्मात्मा तिमिरोच्छेदन भास्कर 'अपरनाम "प्रवचन परीक्षा निर्णय" नामा ग्रन्थके अवलोकनसे अच्छी तरहसे हो जावेगा यह ग्रन्थ थोड़े समयमें प्रकाशित होनेका सम्भव है इसलिये स्त्रीपूजा निषेध सम्बन्धी श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजको धर्मसागर जी वगैरह दूषण लगाते हैं सो मिथ्यात्वकी वृद्धि करनेवाला प्रत्यक्ष मिथ्या है इस बातको निष्पक्षपाती पाठकगण ऊपरके लेखसे स्वयं विचार लेवेंगे ।

और आगे फिर भी धर्मसागरजीने 'श्री हरिभद्रसूरिजी श्रीअभयदेवसूरिजी आदि पांच कल्याणकवादियोंकी अज्ञानता करके उत् सूत्र भाषणसे तुलना करते हुए पूर्वोक्त चैत्य वासिनी जननोंने निवारण किये जिसपर अपना मत प्रगट करनेके लिये हठसे छठे कल्याणककी व्यवस्था स्थापन करनेका लिखा सो श्रीहरिभद्र सूरिजी श्रीअभयदेव सूरिजी श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजके सामान्य विशेषरूप कथनके भावार्थको समझे

विना श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज पर व्यर्थही झूठा दूषण लगाके प्रभाविक आचार्योंके अवरण वादसे निज परके दुर्लभ बोधिका कारण किया है क्योंकि सामान्यता से सर्व तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे २४ ही तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणक कहे जाते हैं उसी अपेक्षासे श्री अभय देव सूरिजीने पचाशकमें पांच कल्याणक कथन किये हैं तैसे ही श्री जिनवल्लभ सूरिजीने भी चौवीस जिनस्तवनाधिकारे सामान्यतासे वहां पांच कल्याणक कहे हैं वैसे हम लोग भी सब तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे सामान्यता करके पांच ही मानते हैं परन्तु जैसे श्री अभयदेव सूरिजीने ही खास श्री स्थानांग सूत्र की टीका करते हुए सूत्रके मूलपाठानुसार श्री पद्म प्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर महाराजोंके सामान्यतासे पांच पांच कल्याणक बतलाये और विशेष रूपसे श्री पद्म प्रभुजी आदि १३ तीर्थंकरोंकी तरह ही २४ वें वीर प्रभुके पांच कल्याणक हस्तोतर नक्षत्रमें और छठा निर्वाण कार्त्तिक अमावस्याको स्वाति नक्षत्रमें खुलासा दिखाके विशेष रूपसे छ कल्याणक कथन किये उसी तरहसे श्री जिनवल्लभ सूरिजीने भी श्री कल्प सूत्र और आचारांग सूत्रादिके मूल सूत्र पाठके अनुसार विशेष रूपसे वीरप्रभुके छ कल्याणक कथन किये हैं वैसे हम लोग तथा जिनाज्ञा आराधक आत्मार्थी सब कोई विशेषतासे छ कहते हैं इसलिये सामान्य विशेषके भेदसे पांच छ दोनों बातें माननेमें और कथन करनेमें किसी तरहका मत भेद अज्ञानता उत्सूत्रता हीलना न समझना चाहिये जिस जगह जैसा प्रसंग हो वे वहां वैसा ही कथन करनेमें आता है इस सामान्य बातमें विशेष बात न दिखावे और विशेष बातमें सामान्य बात न दिखावे तो भी किसी तरहका हरजाकी

बात नहीं है कुतर्क करना ही अज्ञानताका कारण हैं और शास्त्र कारोंके अभि प्रायको समझे बिना एकांत पक्षपाती होकर गच्छ कदाग्रहसे पांच कल्याणककी सामान्य बातको माननेका आग्रह करके स्थानांग आचारांग कल्प सूत्रादि मूल आगमोंमें लिखी हुई छ कल्याणककी विशेष बातको निषेध करनेका हठवाद करनेवाले तीर्थंकर गणधर पूर्वाचार्यों की और जैनागमोंकी आशातना हीलना करने वाले अज्ञानी उत्सूत्र भाषी ठहरते हैं परन्तु आत्मार्थियोंको तो दोनों बातें माननी चाहिये इस बातको विशेष विवेकी तत्वज्ञ सज्जन गण स्वयं विचार सकते हैं।

और श्रीजिन वल्लभ सूरिजी महाराजने हठसे अपना मत स्थापन करनेके लिये नहीं आगमोक्त सत्य बातको प्रगट करी है इस लिये छठे कल्याणकका कथन करनेमें किसी तरहका दूषण नहीं किन्तु हठवादसे निषेध करनेसे आगम पाठउत्थापनका दोष लगता है तथा उन चैत्यवासिनी जतनीने तो आगमार्थको और महाराजके कथन को विवेक बुद्धिसे समझे बिना गच्छममत्वसे व्यर्थ हठ किया था जिसका निर्णय ऊपर में लिखा गया है परन्तु उस अज्ञानी चैत्यवासिनी जतनीकी स्त्री जातिकी तुच्छ बुद्धि गच्छ कदाग्रहकी मूर्खताके अन्ध परंपरामें पड़कर विवेक शून्यतासे धर्मसागरजी वगैरहोंने भी उसी जतनीका अनुकरण करके छठे कल्याणकको निशेध करनेके लिये उसका दृष्टान्त दिखाते हैं और अनेक तरहकी कुयुक्तियोंसे आगमोक्त सत्य बातको झूठा ठहरानेके लिये श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महान् प्रभावक युग प्रधान उत्तम पुरुषको झूठा दूषण लगाने वाले वर्तमानिक विद्वान् नाम धराने वाले कदाग्रहियोंको लज्जित होकर ऐसा कदाग्रह छोड़ना चाहिये और

अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको त्यागके सत्य बात अङ्गीकार करनी चाहिये—ज्यादा क्या लिखें—

और हम लोग शक्रेन्द्रने गर्भहरण करवाया उससे शक्रइन्द्र कर्त्तव्य मानकर गर्भहरणको कल्याणकत्वपना नहीं कहते किन्तु श्रीसमवायांग सूत्र वृत्तिके अनुसार गर्भहरणको दूसरे भवमें गिनकरके श्रीस्थानांग आचारांग कल्प सूत्रादि शास्त्रोंके पाठ प्रमाणसे और त्रिशला माताने १४ स्वप्न आकाशसे उतरते हुए देखे वगैरह कारणोंसे गर्भहरणको दूसरे भवमें गिनकर दूसरा च्यवन रूप कल्याणक मानते हैं इस लिये इन्द्रकृत राज्याभिषेकके दृष्टान्तसे वीरप्रभुके छठे कल्याणकको निशेध करनेके लिये इन्द्रकृतकी समानता संबन्धी अपनी कल्पना मुजब शङ्का समाधान करके धर्म सागरजीने भोले जीवोंको भ्रममें गिरानेका कारण किया है सो सब व्यर्थ है।

और आगे फिर भी धर्मसागरजीने भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेर अपनी अंध परंपराकी माया जालमें फंसानेके लिये अपने संसार बढ़नेका भय न करते हुए श्रीजिनवल्लभ सूरिजी तथा श्रीजिनदत्त सूरिजी और उन्होंके परंपरा वालोंको अनेक तरहके दूषण लगानेके लिये अनेक तरहसे कुयुक्तियोंके विकल्प करके मन मानी कल्पनासे पूर्वपक्ष लिखके उसके उत्तरमें अपनी धर्मठगाई की वाचालता प्रगट करी है जैसे चौथ (४) का पर्युषण करना आगममे नहीं लिखा तो भी प्रवचन पूजाकी अभि वृद्धिके लिये कालिकाचार्यजीने ४ को पर्युषणा वार्षिक पर्व किया सो उन्होंके अनुयायी परंपरा वालोंको प्रमाण है तैसे ही गर्भापहार कल्याणक शास्त्रोंमें नहीं कहा सो भी जिनवल्लभ वाचना चार्यने प्रवचन पूजाकी अभि वृद्धिके लिये गर्भापहारको कल्याणक ठहराया

सो उनके परम्परा वालोंको माननेमें कौन निवारण कर-सकता है" इस प्रकार पूर्वपक्ष लिखके उसके उत्तरमें धर्म सागर जीने अपनी माया वृत्तिकी ठगाईसे भोले जीवोंको भरममें गेरनेका कारण किया सो सब अज्ञानतासे प्रत्यक्ष मिथ्या और व्यर्थ ही परिश्रम किया है क्योंकि श्रीकालिकाचार्यजीने तो देश कालानुसार राजाके आग्रहसे विशेष लाभ जानकर चतुर्थीका पर्युषणा किया था और श्री जिनवल्लभ सूरिजीने तो कालिकाचार्यजीकी तरह देश कालको देखकर किसीके कहने से गर्भापहारको कल्याणक नहीं ठहराया किन्तु इन महाराजने तो आगमोंके मूल पाठानुसार शास्त्रोक्त रीतिसे गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याणकको आश्विन मासके कृष्णपक्ष की त्रयोदशी (आसोज बदी १३) के दिन आराधन करने का उपदेश दिया था सो गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याणकके मास पक्ष तिथिका वर्णन आचारांग सूत्र कल्पसूत्र तथा इनकी व्याख्यायोंमें और त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्रमें आवश्यक व्याख्यायोंमें प्राकृत वीर चरित्रादि अनेक शास्त्रोंमें कथन किया है उसी दिन उसके आराधन सम्बन्धी देव वन्दना दिके लिये कहांसे इन महाराजका कथन आगमानुसार युक्ति युक्त है शास्त्रानुसार बातको कोई प्राणी नहीं जानते होवें तो उनोंके सामने उन बातका उपदेश देनेमें किसी तरहका हरजा नहीं है इस लिये धर्मसागरजी का ऊपर मुजब पूर्व पक्ष लिखना और उसके उत्तरमें अपनी मनो कल्पित कुयुक्तियें लिखना सब व्यर्थ है तथा और भी धर्मसागरजीकी धर्म ठगाई की कुयुक्तियोंका विशेष निर्णय इस ग्रंथको पढ़ने वाले विवेकी सत्य ग्राही सज्जन विद्वान्जन स्वयं कर लेवेंगे अब विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है आगमोक्त छ कल्याणक

माननेका निषेध करने वालोंकी कुयुक्तियों विकल्पोंकी सब शङ्काओंको निवारण करनेमें यह ग्रन्थ समर्थ ही है इसलिये तत्वाभिलाषी जन स्वयं समझ लेवेंगे—

और श्रीजिनवल्लभ वाचनाचार्यने चैत्यवासी अपने गुरूकी आज्ञा लेकर श्रीनवांगी वृत्ति कारक श्री अभयदेव सूरीजी महाराजके पासमें जैनागमोंका अध्ययन किया और क्रिया उद्धार तप संपत् पुनर्दिक्षा लिया है इस बातका उल्लेख इसी ग्रन्थमें पहले होगया है तथा श्रीगणधर सार्द्धशतक बृहद्-वृत्ति लघु वृत्ति गणधर सार्द्धशतकांतरगत प्रकरण, खरतर गच्छ प्रट्टावली और इतिहासिक ग्रन्थ समाचारी शतकादि देख लेना इसलिये श्रीजिनवल्लभ सूरिजीके क्रिया उद्धार संबन्धी झूठी कल्पना करके वैश्या सतीकी निन्दा करे उसी तरहसे बड़े पुरुषोंकी निन्दासे धर्मसागरजी को भी संसार भ्रमणका भय रखना उचित था खैर इस बातका विशेष निर्णय धर्मसागरजीके तथा इनके साथ वाले और इनके पिछाड़ीके अनुयाइयोंको मिथ्यात्वके तिमिरच्छेदन करनेके लिये "झीर धर्मात्मा मिथ्यात्वतिमिरोच्छेदन भास्कर" अपर नाम "प्रवचन परीक्षा निर्णयमें लिखा जावेगा ॥ इति ॥

और भी श्रीज्ञान विमल सूरिजीने 'पर्युषण महात्म्य' में छ कल्याणकका निषेध सम्बन्धी लिखा उसका भी प्रसंगवशसे थोड़ा सा निर्णय लिखना उचित समझ कर लिखता हूं सो उनका लेख नीचे मुजब है "श्रीमहावीर स्वामीने पांच कल्याणक कह्या छे अहीयां कोई एक छ कल्याणक कहे छे ते निःकेवल भ्रान्ति छे अने तेमनी मोटी भूल छे केमके चोवीश तीर्थंकरना एकशोने वीस कल्याणक शास्त्र मां कह्या छे पण एक शौने एक बीस कल्याणक तो कोई शास्त्र मां देखाता नथि पछीतो श्री गुरु

महाराज जाणे घणा एकने कल्याणक सम्बन्धी सन्देह छै तै संदेह तो श्री केवली भगवान् टालीशके परंतु महारू सामर्थ्य न थी" इस प्रकारका श्रीज्ञान विमल सूरिजीका लेख देखकर हमको बड़ा आश्चर्य उत्पन्न होता है क्योंकि बहुत लोगोंको कल्याणक संम्बन्धी संदेह है सो वो सन्देह केवलि भगवान् निवारण कर सके परन्तु ज्ञान विमल सूरिजीकी सामर्थ्य नहीं है शास्त्र में १२१ कल्याणक देखाते नहीं हैं "पछीतो श्रीगुरुजी महाराज जाणे" इन अक्षरोंसे ज्ञान विमल सूरिजीके भी छ कल्याणक संबन्धी संदेह है इसलिये इसका निर्णय गुरुपर गेर दिया आज इस जगह विचार करना चाहिये कि छ कल्याणक सम्बन्धी आप सन्देहमें पड़े हैं और दूसरोंका सन्देह मिटानेकी शक्ति नहीं तो फ़िर कल्याणकोंके मानने वालोंकी निःकेवल भ्रांति और बहीभूत कह देना यह गच्छ कदाग्रहका दृष्टि रागके सिवाय और क्या होगा सो विवेकी तत्वज्ञ जन स्वयं विचार सकते हैं।

और शास्त्रमें १२१ कल्याणक देखाते नही हैं इसपर तो मुझे सिर्फ इतना कहना है कि-शास्त्रमें पुरुष तीर्थंकर होवे परन्तु स्त्री नही होवे ऐसा लिखा है तिस पर भी इस अवसर्पिणीमें कालानुभावसे कर्मानुसार १९ वें मल्लीनाथ स्त्रीपनेमें हुए सो मानते हैं तथा तीर्थंकर उत्तम कुलमें अवतरे परन्तु भिक्षारी दलिद्री के कुलमें अवतरे नहीं ऐसा शास्त्रमें लिखा है तिस पर भी वर्तमान चौबीसीमें कर्मानुसार २४ वें वीर प्रभु भगवान् ब्राह्मणके कुलमें अवतरे सो मानते हैं और सर्व तीर्थंकर महाराजोंके एक एक माता एक एक पिता होवे परन्तु दो दो माता तथा दो दो पिता न होवे ऐसा शास्त्रमें लिखा है तिस पर भी २४ वें भगवान् के दो माता दो पिता दो भव दो

च्यवन हुए सो आचारांग, आवश्यक वृत्ति भगवती समवायांग वीर चरित्र और कल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें लिखा है सो इस बातको सब कोई मानते हैं इसी तरहसे १२० कल्याणक लिखे हैं तिसपर भी दो भव दो च्यवन दो वार माताओंने स्वप्न देखे दो माता दो पिता इत्यादि कारणसे वीरके दो च्यवन कल्याणकके हिसाब से १२१ होते हैं सो न्यायानुसार मानने ही पड़ेंगे इस लिये ज्ञान विमल सूरिजी का १२१ कल्याणक तो शास्त्रमें देखते नहीं लिखा यह तर्क व्यर्थ है इस बातको भी निस्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञजन स्वयं विचार सकते हैं।

और आगे फिर भी भगवानके पांच कल्याणक दिखानेके लिये उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रे देवतानुं शरीर छोड़ी माताने उदर मां अवतर्यां १ "उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रे जन्म कल्याणक थयूं २, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रे दीक्षा लिधी ३, उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्र मां केवल ज्ञान पाम्यां ४, स्वाति नक्षत्रमां मोक्ष पहोच्या ५ इस तरहसे वीर प्रभुका चरित्रकी आदिमें कल्पसूत्रकी व्याख्या लिखते हुए पांच दिखाये परन्तु मूलसूत्रमें और उसकी व्याख्या ओंमें तथा आचारांग स्थानांगादि अनेक शास्त्रोंमें उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रसे" गब्भाओ गब्भंसाहरिए इस पाठसे गर्भापहार रूप दूसरा च्यवन खुलासा पूर्वक मासादि तिथि सहित लिखा है इसलिये मूलसूत्र पाठकी बातको उठा देना या तस्कर वृत्ति करके गच्छ कदाग्रहसे छुपा देना ज्ञान विमल सूरिजी को उचित नहीं था खैर आत्म हितार्थी पाठकगण से मेरा यही कहना है कि मूल आगमोंमें श्री वीर प्रभुके चरित्राधिकारे सर्वत्र छ कल्याणक खुलासा स्पष्ट लिखे हुए हैं इस लिये इस बातको निषेध करनेको कोई भी समर्थ नहीं है ज्यादा क्या लिखूं।

प्रश्न-अजी आप आगमोक्त प्रमाणोंसे और युक्तियोंके अनुसार श्री वीरप्रभुके छ कल्याणक दिखाते हो परन्तु तीर्थंकर महाराजके च्यवन जन्म दीक्षादि पांचों कल्याणकोंमें तीन जगतमें उद्योत होता है सब संसारी जीवोंको क्षणमात्र सुखकी प्राप्ति होती हैं तथा इन्द्र महाराज उसी समय नमोत्थुणं से नमस्कार करते हैं और ६४ इन्द्रादि अनेक कोटाकोटी देवता देवी नंदीश्वर नामा आठमें द्वीपमें जाकर वहां शाश्वते मन्दिरोंमें अठाई उच्छव करते हैं इस लिये उनोंको कल्याणक मानते हैं परन्तु श्री वीर प्रभुके गर्भ हरणमें तो ऊपरकी बातें होनेका देखनेमें नहीं आता तो फिर गर्भ हरणको कल्याणक कैसे माना जावे।

उत्तर—भो देवानुप्रिये! अतीव गंभीरार्थयुक्त नय गर्भित अपेक्षावाले स्यादवाद शैलीके जैनागम शास्त्रोंको विनय पूर्वक गुरु गम्यतासे पढ़ते तथा विवेक बुद्धिसे आगमोंके भावार्थको हृदयमें धारण करते और गच्छके पक्षपात कदाग्रह रहित होते तो वीर प्रभुके गर्भहरण रूप दूसरे च्यवन कल्याणक में नमोत्थुणं वगैरह न होनेका कदापि न कहते और गीतार्थ सुगुरु से इस बातका निर्णय किये बिना अपनी कल्पना मुजब मान लेना आत्मार्थियोंको उचित नहीं है क्योंकि देखो अनादिकालसे उसीको च्यवन कल्याणक कहते है तीर्थंकर देवलोकसे चयब करके माताकी कूक्षिमें उत्पन्न होते हैं उसमें जो जो कर्त्तव्य बनते हैं सो वे ही सब कर्त्तव्य श्रीवीरप्रभुके गर्भहरण रूप दूसरे च्यवन कल्याणकमें भी होनेका समझना चाहिये जिस पर भी कोई कहेगा, कि गर्भहरण तो एक आश्चर्य रूप हुआ है उस आश्चर्यमें नमोत्थुणं वगैरह होनेका कैसे सम्भव हो सके तो इसके उत्तरमें हमको सिर्फ इतना ही

कहना पड़ता है कि—मिथिलानगरीमें कुम्भ राजाकी प्रभावती रानीकी कूक्षिमें १९ वें भगवान श्रीमल्लीनाथ स्वामी स्त्रीपनेमें आकर उत्पन्न हुए सो भी आश्चर्य रूप हुआ उसमें तो नमोत्थुणं वगैरह आप लोग भी मानते हों तो फिर भी वीर प्रभुके गर्भ हरण दूसरे च्यवन कल्याणक रूप आश्चर्यमें नमोत्थुणं नहीं मानना यह तो प्रत्यक्ष अन्याय आत्मार्थियोंको नहीं करना चाहिये अर्थात श्रीमल्लीनाथजी के स्त्रीपनेमें उत्पन्न होने रूप आश्चर्यमें जैसे नमोत्थुणं मानते हों वैसे ही श्रीवीर प्रभुके दूसरे च्यवन रूप आश्चर्यमें भी नमोत्थुण मानना न्यायानुसार आत्मार्थियोंको उचित है।

और जब श्री ऋषभादि २३ तीर्थंकर महाराजोंने गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने आगमादि अनेक शास्त्रोंमें गर्भापहार रूप दूसरे च्यवनको कल्याणकपनेमें गिन कर वीरप्रभुके छ कल्याणकोंकी खुलासा व्याख्या करी है उससे ही उसमें नमोत्थुणं तथा तीन जगतमें उद्योत और संसारी सब जीवों को सुखकी प्राप्ति वगैरह तो स्वयं सिद्ध ही है इस लिये इस बातमें शङ्का रखना अपने सम्य क्त्वको मलिनताका कारण है आत्मार्थियोंको करना उचित नहीं है।

और "णखलुएयंभूयं णभव्वं णभविस्सं जण्णं अरिहन्ता वा चक्कवट्टीवा बलदेवा वा बासुदेवावा अंतकुले सुवा इत्यादि श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठके और उसकी अनेक व्याख्यायोंके अनुसार भगवान् कुलमदके कारणसे ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरमें देवानन्दा ब्राह्मणिकी कूक्षिमें आकर उत्पन्न हुए उसको आश्चर्य कहा है सो उस आश्चर्यमें आप लोग नमोत्थुणं वगैरह होने का मानते हो, इसलिये आश्चर्यमें नमुत्थुण वगैरह होनेका कैसे सम्भवे ऐसी शङ्का करना व्यर्थ है कहना ही व्यर्थ है इस बातको विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं।

और जिस समय तीर्थंकर महाराज देवलोकसे च्यव करके मनुष्य क्षेत्रमें अपनी माताकी कुक्षिमें आकर उत्पन्न होते हैं उस समय माता १४ स्वप्न देखे और तीन जगतमें उद्योत तथा सब संसारी जीवोंको क्षण भर सुखकी प्राप्ति होती है और उसी समय तीर्थंकर महाराजके अनन्त पुण्यराशी रूपी हलकारेकी ठोकरसे सौधर्म देव लोकमें इन्द्रका आसन चलाय मान होता है तब अवधि ज्ञानसे भगवानका अवतरना जानकर हर्षयुक्त ७।८ पैर भगवान् संबंधि दिशा तरफ सामने जाके विधि पूर्वक नमस्कार याने नमोत्थुणं करे और अपने कुबेर भण्डारीको आदेश देकरके देवताओंके द्वारा तीर्थंकर भगवानके माता पिताके राज्यभुवनमें स्वर्ण रत्नादि धनधान्य वगैरहकी वृद्धि करावे कुल राज्यकी भाण्डारकी वृद्धि वगैरह होवें पुत्रोत्पत्तिका महोत्सव होवे यह सब तीर्थंकरो संबंधी च्यवन कल्याणक का अनादि नियम है परन्तु जब वीर प्रभु भवान्तरका उपार्जीत नीच गोत्रके उदयसे ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें आकर उत्पन्न हुए तब इन्द्रका आशन चलायमान नहीं हुआ क्योंकि जब भगवान देवानन्दाकी कुक्षिमें आकर उत्पन्न हुए तब देवा नन्दाने १४ स्वप्न देखे सो अपने पतिको कहे उसने उत्तम लक्षण वाला पुत्र होनेको कहा उसको सुनकर "ते सुमिणो सम्मं पडिच्छई सम्मं पडिच्छि त्ता उसभदत्तें माहणेणं सद्धिं उरालाईं माणुस्सगाईं भोग भोगाईं भुंज माणा विहरई" कल्पसूत्रके इस सूत्र पाठानुसार तथा इसकी ६ व्याख्याओंके और ४ वीर चरित्रोंके अनुसार ऋषभदत्त ब्राह्मणके मुखसे स्वप्नोंका अर्थ सुनकर ऋषभदत्त ब्राह्मणके साथ मनुष्य सम्बन्धी उत्तम प्रकारके संसारी भोग भोगती हुई विचरने लगी, ऐसा उपरोक्त सूत्र पाठ वगैरह

शास्त्र प्रमाणोंसे सिद्ध होता है परन्तु जब भगवान देवानन्दाके गर्भमें आकर उत्पन्न हुए उस समय इन्द्रका आशन चलायमान हुआ और इन्द्रने उसी समय नमस्कार याने नमोत्थुणं किया ऐसा तो किसी शास्त्र में देखनेमें आता नहीं है परन्तु "महापुरुष चरित्र" जोकि प्राचीन पूर्वधराचार्यों के समय श्रीमान देव सूरिजी के शिष्य श्रीशीलायरिय (शीलाचार्य) जी कृत प्राकृत में है उसमें २४ तीर्थंकर १२ चक्रवर्त्ती वगैरह उत्तम पुरुषोंके चरित्र हैं उसमें श्रीवीरप्रभु के चरित्रमें कलिकाल और इतिहास सर्वज्ञ बिरुद धारक श्रीहेमचंद्राचार्यजी कृत "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र"के दशवें पर्वमें वीर चरित्राधिकारे दूसरे सर्गमें वीर प्रभु भगवान ८२ दिन तक देवा नन्दाके गर्भमें रहे ८२ दिन व्यतीत हुए बाद इन्द्र महाराजका आशन चलायमान हुआ तब इन्द्रने भगवानको अवधि ज्ञानसे देखा और नमस्कार याने नमोत्थुणं किया ऐसा खुलासा कथन किया है जिसका पाठ पाठक वर्गको विशेष निःसन्देह होनेके लिये नीचे दिखाता हूं सो प्रथम—श्री प्राचीन पूर्वधराचार्यों के समय श्री मानदेव सूरिजी के शिष्य श्रीशीलाचार्य जी कृत "महा पुरुष चरित्र" में वीर चरित्राधिकारे तथाहि

अत्थि इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे माहण कुंडग्गामा णाम गामो तत्थ कोडालसगोत्तो बंभणो तस्स देवाणंदा भारिया तीए सह जहा सुहं वसंतस्स गच्छंति दियहाइओथतओ पुप्फुत्तर विमाणाओ आसाढ सुद्ध छट्ठीए हत्थुत्तराहिं चइऊण अणेय भवाई य मरीइ जीवसुरवरो अहोत्तमं महाकुलंतिदु-रुत्तवायावइयं आवज्जियकम्म किंचावसेसत्तणाओ समुप्पण्णेत्ती एवं भणीए उदरंमि दिट्ठा यणाए सुहपसुत्ताए ताएच्चेव रयणीए पहाय समयम्मिंगय वसहाइणो चोद्दसमहा सुमिणा पुणो।

पडिनियत्तमाणा दट्ठुण ससज्झसा वि उट्ठा साहियं इन्द-यस्स सो वि हु अगणाइत्तणं ठिओ तुसिहको एवं च पवड्ढमा-णम्मि गब्भे गएसु बासीदिराइंरासुताव चलियासणो हि पओएण सुराहिवइणो मुणिओ भयवओ गब्भ संभवो चिंतिउं च तापयो एवंविहा महाणुहावा ण तुच्छकुलेसु जायन्ति चिंतिऊण अवहरिउ बंभणीओ गब्भाओ भयवं पक्खित्तो इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे उत्तुंग धवलपायारसिहरोवसोहिए तीए णगराहिहाणे पुरवरे जहिंच मलिणत्तणं महाणसधूमेसु ण सच्चरीसु कुहराओ भवणकलहंसेसु चंचलत्तणं कयलीदलेसु ण माणेसु चवखुराओ परहुआसु पयरकलत्तोसु थणफंसो वेणुयासु ण परमहिलासु पक्खवाओ तं च चुलेसु णिववाएसु मुहभंगो जराए ण धणाहिमाणेण जणस्सत्ति तत्थ दिन यरोव्व पढमसमाणोदओ सुरकरिव्व अणवरयपयत्तदाणोल्लियकरोणिय-पयावावज्जिय णरूंतसामंतमउलिमालच्चियचलणजुयलो इक्खा-यवंसपरुवोरायानामेण सिद्धत्थो त्ति जायआगओ गुणगणाणं कुलभवणं कलाविसेसाणं आसओ सव्वसत्थाणं उप्पत्ती सच्चरियाणं तस्स सव्वहरस्सेव रोहणी सयलंतेउरप्पहाणा तिसलादेवी णाम पणइणी अच्चंतदइयत्तणाओ य जेसुजेसु-उज्जाणाकीलाविसेसु वच्चइ णराहिवोतहिं तंपीणोइत्ति अण्णाया य गामाणुग्गामं गच्छमाणो कीलानिमित्तामागओ णियभुत्तिपरिसंट्ठियं कुंडपुरवरं नाम नयरं जहाविहोवयारेण पविट्ठोणियमंदिरं आगओ सयन्नोवि पुरजणावओ दंसण तथं समाणिय विसज्जिअयम्मि पउरलोए विसिट्ठविणोएण अइवा-हिऊण दिणसेसं पसुत्तो वासभवणम्मि निवण्णातयं तिए देवी समागया सुहेण निद्दा तओ पहायाए रयणीए पउट्ठ ससहासुविणाणुकूलवाभसंतूइओ समुप्पन्नो आलोयहिरसीए

हत्थुत्तराहिं तिसिलादेवीएगब्भम्मि पहायसमयम्मि पडिबुद्धाए य साहिओ राइणो सिविणवइयरो तेणाविं भणियं सुन्दरी सयलते-लोक्कलरकणखम्मं भभूओ पुत्तो ते भविस्सइत्ति ॥ बहुमन्नियं च तीए इमीए पहरिसुल्लसंततसुया गया णिययावासं एवं चपस्स इंदि-ण संपज्जंतस्स विसेससुहपरिभोयाए वड्ढिउमाढत्तो ॥ गब्भोकेरिसा यदेवी दोसिउ पयत्ता सामाणमइ-सुया वहिपसरपडिप्फुजियदो-क्खपब्भारो घणपडलंसट्टियविप्फरोव्व पडिहाइ दिणलच्छी अ-लियथरं परिउब्भज्जलायणा मलपसाहियावयवा आसण्णोदयससि बिंबभूसिया उदयदभित्ति व्व पउप्पाइऊण वरिय विसायमा-वण्णाए चिंतियं जणणीए णूणमेसो सह संदभायाए उदराओ-च्चेय केणावि अवहरिओ अहवा विलीणो अण्णहा कह मणयं पिणफंदइण य परिबुड्ढिं यावेहता जणणीमन्द भारत्तण ओग-ब्भविवत्तीसमुप्पइता अवस्स महमप्पणापाणेण धारमिति एत्थावसरम्मि य मुणिय चिंतियत्थेण भयवया करुणाप-हारत्तण ओ चालिओ एक्कोणिययसरीरावयवोतओधरइ समासत्थोचित्तेण भयवई ताव य चिंतियं भयवया अहो एरिसो वएपाणिधम्मोजेण पेच्छ एक्क मुहुत्तं तरम्मि चे: यहरिसविसा-याणपयरिसो ता अवस्संमए जीवमाणाणं पि इमाई या आणा-खइणं ण कायव्वं वि सयविरत्तचित्तणावि गिहेवासे चेयचिट्ठ अव्वं दियलोयगएसु जणणिजणएसु नियमाणट्ठाणं कायव्वं ति एवंच संकप्पिए भयवया जहा सुहेणंसमागओ पसूइसमओ तओ वासवदि सव्वससिमंडवं समुज्जोइय सयल जियलोयं चेत्तस्स सुधत्तेरसीए हत्थुत्तराय पसूया भयवई जिणवरं ति णवरिय चलियासणतिय सणाहप सुहं सुरासुरगणेहिं चलियं—इत्यादि इसके आगे जन्मोत्सवादि का वर्णन है दूसरा और भी कलि

काल सर्वज्ञ विरुद धारक श्रीमान् हेमचन्द्राचार्यजी कृत "त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र" के दशवे पर्वमें श्रीवीर चरित्राधिकार दूसरे सर्गका पाठ नीचे मुजब है यथा—

इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् क्षेत्रेऽस्ति भरताभिधे ॥ ब्राह्मणकुण्ड ग्रामाख्य संनिवेशो द्विजात्मनाम् ॥ १ ॥ तत्र चर्षभदत्तोऽभूत् कोडालसकुलो द्विजः। देवानन्दा च तद्भार्या, जालन्धरकुलोद्भवा ॥ २ ॥ च्युत्वा च नन्दनो हस्तोत्तरक्षस्थे निशाकरे। आषाढस्य श्वेतषष्ठयां तस्याकुक्षा ववातरत् ॥ ३ ॥ देवानन्दा सुखस्वप्ना महास्वप्नां चतुर्दश सा ददर्श प्रातराख्यच्च पत्येसोऽपि व्यचारयत् ॥ ४ ॥ चतुर्णां छंदसां पारदृश्वा परमनैष्ठिक। सूनुर्भवत्यभविता स्वप्नैरेभिर्न संशयः ॥ ५ ॥ देवानन्दा गर्भगते प्रभौ तस्य द्विजन्मनः। बभूव महती ऋद्धिः कल्पद्रुम इवागते ॥ ६ ॥ तस्यागर्भस्थिते नाथे द्वयशीतिदिवसात्यये। सौधर्मकल्पाधिपतेः सिंहासनमकंपत ॥ ७ ॥ ज्ञात्वा चावधिना देवानन्दागर्भगतं त्रिजप्रभुम्। सिंहासनात्समुत्थाय शक्रो नत्वेत्यचिन्तयत् ॥ ८ ॥ त्रिजगद्गुरवोऽर्हन्तो नोत्पद्यन्ते कदाचन। तुच्छकुले रोरकुले भिक्षाकुलेऽपिवा ॥ ९ ॥ इक्ष्वाकुवंश प्रभृतिक्षत्र वंशेषु किं त्वमी। जायन्ते पुरुषसिंहा मुक्ता शुक्त्यादिकेष्विव ॥ १० ॥ तदसंगतमाचम्रं जन्म नीचकुले प्रभोः। प्राज्यं कर्मान्यथा कर्तुं यद्वार्हन्तोऽपि नेशते ॥ ११ ॥ मरीचिजन्मनि कुलमदं नाथेन कुर्वता। अर्जितं नीचकैर्गोत्र कर्माद्यापि ह्युपस्थितम् ॥ १२ ॥ कर्मवशान्नीचकुले सूत्पन्नानर्हतोऽन्यतः। क्षेमु महाकुलेऽस्माकमधिकारोऽस्ति सर्वदा ॥ १३ ॥ कोऽधुनास्ति महावंश्योराजा राज्ञी च भारते। यत्र संचार्यते स्वामी कुन्दाद्भृंग इवाम्बुजे ॥ १४ ॥ ज्ञातमस्तीह भरते मही मण्डल मण्डनम्। क्षत्रियकुण्डग्रामाख्यंपुरमत्पुरसोदरम् ॥ १५ ॥ स्थानं विविध चैत्यानां धर्मस्यैकं निबन्धनम्।

अन्यायैरपरिस्पृष्टं पवित्रं तच्च साधुभिः ॥ १६ ॥ मृगया मद्य-पानादि व्यसनास्पृष्टनागरम्। तदेव भरत क्षेत्र पावनं तीर्थवद्भवः ॥ १७ ॥ तत्रैक्ष्वाको ज्ञातवंश्यः सिद्धार्थोऽस्ति महीपतिः। धर्मेणेव हि सिद्धार्थं सदात्मानममंस्त यः ॥१८॥ जीवाजीवादितत्त्वज्ञो न्यायवर्त्मसहाध्वगः। प्रजाः पथि स्थापयिता हितकामी पितेव सः ॥ १९ ॥ दीनानाथादि लोकानां समुद्धरण बांधवः। शरण्यः शरणेच्छूनां स क्षत्रियशिरोमणिः ॥ २० ॥ तस्याऽस्ति त्रिशला नाम सतीजनमतल्लिका। पुण्य भूरग्रमहिषी महनीय गुणाकृतिः ॥ २१ ॥ निसर्गतो निर्मलया तत्तद्गुणतरङ्गया। तया पवित्र्यते धात्री मन्दाकिन्येव संप्रति ॥ २२ ॥ मायया स्त्री जन्म सहचारिण्याप्य कलंकिता। सा निसर्गऋजुर्देवी सुगृहीताभिधाभुवि ॥ २३ ॥ सा चास्तिसांप्रतं गुर्वीकार्यः संचारणाद्द्रुतम्। तस्यादेवानन्दायाश्चगर्भयोर्व्यत्ययो मया ॥२४॥ विमृश्यैवंशतमखः समाहूय झटित्यपि। आदिदेश तथा कर्तुं सेनान्यं नैगमेषिणम् ॥ २५ ॥ विदधे नैगमेषी च तथैव स्वामिशासनम्। देवानन्दा त्रिशलयोर्गर्भव्यत्ययलक्षणाम् ॥ २६ ॥ देवानन्दाब्राह्मणी सा शयिता पूर्ववीक्षितान्। मुखान्निः सरतोऽद्राक्षीन्महास्वप्नांश्चतुर्दश ॥ २७ ॥ उत्थाय वक्ष आघ्नाना निः स्थामा ज्वरजर्जरा। केनापि जह्ने मे गर्भ इति चुक्रोश सा चिरम् ॥२८॥ कृष्णाश्विन त्रयोदश्यां चन्द्रे हस्तोत्तरास्थिते। सदेव स्त्रिशलागर्भे स्वामिनं निभृतं न्यधात् ॥ २९ ॥ गजो वृषो हरिः साभिषेक श्रीः स्त्रक् शशी रविः। महाध्वजः पूर्णकुम्भः पद्मसर सरित्पतिः ॥ ३० ॥ विमानं रत्नपुञ्जश्च निर्धूमोग्निरितिक्रमात्। ददर्श स्वामिनी स्वप्नान्मुखे प्रविशतस्तदा ॥ ३१ ॥ इन्द्रैः पत्याच तज्ज्ञैश्च तीर्थकृज्जन्मलक्षणे। उदीरिते स्वप्नफले त्रिशला दैव्यमोदत ॥ ३२ ॥ दधार त्रिशालादेवी मुदितागर्भं

सद्भुतम्। अप्रमत्तौ विहरन्तौ लीला सद्म भूष्वपि ॥ ३३ ॥ गर्भस्थेऽथ प्रभो शक्राज्ञया जृंभकनाकिनः भूयो भूयो निधानानि न्यधुःसिद्धार्थवेस्मनि ॥ ३४ ॥ सर्वं ज्ञातकुलं भूरि धनधान्यादि ऋद्धिभिः गर्भावतीर्ण भगवत्प्रभावाद्वृधेत राम्॥३५॥ सिद्धार्थ स्यापिनृपतेर्दर्पादृणलाः पुरा। प्रणेमुभूंभुजोऽभ्येत्य स्वयं प्राभृत पाणयः ॥ ३६ ॥ मयिपस्पन्दमाऽनेत्र मातुर्मा वेदना स्समभूत। इत्यस्यान्निभृतः स्वामी गर्भवासेऽपि योगिवत् ३७ ॥ स्वामी संवृत सर्वाङ्ग व्यापारो स्थात्तथोदरे। नालक्ष्यत यथामात्राप्यन्त स्तिष्ठति वान वा ॥ ३८ ॥ तदाच त्रिशला दध्यौ किंगर्भो गलितोमम। केनाप्यहृतः किंवा विनष्ट स्तंभितोऽथवा ॥ ३९ ॥ यद्येतदपि सञ्जातं तदलं जीवितेनमे। सह्यं हि मृत्युजं दुःखं गर्भभ्रंशभवंनतु ॥ ४० ॥ इत्यार्त्तध्यान भाग्देवी रुदती लुलितालका। त्यक्ताङ्गरागा हस्ताब्जविन्यस्तमुखपंकजा ॥ ४१ ॥ त्यक्ता भरण संभारा निःश्वास विधुराधरा। सखीष्वपि हि तूष्णीका नाशीत वुभुजेनच ॥ ४२ ॥ तत्तु विज्ञाय सिद्धार्थमही-पतिरखिद्यत। तत्पुत्रभाडे च नन्दिवर्धनोऽथ सुदर्शना ॥४३॥ पित्रोर्बिज्ञाय तद्दुःखं ज्ञानत्रयधरः प्रभुः। अङ्गुलिं चालयामास गर्भज्ञापनहेतवे ॥ ४४ ॥ भद्रगर्भोऽक्षतएवेति ज्ञात्वा स्वामिन्य मोदत। अमोदयच्च सिद्धार्थं गर्भस्पन्दन शंसनात् ॥ ४५ ॥ अचिंतयच्च भगवान्मय्यदृष्टेऽपिको प्यहो। मातापित्रोर्महान् स्नेहो जीवतोरनयोर्यदि ॥ ४६ ॥ प्रव्रजिष्याम्यहं स्नेहमोहादे तौ तदाध्रुवम्। आर्त्तध्यान गतौ कर्माशुभं वहवर्जयिष्यत युग्मं ॥ ४७ ॥ अथैवं सप्तमे मासि जग्राहा भिग्रहं प्रभुः। उपादास्ये परिव्रज्यां न पित्रोर्जीवतोरहम् ॥ ४८ ॥ अथ दिक्षु प्रसन्नासु स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषुच। प्रदक्षिणेऽनुकूले च भूमि सर्पिणि मारुते ॥ ४९ ॥ प्रमोद पूर्णे जगति शकुनेषु जयिष्वलम्।

अथाष्टमदिनाग्रेषु मासेषु नवसूचकैः ॥ ५० ॥ शुक्लचैत्रत्रयोदश्यां चन्द्रे हस्तोत्तरागते। सिंहाङ्कं काञ्चनरुचिं स्वामिनी सुषुवे सुतं ॥५१॥

॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

षट्पञ्चाशद्दिक्कुमार्योऽभ्येत्य भोगङ्करादयः। स्वामिनः स्वामिमातुश्च सूतकर्माणि चक्रिरे॥ ५२ ॥ शक्रोप्यासनकंपेन तत्कालं सपरिच्छदः। विज्ञाय स्वामिनो जन्म सूतिका गृहमाययौ ॥ ५३॥ अर्हंत मर्हदम्बा च दूरतोऽपि प्रणम्य सः। उपसृत्यागतो देवाश्चावस्वापनिकां ददौ ॥ ५४ ॥ देव्याःपार्श्वे च भगवत्प्रतिरूपं निधायसः। विचक्रे पंचधात्मानं सत्तमो भक्तिकर्मणि ॥ ५५॥ एकः शक्रः स्वपाणिभ्यां भगवन्तमुपाददे। उपरि स्वामिनश्छत्रं द्वितीयोकस्तव धारयत्॥ ५६ ॥

इत्यादि इसके आगे जन्म उत्सवादिका वर्णन है।

देखिये ऊपरके दोनों पाठो में भगवान् जब देवानन्दाके गर्भमें आकर उत्पन्न हुए तब देवानन्दाने १४ महा स्वप्न देखे सो अपने पतिको कहे पतिने उत्तम पुत्र प्राप्तिको कहा देवानन्दाके गर्भमें रहते हुए भगवानको ८२ दिन व्यतित हुए बाद इन्द्रका आसन चलायमान हुआ जब इन्द्रने अवधि ज्ञानसे भगवानको देखा तब हर्ष सहित सिंहासनसे उठकर विधिपूर्वक नमस्कार याने नमोत्थुणं किया और नीच गौत्रके उदयसे ब्राह्मण कुलमें आये इसलिये सिद्धार्थ राजाकी त्रिशला रानीकी कुक्षिमें हरणेगमेषीदेवताको कहकर स्थापित कराये उस समय आसोज वदी १३ हस्तोत्तरा नक्षत्रमें त्रिशला माताने १४ महा स्वप्न देखे सिद्धार्थ राजाको कहे राजाने महान् गुणवान उत्तम लक्षण युक्त पुत्र होनेका कहा और मारु देवामाताके गर्भमें आदिनाथ आकर उत्पन्न हुए थे तब मारु देवामाताने १४

स्वप्न देखे उसका फल खास इन्द्रने आकर तीर्थंकर पुत्र होनेको कहा था वैसे ही त्रिशला माताको भी तीर्थंकर पुत्र होनेको इन्द्रने आकर कहा है और १४ स्वप्नका फल इन्द्रकी आज्ञानुसार देवताओंने सिद्धार्थ राजाके राज्य भुवन भण्डारादिमें निधानादिकों को स्थापन किये हैं। यह सब बातें श्री हेमचन्द्राचार्यजीने खुलासा लिख दिया है। सो ऊपरके पाठमें प्रत्यक्ष दिख रहा है और श्री हरिभद्रसूरिजी कृत आवश्यक बृहद् वृत्ति २२ हजारी टीकामें भी भगवान्‌को देवानन्दाके गर्भमें ८२ दिन व्यतीत हुए बाद इन्द्रने जाना विचारा और उत्तम कुलमें स्थापन करवाये खुलासा लिखा है और कल्पसूत्रके मूल पाठमें तथा कल्प सूत्रकी सब व्याख्याओंमें भी इन्द्रने भगवान्‌को देवानन्दाके गर्भमें देख सिंहासनसे उठ नमोत्थुणं रूप नमस्कार किया और पूर्व दिशाके सिंहासन पर बैठकर भगवान्‌के पूर्व भवोंका स्वरूप विचारकर देवानन्दाके गर्भमें भगवान्‌के उत्पन्न होनेको आश्चर्य रूप समझ कर उत्तम कुलमें हरिणेगमेषी द्वारा उत्तम कुलमें पधरायें और सिद्धार्थ राजाके घरमें देवताओंको आज्ञा करके स्वर्ण रत्नादि निधानोंको स्थापन करवाये खुलासा लिखा है परन्तु नमोत्थुणं करनेके बाद कल्पांतरमें उत्तम-कुलमें भगवानको पधराये ऐसा नहीं लिखा है और जब भगवान् देवानन्दाके गर्भमें आये उसी समय इन्द्रका आसन चलायमान होनेसे इन्द्रने अवधिसे देखके नमोत्थुणं किया ऐसा भी नहीं लिखा है। और उपरोक्त पाठोंमें ८२ दिन व्यतीत हुए बाद आसन चलायमान हुआ अवधिसे भगवान्‌को देख नमस्कार याने नमुत्थुणं किया खुलासा लिखा है इसलिये कल्पसूत्रका नमोत्थुणं संबंधी पाठ भी ८२ दिन बाद समझना चाहिये क्योंकि देवानन्दा अपने पतीके पाससे १४ स्वप्न देखनेसे उत्तम

पुत्रकी प्राप्ति होनेका फल सुनकर मनुष्य संबंधी ऋषभ दत्त ब्राह्मणके साथ उत्तम प्रकारके भोग भोगवती हुई विचरने लगी ऐसा कथन कल्प सूत्रमें करनेके बाद पीछे इन्द्रने नमोत्थुणं करके सिंहासन पर बैठकर नीच गौत्रका विचार करके उत्तम कुलमें पधराये यह बात नमोत्थुणं की और उत्तम कुलमें पधरानेकी एक ही साथ एक समयमें लिखी है और ऊपरके पाठोंमें ८२ दिन गये का खुलासा लिखा है इसलिये कल्प सूत्रका नमोत्थुणं संबंधी पाठ ८२ दिन गये बाद गर्भहरण समयका प्रत्यक्षपने सिद्ध होता है इसको विशेष विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं देवेन्द्र अनन्त शक्ति वाला होता है नमोत्थुणं करके सिंहासन पर बैठकर नीच गौत्रका विचारके उत्तम कुलमें पधरानेकी आज्ञा करनेमें कुछ भी देरी नहीं लग सकती इससे ८२ दिन इन्द्र को विचार करते चले गये ऐसा नहीं समझना किन्तु ८२ दिन गये बाद गर्भहरणके दिन नमोत्थुणं किया ऐसा समझना चाहिये,— और त्रिशला माताने १४ स्वप्न मेने देवानन्दाके लेलिये हरण कर लिये ऐसा स्वप्न नहीं देखा किन्तु १४ स्वप्न आकाशसे उतरते अपने मुखमें प्रवेश करते देखे हैं इसलिये त्रिशलाके गर्भमें भगवान्‌के आनेसे च्यवन कल्याणक माननेमें किसी तरहकी बाधा नहीं हो सकती और २४ वें तीर्थंकर उत्पन्न होनेका उस दिनसे प्रगट हुआ पुत्रोत्पत्तिका महोत्सव हुआ इत्यादि कारणोंसे तथा इस ग्रंथमें लिखे हुए शास्त्र पाठोंसे और युक्ति प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे ८२ दिन गये बाद इन्द्रकाआसन चलायमान होनेसे अवधि ज्ञानसे भगवानको देखके सिंहासनसे उठकर नमस्कार याने नमोत्थुणं किया और आकर त्रिशला माताको १४ स्वप्नोंका फल तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा देवताओं द्वारा स्वर्ण रत्नादि निधान धन धान्यादिकी वृद्धि करी इस लिये

आश्विन वदी १३ को (गुजराती भाद्रव वदी १३ को) वीर प्रभु त्रिशलाकी कुक्षिमें पधारे उसमें तीर्थंकरके च्यवन कल्याणक संबन्धी सब कर्त्तव्य प्रगटपने सिद्ध है इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी आत्मार्थी सज्जन पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं।

और इस अवसर्पिणीमें कालानुभावसे भगवान् देवानन्दा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें आये उसको कल्पसूत्रके मूल पाठमें आश्चर्य कहा है और दश आश्चर्योंका वर्णनमें भी "गर्भहरण" याने देवानन्दाके गर्भमेंसे भगवान्का हरण हुआ उसको आश्चर्य कहा है इसलिये कारणसे तो ब्राह्मण कुलमें भगवान् आये सो आश्चर्य माना तथा कार्यसे ब्राह्मण कुलमेंसे अपहरण हुआ उसको आश्चर्य माना है और आश्चर्यका प्रतिकार करनेके लिये ही इन्द्र महाराजने उत्तम कुलमें भगवान्को पधराया हैं इस लिये भगवान्के उत्तम कुलमें आनेको भी समवायांगजी सूत्र और लोक प्रकाशमें अलग भव गिना है इस लिये भगवान् त्रिशलाके गर्भमें आये सो च्यवन कल्याणक सिद्ध हो चुका तो फिर उसमें उसके कर्त्तव्य माने जावे इसमें तो किसी तरह की शङ्का भी नहीं हो सकती।

और जब भगवान् ब्राह्मण कुलमें आये उसको आश्चर्य मानते हो तथा उस आश्चर्यमें च्यवन कल्याणक सब कर्त्तव्य मानते हो तो फिर आश्चर्यका प्रतिकारमें दूसरे च्यवन कल्याणकत्वपनेके शास्त्रोंके और युक्तियोंके प्रमाण मौजूद होने पर भी उसको दूसरा च्यवन कल्याणकपना और उसके सब कर्त्तव्य नहीं मानना यह तो गच्छ कदाग्रहकी अज्ञानता या अभिनिवेशिकके सिवाय और क्या होगा सो तत्वज्ञ जन स्वयं विचार सकते हैं।

और तीर्थंकरका जन्म जिस माताके उदरसे होवे उस माता के गर्भमें तीर्थंकरके आनेको च्यवन कल्याणक कहते हैं यह

अनादि नियम है इसके अनुसार भी अब भगवान्‌को त्रिशला माताके पुत्र कहते हो तो त्रिशला माताके गर्भमें आनेको च्यवन कल्याणक कहना और उसके कर्तव्य उस समयमें मानने सो तो न्यायानुसार प्रत्यक्षपने सङ्गतिको प्राप्त होता है इसपर भी नहीं माननेवालोंको स्थानांग आचारांग समवायांगादि उपरोक्त शास्त्र पाठोंके उत्थापनका दूषण लगता है इसको भी पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे।

और जब समवायांगादिमें भगवानके देवलोकसे देवानन्दाके गर्भमें आनेको पहिला च्यवन तथा देवानन्दाके गर्भसे निकलने रूप प्रथम जन्म मान कर त्रिशलाके गर्भमें आने रूप दूसरा च्यवन और त्रिशलाके गर्भसे निकलने रूप दूसरा जन्म खुलासा शास्त्रोंमें लिखा है उससे दो भव दो माता दो च्यवन स्वयं सिद्ध है और शास्त्रकार महाराज जिस बातका वर्णन पहिले १ जगह कर देवें उसी बातका वर्णन आगे दूसरी वार पुनरुक्तिके कारणसे नहीं करते हैं और जिस बातका वर्णन आगे करनेका होवे उस बातका वर्णन पहिले भी पुनरुक्तिके कारणसे नहीं करते हैं और वीर प्रभुके तो दो च्यवन होनेसे दोनों माताओंने अलग अलग १४ महा स्वप्न दो वार देखा है इस लिये दो वार १४ महा स्वप्नोंका वर्णन करना चाहिये और दो वार वर्णन करें सो पुनरुक्ति आवे तथा विस्तार भी ज्यादा विशेष हो जावे इस लिये पहिले च्यवनमें देवानन्दा सम्बन्धी १४ स्वप्नोंका नाम मात्र ही बतलाया और दूसरे च्यवनमें त्रिशला माता सम्बन्धी १४ स्वप्नोंका अच्छी तरहसे सूत्रकारने और उसकी व्याख्याकारोंने विस्तारसे वर्णन किया है और संग्रहणीमें तीर्थंकरके च्यवन जन्मादि कल्याणकोंमें देवताओंका आगमन लिखा है सो भी वीर प्रभुके पहिले च्यवनमें

देवताओंके आगमन सम्बन्धी लेख शास्त्रोंमें देखनेमें नहीं आता और दूसरा च्यवनमें तो खास इन्द्रने आकर १४ महा स्वप्नोंका फल तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा और देवताओंको आज्ञा करके सिद्धार्थ राजाके वहाँ धन धान्यादिकी वृद्धि करवाया है इसी प्रकार पहिले च्यवनसे भी विशेष कार्य दूसरे च्यवनमें होनेका शास्त्र प्रमाणों द्वारा प्रत्यक्षपने देखनेमें आता है इस लिये पहिले च्यवनसे भी दूसरा च्यवन विशेष अधिक माननीय ठहरता है तो फिर उसको माननेका निषेध करना या उसमें च्यवनके कर्तव्य होनेकी शङ्का करना सो सर्वथा अनुचित है क्योंकि दूसरे च्यवनमें भी च्यवन सम्बन्धी सब कर्त्तव्य हुए हैं सो तो ऊपरके लेखसे विवेकी पाठक जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और पार्श्वनाथजी नेमिनाथजी और आदीश्वर भगवान्‌के च्यवन सम्बन्धी कार्योंको त्रिशला माताकी तरह जान लेनेकी कल्प सूत्रकी तप गच्छादि सब गच्छोंके व्याख्या कारोंने भलामण सूचना करी है परन्तु देवानन्दाकी नहीं करी इसलिये यदि त्रिशलाके गर्भमें भगवान्‌के आनेको च्यवनके कर्त्तव्य न मानोगे तो पार्श्वनाथ नेमिनाथ आदीश्वरके च्यवन कर्त्तव्यमें नमोत्थुणं वगैरह नहीं माननेकी आपत्ति आवेगी इस लिये त्रिशलाके गर्भमें आने सम्बन्धी च्यवनके नमोत्थुणं वगैरह कर्त्तव्य मानने ही न्यायानुसार उचित है और त्रिशलाको भगवान्‌की जन्म माता कहने पर भी त्रिशलाके गर्भमें आनेका च्यवनको नहीं मानने वालोंको त्रिशलासे जन्म भी नहीं मानना चाहिये क्योंकि च्यवनके बिना जन्म नहीं हो सकता यह जगत प्रसिद्ध सर्व मान्य प्रत्यक्ष बात है और देवानन्दाके च्यवन मान कर त्रिशलाके नहीं माने तो नहीं बन सकता क्यों कि इन्द्रकी आज्ञासे हरिणैगमेषी देवताने देवानन्दाकी कुक्षिसे लेकर त्रिश-

लाकी कुक्षिमें पधराये हैं यह बात कल्प सूत्रमें तथा उनकी ९ व्याख्याओंमें और आवश्यक निर्युक्ति भाष्य चूर्णि लघु वृत्ति बृहद्वृत्ति विशेषावश्यक वृत्ति त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र प्राकृत वीर चरित्र वगैरह अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक लिखा है सो सब पाठ यहां पर लिखनेसे बहुत विस्तार हो जावे इस लिये सिर्फ कल्प सूत्रका मूल पाठ दिखाता हूं तथा हि—

जेणेव जम्बूदीवे दीवे, जेणेव भारहेवासे, जेणेव माहणकुंड-ग्गामे नयरे जेणेव उसभदत्तस्स गिहे, जेणेव देवाणंदा माहणी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ, देवाणंदाएं माहणीए सपरि जणाए ओसोवणिं दलइ, ओसोवणिं दलित्ता असुभे पुग्गले अवहरइ सुभे पुग्गले परिकवइ (२) त्ता, "अणुजाणउमे भयव" तिकट्टु समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं दिव्वेणं पहावेणं करयल संपुडेणं गिण्हइ, समणं भयवं महावीरं (२) त्ता जेणेव खत्तिअकुं-डग्गामे नयरे जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्स गिहे जेणेव तिशला खत्तियाणी, तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिशलाए खत्तियाणीए सपरि जणाए ओसोअणिं दलइ, ओसोअणिं दलित्ता, असुभे पुग्गले अवहरइ, असुभे, त्ता सुभे पुग्गले पक्खि वेइ, सुभे० त्ता समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तंपिअणं देवाणंदाए माहणीए जालन्धरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ, साहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए, उक्किठाए तुरिआए चवलाए चण्डाए जवणाए उद्धुआए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए तिरअमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जोअणसाह-स्सिएहिं विग्गहेहिं उप्पयमाणे (२), जेणामेव सोहम्मे कप्पे सोहम्म वडिंसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि सक्के देविंदे

तेणामेव उवागच्छइ, (२) सा सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो एअ माणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आवि हुत्था साहरिज्जिस्सामिति जाणइ, संहरिज्जमाणे न जाणइ, साहरिएमिति जाणइ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जेसे वासाणं तच्चे मासे पञ्चमेपक्खे आसोअबहुले, तस्सणं आसोअबहुलस्स तेरसीपक्खेणं बासीइ राइंदिएहिं विइक्कंतेहिं तेसी इमस्स राइंदिमस्स अंतरा वट्टमाणेहिं, आणुकंपएणं देवेणं हरिणेगमेसिणा सक्कवयण संदिट्ठेणं माहण कुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तिआणं सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तिआणीए वासिट्ठसगुत्ताए पुव्वरत्ता वरत्त काल समयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए ॥

देखिये ऊपरके पाठमें देवताने ८२ दिन व्यतीत भये बाद ८३ वा दिनको रात्रिमें देवानन्दाके गर्भसे भगवान्‌को लेकर त्रिशला माताकी गर्भमें आश्विन कृष्ण १३ को हस्तोत्तरा नक्षत्रमें पधराये सो भगवान् भी तीन ज्ञानसे मेरेको देवानन्दाके गर्भसे देवता हरण करेगा ऐसा जानते थे परन्तु देवताकी दीव्य शक्तिकी शीघ्रतासे हरण करती समय नहीं जाना बाद मालूम पड़ा कि मेरा हरण हो गया परन्तु श्रीआचाराङ्गजीमें तो वीर चरित्राधिकारे देवताकी देव शक्तिकी शीघ्रता होने पर भी उसमें असंख्याते समय चले जाते हैं इस लिये हरण करनेके समय भी भगवान् जानते थे ऐसा खुलासा लिखा है

और ८२ दिन पर्यन्त भगवान्के नीच गोत्र कर्मका उदय था सो क्षय करना पड़ा तथा ८२ दिन गये बाद उच्च गोत्रका उदय हुआ इस लिये देवानन्दाके गर्भमें से निकलना हुआ और त्रिशला के गर्भ आना हुआ बीचमें अन्तर मुहूर्त असंख्याते समय व्यतीत हुए इस लिये श्रीसमवायांग सूत्र वृत्तिमें अलग भव गिना है जिसका पाठ इसी ग्रन्थके पृष्ठ ५२० में छप चुका है और इसी कारणसे त्रिशलाके गर्भमें आनेको च्यवन मान कर कल्याणकत्ववनमें आचारांग स्थानांगादि आगमोंमें तथा उनकी व्याख्या वगैरह अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक लिखा है इस लिये देवानन्दाके च्यवन और त्रिशलाके जन्म माननेसे उपरोक्त आगमादि शास्त्र पाठोंके उत्थापनको दूषणकी प्राप्ति होवे तथा च्यवनके विना जन्म नहीं हो सकता और च्यवन नहीं माननेसे जन्म माननेमें भी बाधा पड़ती है इस लिये त्रिशलाके गर्भमें आनेको च्यवन अलग मानना ही आत्मार्थियोंको परम उचित है उससे उपरोक्त आगमोक्त बातको प्रमाण करनेसे सम्यक्तकी मलिनता दूर होवे और दोनों जगह च्यवन जन्म मानना आगमानुसार युक्ति पूर्वक है जब दोनों च्यवन ठहरे तो उसके कर्त्तव्य तो स्वयं सिद्ध है इस बातका विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और भगवान् देवानन्दाके गर्भमें आये तथा गर्भमेंसे हरण हुआ यह बात आश्चर्य रूप होनेसे प्राण और पर्याप्ति शरीर बदले विना भी अलग भव गिननेमें किसी तरहकी बाधा नहीं हो सकती (नहीं बनने योग्य बात आश्चर्यमें बनती है) इस लिये समवायांगमें अलग भव गिना है और कोई साधु आदि इसी क्षेत्रमें चातुर्मास रहे तो वे वहां रोग मारी स्वचक्र पर चक्र भय तथा अप्रीति वगैरह कारणोंसे चौमासामें भी दूसरे

स्थान जाना पड़े तो पहिले चौमासाके थोड़े दिन ठहरे वो स्थान और कारण फिर दूसरी जगह गये सो स्थान साधुजीके निवास स्थान दो कहे जावेंगे परन्तु चौमासाका काल मान तो दोनों जगह का मिलाकर चारमास कहे जाते हैं (जैसे वीर प्रभुके दीक्षा अवस्थाका पहिला चौमासा १५ दिन तापसके आश्रममें और ३॥ महीने शूल पाणी यक्षके मन्दिरमें हुए सो क्षेत्र स्थान दो परन्तु काल मान दोनों स्थानोंका मिलाकर ४ महीनेका गिनते हैं सो यह बात जैनमें प्रसिद्ध है इसी तरहसे वीरप्रभुके नवमहीनों की गर्भस्थितिरूप कालमान तो दोनों माताका मिलाकर है परन्तु कारण वससे आश्चर्यका प्रतिकार करने के लिये त्रिशलाके गर्भमें जाना पड़ा इसलिये च्यवन रूप स्थान दो माने जाते हैं इसीलिये स्थान कल्याणक प्रसंगानुसार एकार्थ वाले पर्यायबाची माने जाते हैं यह बात पहिले भी लिख चुके हैं सो शास्त्रानुसार युक्ति युक्त होनेसे सब आत्मार्थियों को मान्य करना चाहिये इस बातको भी विशेष रूपसे विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं। और त्रिशला माता संबंधी देवानन्दा भिन्न च्यवन जन्म प्रगट पने दिखानेके लिये ही तो शास्त्रकारोंने ८२ दिन गये बाद त्रिशलाके गर्भमें जानेके दिन आश्विन बदी १३ को और जन्मके दिन चैत्रसुदी १३ को इन्द्रका आशन चलायमान होनेसे इन्द्रने अवधि ज्ञानसे भगवान्‌को देखकर सिंहासनसे उठकर नमस्कार नमोत्थुणं किया और चैत्र सुदि १३ को त्रिशलाको तीर्थंकर पुत्र होनेका कहनेको आयो ऐसा खुलासा लिखा है परन्तु देवानन्दा संबन्धी आषाढ़ सुदी ६ को बदी १३ जैसी बातें होनेका किसी जगह नहीं लिखा है जिसपर भी सुदी ६ को मानना और वदी १३ में च्यवनके सब कर्त्तव्य होने पर भी नहीं माननेके लिये कुयुक्तियोंके कुविकल्पों

का सहारा लेना यह गच्छ कदाग्रह का हठवादके सिवाय और क्या होगा इसको पाठक गण स्वयं विचार सकते हैं।

और भगवान्‌के च्यवन कल्याणकमें इन्द्रका आसन चलाय-मान होनेसे अवधिसे भगवान्‌को देखकर नमस्कार करें और आकर माताको १४ महास्वप्नोंका तीर्थंकर पुत्र होने रूप फल कहके अपने स्थानपर पीछा देव लोकमें चला जावे ऐसा तो आवश्यक वृत्तिमें आदीश्वर भगवान्‌के चरित्रसे तथा त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र वगैरह शास्त्रोंसे सिद्ध होता है सो भी किसी तीर्थंकरके च्यवनमें आवे किसीके नहीं भी आवे।

इस बातका नीयत नियम नहीं है और कल्पसूत्रमें तथा उसकी सब व्याख्याओंमें तो भगवान्‌को नमस्कार याने नमो-त्थु णं, करके पूर्व दिशाका अपना सिंहासन पर बैठ गया ऐसा खुलासा लिखा है और भी जीवाभिगम सूत्रमें नन्दीश्वर द्वीपा-धिकारे नीचे मुजब पाठ है यथा—

"तत्थणं बहवे भवणवइ वाणमंतरा जोयसिय वेमाणिया देवा चउमासिय पडिवएसु संवछरिएसुय असणेसुय बहुसु जिण जम्म निरकमण णाणुवाय परिणिव्वाण माइसु देवकज्जे सुय देव समुदाये सुय देव समवाए सुय देव पवयणे सुय एगंत तोस हिया समुवगया समाणाय मुदित पक्कालिया अट्ठाहियाओ महिमाओ कारे माणा पाले माणे सुहं सुहेणं विहरन्ति"

इस पाठके अनुसार भी तीर्थंकर महाराजोंके जन्म दीक्षा ज्ञानोत्पत्ति निर्वाण इन कल्याणकोंमें नन्दीश्वर द्वीपमें शाश्वत चैत्योंमें भगवान्‌की प्रतिमाके आगे देव देवी इन्द्रादि मिलकर अठाई उछव करते हैं ऐसा खुलासा लिखा है परन्तु च्यवन कल्या-णकमें ६४ इन्द्रादि मिलकर नन्दीश्वर द्वीपमें अठाई उच्छव करते ऐसा नियत नियमका कोई भी शास्त्र प्रमाण मेरे देखनेमें नहीं

आया इसलिये च्यवनमें ६४ इन्द्रादि मिलकर नन्दीश्वर उच्छवके लिये जावे अथवा नहीं भी जावे जैसा अवसर परन्तु जन्मादिमें तो नियमसे जाकर उच्छव करते हैं उसको तो आवश्यकवृत्ति कल्पसूत्रकी व्याख्या त्रिशष्ठिशलाका पुरुष चरित्र और उपरोक्त जीवाभिगमादि शास्त्रोंमें देखा जाता है परन्तु च्यवनमें तो विमानमें बैठे हुए ही नमोत्थुणं कर लेते है इसलिये भगवान् के त्रिशलाके गर्भमें आनेके दिन भी विमानमें बैठे हुए ही नमोत्थुणं किया समझ लेना परन्तु आश्विन बदी १३ को ६४ इन्द्रादि मिलकर नन्दीश्वर उच्छव करने को जाने सम्बन्धी पाठ न देखनेसे उसको कल्याणकपने रहित नहीं कह सकते क्योंकि आषाढ़ सुदी ६ को भी नन्दीश्वर उच्छव करनेको इन्द्रादिकके जानेका पाठ देखनेमें नहीं आता इसलिये जैसे सुदी ६ मानोंगे वैसे बदी १३ भी माननि पड़ेगी—और किसी शास्त्रानुसार तीर्थंकरके च्यवनमें भी ६४ इन्द्रादिकके नन्दीश्वर महोत्सवके लिये जानेका नीयत नियम ठहरता होवे तो भी यह बात बदी १३ को भी मान लेनी चाहिये क्योंकि आशन प्रकंप नमोत्थुणं १४ महास्वप्न दर्शन इन्द्रका आगमन वगैरह च्यवन के सब कर्त्तव्य बदी १३ को बने हैं इसलिये नन्दीश्वरका महोत्सव भी उपरोक्त लिखे अनुसार समझ लेना चाहिये।

और जिस समय तीर्थंकर माताके गर्भमें आवे उसी समय तीन जगतमें उद्योत और सब संसारी जीवोंको सुखकी प्राप्ति होनेका तो अनादि नियम है इसलिये किसी जगह नहीं लिखा होवे तो भी उस बातको मान् लेना चाहिये क्योंकि अनादि नियमकी प्रसिद्ध बातको शास्त्रकार लिखे या न लिखे तो भी उसी मुजब माननेका जैनमें प्रसिद्ध है जैसे नवकारमें णमोअरिहंताणं इत्यादि

चाठवें कर्म रूपी भाव शत्रु का नाम नहीं लिखा और स्थानांग सूत्रके पांचवे स्थानमें बहुत तीर्थंकर महाराजों के च्यवन जन्म दीक्षा और केवल ज्ञान निर्वाणके नक्षत्र गिनाये हैं परन्तु उसमें कल्याणक शब्द नहीं लिखा तो भी अनादि नियमकी प्रसिद्ध बात होनेसे उन नक्षत्रोंमें कल्याणक कहते हैं मानते हैं इसी तरह वीरप्रभुके आश्विन वदी १३ को च्यवनमें भी तीन जगतमें उद्योत और सब संसारी जीवोंको सुखकी प्राप्ति अनादि नियमके कारणसे उपरोक्त न्यायानुसार होना और मान लेना स्वयं सिद्ध है, इसलिये आत्मार्थियोंको प्रमाण करना चाहिये इस बातका विशेष निर्णय ऊपरमें लिखा गया है उससे आत्मार्थीजन स्वयं समझ लेवेंगे,—

अब सत्य ग्रहण करनेकी अभिलाषा वाले आत्मार्थी सज्जन पाठकगणसे मेरा यही कहना है कि—श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्य तथा प्राचीन सब कुलगण शाखाके पूर्वाचार्योंने और बड़गच्छ कवलागच्छ तपगच्छादि गच्छोंके पूर्वाचार्योंने मूलसूत्र नियुक्ति भाष्य चूर्णि वृत्ति चरित्र प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक खुलासा पूर्वक कथन किये हैं और युक्तियोंके अनुसार भी प्रत्यक्ष सिद्ध है सो इस ग्रंथमें शास्त्र प्रमाण युक्ति पूर्वक ऊपरमें अच्छी तरहसे लिखा गया है इसलिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी ने छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा नहीं करी किन्तु इन महाराजके पहिले तीर्थंकरादि महाराजोंने खुलासा किया है सो भी ऊपरमें लिख दिखाया है उससे श्रीजिनवल्लभसूरिजीको नवीन प्ररूपणाका दूषण लगाने वाले प्रत्यक्ष मिथ्यावादी ठहरते हैं और खरतर गच्छवाले छ कल्याणक मानते हैं परन्तु अन्यगच्छ वाले नहीं मानते ऐसा भी नहीं क्योंकि जिनाज्ञाके आराधक

पंचांगी प्रमाण करने वाले वीरप्रभुकी भावपरम्परामें चलने वाले प्राचीन गच्छोंके पूर्वाचार्य छ कल्याणक मानने वाले थे और वर्तमानमें भी आत्मार्थी मानते हैं और मूल आगमादिमें इसका कथन होनेसे तपगच्छके भी पूर्वाचार्य छ कल्याणक मानते थे और अपने बनाये कल्पांतरवाच्य, कल्पावचूरि और कल्पसूत्र केछ टबार्थोंमें कुलमण्डन सूरिजी वगैरह लिख गये है जिसका खुलासा भी पहिले इस ग्रन्थमें छप गया है और वर्तमानमें भी कितने ही तपगच्छके आत्मार्थी मुनिगण छ कल्याणक मानने वाले हैं इस लिये सिर्फ खरतर गच्छ वाले मानते हैं अन्य नहीं यह भी प्रत्यक्ष मिथ्या है तपगच्छके पूर्वाचार्य तो छ कल्याणक मानने वाले थे परन्तु यह तो वर्तमानमें तपगच्छके खरतर गच्छ के आपसमे जो प्रति वर्ष ग्राम नगर शहरादि में पर्युषण जैसे महा उत्तम पर्वमें आत्म कल्याण संप शांति सबसे क्षमत क्षामणा करने के बदले छ कल्याणकोंका निषेध करने सम्बन्धी खण्डन मण्डन से वाद विवादहोकर कुसंपसे निन्दा इर्षादि-बन कर शासनोन्नति के और निज परके आत्मकल्याणमें जो विघ्न हो रहा है और छ कल्याणकोंके निषेध रूप उत्सूत्र प्ररूपणासे निज परके संसार वृद्धिका कारण तथा भद्र जीवोंकी श्रद्धा व धर्म कार्योंमें हाणी का महान् अनर्थ हो रहा है जिसके मूल कारण भूत अधिष्ठायक आगिवान् धर्मसागरजी हुए हैं क्योंकि धर्मसागरजीके पहिले तपगच्छमें आचार्य उपाध्याय साधुजन हजारों हो गये परन्तु किसीने भी शास्त्रोक्त छ कल्याणकोंका निषेध धर्मसागरजीकी तरह किसी ग्रन्थमें नहीं किया इसीलिये इस विषयमें दोनों गच्छोंके आपसमें पहिले बहुत संप रहता था पर्युषण जैसे महा पर्वमें आपसमें किसी तरहका खण्डन मण्डनका झगड़ा नहीं था परन्तु धर्मसागरजीने अपने मिथ्यात्वके उदयसे तीर्थंकर गण

धरादिकोंके और अपने गच्छके पूर्वज पुरुषोंके कथन किये हुए छ कल्याणक सम्बन्धी सूत्रोंके और वृत्तियोंके पाठोंका उत्थापन की उत्सूत्र प्ररूपणासे तीर्थंकरादि महाराजोंकी आशातनासे अपने संसार बढ़नेके भयको छोड़ कर खरतरगच्छके पूर्वाचार्योंसे द्वेष बुद्धि रखके महान् उपकारी पुरुषोंकी निन्दा करने लगे और छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये गणधर सार्द्धशतक वृत्ति जम्बूद्वीपपन्नति पञ्चाशकसूत्र वृत्ति पर्युषणाकल्पचूर्णि वगैरह शास्त्र पाठोंका अभिप्राय और उन शास्त्र पाठोंके कर्ताओंके भावार्थके ज्ञानावर्णीय कर्मके उदयसे समझे बिना वस्तु, स्थान, आश्चर्य नीचगौत्रका उदय वगैरह झूठे बहाने निकालकर अपनी कल्पना मुजब शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें अनेक तरहकी कुयुक्तियें लिखकर भद्र जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये 'कल्प किरणावली' वगैरहमें लिखा तबसे इस झगड़े का मूल खड़ा हुआ और उसी मुजब अन्ध परम्परामें वर्तमानिक कितने ही कदाग्रही चल रहे है जिसमें भी विशेष खेदकी बात यह है कि विनय विजयजी और आत्मारामजी जैसे सुप्रसिद्ध विद्वान् कहलाते हुए भी गच्छ कदाग्रहके पक्षपातसे धर्मसागरजीकी कुयुक्तियोंके मायाजालमें फंस गये और आगमोक्त सत्य बातको झूठ ठहरानेके लिये उसी तरहकी कुयुक्तियें लिखके भोले जीवों को मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये विनय विजयजीने कल्प सूत्र की व्याख्याका सुबोधिका नाम रखके और कुयुक्तियोंसे उत्सूत्रता से भोले जीवोंको दुर्लभ बोधिकी प्राप्तिका कारण किया है और आत्मारामजीने 'जैन सिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकका नाम रखके उत्सूत्रोंके संग्रह माया जाल फैलाई है इसीलिये उन्हींका सब कुयुक्तियोंके विकल्पोंकी समीक्षा समाधान करके शास्त्र पाठोंसे और युक्तियोंके अनुसार सुदृढ़ प्रमाणों सहित

इस ग्रन्थमें श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणकोंका निर्णय अच्छी तरहसे करनेमें आया है जिसको बांचकर गच्छ पक्षपातका दृष्टिराग न रखकर जिनाज्ञा आराधन करनेके लिये सत्य बातको ग्रहण करना और शास्त्रोक्त सत्य बातका उपदेश करके भव्य जीवोंको शुद्ध सम्यक्तकी प्राप्तिके लाभका कारण आत्मार्थी परोपकारी सज्जनोंको करना चाहिये और भवभीरुओंको जिनाज्ञापूर्वक सत्य ग्रहण करके निजपरके आत्मकल्याण के कार्यकी प्रवृत्ति वर्ताव करना परम उचित है इस संसार परिभ्रमणमें मनुष्य भव जैन धर्मके आराधनका योग मिलना अब कठिन है जिस पर भी गच्छके पक्षपातादि तुच्छ कारणोंसे जिनाज्ञाकी विराधना करके खोटे उपदेशसे निजपरके संसारका कारण करना सर्वथा अनुचित है इसलिये गड्डरीह प्रवाहकी तरह अन्धपरम्पराकी कल्पित रूढीको छोड़कर सत्य ग्रहण करनेमें आत्मार्थियोंको बिलम्ब नहीं करना चाहिये और सत्य बात जानने पर भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे यह लोककी पूजा मानताके अभिमानसे बालजीवों के दृष्टिरागमें पड़कर भोले जीवोंको अपने पक्षमें खींचनेके लिये जिनाज्ञा विरुद्ध होकर कुयुक्तियोंसे उत्सूत्र भाषण भी नहीं करना चाहिये मरिची जमालिके दृष्टान्तोंको याद करके संसार भ्रमणमें गर्भावास नरकादि दुखोंसे भयरखके अपने गुरुजनोंका भी पक्षपात छोड़कर इन्द्र भूतिकी तरह और जमालिके शिष्यों की तरह सत्य अङ्गिकार करना चाहिये विवेकी आत्मार्थी सज्जनोंको विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है

और विनय विजयजीने "लोक प्रकाश" नामा ग्रन्थके २६ वें सर्गमें २४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन जन्मादि पांच पांच कल्याणकोंके मास पक्ष दिन नक्षत्र दिखाये हैं उसमें २४ वीर प्रभुके संबन्धमें जो लिखा है सो यहां पर दिखाताहूं छपा

हुआ लोक प्रकाशके पृष्ठ १४७३ से १४७५ तक सर्ग २९ वें का पाठ नीचे मूजब है यथा—

"भवे ततः सप्तविंशे ग्रामे ब्राह्मण कुण्डके ॥ विप्रस्यर्षभदत्तस्य देवानंदा ह्वयस्त्रियां ॥ ५९ ॥ मरीचिभव बध्धेन, समीचै गोत्रकर्मणा ॥ कुक्षौ प्रभुक्त शेषेण विश्वेशोऽप्युत्पद्यत ॥ ६० ॥ अर्हंतश्चक्रिणश्चैव सीरिणः शांर्गिणोऽपिच ॥ तुच्छान्वयेषूत्पद्यंते कदाचित्कर्मदोषतः ॥ ६१ ॥ जायंते तु कदाप्येते ताद्दृयंशेषुनोत्तमा ॥ इतिदत्तोपयोगस्या सुरेन्द्रस्यानुशासनात् ॥ ६२ ॥ पुरेक्षत्रियकुंडाख्ये सिध्धार्थस्य महीपतेः । त्रिशलाया महाराज्ञा कुक्षावक्षीण संपदः ॥ ६३ ॥ मुक्तोद्य शीत्यहोरात्रा तिक्रमे नैगमेषिणा । अजायतसुतत्वेन चतुर्विंशो जिनेश्वरः ॥ ६४ ॥ एवंच "उसहस्रसि संति सुविधय नेमीसर पास वीर सेसाणं ॥ तेर सग बार नव नव दस सगवीसाय तिन्निभवा ॥ ६५ ॥ इति समर्थितं ॥ श्रीसमवायांगे कोटिसमवाये 'तित्थकरभवग्गहणा तो छठे पोट्टिलभवग्गहणे इतिसूत्रे श्री वीरस्य देवानंदा गर्भस्थिति स्त्रिशला कुक्ष्यागतिश्चेति भवद्वयं विवक्षितमस्तीतिज्ञेयं ॥ आषाढ़े धवलाषष्टी चैत्रशुक्ला त्रयोदशी । मार्गस्य दशमी कृष्णा वैशाखे दशमीसिता ॥ ६६ ॥ कार्त्तिकस्यामावसीति कल्याणक दिनाः प्रभो अभूत् गर्भापहारेतु त्रयोदश्याश्विनेसिति ॥ ६७ ॥ फाल्गुन्य उत्तराधिष्ण्यं कल्याणक चतुष्टयो तथा गर्भापहारेपि निर्वाणे स्वातिरिष्यते ॥ ६८ ॥"

देखिये ऊपरके लेखमें भगवान्‌के आश्विन वदी १३ को त्रिशला माताके गर्भमें जानेको श्रीसमवायांग सूत्रके पाठानुसार २१ अलगभव गिन लिया है तथा ६४ वें श्लोकके कथनसे त्रिशलाके गर्भमें गये उसी दिनसे तीर्थंकर पने प्रगट होनेका खुलासा लिखा है इस लिये देवानंदाका आषाढ़ शुदी ६ का

और त्रिशलाका आश्विन वदी १३ का यह दो च्यवन विनय विजयजीके उपरोक्त कथनसे सिद्ध होता है इस लिये विनय विजयजीके लेखसे ही दो च्यवनोंकी गिनतीसे भी वीरप्रभुके छ कल्याणक सिद्ध हो चुके जिस पर भी १ च्यवन मानने वाले को ६४ श्लोकका और उपरोक्त श्रीसमवायांग सूत्रका पाठ उत्थापनका दोषी ठहरना पड़ेगा यह बात प्रगट ही दिखती है और महापुरुष चरित्र त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्रै आवश्यक आचारांग स्थानांग कल्पसूत्रादि अनेक वृत्ति वगैरहमें आश्विन वदी १३ को च्यवन रूपसें माना है जिसका खुलासा पहिले लिखा गया है इस लिये दो च्यवनका निषेध कोई भव भीरु नहीं कर सक्ता और "कल्याणक चतुष्टय तथा गर्भापहारोपि" इस वाक्यमें चार कल्याणक च्यवन जन्मादि कहके तथा और अपि शब्दसे गर्भापहार रूप त्रिशलाके गर्भमें जानेको पांचवा भी हस्तोतरा नक्षत्रमें साथ ले लिया और मोक्ष स्वाति नक्षत्रमें लिखा है ऐसा नहीं माननेसे तथा और अपि शब्द व्यर्थ हो जाते हैं और उपरोक्त शास्त्र पाठोंके उत्थापनका भी दूषणकी प्राप्ति होवे और त्रिशलाके गर्भमें जानेको कल्याणक नहीं मानना एसे प्रमाण किसी शास्त्रमें नहीं देखे जाते हैं इस लिये उपरोक्त शास्त्रानुसार मानना ही उचित है विशेष पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

और पन्यासजी आनंदसागरजीने सुबोधिकाकी और पंचाशककी प्रस्तावनामें छ कल्याणक निषेध करनेके लिये गण-धर सार्द्धशतकके पाठका भावार्थ समझे बिना श्रीजिनवल्लभ सूरिजी पर और खरतर गच्छ वालों पर उत्सूत्रताका हठवाद का आक्षेप किया और स्थानाङ्ग आचारांग कल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंके श्रीवीरप्रभु संबंधि विशेष अपेक्षाके छ कल्याणक

संबंधी मूल पाठोंको छोड़कर पंचाशकके सब तीर्थंकरों संबंधी सामान्य पाठको आगे किया और उपरोक्त आगमोंके सूत्र पाठोंके अभिप्रायको समझे बिना "अगाराओ अणगारियं पव्वइए तथा अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडि-पुन्ने केवलवरणाणदंसणे समुपन्नइ इत्यादि विशेषण युक्त तीर्थंकर महाराजोंको च्यवन जन्म दीक्षा ज्ञानोत्पत्ति कल्याणकोंके पाठका वस्तु अर्थ करके कल्याणक पने रहित ठहरानेका आग्रह किया सो तो धर्मसागरजीका मायाजालमें पड़कर गच्छके पक्ष पातसे अपनी उत्सूत्रताकी मायासे भोले जीवोंको फँसानेके लिये जिनाज्ञानुसार सत्य बातका निषेध करने से आनन्द सागरजीने व्यर्थ ही अपने संसार वृद्धिका कारण किया है इस बातका निर्णय तो इस ग्रन्थके पढ़ने वाले तत्वज्ञ जन स्वयं कर लेवेंगे विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नहीं है।

अब छ कल्याणको संबंधी समीक्षाके लेखके अन्तमें सत्य ग्रहण करने वाले आत्मार्थी सज्जनोंसे मेरा यही कहना है कि—शास्त्रोक्त प्रमाणोंसे श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सिद्ध करके दिखाये और छ कल्याणक निषेध करने सम्बन्धी वर्तमानिक सब कुयुक्तियोंकी समीक्षा करके सब शंकाओंका समाधान भी कर दिया है इसलिये धर्मसागरजीकी अंध परम्परा वाले वर्त्तमानमें किसी तरहकी कुयुक्तियें करे तो वे सब शास्त्र विरुद्ध समझना चाहिये।

इति—धर्म सागरोपाध्याय विरचित कल्पकिरणावल्यांषट् कल्याणक निषेध सम्बन्धी लेखस्य श्रीमान् सुमति सागरोपाध्याय स्य लघु शिष्य मणिसागराख्य मुनि कृता समीक्षासंपूर्ण जाता समाप्तेति पर्युषण निर्णय ग्रन्थे षट् कल्याणक निर्णयः॥ श्रीपर्यु-षण निर्णय नामा ग्रन्थ समाप्तः ॥ श्री र स्तु कल्याण मस्तु ॥

अथ प्रशस्ति।

अनेक प्रकारके उपसर्गो को सहन करके केवलज्ञान रूपी सूर्यको प्रकाश किया और जगत जीवोंका कल्याण करके अष्ट कर्मोंका क्षय कर मोक्ष पधारे। ऐसे शासन नायक श्री वर्द्धमान् स्वामीको वारंबार नमस्कार करके पर्युषण निर्णय ग्रन्थके अन्त मङ्गल रूप मै अपने पूर्वाचार्यों को नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ भव्य जीवोंके सब प्रकारके वांछीतार्थको पूरण करनेमें कल्पवृक्षके समान श्रीवीरप्रभुके प्रथम गणधर श्रीगौतम स्वामी जगतमें हमारा कल्याण करो ॥ २ ॥ श्री वर्द्धमान् स्वामी के पट्ट परम्परामें श्रीसुधर्मस्वामी जम्बूस्वामी केवली हमको शुद्ध रत्न त्रयीके देने वाले हो ॥ ३ ॥ और भव्य जीवोंके हृदयका अज्ञान रूपी अन्धकारको नाश करने में भास्करके समान तथा मुक्तिमार्गको बतलाने में निरन्तर अप्रमादी प्रभवादि युग प्रधान आचार्य होते भये ॥ ४ ॥ इसी तरह अनुक्रमें कोटीगच्छ चन्द्रकुल और बयरी शाखामें श्रीउद्योतनसूरिजीके शिष्य श्रीवर्द्धमान स्वामीके शासनकी वृद्धि करने वाले और जिन्होंको धरणेन्द्रने आकर महिमा गर्भित सूरिमन्त्रका सब भेद बतलाया ऐसे श्री वर्द्धमान सूरिजी हुए ॥ ५ ॥ और चैत्य वासियोंकी कल्पित प्ररूपणारूप मायाजालको तोड़नेमें तीक्षण खड्गके समान तथा गुर्जरभूमि गुजरातमें जिनाज्ञानुसार शुद्धसंयममार्गको प्रकाश करने में सूर्यचन्द्र समान ऐसे श्रीवर्द्धमानसूरिजीके दो शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा बुद्धिसागरसूरिजी हुए ॥ ६ ॥ इन्हीं श्री जिनेश्वरसूरिजी महाराजने अणहलपुरपट्टणमें दुर्लभ

राजाकी सभामें चैत्यवासियोंको पराजय करके सुविहित (खरतर बिरुद प्राप्त किया) जिन्होंके शिष्य संवेगरङ्गसे रङ्गित आत्मावाले तथा चन्द्रकी तरह शीतलता युक्त १८०० प्रमाणे संवेगरङ्गशालाग्रन्थके कर्ता श्रीजिनचन्द्रसूरिजी हुए ॥ ७ ॥ और जगत जीवोंको अभय दान देने में बड़े उत्साही तथा अल्पज्ञोंके परम उपकारी नवांगी वृत्ति करने वाले और जयति हुअण स्तोत्रसे श्रीस्थंभन पार्श्वनाथजीकी प्राचीन प्रतिमा को प्रगट करके शरीरका रोग शान्त करने वाले श्रीअभयदेव सूरिजी महाराज बड़े प्रभावक हुए ॥ ८ ॥ श्रीनवङ्गी वृत्ति कारक श्रीअभयदेव सूरिजी के पट्टपर भास्कर समान और गच्छक-दाग्रहियोंकी अभिमान रूपी पर्वतको तोड़नेमें बज्रके समान तथा सर्वशास्त्र विशारद संघ पट्टक धर्मशिक्षादि अनेक ग्रन्थ कर्त्ता और जिनको जिनाज्ञा अतीव वल्लभ है ऐसे श्रीजिन वल्लभसूरिजीके पट्टपर जिन्होंके हजारों देव देवी तथा अनेक राजा सेवा करते हैं और एक लाख तीसहजार नवीन जैनी श्रावकोंके कुल बनाकर ओसवाल वंशरूपी कल्पवृक्षको वृद्धिगत करने वाले और हजारों साधु साध्वियोंके समुदायके नायक, लाखों जीवोंके बोधि बीजको देने वाले महान् जैनशासन प्रभावक श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज हुए जिन्होंके चरण कमलोंकी पूजा सेवा सब देशोंमें होती है ॥ १० ॥ श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजके पट्ट परम्परामें अनुक्रमें श्रीजिनचन्द्रसूरिजी जिनपति सूरिजी वगैरह यावत् श्रीजिनभक्तिसूरिजी पर्यंत वीर शासन प्रभावक अनेक आचार्य महाराज होते भये ॥ ११ ॥ श्रीजिन भक्ति सूरिजी महाराजके शिष्य परम्परामें अनुक्रमें अपने आत्मोद्धारकमें परमप्रीतिवाले श्रीप्रीतिसागरजी हुए तथा भव्य जीवोंको अमृत समान धर्मोपदेश देनेमें बड़े चतुर ऐसे

श्री अमृत धर्मजी हुए और क्षमादि दश प्रकारका यति धर्म आराधन करनेमें बड़े तत्पर प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक आत्म प्रबोध चैत्य वन्दन साधु श्रावक विधि प्रकाश वगैरह अनेक ग्रन्थ करने वाले श्रीक्षमा कल्याणजी गणि हुए यह तीनों महाराज महोपाध्याय पद धारक थे ॥१२॥ श्रीक्षमाकल्याणजी गणि महाराजकी परम्परामें सत्योपदेश करने में मानों सुमतिके सागर मेरे परमोपकारी धर्माचार्य श्रीमान्सुमतिसागरजी गणि उपाध्याय अभी वर्तमानमें विद्यमान हैं ॥ १३ ॥ जिनके प्रथम बड़े शिष्य अपने आत्म कल्याण करने वाले क्षमा तपादि गुणोंकीकीर्त्तिको जगत्में फैलानेवाले श्रीकीर्त्तिसागरजी हुए थे सो सं० १९५१ में स्वर्गवास की शोभा करने को वहां चले गये ॥ १४ ॥ और दूसरा लघु शिष्य (मैं) मणि सागरने गुरु कृपासे श्रीपर्युषण निर्णय नामा यह ग्रन्थ उ० श्रीजयचन्द्रजी गणिकी सहायतासे तथा कलकत्ता, मारवाड़, बम्बई वगैरह संघके आग्रहसे कलकत्तामें शुरू किया था सो श्री बम्बई शहर लालबागमें संवत् १९७४ के चौमासामें आश्विन सुदी अष्टमी बुधवार को सम्पूर्ण किया है ॥ १५ ॥ और मारवाड़के तथा पूर्वके श्री संघने इस ग्रन्थको यन्त्र द्वारा मुद्रित करवाके वर्तमानिक गच्छ भेदोंकी भिन्न प्ररूपणासे भोले जीवोंके मिथ्यात्वके भ्रमको निवारण करके शुद्धश्रद्धा रूपी सम्यक्त की भव्य जीवोंको प्राप्ति होने के लिये और हठ वादियोंका झूठा आग्रह दूर करके श्रीजिनाज्ञानुसार सत्य बातोंका प्रकाश जगत्में होनेके लिये प्रगट किया है ॥ १६ ॥ पंचांगीके प्रमाणों पूर्वक पूर्वाचार्य्योंके कथनानुसार इस ग्रन्थकी रचना मैंने करी है जिसमें कोई बात जिनाज्ञा विरुद्ध लिखी गई होवे तो उसका त्रिकरण शुद्धिसे तीन योग सहित अरिहंतादि छ शाक्षियोंसे मिच्छामि दुक्कडं

देता हूं ॥ १७ ॥ तथा इस ग्रन्थ संबन्धी भूलोंको जो पाठकगण मेरेको बतलावेंगे या पत्र द्वारा सूचना करेंगे तो उन्हींका उपकार पूर्वक उसका सुधार करनेकी (मैं) प्रतिज्ञा करता हूं ॥ १८ ॥ और जिनाज्ञा विरुद्ध उत्सूत्र प्ररूपण करने वालोंको तथा गच्छोंके पक्षपातसे विरुद्धाचरण करनेवालोंको झूठा आग्रह छोड़कर जिनाज्ञामें प्रवृत्ति करानेके लिये यद्यपि उपकार बुद्धि से हित शिक्षा रूप लिखनेमें आया है तिसपर भी किसीको बुरा लगे तो उसकी क्षमा प्रार्थना करता हूं ॥ १९ ॥ श्री कलकत्ता नगरमें श्रीशांतिनाथजीकी शीतल छाया नीचे यह ग्रन्थ शुरु हुआ और बम्बई नगरमें श्रीपार्श्वनाथजीके प्रसादसे परिपूर्ण हुआ है इस लिये जबतक वीरशासनप्रवृति रहे तबतक भव्यजीवोंको शुद्ध मार्गकी प्रवृत्ति कराने वाला यह ग्रन्थ इस भरत क्षेत्रमें जयवंता वर्त्तो ॥२०॥ जिनागमानुसार गुरु महाराज की और सरस्वतीकी कृपासे सत्य ग्रहणाभिलाषी जीवोंको जिनाज्ञाकी परीक्षा करने वाला वर्तमानिक भेदोंकी भिन्न भिन्न प्ररूपणामें इस ग्रन्थके पूरण होनेमें मेरी आत्माका उद्धार हुआ मैं मानता हूं ॥ २१ ॥